ISSN No 2347-7075
Impact Factor- 7.328
Volume-2 Issue-7

INTERNATIONAL JOURNAL of ADVANCE and APPLIED RESEARCH

Publisher: P. R. Talekar
Secretary,
Young Researcher Association
Kolhapur(M.S), India

Young Researcher Association

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly

ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue-7 March- Apr 2022

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)

A Multidisciplinary International Level Referred and Peer Reviewed Journal

March-Apr Volume-2 Issue-7

On

Chief Editor
P. R. Talekar
Secretary
Young Researcher Association, Kolhapur (M.S), India

Editor
Prof. Dr. V. V. Killedar
Rajarshi Chhatrapati Shahu College, Kolhapur

Co- Editors		
डॉ. एस. पी. पवार	लैफ्ट.डॉ. आर.सी. पाटील	डॉ. एस. जे. आवळे
प्रा. एन.पी. साठे	प्रा. ए. बी. घुले	प्रा. डॉ.एम. टी. रणदिवे
डॉ. एन. ए. देसाई		

Published by- Young Researcher Association, Kolhapur (M.S), India

The Editors shall not be responsible for originality and thought expressed in the papers. The author shall be solely held responsible for the originality and thoughts expressed in their papers.

© All rights reserved with the Editors

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly

ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue. 7 Mar-Apr 2022

CONTENTS

Sr. No.	Paper Title	Page No.
1	हिंदी उपन्यास और दलित विमर्श **डॉ. लिपारे अजित विठ्ठल**	1-2
2	पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' उपन्यास का नायक किन्नर विनोद **अनिल विठ्ठल मकर**	3-4
3	भूमंडलीकरण और 21 वीं सदी की हिंदी कविता में प्रतिबिंबित मानवी मूल्य **डॉ. अशोक मरळे**	5-7
4	दूसरा घर' उपन्यास में महानगरीय जीवन **प्रा. डॉ. बेबी राघू कोलते**	8-9
5	मृदुला गर्ग के कथा साहित्य मे स्त्री विमर्श **डॉ. भागवत भगवान देवकाते**	10-11
6	'मढ़ी का दीवा' उपन्यास में नारी सम्मान की अभिव्यंजना **श्री अक्षय राजेंद्र भोसले**	12-15
7	दीप्ती खंडेलवाल की कहानियों में अभिव्यक्त नारी के विविध आयाम **प्रा.डॉ. एकलारे चंद्रकांत नरसप्पा**	16-17
8	ममता कालिया के 'कितने प्रश्न करूँ' खंडकाव्य में स्त्री – विमर्श **प्रा. डॉ. दयानंद बी पाटील**	18-19
9	सलिल सुधाकर की कहानियों में महानगरीय जीवन **दिपाली विकास जाधव**	20-21
10	कृषक जीवन की समस्या **दया शंकर यादव**	22-25
11	इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में पारिस्थितिकी चिंतन **प्रो. डॉ. सदानंद भोसले, प्रा.एन.बी.एकिले**	26-28
12	राष्ट्र के उन्नयन के लिए आदर्श चरित्रों की आवश्यकता : 'मिल्कियत की बागडोर **डॉ. एकनाथ श्रीपती पाटील**	29-32
13	हिंदी साहित्यः नारी विमर्श- "प्रभा खेतान का उपन्यास 'आओ पेपे घर चले' के संदर्भ में" **प्रा. डॉ.जेनेट फिलिप बोर्जिस**	33-35
14	आदिवासी दलित विमर्श में वीरेन्द्र जैन का चित्रण **के. प्रमीला**	36-38
15	नागार्जुन' के उपन्यासों में किसान विमर्श **प्रा. कैलास बबन माने**	39-41
16	हिंदी कहानियों में प्रतिबिंबित नारी विमर्श **डॉ. काकासो बापूसो भोसले**	42-44
17	भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में स्त्री लेखन और रूढ़िमुक्त नारी **डॉ.कल्पना पाटोळे**	45-47
18	चंद्रकांता के 'अंतिम साक्ष' उपन्यास में नारी विमर्श **डॉ.रंजना अप्पासाहेब कमलाकर**	48-49
19	हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श **डॉ. महिपती जगन्नाथ शिवदास**	50-51
20	अस्तित्व उपन्यास में अस्तित्व की तलाश: किन्नर विमर्श के संदर्भ में **डॉ मंजु पुरी**	52-55
21	भगवान गव्हाडे की कविताओं में आदिवासी चेतना विशेष संदर्भ 'आदिवासी मोर्चा **डॉ. मनोहर जमधाडे**	56-57
22	आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में नारी-विमर्श **प्रा. मारुफ मुजावर**	58-59
23	हिंदी उपन्यासों में भूमण्डलीकृत भारत **डॉ. मीनाक्षी चैधरी**	60-62

24	हिन्दी उपन्यासों में किसान विमर्श : स्वरूप विवेचन ('गोदान','ग्लोबल गाँव के देवता' और 'फाँस' के विशेष संदर्भ में) **मिर्जा मासुमे फातिमा**	63-65
25	शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यासों में नारी विमर्श **मोल्लम डोलमा**	66-67
26	'भावना के पीछे' नाटक में चित्रित नारी **प्रा. साठे नीता पोपट**	68-69
27	'कुइयाँजन' उपन्यास में महानगरीय विमर्श **प्रा. डॉ. नेहा अनिल देसाई**	70-71
28	दलित चेतना की बेबाक अभिव्यक्ति (सूरजपाल चौहान का कविता संग्रह 'क्यों विश्वास करूँ' के विशेष संदर्भ में) **डॉ. भूपेंद्र सर्जेराव निकाळजे**	72-74
29	'फाँस' उपन्यास में चित्रित कृषक जीवन **डॉ.परमेश्वर जिजाराव काकडे**	75-77
30	जागतिकीकरण और सबसे कठिन काम कहानी **प्रा. डॉ. पवन नागनाथ एमेकर**	78-79
31	'अकाल में उत्सव' उपन्यास में किसान जीवन की व्यथा **प्राजक्ता शिवाजी कुरळे**	80-81
32	दलित अस्मिता और हमारे हिस्से का सूरज **डॉ.प्रकाश आठवले**	82-85
33	उत्तरशती के हिंदी उपन्यासो में नारी समस्या **डॉ. प्रकाश राजाराम मुंज**	86-89
34	दलित चेतना का दस्तावेज : छप्पर **प्रा. डॉ. आर. बी. भुयेकर**	90-92
35	भूमंडलीकरण और हिंदी कविता **लैफ्ट. डॉ. रविंद्र पाटील**	93-95
36	हिंदी साहित्य में आदिवासी साहित्य की विकास धारा: एक परिपेक्ष्य के रूप में **डॉ. आर. पी. भोसले**	96-98
37	सुनील अवचार यांच्या कवितेतील ग्लोबल वर्तमान **डॉ सुनिता रामचंद्र कांबळे**	99-100
38	चंद्रकांता के 'अंतिम साक्ष' उपन्यास में नारी विमर्श **रविंद्रनाथ माधव पाटील**	101-103
39	कुर्सी पहियोंवाली' में उद्धृत नारी आत्मनिर्भरता **कु . प्राजक्ता अंकुश रेणुसे**	104-106
40	समकालीन हिंदी उपन्यासों में स्त्री- विमर्श **सौ. रेशमा गणेश लोंढे**	107-108
41	आँचलिक उपन्यासों में नारी विमर्श **प्रा. रोहिणी गुरुलिंग खंदारे**	109-110
42	नारी की व्यथा को उजागर करता नाटक 'जी, जैसी आपकी मर्जी.... **प्रा.रूकसाना अल्ताफ पठाण**	111-112
43	श्री मैथिलीशरण गुप्तजी की कविता 'सैरंध्री' में नारी-विमर्श **सुश्री. रूपाली संभाजी पाटील**	113-114
44	'नरककुंड में बास' उपन्यास में दलित विमर्श **प्रा. डॉ. संदीप जोतिराम किर्दत**	115-117
45	नीरजा माधव के 'यमदीप' उपन्यास में किन्नर विमर्श **डॉ.संजय पिराजी चिंदगे**	118-119
46	समकालीन हिंदी साहित्य में चित्रित किन्नर विमर्श **डॉ. संजय ना. पाटील**	120-123
47	भूमंडलीकरण का दलितों पर अधूरा प्रभाव **प्रा.राठोड संजय लिंबाजी**	124-126

48	शैलेश मटियानी की कहानियों में दलित जीवन **डॉ. संतोष बबनराव माने.**	127-128
49	हिंदी कविता में दलित चेतना **डॉ. संतोष मोटवानी**	129-131
50	भूमंडलीकरण और 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास **डॉ. भगत सारिका आप्पा**	132-133
51	'यमदीप' में चित्रित किन्नरों का पारिवारिक संघर्ष **प्रा. डॉ. एस. बी. बिडकर**	134-135
52	बारेला समाज में प्रचलित अनोखी एवं सर्वश्रेष्ठ परम्पराएं **डॉ. श्रीमती सेवन्ती डावर**	136-137
53	'सागर लहरें और मनुष्य' उपन्यास में चित्रित दलित मछुओरों का यथार्थ जीवन **डॉ. शाहीन अजज जमादार**	138-139
54	हिन्दी साहित्य : दलित एवं आदिवासी विमर्श **डॉ. शिवकांता रामकिसन सुरकुटे**	140-141
55	हिंदी साहित्य : किसान विमर्श **प्रा.कोकाटे शोभा नानाभाऊ**	142-143
56	इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान विमर्श **डॉ. श्रीकांत पाटील**	144-145
57	हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर विमर्श **प्रो. (डॉ.) सिद्धेश्वर विठ्ठल गायकवाड**	146-147
58	मालती जोशी की कहानी 'उत्सव' में स्त्री-विमर्श **डॉ. स्नेहल श्रीकांत गर्जे-पाटील**	148-149
59	मनोज सोनकर के काव्य मे : नारी विमर्श **प्रा. सोनाली रामदास हरदास**	150-153
60	रामकुमार वर्मा लिखित एकलव्य खंडकाव्य में दलित चेतना **डॉ.सौदागर सालुंखे**	154-155
61	समाज में किन्नरों की मुख्य समस्याएं **सुभाष विष्णू बामणेकर**	156-158
62	जयकाली बहू **डॉ. सुचिता संतोष भोसले**	159-160
63	आज का भारतीय किसान:एक विमर्श **डॉ.सुनील अभिमन्यु गायकवाड**	161-162
64	हिंदी उपन्यास: किसान विमर्श **सुनील चांगदेव काकडे**	163-164
65	मिले सुर मेरा तुम्हारा: किसान समस्या **डॉ. सुनिता हुन्नरगी**	165-167
66	हिंदी साहित्य में किसान विमर्श **प्रा. डॉ. सुरेखा प्रे. मंत्री**	168-170
67	डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर विचारधारा से प्रेरीत नारी (दलित समाज कि कहानियॉ : रत्नकुमार साम्भरिया के विशेष संदर्भ में) **प्रा. डॉ . सुवर्णा नरसू कांबळे**	171-173
68	सुशीला टाकभौरे के 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में चित्रित दलित नारी जीवन **तब्बसुम शकील पठाण**	174-175
69	हिंदी साहित्य: नारी विमर्श **डॉ.वैशाली प्रशांत सामंत**	176-177
70	कितने प्रश्न करूँ' खंडकाव्य के माध्यम से अभिव्यक्त नारी विमर्श **डॉ. वंदना पाटील**	178-180
71	महिला कहानीकारों की कहानियों में महानगरीय विमर्श **डॉ विठ्ठलसिंह रूपसिंह घुनावत**	181-182

72	समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी स्त्री-संघर्ष **डॉ.विट्ठल शंकर नाईक**	183-187
73	जगदंबा प्रसाद दीक्षित के उपन्यासों में महानगरीय जीवन की त्रासदी **सौ. वृषाली महादेव माळी**	188-189
74	नारी की व्यथा, पीडा और समर्पन का चित्रण उपन्यास 'अगनपाखी' **डॉ. सुधीर गणेशराव वाघ**	190-192
75	मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री विमर्श **प्रा.व्ही.एच्. वाघमारे**	193-194
76	किन्नरों के सामाजिक अस्तित्व को व्यक्त करता उपन्यास 'यमदिप' **डॉ. रामेश्वर वरशिळ**	195-196
77	धर्म की आड में स्त्री का शोषण **सफिया कासम मुल्ला**	197-198
78	‘ आना इस देश ’ : एक स्त्री की असफल प्रेमकथा **डॉ.युवराज माने**	199-201
79	हिंदी महिला कहानीकारों में नारी विमर्श **प्रा. वाय. पी.पाटील**	202-203
80	आठवें और नवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में चित्रित नारी-जीवन पर आर्थिक एवं सामाजिक वैषम्यों का प्रभाव **डॉ. सुमित्रा कोत्तापल्ली**	204-205
81	आधुनिक मराठी साहित्यातील धनगर समाजातील अंधश्रध्दा **डॉ.संदीप वाकडे**	206-208
82	जयंत नारळीकर यांच्या ‘प्रेषित’ व ‘अंतराळातील स्फोट’ या कादंब-यांतील कल्पित **प्रविणसिंह बहादूरसिंह शिलेदार**	209-212
83	जागतिकीकरण आणि आवानओल मधील ग्रामीण स्त्री जीवन **प्रा. डॉ. शीला धम्मपाल रत्नाकर**	213-216
84	जागतिकीकरण आणि इंद्रजित भालेरावांची कविता **प्रा.डॉ.महेश रणदिवे**	217-219
85	जागतिकीकरण आणि ग्रामीण कादंबरी :‘चैत’ **प्रा. पद्मावती प्रभाकर पाटील**	220-222
86	जागतिकीकरण आणि ग्रामीण कादंबरी **डॉ. मनीषा आझाद नायकवडी**	223-226
87	जागतिकीकरण आणि ग्रामीण साहित्य प्रवाह **डॉ.निर्मला वसंतराव मोरे**	227-229
88	जागतिकीकरण आणि ग्रामीण साहित्य प्रवाह **प्रा. आल्हाट श्रीकांत गोपीनाथ, प्रा. कोठावळे लक्ष्मण भिकाजी**	230-233
89	जागतिकीकरण आणि दलित कविता **डॉ. सुनील चंदनशिवे**	234-237
90	जागतिकीकरण आणि दलित कवितेचे बदलते स्वरूप **प्रा. डॉ. शशिकला भीमराव रणदिवे**	238-241
91	जागतिकीकरण आणि बदलेला गावगाडा **विनायक विलास सरदेसाई**	242-244
92	जागतिकीकरण आणि मराठी कविता **डॉ. सिंधू जयवंत आवळे**	245-248
93	जागतिकीकरण आणि महानगरीय साहित्य प्रवाह: कादंबरी **भगवान बाळू लोखंडे**	249-251
94	जागतिकीकरण आणि लोककला व लोककलावंत **प्रा.संतोष उध्दव पवार**	252-253
95	'जागतिकीकरण आणि श्रीकांत देशमुख यांची कविता' **प्रा.हनुमंत गणपत निमसे**	254-255

96	जागतिकीकरण आणि स्त्रीवादी साहित्य प्रवाह **प्रा. श्रीमती वंदना शामराव खोराटे**	256-258
97	जागतिकीकरणाचा महानगरीय कवितेवरील प्रभाव **प्रा.अंकुश भारत घुले**	259-261
98	जगतिकीकरणाचा वेध घेणारी कादंबरी : बांडगुळ आख्यान **प्रा. सौ. व्हसमने सुरेखा बसाप्पा**	262-264
99	जागतिकीकरणानंतरची दलित कविता **प्रा.डॉ. राजश्री बंडोपंत पोवार**	265-268
100	जागतिकीकरणावर मराठी दलित कवितेचा प्रभाव **प्रा. श्रीरंग अरविंद तराळ**	269-272
101	जागतिकीकरण आणि मराठी कादंबरी **प्रा. मोहन बाबूराव चव्हाण**	273-275
102	जागतिकीकरण आणि मराठी नाटक **अमर शामराव सकटे**	276-278
103	समकालीन पर्यावरण आणि १९९० नंतरचे मराठी नाटक **प्रा.स्मिता कोंडिबा कालभूषण**	279-281

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

हिंदी उपन्यास और दलित विमर्श

डॉ. लिपारे अजित विठ्ठल
सद्गुरू गाडगे महाराज कॉलेज, कराड
Email - ajitlipare@gmail.com

साहित्य एक ऐसा हथियार है जिसके माध्यम से साहित्यकार अपने विचारों को समाज की तह तक पहूँचा सकता है। दबे-कुचले समाज में परिवर्तन का संचार करता है। सामाजिक गतिविधियों को प्रकाशित करने का सशक्त साधन साहित्य है। हिंदी में विपुल और विभिन्न प्रकार का साहित्य लिखा गया है। साहित्यकारों ने अनेकानेक विषयों को अपने साहित्य के माध्यम से रू-ब-रू कराया है। जिसमें स्त्री विमर्श, किसान विमर्श, मजदूर विमर्श, किन्नर विमर्श, बाल विमर्श के साथ-साथ दलित विमर्श पर अपनी कलम को दौडाया है। हिंदी साहित्य की विधाओं में विपुल मात्रा में दलितों के उपर साहित्य-सृजन हुआ है, जिसमें उपन्यास विधा महत्वपूर्ण एवं प्रमुख विधा है।

कहानी, कविता, नाटक, एकांकी, आत्मकथा, निबंध आदि विधाओं के समान उपन्यासों में दलित विमर्श पर वैविध्यपूर्ण रूप से लिखा गया है। दलित एवं गैरदलित उपन्यासकारों ने दलित विमर्श पर भाष्य किया है। वास्तविक रूप से 'दलित साहित्य' को लेकर विभिन्न मतप्रवाह दिखाई देते है। डॉ. एन. सिंह इसे स्पष्ट करते हुए लिखते है, "दलित का अभिप्राय उस वर्ग से है जिसका दलन, शोषण और उत्पीडन किया जाता है। दलित साहित्य वह साहित्य है जो दलितों की स्थिति और समस्याओं की पड़ताल के साथ-साथ उनका समाधान भी प्रस्तुत करता हो।"[1] प्राचीन काल से मध्यकाल में कबीर, रैदास, तुलसीदास, गरूनानक जैसे संतों के अतिरिक्त आधुनिक काल के समाज सुधारको जिसमें महात्मा गांधी, महात्मा जोतिबा फूले, डॉ. बाबासाहब आंबेडकर आदि ने दलित वर्ग पर गहराई से विचार विमर्श किया है। उपन्यास के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालने के पश्चात निम्नलिखित प्रतिनिधि उपन्यासों में दलित विमर्श पर चर्चा हुई है।

हिंदी उपन्यास और दलित विमर्श:

'छप्पर' उपन्यास में जयप्रकाश कर्दम जी ने उत्तर प्रदेश के मातापुर गाँव में रहनेवाले चमार जाति के लोगों को केंद्रबिंदु में रखकर दलितों की समस्याओं को प्रस्तुत किया है। उपन्यास का पात्र चंदन दलितों में सुधार लाने हेतु पढ़ाई को महत्वपूर्ण मानता है। समाज में अपना स्थान निर्माण करना है, अन्य लोगों से थोडा आगे चले जाना है तो ज्ञानी होना आवश्यक है। पढ़ाई से दलित लोग अपने उपर होनेवाले अत्याचार, उनके साथ किया जानेवाला भेदभाव आदि का सही रूप से विरोध कर सकेंगे। उपन्यासकार ने इसमें दलितों की समस्याओं कों चित्रित करने के साथ-साथ उनमें क्रांति की भावना पैदा करने की कोशिश की है।

प्रेम कापड़िया द्वारा लिखित 'मिट्टी की सौगंध' उपन्यास 'सर्वधर्मसमभाव' को केंद्रबिंदू में रखकर लिखा गया उपन्यास है। देहातों में रहनेवाले सामंतों के विरोध में दलितों में चेतना जागृत करना इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है। ग्रामीण परिवेश में रहनेवाले दलितों के सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक और नैतिक शोषण का कारूणिक चित्रण उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास में किया है। इसका सशक्त उदाहरण उपन्यास की पात्र शीला है जो ठाकुरों के हवस का शिकार बनी है। विजेंद्रसिंह शीला जैसी सामाजिक उत्पीड़न या बलात्कार की शिकार बनी माँ बहनों के लिए काम करना चाहता है। वह स्वयं कहता है, "मैं सिर्फ उन दलित माँ-बहनों के लिए काम करूँगा जो बलात्कार या किसी सामाजिक उत्पीड़न की शिकार है।"[2]

सत्यप्रकाश द्वारा लिखित 'जस-तस भई सबेर' उपन्यास दलितों में चेतना उत्पन्न करने के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है । उपन्यासकार ने इसमें ग्रामीण दलितों की समस्याओं को चित्रित करने के साथ-साथ उनके विकास में बाधक बनी रूढिवादिता और धर्मांधता से मुक्त होने का संदेश दिया है। हिंदी के श्रेष्ठ दलित साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय ने अपने उपन्यास 'मुक्ति पर्व' में दलितों की यथार्थता को वर्णित किया है। भले ही हम अंग्रेजों से मुक्त हुए है। कुछ जातियों को मुक्ति मिली है, किन्तु वास्तविक रूप से आज दलित मुक्त है क्या? इस संबंध में संपा. डॉ. जशवंतभाई पंड्या लिखते है, "दलितों को अज्ञानता, निरक्षरता, विषमता, भेदभाव, धर्मांधता, कुरीतियों, व्यसन, स्त्री पुरूष भेद, शोषण, अन्याय और जुल्मों से मुक्त होना है।"[3]

नागार्जुन ने अपने 'बलचनमा' उपन्यास के माध्यम से दलित साहित्य को एक नये मोड पर लाकर ख़डा कर दिया। उन्होंने उच्चवर्ग के पात्रों को नायक बनाने के बजाय दलित वर्ग के पात्रों को अपने उपन्यासों का नायक बनाया है। प्रस्तुत उपन्यास का 'बलचनमा' इसका सशक्त उदाहरण है। बलचनमा एक ओर रोटी के लिए लड़ता है तो दूसरी ओर उन सामंती मूल्यों से जो उसका शोषण करते है। दलितों में हो रहे सुधार को उच्च वर्ग के लोग मंजुर नहीं करते। वे उन्हे विभिन्न प्रकार से यातनाएँ देते है। ऐसी मानसिकतावाले सामंतों को नागार्जुन कसाई कहते है। ये लोग दलितों की हर चीज पर अपना अधिकार जमाते है। अर्थात उपन्यासकार ने इसमें सवर्णों के प्रति तिव्र आक्रोश व्यक्त किया है। अमृतलाल नागर कृत 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में अछुतों में अछुत समझी जानेवाली मेहतर जाति को रेखांकित किया है। मेहतर जाति के लोगों से साक्षात्कार करके उनके जीवण की गहराईयों तक जाने का सफल प्रयास किया है।

दलित स्त्रियों की करुणापूर्ण दशा को भगवतीचरण वर्मा ने 'भूले बिसरे चित्र' में वर्णित किया है। सवर्ण लोग निम्न वर्गीय स्त्रियों को वस्तु के रूप में इस्तेमाल करते है। उनके साथ प्रेम के नाम पर खिलवाड करते है। एसी स्त्रियों को वे वासनातृप्ती का साधन समझतें है। निराला ने 'चौटी की पकड' में छुआ-छुत की समस्या पर प्रकाश डाला है। ईश्वर ने मानव को एक समान बनाने के बावजुद भी मनुष्य ने उसे जातिगत भेदभाव में विभक्त कर दिया है। अछुत जाति के लागों का स्पर्श हो जाने से अन्य जातियाँ मर जाति है ऐसी मानसिकता को यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

दलित महिलाएँ गरिबी एवं अर्थाभाव के कारण शारीरिक शोषण का शिकार बनती है। इसका सशक्त चित्रण रामदरश मिश्र ने अपने उपन्यास 'सुखता हुआ तालाब' में किया है। प्रस्तुत उपन्यास की पात्र चेनइया ऐसी महिलाओं का प्रतीक है। जशदीशचंद्र जी ने अपने 'धरती धन न अपना' में

पंजाब राज्य के हाशियारपुर जिले के घोडेवाहा गांव में रहनेवाले चमार जाति के लागों की समस्याओं को चित्रित किया है। इनके साथ जानवरों जैसा बर्ताव किया जाता है, उन्हें गंदी से गंदी गालियाँ भी दी जाति है। 'एक टुकडा इतिहास' गोपाल उपाध्याय कृत यह उपन्यास कुमाऊ प्रदेश की रहनेवाली नारी चनुली जो जाति से डोम है उसके जीवन की संघर्षमय गाथा को प्रस्तुत करता है। ब्राह्मण जाति के कालमणि को चनुली से प्यार हो जाता है, किंतु लोग-लागवश या लागों के डर से चनुली को उसे त्यागना पड़ता है। समता आश्रम को स्थापित करके चनुली उसपर होनेवाले शारीरिक-मानसिक अत्याचार का मुकाबला करती है। चनुली से वह चंडीदेवी बनकर दलितों की सेवा करती है।

फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने 'मैला आँचल' उपन्यास में दलित स्त्री की शोचनीय दशा को चित्रित किया है। परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण दलित स्त्रियों का यौन शोषण होता है। उच्चवर्ग के लोग दलित जाति के स्त्रियों के साथ शारीरकि संबंध रखते है। यह स्त्रियाँ अपनी इज्जत बेचकर पूरे परिवार का गुजारा करती है। अब दलित जाति के लोगों में चेतना उत्पन्न होने लगी है। वे अपने हकों के लिए सचेत होने लगे है। प्राचीन जमाने में दलितों की उपेक्षा की जाती थी, उन्हें विकास, प्रगति और सम्मान के अवसरों से वंचित रखा जाता था, किंतु अब धीरे-धीरे दलितों की मानसिकता में परिवर्तन होने लगा है। आ. चतुरसेन शास्त्री कृत 'उद्यास्त' उपन्यास में इसका चित्रण हुआ है। उपन्यास का पात्र मंगतु चमार इसका सशक्त उदाहरण है। जो राजा रुद्रप्रताप को बेगार देने से स्पष्ट रूप से विरोध करता है।

रामकुमार भ्रमर ने 'मोतियाँ' में सवर्ण जाति के लोग अपने स्वार्थ के लिए दलितों का किस तरह उपयोग करते है इसका चित्रण किया है। उच्च वर्ग के लोग बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, दलितों को अपने बराबर का मानते है किन्तु यह केवल कथनी तक ही सीमित रहता है। प्रस्तुत उपन्यास का रामआसरे चुनाव में वोटों के लिए जातिगत भेदभाव को न मानकर समानता का दर्शाता है किन्तु दलित जाति का मोतियाँ रामआसरे की बेटी बिंदिया का हाथ माँगने पर रामआसरे उसे बहुत पिटता है। 'जल टुटता हुआ' उपन्यास में रामदरश मिश्र जी ने दलित महिलाओं के साथ-साथ दलित पुरूषों के शारीरिक शोषण का चित्रण किया है। अपनी हवस मिटाने के लिए सवर्ण पार्वती हँसिया नामक दलित युवक का शारीरिक शोषण करती है। यह बात जब चारों ओर फैल जाती जै तअ पार्वती हँसिया पर ही जोर-जबरदस्ती का इल्जाम लगाती है।

निष्कर्ष रूप से कह सकते है कि प्रस्तुत उपन्यासों में दलितों के जीवन की कारूणिक कहानी को चित्रित किया गया है। दलितों को जीवनयापन करते वक्त किन-किन समस्याओं का सामाना करना पडता है इनसे समाज को रू-ब-रू कराया है।

संदर्भ:

1. संपा-सिंह डॉ. एन- हिंदी साहित्य में दलित संघर्ष के उन्नायक पृ. 62
2. कापडिया प्रेम- मिट्टी की सौगंध पृ- 50
3. संपा. मेहरा डॉ. दिलीप- दलित केंद्रित हिंदी उपन्यास- (डॉ. जशवंतभाई पंड्या स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में दलित चेतना½ पृ 40

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' उपन्यास का नायक किन्नर विनोद

अनिल विठ्ठल मकर
शोधछात्र, हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
ई-मेल : anilmakar70@gmail.com

प्रस्तावना :

'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' यह लेखिका चित्रा मुद्गल का किन्नर जीवन पर आधारित बेहतरीन उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका किन्नर विनोद के माध्यम से किन्नर जीवन की व्यथा तथा उनकी परिवर्तन के लिए छटपटाहट को चित्रित किया है। न ठीक से स्त्री का न पुरुष का शरीर होने के कारण समाज किन्नरों को आसानी से जीने नहीं देता। परिवार और समाज में उन्हें पग-पग पर अपमानित किया जाता है। समाज का यह उपेक्षित रवैया किन्नरों का जीना हराम कर देता है। इन सारी बातों का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किन्नर विनोद समेत अन्य किन्नरों के माध्यम से किया है।

किन्नरों को भी समाज के अन्य लोगों की तरह मन, भाव-भावनाएँ, अपेक्षाएँ हैं लेकिन समाज उनकी भावनाओं का अनादार करता है। समाज किन्नरों का सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए उनका उपयोग करना चाहते हैं। किन्नरों के संदर्भ में समाज के इसी उपेक्षित रवैये को लेखिका चित्रा मुद्गल ने किन्नर विनोद उर्फ बिमली उर्फ बिन्नी के माध्यम से चित्रित किया है। लेखिका चित्रा मुद्गल ने पत्रात्मक शैली में सन् 2016 में लिखे इस उपन्यास में किन्नर जीवन की व्यथा स्पष्ट रूप में उभकर आती है। प्रस्तुत उपन्यास को साहित्य अकादेमी की ओर से भी सम्मानित किया गया है। इसमें प्रमुख रूप में किन्नर विनोद की कथा है। इसके साथ ही अन्य किन्नरों की भी कथाएँ जुड़ी हैं। प्रस्तुत उपन्यास का विनोद जन्मतः किन्नर है लेकिन उसका शरीर और बर्ताव पूरी तरह से पुरुष की तरह है। उसमें अन्य किन्नरों की तरह स्त्रैण लक्षण बिल्कुल नहीं हैं। उसके शरीर में दोष सिर्फ इतनाही है कि उसका लिंग अविकसित है। इसी वजह से उसे किन्नर मुखिया चंपाबाई उसे जबरन ले जाती है। माता-पिता विनोद को किन्नरों से छिपाने का प्रयास करते हैं लेकिन उसका बड़ा भाई अर्थात् मोटाभाई जबरन उसे किन्नरों को सौंप देता है। किन्नर समुदाय में शामिल होने के बाद विनोद के जीवन की कैसे हालत हो जाती है इसका चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में बेहतरीन ढंग से किया है। किन्नर डेरे में उसका दम घुट जाता है। वह थोड़ा-बहुत पढ़ा-लिखा होने के कारण उसे विधायक के ऑफिस में काम मिलता है। यही पर काम करते-करते विनोद किन्नरों के जीवन में परिवर्तन के सपने बुनता है लेकिन स्वार्थी राजनीति किन्नरों के विकास की बाधा बन जाती है। विधायक जी किन्नरों की ओर सिर्फ एक 'वोट बैंक' के रूप में देखते हैं। यह वोट बैंक हासिल करने के लिए वे विनोद का उपयोग करना चाहते हैं। उन्हें किन्नरों की समस्याओं से कोई लेना-देना नहीं है। इन सारी बातों का पर्दाफाश लेखिका प्रस्तुत उपन्यास में बेहतरीन ढंग से किया है। दूसरी ओर लेखिका किन्नरों के प्रति समाज की वासनांधनता पर भी प्रकाश डाला है। लेखिका ने किन्नरी पूनम के माध्यम से इस बात पर प्रकाश डाला है।

प्रस्तुत उपन्यास में 17 पत्र शामिल हैं। इसके माध्यम से मातृ-हृदय की व्यथा तथा बेटे की परिवार से बिछुड़ने की छटपटाहट स्पष्ट रूप में सामने आती है। प्रस्तुत उपन्यास के माँ की व्यथा यह है कि वह परिवार और समाज के डर से वह अपने बेटे से खुलेआम संपर्क नहीं कर सकती। अपने किन्नर बेटे के साथ संपर्क रखने के लिए वह पोस्ट में अपने नाम खुद का निजी पोस्ट बॉक्स नंबर निकालती है। नाला सोपारा के इसी 'पोस्ट बॉक्स 203' पर विनोद के पत्र आते रहते हैं। माँ किसी न किसी बहाने से घर से बाहर जाकर बेटे के आए पत्र लाती है तथा यहाँ की खोज-खबर बेटे को भेजती रहती है। प्रस्तुत उपन्यास में किसी प्रकार की पृष्ठभूमि नहीं है। इसमें विनोद सीधा किन्नर मुखिया चंपाबाई के डेरे में शामिल होने के बाद का ही चित्रण है। विनोद किन्नर होने की भनक लगते ही किन्नर मुखिया चंपाबाई उसे जबरन ले जाकर अपने किन्नर समुदाय में शामिल करती है। इसके बाद विनोद हमेशा-हमेशा के लिए परिवार से बिछुड़ जाता है। किन्नर समुदाय में उसका मन नहीं लगता। इसलिए उसे लगता है कि माँ ने उसे जन्मते मार डालना चाहिए था। इसलिए वह अपनी माँ से कहता है- "तूने मेरे जन्मते ही मनुष्य के इस तीसरे रूप में देख लिया था न बा! उसी समय खतम कर देना था न बा मुझे! तू किस मोह में पड़ गयी थी, बोल?"[1] इस प्रकार उपन्यासकार चित्रा मुद्गल ने यहाँ पर किन्नर जीवन की व्यथा को प्रकट किया है।

विनोद की माँ का भी बेटे के बिना किसी बात में मन नहीं लगता। घर में स्थित विनोद की फोटो, स्कूल बैग तथा अन्य चीजें देखकर उसे बार-बार अपने बेटे की याद आती है। विनोद का बड़ा भाई अर्थात् मोटाभाई को माँ द्वारा इस प्रकार विनोद की याद निकालना, उसकी चीजों को सँजोकर रखना बिल्कुल पसंद नहीं आता। इसलिए वह बार-बार अपनी माँ को डाँटता रहता है। मोटाभाई की पत्नी सेजल गर्भवती है। इसलिए उसे बार-बार लगता है कि अपना होनेवाला बच्चा विनोद की तरह किन्नर पैदा न हो। इसलिए तो वह विनोद द्वारा इस्तेमाल की गई किसी भी चीज की काली छाया अपनी गर्भवती पत्नी पर नहीं पड़ने देना चाहता। इसलिए वह अपनी पत्नी को लेकर दूसरी जगह पर रहने के लिए जाता है। विनोद की याद निकालने के कारण मोटाभाई हमेशा माँ को डाँटता रहता है। बड़े भाई द्वारा किया जानेवाला यह सौतला व्यवहार विनोद के दिल को बहुत कचोटता है।

जब किन्नर मुखिया चंपाबाई विनोद को लेने आई थी तब माता-पिता द्वारा उसे छिपाने का प्रयास करने के बावजूद मोटाभाई ने ही विनोद को किन्नरों को सौंपा था। इसलिए विनोद को अपने बड़े भाई के संदर्भ में हमेशा गुस्सा आता है। किन्नर समुदाय में तो उसका बिल्कुल मन नहीं लगता। इसलिए वह अपने माँ को लिखे पत्र में लिखता है-"जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अन्धा कुआं है जिसमें सिर्फ सांप-बिच्छू रहते हैं।"[2] इससे स्पष्ट है कि किन्नर जीवन कितना दर्दनाक होता है। किन्नर समुदाय में शामिल होने के बाद किन्नरों को मनुष्य होकर भी मनुष्य की तरह जीने नहीं दिया जाता। पैसा कमाने के लिए किन्नर मुखियाओं की ओर से ही उन्हें बूरे कर्मों में लगाया जाता है। इसलिए तो विनोद को किन्नरों का यह डेरा अंधा कुआ लगता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने किन्नर विनोद के माध्यम से किन्नर डेरे की स्थिति को भी चित्रित किया है। कई किन्नर डेरे के प्रमुख

सिर्फ पैसों से मतलब रखते हैं। उन्हें किन्नरों के जीवन से कोई लेना-देना नहीं है। किन्नर किस मार्ग से पैसा कमाते हैं इस पर भी इन मुखियाओं का ध्यान नहीं रहता।

प्रस्तुत उपन्यास का विनोद शिक्षित है। वह शिक्षित होने के कारण उसे विधायक याने बाऊजी के ऑफिस में नौकरी मिलती है। वह अपनी बुद्धिमत्ता और कौशल के बल पर विधायक के ऑफिस में अपना अलग स्थान निर्माण करता है। विधायक के ऑफिस में वह अच्छी तरह से कम्प्यूटर चलाना सीखता है। वह विधायक के ऑफिस के सभी काम बहुत कुशलता से करता है। विधायक के यहाँ नौकरी लगने पर वह वहाँ पर ही रहने के लिए जाता है। वहाँ रहकर भी वह दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से अपनी अगली पढ़ाई जारी रखता है। वह डेरे के अन्य किन्नरों को पढ़ाना चाहता है। इसके लिए वह पैसे देकर एक अध्यापक की भी नियुक्ति करता है। वह विधायक के ऑफिस में काम करते-करते वह किन्नरों के परिवर्तन के सपने बुनता है। वह जानता है कि शिक्षा के माध्यम से ही किन्नरों के जीवन में परिवर्तन संभव है। लेकिन विधायक की किन्नर विनोद के माध्यम से किन्नरों की 'वोट बैंक' पर नजर है। विनोद के माध्यम से वे देशभर के किन्नरों को संगठित करना चाहते हैं। इसके पीछे उनकी स्वार्थी राजनीति कार्यरत है। प्रस्तुत उपन्यास के विधायक के स्वार्थी राजनीति की ओर निर्देश करते हुए डॉ. मधु खराटे लिखते हैं-"राजनीतिज्ञों द्वारा किन्नरों के प्रति मानवीय संवेदना उतनी नहीं है, जितना उनका स्वार्थ है। वे उन्हें वोट बैंक ही मानते हैं और राजनीति के शतरंज पर उन्हें मोहरे के रूप में देखते हैं।"[3] इससे स्पष्ट है कि नेता लोगों में भी दिनों-दिन मानवीय संवेदना कम होती जा रही है। वे किन्नरों की ओर भी स्वार्थी दृष्टि से देखते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास के विधायक विनोद का उपयोग अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए करना चाहते हैं। विधायक के ऑफीस में विनोद अपना काम प्रामाणिकता से करता है। इसी के बल पर वह उनका विश्वास संपादन करता है। विधायक की कोठी पर हररोज सुबह जनता दरबार लगता है। इसमें जनता की समस्याएँ सुलझाने के लिए विनोद विधायक को मदद करता है। प्रस्तुत उपन्यास में विधायक जी विनोद के माध्यम से किन्नरों के आरक्षण का मुद्दा उठाना चाहते हैं लेकिन इसके पीछे उनका राजनीतिक स्वार्थ हैं। इस मुद्दे को लेकर वे किन्नरों का आंदोलन खड़ा करना चाहते हैं। जिसके माध्यम से किन्नरों को संगठित किया जा सके। इस आंदोलन का नेतृत्व वे विनोद को सौंपते हैं। इस बात को लेकर चंदीगढ़ में किन्नरों का बड़ा सम्मेलन आयोजित किया जाता है। इस सम्मेलन में विनोद किन्नरों के आरक्षण के बजाय उनके आत्मसम्मान, घरवापसी, स्वाभिमान का मुद्दा उठाता है तब विधायक जी का प्लान चौपट हो जाता है। इसलिए विनोद को विधायक के कोपभाजन का शिकार बनना पड़ता है।

किन्नर सम्मेलन में विनोद किन्नरों को उनकी इच्छा के अनुसार स्त्री या पुरुष का लिंग चुनने की माँग करते हुए किन्नरों को स्थायी रूप में तीसरे खाने से मुक्त करने की माँग करता है। विनोद को लगता है कि जब तक किन्नरों को तीसरे खाने से मुक्त नहीं किया जाएगा तब तक उनकी ओर देखने का उपेक्षित दृष्टिकोण कम नहीं होगा। वह किन्नरों के लिए होनेवाला तीसरा कॉलम ही खत्म करने की माँग करता है। इस सम्मेलन के माध्यम से विनोद किन्नरों के माता-पिता को अपने बच्चों को ससम्मान वापस बुलाने तथा उनकी भाव-भावनाओं का आदर करने की अपील करता है। अन्य बच्चों की तरह किन्नर बच्चे भी शिक्षित होकर बड़ा बनना चाहते हैं, वे अपने माता-पिता के प्रति होनेवाले कर्तव्यों का निर्वहन कर उनकी सेवा करना चाहते हैं। विनोद द्वारा सम्मेलन में किन्नरों के संदर्भ में उठाए मुद्दे विधायक और उनके पी.ए. को रास नहीं आते। इसलिए विधायक के पी.ए. तिवारी विनोद पर इस संदर्भ में गुस्सा निकालते हुए कहते हैं- "क्यों विनोद, सीने में समाज सुधारक का तमगा लटकाने का शौक चर्रा आया?
राजा राममोहन राय बनना चाहते हो।

इसीलिए हमने भेजा था तुम्हें चंदीगढ़।"[4] इस प्रकार विनोद द्वारा किन्नरों के आत्मसम्मान और घरवापसी की बात करने पर उसे विधायक और उसके पी.ए. के गुस्से का शिकार होना पड़ता है।

प्रस्तुत उपन्यास में किन्नरी पूनम के माध्यम से किन्नरों के संदर्भ में समाज की वासनांधनता का भी चित्रण किया गया है। विनोद चाहनेवाली किन्नरी पूनम को विधायक के भतीजे समेत दोस्तों के वासनांधनता का शिकार होना पड़ता है। इसमें पूनम बेहोश हो जाती है। इतना होने के बावजूद विधायक जी द्वारा पैसे के बल पर यह मामला रफादफा किया जाता है। विनोद इस संदर्भ में आवाज उठाएगा इसलिए उसे जल्दी से जल्दी मुंबई भेजने की व्यवस्था की जाती है। इस दौरान माँ की तबियत ज्यादा खराब होने के कारण मजबूरन विनोद मुंबई जाना पड़ता है। यह बात विनोद किसी को न बताए इसलिए वहाँ पर विधायक के लोगों द्वारा विनोद की हत्या की जाती है। प्रस्तुत उपन्यास में अज्ञात व्यक्ति की मौत दिखाई गई है लेकिन वह विनोद ही है। प्रस्तुत उपन्यास के अंत में विनोद की माँ का माफीनामा दिया गया है। माँ यह माफीनामा अखबार में छपवाकर बेटे को घर वापस आने की अपील करती है। साथ ही अपनी जायदाद में हिस्सा देने की भी घोषणा करती है। उपन्यासकार ने माँ के इस माफीनामे तथा घरवापसी के अपील के माध्यम से माता-पिता के अपने किन्नर बच्चों के संदर्भ में हृदय-परिवर्तन को भी चित्रित किया है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में किन्नर विनोद तथा अन्य किन्नरों के माध्यम से किन्नर जीवन की व्यथा को चित्रित किया है। लेखिका ने किन्नरों के संदर्भ में उठाए अलग-अलग मुद्दे समाज को सोचने के लिए बाध्य करते हैं।

निष्कर्ष: लेखिका चित्रा मुद्गल के 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा' उपन्यास के संदर्भ में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि किन्नर जीवन की दृष्टि से यह बेहतरीन उपन्यास है। इसमें उपन्यासकार ने किन्नर विनोद के माध्यम से किन्नर जीवन की व्यथा तथा उससे संबंधित विविध मुद्दों को बेहतरीन ढंग से उठाया है। साथ ही विधायक जी के माध्यम से किन्नरों के संदर्भ में स्वार्थी राजनीति पर भी प्रकाश डाला है। प्रस्तुत उपन्यास में चंदीगढ़ किन्नर सम्मेलन के माध्यम से किन्नरों की ससम्मान घरवापसी तथा आत्मसम्मान की भी बात उठाई है जो किन्नरों के जीवन को सँवर सकती है। हुलमिलाकर प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने विनोद के माध्यम से किन्नर जीवन से संबंधित विविध मुद्दों को उठाया है।

संदर्भ:

1. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2019, पृ.25
2. वही, पृ. 11
3. डॉ. मधु खराटे, हिंदी उपन्यासों में किन्नर विमर्श, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2018, पृ. 127
4. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, पृ. 189

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr -2022

भूमंडलीकरण और 21 वीं सदी की हिंदी कविता में प्रतिबिंबित मानवी मूल्य

डॉ. अशोक मरळे
स्नातक एवं स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, मालती वसंतदादा पाटील कन्या महाविद्यालय, इस्लामपुर
दूरभाष 9623527601, ई मेल – drashokmarale@gmail.com

सारांश:

21 वीं सदी की हिंदी कविता में भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप मानवी मूल्यों में आ रहा परिवर्तन मार्मिकता के साथ चित्रित हुआ है। यह परिवर्तन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक सभी स्तरों पर व्यापकता के साथ परिलक्षित होता है। इस कविता ने मानवता के परिप्रेक्ष्य में मूल्य सौंदर्य की दृष्टि को विकसित किया है। नवीन संदर्भों और संवेदनाओं को स्वीकार कर अपनी मानवीय प्रतिबद्धता को इस युग के कवि ने प्रामाणिकता के साथ स्थापित किया है। 21 वीं सदी की हिंदी कविता में मानव मूल्य साहित्य चिंतन का प्रमुख केंद्रबिंदु है। मानव के अधिकार संविधान प्रदत्त होते हैं और उनका संरक्षण मानवी मूल्य करते हैं। इस युग की कविता भी वैश्विक एकता, समानता, शिक्षा, स्वतंत्रता और विश्व बंधुत्व की भावना को साथ लेकर चलती है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, करूणा, क्षमा, त्याग आदि मानव मूल्यों की बात इस कविता में प्रमुख रूप से हुई है।

21 वीं सदी के वैश्वीकरण के इस युग में निजीकरण और उदारीकरण को बढावा दिया जा रहा है, जिससे मानवी मूल्य खतरे में पडते दिखाई दे रहे हैं। विश्व के उदारीकरण और बाजारवाद के माध्यम से आर्थिक विकास के प्रयास किए जा रहे हैं। इसी के परिणामस्वरूप मानवी मूल्यों में विघटन एवं परिवर्तन के कारण परिस्थितियाँ विषम बनती जा रही है। अधिकारों की आड में मानवी मूल्यों का Úहास हो रहा है। विश्व में अर्थप्रधान संस्कृति के दबाव में मानव मशिन-सा बन गया है, जिसके कारण संवेदना, सहयोग और सद्भावना कमजोर पड रही है। 21 वीं सदी के अनेक कवि हैं जिन्होंने अपनी कविता के माध्यम से मानवी मूल्यों की रक्षा की है। यह कवि मानवी मूल्यों की पुनर्स्थापना करते हुए एकता का संकेत देते हैं।

मूल शब्द: मानवी मूल्य, संस्कृति, वैश्वीकरण, मानवतत्त्व, विश्व बंधुत्व, तकनीकि, केंद्रबिंदु

21 वीं सदी की हिंदी कविता में मानवी मूल्यों में आ रहा परिवर्तन मार्मिकता के साथ चित्रित हुआ है। यह परिवर्तन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक सभी स्तरों पर व्यापकता के साथ परिलक्षित होता है। इस कविता ने मानवता के परिप्रेक्ष्य में मूल्य सौंदर्य की दृष्टि को विकसित किया है। नवीन संदर्भों और संवेदनाओं को स्वीकार कर अपनी मानवीय प्रतिबद्धता को इस युग के कवि ने प्रामाणिकता के साथ स्थापित किया है। इस युग का कवि समाज से सरोकार रखनेवाला है और इसी कारण इस कविता के केंद्र में मानवता है। इन कवियों ने मानवतत्त्व पर बल देते हुए मानवी मूल्यों को अपनी कविता में सहज रूप से स्वीकार किया है।

21 वीं सदी की हिंदी कविता में मानव मूल्य साहित्य चिंतन का प्रमुख केंद्रबिंदु है। इस समय की कविता में मानवी मूल्यगत सौंदर्य की बात अपना अलग स्थान रखती है। मानवी मूल्य और मानवी अधिकारों का घनिष्ठ संबंध है। मानव के अधिकार संविधान प्रदत्त होते हैं और उनका संरक्षण मानवी मूल्य करते हैं। इस युग की कविता भी वैश्विक एकता, समानता, शिक्षा, स्वतंत्रता और विश्व बंधुत्व की भावना को साथ लेकर चलती है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, करूणा, क्षमा, त्याग आदि मानव मूल्यों की बात इस कविता में प्रमुख रूप से हुई है।

मानवी मूल्य मनुष्य के आत्मतत्त्व हैं। मानव मूल्यों से विश्व में मानव सत्ता का आपसी सामंजस्य रहता है। साहित्य समाज तथा युगीन परिस्थितियों का प्रतिबिंब होता है। इसी दृष्टि से 21 वीं सदी का कवि और उसकी कविता समता और समभाव के मापदंडों पर आधारित हैं। उसमें औदार्य, राष्ट्रीयता, त्याग, करूणा, दया, प्रेम आदि मानवी मूल्यों की चेतना है।

पिछली सदी के मुकाबले 21 वीं सदी में शोषण, उत्पीडन और शत्रुता के तौर तरीकों में काफी तब्दीली आई है। नए युग के शत्रु हमें शत्रु की तरह दिखाई नहीं देते। उनकी हिंसा और पैने नाखून भी साफतौर पर दिखाई नहीं देते। ''इस भूमंडलीकृत युग में सत्ता की अमानुषिकता बढी है, साम्राज्यवादी शक्तियों ने मानव मस्तिष्क को अनुकूलित करना शुरू किया है, तब से अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करनेवाली जनचेतना की धार कुंद होने लगी है। लेकिन हिंदी कविता इन दूरभिसंधियों को अनावृत करती हुई एक पहरूए की तरह इस आत्मकेंद्रीत होते समय में भी जन-सरोकारों के साथ मजबूती के साथ खडी है।''1 इस कठिन समय में भी आज की हिंदी कविता मानवी मूल्यों की रक्षा हेतु मनुष्य के हाहाकार और उसके प्रतिरोध की आवाजों को दर्ज कर रही है।

21 वीं सदी में सबकुछ आधुनिक होता जा रहा है। लेकिन यह आधुनिकता मानवी मूल्यों में दरारें पैदा कर रही है। तकनीकि से भरी इस दुनिया ने सभी को एक दूसरे से दूर कर दिया है। मोबाईल, फेसबुक एवं व्हाट्सएप्प आदि कहने को तो सोशल नेटवर्क है, पर इनमें वो बात कहाँ जो इंसान के मिलने में है। 21 वीं सदी के बदलते मायनों ने प्रेम करनेवालों को भी अपनी तकनीकि की गिरफ्त में ले लिया है। विभू राय कृत यह कविता इसी विषय को रेखांकित करती है -

''खतों का दौर खत्म हो गया अब इश्क में,
फेसबुक, व्हाट्सएप्प का ट्रेंड चल रहा है।
अब नहीं लिखी जाती महबूब की यादों में डूबकर शायरी
गूगल पर जो प्रेम सामग्री है,
उसी बैसाखी के सहारे
प्यार होले-होले आगे बढ रहा है।''2

नई सदी में एक तरफ अंधाधुंध शहरीकरण तथा पहाडों, नदियों, जंगलों और गाँवों को तेजी से नष्ट करते जा रहे असंतुलित विकास ने लोगों को विस्थापित कर दिया है। दूसरी ओर लगातार फैलते विश्वबाजार की संवेदनहीनता, बर्बरता ने संवेदनशील व्यक्ति और कवि को भी अकेला कर दिया है। इसी अकेलेपन के शहरी माहौल से हताश होकर कवि पुनः अपने लोगों के बीच घर-परिवार की ओर लौटता है। कवि जितेंद्र श्रीवास्तव को आज के इस निराश और ऐसे बेरूखे समय में पिता की स्मृतियाँ याद आती है। उनकी स्मृतियाँ उनक लिए ठंडी छाँव सी लगती है -

''अब बाबूजी की बातें हैं, बाबूजी नहीं,
डनका समय बीत गया,
पर बीत कर भी नहीं बीतें वे
जब भी चोटिल होता हूँ, थकने लगता हूँ,
जाने कहाँ से पहुँचती है खबर उन तक
झटपट आ जाते हैं सिरहाने मेरे।''3

21 वीं सदी में हिंदी कविता के माध्यम से स्त्री से जुडे मानवी मूल्यों की बात सशक्त रूप में उभरकर आ रही है। स्त्री ने अपनी अस्मिता को पहचाना है और वह अब उसकी हिफाजत भी करना जान चुकी है। इस युग की कवयित्री आकांक्षा यादव नई सदी की स्त्री की आवाज को मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करते हुए कहती है -

''जवानी की दहलीज पर
कदम रख चुकी बेटी को
माँ ने सिखाये उसके कर्तव्य
ठीक वैसे ही, जैसे सिखाया था उसकी माँ ने
पर उन्हें क्या पता, ये इक्कीसवीं सदी की बेटी है
जो कर्तव्यों की गढरी ढोते-ढोते
अपने आँसूओं को चुपचाप पीना नहीं जानती है,
वह उतनी ही सचेत है
अपने अधिकारों को लेकर
जानती है स्वयं अपनी राह बनाना
और इस पर चलने के मानदंड निर्धारित करना।''4

21 वीं सदी के वैश्वीकरण के इस युग में निजीकरण और उदारीकरण को बढावा दिया जा रहा है, जिससे मानवी मूल्य खतरे में पडते दिखाई दे रहे हैं। विश्व के उदारीकरण और बाजारवाद के माध्यम से आर्थिक विकास के प्रयास किए जा रहे हैं। इसी के परिणामस्वरूप मानवी मूल्यों में विघटन एवं परिवर्तन के कारण परिस्थितियाँ विषम बनती जा रही है। अधिकारों की आड में मानवी मूल्यों का उपहास हो रहा है। विश्व में अर्थप्रधान संस्कृति के दबाव में मानव मशिन-सा बन गया है, जिसके कारण संवेदना, सहयोग और सद्भावना कमजोर पड रही है।

21 वीं सदी के अनेक कवि हैं जिन्होंने अपनी कविता के माध्यम से मानवी मूल्यों की रक्षा की है। यह कवि मानवी मूल्यों की पुनर्स्थापना करते हुए एकता का संकेत इन शब्दों में देते हैं-

''ऐसे कब तक चलते रहेंगे?
धुआँ फेंकते हुए
अलग कब तक जलते रहेंगे?
आओ अपनी-अपनी आँच को जोडकर
एक बडी-सी मशाल जला लें।''5

दरअसल अलग-अलग जलना टूटने का संकेत है तो मशाल की कल्पना एकता की ओर संकेत करती है, जो मानव को जीवन बोध कराते हुए उसको नई दिशा देती है।

इस युग का कवि तेजी से सांप्रदायिक होती जा रही राजनीति को बेबाक रूप में चित्रित कर रहा है। कवि सुशांत सुप्रिय की कविता सांप्रदायिक दंगों में खत्म हो रहे मानवी मूल्यों की बात बडे मार्मिकता के साथ करते हैं। सन् 1992 का बाबरी मस्जिद विध्वंस हो या 2002 का गुजरात दंगा हो, यह सारे दंगे कवि को उव्देलित करते हैं क्योंकि इसमें आम आदमी की मौत होती है। इन दंगों को मानवता के नाम पर कलंक बताते हुए 'पागल' कविता का पागल पूछता है- ''बताओ तुम कौन हो/हिंदू हो या मुसलमान हो/वह सबसे पूछता है/उसका बाप/बाबरी मस्जिद के/विध्वंस के बाद/दिसंबर, 1992 में हुए/दंगों में/मारा गया था/उसका बेटा/2002 में गुजरात में हुए/ दंगों में/ मारा गया था/ जिन्होंने उसके बाप को मारा/ वे हँसते हुए उसे/ पागल कहते हैं/ जिन्होंने उसके बेटे को/दंगाईयों से नहीं बचाया/ वे हँसते हुए उसे/ पागल कहते हैं।''6

इस जमाने की नई सभ्यता में संवेदनशील व्यक्ति का जीवन कठिन होता जा रहा है। आरामदेह जिंदगी की तडक-भडक एवं शान-शौकत में वह चैन नहीं पाता। वह तडपता रह जाता है क्योंकि उसे-

''जो उभरी नहीं
वह चीख सुनाई देती
जो नहीं किसी की आँखों में

वह दृश्य दिखता दूर से
फूलों के समारोह में
न जाने किस हवा के साथ पहुँच जाती उस तक
कहीं कुछ जलने कुछ सडने की गंध
और जो बात परदे के पीछे ही अभी
बेध जाती आरपार।''7

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहना सही होगा कि 21 वीं सदी के अनेक कवि हैं जिन्होंने अपनी कविता के माध्यम से मानवी मूल्यों की रक्षा की है। यह कवि मानवी मूल्यों की पुनर्स्थापना करते हुए एकता का संकेत देते हैं। 21 वीं सदी के वैश्वीकरण के इस युग में निजीकरण और उदारीकरण को बढावा दिया जा रहा है, जिससे मानवी मूल्य खतरे में पडते दिखाई दे रहे हैं। इस युग का कवि तेजी से सांप्रदायिक होती जा रही राजनीति को बेबाक रूप में चित्रित कर रहा है। मानवी मूल्य मनुष्य के आत्मतत्त्व हैं। मानव मूल्यों से विश्व में मानव सत्ता का आपसी सामंजस्य रहता है। साहित्य समाज तथा युगीन परिस्थितियों का प्रतिबिंब होता है। इसी दृष्टि से 21 वीं सदी का कवि और उसकी कविता समता और समभाव के मापदंडों पर आधारित हैं। उसमें औदार्य, राष्ट्रीयता, त्याग, करूणा, दया, प्रेम आदि मानवी मूल्यों की चेतना है।

संदर्भ संकेत:

1. पंकज पराशर - आलोचना, अंक 52, जनवरी-मार्च, 2014, पृष्ठ-88
2. विभू राय - पखेरू डॉट कॉम/हिंदी कविता, 19 सितंबर, 2017
3. जितेंद्र श्रीवास्तव- कायांतरण, प्रथम संस्करण, 2012, पृष्ठ 53
4. आकांक्षा यादव-युवा बेटी, कादम्बिनी पत्रिका, दिसंबर, 2005, पृष्ठ 21
5. रामदरश मिश्र- मिश्र रचनावली, खंड एक, पृष्ठ 34
6. सुशांत सुप्रिय-इस रूट की सभी लाईने व्यस्त हैं, अंतिका प्रकाशन,गाजियाबाद, प्र. सं. 2016, पृ. 32
7. प्रेमरंजन अनिमेष- समकालीन भारतीय साहित्य, अंक 146, नवंबर-दिसंबर, 2009, पृष्ठ 29

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

'दूसरा घर' उपन्यास में महानगरीय जीवन

प्रा. डॉ. बेबी राघू कोलते
अध्यक्ष, हिंदी विभाग, शरदचंद्रजी पवार महाविद्यालय, जेजुरी, तहसिल पुरंधर जिला पुणे
E-mail- ashwinishivaji4@gmail.com

'दूसरा घर' रामदरश मिश्र का महाकाव्यात्मक उपन्यास है| भारतीय जीवन में स्थित गरीबी और औद्योगीकरण के पक्ष को प्रस्तुत उपन्यास में उजागर किया है| उद्योग नगरी अहमदाबाद में रहनेवाले उत्तर भारतीयों के जीवन को लेखक ने विविध कोनों से देखा है| उपन्यास में दो घरों के बीच फँसे हुए अनन्त लोगों की अनन्त कथाएँ दिखाई देती है| औद्योगीकरण ने समाज के हर पहलू को प्रभावित किया है| आशारानी होरा लिखती हैं- "सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्र औद्योगिक प्रगति से प्रभावित हुए| पुराने अर्थ-नैतिक समाज-नैतिक मूल्य टूटने लगे| मान्यताएँ बदलने लगी|"[1] अत: स्पष्ट है औद्योगीकरण के कारण नगरीय जीवन प्रभावित हो रहा है| औद्योगीकरण ने रोजगार के अनेक अवसर प्रदान किए हैं| लेकिन समस्याएँ भी उतनी ही निर्माण हुई है| प्रस्तुत शोधालेख में पारिवारिक जीवन, ध्वनि प्रदूषण, दुर्गन्धी का प्रादुर्भाव, झुग्गी-झोपडी, स्वास्थ्य, दोहरा शोषण और क्लब संस्कृति आदि बिंदुओं को उजागर करने का प्रयास किया है|

आज महानगरों में औद्योगीकरण के कारण छोटे-मोटे रोजगार उपलब्ध हो रहे हैं| बाहर के प्रदेशों से लोग आकर शहरों में बस जाते हैं| लेकिन शहरों में उनको विविध समस्याओं का सामना करना पड़ता है| सबसे प्रथम और महत्वपूर्ण आवश्यकता होती है आवास की| महानगरों में बड़ी तथा ऊँची आकाश को छूनेवाली बहुमंजिला इमारते सभी ओर दिखायी देती है| तो दूसरी ओर गरीबी की निशानी, गंदे पानी की नालियों के किनारे बसी झुग्गी-झोपड़ियाँ नजर आती है| इन झुग्गी-झोपड़ियों में गरीब लोगों को अत्यंत भयानक नारकीय जीवन जीना पड़ता है| ग्रामीण लोग रोजी रोटी की तलाश में शहरों में आकर बसे हैं| जिसके कारण महानगरों की आबादी तेजी से बढ़ती जा रही है| जिसके परिणामस्वरूप आवास की समस्याएँ दिन-ब-दिन उग्र होती जा रही है| कई लोग फुटपाथ पर तो कई किराये पर रहते हैं| कमलेश भी ऐसे ही लोगों में से एक है| रहमान और कमलेश तंग गली में से जा रहे थे उनके आगे एक नाली बह रही थी, जिसके किनारे यहाँ-वहाँ बच्चे टट्टी कर रहे थे और जिसमें मल-मूत्र के साथ प्याज के छिलके आदी बजबजा रहे थे| बदबू का भभका उठ रहा था| एक कमरे के भीतर घुसते हुए रहमान कहता है- "यही रहते हैं हम...कमरा भी क्या था सात-आठ फीट लम्बा और इतना ही चौड़ा एक कमरा| इसी में खाना बनाना, इसी में सोना, इसी में नहाना इसी में पढ़ना लिखना, इसी में मेहमानों की खातिरदारी करना इसी नरक में रहते है हम लोग|"[2] महानगरों की बढ़ती आबादी के कारण आवासों का अभाव तथा अर्थाभाव के कारण झोपडपट्टियाँ निर्माण होती है| इन झुग्गी-झोपड़ियों में रहनेवाले लोग निम्नवर्ग के होते हैं| जिसमें से अधिकतर मजदूरी कर अपनी जीविका चलाते हैं|

मिश्र जी ने के 'दूसरा घर' उपन्यास में अभावग्रस्त समाज की विवशता स्पष्ट रूप से दिखायी देती है| गोरख पहलवान ने चाली के अहाते में पचासों झोपडियाँ डलवा दी है, उनका किराया खुद लेते हैं| लेकिन सुविधाएँ नहीं देते| झोपडियों के बस जाने के कारण पानी और संडास की मुसीबत और बढ़ जाती है| विनोद कहता है- "आप लोग जानते है कि इस चाली में पशुओं की तरह हमें ठूँस दिया जाता है| सैकडों घरों के बीच थोड़े-से नल है और थोडे से संडास हैं| इसके अलावा गोरख पहलवान ने अपनी कमाई के लिए चाली के अहाते में दसियों झोपड़ियाँ डाल रखी हैं| लोग पैसे देते हैं और बदले में कोई सुविधा नहीं पाते| थोडी-सी सुविधाएँ, भोगनेवाले लोग अनेक|"[3] महानगरों की बढ़ती आबादी के कारण आवासों का अभाव जिसके कारण कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है| अत: स्पष्ट है कि झुग्गी झोपड़ी ने महानगरों में विकराल रूप धारण किया है|

महानगरों में दिन-ब-दिन लोगों का स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है| महानगरों की बढ़ती गंदगी, गंदे नालों की बदबू, झोपड़ियों के आसपास भिनभिनाती मक्खियाँ, नदी-नालों में फेका हुआ कुडा, कारखानों की चिमनियों से निकलता हुआ धुआँ, रसायन इन सबका लोगों के स्वास्थ्य पर परिणाम होता है| प्रस्तुत उपन्यास में महमूद चाचा कहते हैं- "यह पेडों की कतार देख रहे हैं न! उसके पार एक बहुत बड़ा गड्ढा है, उसमें शहर के मरे जानवर फेके जाते हैं| चील, कौए, गिध्द, कुत्ते शव को नोंच-नोंचकर खाते रहते हैं और आपस में लड़ते हैं| अब म्युनिसिपैलिटी ने कूडे-कचरे सा इस गड्ढे को पाटना शुरू किया है| उस कूडे-कचरे की अपनी गंध होती है| कुल मिलाकर एक महादुर्गन्ध की रचना हो रही है|"[4] इससे स्पष्ट होता है कि महानगरों में कुडा-कबडा, रसायन या अन्य कारणों से दुर्गन्धी फैल जाती है और लोगों के स्वास्थ्य पर दुष्परिणाम होता है| कमलेश अपने मामा के घर चालियों में रहता है| एक दिन वह शंकर को मामा के घर ले जाता है| मिश्र जी लिखते हैं, "चाली क्या थी, दुर्गन्ध शाला थी| चालियों के सामने एक गन्दी चौडी नाली बह रही थी, जिस पर जगह-जगह बैठे हुए बच्चे फारिग हो रहे थे| नाली के बजबजाते पानी में मैल तर रहा था| एक भयानक दुर्गन्ध उठ रही थी| पब्लिक पाखानों की दिवारों पर चिथडे टँगे हुए हैं| कुछ सुख रहे हैं, कुछ पाखानों में आड करने के काम आते हैं| मक्खियाँ भिनभिना रही है|"[5] गरीबी के कारण लोग गंदे वातावरण में रहने के लिए विवश है| लेकिन दुर्गन्धी के प्रादुर्भाव के कारण लोगों का स्वास्थ्य बिगडता है|

वर्तमान में हम देख रहे हैं, महानगरों में ध्वनि प्रदूषण बहुत ही बढ़ रहा है| बढ़ती आबादी का शोर-शराबा, गाडियों के हॉर्न की आवाज, विविध समारोह आदि ने ध्वनि प्रदूषण को और बढ़ावा दिया है| दिन-ब-दिन यह समस्या विकराल रूप धारण कर रही है| प्रस्तुत उपन्यास में कमलेश गाँव रहनेवाला युवक काम की तलाश में अहमदाबाद शहर में आता है| रहने की कहीं भी सुविधा न होने के कारण अपने मामा के घर रहता है| जिस चाली में मामा का मकान है वहाँ लगातार शोर-शराबा चलता है| कमलेश को शोर की आदत नहीं है| उसे रातभर नींद नहीं आती| मिश्र जी लिखते हैं- "पास की सड़क से बसे जा रही हैं, ट्रक जा रहे हैं, मिलों से शोर उठ रहा है| लगता है पास ही कहीं भजन-कीर्तन हो रहा है| लाउडस्पीकर पर गाने गाए जा रहे हैं| फिल्मी तर्ज पर धार्मिक गाने| उसे नींद नहीं आ रही| वह इतने शोर में सोने का आदी नहीं हो रहा है| यह तो एक विचित्र दुनिया है, शोर की दुनिया|

शोर में सब कुछ डूबा हुआ है|"[6] महानगरों में विविध साधनों की आवाजों के कारण ध्वनि प्रदूषण इतना बढ गया है कि दिनभर काम करना मुश्किल होता है और रात को सोना|

नगरों-महानगरों में निम्नवर्ग दो पाटों के बीच पिसता हुआ नजर आता है| आज भी गरीबों का शोषण हो रहा है| भले ही शोषण के मार्ग भिन्न-भिन्न क्यों न हो| बडी-बडी मिलों के मालिक मजदूरों का शोषण कर रहे हैं| मजदूरों का सालभर काम करने पर फण्ड कटेगा इसलिए कंपनि मालिक कुछ दिनों के लिए मजदूरों की नौकरी तोड देते हैं| मिश्र जी लिखते हैं- "कोई मजदूर छुट्टी पर जाता तो हम लोग बदली पर काम करने के लिए दौड-धूप करते, लेकिन वह भी नहीं मिलता| दरअसल प्रतिनिधि लोग बदली पास देते है और उसके लिए चार-पाँच सौ रूपये लेते हैं|"[7] यहाँ स्पष्ट होता है कि मजदूरों का दोहरा शोषण किया जाता है| एक ओर कंपनी मालिक तो दूसरी ओर प्रतिनिधि| मिश्रजी लिखते हैं- "कुछ दिनों के लिए नौकरी तोड देते हैं| फिर लगाते है----ऐसा इसलिए कि साल-भर काम करने पर फण्ड कटेगा| साल-भर होने नहीं पाएगा तो फण्ड कहाँ से कटेगा?---काफी लोग तो जिन्दगी भर इसी तरह नौकरी करने पर मजबूर किए जाते हैं और जब रिटायर होते हैं तो उसके पास कुछ नहीं होता| खाली हाथ लौट जाते हैं|"[8] लेखक ने इस ओर संकेत किया है कि जिन्दगी भर नौकरी करने से हाथ कुछ नहीं लगता| चारों ओर से मात्र शोषण ही शोषण होता है| आज भी हम देखते है कंपनियों के मालिक मजदूरों की नौकरी बीच में ही तोड देते हैं और मजदूरों का फण्ड करवाया नहीं जाता| यहाँ लेखक ने कम्पनी मालियों की शोषण करने की प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है|

मिश्रजी ने प्रस्तुत उपन्यास में एक ओर जीवनयापन करने के लिए गरीबों की जी तोड मेहनत तो दूसरी ओर अमीरों की क्लब संस्कृति को भी दर्शाया है| महानगरों में क्लब संस्कृति की चकाचौंध सबको अपनी ओर आकर्षित करती है| उच्च भ्रूलोग क्लब में जाते हैं लेकिन समय पर घर आने का रास्ता भूल जाते हैं| प्रस्तुत उपन्यास में मिस्टर गोयल प्रभावशाली आदमी है| उनकी मोहक मुसकान और मीठी भाषा वे दुनिया के लिए अच्छे इन्सान है| लेकिन अपने परिवारवालों को क्षण-क्षण चुभते हैं और लहूलुहान करते हैं| शंकर कमलेश से कहता है- "इसके घर जाकर देखो- इसके बच्चे रबर की चप्पलें पहनते हैं, बिना इस्त्री किए हुए कपडे पहनकर स्कूल जाते हैं, इसकी पत्नी हमेशा डरी और सहमी रहती है और एक-एक पैसे के लिए पति की मुखापेक्षी बनी रहती है| ये हजरत ऑफिस से निकलकर क्लब में जाते हैं, अपनी प्रेमिकाओं के साथ रंगरेलियाँ मनाते हैं, पीते हैं, धुत होकर काफी रात गए लौटते हैं| मजाल है कि घर में कोई उन्हें टोक दे|"[9] इस कथन से स्पष्ट होता है कि क्लब संस्कृति के कारण मनुष्य घर में कम और क्लब में अधिक समय व्यतित करता है| पत्नी चाहते हुए भी उसे कुछ नहीं कह सकती| क्योंकि उसे घर से निकाल देने का डर रहता है| अत: स्पष्ट है कि क्लब संस्कृति के कारण परिवार में ना खुशी मिलती है ना आनंद| क्लब संस्कृति के कारण अच्छे-खासे परिवार बिखर जाते हैं| ऐसे लोगों को अपनी जिम्मेदारियों का एहसास नहीं होता|

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महानगरों की बहु मंजिला आकाश को छूनेवाली इमारतों के बीच आम आदमी दबोच रहा है| यंत्रों के धुएं तथा कारखानों द्वारा छोडा गया दुषित पानी, फैली हुई दुर्गन्धी, स्वास्थ्य पर होते परिणाम झोपडपट्टीयों का नारकीय जीवन और गरीबों का दोहरा शोषण यह सब महानगरीय जीवन की देन है| अत: गरीब आदमी अभावों की जिंदगी जीने के लिए विवश है|

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. हिंदी उपन्यासों में महानगरीय अवबोध, डॉ. अशोक बाचुळकर, पृ.17
2. दूसरा घर, डॉ. रामदरश मिश्र, पृ.179
3. वही, पृ.23
4. वही, पृ.181
5. वही, पृ.41
6. वही, पृ.44
7. वही, पृ.176
8. वही, पृ.176

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr -2022

मृदुला गर्ग के कथा साहित्य मे स्त्री विमर्श

डॉ. भागवत भगवान देवकाते
सहा. प्राध्यापक, हिंदी विभाग, श्री सद्गुरू गंगागीर महाराज सायन्स, गौतम आर्ट आणि संजीवनी कॉमर्स कॉलेज कोपरगाव, जि. अहमदनगर
मो. 9579592241, इमेल – sonydeokate723@gmail.com

प्रस्तावना:

सृष्टि के आरंभ से ही सृष्टि के निर्माण और उसके संचलन में नारी की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। मानव का विकास नारी को ही माना जाता है। स्त्री और पुरुष दोनों के समन्वय से ही सृष्टि की रचना पूरी होती है। नारी के बिना मानव जाति की गृह-संस्था अधूरी है। नारी की हमारी संस्कृति, धर्म एवं सभ्यता निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सृष्टि के कार्य में नारी को बहुत प्राधान्य है। इसे वैदिक दर्शनों में भी महत्वपूर्ण रूप में माना जाता है, जैसे कि "वैदिक दर्शनों में जीवन सृष्टि की दो धाराएँ बतलाई स्त्रीधारा और पुरुषधारा य़ह धारा है। दोनों एक दूसरे की पूरक मानी गई है"।[1] इससे यह ज्ञात होता है की नारी पुरुष की प्रतिद्वंद्वी बनी नहीं है, वह उसकी पूरक है। इसलिए नारी के बिना पुरुषों का जीवन अधूरा है। मगर समय के साथ-साथ उसकी स्थिति नाजूक होती जा रही है। नारी शब्द में बड़ी व्यापकता है, इसका कोशगत अर्थ देखे तो इसकी व्यापकता नजर आती है।" मानक हिंदी कोश के अनुसार "विशेषत: वह स्त्री जिसमें लज्जा, सेवा, श्रद्धा, त्याग आदि गुणों की प्रधानता हो वहीं नारी है।"[2]

पुरुष प्रधान व्यवस्था में नारी को सदा भोगवस्तु के रूप में माना जाता है। नारी पुरुष की तुलना में अधिक मानवीय एवं संवेदनशील है, फिर भी मानव के संस्कृति के निर्माण और विकास में उसको अधिक महत्व नहीं मिला है। नारी समाज में विलासिता का केंद्र बिंदू बन गई है। उसकी स्थिति पंगु होती गई। आज के युग में नारी के तन के साथ-साथ मन भी बदला है। वह आज विज्ञापनों की आधारशिला है तो दूसरी ओर अंतरिक्ष यात्री है। मगर कुछ जगह नारी पशुओं से निम्न स्तर कोटि का जीवन जी रही है। कुछ जगह पुरुष नारी के चरणों में सर्वस्व लुटा रहा है तो दूसरी तरफ उसका शोषण, दोहन भी कर रहा है। इस कारण उसे पग-पग पर टकराना पड़ता है। इस कारण उसे विविध समस्याओं से गुजरना पढ़ रहा है। भारतीय नारी बनकर जीना अब उसे असंभव सा लग रहा है। आज नारी में अंर्तद्वांव, संघर्ष और कुंठा अधिक मात्रा दिखाई दे रहा है। इस बात को मध्य नजर रखते हुए, मृदुला गर्गजी ने अपने हिंदी भाषा के कहानी साहित्य में नारी विमर्श को रेखांकित किया है। इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से नारी की विविध समस्याओं का चित्रण किया है। उसे कुंठा ग्रस्त अवस्था से बाहर लाने की कोशिश की है। मृदुला गर्ग की कहानियों का स्वर व्यक्ति के वैयक्तिक मान्यताओं, विचारधाराओं, परंपराओं और सामाजिक रीति-रिवाजों आदि के परिवर्तन के साथ-साथ नारी संघर्ष, वेदना, संत्रास, घुटन आदि बाबियो का विवेचन किया है। इनकी कहानी नारी को आपनी वेदनामई कहानी जैसी लगती है। इसमें नारी की संवेदना का मूलाधार होता है। मृदुला गर्गजी कहानी के नारी पात्र माँ, बेटी, पत्नी, प्रेम आदि बंधनों में रहकर भी खुद की एक पहचान चाहती है। वह स्वयं को स्वतंत्र रूप से अपने व्यक्तित्व को बनाना चाहती है। नारी का यह रूप पूर्ण स्वतंत्रता की मांग करता है। मृदुलाजी के कहानियों के पात्र में यही महत्वपूर्ण कामना देखने को मिलती है। इस कारण सारा नारी संघर्ष इस पर चल रहा है। गर्गजी की 'मेरी देश की मिट्टी अहा' इस कहानी की नायिका लल्ली से लैला बनना और फिर गांव में उसी प्रकार बेलगाम होना। इसमें नायिका को समाज की अयोग्य नीतियों के खिलाफ विद्रोह ही बनाया जाता है। खेरी, चौकीदार, एमएलए, लैला आदि पात्रों के माध्यम से समाज में स्थित अयोग्यता और अनैतिकता पर टिप्पणी की है। गांव में जन्मे लल्ली गुड़गांव आती है। वहाँ शिक्षा लेती है, वह 12 वीं पास कर लेती है। तब उसके ताऊ के बेटी का देहांत होता है। तब उसका विवाह 45 साल के अपने जीजा से किया जाता है। वह उससे डरती है, यह हट्टा कट्टा पुलिसिया मर्दों और महिलाओ से कैसा व्यवहार करेगा यह बात सोचती रहती है। वह पुलिस वाले की बेदर्दी और खौफनाक बातों को सुनकर डर जाती है। वह घबरा जाती है और सोच-सोच कर वह बेहोश हो जाती है, जैसे कि "औरत या मर्द मैं किसी को भी नहीं बख्शता, वह छाती पर लाकर कहता और ब्युओरेवार पिटाई का बखान करता है, पुन: दोहराने की जरूरत नहीं है। आज कौन है, जो टी वी नहीं देखता और उन बारीकियों से वाकिफ नहीं है। पर लल्ली नहीं थी, टी वी देखने की उसे कभी फुर्सत नहीं मिलती थी। अब जीजावर के रसिक बखान में उसका सबसे प्यारा जुमला बार-बार सुनकर उसका बदन थरथर कांपने लगा, मतली उठ आती और गश खाकर गिर पड़ती।"[3] इससे यह प्रतीत होता है की नारी के मन का विचार नहीं किया जाता है। उसकी भावनाओं को बड़ी रहीमी से ठुकराया जाता है। इस कारण नारी समाज और परिवार के हर एक घटक से डरी रहती है।

नारी अपने प्रेम और संवेदना के कारण पति से बंधी रहने के लिए मजबूर रहती है। 'तुक' इस कहानी की नायिका मीरा है। वह अपने पति से बहुत दिलो जान से प्रेम करती है वह उसके प्रेम के लिए हर दिन नए-नए तरीकों का इस्तेमाल करती है वह अपने पति के खातिर पत्ते का खेल सीखती है, वहां क्लब में ब्रिज खेलती है। वह अपने पति के खातिर गाड़ी चलाना भी सकती है, मगर उसके इस के इस प्रेम का कोई फर्क उसके पति पर नहीं पड़ता है। नरेश को उसके देह और प्रेम से मतलब नहीं था। उसे खेल खेलने के लिए एक साथी की जरूरत थी, वह मीरा के मन का विचार नहीं करता है। इस कहानी की नायिका मीरा बहुत कुछ सहन करती रहती है। इसके बावजूद वह निराश होकर कहती है कि "मैं उस बेवकूफ औरतों में से एक हूँ। जो अपने पति को प्यार करती है या यह कहना चाहिए की मैं ही एक वह बेवकूफ औरत हूँ। जो अपने पति को प्यार करती हूँ।"[4] इस प्रकार नारी का इस्तेमाल किया जाता है। उसके मन का विचार नहीं किया जाता। उसके त्याग को सहजता से ठुकराया जाता है। इस कारण नारी अंदर ही अंदर टूटती रहती है। वह पुरुषों की अयोग्य वृत्तियों से डरती है। उसका पुरुष पर का विश्वास उड़ जाता है। आज के इस सदियों में भी इस प्रकार के उदाहरणो को समाज में देखा जाता है। लेखिका भारतीय समाज में नए उभरते नारी के इस रूप पर व्यंग करती है। आज के युग में नारी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करती है। वह हर क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी कर चुकी है। फिर भी उसे पति के अनुशासन में रहना पड़ता है। उसे समाज के साथ साथ परिवार के बंधन में उसे रहना पड़ता है। आज बदलते सामाजिक परिवेश में दांपत्य संबंधों को कडवा करने वाला कोई है तो वह है पति-पत्नी की आर्थिक विषमता। इसके कारण नारी को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इस कारण उसकी उसके परिवार में घुटन की स्थिति निर्माण होती है वह अवसर मिलने पर अपनी

नितांत व्यक्तित्व की जिंदगी बिताने का प्रयास करती है। इसका उदाहरण मृदुलाजी के "हरी बिंदी" नामक कहानी में मिलता है। इस कहानी की नायिका विवाहित जीवन से रूठ जाती है उसका पारिवारिक जीवन और उस पर की आशा उड़ जाती है। उसका परिवार इस संकल्पना पर का विश्वास टूट जाता है और वह नायिका कहती है कि "मैं कोई अनूप और मोहक वस्तु होगी, मैं भी खूब हूं, उसने मुस्कारकर सोचा, मुझे धुंध में खुलापन लगता है और सूर्य के प्रकाश में घुटन, नीले रंग का कुर्ता और चूड़ीदार पाजामा पहना तो नीले रंग की बिंदी माथे पर लगाने को हाथ बढ़ा गया। फिर न जाने क्या सोच कर उसे छोड़ दिया और बड़ी सी हरी बिंदी लगा ली।"[5] इससे यह प्रतीत होता है की नारी समाज में रहनेवाले अन्याय, अत्याचार अनैतिक बंधनों से मुक्त होना चाहती है। इन बंधनों में उसकी सांस घुट रही है। इस प्रकार इस कहानी में मृदुलाजी ने नारी की घुटन और संत्रास को व्यक्त किया है।

भारतीय नारी विदेशों में भी धोखा खाकर घूमती है। इस बात का चित्रण भी मृदुला गर्गजी ने अपनी 'बड़ा सेब काला सेब' कहानी में किया है। दुनिया में जहां भी देखो वहां नारी को धोखेबाज, लुटेरे, डाकू, बुरी नजर वाली से बचना पड़ता है। इसका कारण नारी का दिल भय के कारण धड़कता रहता है। वह समाज में रहने के लिए डरती है। वह विदेशी समाज में स्थित सभ्यता से भटकती रहती है जैसे कि" उतरो ! नहीं तो मरो, वह टाल में जा घुसा। तीनो कॉफी पी रहे थे और हँस हँसकर मेरी तरफ ताक रहे थे, सुना द ब्लैक बिच (काली कुतिया) कहा, किधर कौन कोई नहीं था... वहां बस मैं तो क्या मैं? उसका इशारा मेरी तरफ था? तीनों अश्लील इशारे करके हँस रहे थे। अब? हे करुणानिधान कर्णधार ....पुलिसवाला? टैक्सी का नंबर नोट किया था, उसने हां किया था।"[6]

इससे यह प्रतीत होता है की दुनिया में झूठी सभ्यता दिखाई जाती है। नारी के प्रति सभ्यता का झूठा नकाब पहनकर समाज में घूमने वाले भेड़िया के वृत्ति के लोग बहुत दिखाई देते हैं। इन लोगों के कारण नारी को समाज में घूमना फिरना, संचार करना डरावना लगता है। अयोग्य बर्ताव के जरीये कुछ पुरुष नारी को सर्वांगीण विकास से दूर रखना चाहते हैं। हम सब ने यह कोशिश करनी चाहिए कि नारी को कमजोर ना समझे उसे शक्ति प्रदान करें। उसकी इज्जत करें। कोई उसपर अन्याय अत्याचार करता है तो उसके खिलाफ सब मिलकर आवाज उठाएं। आज भी नारी सुधार के लिए समाज के विविध घटकों ने आगे आकर उसे सहायता करना जरूरी है। उसे स्वयं का विकास करने की हेतु प्रेरित करना जरूरी है। आज नारी की हालत में जो सुधार आया है। वह सिर्फ विचार विमर्श एवं बातचीत के कारण संभव हो पाया है। नारी को अन्याय के खिलाफ लड़ने के हेतु ताकद देना उसके पीछे खड़ा रहना जरूरी है। इस प्रकार का आव्हान मृदुला गर्गजी ने अपनी कहानियों के माध्यम से किया है।

निष्कर्ष:

नारी यह आदिकाल से शोषित पीड़ित है। पुरुष प्रधान संस्कृति में पुरुषों के आड़ से उसे सदा दबा कर रखा जाता है। वह दैनंदिन जीवन यापन करते वक्त संघर्ष करती रहती है। वह समाज में डरकर रहती हैं। उसे सर्वांगीण विकास के लिए प्रेरित करना उसे सहायता करना जरूरी है इसका विचार मृदुला गर्गजी ने आपनी कहानियों के माध्यम से किया है।

संदर्भ ग्रंथ:

1. डॉ. शीला रजवार 'स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ' आरती प्रकाशन औरंगाबाद, पृ. 14।
2. रामचंद्र वर्मा 'मानक हिंदी कोश' (तृतीय खंड) हिंदी साहित्य संमेलन प्रयाग, पृ.250।
3. संपा. डॉ. बलदेव वंशी ' मृदुला गर्ग :चुनी हुई कहानिया' अमन प्रकाशन कानपुर, पृ.151।
4. वहीं, पृ. 73।
5. वही, पृ.11 ,12।
6. वही, पृ 135।

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

'मढ़ी का दीवा' उपन्यास में नारी सम्मान की अभिव्यंजना

श्री अक्षय राजेंद्र भोसले
अभ्यागत अध्यापक, हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

सारांश:

'मढ़ी का दीवा' गुरदयाल सिंहकृत चर्चित औपन्यासिक कृति है। जिसकी पृष्ठभूमि है पंजाब के एक देहात का अज्ञात गाँव। 'मढ़ी का दीवा' इस उपन्यास में दो परिवारों के पीढ़ियों के सामाजिक सम्बन्धों में हुए बदलाव का यथार्थ चित्रण किया गया है। 'मढ़ी का दीवा' इस पंजाबी उपन्यास में किसान के जीवन की त्रासदी का सफल चित्रांकन है जिसकी नींव यथार्थ जीवन है। इस उपन्यास में गुरदयाल जी ने 'भारतीय किसान की सामाजिक त्रासदी चित्रित करते हुए 'भानी' जैसी स्त्रीपात्र और 'जगसीर' जैसे पुरुष पात्र की 'प्रेम' को समता के रूप में अभिव्यंजित करने का सफल प्रयास किया है। पंजाबी लोक संस्कृति को पाठकों के सामने 'चित्र' के रूप में प्रस्तुत करते हैं। साथ ही 'जगसीर' और 'भानी' के उदात्त प्रेम की गहरी छाप पाठकों के मन में उभरती है। इन दो केंद्रीय पात्रों के द्वारा गुरदयाल ने 'मढ़ी का दीवा' इस उपन्यास में 'समता की अभिव्यंजना' को प्रस्तुत करते हुए स्त्री-विमर्श पर मार्मिक प्रसंग एवं विचारों को प्रस्तुत किया है।

मूलशब्द: मढ़ी, दीवा, बेहड़े, साहंसियों की बेटी, अदना, आल्हमलकीयत, टाहली, करमगति, बुद्धू, घुग्घू, भौन्दु, उल्लू, रूड़ी निगोड़े, मरदाऊपन, लगतियों, कमज़ात, धुरने, नियाम, मेखाली आदि।

भूमिका:

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेते सुविख्यात पंजाबी उपन्यासकार गुरदयाल सिंह जी का जन्म 10 जनवरी, 1933 को पंजाब के जैतों कस्बे में एक साधारण दस्तकार परिवार में हुआ। पारिवारिक व्यवसाय करते हुए उन्होंने स्कूल की शिक्षा पूरी की। पहली नियुक्ति स्कूल के अध्यापक के रूप में 1954 में हुई। 1977 से 1987 तक बरजिन्द्रा कॉलेज फरीदकोट में प्राध्यापक के पद पर कार्य किया और उसके बाद पंजाबी विश्वविद्यालय क्षेत्रीय केंद्र बठिंडा में प्रोफेसर पद पर अध्यापन कार्य भी किया है। उन्होंने विश्व की कई श्रेष्ठ पुस्तकों का पंजाबी अनुवाद भी किया है। अबतक प्रकाशित अपने सभी उपन्यासों को स्वयं हिंदी में लिखें हैं। देश के सर्वोच्च सम्मान ज्ञानपीठ से गुरदयाल सिंह जी सन् 1999 को मिला है। साहित्यकार के तौर कॅनडा, ब्रिटेन तथा पूर्व सेवियत संघ का भ्रमण भी किया है।

समता का अर्थ एवं परिभाषा:

समता शब्द का अर्थ:

समता स्त्री (सं)- सम या समान होने का भाव बराबरी, तुल्यता, (इक्वैलिटी)[1]

समता / समानता:

मानव जन्म से ही समान होते हैं और इसीकारण सभी व्यक्तियों को समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए। कई विद्वान इस बात पर सहमत हुए हैं कि सभी व्यक्ति प्राकृतिक रूप से समान हैं।" सन् 1948 का संयुक्त राष्ट्र का सार्वभौमिक मानव अधिकार का 30 अनुच्छेदोंवाला घोषणापत्र मानव मात्र की स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, सहअस्तित्व, भेदभाव की समाप्ती, उत्पीड़न और निर्दयता का अंत आदि सभी अधिकार को बताता है।"[2]

मानव अधिकारों के रूप में समता को एक महत्त्वपूर्ण अधिकार माना जाता है। 'समता' के माध्यम से ही विश्वबंधुत्वता के विचार को बढ़ावा दिया जाता है। जिससे किसी भी व्यक्ति के मानव अधिकारों का उल्लंघन नहीं होना चाहिए।

समाज में जन्म से प्राप्त मानव अधिकारों को सभी अपना निहित कर्तव्य मानकर उन्हें निभाते है तो समाज में कोई भेद नहीं रहेगा, न ही कोई उंच-निच। भारतीय संस्कृति बताती है नारी पूजनीय है किन्तु वर्तमान समय में उसके अधिकार एवं हक को जितना हो सके उतना दबाने का प्रयास होता है। शहर से ज्यादा देहातों में उसका प्रभाव ज्यादा दिखाई देता है, अत: साहित्यकार उपन्यासकार गुरदयाल सिंह जी अपने साहित्य द्वारा समाज में नारी का स्थान एवं उसकी पीड़ा के साथ अपने गहन चिंतन द्वारा मार्मिक सुलह के साथ नारी-पुरुष समानता पर सृजनरत रहें हैं।

मढ़ी का दीवा उपन्यास में 'समता' की अभिव्यंजना :

'मढ़ी का दीवा' गुरदयाल सिंह जी का बहुचर्चित पहला उपन्यास का प्रथम संस्करण 1998 में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में एक भूमिहीन किसान की दर्दनाक कहानी को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। इस उपन्यास में गुरदयाल जी ने 'स्त्री, पुरुष' पात्र की त्रासदी को समता के रूप में अभिव्यंजित करने का सफल प्रयास किया है। विक्रम जनबंधु के अनुसार "डॉ. गुरदयाल सिंह मानवीय संवेदनाओं के सर्जक" कहते हैं। वर्ष 1965 में उनका पहला उपन्यास 'मढ़ी दा दीवा' अर्थात वह मढ़ी (शव दाहस्थल) जिसका कोई अस्तित्व नहीं होता, न तो वह समाधि होती है और न ही कब्र। मढ़ी अर्थात शव दाह करने का स्थान, जहाँ नाशवान शरीर को अग्नि में भेंटकर पंचतत्त्व में विलीन कर दिया जाता है। उपन्यास के इस शीर्षक से ही लेखक की उन भावनाओं का आभास होता है कि समाज में व्याप्त असमानता, दरिद्रता, रूढ़िवादिता एवं दलित शोषण को उसने कितने नजदीक से महसूस किया है।[3]

'मढ़ी का दीवा' इस उपन्यास के नायक 'जगसीर' के शादी के बारे में उसकी माँ नन्द पड़ोस की बहू से चिंता व्यक्त करती दिखायी देती है। जाहीर है एक माँ को ही अपनी संतान की सबसे ज्यादा फिक्र होती है। जगसीर का जन्म चार बेटियों के बाद लाख मनौतियाँ माँग कर हुआ था। कुल के दीपक हेतु अर्थात कुल बरकरार रहें इस कारण आज भी मनौतियाँ माँगी जाती है। नन्दी ने जगसीर का लालन-पालन बड़े प्यार से तथा मुश्किलों को झेलते हुए किया था। लेकिन जब 'जगसीर' की शादी-ब्याह की बात छेड़ती तो उसका कहीं भी रिश्ता ही तय नहीं हो रहा था। जगसीर का घर बसाने के

लिए नन्दी ने कभी जिसका मुँह भी नहीं देखी थी उसके पाँव भी पकड़े थे। नन्दी अब थककर बूढ़ी हो गयी थी। जगसीर के पिता को मरे पंद्रह वर्ष हो गए थे। जब वह जिंदा था तब भी नन्दी उस धर्मात्मा की मिन्नते करती रही लेकिन वह भी व्यर्थ हो गयी। वह नन्दी की बात मनाने के लिए तैयार नहीं था। जगसीर का पिता नन्दी पर क्रोधित होकर कहता है कि "जब मैंने चारों बेटियाँ पुण्य की ब्याही हैं तो बेटे के खातिर यह क़लक़ माथे क्यों ल गाऊँ?"इस प्रकार मरते दम तक जिद्द उसने नहीं छोड़ी। जगसीर का रिश्ता न होने का कारण नन्दी का मैके भी जाना न हुआ जिससे वह कुछ समय से कलंक ही समझने लगी थी। अत: हमारे समाज में अनेक रीति-एवं-प्रथाओं के कारण नारी को बहुत कुछ सहना पड़ता है। बहुत प्रयास के बाद भी वह उस कलंक को धो नहीं सकी थी। जगसीर को देखने के लिए कोई अतिथी आते तो जगसीर के ननिहाल के बारे में पूछते थे। लेकिन जगसीर के पिता के सामने जगसीर के ननिहाल की बात जीते जी किसीने भी नहीं की। लेकिन लोगों का मुँह भी वह कैसे रोक सकता था। जितने लोग उतनी बातें लोग करते थे। जगसीर के बाप और नन्दी की भी एक साहसी प्रेमकथा है। नन्दी साहंसियों की बेटी थी। उसका कोई गाँव नहीं था। नन्दी के टप्पर वासी माँ-बाप जब अपने अपने कबीले के साथ घूमते इधर आये थे उसी समय जगसीर के बाप से नन्दी को प्रेम हो गया और नन्दी कबीले के सारे रीति-रिवाज, मान-मर्यादाओं को तोड़कर जगसीर के पिता के साथ भाग आयी थी। उस समय नन्दी का साहस और धैर्य देखकर सभी लोग नन्दी से परे रहते थे। साहंसियों का टोला जब नन्दी को ढूँढने आया तो नन्दी शेरनी की तरह उनके सामने संघर्ष करने के लिए घाघरी का लांगड़ कसकर गंडासा कंधे पर लिए वह शेरनी की तरह खड़ी थी। उसको इसी रूप में देखकर नन्दी के पिता ने कबीले के सारे लोगों को आगे जाने से रोक लिया था और उसने दूर से ही नीचे झुककर तिनके को उठाकर उसको तोड़कर फेकते हुए भराई आवाज में कहा था – "यह ले नन्दी, तू आज हमारी ओर से मर गई और हम तेरी ओर से ! जिस गढे में जी आए जा गिर। जीते-जी हम तेरा मुँह देखने को नहीं आएँगे ।[5]" इसी कारण जगसीर का विवाह तय करते समय उसका 'मैका' बड़ी समस्या बन जाता था। इसी की वजह चारों बेटियों का विवाह भी अच्छे रिश्तेदारी में नहीं हो सके थे। जगसीर की शादी में धर्म और नन्दी का मैका यह दो बातें अटल बनी थी। लेकिन इस बात की खुशी नन्दी को थी कि उसका बेटा जगसीर कपूत नहीं है। स्पष्ट है कि यदि कोई स्त्री मान-मर्यादा लांघकर अपने जीवन के निर्णय करती है तो उसे जीवनभर अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ता है।

जब धर्मसिंह के पिता ने मरने से एक दिन पहले एक ओर जगसीर के बापू को और दूसरी ओर धर्मसिंह को बिठाकर कहा था – *"धर्म ! ढोल्ले को मेरा ही रूप समझना । इससे किसी तरह का अन्याय हुआ तो मेरी आत्मा उस लोक में तड़पती रहेगी.... तू नहीं जानता, तेरी सारी जायदाद इसी ढोल्ले ने सीची के सिर रौंदकर बनाई है, नहीं तो कौनथा जो इतना कुछ बना पाता । हम पिछले जन्म के सगे भाई हैं । हमने एक माँ के पेट से जन्म नहीं लिया ' यह तो हमारी भक्ति में कोई विघ्न पड़ा है जो एक जाट के घर पैदा हुआ और दूसरी किसी और के घर... ये हम सगे भाई ही...*[7]

बापूजी की मौत के बाद धर्मसिंह ने अपने पिता को दिए वचन को भलीभाँति निभाया था। उनकी बेटियों की शादी में हर तरह की सहायता की थी और परिवार का सारा जिम्मा अपने ऊपर लिया था। धर्मसिंह जगसीर के बापू को पिता की तरह मानता था। एक दिन जगसीर की बापू की भी मृत्यु हो गयी। उस समय जगसीर के बापू ने धर्मसिंह पर जगसीर का जिम्मा सौपा था। धर्मसिंह जगसीर के बापू को दिए हुए वचन भलीभाँति आजतक निभा रहा था। धर्मसिंह ने जगसीर को भी साँझी के रूप में नहीं देखा था। पिता के न होने के पश्चात् भी उनका कन्यादान होना भी नारी के प्रति की सद्भावना ही है। यहाँ ज्ञात होता है कि खुद के बेटी के ब्याह को कोई बाप ठुकरा सकता है और कोई पराया दूसरों के बेटी के ब्याह की ज़िम्मेदारी खुद उठा सकता है।

जगसीर के पिता की मढ़ी और टाहली के बारे में धर्मसिंह के साथ बंतासिंह और उसकी माँ ने कई बार झगड़ा किया था। एक साँझी की अपने खेत में बनी हुई मढ़ी की कोई बड़ा जमीनदार जाट कैसे सहन कर सकता है। बंतासिंह को लगता है कि यह अशुभ बात है। लेकिन धर्मसिंह न उसकी कोई नहीं सुनी थी। एक दलित की मढ़ी और टाहली कोई बड़ा जमीनदार बाँधने के लिए हरगीज इजाजत नहीं देगा। लेकिन धर्मसिंह ने इस प्रकार की कोई बुरी बात नहीं की थी। साथ ही अपने बेटे और पत्नी को भी इसमें कोई हस्तक्षेप करने नहीं दिया था। अपने अस्तित्त्व हेतु लढने वाली स्त्री का चित्रण यहाँ प्राप्त होता है।

जगसीर स्वभाव का संकोची होने के कारण अपने मित्रों की तरह किसी भी लड़की को या किसी से बुरी बात नहीं करता था। जगसीर की तरफ कोई लड़की देख रही ऐसा महसूस होते ही उसका बुरा हाल हो जाता था। उसका सारा शरीर बलहीन होने लगता और वह आँखें ऊपर भी नहीं कर सकता था। साँझ-सवेरे उसकी बापू की बातें उसके कानों में गूँजती *"जिसेगाँव की इज्जत का ख्याल नहीं उसे अपनी का क्या होगा !"*[7]जगसीर गाँव की लड़कियों के प्रति सम्मान की भावना से पेश आता था। अपने मित्रमंडली की तरह जगसीर शराब पीकर अपने बाप के सामने कभी खड़ा नहीं होता था। वह अपने बाप की मान मर्यादा का ख्याल करके उन्हें सम्मान देता था। वह अपने बापू को कोई बुरी बात लगे इसप्रकार की हरकतें कभी नहीं करता था।

जगसीर, गेबू और घीले यह तीनों अपने मित्र निक्के की बहू को देखने जाते हैं तब जगसीर पहली बार 'भानी' का सौंदर्य देखकर अभिभूत हो गया था। 'भानी' को देखते ही जगसीर का सारा शरीर सुन्न-सा हो गया था। उस समय जगसीर को मालूम हुआ कि "स्त्री में कोई ऐसा आकर्षण भी होता है जिसकी तीव्रता को पुरुष सहन भी नहीं कर पाता, ऐसा केवल वह आज ही अनुभव कर पाया था। यहाँ लेखक ने स्त्री के प्रति पुरुष के आकर्षण के बारे में जगसीर के माध्यम से अपने विचार प्रस्तुत किया है। स्त्री-पुरुष समाज के दो पहिये हैं। उनका समाज में अनन्य साधारण महत्त्व होता है। वह एक-दूसरे के अभिन्न अंग समाज का होने के बावजूद सृष्टि को निरंतर गतिशील बनाने में उनका महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसप्रकार लेखक ने स्त्री-पुरुष की समता की अभिव्यंजना इस बात के माध्यम से लेखक ने यहाँ चित्रित किया है।

जब से जगसीर ने'भानी' को देखा था तब से वह अजीब-सा महसूस कर रहा था। 'भानी' को देखने के लिए जगसीर बहाने बनाकर वह निक्के के घर से बार-बार गुजरता है लेकिन उनके दरवाजे के पास जाते ही उसका सारा शरीर मिट्टी होने लगता। वह आगे कदम बढ़ा पाता न पीछे हट पाता। उसकी अजीब-सी दशा हो गयी थी। उसके दोनों मित्र हँसी मज़ाक करके हीर और रांझे की उपमा उनको देते थे। उसका मज़ाक उड़ाते थे। 'भानी' से मिलने के लिए 'निक्के' का बहाना बनाकर जाता है तो 'भानी' की तीक्ष्ण नजर सह नहीं पाता। वह भौचक्का-सा होकर उसकी ओर देखने लगता है।

जब 'भानी' उसे 'पानी-धनी' पीने की बात कर रही थी, तो वह सारा साहस जुटाकर भी उससे नजरें नहीं मिला पाता। तब 'भानी' हँसकर कहती है कि *"ऐसे ही तो उस दिन वह 'लड़कियों के पीछे पैदा हुआ' नहीं कहते थे।"* [8]और नजरें उठाकर देखने का साहस भी नहीं कर पाया था।

भानी कहती है कि, *"यदि कुछ मन में है तो सीधे आँख मिलाया कर, ऐसे डर-डरकर कबतक निभेगी... जितना रंग-रूप मिला है, कहीं इतना ही मरदाऊपन होता निगोड़े...। अंग जाने किसने, वहाँ छिपाकर बनाए है – इतने सुडौल... पह देख लहि जाने के... जी चाहता है दन्दीएँ खा जाऊँ।"*[9] यहाँ भानी की जगसीर के प्रति 'प्रेम' को निर्भीड़ता से प्रकट करते हुए दिखायी देता है।

जब निक्के 'भानी' की पिटाई करता है तो जगसीर और उसके दोनों दोस्त शराब पीकर निक्के के साथ झगड़ा करते हैं। उसके वाद पंचायत बुलाकर निब्का इन तीनों को पंचायत के द्वारा हिंदायते देता है। तब जगसीर का बापू जगसीर को इस बुरी आदत के लिए फटकारते है। इस बात का पता 'भानी' के मैकवाले को मिलते ही 'भानी' का बाप और उसका बड़ा भाई निक्के को डरा-धमकाकर भानी को अपने घर ले जाते हैं। जब इस बात को जगसीर सुनता है तो उसका कोई असर जगसीर पर नहीं होता।

'जगसीर' अपने दोस्त के पास आता है तो उसे रौनके के मटर के दाने की तरह अफीम की डबियों में से अफीम का 'मावा' खाने की लत लग जाती है। जब अफीम का नशा धीरे-धीरे कम होता था तब उसको 'भानी' की याद से अधिक दु:खदायी पीड़ा होने से छाती में असह्य दर्द महसूस होने लगती थी। जगसीर को जब भानी की याद आती तो वह भीषण कटुता का असह्य दर्द होने लगता था।

उसी दौरान जगसीर की बापू की मौत होने के कारण घर की सारी जिम्मेदारियों का बोझ उनके उनके आ पड़ा था। उसकी बातचीत, काम धंधे तथा व्यवहार में साधारण गृहस्थ लोगों जैसी ही गंभीरता आयी थी। इसमें ढाई बरस बीत गए। जगसीर पहले की तरह नहीं रहा था। वह व्यसनाधीनता की ओर आकर्षित हो गया था। वह काम भी अब इतना जी-तोड़कर मेहनत से करता था की दो आदमियों का काम वह अकेला करता था। उसका स्वास्थ दिन-प्रतिदिन बिगड़ने लगा था। इस हालत को देखकर दु:खी हो जाता था और उसे कहता था कि *"इतनी लंबी उमर कैसे कटेगी जगसीर, तू ने तो अब से ही ऐसे असाध्य रोग लगा लिए।"*[10] जगसीर की इस दशा को देखकर धर्मसिंह दु:खी होने लगता था धर्मसिंह ने जगसीर की शादी के संबंध में जो भी उससे हो सकता था उसने किया था। लेकिन जगसीर तो धर्मसिंह के कहने पर शादी के लिए तैयार था, लेकिन उसकी शादी की बात में कोई-न-कोई मुश्किल समस्या आ जाती और सारा बनाया हुआ खेल किसी बात पर बिगड़ जाता था। जगसीर धर्मसिंह कहता है कि यह बोझ मुझसे उठाए नहीं जाएगा भाई।

ढाई वर्ष के बाद निक्का नाक रगड़-रगड़कर भानी को ले आया था जिस दिन भानी आयी उस दिन जगसीर को पता चल गया था। जगसीर के मन में जैसे वही पुरानी पीड़ा फिर जागृत होती हुई उसे महसूस होने लगती और उसका दिल काँप उठा था। जगसीर और भानी की भेट हो जाती है उस समय भानी उसे कहती है कि *"तेरे पीछे तो उमरभर का रोग लगा लिया पापिया !.... और अब इतना निर्मिही हो गया कि...."*[11] भानी अपनी आंतरिक पीड़ा जगसीर को बताती है। तब जगसीर उसे कहता है कि *"तुझे क्या बताऊँ भानो कि मैं जिंदगी के दिन कैसे पूरे कर रहा हूँ!"*[12]इसप्रकार यहाँ लेखक ने भानी और जगसीर के प्रेम की पीड़ा को चित्रित किया है। इस उपन्यास की खासियत ही यह कि इसमें दोनों प्रमुख पत्रों की पीड़ा भी समान दृष्टिगत होती है।

भानी को दो लड़के और एक लड़की हुई। उस समय जगसीर को तीनों बच्चों के जन्म पर एक अजीब-सी खुशी महसूस हुई है। जगसीर का जी चाहता है कि इस खुशी की खबर भानी तक पहुँचा सकूँ लेकिन यह बात भी उसे बच्चों जैसी लगती है।

जगसीर का अब निक्के के घर आना जाना इतना बढ़ गया था कि जगसीर को वह अपना घर लगने लगा था। भानी जब जगसीर से पुरानी बातें छेड़ती तो जगसीर सहन कर पाता था लेकिन वह अधिक देर तक नहीं सुन पाता था। भानी को टोककर कह देता – *"अब ठंण्डी राख़ बिखरने में क्या है भानो !... अब यह सब सहने की ताकत नही रही।"*[13] इस तरह की बातों से लेखक यह बताता है कि जगसीर को अब पुरानी बातों में कोई खुशी नहीं आती। समय बीत गया तो वह भी बीत गया। अब आगे की बात सोचने के लिए भानी को कहता है। गाँव के एक-दो गुंडों ने उसको छेड़ा था उस समय जगसीर ने उनको रोका था। वह सब बाते जगसीर को बता देती है। इस बात से ध्यान हटाते हुए जगसीर भानी को बताता है कि *"अपने बीच रब्ब है भानो ! ऐसे कीचड़ में तो हमने जब हाथ नहीं कबेड़े जब समय था। अब सफेद चादर को दाग कैसे लगा लें। जो कोई कहता है कहने दे। चाँद पर थूका अपने ही मुँह पर पड़ेगा।"*[14]इस बात से लेखक ने यहाँ भानी और जगसीर के उदात्त प्रेम भावना का चित्रण किया है। उन दोनों को प्रेम निश्छल है। उसमें कोई भी छल कपट, धोखाधड़ी नहीं है। इस प्रकार के मौलिक विचारों के द्वारा लेखक ने 'प्रेम' विषयक विचार व्यक्त करते है। जिसमें नारी के संम्मान को बरकरार रखा है।

जगसीर के भयावह जीवन में बहार लाने का काम इस उपन्यास की नायिका 'भानी' ने किया है। रौनकी भानी का संदेशा देकर कहता है कि आदमी का मन उदास होता है तो मिलने-मिलाने से दिल बहल जाता है। उसने कई बार तुझे संदेशा दिया है। अपने से ही कोई कहता है दूसरे को किसी के दु:ख की क्या पड़ी है। यहाँ भानी की जगसीर के प्रति सहृदयता दिखाई देती है। इसका चित्रण लेखक ने सहज, सरल प्रभावशाली भाषा में चित्रित किया है। रौनकी उसे बताता है कि *"जगसिया ! आदमी की दवा आदमी ही होता है।"* [15]रौनकी उसे घर-संसार की बातें बताता रहता है। वह स्त्री-पुरुष की विशेषता भी बताता है। जगसीर जीवन से लापरवाही, गंभीरता और उदासी की पीड़ा में डूब गया था। उसे अब खेत और घर की कोई भी बात नहीं जँचती थी। वह नन्दी के मृत्यु के बाद कभी-कभार ही घर आता था। वह ज्यादा समय रौनकी के पास ही गुजारने लगा था। जगसीर की बीमारी के कारण शरीर दिन-ब-दिन क्षीण होता जा रहा था। जगसीर अब इस संसार से विदा लेना चाहता था। जब अंतिम समय जगसीर का नजदीक आया देखकर इतना ही कहा कि *"निक्के की बहू से कहना मेरी मढ़ी को पोत जरूर दिया करेगी,पाण्डु मिट्टी से बना तो तू देगा ही।"*[16]इतना कहकर जगसीर इस इहलोक से विदा लेता है। निक्के की बहू अपने भाई की शादी में गयी थी। उसे जगसीर की मृत्यु के बारे में कोई पता नहीं था। जब उसे पता चलता है तो वह जगसीर की श्मशानभूमि के पास पहुँचकर ताजी पुती हुई मढ़ी पर दीवा जला देती है। रौनकी को यह 'भानी' को कहने का साहस नहीं हो पा रहा था। लेकिन यह

दृश्य देखकर रौनकी अभिभूत हो उठता है। उस मढ़ी को देखकर रौनकी को लगता है कि *"दीवे की ज्योत हवा से काँपती, फटकर दो हो जाती, और फिर धीरे-धीरे स्थिर हुए अधिक ऊँचा होकर जलने लगती।"*[17]

अत: इससे स्पष्ट होता है कि गुरदयालजीने 'मढ़ी का दीवा' इस उपन्यास में नारी पात्रों का दर्द बयान करने में महारत हासिल की है ! अनेक समस्याओं के बावजूद भी उन्होने नारी के संम्मान की अभिव्यंजना की हैं। इस उपन्यास ने पाठकों के मन में एक अमिट छाप छोड़ी है।

निष्कर्षत:

कहा जाता है कि 'मढ़ी का दीवा' गुरदयाल सिंह जी का बहुचर्चित उपन्यास है। 'मढ़ी का दीवा' यह उपन्यास शीर्षक की सार्थकता में सफल बन गया है। इस उपन्यास के द्वारा गुरदयालजीने नारी की समस्याओं को चित्रित किया है। समाज में नारी का स्थान चित्रीय किया है। साथ ही 'जगसीर' और 'भानी' जैसे पात्र के द्वारा 'समता' की अभिव्यंजना को व्यक्त करते हुए नारी के संम्मान चित्रण का सफल प्रयास किया है।

संदर्भ सूची :

1. अशोक मानक (हिंदी शब्दकोश) – संपा. शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री, अशोक प्रकाशन (पृ. 2004),पृ. 1004
2. मानवाधिकार – दशा और दिशा :- दामोदर मिश्र, अखिल शुक्ला, पोइंटर पब्लिशर्स, प्रथम संस्करण – 2006, (पृ. 3)
3. सद्भावना दर्पण (पत्रिका) – गिरीश पंकज,'डॉ. गुरदयाल सिंह मानवीय संवेदनाओं के सर्जक विक्रम जनबंधु (आलेख), (दिसंबर, 2002), पृ. 36
4. गुरदयाल सिंह – मढ़ी का दीवा, आधार प्रकाशन, तृतीय संस्करण – 2011पृ.9
5. वही,पृ.9
6. वही,पृ. 14
7. वही,पृ.27
8. वही,पृ.29
9. वही,पृ.30
10. वही,पृ.31
11. वही,पृ.40
12. वही,पृ.40
13. वही,पृ.41
14. वही,पृ.43
15. वही,पृ.89
16. वही,पृ.90
17. वही,पृ.104

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

दीप्ती खंडेलवाल की कहानियों में अभिव्यक्त नारी के विविध आयाम

प्रा.डॉ. एकलारे चंद्रकांत नरसप्पा
हिंदी विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले महाविद्यालय , मुखेड, त. मुखेड जि.नांदेड
eklare21@gmail.com

हिंदी साहित्य के समकालीन महिला साहित्यकारों में दीप्ति खण्डेलवाल एक ख्यातनाम साहित्यकार रही है। नारी मन की पीडा को नारी की कलम से अधिक सशक्तता के साथ मुखरित होने का प्रमाण इनके कहानी साहित्य में परीलक्षित होता है। स्त्री-पुरुष दोनों के वास्तविक जीवन को सटीकता के साथ प्रस्तुत करना एक प्रश्नचिन्ह होते हुए भी बडी कुशलता के साथ साहित्य बिंदूओं को संजोग से सँवारने का कार्य लेखिका करती रही है। नारी मन के भाव - भावनाओं , समस्याओं और विभिन्न आयामों को उजागर करने का मौलिक कार्य इनके माध्यम से हुआ है। वर्तमान समय में सामाजिक खोखलेपन का दायरा किस तरह से बढने लगा है ? ऐसे वातावरण से सचेत होने का मार्ग लेखिका का लेखन है। इन्होंने अपने साहित्य लेखन से केवल मनोरंजन एवं समाज प्रदर्शन करना नहीं है। वास्तव में सामाजिक स्थिति से पाठकों को अवगत कराना और उज्वल राष्ट्र निर्माण में अपना दायित्व निभाना मुख्य उद्देश मानते है।

युगों युगों से नारी पर होनेवाले अन्याय , अत्याचार को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संवेदना और आवेग से प्रदीप्त बनाने के लिए वाणी प्रदान करते है। पाठकों के रुचि के अनुरूप लेखन करने की अपेक्षा पाठकों को नये नये विषय पर विचार और चिंतन करने का सुअवसर लेखिका देती है। नारी की पिड़ा , छटपटाहट को सच्चाई का स्वर प्राप्त होने से सोचने के लिए विवश करनेवाला साहित्य लेखन हुआ है।हिंदी के साठोत्तरी कहानी साहित्य में पारिवारिक विघटन , सीमित सोंच , संत्रास , तनावग्रस्त जिंदगी , मानसिक असंतुलन , जीवन की क्षणभंगूरता , स्वच्छंदतावाद आदि विषयों पर गहरी संवेदनशीलता के साथ लेखन किया है। सदियों से नारी विषयक अनगिनत , अनछूए , उपेक्षित स्थिति को प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। बड़े ही शिद्दत के साथ विषय प्रतिपादन महिला साहित्यकारों द्वारा हुआ है। एक नारी दूसरे नारी के दुख , दर्द , पिडा , वेदना को भलि भाँति जानती है। इसीलिए नारी मन की छटपटाहट , वेदना को चित्रण करते हुए गहरी संवेदना व्यक्त करती है। दीप्ति खण्डेलवाल का समग्र साहित्य इसी धरातल पर आधारभूत है। आज की नारी पुरुष से निस्सीम प्रेम की अपेक्षा करती है , न कि धन , दौलत , पद , प्रतिष्ठा की। नारी जिस अधिकार की माँग करती है वह स्वयं के साथ - साथ समग्र परिवार का विचार करती है। नारी के अंतरंग में उठनेवाले तरंगों को सुख , शांति का सहारा ढूँढती है। आज तक उसे शत्रू , मित्र , परिवार से काफी छल , कपट का शिकार बनाया गया है। वह शिक्षा के महाद्वार से स्वयं के अस्तित्व को पहचानती है। उसे प्रेम , स्नेह , अपनत्व के नाम से छला गया है। इसी को आधार बनाकर खण्डेलवाल पात्रों का निर्माण कथती है। स्वछंद प्रेम , नारी मनोदशा को चित्रित करना इनके कथा साहित्य की विशेषता है। इनके पात्र पारिवारिक जीवन में सहयोगी या साथी बनकर जीवन व्यतीत करने के लिए लालायित है। नारी सशक्तीकरण की दृष्टि से दीप्ति खण्डेलवाल का लेखन अहम् भूमिका निभाता है।

नारी विषयक नया दृष्टिकोण को लेकर नारी के विविध आयामों को पाठकों के सम्मुख प्रकट करती है। नारी स्वतंत्रता और मुक्ति की पुरस्कर्ता लेखिका है। पति - पत्नी दोनों का समर्पण भाव कहानीकार को अधिक प्रिय लगता है। परम्परागत रुढ़ी , प्रथा , परम्परा के बंधनों में जकड़कर सारी जिन्दगी घुटघुटकर जीवन व्यतीत करनेवाली नारी पात्र नहीं है। वर्तमान समय के परिवर्तनवादी विचारधारा को स्वीकार करते हुए परिवर्तनशीलता की बागड़ौर अपने हाथ लेकर लेखिका निस्वार्थ भाव से जीने में अधिक विश्वास रखनेवाली नारी है। प्रेम केवल शरीर तक न होकर वह असीम अनंत रुप से चलनेवाली प्रक्रिया है। सामाजिक , सांस्कृतिक , पारिवारिक स्थिति एवं संबंधों में आज बदलाव आने लगा है। जो इस तरह के सशक्त एवं सच्चाई बया करनेवाले रचनाकार का अतुलनीय योगदान प्रमुख है। नर - नारी दोनों समाजशील प्राणी होकर जीने की अपेक्षा मानवतावादी दृष्टिकोन का चष्मा धारण करके आंतरिक बदलाव लाने में लेखिका अधिक विश्वास रखती है।

दीप्ति खण्डेलवाल के कहानियों में नारी के विविध समस्याओं , आयामों को अंजाम देने का सफल प्रयास किया गया है। जिनके साहित्य का अध्ययन करने के बाद पाठक के सम्मुख निम्न तरह के नारी समस्याओं का चित्रण पाया जाता है - दाम्पत्य जीवन की नारी समस्या , विवाहपूर्व प्रेम की समस्या , आधुनिक नारी की समस्या , प्रताडित नारी की समस्या , कामकाजी नारी की समस्या , पारिवारिक नारी की समस्या , स्वच्छंदतावादी नारी की समस्या , दाम्पत्य जीवन में असंतुष्ट नारी समस्या , सुख की तलाश करनेवाली नारी की समस्या , स्वतंत्र अस्तित्व सिध्द करनेवाली नारी की समस्या , प्रेमिका की समस्या , वैवाहिक नारी की समस्या आदि विभिन्न नारी मन की समस्याओं को प्रस्तुति मिली है। कहानीकार कहानी लेखन में अनेक सवाल उपस्थित किये है। इनके कहानियों के शिर्षक में ही अनेक नारी समस्या के मूल विषय निहीत है। जैसे - कोलाहल , धूप के अहसास , विघटन , एक और सीता , दो पल की छाँव , एक औरत , अपराजिता , नारी , जिन्दगी , कुछ भी तो नहीं , नाते , कगार पर , निर्वसन , मरती हुई गौरेया , एक और कब्र , तपिश के बाद , दो दुरियाँ , अनारकली , यशोधरा , अंतराल आदि कहानियों में समाज की सच्चाई प्रखरता के साथ पाठकों के सम्मुख रखकर उन्हें सोच - विचार करने के लिए कहानीकार बाध्य करते है। कहानियों का चिंतन पक्ष बहुत ही मर्मांतक और सजीवता के उच्च कोटी का है।

दीप्ति खण्डेलवाल के साहित्य में पारिवारिक , सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन को नयी दिशा मिल जाती है। भारतीय समाज के पारिवारिक व्यवस्था में होनेवाले घुटन , वेदना को उद्धृत करते समय छलकनेवाले आँसू के कीमत से पाठकों को साहित्यकार द्वारा अवगत कराना चाहती है। परिवर्तन धारा के आधार पर नारी में होनेवाले परिवर्तन अत्याधिक गहनता के साथ पाठकों में अंकित करने का उल्लेखनीय कार्य कहानीकार का है। आपके कहानी साहित्य में अधिकतर नारी मनोवैज्ञानिकता को यथार्थता की धरातल पर उजागर किया है। जीवन की विसंगतियों को अत्याधिक बारिकियों के साथ साहित्य में मूर्त रुप दिया गया है। नारी के विभिन्न रुपों में विधवा , अनाथ , परित्यक्ता , कामकाजी महिलाओं के हजारों सवाल आज

भी कटघरें में खड़े है। कहानी में चित्रित नारी न्याय की गुहार लगा रही है। वास्तव में समाज के अदालत में उसे तारीख - पे - तारीख देने का काम कर रहे है। लेखिका ऐसे अनेक सवाल को लेकर समाज को सचेत करना चाहती है। नारी सदियों से अस्तित्व की तलाश में है। कहानियों के नारी पात्रों से स्वर दिये है। इन सभी नारी पात्रों की अपेक्षा पारिवारिक नारी पात्रों की ओर से लेखिका कोणत्या अधिक विश्वास है।

समय के साथ बदलाव होने लगा है। मात्र यथासम्भव नारी का विकास नहीं हुआ है। पिढी दर पिढी के बीच अंतर आने लगा है। नयी पिढी बुजुर्गों के साथ समन्वय या सहयोग की भूमिका नहीं रखते। जिसे ' एक और कब्र ' , ' सलीब ' जैसे कहानियों में अभिव्यक्त किया गया है। आजादी के अमृतमहोत्सवी वर्ष में एक ओर हमारा देश आत्मनिर्भर भारत बनने की दिशा में कदम बढ़ा रहा है , वहीं दूसरी ओर नारियों के हजारों सवाल जवाब की प्रतिक्षा में है। ऐसे भीषण परिस्थिति में सुधार लाने के लिए दीप्ति खण्डेलवाल जैसे लेखिकाओं का काफी योगदान है। पुरुषसत्ताक व्यवस्था के कारण आज भी नारी की अवस्था भयावह है। ऐसे स्थिति का सही चित्रण उनके कहानी , उपन्यास , निबंध , आलेख , संस्मरण आदि साहित्य विधाओं में पाया जाता है। वर्तमान नारी मन से नारी सशक्तीकरण की ओर मार्गक्रमण करना लेखिका को प्रासंगिक लगता है। जो वर्तमान समय की माँग है।

संदर्भ ग्रंथ :

1) साठोत्तरी महिला कहानीकार - डॉ. मंजु शर्मा
2) आधुनिकता : स्त्री विमर्श - डॉ. ललिता एन.राठोड
3) आलोचना और समकालीन रचना - सं.रामस्वरुप द्विवेदी
4) समकालीन साहित्य : नया परिदृश्य - सतीश जमाली
5) महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ - डॉ. शीलप्रभा वर्मा
6) स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में नारी के विविध रुप - डॉ. गणेश दास

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

ममता कालिया के 'कितने प्रश्न करूँ' खंडकाव्य में स्त्री – विमर्श

प्रा. डॉ. दयानंद बी पाटील
सहायक प्राध्यापक, डॉ. घाळी महाविद्यालय, गडहिंग्लज-416502, जि.कोल्हापुर-(महाराष्ट्र)
ई मेल : dr.dayanandpatil1985@gmail.com

भारतीय समाज में विद्या, बुद्धी, विभूती और शक्ति के रूप में सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती एवं दुर्गा का पूजन होता है| अतः हमारे यहाँ स्त्री की तुलना देवाताओं से की जाती है और इसीलिए नारी को बहुत ही सम्मान दिया जाता है| किंतु यह कथन केवल एक आदर्श विचार के रूप में बोलने और लिखने तक ही सीमित रहा है ऐसा मुझे प्रतीत होता है| क्योंकि आज भी शूद्र एवं दलितों से भी अधिक शोषित नारी ही है, अतः एक स्त्री ही है| पुरुष प्रधान संस्कृति ने स्त्री की ओर केवल उपयोगी वस्तु के रूप में ही देखा है| पुरुष प्रधान समाज ने मान मर्यादा के आड में स्त्री को हमेशा दबाकर रखना चाहा है|

भारतीय साहित्यकारों ने अपने साहित्य में विभिन्न शोषित-पीड़ित नारी की व्यथा शब्दबद्ध की है| साहित्य के द्वारा स्त्री जीवन की अनेक समस्याओं का चित्रण कर स्त्री संबंधी समाज की मानसिकता में परिवर्तन करना और नारी सामर्थ्य तथा उसके अस्तित्व का साक्षात्कार करना ही स्त्री विमर्श का मुख्य उद्देश्य रहा है| स्त्री विमर्श केवल हिंदी साहित्य में ही नहीं अपितु संपूर्ण भारतीय साहित्य में दृष्टीगत होता है| हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श एक अत्यंत महत्वपूर्ण विचार के रूप में उभरकर आया है और विशेष रूप से कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक, एकांकी, आत्मकथा, रिपोर्ताज, जीवनी आदि विधाओं के माध्यम से व्यक्त हुआ है| स्वतंत्रता के बाद स्त्री को सही अर्थों में पारिवारिक दायरे से बाहर निकालकर सामाजिक सरोकार और जीवन के यथार्थ से जोड़ा गया है| हिंदी साहित्य में नारी विमर्श को लेकर महिला साहित्याकारों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है| कृष्णा सोबती, कृष्णा अग्निहोत्री, उषा प्रियवंदा, मन्नू भंडारी, शिवानी, मालती जोशी, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, सूर्यबाला, चंद्रकांता, मृदुला सिन्हा, मंजुला भगत, मृणाल पांडेय, चित्रा मुद्गल, कुसुम अंसल, अलगा सरावगी दिप्ती खन्डेलवाल, इंदू जैन, सुनीता जैन, सुधा अरोडा, क्षमा शर्मा, अर्चना वर्मा, नमिता सिंह, जया जादवानी और ममता कालिया आदि हिंदी लेखिकाओं ने अपने सजग – सशक्त नेतृत्व में नारी संसार की जटिलताओं, विभिन्न पहलुओं तथा अनेक समस्याओं का गहराई सें अंकन किया है| आज स्त्री –विमर्श एक ज्वलंत मुद्दा है|

. 'कितने प्रश्न करूँ' ममता कालिया सन 2008 में प्रकाशित खंडकाव्य है| यह खंडकाव्य 'रामायण' की कथानक पर आधारित है| 'रामायण' की प्रमुख स्त्री सीता के चरित्र को केंद्र में रखकर लिखा गया इस खंडकाव्य का कथानक विवाह, अपहरण, अग्निपरीक्षा ,निर्वासन और पृथ्वी प्रवेश इन पाँच प्रसंगों में विभाजित है| प्रस्तुत खंडकाव्य में सभी प्रसंगों का संबंध प्रत्यक्ष - अप्रत्यक्ष रूप से सीता के साथ जुड़ा है| सीता का चरित्र पूरी खंडकाव्य में कई तरह के प्रश्न उपस्थित करता है| उन्ही प्रश्नों को राम कथा से जोडकर देखा गया है| प्रस्तुत खंडकाव्य मे कवयित्री ने सीता को प्रमुख चरित्र बनाकर स्त्री और पुरुष के संबंधों की नई व्याख्या प्रस्तुत करते हुए सामयिक नारी दृष्टीकोन से पवित्रता संबंधी पुरुषसत्ताक अवधारणा पर प्रश्नचिन्ह लगायी है| आलोच्य खंडकाव्य नर-नारी के कर्तव्यों और अधिकारों में समानता का पक्ष लेता है|

'रामायण' भारतीय संस्कृती का एक ऐसा महाकाव्य, महाग्रंथ है जो भारतीय जनजीवन को न केवल निरंतर प्रभावित करता रहा है , बल्कि साहित्य सृजन के लिए प्रेरणा भी देता रहा है| इस ग्रंथ ने न केवल हिंदी अपितु समूचा भारतीय साहित्य को प्रेरित एवं प्रभावित किया है| साहित्यकारों ने 'रामायण' की कथावस्तु के जरीए नवीन व्याख्या प्रस्तुत किया अतीत के द्वारा वर्तमान को नवीन संदेश देने का प्रयास किया है| 'रामायण' में सीता के साथ जो हुआ है वह अकल्पनीय है| आज भी हमारे भारतीय समाज में अपनी बच्ची के नामकरण समय 'सीता' नाम को लेकर चिंता व्यक्त किया जाता है और शायद इसीलिए 'सीता' नाम की नारी अपवाद स्वरूप ही पायी जाती है|

'कितने प्रश्न करूँ' खंडकाव्य की नायिका सीता विद्रोही व्यक्तित्व से परिपूर्ण नारी है| खंडकाव्य में चित्रित सीता भारतीय स्त्री का प्रतिनिधित्व करनेवाली आदर्श नारी है| जब लंका से राम सीता को लेकर अयोध्या लौटते हैं, तब सीता के सामने अग्निपरीक्षा का प्रस्ताव रखते है| इस बात से सीता निराश एवं दु:खी होती है| वह पति राम की इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहती है -

"क्या महाबली मारुती ने
तुमको था नहीं बताया;
मैंने शाश्वत पातिव्रत
लंका में कवच बनाया|"[1] अग्निपरीक्षा के प्रस्ताव से दु:खी होकर यहाँ सीता का राम के अन्याय के प्रति विरोध प्रकट हुआ है|

प्रस्तुत खंडकाव्य में वर्णित सीता विद्रोही नारी के रूप में चित्रित है| खंडकाव्य का नायक राम आदर्श मर्यादा पुरुषोत्तम राजा है| उन्होंने सीता को रावण के चंगुल से छुडाकर अयोध्या लाया है| तब अयोध्या की सारी जनता सीता को संदेह की दृष्टी से देखते हैं| फिर राम साधारण व्यक्ति की तरह सीता को निर्वासित करते हैं| उसके पश्चात वाल्मीकि ऋषी सीता को अग्निपरीक्षा देणे के लिए कहते हैं तो सीता विरोध करती है और कहती है –

"संशय के उस इक क्षण में
तुम साधारण बन बैठे;
सारी महानता त्यागी
जब परित्याग कर बैठे|"[2] यहाँ सीता राम के असाधारणत्व और महानता

के प्रति संशय व्यक्त करती है और उस विचारधारा का विरोध करती है|

वर्तमान युग की स्त्री प्राचीन युग की स्त्री के समान परिवार तथा समाज के दबाव मे न रहकर स्वतंत्रता से जीने लगी है| व्यक्ति या समाज पर अन्याय होता है तो अन्याय के विरोध में वह व्यक्ति आवाज उठाता है| आलोच्य खंडकाव्य में वर्णित सीता पिछले जन्म के पापों के संदर्भ को लेकर स्वयं को कोसती है| इसीमें पति वियोग उसे सताती है| उसी समय सीता मन ही मन सोचती है और विरोध करती है -

"जाने पिछले जन्मों में
क्या मैंने पाप किया था ;
पति का वियोग पग पग पर
प्रारब्ध - स्वरूप मिला था|"[3] यहाँपर सीता के मन में उठी
चेतना के स्वर का चित्रण हुआ है|

प्राचीन युग से ही नारी की पवित्रता-अपवित्रता पर पुरुष वर्ग द्वारा अनेक प्रश्न उठाये हैं , यह प्रश्न आज वर्तमान परिवेश में भी दिखाई देती है| विवेच्य खंडकाव्य में सीता की अग्निपरीक्षा का चित्रण हुआ है| खंडकाव्य में वर्णित सीता को कवयित्री ने प्रमुख चरित्र बनाकर नारी के दृष्टीकोण से पवित्रता संबंधी पुरुष अवधारणा पर प्रश्न उठाया है| सीता समाज में प्रचलित स्त्री-पुरुष भेदभाव और लोकनिर्णय का विरोध करती है| सीता लोकनिर्णय को ठुकराकर दूसरी बार अग्निपरीक्षा का साफ इन्कार करते हुए कहती है –

"अपवित्र सिर्फ नारी ही
होती है क्या जीवन में
क्या पुरुष पान कर आता
पावनता की घुट्टी में|"[4] यहाँपर सीता का पवित्रता-अपवित्रता के संदर्भ में स्त्री - पुरुष के साथ किए जानेवाले भेदभाव के प्रति विरोध प्रकट हुआ है|

सीता अपनी अस्मिता और आत्मसम्मान को सर्वाधिक महत्व देती है| इसीलिए वह अपमानित और प्रताड़ित रहने के बावजूद रानी बनकर पति राम के पास न जाते हुए अपने आत्मसम्मान को कायम रखकर पृथ्वी में प्रवेश करती है| सीता अपना आक्रोश, असहमति और अस्वीकार इसप्रकार प्रकट करती है -

"अब मेरी सहन शक्ति का
अंतिम क्षण आ पहुँचा था ;
निर्वासित पहले ही थी
अब ग्लानि-भाव भी ऊँचा|
उस भरी सभा में फिर से
क्या होती पुन: परीक्षित?
क्या करती राणी बन कर
जब रही युगों तक पीड़ित?"[5] यहाँपर सीता का विद्रोही व्यक्तित्व दृष्टिगत होता है| प्रस्तुत खंडकाव्य के अन्य एक प्रसंग में पुरुष प्रधान संस्कृति के कारण समाज में स्त्रियों की अवहेलना बड़ी मात्रा में हो रही है| नारी को अधिक मात्रा में प्रताड़ित किया जाता है| यहाँपर कवयित्री ने सीता को केंद्र में रखकर भारतीय स्त्री की अवहेलना को दर्शाया है| सीता राम से प्रश्न करती है की मुझे अपवित्र और तुम्हे पवित्र कैसे माना गया| कवयित्री के शब्दों में-

"वह दीर्घ, अनिश्चित समय
तुम्हें क्यों उजला छोड़ गया था|
मैं ही ऐसा दर्पण थी
जिसको वह तोड़ गया था ?"[6] यहाँपर सीता का पुरुषों के प्रति विरोध प्रकट हुआ है|

निष्कर्ष: कहा जा सकता है कि 'कितने प्रश्न करूँ' खंडकाव्य में चित्रित सीता विद्रोही व्यक्तित्व से परिपूर्ण नारी है और वह अपने अपमान के प्रति विरोध करती हुई अनेक प्रश्न उठाती है| वह राम के असाधारणत्व और महानता को लेकर भी संशय व्यक्त करती है| कवयित्री ने दिखाया है कि जब सहने की सीमा समाप्त हो जाती है तब नारी विद्रोह कर उठती है| इसीलिए सीता दूसरी बार अग्निपरीक्षा का साफ इन्कार करती है और वह लोकनिर्णय को ठुकराकर अपनी आत्मसम्मान को कायम रखकर पृथ्वी मे समा जाती है| यहाँपर सीता में पुरुषोंद्वारा प्रताड़ित और अपमानित भारतीय स्त्री के विद्रोह का प्रभाव स्पष्ट होता है| यह विद्रोह ही है स्त्री - विमर्श| ममता कालिया ने यहाँ नारी की विसंगतीयों का उद्घाटन पौराणिक धरातल पर करते हुए पुरुषप्रधान समाज में स्त्री के आत्मसम्मान, अस्मिता तथा स्वत्व की रक्षा का प्रश्न उठाया है और स्त्री – पुरुष के कर्तव्यों – अधिकारों में समानता का पक्ष लिया है|

संदर्भ :

1. ममता कालिया, कितने प्रश्न करूँ, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002, आवृत्ति 2016, पृ. 27
2. वहीं – पृ . 28
3. वहीं – पृ . 37
4. वहीं – पृ . 54
5. वहीं – पृ . 61
6. वहीं – पृ . 62

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

सलिल सुधाकर की कहानियों में महानगरीय जीवन

दिपाली विकास जाधव
शोधछात्रा, हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
ई-मेल : deepalijadhav1431@gmail.com

प्रस्तावना :

साहित्य में तत्कालीन समाज की सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थिति का चित्रण होता है। साहित्य के माध्यम से लेखक समाज का यथार्थ चित्रण पाठकों के सामने रखने का प्रयास करता है। स्वाधीनता के पश्चात् समाज में अनेक परिवर्तन हुए हैं। आधुनिकीकरण, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव तथा बेरोजगारी के कारण दिनों-दिन लोग महानगरों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। महानगरीय जीवन का आकर्षण तो आज सभी में दिखाई देता है लेकिन उसके कुछ खामियाजे भी मनुष्य को भुगतने पड़ रहे हैं। यह महानगरीय जीवन कुछ बातों में मनुष्य की दृष्टि से वरदान है तो कुछ बातों में अभिशाप भी साबित हो गया है। इसकी यथार्थ झाँकी सलिल सुधाकर के कहानियों में दिखाई देती है। उन्होंने अपने कहानियों के माध्यम से महानगरीय जीवन के सत्य को उजागर किया है।

महानगर में जितना लोग कमाते हैं उससे ज्यादा उन्हें खर्च करना पड़ता है। वर्तमान समय में महानगरों में आधुनिकीकरण, शिक्षा से प्राप्त स्वतंत्रता ने मानवी जीवनशैली में बदलाव आ गया है। महानगरों के मायाजाल में आज के लोग इतने फँसे हैं कि सहायता, परोपकार, दया, शांति, करुणा आदि मूल्य भूल गए हैं। इसी कारण लोगों में अकेलापन, पीढ़ीगत संघर्ष, भ्रष्टाचार, हिंसा बढ़ रही है। महानगरीय जीवन में भौतिक सुख-सुविधाएँ तो प्राप्त होती हैं लेकिन इस चकाचौंध में मूल्यों का -हास हो रहा है। आज महानगरों में बेरोजगारी, रहने की समस्या, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, महँगाई के कारण मानव का जीवन मुश्किल बन गया है। आत्मीयता, संवेदना, अपनापन आदि बातें लुप्त होती नजर आ रही हैं। महानगर की चकाचौंध व्यक्ति को आकर्षित करती है लेकिन इस आकर्षकता के पीछे अनेक समस्याएँ पनप रही है। जिससे मनुष्य अनभिज्ञ होता है और उसमें फँस जाता है। इसी वजह से उसे अकेलापन, घूटन, कुंठा, टूटते रिश्ते, अमानवीयता आदि विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। महानगरीय जीवन की उलझनों में फँसी इसी मनुष्य की जिंदगी का वास्तव चित्रण सलिल सुधाकर की कहानियों में मिलता है।

शिक्षा के कारण आज व्यक्ति को वैचारिक स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी है। 'देखो जमाना कहाँ पहुँच गया है' कहानी की मंजरी का परिवार पति शुभंकर की नौकरी के कारण मुंबई आता है। उसकी दो लड़कियाँ और लड़का कॉलेज के कारण बाहर होते हैं। पति भी नौकरी के कारण दिनभर बाहर रहता है। दिनभर घर में अकेली मंजरी विचारों में खोई रहती है। तब उसे अपना जमाना याद आता है। सबका मिल-जुलकर रहना उसे याद आता है। जब ये रात घर आते हैं तो उसे लगता है, "किसी को किसी के प्रति तनाव नहीं। सब कुछ यंत्रवत। संवेनाएं भी मशीनी हो गई हैं। या फिर केवल अपने लिए सोचो।"[1] यहाँ पर कहानीकार ने मंजरी के माध्यम से महानगरीय जीवन किस प्रकार दिनों-दिन यंत्रवत और स्वार्थी होता जा रहा है इस पर निर्देश किया है। महानगरीय भागदौड़ की जिंदगी के कारण घर के आने के बावजूद किसी का किसी की तरफ ध्यान नहीं होता। एक छत के नीचे रहकर भी एक-दूसरे से सब अनजान होते हैं। कोई किसी से खुलकर बात नहीं करता। यह वर्तमान महानगरीय जीवन का सत्य है।

प्रस्तुत कहानी की मिसेज सक्सेना मुंबई की निवासी होने के कारण उसके पास महानगरीय जीवन के अनेक अनुभव हैं। अपने इस अनुभवों को वह मंजरी के साथ साझा करती हुई कहती है, "मंजरी मुंबई घर-परिवारवालों का शहर नहीं है। इस शहर की हवा ही ऐसी है कि आदमी धीरे-धीरे अपनी भावनाओं, आदर्शों की हत्याएँ करता चला जाता है और उसे पता भी नहीं चलता। और फिर जो कुछ उसके पास बच जाता है, उसमें किसी इंसान की क्वालिटी नहीं रह जाती। ऐसे माहौल में परिवार की रक्षा करना सबसे मुश्किल काम है। जो कर लेते हैं, वह अवार्ड के लायक है।"[2] मिसेज सक्सेना के इस प्रस्तुत कथन के माध्यम से कहानीकार ने महानगरीय चकाचौंध में मनुष्य किस प्रकार बदल जाता है यह स्पष्ट किया है। महानगर की दौड़ती दुनिया में मनुष्य संवेदनाहीन बन जाता है और एक घूटन-सी पैदा होती है। उसमें होनेवाला अपनापन कम होता नजर आता है।

शिक्षा के कारण युवा पीढ़ी में आत्मविश्वास आ गया है। इसी आत्मविश्वास के बल पर मंजरी की बेटी पल्लवी अपने माता-पिता के सामने अपने प्यार का इजहार करती है। जब उसके परिवार वाले इसे इन्कार करते हैं तब पल्लवी उनसे कहती है, "जिंदगी उसकी है, विवाह उसे करना है। यह उसका निजी फैसला है। घरवाले नहीं भी माने तो वह खुद निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है।"[3] पल्लवी के माध्यम से कहानीकार यहाँ स्पष्ट रूप में कहना चाहते हैं कि आज की युवा पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण बड़ों का आदर करना भूल गई है। उन्हें बड़ों की आज्ञा एक बोझ लगता है। पल्लवी शिक्षित और आर्थिक सक्षम होने के कारण परिवारवालों का विरोध होने के बावजूद एलेक्स के साथ भागकर शादी करती है। पल्लवी की माँ मंजरी को पल्लवी के भाग जाने के बाद किसको-किसको जवाब नहीं देना पड़ा था। इसी डर के कारण मंजरी अपनी दूसरी बेटी कविता को मर्यादाएँ समझाने का प्रयास करती है। कविता अपना बॉयफ्रेंड निखिल से मिलना चाहती है तब मंजरी उसे कहती है कि इस तरह से लड़कों को मिलना ठीक नहीं है। तो कविता कहती है, "इतना बैकवर्ड होने से काम नहीं चलता मम्मा? देखो जमाना कहाँ से कहाँ पहुँच गया है?"[4] मना करने के बाद भी कविता निखिल से मिलने जाती है और उसकी हवस का शिकार बनती है। इससे स्पष्ट है कि पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के कारण महानगरों में बलात्कार जैसी समस्या बढ़ती नजर आती है।

बेरोजगारी के कारण लोग महानगर की तरफ बढ़ रहे हैं। आधुनिकीकरण के चलते महानगरों में अनेक रोजगार के अवसर उपलब्ध हैं। लेकिन इसके साथ समस्याएँ भी हैं। परिवार की जिम्मेदारी के कारण वह भी मुंबई चला जाता है। गाँव में उसके जाने के बाद खाने के लाले पड़ते है। तब उसके पिताजी उसे परिवार को भी साथ ले जाने के लिए कहते हैं। पिताजी उसे कहते हैं, "बेटा परिवार को बस अब तुम्हारा ही आसरा है! बड़े की हालत देख रहे हो। किसी तरह घर की दाल-रोटी का जुगाड़ हो रहा है। सुना है बंबई बहुत बड़ी नगरी है। मायानगरी। वहाँ माया की किरपा हो जाएँ तो जीवन बदल

सकता है। कोशिश करना, एक बार फिर इस घर की दशा बदल जाए, कर्ज मुक्ति हो जाए। बस और क्या चाहिए?"[5] वह बंबई में नसीब आजमाना चाहते हैं। उन्हें एक आशा है कि बंबई जाकर सब ठीक हो जाएगा और कर्ज से मुक्ति मिल जाएगी। वह सोचता है कि पिताजी को कैसे समझाए की वह किस तरह बंबई में रह रहा है। उसकी भी अपने परिवार को बंबई ले जाने की ख्वाईश थी। कुछ महीनों बाद वह अपनी पत्नी और बच्चों को बंबई लेकर जाता है। लेकिन उसे पता नहीं था किवह अपने साथ अपने परिवार को भी खतरे में डाल रहा है। वह अपनी बेटी का नाम स्कूल में दर्ज कराने के बारे में अपने मित्र से कहता है तो उसका मित्र उसे कहता है, "अरे अब कहाँ बाल-बच्चों को यहाँ पढ़ाने-बढ़ाने की सोच रहे हो भइया? अपनी जान बचा लो, यही बहुत है। बाल-बच्चों की जान खतरे में क्यों डाल रहे हो?"[6] तब उसे पता चलता है कि बंबई में स्थानीय लोगों की एक पार्टी हिंदी भाषियों को ढूंढ़कर भगाने की महीम चला रही है। आज राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण महानगरों में जातिवाद, क्षेत्रवाद बढ़ रहा है। इसी वजह से संघर्ष, आतंकवाद फैल रहा है। इससे आम लोगों का जीना मुश्किल हो गया है। महानगरों में स्वयं का सुरक्षित महसूस करना मुश्किल हो गया है।

आज की युवा पीढ़ी को पश्चिमी संस्कृति आकर्षित कर रही है। महानगर की इस आभासी दुनिया में युवा पीढ़ी को भले-बुरे की पहचान नहीं होती। वह उसमें फँस जाते हैं और अपनी बरबादी कर लेते हैं। 'पंख' कहानी की शाइना ग्रैज्युएशन के बाद आगे की पढ़ाई के लिए देहरादून से मुंबई आती है और महानगर की इस भूल-भूलैयावाली जिंदगी में फँस जाती है। मुंबई में उसकी पहचान जुल्फी से होती है। उनमें दोस्ती होती है। आगे दोस्ती प्यार में बदल जाती है। आज की युवा पीढ़ी को प्यार का मतलब ही नहीं समझता है। बस एक आकर्षण की नजर से वे प्यार की तरफ देखते हैं। जुल्फी भी इसे अपवाद कैसे हो सकता है। एक दिन शाइना जुल्फी की हवस का शिकार बन जाती है। जब शाइना इसके बारे में जुल्फी से पूछती है तो कहता है, "डोंट वरी स्वीट हार्ट! यह शरीर तुमने किसको दिया है मैं नहीं सोचता। तुमने दिल किसको दिया वही मेरे लिए इंपोर्टेड है। यू लव मी न? यह हमारे प्यार की पहली सीढ़ी थी। हम इस पर जितना आगे बढ़ेंगे, उतना एक-दूसरे के काम आयेंगे। क्या आगे तुम मेरे साथ काम करना नहीं चाहती?"[7] मुंबई जैसे महानगर में आज अनेक लड़कियों को इस समस्या का सामना करना पड़ रहा है। आज काम के बदले में कई जगहों पर शारीरिक संबंधों की माँग की जाती है और लड़की की विवशता का फायदा उठाया जाता है। शाइना करिअर के लिए बंबई आती है और चकाचौंध की दुनिया में फँस जाती है। वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है। अमि उसे इससे सँवारता है लेकिन अंत में उसके भी हवस का वह शिकार बनती है। महानगर का वास्तव लेखक सलिल सुधाकर ने यहाँ चित्रित किया है।

महानगर में रहते समय अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है। महानगर में एक की नौकरी पर घर चलाना मुश्किल हो जाता है। इसी कारण आज पति-पत्नी दोनों नौकरी करनी पड़ती है। परिवार चलाने के लिए अब लोग पैसों के पीछे भाग रहे हैं लेकिन इसमें वे अपने माता-पिता के प्रति कर्तव्य को भूल रहे हैं। इससे वृद्ध माता-पिता को अकेलापन और घूटन महसूस होती है। यही बात सलिल सुधाकर ने 'अनिरूद्ध बाबू' कहानी में स्पष्ट किया है। अनिरूद्ध बाबू के मित्र मल्होत्रा नौकरी से अवकाश प्राप्ति के बाद अपने बेटे के साथ रहना चाहते थे लेकिन उनका वहाँ रहना उनके बेटे को पसंद नहीं था। रोज 'जॉब अपोरचुनिटी' जैसे विषय पर वह विवाद करने लगता है। उसने कहा नहीं था लेकिन उसके बर्ताव से उसकी नाराजगी झलकती थी। इसलिए मल्होत्रा उनकी जमापूंजि से एक स्कूल खोलते हैं और वहीं रहने चले जाते हैं। उनके बीमारी के समय भी स्कूल के बच्चों ने ही उनकी देखभाल की थी। तब मल्होत्रा अनिरूद्ध बाबू से कहते हैं, "अनी तुम्ही बताओ, इतना सारा प्यार, स्नेह, आत्मीयता, तुम्हें कहीं अचानक और एकसाथ मिल जाए, तो क्या तुम्हारी छाती चौड़ी नहीं होगी? और फिर यह सब यूं ही थोड़े ही मिलता है? लोगों के लिए अगर तुम सच्चाई साथ कुछ भी करोगे तो तुम्हें भी इसका प्रतिदान ऐसे ही मिलेगा। इसी तरह! संभाल नहीं पाओगे, समेट नहीं पाओगे! मैं भी जब कभी बेटों को याद करता हूँ तो थोड़ी-सी तकलीफ जरूर होती है! बस भूल जाता हूँ।"[8] आज पैसों के पीछे भागते लोगों को जिम्मेदारी का एहसास नहीं है। महानगर की इस भीड़भाड़ में भी मल्होत्रा को अकेलापन महसूस होता है। बेटा बूढ़ापे की लाठी होता है ऐसा कहा जाता है लेकिन आज की भागदौड़ की दुनिया में लोग अपना कर्तव्य भूल गये हैं।

निष्कर्ष:

आज आधुनिकीकरण के चलते लोग महानगर की ओर आकर्षित हो रहे हैं लेकिन इस मोहमयी दुनिया में लोग अपने कर्तव्य को भूल रहे हैं। इससे ईर्ष्या, द्वेष, संघर्ष आदि बढ़ रहे हैं। अपनापन, सेवा, शांति, दया, परोपकार आदि मूल्यों में परिवर्तन आया है। इसकी जगह द्वेष, संघर्ष, हिंसा, स्वार्थ आदि ने ली है। महानगरीय यांत्रिक जीवन से रिश्तों में दूरी पैदा हो गई है। तनाव और संघर्ष के कारण घूटन होने लगी है। सलिल सुधाकर ने अपनी कहानियों में बदलते इस महानगरीय जीवन को स्पष्ट रूप में चित्रित किया है। उनकी कहानियाँ महानगरों में मनुष्य का बढ़ता अकेलालन और बदलते जीवन-मूल्यों के संदर्भ में पाठकों को सोचने के लिए मजबूर कर देती है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. सलिल सुधाकर, देखो जमाना कहाँ पहुँच गया है, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2019, पृ. 21
2. वही, पृ....
3. वही, पृ. 23
4. वही, पृ. 27
5. सलिल सुधाकर, परदेस, बोधि प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 2019, पृ. 79
6. वही, पृ.....
7. सलिल सुधाकर, पंख, बोधि प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 2019, पृ. 15
8. सलिल सुधाकर, अनिरूद्ध बाबू, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2020, पृ. 74

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

कृषक जीवन की समस्या

दया शंकर यादव
एम.ए.,बी.एड्,सेट (हिन्दी), 03 सोमेशकॉलनी, गोव्हर्नमेंट रेस्टहाऊस के बगल में, विसावानगर, नांदेड.-431602 महाराष्ट्र

भारत सदियों से गाँवों की धरती के रूप में पहचाना जाता रहा है। भारत के परंपरागत समाज के मौलिक प्रतिनिधि के रूप में गाँव को लिया गया।

सन्१९४७ में ८५ प्रतिशत भारतवासी गाँवों में रहते थे। कृषि हीआमजन की आजी विकाका मुख्य साधन था।तब भारत की राष्ट्रीय आय में ५५ प्रतिशत हिस्सा कृषि का था।यही स्थिति अंग्रेज कालीन अर्थव्यवस्था की थी, जो साम्यवादी और पूँजीवाद के आधार पर कृषकों के जीवन पर निर्भर थी।लेकिन किसानों की स्थिति शोषणीय थी।आजादी के बाद मिश्रित अर्थव्यवस्था तथा वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाजारवाद जैसी खुली अर्थव्यवस्था में भी किसान जीवन कई समस्याओं से दयनीय तथा शोषित जीवन जी रहा था। इसीकारण साहित्यि क विधाओं में किसान जीवनकी त्रासदीपर लिखा जाने लगा। इसका पूरा श्रेय साहित्यसम्राट प्रेमचंद को जाता है क्योंकि हिंदी साहित्य में यथा र्थ की धरती पर किसान को साहित्य का विषय बनाया। उन्हीं से प्रेरणा लेकर उनके समकालीन तथा आज तक हिंदी उपन्यासों में कृषक जीवन की समस्याओं पर जो प्रकाश डाला जा रहा इसकी नींव प्रेमचंद का साहित्य ही रहा है।जो उपन्यास लिखे गये है वह वास्तविक जीवनपर आधारित लिखे गये हैं।

भारतीय कृषक जीवन स्वतंत्रता के पहले का होया, स्वतंत्रता के बाद का हो अथवा वैश्वीकरण के बाद का हो सभी दृष्टि से आर्थिकस्थिति से ज्यादा उपन्यास नहीं लिखे गए, जो लिखे गए है, उनमें कृषक जीवन की समस्या ओं के साथ ही उनके समस्या ओं के कारणों का और उपायों पर विमर्श किया है।अर्थात हिंदी उपन्यास कृषक जीवन की समस्याओंकारो नाही नहीं रोते, बल्कि उनपर उचित समाधानों के बारे में भी कई संकेत देते हैं। देश का अन्नदाता तथा उत्पादकवर्ग किसान है और जब तक इन किसानों की उन्नति नहीं होगी तब तक देश की उन्नति संभव नहीं हैं।प्रेमचंद का चित्रित किसान भारत को कृषि प्रधान देश बनाता है। आजादी के पहले भारत की अर्थव्यवस्था, समाजव्यवस्था और धर्मव्यवस्था को बनाने में गाँवों की भूमिका आजकी अपेक्षा ज्यादा महत्वपूर्ण थी। इन गाँवों में रहनेवाली शत-प्रतिशत आबादी कृषि-व्यवस्थापर आश्रि तथी। गाँव की इस आबादी के बारे में ये नहीं कहा जा सकता किये सभी किसान थे।लेकिन उनकी आजी विका किसानों के किसानी पर निर्भर थी।आज वैश्वीकरण के चलते कृषि व्यवस्थानए समस्याओं से गुजर रही है।संजीव, शिवमूर्ति, राजूशर्मा, भिमसेन त्यागी जैसे कई उपन्यासकारों के रचना ओं ने इन समस्याओं का यथार्थ परिलक्षण उदारीकरण, बाजारवाद, निजीकरण जैसी वैश्वीकरण व्यवस्था के कारण हुआ है। 'फॉस'उपन्यास इस का ज्वलंत उदाहरण है, जो वैश्वीकरण की असफलता ओं का ब्यौरा किसान की दृष्टि से पाठ कों को देता है। इक्कीसवीं सदी का किसान आत्महत्या क्यों कर रहा है?

उसे किसानी के बदले चपरासी की नौकरी करना क्यों पसंद है? कोई भी किसान अपनी बेटीकी शादी किसान के बदले मजदूर से करना क्यों पसंद कर रहा है? आज गाँवों से छोटे-छोटे किसान तथा मजदूर शहरों की तरफ क्यों पलायन कर रहे हैं? ऐसे कई सवाल वैश्वीकरण की व्यवस्था को झकझोर रहे हैं। अर्थात वैश्वीकरण की आर्थिक नीति कृषि क्षेत्र के लिए कामयाब नहीं हुई हैं।बिहार, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश जैसे कई राज्यों में किसानों की हालत जैसे के वै से ही है, कारण हैं किसानों की आर्थिक स्थिति पहले जैसे ही है।वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाजारीकरण और निजीकरण के चलते किसान भी अन्य वर्ग के समान जरूरत की वस्तुएँ खुले बाजार से खरीदता है। कृषि के लिए खाद, बीज, कीटकनाशक आदि बड़े-बड़े कम्पनियों की कृषि औजार अथवा कृषि संबंधी वस्तुएँ खरीद कर वैश्वीकरण का हिस्सा तो बनते हैं, परंतु इसी वैश्वीकरण की बाजार मंडियों में किसानों की फसलों का उचित मूल्य नहीं मिलने से उसकी किसानी कर्ज में चलती है। कृषि-जीवन की समस्याओं के कारणों को हिंदी के उपन्यासोंने यथार्थ रूप में परिलक्षित कर ने की पूरी कोशिश की है, वह निम्नांकित बिंदुओंकेद्वारा देखा जा सकता हैं।

प्राकृतिक आपदा :

भारतीय किसानी प्राकृतिक मौसम पर निर्भर होने के कारण किसानों को सूखा, अकाल और कई प्राकृतिक आपदाओं के कारण खेती का नुकसान होने की परंपरा सदियों से चली आ रही है। इसी को हिंदी उपन्यासों ने किसानों की समस्याओं के पीछे अन्य कारणों के समान इसे भी प्रमुख कारणों के रूप में चित्रित किया है।

'गोदान' में प्राकृतिक बदलते मौसम के कारण किसानों की किसानी बदहाली में चलने के कई उदाहरण प्रेमचंद चित्रित किए हैं। सही समय पर बारिश न होने के कारण किसानों की उपज कम होती रहती है जो होती है वह कर्ज के ब्याज चुकाने में ही चली जाती है। इसलिए होरी, सोना, हीरा जैसे कई किसान भारतीय किसानों के समान प्राकृतिक मौसम के कारण शोषित होते रहते हैं और उनके खेत भी। प्रेमचंद के शब्दों में-''भीतर बड़ी उमस हो रही थी। हवा बंद थी। एक पत्ती न हिलती थी। बादल छाये हुए थे; पर वर्षा के लक्षण न थे। ...मगर जब चौमास आ गया और वर्षा न हुई तो समस्या अत्यन्त जटिल हो गई। सावन का महीना आ गया था और बगूले उठ रहे थे। कुओं का पानी भी सूख गया था और ऊख ताप से जली जा रही थी। नदी से थोड़ा-थोड़ा पानी मिलता था। मगर उसके पीछे आए दिन लाठियाँ निकलती थी। यहाँ तक कि नदी ने भी जवाब दे दिया।''[1]

कर्ज :

भारतीय हिंदी उपन्यासों ने किसानों की समस्याओं के लिए बैंक, साहूकारों, महाजनों द्वारा लिए कर्ज का कारण मानते हैं। इसके कई उदाहरण गोदान उपन्यास से ही शुरू होते हैं। होरी अपनी डूबती किसानी और पारिवारिक जरूरतों को पूरा करने के लिए कर्ज लेता है। दुलारी, मंगरु, दातादीन से कर्ज लेकर बेटियों की शादी और बीज, खाद के लिए हर बार कर्ज लेने की नौबत आती है। इस कर्ज के सूद की दरें इतनी भयावह हैं कि इसमें फँसा आदमी निकलना तो दूर निकलने का रास्ता भी नहीं ढूँढ़ पाता। होरी यह समझता है कि कर्ज ऐसा मेहमान है जो घर आने के बाद जाने का नाम नही

लेता, लेकिन किसान बार-बार अपनी दरिद्रता और घाटे में चलती किसानी के कारण मजबूरी में कर्ज लेता है। इसी कारण होरी दातादीन से तीस रूपये लेकर आलू बोये थे। आलू तो चोर खोद कर ले गए; लेकिन वे तीस रूपये सुरसा के मुँह की भाँति बढ़ते चले जाते हैं। इन कर्ज के भारों से दबा हुआ होरी अंतत: अपने ही खेत में बंधुआ मजदूर बनने के लिए विवश हो जाता है। दातादीन उससे कहता हैं-''तुम्हारी मजूरी के बदले हर महीने तीन रूपये सूद से कटते चले जायेंगे।''[2] दातादीन की यह महाजनी सूद की अमानवीय परिणति है, जो होरी, जैसे किसानों को कर्ज के कारण शिकार बनाती है। गाँव के अन्य किसान भी कर्ज से शोषित है। होरी के ही भाई शोभा और हीरा पर चार-चार सौ का कर्ज था, जबकि उन्हें अलग हुए तीन वर्ष ही हुए थे। फिर कर्ज से परेशान हर बार की फसल उसी के कर्ज के सूद देने में निकल जाती है और होरी अपने बेटी सोना के विवाह के अवसर पर उसके ससुरालवालों की तरफ से कोई भी माँग न होने पर दो सौ रूपये कर्ज लेकर धूमधाम से अपनी खोखली प्रतिष्ठा के साथ विवाह करता है। होरी को कभी बीज के लिए, कभी बैल के लिए, कभी पुलिस से भाई के घर की तलाशी रोकने के लिए होरी कर्ज के तले दबता जाता है। इस प्रकार होरी भारतीय किसानों के सामने कर्ज के कारण आर्थिक विपन्नता से जूझता रहता है।

वैश्वीकरण:

वैश्वीकरण का आर्थिक नीति भारतीय किसानों के समस्याओं के कारण बनी है। भारतीय किसानों की आत्महत्या यह वैश्वीकरण की असफलता बतलाता है। कृषि क्षेत्र में खुली अर्थव्यवस्था के चलते उदारीकरण, औद्योगीकरण और बाजारवाद की कुटिल व्यवस्था के कारण किसानों की लूट के कारण वह शोषित हो रहा है। इसी बात की सच्चाई हिंदी उपन्यासों ने चित्रित की है। वैश्वीकरण के कारण यांत्रिक खेती समय की माँग होने के कारण ट्रैक्टर, महँगे बीज, खाद, कीटनाशक की वजह से किसानों का लागत मूल्य बढ़ रहा है साथ ही उदारीकरण और बाजारवादी व्यवस्था के पूँजीवादी व्यवस्था और उपभोक्तावादी संस्कृति का चलन तेजी से बढ़ने के कारण भारतीय किसानों की समस्याओं में बढ़ोत्तरी हो गयी है। आधुनिक किसानी करने के लिए कर्ज लेने की नौबत किसानों पर आई। लेकिन आर्थिक क्रिया में किसानों की कृषि एक व्यवसाय के रूप खरी नहीं उतर सकती हैं, क्योंकि 'उत्पादन-उपभोग-विनिमय-निवेश' प्रक्रिया से किसानों की आमदनी को देखा जाय तो किसानी मुनाफा न के बराबर हैं बल्कि नुकसानदायक ही दिखाई देती है।

'नमामि ग्रामम्' उपन्यास में वैश्वीकरण के चलते बाजारवाद के कारण किसानों की लूट के कई उदाहरण मिलते हैं कि किस प्रकार बाजारवादी लुटेरे किसानों को अपनी तिकड़मबाजी से लूटते हैं-''दुनिया का प्रमुख धन अन्न मेरा बेटा किसान उत्पन्न करता है, अत: यह दिन की तरह स्पष्ट है दुनिया के प्रमुख धनकुबेरों में किसानों का नाम प्रथम होना चाहिए। पर ऐसा नहीं है। वे लूट किए जाते हैं। उनकी सिधाई का नाजायज फायदा उठाकर कुछ पेशेवर तिकड़मी जनों ने ऐसा जाल बिछाया कि वे फँसे ही जाते हैं। फिर एक बार फँसने पर तो छुटकारा मिलना कठिन है। किन्तु किसान सीधे जरूरतमंदों को बेच नहीं पाता। यही उसका दुर्भाग्य है।''[3]

बाजारवाद:

आर्थिक बाजारवाद में वस्तु की माँग तथा पूर्ति में असंतुलन के कारण भारतीय किसानों को आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जब किसानों की फसल आती है तो बाजार मंडी में फसल की पूर्ति बढ़कर माँग कम होती है और ऐसी स्थिति का फायदा बनिया लेकर कम-से-कम कीमत पर किसानों का अनाज खरीदकर उसे निश्चित काल के बाद अधिक से अधिक कीमतों में बेचकर मुनाफा कमाता हैं। परंतु इसी बाजारवादी व्यवस्था से किसान शोषित होकर अपने-आप के लिए समस्याओं का पीटारा ही खोलता है। यही उपन्यासों में यथार्थ रूप में चित्रित हुआ है।

'फाँस' उपन्यास बाजारवादी व्यवस्था के चलते निजीकरण द्वारा कपास की फसल को जानबूझकर समर्थन मूल्य घोषित नहीं करके कम दामों में निजी व्यापारियों द्वारा खरीदकर किसानों की आर्थिक लूट की जाती है। संजीव के कलम से ''यही हालत कापूस की है। समर्थन मूल्य घोषित नहीं है और कपास निकाले जाने लगे हैं। घर-घर में इस उजले मेहमान के लिए जगह बनायी जा रही है। कॉटन फेडरेशन तथा सी. सी.आई. के कपास क्रय केन्द्र के खुलने में भी देर है। जिन्हें जल्दी ही वो निजी व्यापारियों या जीनिंग फैक्टरियों को बेचें। धामण गाँव मार्ग तथा दरग्वाहा मार्ग पर जीनिंग फैक्टरियों के कपास की निजी खरीददारी शुरू हो गयी है, जब कि रोगाँव, महागाँव, पुसद, उमरखेड तहसीलों के कपास केंन्द्रों में कपास की पहली चुनाई की फसल बेचने की होड़ लगी हैं। सरकार ने अभी सिर्फ चार बिक्री केंद्र खोले हैं। औने-पौने दाम में बेचने को विवश हैं किसान।''[4]

उदारवाद:

उदारीकरण के चलते औद्योगीकरण को छूट दी गयी। आर्थिक विकास के नाम पर बड़े-बड़े व्यवसाय तथा उद्योंगो को खुली छूट देने के कारण इसका परिणाम किसानों की किसानी और उत्पादन पर पड़ा है। रणेन्द्र ने 'ग्लोबल गाँव के देवता' में इसका चित्रण करते हुए इन बड़ी कम्पनियों की प्रताड़नाओं से आहत आदिवासी किसान रुमझुम प्रधानमंत्री को लिखे पत्र में कहता है-''बीसवीं सदी की हार हमारी असुर जाति की अपने पूरे इतिहास में सबसे बड़ी हार थी। इस बार कथा-कहानी वाले सिंगबोंगा ने नहीं, टाटा जैसी कम्पनियों ने हमारा नाश किया। उनकी फैक्टरियों में बना लोहा, कुदाल, खुरपी, गैंता, खन्ती सुदूर हाटों तक पहुँच गये। हमारे गलाये लोहे के औजारों की पूछ खत्म हो गयी। लोहा गलाने का हजारों-हजार साल का हमारा हुनर धीरे-धीरे खत्म हो गया। ...मजबूरन पाट देवता की छाती पर हल चलाकर हमने खेती शुरू की। किन्तु बॉक्साइट के वैध-अवैध खदान, विशालकाय अजगर की तरह हमारी जमीन को निगलता बढ़ता आ रहा हैं।''[5]

किसानों की निरक्षरता :

किसानों की प्रताड़नाओं के अन्य कारणों में उनकी निरक्षरता भी एक प्रमुख कारणों में से एक माना जाता हैं। निरक्षर किसानों को साहूकारों तथा जमींदार उनके अंगुठे लगवाकर उनकी जमीनों को हड़पने का सिलसिला भारतीय परिवेश सदियों से चलता आया है। इसके कई वास्तव उदाहरण हिंदी उपन्यासों ने चित्रित किए हैं।

प्रेमचंद के 'गोदान' उपन्यास में कृषक जीवन के प्रताड़ना का कारण उनकी निरक्षरता को बड़ी अच्छी दृष्टि से चित्रित किया है। होरी, शोभा तथा हीरा जैसे कई किसान अनपढ़ या निरक्षर होने के कारण अपनी प्रताड़ना के शिकार होते हैं। होरी को अपनी निरक्षरता के कारण जमींदार को कई बार लगान देने की नौबत आती है।

'फाँस' उपन्यास के शिबू, आशा वानखड़े और मोहन जैसे अनपढ़ किसान कई बार अपने व्यवहारों के कारण शोषित होते रहते हैं। अपनी निरक्षरता के कारण वे पारंपारिक कृषि ही करते हैं और इसी कारण बैंक, साहूकारों के कर्ज के कारण ऋणग्रस्त जीवन जीते हैं। शिबू और शकुन निरक्षर होकर भी अपने बेटियों को पढ़ाना चाहते हैं, ताकि खुद के शोषित जीवन के समान अपने संतानों पर ऐसी नौबत ना आए। लेकिन तंगहाली में चलती किसानी के कारण वेअपना यह सपना भी पूरा नहीं कर सकते हैं। इसी आहत से त्रस्त किसान पिता शिबू कहता है-''चाहता तो मैं भी इन्हें आखिरी दम तक पढ़ाना लेकिन शेती में कोई बरक्कत नहीं।''[6]

इस तरह किसान के निरक्षरता के कारण उसके प्रताड़ना में और वृद्धि होती है। गाँव के जमींदार, साहूकार, महाजन अथवा व्यापारी व्यवस्था में उसका शोषण होता रहता हैं। यही यथार्थ उपर्युक्त उपन्यासों में नजर आता है।

पारंपारिक कृषि और पारंपारिक कृषक :

भारतीय किसानों की कम लागत का कारण पारंपारिक कृषि और पारंपारिक कृषक भी माना जाता है। वह आवश्यकता से अधिक फसल उपजाना नहीं चाहता हैं। पारंपारिक कृषि को छोड़कर वह आधुनिक कृषि की ओर बढ़ना ही नहीं चाहता हैं। समय के साथ और जरूरत के हिसाब से कृषि में बदलाव होने चाहिए। लेकिन उसकी सोच परंपरा को छोड़ती नहीं है। विवेकीराय 'नमामि ग्रामम्' में लिखते हैं-''खाद, बीज, सिंचाई, कीड़ों से रक्षा, पशुओं की नस्ल का सुधार, उत्तम चारा, खेत की चकबंदी, सहकारी खेती और को ऑपरेटिव व्यवस्था आदि के बारे में यदि उनमें बातचीत की जाये तो वे इससे अधिक और कुछ नहीं कह पाते कि हमारे यहाँ जो होता आया है, वह अभिष्ट और पर्याप्त हैं। जब उन्नति-अवनति की बाते करें तो वे चट से इसे प्रभू की लीला बता देंगे।''[7] अपने बाप-दादाओं से चली आई कृषि क्रिया उनके लिए वहीं तंत्र होता है। उनमें सुधार करना या कोई नयी तंत्र-व्यवस्था को स्वीकारना उनके लिए कठिन होता है।

राजनीति :

किसानों की उन्नति में राजनीति बाधा बनती है। राजनेता गण अपनी खुद की राजनीति चलाने हेतु से कृषक जीवन की समस्याओं की केवल बाते ही होते है, काम नहीं। सरकारी नीतियों में कृषक प्रमुख रूप में नहीं होता तो उसकी जगह व्यापारी पूँजीपति और बड़े-बड़े कम्पनियों की उन्नति सबसे पहले होती है। किसान तो बस उन्हें वोट डालनेवाले घर के नौकर ही मानते हैं। केवल कर्ज माफी, फसल बीमायोजना और कुछ धानों पर सब्सिडी देकर किसानों को बड़ी चालाकी से खुश करके उनका मूल मुद्दों से ध्यान भटकाने में राजनेता सफल होते हैं। बिजली, पानी और खाद ये महत्वपूर्ण साधन सरकार अथवा राजनेताओं के हाथ में होती है। लेकिन सत्ता किसी की भी हो इन मूल मुद्दों पर जानबूझकर कोई बाते नहीं होती। केवल भावनाओं के माध्यम से सदियों से भारतीय कृषकों को गुमराह करके उनके उन्नति के मार्ग का रोड़ा राजनीति बनी है।

पंकज सुबीर ने अपने 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में भ्रष्ट सरकारी तंत्र की पोल खोलकर यह साबित किया कि राजनीति अपने सरकारी यंत्रणाओं के न्यूनतम समर्थन मूल्य तय होने के बावजूद भी खुद के फायदे के लिए वह जमींस्तर पर कार्यान्वित नहीं करते हैं। परिणामी किसानों की प्रताड़ना तथा अवनति के पीछे सरकारी भ्रष्ट व्यवस्था ही होती है। 'फाँस' उपन्यास में किसानों के साथ राजनीति करके कृषि क्षेत्र के बजाय सरकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की ओर अधिक लक्ष्य केन्द्रीत कर रही है। इन राजनेताओं को किसानी का कुछ पता ही नहीं कि वह कितने हालातों से गुजर रही है। उनके लिए केवल पूँजीपतियों की खुशी महत्त्वपूर्ण है, किसान नहीं।

बिचौलिया (दलाल) :

वैश्वीकरण की बाजारवादी व्यवस्था में बिचौलियों की भूमिका विशेष हो रही है। ग्राहक और उत्पादक के बीच का सौदा करनेवाला बिचौलिया बाजारवादी की मजबूरी होती है। बिचौलिये ऐसी गतिविधियों को करने में माहिर होते हैं, जो उत्पादकों से लेकर अंतिम खरीदारों तक के प्रवाह की प्रक्रिया में सामानों की खरीद और बिक्री में सीधे तौर पर शामिल होते हैं। उनकी स्थिति उत्पादकों और परम खरीदारों के बीच की होती है। कृषि बाजार मंडियों में भी बिचौलियों के द्वारा किसानों की फसल को बनियों को कम-से-कम कीमतों में बिक्री कराने के लिए कार्य करता है। इसलिए बिचौलियों की चालाकी से आम किसान फँसकर अपनी आर्थिक लूट का शिकार होता है।

'फाँस' उपन्यास भी इस बात की पुष्टि करता है कि किसानों की फसल तथा पशु बिक्री के सिलसिलें में बिचौलियों द्वारा किसानों की आर्थिक लूट होती है। किसान साल भर फसल उगाने के लिए कड़ी मेहनत करता है, लेकिन बिचौलियों द्वारा पल भर में ही उनकी फसल कम दामों पर बिक्री करवाकर खुद और बनियों का मुनाफा करता है और किसान अपनी होती हुई लूट को मजबूरी के रूप में देखने का काम करता है। महाराष्ट्र में सोयाबीन फसल के साथ हर बार यही लूट होती है।

आलस और उदासीनता :

हिंदी उपन्यासों का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि किसानों की समस्याओं का आलस और उदासीनता भी एक ऐसा कारण है जो किसानों की उन्नति के लिए रोड़ा साबित हुआ है। डॉ. विवेकीराय ने 'नमामि ग्रामम्' उपन्यास में ग्रामीण किसानों में बढ़ती आलस्य का वास्तव चित्रण किया है। आलस्य प्रवृत्तियों के बढ़ने में भी अनेक कारण हैं। कृषि का काम लगभग तीन महीने में पूर्ण होता है। कृषि बोने के बाद फिर खेत काटने तक किसान निकम्मा बना रहता है। दूसरा काम करने के लिए उसके पास रूपये नहीं रहते हैं। गाँव में कारखाना नहीं रहता है और उनके लिए काम भी नहीं रहता है। गाँव में कुछ किसान एक जगह इकट्ठा होकर गप-शप उड़ाते हैं। आपस में लड़ते हैं। इस प्रकार गाँव में आलस्य बढ़ता है।

सिंचन तथा पानी का अभाव :

कृषि के लिए पानी अहम् घटक है उसके बगैर कृषि-व्यवस्था चलती ही नहीं। आज कल पानी का स्तर जमीन में बहुत दूर तक चला गया है और बारिश की कमी के कारण नदी, नहर जैसे पानी के स्त्रोत सूखते जा रहे हैं। इसलिए पानी तथा सिंचन का अभाव कृषि की समस्या का बहुत बड़ा कारण माना जा रहा है। इसी कारण हिंदी उपन्यास कृषि जीवन का चित्रण करते समय पानी की समस्याओं का चित्रण करना नहीं भूले हैं।

'हलफनामें' उपन्यास में पानी के अभाव को चित्रित करते हुए रामप्रसाद आम किसान के समान पानी की समस्या से जूझ रहा है। वह कर्ज लेकर तीन बोअर वेल भी डलवाता है, लेकिन पानी की कमी दूर नहीं होती। इसी प्रकार कृषि के लिए पानी का अभाव एक बहुत बड़ी समस्या और कृषकों के शोषित जीवन का बहुत बड़ा कारण भी है।

सारांशत: यह कहा जा सकता हैं की कृषक जीवन पर आधारित उपन्यासों में वर्णित कृषक जीवन की समस्याएँ अत्यंत गंभीर हैं। इन समस्याओं के कारण कृषक का जीवन खुशहाल नहीं हैं। कृषक जीवन की समस्याओं की परेशानियों को उपरोक्त कारणों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया हैं। इसके साथ ही किसानों का असंगठन, सरकारी कानून, पैदावार कम होना, अच्छे बीजों का अभाव, तकनीकी अभाव, पूँजी का अभाव, उपजाऊ मिट्टी का क्षरण, परिवहन व्यवस्था का अभाव आदि कारण भी कृषक जीवन की समस्या को प्रस्तुत करते हैं।

संदर्भ सूची :

1) गोदान, प्रेमचंद पृ. सं. 93
2) गोदान, प्रेमचंद पृ. सं. 34
3) नमामि ग्रामम्, डॉ. विवेकीराय पृ.सं. 18
4) फाँस, संजीव पृ. सं. 142
5) ग्लोबल गाँव के देवता, रणेन्द्र पृ. सं. 83-84
6) फाँस, संजीव पृ. सं. 33
7) नमामि ग्रामम्, डॉ. विवेकीराय पृ.सं. 154

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में पारिस्थितिकी चिंतन

प्रो. डॉ. सदानंद भोसले[1] प्रा.एन.बी.एकिले[2]
[1]शोध – निर्देशक सहायक प्राध्यापक , सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय,पुणे
[2]पीएच.डी शोधार्थी, हिन्दी विभाग, शिवराज महाविद्यालय, गडहिंग्लज

आधुनिक साहित्य की नई प्रवृत्ति के रूप में पारिस्थितिकी चिंतन नवीन साहित्यिक जीवन दर्शन बनकर उभरा है। पारिस्थितिकी का नाश उपभोगवादी संस्कृति की खतरनाक परिणति है। पारिस्थितिकी साहित्य में पर्यावरण विनाश और प्राकृतिक संसाधनों की लूट का मुख्य कारण पूंजीवाद और आधुनिक जीवन शैली को माना जाता है। पूंजीवाद विकास शैली ने प्रकृति का जो विनाश किया उसके विरोध में पर्यावरण आंदोलन की शुरुआत हुई। रणधीर सिंह ने पर्यावरण ह्रास का मुख्य कारण पूंजीवाद को माना है। वे लिखते हैं "पर्यावरण या पारिस्थितिकी के प्रति दुनिया की बढ़ती चेतना इस बात को रेखांकित करने में सफल नहीं हो पाई है कि इस ग्रह के लिए खतरा प्रतीत होने वाले विकास के प्रारूप का नाम वास्तव में पूंजीवाद है। यह पूंजीवाद उत्पादन की एक ऐसी व्यवस्था है, जिसका संरचनात्मक तर्क अवश्यंभावी रूप से पर्यावरण को नुकसान पहुंचाता है।"[1] पारिस्थितिकी प्रदूषण की समस्या वर्तमान संदर्भ में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त है। यह केवल भारत ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व की समस्या है।

आज भूमंडलीकरण के दौर में तथाकथित विकास के नाम पर वनों की अंधाधुंध कटाई, समुद्र एवं नदियों की गति और दिशा में मनमाना परिवर्तन, औद्योगिकरण और शहरीकरण, खनिज उत्खनन के नाम पर पारिस्थितिकी तंत्र का आवश्यकता से अधिक दोहन, जैव विविधता का क्रमिक ऱ्हास मनुष्य के सभ्य होते चले जाने का बर्बर इतिहास प्रमाणित कर रहा है। आज अंतरराष्ट्रीय कंपनियां प्रतियोगिता में है कि कौन कामगारों का सबसे अधिक शोषण और पारिस्थितिकी को सबसे अधिक बर्बाद कर सकता है। वर्तमान में विकास का अर्थ है पारिस्थितिकी तंत्र का विनाश और व्यक्ति का अमानवीकरण आज विकास की लालसा एवं मोह में मनुष्य जल, जंगल और जमीन को नष्ट कर रहा है। इक्कीसवीं सदी के प्रतिनिधि उपन्यासों में औद्योगिक क्रांति, मल्टीनेशनल कंपनियों का निर्माण, लोह और युरेनियम खदान का निर्माण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग पेड़-पौधों की कटाई, जीव - जंतुओं का नष्ट होना, पशु - पक्षियों की हत्या, रासायनिक एवं कीटकनाशक पदार्थों के बढ़ते उपयोग के कारण किस प्रकार पारिस्थितिकी तंत्र का ऱ्हास हो रहा है इसका प्रभावशाली विवेचन प्रस्तुत किया है। इसी पारिस्थितिकी तंत्र के ऱ्हास को लोगों तक पहुंचाना और लोगों के अंदर पारिस्थितिकी संरक्षण एवं संवर्धन के प्रति जागरूकता लाना तथा उसे जन आंदोलन बनाना आवश्यक है। आज हिंदी साहित्य के इतिहास में पारिस्थितिकी विषय को आधार बनाकर व्यापक स्तर पर लिखा जा रहा है। पारिस्थितिकी संकट की समस्या पर लिखने वाले हिंदी के प्रतिनिधि उपन्यासकारों में कमलेश्वर, एस.आर.हरनोट, नासिरा शर्मा, शांता कुमार, अभिमन्यु अनंत, कामतानाथ, नवीन जोशी, अलका सरावगी, विद्यासागर नौटियाल, ब्रजेश बर्मन, संजीव, कुसुम कुमार, महुआ माजी, रत्नेश्वर सिंह और भालचंद्र जोशी आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आज संपूर्ण विश्व में विकास की अंधी दौड़ चल रही है। आज का मनुष्य न तो पारिस्थितिकी का ध्यान रख रहा है और न ही अपने संभावित भविष्य का। इस अत्याधिक और नियंत्रित विकास और प्राकृतिक संसाधनों के और अनैतिक दोहन ने मनुष्य के स्वास्थ्य को खतरे में डाल दिया है। आजादी के बाद से देश में खनन उद्योग के विकास पर अधिक ध्यान दिया है। जहां खनन कार्य से एक और भूमि और वायु प्रभावित होती है, वही भूमिगत खुदाई से प्राकृतिक जल - स्रोत और जल - स्तर पर भी प्रभाव पड़ता है। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में महुआ मांजी ने यूरेनियम खनन से उत्पन्न होने वाली विकिरण के दुष्प्रभाव का प्रभावशाली वर्णन किया है। किस तरह यह स्थानीय लोगों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव के साथ-साथ जल के प्राकृतिक स्रोतों को भी प्रदूषित कर रही है। इसके संदर्भ में वे लिखती हैं "आजकल सालों भर हमारे तालाब पानी से लबालब रहते हैं मगर यहां का पानी बहुत भारी हो गया है। सर डुबाओ तो बाल मोटे लगते हैं। साबुन घिसते जाओ घिसते जाओ झाग ही नहीं होता। टेलिंग डैम से रिस रिस कर अंदर ही अंदर आता है यूरेनियम के कचरे का जहरीला पानी। तालाब सूखेगा कैसे? अगर किसी के पांव में घाव हो और पांव टेलिंग डैम के गीले कचरे में पड़ जाये तो साल भर लग जाएगा उस घाव को सूखने में।"[2]

उषा ओझा ने 'बहाव' उपन्यास के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि बहाव में सब कुछ बह गया लेकिन फिर भी जिंदगी का बहाव रुकता नहीं, वह निरंतर चलता रहता है। प्रस्तुत उपन्यास बिहार के जल - प्रलय में चिर समाधिस्थ लोगों की याद को उजागर करता है। सन् 2008 में जब कुहसा तटबंध टूटा तो वह लाखों लोगों की बर्बादी का कारण बना। लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से बिहार में आने

वाली बाढ़ के कारणों की पड़ताल की है, जिसमें मुख्य रूप से तटबंधों को कारण माना गया है। यहां पर उषा ओझा बांध के विरोध में नहीं है। लेकिन उसकी उपयोगिता और निर्माण में हुए भ्रष्टाचार और लापरवाही पर बहुत बड़ा प्रश्नचिन्ह खड़ा करती है। लेखिका बाढ़ पीड़ितों के प्रति अपनी चिंता प्रकट करते हुए लिखती है "लोगों को यह चिंता सताने लगती है कि पानी उतरने के बाद क्या होगा, घर की सारी जमा पूंजी खत्म हो गई बड़े किसान तो किसी तरह इंतजाम कर भी लेंगे, लेकिन छोटे किसानों का क्या होगा? घर मैं खाने के लिए जब अनाज ही नहीं है, तो बुआई के लिए बीज कहां से आएगा? बाजार से खाद, बीज खरीदने के पैसे कहां से आयेंगे? तीन चार महीने के बाद जब शीतलहरी चलेंगी, तब कैसे गुजरेगी इनकी जिंदगी? ठंड कैसे काटेंगे ये? बिना छत के इनकी क्या हालत होगी?"[3] इन सभी प्रश्नों पर चिंता जाहिर करते हुए लेखिका सरकार को यह सुझाव देती है कि फसलें, जो हर साल पानी से तबाह होकर भूखमरी की स्थिति तक पहुंचती है, उसके विकल्प में सरकार पानी से जुड़े व्यवसाय जैसे मखाने, कमलडंडी, कमलगट्टे, सिंघाड़ा आदि फसलें तथा मछली पालन की शुरुआत करके यहां के लोगों को त्रासदी में भी संजीवनी दे सकते हैं।

जल, जमीन, जंगल, विस्थापन, प्रदूषण और विकिरण से जूझते आदिवासी अपनी चेतना व्यक्त करने के लिए आंदोलन का तरीका अपनाते हैं, तो सरकार उन्हें देशद्रोही, आतंकवादी, नक्सलवादी, माओवादी करार देती है। महुआ माजी ने सरकार, पूंजीपति, राजनेता और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा अशिक्षित, असंस्कृत तथा नादान आदिवासियों पर हो रहे शोषण, दोहन तथा रेडियो विकिरण के कारण उनके बिगड़ते स्वास्थ्य का चित्रण भोगे हुए यथार्थ के आधार पर किया है। विकिरण प्रदूषण के फलस्वरुप विकलांगता, बांझपन, टी.बी, कैंसर, फेफड़ों की बीमारी जैसी असाध्य बीमारियों का प्रकोप लगातार बढ़ रहा है। लेखिका लिखती है "हमारे लोग… हमारे जैसे लोग… पहले की तरह विकिरणमुक्त परिवेश में सांस ले पायेंगे। यह कैसी विडंबना है कि हमारी औरतें पांच हो रही है… हमारे बच्चे विकलांग पैदा हो रहे हैं…हमारे लोग जवानी में ही कैंसर या टी.बी से मर रहे हैं और हम इसके विरोध में आवाज उठाते हैं… कोई कदम उठाते हैं तो देशद्रोही करार दिये जाते हैं! कमाल है! यह कैसा लोकतंत्र है? यह कैसी सभ्यता है?"[4] लेखिका ने उपन्यास के नायक सगेन के माध्यम से आदिवासी समाज की पीड़ा एवं दुख को अभिव्यक्त किया है।

समग्र विश्व में वन चेतना जगाने के लिए चिपको आंदोलन की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। चिपको आंदोलन की शुरुआत सत्तर के दशक में हुई और अस्सी के दशक तक इसने व्यापक रूप ग्रहण किया। सन 1981 ई. में उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्र में चिपको आंदोलन का प्रादुर्भाव हुआ था। एक हजार मीटर से अधिक ऊंचाई के क्षेत्र में हरे - भरे पेड़ों की व्यापारिक कटाई पर पाबंदी लगाकर चिपको आंदोलन की धार को और अधिक मजबूत किया था। 'दावानल' उपन्यास में नवीन जोशी ने अपनी सशक्त लेखनी के माध्यम से एक अछूते विषय चिपको आंदोलन की रोमांचकारी और त्रासद कथा को बड़े प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। उन्होंने विकास के नाम पर सड़कों का जाल बिछाने के लिए किस प्रकार तेजी से जंगलों का दोहन किया जा रहा है। इसका प्रभावशाली विवेचन प्रस्तुत करते हुए लिखा है " विकास के नाम पर बिछाए जाते सड़कों के जाल ने जंगलों के सफाए में मदद की। जंगल तेजी से साफ हो रहे थे और गुलाम भारत में उपलब्ध थोड़ी - बहुत वन - सुविधाएं भी आजाद भारत में छिनती गई। बड़ी-बड़ी कंपनियों को विशाल वन-क्षेत्र कई-कई बरस के लिए औने-पौने भाव बेच दिए गए। ठेकेदार वन अधिकारियों की मिलीभगत से जंगलों का सफाया करते और अपनी तिजोरियां भरते रहे।"[5] स्पष्ट है कि गुलाम भारत में जो कुछ हरियाली बची थी उसे स्वतंत्र भारत में विकास के नाम पर ठेकेदार एवं अधिकारियों की मिलीभगत तथा बड़ी-बड़ी कंपनियों के द्वारा बड़ी तेजी से नष्ट किया जा रहा है।

भारतीय संस्कृति में मनुष्य तथा अन्य जीव-जंतुओं के साथ ही प्रकृति के पारस्परिक संबंध तथा सह अस्तित्व के महत्व को आरंभिक काल से ही पहचाना गया है। वैदिक मंत्रों में मनुष्य और प्रकृति के पारस्परिक सहयोग एवं सद्भाव के चित्रों के साथ ही संपूर्ण जीव जगत में शांति की कामना व्यक्त हुई है। बौद्ध और जैन साहित्य में जीव-जंतुओं के दया, करुणा की गहन भावना का वर्णन करते हुए अहिंसा धर्म को मनुष्य का परम धर्म माना गया है। आधुनिक युग में मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधाओं के लिए प्रकृति का इस तरह दोहन शुरू किया कि जीव-जंतुओं का अस्तित्व ही खतरे में पड़ा है। अपने प्रवृत्ति विजय के अहंकारपूर्ण अभियान में मनुष्य ने अपने ही अस्तित्व के लिए खतरे उत्पन्न कर लिए हैं। प्रसिद्ध उपन्यासकार कमलेश्वर ने 'अनबीता व्यतीत' उपन्यास में जीव-जंतुओं के प्रति बाजारवादी मानसिकता को प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं " बाजारवाद के अपने व्यापारिक नियम हैं! टूरिस्टों को आकर्षित करने और रिझाने के लिए हमने भी यदि हांगकांग और सिंगापुर फार्मूले अपनाएं, तब तो सब-कुछ नष्ट हो जाएगा! सिंगापुर-हांगकांग के रेस्टोरेंट्स में ग्लास टैक्स में तैरती जिंदा मछलियों, केकड़ों और लाॅब्सटर्स को दिखाकर वे पूछते हैं कि इनमें से आप किस मछली, केकड़े या झींगे को पसंद करेंगे और चुनाव के बाद वही जिंदा

मछली, केकड़ा या शाही झींगा आपकी प्लेट में पक कर आ जाता है। सर! सोचिए… यह कितना अमानवीय है?"[6] स्पष्ट है कि लेखक ने पर्यटन व्यवसाय एवं बाजारवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के लिए पाश्चात्य देशों का अंधानुकरण करने वाली प्रवृत्ति का डटकर विरोध किया है। वर्तमान समय में औद्योगिकीकरण के कारण वायुमंडल में जहरीली गैस की मात्रा अधिक बढ़ रही है। मुझे लगता है कि औद्योगिकीकरण पारिस्थितिकी संकट पैदा करने में सबसे बड़ा कारण रहा है। औद्योगिकीकरण ने विकास तो दिया है लेकिन वायु प्रदूषण का उपहार भी तो हमें दिया है। 2 दिसंबर 1984 ई. को भोपाल की यूनियन कार्बाइड कारखाने से निकली जहरीली गैस से हाहाकार मचा था। इस भयानक हादसे का जिक्र 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में अलका सरावगी ने विवेक देवराय और भट्ट के वार्तालाप के माध्यम से प्रस्तुत किया है। वे लिखती है " भोपाल में जब यूनियन कार्बाइड की फैक्टरी से जहरीली गैस फैली होगी, उसके पहले क्या उन लोगों ने सोचा होगा कि उनकी जिंदगी इस तरह अचानक तबाह हो जाएगी।"[7] भोपाल गैस कांड में जहरीली हवा के वर्षन से सांस घुटकर तीन हजार से अधिक लोगों की मौत हुई थी। कई लोग शारीरिक एवं बौद्धिक विकलांगता के शिकार हुए थे। आज कई तरह के गैसों की वजह से अल्ट्रावायलेट रेस को रोकने वाली ओजोन परत कम होती जा रही है। उसमें छेद तो पड़ ही चुका है और आज भी यह छेद बढ़ता ही जा रहा है। छेद का बढ़ना पारिस्थितिकी के अस्तित्व के लिए खतरें की घंटी है।

आज मनुष्य के द्वारा जीव-जंतुओं का व्यापक मात्रा में उपभोग किया जा रहा है। विश्व में जीव-जंतुओं को सबसे अधिक खतरा चीनी लोगों से है। चीन ने दुनिया को न सिर्फ महामारियां दी है, बल्कि चीन के जीव - जंतु को खाने की आदत ने कई जंतुओं को उनके विलुप्त होने के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। "रह गई दिशाएं इस पार" उपन्यास में संजीव लिखते हैं " जो भी चीज पानी में तैरती हो चीनी उसे खा सकते हैं सिर्फ पानी वाले जहाज और नावे छोड़कर।"[8] दुनिया के हर देश में खानपान की अलग-अलग परंपराएं हैं। लेकिन चीन एक ऐसा देश है जहां जीव-जंतु को जिंदा ही खाया जाता है। पारिस्थितिकी तंत्र एवं मानव जाति को अगर बचाना है तो हमें तुरंत जीव-जंतुओं की उपभोक्तावादी संस्कृति पर लगाम लगाना अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि पारिस्थितिकी चिंतन मनुष्य सहित समस्त जीवों के अस्तित्व एवं भविष्य से संबंधित विचार है। वर्तमान पारिस्थितिकी संकट वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक विकास, औद्योगिकरण, शहरीकरण, भूमंडलीकरण, उपभोक्तावादी संस्कृति, बढ़ती जनसंख्या आदि का संयुक्त परिणाम है। मानव के भोगवादी प्रवृत्ति ने आज प्रकृति के संतुलन को खतरे में डाल दिया है। यही कारण है कि हमें अकाल, बाढ़, सूखा, सुनामी, भूस्खलन आदि समस्याओं का निरंतर सामना करना पड़ रहा है। अंततः इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों की संवेदना प्रकृति तथा पारिस्थितिकी पर हो रहे शोषण तथा अत्याचार को लेकर प्रस्तुत हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. पारिस्थितिकी संकट और समाजवाद का भविष्य - रणधीर सिंह, पृ. 98
2. मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ - महुआ माजी, पृ. 84
3. बहाव - उषा ओझा, पृ. 94
4. मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ - महुआ माजी, पृ. 249
5. दावानल - नवीन जोशी, पृ. 63-64
6. अनबीता व्यतीत - कमलेश्वर पृ. 130-131
7. एक ब्रेक के बाद - अलका सरावगी, पृ. 127
8. रह गई दिशाएं इस पार - संजीव

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr -2022

राष्ट्र के उन्नयन के लिए आदर्श चरित्रों की आवश्यकता : 'मिल्कियत की बागडोर

डॉ. एकनाथ श्रीपती पाटील
राधानगरी महाविद्यालय, राधानगरी, ग्राम-कुरुकली, तहसील-करवीर, जिला-कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
पिन- 416001

समाज में नीति, नीतिमान, नैतिकता और नैतिक आचरण इन शब्दों का एक सामाजिक, सांस्कृतिक महत्त्व अधोरेखित है। व्यक्ति के कैसे आचरण से व्यष्टि तथा समष्टि का हित साधन होगा इसका मार्गदर्शन नीति विचार से मिलता है। कौन-सा आचरण, कौन-सी कृति नैतिक दृष्टि से योग्य है इसके कुछ नियम नीति विचार में मिलते हैं। किन मूल्यों, आदर्शों का हमें स्वीकार करना होगा इस बात को समझाते हैं। लेकिन ये आदर्श केवल विचारों के स्तर पर सीमित रहे तो अनुपयुक्त होंगे, उन्हें अपने आचरण के स्तर तक लाना ही होगा। जयनंदन के 'मिल्कियत की बागडोर' इस उपन्यास के फहीम साहब तथा विनायक ये दो प्रमुख पात्र अपने जीवन में आदर्शों को आचरण में उतारकर एक ओर गाँव-घर-परिवार-समाज तथा राष्ट्र में अपने व्यक्तित्व को ऊँचे स्तर तक उठाते हैं तो दूसरे स्तर अपने गाँव के नवनिर्माण को नई दिशा देने प्रयासरत दिखाई देते हैं। जयनंदन आदर्श शोषणमुक्त समाज निर्माण में कृतसंकल्प है। लेकिन समाज जीवन में ऐसे आदर्श धूमिल पड़े हैं और भ्रष्ट लोगों की आवाज अधिक सुनाई दे रही है। सत्ता, संपत्ति का मोह तथा उपभोग की अति कामना ने मनुष्य के भीतर भ्रष्ट प्रवृत्ति का अतिरेक हुआ है। जिनके हाथ आज घर-परिवार, गाँव, संस्था, राज्य तथा राष्ट्र की बागडोर है, वे विश्वस्त अधिकतर भ्रष्ट है। विश्वस्त मालिक बन बैठे हैं। आज सार्वजनिक सेवा संस्थाओं का खुलकर निजीकरण हो रहा है। समष्टि के हित के लिए बनाई गई ये संस्थाएँ व्यष्टि के हाथ में चली गई है। ऐसे भ्रष्ट, अन्याय-अत्याचार, शोषणयुक्त समाज जीवन को आदर्श जीवन ज्योति के प्रकाश से नई राह दिखाने का प्रयास जयनंदन प्रस्तुत उपन्यास से करते दिखाई देते हैं।

'मिल्कियत की बागडोर' उपन्यास को पढ़ने के बाद हमें नागार्जुन के 'दुखमोचन' उपन्यास की याद आती है जिसमें आदर्श चरित्र दुखमोचन के नेतृत्व में गाँव के नवनिर्माण के लिए सामूहिक प्रयास करने का चित्रण है। डॉ. तेज सिंह के अनुसार "उपन्यासकार ऐसे पात्रों की सृष्टि करता है, जो मानवीय गुण-दोषों से संपन्न होते हैं और जिनमें जीवन-मूल्यों को वहन करने का सामर्थ्य होता है, संवेदनशीलता होती है और सबसे बड़ी बात उनकी स्वाभाविकता होती है।"[1] 'मिल्कियत की बागडोर' उपन्यास में लेखक जयनंदन ने आदर्श पात्रों की सृष्टि अधिक मात्रा में की हुई है। इसमें दो भिन्न धर्म में स्थित आदर्श पात्र अपने गाँव, घर-परिवार के लिए नवनिर्माण करते हैं। इसमें फहीम साहब तथा विनायक इन दो आदर्श चरित्रों के साथ खलपात्रों में दीनदयाल, छोटी बहू साजिया खातून और ताहिर मियाँ का चित्रण करके सुष्ट और दुष्ट प्रवृत्ति का संघर्ष चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यास दो भिन्न धर्मों के आदर्श नायकों के चित्रण के साथ हिंदू-मुस्लिम के बीच सांझी तथा सामासिक संस्कृति के निर्माण का संदेश देता हुआ दिखाई देता है। यह कहानी एक ओर गाँव तथा किसानों के हित के लिए किए गए आधुनिक विचारों को प्रस्तुत करती है तो दूसरी ओर फहीम साहब के बड़ी इस्टेट के लिए एक सुयोग्य कारोबारी वारिस के चुनाव को सामने रखती है।

महद्दीपुर इस्टेट के सर्वेसर्वा अब्दुल फहीम है। इस्टेट की बड़ी जमीन-जोत शुरू से ही उन्हें एक समस्या लगी थी। उनका अपने रिश्तेदारों, मुलांजिमो और गाँववालों के साथ का रिश्ता प्यार-मोहब्बत, हमदर्दी तथा अभिभावक का रहा है। फहीम साहब की कोई संतान नहीं है और पत्नी के मृत्यु के बाद उन्होंने दूसरी शादी नहीं की। वे अपने इस्टेट के लिए सही वारिस के लिए चिंतीत थे। क्योंकि उनके चारो भतीजे "चारों के चारों दिमाग से खाली और अक्ल से पैदल थे। वे अजीब-अजीब हरकते करते हुए गाँव में हँसी-मजाक के केंद्र बने रहते थे।"[2] फहीम साहब अपनी जमीन गाँव के गरीब तथा छोटे किसानों को बटाई पर देते थे। गाँव के झगड़ों का उचित न्याय कर किसी के भी प्रति अपना-पराया भेद नहीं रखते थे। वे सभी जात-धर्म का आदर करनेवाले इन्सान हैं। रमजान में इफ्तार खिलाने, कपड़े तथा खैरात बाँटने का रिवाज रखते हैं। घसीटन की गालियाँ सुनकर भी उसे माफ कर उसके बेटे को नौकरी पर रखते हैं। "एक महीने तक अगर वे इफ्तार खिला सकते थे तो मंदिर की तोड़ दी गई मूर्तियाँ भी बनवा सकते थे। किसी के साथ नाइंसाफी हो रही है तो वे उसके पक्ष में खड़े होने में जरा-भी झिझक महसूस नहीं करते थे।"[3] हनकी बूढ़ी की जमीन जायदाद छीननेवाले उसके जेठ के बेटे को उचित समय पर सबक सिखाते हैं। हनकी अपने बीमार बेटे के स्वास्थ्य लाभ के लिए मंदिर में प्रार्थना करती है। दीनदयाल उसकी जगहँसाई करता है। अतः बेटे को स्वास्थ्य लाभ न होते देख हनकी मंदिर की मूर्तियाँ तोड़ देती है। दीनदयाल मूर्तियाँ तुड़वाने के पीछे फहीम साहब होने का झूठा प्रचार कर हिंदू-मुस्लिम के बीच दंगा करवाने का तथा गाँववालों के नजरों में फहीम साहब को गिराने का प्रयास करता है मगर नाकाम होता है। हनकी द्वारा तुड़वाई मूर्तियाँ फहीम साहब अपने खर्चे से फिर से बनवाते हैं। अपने इस्टेट में हिंदू-मुस्लिम नौकरों की नियुक्ति कर अपने धर्मनिरपेक्ष होने की पुष्टि करते हैं तथा उनका विश्वासपात्र नौकर रामधनी महतो एक हिंदू है।

फहीम साहब अपने बावर्ची मदक्की की बेटी नूरानी के कॉलेज की पढ़ाई के लिए प्रोत्साहित करते हैं। नूरानी अपने सहपाठी विनायक से प्रेम करती है। विनायक काबिल और होनहार लड़का है। विनायक के माँ-बाप नूरानी को अपनी बहू के रूप में अपनाना चाहते हैं मगर मदक्की को हिंदू लड़के से शादी मंजूर नहीं है। प्रस्तुत उपन्यास का दीनदयाल खल पात्र है। हर अच्छाई में बुराई ढूँढ़ना उसका काम बन गया है। फहीम साहब विनायक-नूरानी की शादी कराने मदक्की को समझा-बुझाकर तैयार करवाते हैं मगर दीनदयाल मदक्की को बहकता है, "विनायक खांटी हिंदू नहीं है और उसकी हैसियत भी नहीं है। फहीम साहब का दिमाग बूढ़ापे के कारण बहक गया है जो एक मुसलमान लड़की की शादी हिंदू लड़के से करवा रहे हैं।" जात-धर्म का भूत सवार मदक्की दीनदयाल की बातों में आकर नूरानी को लेकर शहर भाग जाता है और वहाँ उसकी शादी बीड़ी व्यवसायी सोबराती से करवाता है।

अमलदार अशरफखान ने फहीम साहब के पीठ पीछे काश्तकारों से बटाई के खेत छीन लेने से गुस्सा हुए उनके लड़के फहीम साहब के कार के काँच तोड़ देते हैं। बराहील उन लड़कों को पकड़कर पीटने लगते हैं तो विनायक आगे आकर उनका जुर्म अपने सर लेता है। दोस्तो का जुर्म अपने सर

पर लेनेवाले विनायक पर फहीम साहब की दृष्टि केंद्रित होकर उसे लेकर वे भविष्य के सपने संजोने लगते हैं। विनायक अध्यवसायी छात्र है, "वह कॉलेज में पढ़ता था और खेती करने में अपने माँ-बाप के हर काम में हाथ बटांता था।...कम खेत हो और उसी पर परिवार की निर्भरता हो तथा जन मजदूर लगाने की औकात न हो तो खुद ही हाड़तोड़ मेहनत करने के अलावा कोई उपाय नहीं।"[4] विनायक निम्नवर्णिय माँ-बाप की संतान है जिनके पास कम जमीन तथा वे बंटाई की खेती करते हैं। विनायक के पिता हरखित और मंजौर के लाछो प्रजापति दोनों खेत की जुताई हरसज (सांझेदारी) में करते हैं। लाछो प्रजापति की बेटी मुंदरी विनायक के ही कक्षा और कॉलेज में पढ़ती है। विनायक-मुंदरी-नूरानी में नजदीकी दोस्ताना है जो उनके आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक स्थिति एक जैसी होने के कारण मजबूत बना है। विनायक और उसके पिता में परोपकार के संस्कार विद्यमान है। नूरानी के पिता मदक्की फहीम साहब की सेवा में होने के कारण उसके खेत की जुताई-बुआई विनायक अपने पिता की सहायता से करवाता है। नूरानी के चले जाने से विनायक के खालीपन को मुंदरी भर देती है। नूरानी के बाप की सोच एक पारंपरिक मुसलमान की थी। फहीम साहब जैसे उदार हृदय इन्सान के साथ रहकर भी उसके सोच में बदलाव नहीं आता। फहीम साहब शुरू-शुरू में अपनी खेती मजदूरों की सहायता से करते थे। फहीम साहब संवेदनशील जमींदार है, उनके खेत में काम करनेवाले मजदूरों को 'मेहनत मजूरी के उचित और नियमित दाम मिलने से मुसहरी खुश थी।' विनायक मुसहरी के लोगों की जीविका चलाने फहीम साहब से बंटाई पर खेत दिलवाता है।

गाँव की बढ़ती विपन्नता, बढ़ती आबादी और घटता कृषि क्षेत्र जिससे किसानों की आर्थिक दयनीयता, किसानों का शहर में जाकर मजदूरी करना आदि पर विनायक और उसके दोस्त विचार करते हैं। महद्दीपुर में रचनात्मक कार्य करनेवाले युवक विनायक को अपना नायक मानते हैं और खेत तथा किसानों के लिए कार्य करने की ठान लेते हैं, "गाँव की तकदीर बदलने की दिशा में हमें काम करना है, दोस्त। क्या किया जाये कि छोटे किसान कम से कम पूँजी और मेहनत लगाकर ज्यादा से ज्यादा फसल उगा सके और हरसाल दो-तीन-चार महीने की भूखमरी से निजात पा सके।"[5] गाँव के नवनिर्माण के लिए फहीम साहब से सलाह-मशवरा लेकर चकबंदी के साथ सामूहिक ट्रैक्टर, थ्रेसर तथा कटाई मशीन लाने का विचार करते हैं। नूरानी के प्यार में चोट खाये विनायक को उसके दोस्त गाँव तथा किसानों की तकदीर बदलने कर्मठ और जुझारू कार्यकर्ता बनने की सलाह देते हैं।

हिंदू हनुमंती देवी की इच्छा थी कि उसके मृत्यु के बाद उसकी देह कब्रिस्तान में दफनाये जाय। इन्सानियत का फर्ज निभानेवाले फहीम साहब मुस्लिम समाज के विरोध के बावजूद उसकी देह कब्रिस्तान में दफनाने की इजाजत देते हैं। मानवतावादी दृष्टि रखनेवाले फहीम साहब को आहत करने हेतु दीनदयाल उनके घर की औरतों को उकसाकर गृहकलह निर्माण करने की योजना बनाता है। छोटी बहू दीनदयाल की बातों में आकर इस्टेट के बंटवारे तथा वारिस बनाने हेतु वह अपने तीनों जेठानियों को फुसलाने लगती है मगर तीनों फहीम साहब पर भरोसा करती है। दीनदयाल द्वारा बहुओं को भड़काने की की गई कोशिश की पूरी जानकारी उन्हें मालूम होती है याने फहीम साहब अपने दुश्मनों के चाल के प्रति सतर्क है। स्वयं छोटी बहू दीनदयाल की बातों में आने की स्वीकृति देती है तो उसे वे माफ करते हैं। हनकी बूढ़ी द्वारा दीनदयाल को गालियाँ बकने की परंपरा का पालन उनकी बहुएँ भी जारी रखती है तो क्रोधित दीनदयाल हनकी की बड़ी बहू को अगवा करता है। फहीम साहब पुलिस की सहायता से अपहरण मामले में दीनदयाल को अपराधी सिद्ध करते हैं। दीनदयाल द्वारा अपनी गलती कबूल करने पर उसे जतिन-विपिन की जायदाद का सही बंटवारा करवाने मजबूर करवाते हैं। प्रस्तुत उपन्यास की कलबतियाँ पासीन भी एक आदर्श स्त्री पात्र है। कलबतियाँ रामधानी महतों की दूसरी पत्नी है। रामधानी महतो के पहली पत्नी के बेटे अपनी जमीन-जायदाद का बंटवारा कर अलग-अलग रहना चाहते थे। ऐसे में कलबतिया का बेटा अपने आधे हिस्से की माँग करता है। आधा हिस्सा अगर किशुन को दिया जाय तो बची जमीन से तीनों का गुजारा संभव नहीं है। यह बात कलबतिया को समझती है, तो वह अपने बेटे को जायदाद का हिस्सा न माँगने की सलाह देती है और सौत के बेटों को संदेश भेजती है कि, "तीनों लड़कवन के जाके बोलही कि हम हिस्सा लेवे के जिद तबे छोडवऊ जब तुम सब जुदा होवेके जिद छोड़के ऐके साथ रहेके फैसला कर लेम्ही।"[6] दीनदयाल रामधनी महतों के बेटों में बंटवारे को लेकर झगड़ा करवाना चाहता था लेकिन कलबतिया के सोच-समझ के कारण यह नहीं हो सका।

फहीम साहब के भतीजों में एक भी व्यक्ति काबिल न होने के कारण इस्टेट के वारिस को लेकर उन्हें चिंता सताने लगी थी। इस्टेट सँभालने विनायक को कारोबारी वारिस बनाने का विचार उनके दिमाग में था और इसके लिए वे नबीउल्लाह से विचार-विमर्श करते हैं। नबीउल्लाह भी उन्हें सलाह देते हैं, "लड़का तो बहुत जहीन और होशियार है। गाँव के दुख-दर्द और खेती-बारी के तमाम झंझटों की उसे बहुत गहरी समझ है। उसमें कोई जातीय मजहबी दकियानूसपन भी नहीं है। मुंसिफाना (न्यायप्रिय) होकर संभाल सकता है वह आपकी विरासत।"[7] नबीउल्लाह के जरिए फहीम साहब अपने बहुओं के विचारों को टटोलते हैं। पहले वे दीगर जात-धर्म का कहकर विरोध करती है मगर छोटी बहू को छोड़कर तीनों बहुए फहीम साहब पर भरोसा करती है।

बी.एस्सी के बाद आगे की पढ़ाई के लिए विश्वविद्यालय जाना विनायक के बस की बात नहीं थी। फहीम साहब विनायक और नूरी को आई.आई.टी. भेजने की घोषणा बी.एस्सी. पास कर गए छात्रों का अभिनंदन करते समय करते हैं। फहीम साहब अपने गाँव की जर्जर, पिछड़ी हुई छवी सुधारने हेतु गाँव के प्रतिभासंपन्न युवकों को आर्थिक सहायता देकर पढ़ने भेज देते हैं। विनायक के हाथ इस्टेट की बागडोर सौंपने का विचार जब से फहीम साहब ने शुरू किया तो तुरंत छोटी बहू अपने भाई ताहिर हुसैन को महद्दीपुर बुलाती है। ताहिर को महद्दीपुर बुलाने का छोटी बहू का उद्देश्य फहीम साहब के समझ में आता है। ताहिर से हुई बातचीत में उसके सामान्य किस्म का होने का अहसास फहीम साहब को हो जाता है। इस्टेट में रहकर ताहिर मनमानी करने लगता है, 'ताहिर का पूरी रफ्तार से बेकाबू हालत में ट्रैक्टर को भगाये जाना तथा उसने इदरीश बराहिल को मारपीट करना आदि। ताहिर के मनमानी के किस्से फहीम साहब तक पहुँच जाते हैं तो फहीम साहब सोच समझकर इदरीश में सोची हुई प्रतिशोध की भावना जगाकर ताहिर को सबक सिखाते हैं।

शहर में मदक्की ठोकरे खाकर नूरानी को लेकर गाँव आता है। गाँव आयी नूरानी के दिल में विनायक के लिए उतना ही प्रेम देखकर मुंदरी उन दोनों के रास्ते से हटने का निर्णय करती है। मगर नूरानी उसे कहती है, "मोहब्बत तो हम एक-दूसरे से करते रहेंगे मुंदी। लेकिन तुम उदास मत होओं, विनु की शादी तुम्हीं से होंगी।" इस तरह नूरानी और मुंदरी दोनों एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करनेवाली आदर्श प्रेमिका, सखी के रूप में चित्रित है। नूरानी का पति सोबराती को विनायक-नूरानी की प्रेम-कहानी मालूम होने के बाद भी वह नूरानी को विनायक के साथ पढ़ने राँची भेज देता है, जिससे

सोबराती के हृदय की विशालता का तथा नूरानी को छह साल तक छोड़ चले गए सोबराती को नूरी द्वारा फिर से अपनाने से नूरी में स्थित आदर्श पत्नी का साक्षात्कार होता है।

ताहिर के कारनामें दिन-ब-दिन बढ़कर उसकी गैंग शराब, गांजा, ताश और जुआ में मस्त धींगामुश्ती तथा गाँव की गरीब घर की लड़कियों का यौन शोषण करते हैं। इसमें गोरा और लदका मांझी की लड़कियाँ गर्भवती हो जाती है। विनायक डी.एन.ए. चिकित्सा करके जिसका भी गर्भ हो उसके साथ लड़कियों की शादी का प्रस्ताव रखता है। इससे क्रोधित होकर ताहिर तथा उसके साथी मुसहरी जाकर लड़कियों को मारपीट कर धमकाते हैं। दीनदयाल की सहायता से लड़कियों को अगवा कर उनका गर्भ गिराते हैं। इस षडयंत्र में ताहिर के साथी मोहाजिर को फंसाते हैं लेकिन पुलिस तहकिकात में दीनदयाल और छोटी बहू अपराधी साबित होकर उन्हें हवालत भेजा जाता है। छोटी बहू के आचरण से फहीम साहब आहत हो जाते हैं। जमानत पर छूटकर तीनों चोट खाये नाग की तरह डंस कर बदला लेने सक्रिय हो जाते हैं।

विनायक और नूरी को आगे की पढ़ाई के लिए राँची भेज दिया जाता है। छोटी बहू ताहिर को भी राँची भेज देती है मगर पढ़ाई के नाम पर वह आशिकी, लड़कियों की छेड़छाड़ तथा बदतमीजी के कारण उसे कोचिंग से निकाल दिया जाता है। ईमानदार और न्यायप्रिय फहीम साहब छोटी बहू की कारगुजारियों से तंग आकर इस्टेट का बंटवारा करने तैयार हो जाते हैं। मगर छोटी को छोड़कर तीनों बहुएँ फहीम साहब की छत्र-छाया में रहने का निर्णय करती हैं। छोटी बहू इस्टेट पाने अब नयी-नयी चाल चलाने की सोचती रहती है।

बेटे की कामयाबी से आनंदित विनायक की माँ छट का व्रत रखती है मगर साम्प्रदायिक भेदभाव का पाखंड रखनेवाला दीनदयाल उसे अपने तालाब में अर्घ्य देने मना करता है तो फहीम साहब अपना तालाब खोल देते हैं। विनू के माँ के साथ गाँवभर की महिलाएँ उसी तालाब में अर्घ्य देकर छट पूजा करती है। सभी धर्मों का आदर रखनेवाले फहीम साहब टूसरी के हाथ से प्रसाद ग्रहण करते हैं। इंजीनियरिंग तथा एम.बी.ए. की पढ़ाई पूरी करनेवाले विनायक और नूरी को अपने इस्टेट का कारोबारी वारिस नियुक्ति की घोषणा फहीम साहब करते हैं, "अगर तुम दोनों एक वारिस की तरह मेरी जमीन जायदाद और जमीन-जोत को संभालने और चलाने का जिम्मा ले लो तो प्राइस वाटर हाउस कूपर्स कंपनी के 21 लाख के बदले 25 लाख सालाना करार तैयार करवा देता हूँ। फिर दोहरा देता हूँ कि तुम लोग हाँ करने क लिए मजबूर नहीं हो।"[8] इसतरह फहीम साहब विनू और नूरी को ऊँची तालीम देकर उपकार करने की भावना का उन्हें अहसास न कराकर उन्हें अपनी जमीन जायदाद का कारोबारी वारिस नियुक्त कर एक आदर्श स्थापित करते हैं। वे अपनी जमीन जायदाद का ट्रस्ट बनवाकर विनायक और नूरानी को सेक्रेटरी बनाकर सारे फैसले लेने का अधिकार विनायक को सौंप देते हैं। इस फैसले से साजिया खातून नाराज होती है। ताहिर और दीनदयाल छोटी बहू के इशारे पर बाहर से घातक हत्यारे लाकर विनायक की हत्या का षड़यंत्र रचते हैं। विनायक की हत्या में असफल रहे हत्यारे हनकी बूढ़ी की कब्र को हानि पहुँचाते हैं। फहीम साहब की सूचना के अनुसार विनायक अपने लिए पुलिस सुरक्षा की माँग करता है। कारोबारी वारिस नियुक्ति के बाद विनायक इस्टेट की परती जमीन उपजाऊ बनाने, मिट्टी की जाँच, खाद, दवाईयाँ और सिंचाई के लिए एक बड़ा तालाब बनवाने आदि कार्य से गाँव तथा किसानों को बेहतर बनाने प्रयासरत रहता है, "हमारा लक्ष्य कमाई करने से ज्यादा उन बेकार पड़ी जमिनों को राष्ट्र और समाज हित में उत्पादक बनाना और जिन मजदूरों को फहीम साहब के पूर्वजों ने यहाँ लाकर बसाया था उन्हें बेहतर आजीविका देकर उजड़ने से रोकना है।"[9] निम्नवर्ण तथा कम जोत के किसानों को काश्तकारी के लिए जमीन मिलने से बड़े जमींदारों काश्तकारी के लिए मजदूर उपलब्ध नहीं होते जिससे उन्हें अपने अस्तित्व का खतरा दिखाई देने लगा। वे दीनदयाल की सहायता से जतिन-विपिन को अपने साथ करने तथा निम्नवर्णिय लोगों से नाता तोड़ने समझाते हैं। जतिन-विपिन उनके साथ मेल-मोहब्बत से रहने तैयार होते हैं मगर निम्नवर्णिय लोगों से नाता तोड़ने तथा गाँव में चल रही नवनिर्माण की योजनाओं से दूर होने तैयार नहीं होते।

'हनुमंती देवी किसान शीतगृह' का उद्घाटन और विनायक-मुंदरी विवाह के उपलक्ष्य में भोज के आयोजन का निमंत्रण पाकर गाँव के सवर्ण जमींदारों के जातीय अहं को ठेंस पहुँच जाती है, "साले नामुराद विनायक-मुंदरी के विवाह के उपलक्ष्य में भोज? ऐसा लगता है कि दोनो टुटपुंजिया पनेरी और कुम्हार की औलाद न होकर किसी रियासत के राजकुमार और राजकुमारी हो गये। मारो चार जूता हरामियों को, बड़े आये है भोज देनेवाले।"[10] उन्हें निम्नवर्णिय लोगों के यहाँ खाना खाने जाना अपमान लगता है। इस्टेट की बागडोर विनायक के हाथ में आने से छोटी बहू साजिया, ताहिर और दीनदयाल कोल्ड स्टोरेज बम से उड़ा देने और उसमें विनायक, नूरी, फहीम साहब के साथ कईयों को मारने की योजना बनाते हैं। दुश्मनों के दुर्भाग्य से बम-विस्फोट टीम का सदस्य दलित था और वह दलित विनायक की तरक्की से जलनेवाले सवर्णों की काली करतूत को अंजाम देना नहीं चाहता था। विनायक से उसे सहानुभूति हो गई और वह विनायक को सूचना देता है। सूचना मिलते ही विनायक बम निरोधक दस्ता और पुलिस को बुलाकर बम को निष्क्रिय बनाते हैं। अपनी योजना को अंजाम न दे सकनेवाले दुश्मन विनायक को खबर देनेवाले लड़के की हत्या कर देते हैं। जिससे विनायक और नूरी और अधिक सतर्क रहकर कार्य करने लगते हैं। डॉ. वि. रा. देवगिरी कहते हैं, "प्रत्येक मनुष्य के जीवन में विघ्न-बाधाएँ तो आती ही है।....ऐसे समय में मनुष्य अपना आत्मविश्वास खो बैठता है। घबराता है। निराश होता है। किंतु विघ्न-बाधाएँ हमारे जीवन में प्रकृति द्वारा प्रदत्त परीक्षासम है यह सत्य है।"[11] संकटों से न घबराकर और आत्मविश्वास से भरे विनायक और नूरानी के नेतृत्व में फहीम साहब की इस्टेट संभालने और किसानों के हित के लिए नवनिर्माण का कार्य सुचारू रूप से चलने लगता है। लेकिन सतर्क और सचेत रहने तथा कड़ी सुरक्षा के बावजूद अर्धरात्रि चारदीवारी के भीतर खड़े वाहन धू-धू कर जलाने में दुश्मन कामयाब होते हैं। इस घटना के बाद विनायक तथा उनके सहयोगियों के संकल्प में कोई कमी दिखाई नहीं देती। इस घटना से जयनंदन यह संदेश देते हैं कि षडयंत्रकारी दुश्मन अपनी षडयंत्रकारी योजनाओं को अंजाम देने दिन-रात जुटे रहेंगे। इससे घबराकर आदर्श की राह चलनेवालों को अपने संकल्प से पीछे हटना नहीं चाहिए। दुनिया में सुष्ट और दुष्ट शक्तियों का संघर्ष निरंतर चलता रहा है। ऐसे में हमें अपने कर्तव्यपथ पर विचलित न होकर आगे बढ़ने का संदेश जयनंदन देते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

निष्कर्ष :

जयनंदन का 'मिल्कियत की बागडोर' उपन्यास आदर्श चरित्रों के जरिए गाँव तथा किसानों के हित के लिए कार्य करने और किसानों का जीवनस्तर ऊँचा उठाने प्रयास करने की प्रेरणा देता है। साथ ही घर-परिवार, संस्था, राज्य तथा देश की बागडोर संभालने आदर्श नैतिक मूल्यों से ओत-प्रोत विश्वस्त चरित्रों की जरूरत को अधोरेखित करता हुआ दिखाई देता है। प्रस्तुत उपन्यास हिंदू-मुस्लिम के बीच साझी तथा सामासिक संस्कृति के

निर्माण की प्रेरणा, बड़े जमींदार तथा सवर्णों की मानसिकता में परिवर्तन की जरूरत, सर्वहारा वर्ग के हित के लिए कार्य करने की जरूरत के साथ मानवीय संबंधों में मधुरता, एकता, सुख-दुख के लिए संवेदना निर्माण तथा स्वार्थ मुक्ति के लिए चरित्रों में उदात्तता होने आदि बातों को सामने रखता है। व्यष्टि तथा समष्टि के हित के लिए कार्य करनेवाले आदर्श चरित्रों को निरंतर संघर्ष करके आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रस्तुत उपन्यास के जरिए दी हुई दृष्टिगोचर होती है।

संदर्भ:

1. डॉ. तेजसिंह, नागार्जुन का कथा साहित्य, पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1993, पृष्ठ 146
2. जयनंदन, मिल्कियत की बागडोर, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2019, पृष्ठ 60
3. वही, पृष्ठ 60
4. वही, पृष्ठ, 42, 43
5. वही, पृष्ठ 46
6. वही, पृष्ठ, 67
7. वही, पृष्ठ 87
8. वही, पृष्ठ 173
9. वही, पृष्ठ 179
10. वही, पृष्ठ 204
11. सं. डॉ. हेमचंद्र वैद्य, राष्ट्रभाषा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, दिसंबर 2021-जनवरी 2022, (पंचवटी काव्य का उद्येष्य-डॉ. वि. रा. देवगिरी), पृष्ठ 14

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

हिंदी साहित्य: नारी विमर्श- "प्रभा खेतान का उपन्यास 'आओ पेपे घर चले' के संदर्भ में"

डॉ.जेनेट फिलिप बोर्जिस
सहायक हिंदी प्राध्यापिका,गोवा संगीत महाविद्यालय, आल्तीनो, पणजी-गोवा।
Email- drjenetpborges@gmail.com

सारांश:

प्रभा खेतान के अनुसार हालाँकि नारीवादी मुध्दा पहले-पहल पश्चिमी देशों में उठाया गया, मगर दुनिया की अधिकतम स्त्रियाँ इससे प्रभावित हुई और इनसे उनके व्यक्तिगत और सामाजिक आचरण को आमूल रुप से प्रभावित किया। नारीवादी विमर्श वास्तव में नारी जीवन के अनछुए अनजाने पीडा जगत के उद् घाटन के अवसर उपलब्ध करता है वह स्त्री के प्रति होनेवाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है। प्रभा खेतान का साहित्यकार व्यक्तित्व एक नारीवादी व्यक्तित्व है। प्रभा खेतान का 'आओ पेपे घर चले' प्रथम उपन्यास है, जो प्रमुखतः नारी केन्द्रीत उपन्यास है। हिन्दी उपन्यास में भारतीय नारी की पीडा का चित्रण तो अब तक प्रचुर और अनेक रुपों में हो चुका था पर अमरीकी औरत के जीवन के भयानक सच को प्रस्तुत करनेवाला यह हिन्दी का पहला उपन्यास है। विदेशी उच्चवर्गीय औरत के पास धन-ऐश्वर्य की कुछ कमी नहीं है फिर भी वह अपना 'अस्तित्व' बनाये रखने अपने 'स्व' को पहचानने में लगी हुई है। इसप्रकार विश्व संदर्भ मे नारी की नियती को पहचानने और उद् घाटित करने का प्रभा खेतान का यह एक उल्लेखनीय सर्जनात्मक प्रयास है।

हिंदी साहित्य: नारी विमर्श- "प्रभा खेतान का उपन्यास 'आओ पेपे घर चले' के संदर्भ में"

हिन्दी साहित्य के इतिहास में नारी लेखन और विमर्श की स्थिति प्राय: हाशिए की ही रही है। परंतु बीसवीं शताब्दी के उत्तर आधुनिकता के दौर में नारी लेखन की एक सशक्त धारा प्रवाहित हुई। जिनमें चित्रा चतुर्वेदी, कृष्णा अग्निहोत्री, रमा सिंह, ममता कालिया, वीणा सिन्हा, कृष्णा सोबती, चित्रा मुद् गल, मधु कांकरिया, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी, नासिरा शर्मा, अनामिका, प्रभा खेतान, जया जादवानी, गीतांजलीश्री आदि शामिल है। "इन महिला कथाकारों ने मानव-जीवन के विशेषतः नारी जीवन की विविध समस्याओं का गहन अध्ययन कर, उनकी बेबाक अभिव्यक्ति की है लेकिन इन सबमें प्रभा खेतान ने साहित्यकार के रुप में अपनी एक अलग पहचान बनायी है।"(1)

प्रभा खेतान का व्यक्तित्व एक उन्मुक्त और जीवन्त कथा लेखिका का व्यक्तित्व है। प्रभा खेतान बहुत उन्मुक्त स्वभावशाली, स्पष्टवादी लेखिका है। ये उन लेखकों में से है जो एक साथ परंपरावादी भी है और आधुनिक भी। परंपरावादी इस अर्थ में कि वे अपने देश के गौरवमय अतीत तथा उस अतीत की जीवन्त उपलब्धियों के प्रति आस्थावान है। आधुनिक इस अर्थ में कि नये जीवन की वैज्ञानिक भूमिकाओं को भी उन्होंने उतनाही आत्मियता से अपनाया है। प्रभा खेतान का साहित्यकार व्यक्तित्व एक नारीवादी व्यक्तित्व है।

प्रभा खेतान के अनुसार "हालाँकि नारीवादी मुध्दा पहले-पहल पश्चिमी देशों में उठाया गया, मगर दुनिया की अधिकतम स्त्रियाँ इससे प्रभावित हुई, और इनसे उनके व्यक्तिगत और सामाजिक आचरण को आमूल रुप से प्रभावित किया। नारीवादी विमर्श वास्तव में नारी जीवन के अनछुए अनजाने पीडा जगत के उद् घाटन के अवसर उपलब्ध करता है, परन्तु उसका उद्देश्य साहित्य एवं जीवन में स्त्री के दोयज दर्जे की स्थिति पर आँसू बहाने और यथास्थिति बनाए रखने के स्थान पर उन कारकों के खोज से है, जो स्त्री की इस स्थिति के लिए जिम्मेदार है। वह स्त्री के प्रति होनेवाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है। स्त्री के शोषण के सूत्र जहाँ बच्चों को बेटे और बेटी की तरह अलग-अलग ढंग से बडा करने और गलत ढंग से सामाजिकरण से जुडते है वहीं प्रजनन व यौन संबंधी शोषण से भी है।"(2) तो हम कह सकते है कि 'नारीवादी विमर्श' स्त्री के स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श है।

'आओ पेपे घर चले' प्रभा खेतान का प्रथम उपन्यास 1990 में प्रकाशित हुआ, जो प्रमुखतः नारी केन्द्रीत उपन्यास है। हिन्दी उपन्यास में भारतीय नारी की पीडा का चित्रण तो प्रचुर और अनेक रुपों में हो चुका था पर अमरीकी औरत के जीवन के भयानक सच को प्रस्तुत करनेवाला यह हिन्दी का पहला उपन्यास है। भोग विलास में डूबी अमरीकी औरत भीतर से कितनी अकेली, असहाय और पीडीत है, इसका चित्रण इस उपन्यास में गहरी संवेदनशीलता के साथ किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास के आइलिन का अनुभव है- "माई डियर! औरत कहाँ नहीं रोती और कब नहीं रोती। वह जितनी ही रोती है, उतनी ही औरत होती जाती है।"(3) इस कथन में प्रभा खेतान का समस्त नारी-दर्शन मुखर है। सदीयों से स्त्री, पुरुष-समाज के शोषण और दमण की शिकार रही है। प्रभा खेतान को उसका यह रुप और उसका निरंतर 'औरत होने जाना' बर्दाश्त नहीं है। "हिन्दी उपन्यास में भारतीय नारी की पीडा का चित्रण तो अब तक प्रचुर और अनेक रुपों में हो चुका था पर अमरीकी औरत के जीवन के भयानक सच को प्रस्तुत करनेवाला यह हिन्दी का पहला उपन्यास है। इसप्रकार विश्व संदर्भ मे नारी की नियती को पहचानने और उद् घाटित करने का यह एक उल्लेखनीय सर्जनात्मक प्रयास है।"(4)

प्रभा खेतान 'ब्यूटी थैरापी' का कोर्स करने अमरिका गई थी। उस दौरान हुए अनुभवों को प्रभा खेतान ने 'आओ पेपे घर चले' उपन्यास का कथानक बनाया है। अमेरिकी जीवन शैली और संपन्न घरों की नारी के एकाकी जीवन को बडी संवेदनशीलता के साथ उन्होंने प्रस्तुत किया है। आर्थिक स्वतंत्रता को जीने की पहली शर्त मानती प्रभा खेतान ने देखा कि आइलिन, मिसेज डी, हेल्गा, मिसेज बेरी, मरील सभी महिलाएँ संपन्न होकर भी दुःखी है। 70 वर्षीय आइलिन दो पतियों और पाँच प्रेमियों को याद करती कुत्ते 'पेपे' को बेटा मानकर जीवन के दुःखों को भुलना चाहती है। आदमी में जानवर और जानवर में आदमी को देखती हुई स्वयं को प्यार करती है। माँ-बाप के आपसी द्वेष के कारण परित्यक्ता मरील की बेटी का भटक जाना तथा बात-बात पर गालीयाँ बकती मरील भीतर ही भीतर प्यार की सरसता खो चुकी है। प्रभा खेतान ऐसे घरों की दास्तान कहती है जहाँ पैसा है लेकिन जीवन नहीं। जीवन है तो बिखरा हुआ, कोई किसी का नहीं। सारे रिश्ते-नाते दैहिक देह से परे शून्य।

'आओ पेपे घर चले' उपन्यास के अनुसार लॉस एंजेल्स पहुँचते ही पहली ही रात डॉक्टर चोपडा ने प्रभा से कहा कि, "रुपए का अवमुल्यन हो चुका है", इसलिए वह प्रभा की मदद कर सकने में असमर्थ है। डॉक्टर डयूपाण्ट को सुबह पाँच बजे प्रभा ने फोन किया। मिसेज डयूपाण्ट ने फोन उठाया और आधे घण्टे के बाद प्रभा से वह खुद मिलेगी ऐसा वादा किया। आधे घण्टे बाद वे खुद आकर प्रभा को डयूपाण्ट मेडिकल ग्रुप लेकर गयी। वहाँ उसकी मुलाकात रिसेप्शन पर एक बुढिया आइलिन से हुयी। डॉक्टर डी, पेशेण्ट से खाली होते ही प्रभा से मिले। तथा कलकत्ता के डॉक्टर सर्राफ के बारे में पुछा "मैं उनकी अच्छी दोस्त हूँ"। इस जवाब पर उन्होंने "तब तुम हमारी भी अच्छी दोस्त हुई तथा मिसेज डी याने एलिजा तुम्हारा पुरा खयाल रखेगी कहा"। उनके अनुसार एलिजा ने प्रभा के रहने तथा काम करने का पुरा प्रबंध कर दिया। तथा प्रभा से कहा- "सुनो! तुम्हारे ब्यूटी थैरापी कोर्स के लिए मैने 'बेवरेली हिल हेल्थ क्लब' में व्यवस्था कर दी है। वहाँ हालीवुड के स्टार्स आते है। यहाँ आफिस का तुम कोई काम नहीं जानती। मेरे गर्मी के कपडे, जूते सभी कुछ मरिल फिर से आलमारियों में रखेगी। वह वार्डरोब मैनेजर है। तुम उसके नीचे पाँच डॉलर प्रति घंटा पर काम करोगी तथा तुम आइलिन के साथ रहोगी। घबराओ नहीं। वह जितना कडवा बोलती है, उतना ही मीठा उसका दिल है।"(5) इसतरह से डॉक्टर डी तथा मिसेज डी के कारण लॉस एंजेल्स में प्रभा का रहने तथा काम करने का इंतजाम हो गया।

प्रस्तुत उपन्यास में आइलिन, मिसेज डी, क्लारा ब्राउन, मरील, मिसेज हेल्गा बेरी, कैथी आदि अनेक नारी-पात्र है। सभी आर्थिक दृष्टि से संपन्न और आत्मनिर्भर है किन्तु सभी अपने सीने में दर्द का दंश दबाए हुए है। सभी, पुरुषों की स्वार्थपरता और निष्ठुरता का शिकार है। प्रसंगवश 'आओ पेपे घर चले' उपन्यास में कैथी का प्रभा से कहना है कि, "प्रभा, औरत अभी मनुष्य श्रेणी में नहीं गिनी जाती और तुम अमीर गरीब का सवाल उठा रही हो? राष्ट्र का भेद समझा रही हो? माई स्वीट हार्ट। हम सब अर्ध-मानव है। पहले व्यक्ति तो बनो, उसके बाद बात करना।"(6) इस कथन में प्रभा खेतान की नारी विषयक संवेदना अभिव्यक्त हुई है। सदियों से स्त्री, पुरुष समाज के शोषण और दमन की शिकार रही है। प्रभा खेतान को उसका यह रुप और उसका निरन्तर औरत होते जाना बर्दाश्त नहीं है।

प्रसंगवश 'आओ पेपे घर चले' उपन्यास में मिसेज डी का पति-क्लारा ब्राउन के इश्क में डूबा है। मिसेज डी अपने पति को बहुत चाहती थी लेकिन डॉक्टर डी, क्लारा ब्राउन के चक्कर में अपनी पत्नी को इतनी यातनाएँ देता है कि वह आत्महत्या का प्रयास करती है। अंततः तलाक के कागजातों पर हस्ताक्षर कर देती है। घर टूटने से बचाने के हर प्रयास में उसे असफलता मिलती है।

प्रसंगवश 'आओ पेपे घर चले' उपन्यास में हैल्गा को लगता है दुनिया में प्यार शब्द एक मजाक है, कोई किसी को प्यार नहीं करता। कैथरीन साईक्रियाटिस्ट है। जिंदादिल औरत है। वह अपने पति के पैसों का खूब उपयोग करती है। लेकिन श्वेत कैथरीन अश्वेतों के हाथों बलात्कार होने से बच जाने के बाद डिप्रेशन में चली जाती है। इन सबके बीच जब प्रभा खेतान अपना ब्यूटी कोर्स का डिप्लोमा लेकर भारत आ रही होती है तब उसे 'पेपे' याद आता है। आइलिन, मारिया, हैल्गा, कैथरीन, मिसेज डी, मरील सभी को याद करती प्रभा को लगता है कि "पेपे में (जानवर में) आदमी का रुप विराजमान है। जो मालकिन से उतना ही प्रेम करता है जितना वह उसे।" विवेच्य उपन्यास कि यह एक उल्लेखनीय विशेषता है कि, पशु पात्र– 'पेपे नामक कुत्ते- को' केन्द्रीय पात्र के रुप में प्रस्तुत करने की नायाब कोशिश। 'पेपे' उपन्यास में एक सजीव पात्र के रुप में आता है। पशु में मानवीय संवेदना को भर देने में प्रभा खेतान को अद् भुत सफलता मिली है।

विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखा 'आओ पेपे घर चले' उपन्यास वैश्विक स्तर पर स्त्री जीवन की भयावह सच को उजागर करता है। देश-विदेश के बीच साँझी स्त्री कि एक साँझी मानसिकता और समाज में उनकी स्थिती का द्योतक है। और अंत तक आइलिन के इस कथन के सत्य को निभाता है कि "दुनिया में ऐसा कोई कोना बताओ जहाँ औरत के आँसू नहीं गिरे।"(7)

प्रसंगवश 'आओ पेपे घर चले' उपन्यास की कई नारी पात्रों का वर्णन प्रभा खेतान ने बडी सुंदरता से किया है- सर्वप्रथम उच्च वर्गीय कैथी का चित्रण देखिए- "न्यूयार्क में रहनेवाली एलिजा की बहन कैथी। पती डॉक्टर ब्रैडले मूर। साइकियाट्रिस्ट। मियां-बीवी। अमेरिकन भाषा में जिन्हे शिन्क कहा जाता। अच्छी खासी कमाई। कैथी का कहना था कि मुझे थोडा वक्त मिले तब न कुछ करु। ब्रैडी इतना कमाता है। खर्च करने के लिए भी तो मेरे पास वक्त होना चाहिए। तीस-बत्तीस साल की वह बेहद जिन्दादिल अमेरिकन औरत। कोई कुण्ठा नहीं, कोई महत्वाकांक्षा नहीं। किसी की जिन्दगी को न उसे बनाने का शौक, न बिगाडने का। वह अपने में मगन। बच्चा नहीं चाहिए। अपने आप की बच्चे के लिए आहुति हो जाती है। मुझसे बच्चा नहीं संभलेगा। बेबी सीटर पर पालने से अच्छा है, पैदा मत करो। फिर ब्रैडी है ना, मेरा असली बच्चा।"(8)

यहाँ पर प्रभा खेतान यह बतलाना चाहती है कि नारी आजकल घर, परिवार, बच्चे आदि में न खोकर मस्त जिन्दगी गुजारना चाहती है। उसके पास पैसों की कमी नहीं है आसानी से वह बच्चों का भार ढो सकती है, लेकिन फिर उसे अपने लिए समय नहीं बचेगा। सारा समय बच्चों की देखभाल करने में चला जायेगा और यही उसे मंजूर नहीं है।

कैथी से मिलकर प्रभा को लगा "स्वतंत्र आत्म-विश्वासी औरत से मिल रही हूँ, जो प्रपात-सी झरती हुई जिदंगी की मिसाल है। बहुत ही भा गई वह प्रभा को। औरत हो, तो कैथी जैसी। जिन्दगी कोई जिए तो कैथी जैसी। मस्ती में कोई नाचे-गाए, दोस्तों का जमघट जमाए तो कैथी की तरह। --- और सारे कारनामों के बीच डॉक्टर मूर कहीं नहीं आते थे। पूरे फ्लैट में, उसकी बेहतरीन सजावट में कैथी फैली हुई थी। कांच की खिडकी-दरवाजों में कैथी की आँखों की चमक थी।"(9)

उच्चवर्गीय मिसेज डी का वर्णन देखिए- मिसेज डी मंझोले कद की अमेरिकन महिला थी। उनकी नीली पारदर्शी आँखों में झाँकते ही प्रभा को अपना घर लगा। उनके होठों की मुस्कान आत्मीय लगी। उनकी गर्म हथेलियों का संवाद अच्छा लगा। सुबह साडे पाँच बजे वह प्रभा को लेने डॉक्टर चोपडा के घर आयी थी। और उन्होंने ही प्रभा का आइलिन के घर रहने का बंदोबस्त कर दिया। उनके पास चमचमाती हुई सफेद क्राइसलर गाडी थी। हबेल मछली-सी तैरती हुई गाडी। आगे मिसेज डी के घर का वर्णन प्रभा खेतान ने कुछ इसतरह से किया है- "मिसेज डी का कांच-घर। हाय। इतना खुबसूरत ड्राइंग रुम, डाइनिंग रुम, सटा हुआ बडा-सा किचिन, ऊपर बडा-सा बेडरुम, दोनों किनारों पर मियां-बीवी के अलग-अलग बाथरुम। ड्रेसिंग रुम, डॉक्टर डी का छोटासा, मिसेज डी का अच्छा-खासा कमरा। पूरे बंगले का पिछला हिस्सा पारदर्शी कांच का। बडा सा स्वीमिंग पूल, टेनिस कोर्ट तथा

पहाडी की सीढी की तरह काट-काट कर तराशी गई फूलों की क्यारियाँ। उनके बच्चे नहीं हुए। बच्चों का उनको शौक भी नहीं। हर साल क्रिसमस पर कमाई का दसवा हिस्सा चर्च में। यूं मिया-बीवी कभी स्वयं चर्च नहीं जाते थे। ऊपर मिसेज डी का ड्रेसिंग रुम था। कतार-दर-कतार हैंगरों में कपडें झूल रहे थे। मिसेज डी के पिता टेक्सास के कोई धनाढ्य व्यक्ति थे। डॉक्टर डी की कमाई कम नहीं थी। बच्चे थे नहीं। अतः वार्डरोब का बजट साल में पचास लाख रुपए था। गहनों का खर्च पता नहीं।"(10)

फिर अचानक से प्रभा को कैथी की याद आ गई। दोनों बहनों में कितना अंतर। एलिजा का हर पल, हर क्षण, सांसों का आना-जाना, सब कुछ डॉक्टर डी के चारों तरफ ही घूमता रहता। वह सह रही थी अपमान, वंचना, पीडा। वह गीली लकडी की तरह सुलग रही थी। क्यों? आखिर क्यों? सारी स्वतंत्रता के बावजूद मिसेज डी डॉक्टर डी से अपना हक नहीं माँग रही थी। वह तो कोई भारतीय पत्नी नहीं कि संस्कारों की चट्टानों के नीचे दबी हुई पति-परमेश्वर की प्रतीक्षा करती रहे या फिर सारी जलन-कुढन के बावजूद चेहरे पर मुस्कान चिपकाए रहे? अपने पत्नीत्व के अधिकारों की झूठी गरिमा से स्वय् अपने ही मन को झुठलाती फिरे और पति से संबध्द किसी दूसरी औरत को बाजार की चीज माने। जो अपने आँसुओं को जायज माने, उस दूसरी से जलने के अपने अधिकार को जायज समझे और परिवार की पूरी सहानुभूति सिर्फ अपने साथ माने, जबकि उस दूसरी औरत के पास सिवाए अपराध-बोध के और कुछ न रह पाए। वस्तुतः 'आओ पेपे घर चले' उपन्यास की सारी उच्चवर्गीय औरतें घर में ऐशो-आराम होने के बावजूद मन से बहुत ही पीडित है। यहाँ की हर एक नारी ऐशोआराम नहीं अपने पतियों का प्यार चाहती है, जो वही उन्हें नहीं मिलता।

प्रभा खेतान ब्यूटी थैरापी का कोर्स करने अमरिका गई थी। उस दौरान हुए अनुभवों को प्रभा ने 'आओ पेपे घर चले' उपन्यास का कथानक बनाया है। दो संस्कृतियों के निष्कर्ष स्वरुप प्रभा खेतान का यह कथन सार्थक लगता है कि "यह परायी जमीन है लेकिन आदमी तो सब जगह एक सा है, वही सुख-दुःख के लम्हे वही नाते।"(11)

अमरीका जीवन शैली और संपन्न घरों की अमरीकी नारी के एकाकी जीवन को बडी संवेदनशीलता के साथ प्रभा ने प्रस्तुत किया है। अमेरिका की तेज व्यावसायिक जिन्दगी ने मानवीय संवेदना का क्षय किया है। वहाँ के जानवरों में कहीं अधिक मानवीयता है। आइलिन का कुत्ता 'पेपे' उसकी समाधि पर आँसू बहाता है। लेखिका उससे पुत्र जैसा अपनत्व अनुभव करती है। उपन्यास की अंतिम पंक्तियों में प्रभा खेतान 'पेपे' को याद करते हुए कहती है— "पेपे क्या तुम्हारे गले में मेरा कढाई वाला कालर अब भी बँधा है?" (12) उपन्यास का नाम 'आओ पेपे घर चले' उसे केन्द्रीय पात्र की भूमिका प्रदान करता है। अमेरिका जैसे समृध्द देश की नारी की पीडा का उद् घाटन करके यह उपन्यास विशिष्ट और महत्वपूर्ण हो गया है। इसप्रकार विश्व संदर्भ में नारी की नियति को पहचानने और उद् घाटित करने का यह एक उल्लेखनीय सर्जनात्मक प्रयास है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. कामिनी तिवारीः 'अनभै' पत्रिका, अक्टूबर-दिसंबर 2008, पृ.48
2. रेखा कस्तवारः स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, पृ.27
3. प्रभा खेतानः आओ पेपे घर चले, पृ.54
4. सं.शशि भारद्वाजः भारतीय उपन्यासः अंतिम दशक (1991-2000) साहित्यमाला, सं.2006, पृ.261-262
5. प्रभा खेतानः आओ पेपे घर चले, पृ.14
6. प्रभा खेतानः आओ पेपे घर चले, पृ.109
7. प्रभा खेतानः आओ पेपे घर चले, पृ.35
8. प्रभा खेतानः आओ पेपे घर चले, पृ.105
9. प्रभा खेतानः आओ पेपे घर चले, पृ.105
10. प्रभा खेतानः आओ पेपे घर चले, पृ.25
11. प्रभा खेतानः आओ पेपे घर चले, पृ.72
12. प्रभा खेतानः आओ पेपे घर चले, पृ.149

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

आदिवासी दलित विमर्श में वीरेन्द्र जैन का चित्रण

के. प्रमीला
हिन्दीविभाग, आंध्र विश्वविद्यालय, विशाखापट्नम, आंध्र प्रदेश
इ-मेल: prameelakandrathi916@gmail.com

समकालीन पीढ़ी के हिन्दी उपन्यासकारों में श्री वीरेन्द्र जैन का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है। 'सुरेख-पर्व', 'प्रतिदन', 'व्यथा-कथा', 'रुका हुआ फैसला', 'तलाश', 'अनातीत', 'डूब', 'पार', 'सबसे बड़ा सिपहिया', 'सुख फरोश', 'शब्द-बध', 'पंचनामा', 'गैल और गन', 'दे तली', 'उसके हिस्से का विश्वास', 'प्रतिक एक जीवनी' आदि उपन्यासों में इन्होंने समकालीन जीवन के यथार्थ पक्षों को स्वर देने कि चेष्टा कि है। एक साहित्यकार के रूप में इन्होंने सामान्य लोगों के जीवन कि त्रासदी के कारणों को पहचानने का खूब प्रयास किया और लोगों के जीवन पर विडंबनापूर्ण आदिवासियों के परिवेश के प्रभाव यथार्थ अंकित करने का प्रयास किया और आदवासी संस्कृति, आर्तिक शोषण, जीवन शैली और उनकी जागृत का चित्रण में उपन्यासकार वीरेन्द्र जैन ने रूचि दिखाया है।

आदिवासी का अर्थ – 'मूलनिवासी' हजारों वर्षों पहले जब आर्य भारत आये और उन्होंने यहाँ के साथ संघर्ध किया। आर्यों और मूलनिवासियों के साथ संघर्ष चलता रहा। आर्यों ने मूलनिवासियों का भीषण संहार किय। आर्यों डर से मूलनिवासी धने बानोंमें भाग गए। आर्यों संस्कृति का विकास होता गया। मूलनिवासी धनों वनों में सैकड़ों बरस से मटक रहे है। हिन्दी मूलनिवासियों को आदिवासी का नाम स्थान बन कर रहे है।

वीरेन्द्र जैन ने अपने उपन्यास 'पार' में आदिवासियों की समस्याओं को उजागर किया है। जमसूर, मसूर, जिरोन आदि उत्तरप्रदेश बुंदेलखंड के पास हैं जहाँ आदिवासियों का वास्तव्य आज भी दिखाई देता ह। इन आदिवासियों का प्रदेश विकास ज्ञान और मानव सभ्यता से हजारों वर्षों से दूर ह। ये आदिवासी जंगलों में मटकर, शिकार करते तथा आदिमकालीन खेती का तरीका अपनाते हुए जीवन जी रहे है। इन्हेंअक्षर पहचान नहीं है, इन समस्याओं से जूझते-जूझते ये जीवन जी रहे हैं लेखक इन आदिवासियों की अनेक समस्याओं को हमारे सामने खड़ा किया है।

वीरेन्द्र जैन जी के 'पार' उपन्यास की पृष्ठ भूमि बुंदेलखंडी अंचल की आदिवासी समाज है। इसलिए लेखक जी ने इस उपन्यास में हिन्दी, बुंदेलखंडी अंचल की क्षेत्रीय बाली और आदिवासी भाषा का भी प्रयोग किया है। "गाँव से हम भाग तो अब भी सकते हैं हमें भला कौन रोक पाएगा। लेकिन हम भाग गए तो हमारे बढे मताई -दद्व की महादु गीति होगी। हम उन्हें बिना ठौर -टिकने के कहाँ लिए -लिए करेंगे।"[1]

"बेरोदी ने हमें बतया है कि बाँध बनानेवाले लड़ैई से मिल दो मिल आने से राजघाट तक की रह से पेड़ रूख काठ ले ग।मीठी खोद ले गए। झरियाँ छायोलियाँ उजाड़ गए। चरागाह नहीं बीच। कुआ, तलौया जैसे जगड़े हो गए हैं जगह-जगह। सो वहाँ ढोर चराना कठिन हो गया है। फिर जब वहाँ हरियाली बची ही नहीं तब डर पानी में लोरने तो जाने से रहे जब वहाँ! सो अब सब दिन लड़ौई के दोर यहीं आएँगे, हमारी डाँग में, हमारे खेरे में।"[2]

"का बात! कैसा बातें! बमन महाराज को भला कौन मरेगा? पाई नई यदेगा उसे गल-गल के, करा पड़ के मरेगा वो। सात जनम तक ढोर -बछेरु, चिरौया - परेबा का जनम धरने हुए जो बनाम देवता की हत्या करेगा। अपने इतने भाव बिगरबे की सीरी ही सोच सकता। भला को लड़ैई में इतनों सिर्फ न समझ। मूरख। आदमी।"[3]

'पार' उपन्यासों में लेखक जी ने बताया है कि बेतवा नदी में बाँध का काम शुरू होने के पहले सर्कार ने बतया कि गाँववालों को खोये हुए चीजों के बदले मुआवाजा मिलेगा और बाँध का काम स्थानीय लोगों को देगा।बाँध का काम शुरू होने पर गाँववालों को जमीन, माकन, खेतीबारी, जानवे सभी नष्ट हुए।वे अपने जीविका चलने दूसरे मार्ग को तलाश करने में मझबूर होते है। सर्कार ने बताया है कि "क्यों भला? क्योंकि काम तेजी से करना है। यहाँ के स्तानीय आदमी मन लगाकर पूरे समय काम नहीं करेंगे वे अपने तेज त्योहार मानना नहीं छोड़ेंगे काम कीखातिर घर-परिवार के शादी-ब्याह में शामिल होने भी त्योंगे। कईबीमार-दुखी हुआ तो उसकी तीमारदारी में जुटना भी नहीं छोड़ेंगे। सरकारी बाबू से, ठेकेदार के मुँह से कोई ऊँच-नीच बात निकल गए तो उससे झगड़ने से बाज भी ने आएँगे।"[4]

आदिवासियों को गाँवके लोगों की पहचान नहीं है। वे गाववाल पर विस्वास रखते हैं। दूर साव इन राउतों की अज्ञान का फायदा उठाता है। इन राउतों की जीने को शहर जाकर बेचने लगता है- "लड़ैई के पास के खेरोंकी राउतों मुरैना-शिवपुरी पहुँचती रहीं। प्रतिज्ञा पत्र बनते रहे। धूरे साव के गल्ले में गदराए जिस्मों को बेचने से आया गल्ला भारत गया।"[5] शहर से लौट पीछे आए दिन किसी-न किसी को ताप रहने लगी।काम में मन लगा।लिंग से लहू त्यकत।हरिया तो मरते-मरते क्या।कई महीने हो गए किसी जनीकोओ-ओ करते हुए नहीं देख।करे कैसे! जब जान बीच ही न दे तो जमने के लक्षण कहाँ से जानमें! "इस नसबन्दीके कारण खेरे में बच्चा ही नहीं जन्मा है। मुखिया के सामने और एक समस्या कड़ी करती है राउत जिस जीरन खेरे में रहते हैं उस खेरे का मालिक स्वयं को धर्षित करता है। त्याकता। हरिया तो मरते–मरते बचा। कई महीने हो गए किसी जनि को ओ ओ करते हुए नहीं देखा। करे कैसे! जब जन बीच ही न दे तो जमने के लक्ष्ण कहाँ से जनमे!"[6] इस नसबन्दी के कारण खेरे में बच्चा ही नहीं जन्म है। मुखिया के सामने और एक समस्या कड़ी करती है। राउत जिस जीरोन खेरे में रहते हैं उस खेरे का मालिक स्वयं को धर्षित करता है। और रावतों को खेरे छोड़ने के लिए कहता है– "साव ने बताया मुखिया को–कि पांच पीढ़ी पहले हमारे पुरखों ने बसाया था जिरोन। हमारे पास साबुत है इसका। हम मालिक हैं जीरोन के। तुम जबरन उस पर काबिज हो। अब ये गाँव–गाँव से हमारे किसान बसेंगे वहाँ। सो मोग-मोंगे, सीधे जगह खली दो। तुमने खेर न छोड़ा तो हम लाठी-बल्लम दिखायंगे, पुलिस-पलटन लगाएँगे, सिपाही दरोगा लाएँगे। तब जन-मॉल का जो टोटा होगा उसकी जवाब देही तुम्हारी होगी। तब जमीन के साथ जीवन भी छोड़काना पड़ेगा। तुम्हारी मलाई इसी में है कि कहीं अंत जा बसों। हमने इस करके तुम्हें बुला कर बताया कि बाद को यह न कह सको कि हमारे को खबरदार नहीं किया।"[7] भारत अनेक जाती-जातियों, धर्म-पथों संस्कृति-संप्रदायों का भण्डार है। जाति व्यवस्ता भारतीय समाज व्यवस्था का प्राण तत्व है भातितीय समाज में

आदिवासी एक एसा मानव समाज है जो विकास कि प्रक्रिया से दूर आज भी अपनी 'जनजातीय' जिंदगी में सिमटा हुआ है। आदिवासियों आर्यों का पूर्व मनुष्य समूह है। विविध परिभाषाओं के अधर पर आदिवासियों बारे में लिखा है। एक विशेष पर्यावरण में रहनेवाला, एक सी बोली बोलनेवाला, समान जीवन शिली से सजा, एक से-देवी-देवताओं को माननेवाले, समाज सांस्कृतिक जीवनयान करनेवाला परन्तु आखरज्ञान रहित मानव समूह यानि आदिवासी है। आदिवासियों का 'संस्कृति' मनुष्य के जीवन होनेवाले प्रत्येक स्पर्श करता है जिसके अधर पर मनुष्य का दैनिक जीवन चलता है। आसिवासी संस्कुती कि अपनी विशिस्ट पहचान है। आदिवासी संस्कृति में मनुष्य का जीवन बिलकुल सदा है। इनका दृष्टिकोण उपयोगवादी है और वियर धरा जियो और जीने दो कि है। उपयोगिता के साथ-साथ इनकी कार्य योजना सामूहिक व्यवस्था जातीय, एवं स्वाभाविक घथं को प्रभावित करती है।

कपडे, धार्मिक, नृत्य, संगीत प्रचलित मान्यताओं, शिल्प कलाये, विवाह दैनिक उपयोग के सामान औशधियाँ सब आ जाति है। आदिवासोयों कि आर्तिक समस्या का जीवन हमारे जीवन में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा और नौकरशाही आदिवासी लोगों को देखा जा सकता है। देश कि प्रशासनिक व्यवस्था आदिवासियों को अपने समाज का हिस्सा नहीं हैं। जीवन के हर मोड़ पर वह शेष समाज केलिए हास्-परिहास का केंद्र बिन्दु है।

'डूब' उपन्यास का अटटू सव जो भोपाल में डॉक्टर कि पढाई कर रहा होता है, जब वह अपने गँव लड़ाई में छुट्टी के दिन में आता है तब वह अपने गाँव में तथा आस-पड़ोस के देहातों में रहने वाले दलित-आदिवासियों को जागृत कर ने केलिए प्रयास करता रहता हैं। अट्टासव कि बाते सुनकर 'घूमा' अपने बिरादरी में जाकर वहीँ बाते उन्हें सुनकर उनमे क्रन्ति लेन कि कोशिश करता है, "घूमा कैसे भूल सकता है वह बात! आज भी यद् है उसे। अट्टा साव ने ही तो बताया था न कि ठाकुर देवीसिंह से खैफ खाने कि अब कोई जरुरत नहीँ। ठाकुर अब लंबरदार नहीं हैं सर्कार ने लंबरदारी, जमींदारी सब समाप्त कर दी है। सर्कार ने फैसला किया है कि जो जिस जमीन को बोता है, उसका मालिक भी वही।....अट्टा साव तो यहाँ तक कहा रहे थे कि तुम यहाँ के मूलनिवासी हो। और सब तो यहाँ बहार से आएँ हैं। यहाँ की जमीन, यहाँ के आसमान पर पहला हक तुम्हारा है....और आज सचाई यह है कि हमारा ही कुछ नहीं।"[8] अज्ञानता एवं अंधविश्वास के कारण आदिवासियों की स्तिथि में जल्दी बदलाव नहीं आया।

आदिवासी जन-जातियों पर सरकार द्वारा विकास के नाम पर हो रहे अत्याचार को चित्रित कर समाज से समस्यओं का समाधान करना वीरेन्द्र जिन प्रमुख उद्देश्य मानते है। जिस शेत्र में विकास जिया जा रहा है या फिर जो योजना जिस जन-जाति के विकास के लिए बनाई गई हो उसका वह के स्थानीय लोगों को ही फायदा हो। उन्हें दर-दर की ठोकरे खाने पर सरकार उन्हें मजबूर न करे। आदिवासियों के लिए बनी ऐसी विकास कि नई-नई दकियानूसी योजनओं से वीरेन्द्र जैन हमें परिचय करते है।

उपन्यासकार वीरेन्द्र जैन ने अदिवासिंसी शोषण और दमन का बरी में ऐसा बताया कि 'पार' उपन्यास में आदिवासी शोषण और दमन का उदहारण है। इस उपन्यास का केन्द्रीय क्षेत्र बुंदेलखंड अंचल के आदिवासी समाजहै इस उपन्यास में देश कि विकास के नाम पर बेतवा नदी के राजघाट में बाँध का शुरू होने के बाद बाद आए हुए दुर्घटनाओं का चित्रण है।

राजमाता घोषण करती है कि शीघ्र ही बेतवा नदी के राजघाट नमक स्थान पर बाँध बनाया जाएगा। समय समय बीतता जाता है। बाँध का काम शुरू नहीं होता इस बीच बेतवावह नदी में बहुत पानी वह गया। लेकिन बाँध का काम शुरू होने से आदिवासी लोगों के बदले माकन, खेती बरी, कुएँ, पेड़, जानवर सभी कोना पड़ा। किन्तु खोए हुए चीजों के बदले मुआवाज भी नहीं मिला। आदिवासीजनता को अपनी आजीविका चलने केलिए और कोई मार्ग भी नहीं है। इसलिए लोगों को ज्यादा आर्थिक अभाव झेलना पड़ा। आदिवासी लोग मुआवाज केलिए सभी सरकारी दफ्तरों में आता रहता है। लेकिन कोई फ़ायदा नहीं है। गाँव के बड़े-बड़े लोग आदिवासियों को पैसा कर्ज के रूप में देकर ज्यादा शोषण करता है। सरकार ने विकास के नाम पर आम जनता कि शोषण किया। बाँध बनाने के समय बाँध का एक टट बंध टूट गया। बाँध का पानी गाँव-गाँव में भर गया। फसल डूब गाई,घर द्वारा डूब गया। अब सरकार कहती है कि "उसने तो पूरा मुआवाज देकर पहलोई गाँव खली करवा लिए थे।"[9]

बाँध के नाम पर सभी नष्ट होनेवाली आदिवासी जनता ने बताया कि "हम किसके द्वार पर जाकर रोएँ। किसे बताएँ कि यह झूठ है! जाने किसको थमा दिया सर्कार ने मुआवजा। यहाँ तो अभी ऐसे भी हजारों हैं जिन्हें खेत तक का मुआवजा नहीं मिला।किसी के कागज पुरे नहीं तो किसी के कुछ हिस्सेदार भाई बंद गाँव छोड़कर सहारों में चकिरी करने चले गए। सरकार करती है उन्हें भी साथ लाओ अब भला उन्हें हम कहाँ खोजें।"[10] आदिवासी जनता लड़ाई छोड़कर जीरोन खेरे में खेतीकरने लगे। जनता मुआवजा केलिए सरकारी दफ्तरों में चलते रहते है। सरकारी ओर से बताया कि "इस बाँध में जलग्रहण केलिए 224 किलोमीटर क्षेत्र में लक्ष्मिभई झील बनाई जायगी।"[11] सरकार ने बताया है कि इस योजना के इस शताब्दी के अंत तक भी पूरा होने का आसार कम हैं।योजनोना को शुरू से ही धनाभाव रहा है। फिर सरकार कि ओर से सुचना देते हैं कि "हम अभयाराणय बनाएँगे। लड़ाई को जीरोन को वापस गुरिला पर बसाएँगे। ओउराने ज़माने ढंग का रहन-सहन रखेंगे ताकि भविष्य में पर्यटक आकर देख सकें कि प्राचीन कल में यहाँ लोग किस तरह रहते थे। यानी वहाँ विकास किरण नहीं पहुँचत दी जाएँगे।"[12] राजनेताओं ने अपनी रस्त्रय उन्नति केलिए विकास के नाम पर योजनायें शुरू करता है। इस योजनाओं को फायदा से ज्यादा दुष्परिणाम होता है राजघाट में पहले बाँध बनाना शुरू किया। लेकिन काम पूर्ती नहीं किया। बाद में झील बनाना और अभयारणय बनाने कि चिन्ता में है। इसमें भी कोई स्तिरता नहीं है। सरकार विकास के नाम पर आदिवासियों के शोषण के और दमन का चित्रण वीरेन्द्र जैन जी ने 'पार' उपन्यास में इसप्रकार स्पष्ट रूप से चित्रण किया है।

इस उपन्यासकार ने दलित या आदिवासियों के जीवन का चिव्त्रण और संस्कृति, और उनका भाषा शैली, जीवन शैली, अर्तिक शोषण का चित्रण किया गया है। इस उपन्यासकार ने अपना शैली में इस का चित्रण किया गया है।

सन्दर्भ सूचि ग्रन्थ:

1 वीरेन्द्र जैन – पार – पृष्ट संख्या – 28
2 वीरेन्द्र जैन – पार – पृष्ट संख्या – 64

3 वीरेन्द्र जैन – पार – पृष्ट संख्या – *89*
4 वीरेन्द्र जैन – पार – पृष्ट संख्या – 84
5 वीरेन्द्र जैन – पार – पृष्ट संख्या – 66
6 वीरेन्द्र जैन – पार – पृष्ट संख्या – *78*
7 वीरेन्द्र जैन – पार – पृष्ट संख्या – 93
8 वीरेन्द्र जैन – पार – पृष्ट संख्या – 64, 65
9 वीरेन्द्र जैन – पार – पृष्ट संख्या – 124
10 वीरेन्द्र जैन – पार – पृष्ट संख्या – 124
11 वीरेन्द्र जैन – पार – पृष्ट संख्या – 125
12 वीरेन्द्र जैन – पार – पृष्ट संख्या – 125

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

'नागार्जुन' के उपन्यासों में किसान विमर्श

प्रा. कैलास बबन माने
सहाय्यक प्राध्यापक, बळवंत कॉलेज, विटा, महाराष्ट्र ४१५३११
ई-मेल kailasmane12@gmail.com

सारांश :

नागार्जुन जी का जन्म एक किसान परिवार में हुआ था और उनका बल्याकाल गांव में ही व्यतीत हुआ दिखाई देता है I परिणामत: किसान विमर्श पर विचार करते समय नागार्जुन विशेष महत्वपूर्ण हो जाते है क्योंकि अन्य साहित्यकारों की अपेक्षा इनके साहित्य में किसानों का चित्रण अत्यंत मार्मिक और यथार्थ होने की संभावना अधिक है I साथ ही स्वयं किसान परिवार से होने के कारन इनके द्वारा हुआ किसानों का चित्रण भोगा हुआ यथार्थ की कोटी का है I और उनके उपन्यासों का अध्ययन करने पर इस विचार की पुष्टि हो जाती है I नागार्जुन जी केवल लेखन कार्य करके समाज में परिवर्तन आएगा इस विचार धारा के पक्षधर नहीं है बल्कि इनकी मान्यता रही है की केवल बोलने एवं लिखने से नहीं होगा बल्कि परिवर्तन लाने के लिये संघर्ष करना पडता है रास्ते पर उतरकर व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश प्रकट करना पडता है अत: इन्होंने सन १९४२ में कृषक आंदोलन का नेतृत्व किया जिसके फलस्वरूप इन्हें जेल की हवा भी खानी पडी है I नागार्जुन जी ने अपनी इसी आवाज को लिपी-बद्ध करते हुए साहित्य सृजन किया I इनके द्वारा रचित 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ', 'वरुण के बेटे', 'दुखमोचन' आदि उपन्यास किसानों की वास्तविक दशा का चित्र उपस्थित करते हुए किसानों के जीवन की दुर्दशा को उद्घाटित करते है I प्रस्तुत उपन्यासों में नागार्जुन जी ने कृषक वर्ग का चित्रण अंकित करते हुए भूकंप, बाढ, अकाल, अशिक्षा के कारन कृषक परिवार में बढती हुई जनसंख्या, किसानों का धार्मिक शोषण, जमीनदार वर्ग द्वारा किसानों का शोषण, महाजन वर्ग द्वारा किसानों का शोषण, साम्राज्यवादी शोषण, किसान जमीनदार संघर्ष आदि मुद्दों पर अपने विचारों को बडे सटीक रूप से प्रकट किया है I

मुख्य शब्द : कृषक, शोषण, शोषक, शोषित, परिवर्धन, परिवर्तन

प्रस्तावना:

भारतीय इतिहास एवं पुराण साहित्य का अवलोकन करने पर बोध होता है कि पूरे भारत वर्ष में रोजगार एवं व्यवसाय के रूप में कृषि करने का प्रचलन अत्यंत प्राचीन माना जाता है I भारतीय साहित्य का अध्ययन करने पर हमें और एक बात की जानकारी प्राप्त हो जाती है, कि यहां आर्य और अनार्य इन दो संस्कृतियों का मिलन हुआ दिखाई देता है; जिसमें से आर्य संस्कृति का प्रधान व्यवसाय कृषि रहा है I सामान्य रूप से कृषिकार्य से जुडे लोगों को किसान कहा जाता है I भारत देश पुरी तरह कृषिप्रधान माना जाता है यहां ७० प्रतिशत से जादा लोग कृषि एवं कृषि संबंधी कार्यों से जुडे रहें दिखाई देते हैं I रोजगार की दृष्टि से भारत में कृषि सबसे महत्वपूर्ण साधन मानी जाती है परिणामत: ये इस देश की अर्थव्यवस्था के रीढ की हड्डी मानी जा सकती है I भारतीय कृषि व्यवसाय में सुधार हेतु विभिन्न कालों में तत्कालीन राजव्यवस्था एवं शाषण द्वारा विविध प्रकार की सुविधाएं और साधन मुहय्या कराए गये है साथ ही तकनिकी विकास के कारन इस क्षेत्र में काफी परिवर्तन एवं परिवर्धन हुआ दिखाई देता है I १३० से भी जादा करोड की आबाधीवाले देश में लोगो का पेट भरने हेतु यहां के किसानों को दिन-रात खेत में काम करना पडता है I इस देश में कृषि एवं किसानों के संदर्भ में सबसे बडी समस्या यह रही है कि इनके दुख एवं दर्द को कोई समझ नही पाता उपर से इन्हे इज्जत की दृष्टि से भी नहीं देखा जाता बल्कि इन्हें हीनता, अनपढ, पिछडे वर्ग के रूप में देखा जाता है I कुछ स्थानों पर तो इस वर्ग को शुद्रों की श्रेणी में भी रखा गया है I हर काल में इस वर्ग के लोगों को विभिन्न प्रकार के शोषण का शिकार बनना पडा हैं I कभी शासक लगान के रूप में शोषण करते है तो कभी साहुकार एवं बडे जमीनदारों द्वारा इनका शोषण होता रहा है; आधुनिक काल में इनके शोषक वर्ग की संख्या में वृद्धी हुई दिखाई देती है जिसमें बैंक, व्यापारी, मंडीवाले तो खराब बीज एवं औषधी देकर दुकानदार भी इनके शोषण का कारन बन चुके है I साहित्य ने हर काल में दबे और कुचले वर्ग की आवाज को वाणी प्रदान की है तो इस वर्ग की समस्या साहित्य से अछुती कैसे रह सकती है I हिंदी साहित्य में इस वर्ग की दबी आवाज को विभिन्न कालों में साहित्यकारो ने मुखर रूप से प्रकट किया दिखाई देता है I प्रेमचंद जैसे लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकार भी इससे दूर नहीं रह सके उनका 'गोदान' उपन्यास किसान वर्ग की दासता प्रस्तुत करता है I उनके पश्चात इतना उच्चकोटी का प्रयास तो कम दिखाई देता है पर साहित्य ने अत्यंत सरस रूप में इस वर्ग की दबी आवाज को 'नागार्जुन' जी ने समाज के सामने अत्यंत प्रभावी रूप से लाने का प्रयास किया है I आधुनिक हिंदी उपन्यासकारों का योगदान इसमें महत्वपूर्ण रहा है जिनमें प्रेमचंद, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणू, शिवमूर्ती, रंगेय राघव, अमृतलाल नागर, श्याम बिहारी श्यामल, नीलकंठ, मधुकर सिंह, पुन्नी सिंह, विवेक राय, गुरदयाल सिंह, विजयनाथ देथा, रामस्वरूप अणखी आदि महत्वपूर्ण साहित्यकार रहें हैं I

अध्ययन का उद्देश्य :

भारतीय किसान विभिन्न समस्याओं ग्रस्त है वर्तमान समय में इन समस्या के खिलाफ विभिन्न आंदोलन भी हुए तो हिंदी साहित्यकार इस बात को अपने साहित्य के माध्यम से उजागर करणे से कैसे चुकते इन्हीं में से किसान परिवार के 'बाबा नागार्जुन' के साहित्य में चित्रित किसान विमर्श को प्रस्तुत करना आवश्यक हो जाता है; इसी उद्देश्य की पूर्ती हेतु इस लेख के माध्यम से विचार प्रकट किये जा रहें हैं I

भूकंप, बाढ एवं अकाल :

भारतीय किसान पूर्ण रूप से प्रकृति पर निर्भर रहा है I परिणामत: उसे भूकंप, बाढ और अकाल का सामना करना पड रहा है I जीससे उसके जीवन में परिवर्तन होकर उसपर बेघर होने तक की नौबत आई दिखाई देती है I नागार्जुन का 'दुखमोचन' उपन्यास बाढ की पीडा को प्रस्तुत करता है तो 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास भूकंप की स्थिति का विदारक चित्र उपस्थित करता है I नागार्जुन अपने 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास में किसानों पर आघात करनेवाली प्राकृतिक और कुछ हद तक मानव निर्मित आपदा अकाल का चित्र उपस्थित करते हुए किसानों की दशा पर प्रकाश डालने का

प्रयास किया गया है I बाबा बटेसरनाथ अकाल का चित्र उपस्थित करते हुए कहते है I "अकाल की भीषण घटनाओं का मुझे अच्छी तरह पता था I आस-पास के इलाकों में उपज का जैसा बुरा हाल था, वह क्या मुझसे छिपा था ? भूके चरवाहे मेरी डालों पर देर-देर तक आडे-तिरछे खडे रहते और कच्ची-दुद्धी फलियां चबाया करते I पीछे उन्होंने टूसों पर हात साफ करना शुरू किया I मेरे पत्रों में, छालों में, टूसों में, कच्ची फलियों की लासा की थोडी बहुत मात्रा होती है I इस लासा के कारण बेचारों की जीभ और तालु अधिक देर तक चालू नहीं रख पाते थे लिहाजा चरवाहों से मुझे जल्द ही छुटकारा मिल जाता था I" [१]

अशिक्षा के कारन बढती हुई जनसंख्या :

अशिक्षा के करण बढती हुई जनसंख्या किसानों की गरीबी का प्रमुख करण है I देखा जाये तो अशिक्षा के करण अज्ञान और अज्ञान के कारण गरीबी बढती है और गरीबी के करण अशिक्षा बनी रहती है I परिणामत: बढती हुई जनसंख्या बेरोजगारी का करण बनती है I नागार्जुन जी ने अपने उपन्यासों में बेकारी और निर्धनता का मार्मिक चित्रण किया है I 'रतिनाथ की चाची' में वे शुभंकरपुर गांव की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए नागार्जुन जी लिखते है – "शुभंकरपुर की कुल उपजाऊ जमीन का रकबा तीन सौ बीघा था I ढाई सौ बीघा रबी और भदई के थे I इसके अलावा आमों के बाग, बांसों के जंगल, तालाब, गोचर आदि के लिए पचास बीघा और पडते थे I ढाई सौ परिवारों की आबादी, खानेवाले मुंह ग्यारह सौ I साफ है कि गरीब ही अधिक थे I बाभन और गैर बाभन I" [२]

धार्मिक शोषण :

भारतीय संस्कृति में किसी भी धर्म में उस धर्म के पंडित, साधू, महंत धर्म के नाम पर किसानों का शोषण करते है I पुनर्जन्म और परलोकवाद की भावना ने तो उन्हें इतना त्रस्त कर रखा है कि वे सारे धार्मिक बंधन स्वीकारणे के लिए तैयार हैं I वे किसान इस प्रकार विचार करने पर मजबुर हो जाते है कि वे अपनी दुरवस्था का करण अपने भाग्य को मान लेते हैं I उनके इसी विश्वास को नागार्जुन जी 'रतिनाथ की चाची' में प्रस्तुत करते हुए लिखते है – "छोटे-बडे भगवान के घर से बनकर आते हैं I" [३] साथ ही नागार्जुन जी के 'इमरतिया' उपन्यास से स्पष्ट होता है कि मठों और मंदिरों में धर्म के नाम पर साधारण वर्ग का शोषण हो रहा है I ईश्वर और धर्म के नाम पर होनेवाले बाह्याडम्बरों द्वारा किसानों का आर्थिक शोषण हो रहा है प्रस्तुत उपन्यास बाबा बटेसारनाथ के मास्टर और बाबा जैसे धर्म के ठेकेदार उनका शोषण करते हुए दिखाई देते है I धर्म ग्रंथों का आधार ग्रहण करते हुए लेखक इस शोषण के खिलाफ आवाज उठाते नजर आते है – "मनुष्यों की बलि चाहनेवाले यक्ष-गंधर्व, देव-देवियां और ब्रह्म अब बाहर नहीं रह गये – मोटी जिल्दोंवाले पुराने पोथी की बारीक पंक्तियो में बंद हैं I किसानों की इस दुर्दश के मूल में किसी-न-किसी रूप में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में – धार्मिक करण ही प्रमुख हैं I अत: यहां शासकों और बुद्धि-जीवियों को धर्म तथा ईश्वर के विषय में नये ढंग से सोचना चहिए I" [४]

जमीनदार वर्ग द्वारा शोषण :

नागार्जुन जी ने तत्कालीन समाज का चित्र अंकित करते हुए उसमें स्थित कृषक वर्ग के आर्थिक शोषण का करण जमीनदार एवं पूंजीपतियों को माना है I सदियों से यह वर्ग किसान वर्ग का आर्थिक शोषण करते हुए अपनी मनमानी करता नजर आता है I नागार्जुन जी ने अपने 'बलचनमा' उपन्यास में जमिनदारों का वर्णन करते हुए दरभंगा जिले में कृषकों पर होनेवाले अमानवीय अत्याचारों का सजीव वर्णन इस उपन्यास में किया है I इस उपन्यास में पिता के एक अपराध के लिए पाशविक अत्याचारों को सहना पडता है I अत्याचार को प्रकट करते हुए बलचनमा अपनी व्यथा को प्रस्तुत करता है – "मलिक के दरवाजे पर मेरे बाप को एक खंभेली के सहारे कसकर बांध दिया गया है I जांघ, चूतर, पीठ और बाह – सभी पर बांस की हरी कैली के निशान उभर आये हैं I चोट से कहीं-कहीं खाल उधड गई है और आखों से आंसूओं के टन्घार गाल और छाती पर से सुखते चले गये हैं – चेहरा काला पड गया है I होंठ सूख रहे हैं I अलग कुछ दूर पर छोटी चौकी पर यमराज की भांती मंझले मालिक बैठे हुए हैं I" [५]

दासता की प्रथा :

किसानों की दासता की प्रथा को भी नागार्जुन जी अपने उपन्यास 'बलचनमा' उपन्यास में प्रस्तुत करते हुए 'बलचनमा' के परादादा के परादादा के समय दासता की प्रथा का विद्यमान बताया है I 'बलचनमा' कहते हुए प्रस्तुत होता है कि – "मेरे परादादा के परादादा को वहीं के एक जमींदार ने दहेज में दामाद के साथ कर दिया था I तब से लेकर यह सातवां पुरखा चल रहा है I" [६]

महाजन वर्ग द्वारा शोषण :

भारत में महाजन सभ्यता भी सामंतवाद का ही परवर्तीत रूप है I एक ओर जमीनदारी प्रथा और दूसरी ओर महाजनी सभ्यता ने किसानों को अपने शिकंजे में दबोच रखा था I जमीनदार किसानों पर अत्याचार करते और तो महाजन आवश्यकता के समय आर्थिक सहायता देकर किसानों को सदा के लिए ऋण की जंजीरों में बांध लेते थे I 'रतिनाथ की चाची' में ब्याज की दर प्रतिमास डेढ रुपया सैकडा बताई गई है साथ ही असला और ब्याज वसुलने की पद्धती को भी प्रस्तुत किया गया है इस विषय में यह कथन महत्वपूर्ण सिद्ध होता है – "राजा बहादुर पुराने अंगुठे को साल साल नया करवाते जाते I सूद भी मूल बनता जाता I चक्रवृद्धि का यह क्रम राजा बहादुर की शरीर वृद्धि के लिए रसायन का काम कर रहा था I कहते हैं, हवेली में नकद रुपये रखने के लिए उन्हें चहबच्चा बनाना पडा था I" [७]

साम्राज्यवादी शोषण :

साम्राज्यवादी शोषण विश्व-मानवता का शत्रु माना जाता है I अंग्रेजों ने भारत भूमि पर लगान बढाकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का ढांचा ऐसा कर दिया कि किसान लगान चुकाने के लिए उपज बेचने पर मजबूर होने लगे I परिणामत: इस कृषिप्रधान देश की आर्थिक दशा शोचनीय हो गई I नागार्जुन जी ने 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास में अंग्रेजों की साम्राज्यवादी शोषण नीतियों द्वारा हुए जुल्मों का चित्रण किया है I अंग्रेजी व्यापारीयों द्वारा हुए किसानों के शोषण के संदर्भ में बाबा बटेसरनाथ कहते हुए दिखाई देते है – "यहां से कोस भर पूरब एक साहब आकर बस गया I क्या ही शानदार कोठी बनवाई थी उसने I महाराज बहादुर से दो सौ एकड जमीन सौ साल के पट्टे पर नील की खेती के लिए उनको मिली थी I दुमका की तरफ से मुसहडो के

पचास परिवार ले आया, कोठी के दक्षिण में उसकी बस्ती आबाद हो गई I उन्हीं लोगों से साहब नील की खेती कराता था I वे उसके गिरमिटीया मजदूर थे वह उनका पूरा मालिक था – मेहनत का भी, जान का भी, माल का भी I"

किसान-जमीनदार संघर्ष :

हर काल में किसानों ने अपना शोषण होते हुए नहीं देखा बल्कि शोषण के खिलाफ आवाज भी उठाई दिखाई देती है I इसी संघर्ष का चित्र नागार्जुन के उपन्यासों में किसान-जमीनदार संघर्ष के रूप में दिखाई देता है जिसमें उनके 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'वरुण के बेटे', 'बाबा बटेसरनाथ','दुखमोचन' प्रमुख रहे है I जिसमें किसानों ने व्यवस्था के खिलाफ अपनी आवाज को बुलंद किया दिखाई देता है I 'दुखमोचन' उपन्यास में मजदुरों की वर्ग-चेतना भी व्याप्त हुई दिखाई देती है I यहां तक की मजदूर पुराने रेट पर काम नहीं करना चाहते परिणामत: काम बंद करके हडताल की सूचना देते है I 'दुखमोचन' की मामी शशीकला के कथन से इस बात की हमें पुष्टि हो जाती है – "अब वह छ:आने माहवारी पर काम नहीं करना चाहती I जमाना तेजी से बदल रहा है बबुअन और है भी तो यह पुराना रेट.....I" [९]

निष्कर्ष :

वर्तमान काल किसानों के जीवन में परिवर्तन लानेवाला समय रहा है I भारतीय समाज का अधिकतर खेती पर उपजीविका करता हुआ नजर आता है I भारतीय किसान पिढीयों से खेती करता रहा है; खेती भारतीय अर्थव्यवस्था के रीढ की हड्डी मानी जाती है I इस महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करनेवाले किसान को आधुनिकता के इस दौर में विभिन्न समस्याओं का सामना पड रहा है I किसान पहले से भूकंप, बाढ, अकाल आदि समस्याओं ग्रस्त रहा है इसमें शासन की नीतियां भी उसे त्रस्त करती नजर आती है I उपज का सही दाम प्राप्त न होने से लेकर किसानों पर गाडी चलानों की घटनाओं तक किसानों पर जुल्म ढाया जा रहा है I किसानों की यह अवस्था आज नहीं है ब्लकि यह स्थिति अनेकों वर्षों से विद्यमान रही है I युगों से किसान अशिक्षा, धार्मिक शोषण, जमीनदार एवं महाजानों द्वारा शोषित रहा है, साथ ही वह साम्राज्यवादी शोषण के साथ ही दासता की प्रथा और बेगार-प्रथा का भी शिकार रहा है I नागार्जुन जी ने अपने उपन्यास साहित्य में किसानों की समस्या, उसकी अवस्था, जीवन यापान की स्थिति का सूक्ष्म चित्र उपस्थित किया है I कह सकते है कि 'बाबा नागार्जुन' किसान परिवार में उत्पन्न रहे है परिणामत: उनके द्वारा किया चित्रण भोगा हुआ यथार्थ है I जो सूक्ष्मता इनके किसान समस्या एवं वर्णन में दिखाई देती है वह अन्यत्र दुर्लभ है I इन्होंने किसान चित्रण और उनकी समस्या के सभी पक्षों को अपनी लेखनी में स्थान दिया है और वह भी बडी सूक्ष्मता से I परिणामत: 'नागार्जुन' जी किसान विमर्श को प्रस्तुत करनेवाले एक उच्चकोटी कोटी के लेखक के रूप में उभरकर सामने आते है I

संदर्भ ग्रंथ :

1. बाबा बटेसरनाथ – नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. १९५४, पृ. ५८
2. रतिनाथ की चाची – नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण १९८५,पृ. ९०
3. वहीं – पृ. ५८
4. बाबा बटेसरनाथ – नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. १९५४, पृ. ७१
5. बलचनमा – नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद प्रथम सं. १९५२, पृ. ३
6. वहीं पृ. ७२
7. रतिनाथ की चाची – नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण १९८५, पृ. ९१
8. बाबा बटेसरनाथ – नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. १९५४, पृ. ८२
9. दुखमोचन – नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. १९७६, पृ. ७७

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

हिंदी कहानियों में प्रतिबिंबित नारी विमर्श

डॉ. काकासो बापूसो भोसले
रयत शिक्षण संस्था का, डॉ पतंगराच कदम महा.रामानंदनगर (बुर्ली)तह. पलूस,जि. सांगली पि. 416 308
आयडी:- bhosalekakasaheb7@gmail.com

साहित्य जगत में विमर्श यह चिंतन मनन का विजय बना है। आज मानव जीवन को प्रभावित करनेवाले हर अंग प्रत्यांग को किसी-न-किसी विमर्श के ढाँचे में डाला गया है। और उसका सूक्ष्म्ा से सूक्ष्म्ा चिंतन किया जा रहा है। इसी कारण वश अन्य भाषा साहित्य कि तरह हिंदी साहित्य में भी विमर्श को आधार बनाकर काफी चर्चा हुई है। जिसका योगदान राजेंद्र यादव जी को चला जाता है। उन्होंने नारी विमर्श, दलित एवं आदिवासी विमर्श, किसान विमर्श, किन्नर विमर्श, अल्पसंख्यांक विमर्श आदि विमर्श की संकल्पना आरंभ किया है।

यहाँ विमर्श शब्द मूलत: विचार- विनिमय सोच-विचार चिंतन-मनन जॉचना-परखना, परिक्षण-निरीक्षण का दयोतक है। डॉ.अर्जुन चव्हान जी ने विमर्श का संकल्पना के संदर्भ में लिखा है कि " विमर्श का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। वह किसी भी विजय को लेकर हो सकता है। यह एक ऐसी संकल्पना है जिसके अंतर्गत संसार के किसी भी विषय पर तर्कसंगत सोच-विचार विनिमय हो सकता है। विवेचन- विश्लेषण हो सकता है। इसमें किसी भी विषय पर सुक्ष्मता से सोच विचार अपेक्षित है।"१ विमर्श के इस व्यापक अर्थ के संदर्भ में हिंदी साहित्य क्षेत्र में नारी विमर्श तथा दलित विमर्श पर काफी चिंतन-मनन हो चुका है। इनमें से दलित विमर्श अर्थात दलित जीवन से संबंधित विचार-विनिमय किया जा रहा है। डॉ.सगरे जी के अनुसार " विद्रोह, नकार, चेतना, आस्तित्व,एवं आधिकार की रक्षा के लिए संघर्षरत समाज की कहाणी है-दलित विमर्श। इसका केंद्र दलित समाज,उनकी समस्या,उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थिति है। आधुनिक समीक्षा में यह एक चिंतन की धारा है''।२

नारी को शोषण मुक्त करने का प्रयास समाज सुधारकों के साथ भारतीय दलित नारी साहित्यिकों की तरह पुरूष साहित्यिकों का भी योगदान रहा है। जिसमें डॉ.जयप्रकाश कदम,कंवल भारती, डॉ.कुसुम वियोगी, वीरेंद्र कुमार चौधरी, प्रेमचंद आदि है। इन्होंने दलित नारी वर्ग को न्याय देने का सार्थक प्रयास किया है।

प्रेमचंद अपने समय की मानसिकता और पारंपारिक चिंतन बोध से जुडे हुए प्रतीत होते है । इनका लेखन मूलत: ग्रामीण समाज के भीतर बनते: बिगडते हुए मानवीय सम्बन्ध का लेखन है । मानवीय रिश्तों को निरंतर तोड़ने और आहत करने का कार्य विषम आर्थिक परिस्थितियाँ करती है । आर्थिक अभाव से पीडित व्यक्ति के लिए सारे नैतिक और सामाजिक मूल्य निरर्थक और अनावश्यक प्रतीत होते है ।

प्रेमचंद विश्व के उन महान साहित्यकारों में हें, जिन्होंने शोषित पददलित एवं उपमानित मेहनत कश और सामंती विलासिता जैसे आम लोगों के उपने लेखन का विषय बनाया है । विषवस्तु के प्रति इनके समान समर्पित लेखक बहुत ही कम हुए है।

विश्व साहित्य के स्तर पर प्राय: यही दिखायी देता है कि अधिकांश उपन्यासकार और कहानीकार अपना विषय उच्च वर्ग तथा सांमती लोगों के बीच ही ढुँढ़ते है, शायद मध्यवर्ग तक इसके नीचे उतरने का कष्ट कुछ ही साहित्यकार करते है उनमें प्रेमचंदजी का नाम शीर्षस्थ है । इसलिए उपनी कृतियों में जहा तक बन पड़ा है, प्रेमचंद ने इन प्रताडित मूक लोगों के दर्द को सशक्त वाणी देने का प्रयास किया है । जैसे उदाहरण के तौर पर निम्नलिखित कहानियाँ है ।

'ठाकुर का कुआँ' कहानी बड़ी छोटी है । इससे छोटी दूसरी कहानी प्रेमचंद जी ने नहीं लिखी । केवल तीन पेज वाली कहानी । प्रेमचंद संप्रेष्ति करना चाहते है कि प्रभाव की दृष्टि से कहानी बेजोडद्य और अप्रतिम है। कहानी केवल यह है कि जोखू एक अछूत है, बीमार है। प्यास लगने पर उसकी पत्नी गंगा उसे पानी देती है । लेकिन वह पानी पीने लायक नहीं है, बदबू आ रही है। जोखू के लाख मना करने पर भी गंगी ठाकुर के कुएँ से ताजा पानी लाने चली जाती है। जो कुऑ अछूतों को निषिदध है। रात के समय कुएँ पर जा कर पानी भरने का साहस करती है। पानी भर भी लेती है, तभी ठाकुर साहब सामने के उपने घर से निकलते है। खाली हाथ जब वह उपनी झोपडी में पहूँचती है तो देखती है कि जोखू लोटे से मुँह लगाये वही बदबूदार पानी पी रहा है।

इस कहानी से सह बात उजागर होती है कि उन्होंने शोषण के हरसम्भव स्त्रोत एवं हथियार को बेनकाब किया है। शोषकों को नंगा किया है तथा शोषितों को हर जगह विरोध और प्रतिकार करते दिखलाया है। इस कहानी में उन्होंने गंगी को एक विद्रोही के रूप में चित्रित किया है। जो अपने को अछूत मानने से साफ इन्कार करती है और कहती है:

"हम क्यों नीच है और ये लोग क्यों उँच है? इसलिय कि ये लोग गले में तागा डाल देते है? सहॉ तो जितने है, एक से एक छँटे है। चोरी ये करें, जाल: फरेब ये करें, झूठे मुकदमें ये करें अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गडेरियो की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया । इन्ही पण्डित जी के घर में तो बारहों मास जुआ होता है। सही साहुजी तो घी में तेल मिलाकर बेचते है। काम करा लेते है मजदूरी देते नानी मरती है।"३ स्पष्ट है कि इस कहानी में जाति : भेद शोषण का निकृष्टतम रूप है।

यहॉ पर शोषितो की दूसरी श्रेणी में नारी को रखा गया है।कुएँ पर गंगी, तथा कुछ औरते आपस में बाते करते हुए मर्द की गुलाम कहती है। जैसे कि नारी हमेशा शोषित रही है। वार्तालाप देखिए "हम लोगों को आराम से बैठे देखकर जैसे मरदों को जलन होती है। ..... वहॉ काम करते करते मर जाओ पर किसी का मुँह ही सीधा नहीं होता ।"४ इसमें नारी मुक्ति की छटपटाहट है।

'पूस की रात' विवशता की ऑच में झुलसी मानव इच्छा की आपूर्ति लेकिन भारमुक्तता की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है। हल्कू के जीवन में कभी विराम न रहा हो, जैसे चिंता सिर से उतरने का नाम ही नहीं लेती और नींद का आनंद जैसे इस जीवन से दूर भाग गया हो कि मार्मिक गाथा इस कहानी में हैं।

पूरे परिवेश मे हल्कू की बेचैनी एक मीठी नींद सो लेने के लिए रही है और अन्त का सोना उसकी बेचौनियों की मुक्तता नहीं बल्कि अगले क्षण में पैदा होनेवाले सोच का संकट है। कहानी का प्रारंभ हल्कू की कर्ज से दुटकारा पा लेने की चिंता से होता है: "हल्कू ने आकार स्त्री से कहा "सहना आया है लाओ जो रूपये रखे हैं उसे दे दूँ, 'किसी तरह गला तो छूटे।"५

लेकिन एक ओर सहना को टालने के लिए, दूसरी ओर पत्नी की खुशामद मालूम है कि सहना से निर्व्याज तो हो सकता है परंतु पत्नी से निबहना? खुशामद के बाद के बाद भी: "कर चुके दूसरा उपाय ! जरा सूनू, कौन उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्मल? न जाने कितनी बाकी है जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मै कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर - मर काम करो, उपज होतो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही हमारा जनम हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो ऐसी खेती में बाज आये । मैं रूपये न दूँगी - न दूँगी ।" ६

सहना का तकादा और पत्नी की झिडकी : हन दोनों के बीच हल्कू की मानसिकता का घुटन अपने आपमें एक पीड़ादायक परिस्थिति है। वैसी खेती से क्या फायदा जिसकी उपज सिर्फ कर्ज चुकाने के लिए ही हो। और इसीलिए एक सामान्य किसान का कर्ज में टूटते जाने की विवशता और मजदूर में बदलते चले जाने की त्रासदी न केवल हल्कू की है बाल्कि सम्पूर्ण भारतीय परिवेश में कृषक जीवन के सोच में वर्तमान है।

'कफंन' कहानी के केन्द्रीय पात्र घीसू और माधव भारतीय भूमिहीन किसानों के उस हिस्से के प्रतिनिधि है, जो शोषण, दमण, उत्पीड़न के भयंकर आघात से चूर - चूर होकर श्रम, श्रमके प्रतिफल, सभी प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों और प्रत्यक्षत: सभी प्रकार के मानवीय शीलगुणों से एकदम वंचित, बेगाना और असम्बन्ध हो गया है फलत: जो आकाश वृत्ति के सहारे जिंदगी गुजारने 'लम्पट सर्वहारा' के वर्ग में रूपांतरित हो गया है, और इस तरह अपनी स्वाभाविक ट्रॅजेडी की खूँखार गिरफ्त में जकड़ा जा चुका है।

प्रेमचंद जीवन सम्बन्धी अपने गहरे अनुभव से जानते है कि खूँखार खलनायक के हाथों तबाह होने के बावजूद " आखिरकार मनुष्य संजीदा नजर से जीवन की वास्तविक हालातों को, मानव - मानव के आपसी सम्बन्धों को देखने के लिए मजबूर हो जाता है।"७

घीसू - माधव के साथ भी यह मजबूरी घटित होती है- उनकी जो चेतना यथार्थ की पथरीली जमीन से टकराकर कुन्द हो चुकी है ; वही चेतना शराबखाने के नशील वातावरण और शराब के तूफानी नशे की करारी चोट खाकर जैसे हड़बड़ाकर ऑखे खोल देती है, अपना वास्तविक व्यक्तित्व ग्रहण करने लगती है और जीवन के बोध से धडक उठती है: " कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते - जी तन ढॉकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए।"८

"दुनिया का दस्तुर है, नहीं लोग बॉभनों को हजारों रूपये क्यों दे देते है? कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं ।"९

" बड़े आदमियों के नरस धन है, फूँकने कों है?"१०

"वह (बुधिया) न वैकुंठ में जायेगी तो क्या ये मोटे - मोअे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते है, और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते है और मंदिर में जल चढ़ाते है?"११

और जीवन के बोध की यह धड़कन अपनी चरम परिणाति प्राप्त कर लेती है - "भरपेट खाकर माधव ने बची हुइ पूडियों का पत्तल उठाकर एक भिखारी को दे दिया, जो खडा इनकी और भूखी ऑखों से देख रहा था। और देने के गौरव, आनन्द और उल्लास का अपने जीवन में पहली बार अनुभव किया।"१२

घीसू - माधव शराबखाने के सामने नशे में चुर होकर 'ठगिनी', क्यों नैना झामकावै- का गीत गाकर गिर पड़े । शोषक व्यवस्था के सामने घीसू माधव की असहाय पराजय के रूप में अ - मानवीकरण की यंत्रणा का साक्षात्कार मुकम्मल हो जाता है और कफन की पीड़ा सन्पूर्ण मानव - जाति की पीड़ा का संक्षिप्त इतिहास बन जातीं है ।

"सवा सेर गेहूँ" कहानी धर्म, ईश्वर और स्वर्ग - नरक के नाम पर व्यक्ति के शोषण की एक मार्मिक गाथा है । पाठक इस वृत्तांत को कपोल - कल्पित न समझिये । सह सत्य घटना है।"१३ का स्पष्ट चित्र है।

यह कहानी धर्म की ओट में हो रहे शिकार का जीवंत तल्ख एवं सच्चा चित्र प्रस्तुत करती है । धर्म के नाम पर अधर्म का पासा फेकनेवाले विप्रजी की इस धती पर कोई कमी नहीं है। जिनके - सवा सेर गेहूँ - की कीमंत व्यक्ति की पूरी जिंदगी एवं गुलामी ही नहीं बल्कि मौत और फिर उसके पीढ़ी - दर - पीढ़ी का शोषण है।

शंकर गॉव का साधारण किसान, इमानदार, संतोषी, प्रसन्न और भगवान के भक्तों के प्रति वफादार है। शंकर साधू दरवाजे से भुखा न जाए इस चिंता में डुबे हुए होते। एक दिन आधुनिक माहात्मा घर आये परंतु घर में गेहूँ नहीं थे । आतिथ्य चिन्ता से विप्रजी के घर से गेहूँलाया महात्माजी की क्षुधा पूर्ति की और महात्माजी आशीवार्द देकर चले गये ।

शंकर पे विप्रजी के गेहूँ के बदले पसेरी खलिहानी दी और मुक्ति की सॉस ली। परंतू लम्बे अंतराल के बाद भाई से बॅब्वारा हुआ सिर्फ नाम का किसान रह गया। " खेती केवल मर्यादा - रक्षा का साधन मात्र रह गयी । जीनिका का भार मजूरी पर आ पड़ा ।"१४

विप्रजी ने इस मौके का फायदा उठाकर सवा सेर उधार गेहूँ के पॉच मन का हिसाब शंकर के माथे पर टोका । शंकर ने आरजू एवं मिन्नते करने के बाद भी दस्तावेज लिखा गया। उस सवा सेर गेहूँ के कुल साठ रूपये, तीन रूपये सैंकड़ो सूद की दर से।" आखिर बीस वर्षों तक विप्रजी की गुलामी करके ऑखे मूँद ली । शंकर की मुक्ति बेटे के लिए फासी का फंदा बनी । विप्रजी ने " उसके जवान बेटे की गरदन पकडी आज तक वह विप्रजी के यहॉ काम करता है। उसका उद् धार कब होगा, होगा भी या नहीं, ईश्नव ही जाने।"१५

इस कहानी के माध्यम से स्पष्ट चित्रित है कि जब तक इस प्रकार की धर्मान्धता का दौर समाज में चलता रहेगा, इस प्रकार की जाति – व्यवस्था का मद सत्ताधारियों में छाया रहेगा। तब तक हर शंकर का जीवन – सवा सेर गेहूँ – के सुखा – मुख में आत्मसात होता चला जायेगा।

निष्कर्ष - रूप में कहा जाता है कि, प्रेमचंद्र जी नें अपनी कहानियों द्वारा अपने समय की मानसिकता और पारंपारिक बोध को स्पष्ट किया है। जो शोषित, पद्लित, अपमानित एवं मेहनतकश और सामंती विलासिता में रहे। ठाकुर का कूआँ कहानी में जाति - भेद, शोषण के निकृष्टतम रूप जोखू और गंगी है।

पूस की रात कहानी में सम्पूर्ण भारतीय परिवेश में किसान जीवन का हल्कू और स्त्री, कफन कहानी में सम्पूर्ण मानव जाति की पीडा को घीसू माधव और "सवा सेर गेहूँ" काहानी का शंकर आदी पात्रों के माध्यम से शोषन का उदाहरण दिया है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जाता है कि कहानियों में व्यक्त संदर्भ, परिवेश, समस्या, और संघर्ष का स्वरूप मुख्य रूप से उजागर हुआ है। दलित स्त्री का जीवन में संघर्ष, जातिगत पहचान की वजह से प्रगति के हर कदम पर आनेवाली कठिनाईयों से जुझना, आर्थिक सबलता के लिए कठिन प्रयास, भूख से लड़ाई, स्त्री होने के कारण घर और बाहर होनेवाली अवहेलना, अपमान और शोषण को झेलना पड़ता है। प्रेमचंदजी ने अपनी कहानियों में इन घटनाओं, प्रसंगो और संघर्षों का चित्रण प्रमुखता से किया है।

संदर्भ ग्रंथ:

१) डॉ. अर्जुन चव्हाण – विमर्श के विविध आयाम, पृ.१९
२) डॉ. सगरे – विमर्श के विविध आयाम, पृ.29
३) डॉ. दिनेष प्रसाद सिंह : प्रेमचंद्र विविध आयाम, अनुपम प्रकाशन पटना - १९८३
४) प्रेमचंद : ठाकूर कुऑ मानस भाग १ पृष्ठ १४३
५) प्रेमचंद : ठाकूर कुऑ मानस भाग १ पृष्ठ १४४
६) प्रेमचंद : पूस की रात : पृष्ठ ५
७) डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह : प्रेमचंद विविध आयाम पृष्ठ ८८
८) डॉ. विजय एस. सौजित्रा : प्रेमचंद की पच्चीस श्रेष्ठ कहाहनयॉ, पृष्ठ १७३
९) डॉ. डॉ. विजय एस. सौजित्रा : प्रेमचंद की पच्चीस श्रेष्ठ कहाहनयॉ, पृष्ठ १७४
१०) डॉ. विजय एस. सौजित्रा : प्रेमचंद की पच्चीस श्रेष्ठ कहाहनयॉ, पृष्ठ १७४
११) डॉ. विजय एस. सौजित्रा : प्रेमचंद की पच्चीस श्रेष्ठ कहाहनयॉ, पृष्ठ १७५
१२) डॉ. विजय एस. सौजित्रा : प्रेमचंद की पच्चीस श्रेष्ठ कहाहनयॉ, पृष्ठ १७५
१३) प्रेमचंद : सवा सेर गेहूँ, मानसरोवर भाग – ४ पृ. १९६
१४) प्रेमचंद : सवा सेर गेहूँ, मानसरोवर भाग – ४ पृ. १९०
१५) प्रेमचंद : सवा सेर गेहूँ, मानसरोवर भाग – ४ पृ. १९६

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में स्त्री लेखन और रूढ़िमुक्त नारी

डॉ.कल्पना पाटोळे
गोपाल कृष्ण गोखले महाविद्यालय, कोल्हापुर
Email- kalpanapatole707@gmail.com,

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में भारतीय नारी को उच्च शिक्षा एवं अर्थार्जन में सहयोग मिला | फलस्वरूप उसमें सामाजिक जागरूकता बढ़ने लगी और नारी गृहस्थी के सीमित एवं संकुचित दायरे से निकलकर समाज, सृष्टि एवं मानव जीवन का ज्ञान प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व का विकास स्वयं करने लगी | डॉ. हेमंतकुमार पानेरी के शब्दों में, "परंपरागत ग्रार्हस्थ एवं पतिव्रत के परिवेश में कुंठित नारी उच्च शिक्षा और नारी स्वातंत्र्य के प्रभाव में स्वच्छंद जीवन की ओर अग्रेसर हुई | परंपरागत अबला ने परिवर्तन के परिवेश में सबला बनकर पुरुष के समक्ष अपने स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा की |"[1] परंतु भूमंडलीकरण के इस दौर में भी सामाजिक रूढ़ि, परंपरा, प्रचलित आदर्श, पुरुष अधिनता के कारण नारी शोषण का शिकार हो रही है | आधुनिक साहित्यकारों ने इसके खिलाफ आवाज उठाई है | विशेषता आज के स्त्री लेखन में सदियों से चले नारी के दासीत्व और पराधीनता के प्रति विद्रोह दिखाई देता है | नासिरा शर्मा, कृष्णा अग्निहोत्री, चित्रा मुद्गल, मेहरुन्निसा परवेज, शुभा वर्मा, कुसुम अंसल, मधु भादुड़ी, उषा प्रियंवदा, निरुपमा सेवती आदि लेखिकाओं ने घीसी-पीटी रूढ़ियों तथा परंपराओं से मुक्त होकर मानसिक पीड़ा से छुटकारा पाने का संदेश दिया है | मुक्ति की इस लड़ाई को आज की लेखिकाओं ने अपनी लेखनी के माध्यम से उकेरा है |

भूमंडलीकरण ने विवाह जैसे परंपरागत एवं पवित्र बंधन को भी परिवर्तित किया है। आज विवाह में आत्मत्याग एवं समर्पण की अपेक्षा आत्मसंतुष्टी पर अधिक बल दिया जाने लगा है। स्त्री-लेखन में इसका प्रतिबिंब दिखाई देता है। 'फ्री लांसर' उपन्यास की रोजी का मानना है कि, "जिससे प्यार है शादी उसी से हो' यह जरूरी नहीं, शादी से रोमांस भाग खड़ा होता है।" इसी उपन्यास की शहाना विवाह कर पुरुष के प्रति समर्पित होना नहीं चाहती। उसके मतानुसार, "समर्पित रहकर जीवन बिता देना स्त्री की विवशता की शर्त रही हो कभी, आज हालात बदल गये हैं, जिसे प्यार किया जाए, उसके प्रति समर्पित हुआ जाए उसके गुण-अवगुण उसकी क्षमता अपने से कुछ तो ज्यादा हो | बराबर या अपने से कम के साथ समझौता हो सकता है। समर्पण का सौदा नहीं।"[2] शहाना विवाह करके किसी के प्रति समर्पित होना नहीं चाहती। इसप्रकार बदलते परिवेश के साथ नारी की विवाह संबंधी दृष्टि भी बदल रही है। आधुनिक नारी विवाह को एक शारीरिक आवश्यकता मानते हुए जीवन साथी के प्रति समर्पित होना नहीं चाहती। 'एक जमीन अपनी' उपन्यास की नीता मॉडल गर्ल है | वह सेक्स से आक्रांत रहने वाली नारी को कुंठित मानती है। उसके अनुसार नारी जब कुंठा से मुक्त होगी तब उसके सारे कष्ट अपने आप दूर होंगे। वह नए आत्मविश्वास से परिपूर्ण होगी और निडरता से विचरण कर सकेगी वह सोचती है, "विश्वविद्यालय से डिग्री लेकर निकली ये छोकरियाँ मांग में पुरुष को सजाकर बैठाए रखने को इतनी आतुर क्यों है? पुरूष से स्वतंत्र होना है तो पहले उन्हें सिंदूर पोंछना होगा। बिछुए त्यागने होगे। दासीत्व के प्रतीक चिन्ह |"[3] अर्थात् नीता के अनुसार भारतीय संस्कृति में नारी के जो सुहाग चिन्ह हैं, वे नारी के दासीत्व के सूचक है। उनका त्याग किए बगैर नारी मुक्त नहीं हो सकती।

'अभिषेक' उपन्यास की वेणु संस्कृति के नामपर होनेवाले अन्याय, अत्याचारका विरोध करती है | उसका मानना है की बिंदी और काँच की चुढियाँ पहनाने से ही विवाहिता नहीं कहलाई जाती | शादी के बाद माँ उसे काँच की चूड़ियाँ पहनने को कहती है तो वेणु कहती है, "क्या यह लगना जरुरी है की शादीशुदा है | वैसे बैज तो मैंने पहन रखा है, वह क्या कम है |" पति कि मृत्यू के बाद उसके ससुर उसपर पाबंदियाँ लगाते है तब वेणु उसका विरोध करते हुए कहती है की, "जब सबी पुरुष यह गड़बड़ मचाते रहे है तो प्रतिष्ठा का घुँगट ओढने की बाध्यता बहुओं पर क्यों लाद रखी है |"[4] भारतीय संस्कृति के अनुसार विधवा नारी किसी भी सांस्कृतिक या धार्मिक कृत्यों में हिस्सा नहीं ले सकती | परंतु वेणु इसका भी विरोध कराती है | विधवा होते हुए भी वेणु अपनी ददिया सास की मृत्यु के बाद उसकी चिता मे अग्नि लगाती है | वेणु की यह क्रियाएँ उसकी सांस्कृतिक धारणाओं तथा रुढियों से मुक्ति की सूचक है | वह पुरुष वर्ग से लडती-झगड़ती अपने उद्योग क्षेत्र मे सफल बनती है और मुख्यमंत्री बनकर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्थापना करती है |

भूमंडलीकरण के इस दौर में उच्चशिक्षित नारी को कार्यक्षेत्र में मानसम्मान प्राप्त हो रहा है परंतु आज भी घर परिवारमें उसकी स्तिथि दासी के समान ही है | 'शाल्मली' उपन्यास की शाल्मली अपनी योग्यता, प्रतिभा और बौद्धिकता के बल पर आई. ए. एस. अधिकारी बनती है | शाल्मली के पति नरेश में पुरुष का अहंम तथा पत्नी की उच्च पदस्थता के प्रति ईर्ष्या का भाव जगता है | वह अपनी पत्नी पर अपना शिकंजा कस के दुनिया को अपना प्रभुत्व दिखाना चाहता है | हालांकि वह तलाक लेने में पूर्ण समर्थ है, परंतु उदारमना एवं विवेकशील शाल्मली इस समस्या का समाधान तलाक में नहीं मानती | "औरत के पास दो ही अभिव्यक्तियाँ है या तो सर झुका देना या समस्या को अधूरा छोड़ सर कटवा लेना | मेरा विश्वास न घर छोड़ने पर है, न तोड़ने पर, न आत्महत्या पर है, न अपने को किसी एक के लिए स्वाहा करने में है, मैं तो घर के साथ औरत के अधिकार की कल्पना भी करती हूँ और विश्वास भी |"[5] वह निर्णय लेती है कि किसी भी तरह अपनी विस्तृत दृष्टि को संकुचित नहीं होने देगी और पति के साथ ही बनी रहेगी |

'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास मुस्लिम समाज में स्त्री के रूढ़िवादी परिवेश से किए गए संघर्ष को प्रस्तुत करता है | उच्च शिक्षित महरुख की मंगनी परंपरागत रुढी के अनुसार एक अंधविश्वास के तहत जन्म होते ही रफत से कर दी जाती है, जिसके कारण उसे अपना जीवनसाथी चुनने का कोई विकल्प नहीं रह जाता | उसका मंगेतर रफत स्कॉलरशिप लेकर उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका जाता है, जहाँ पर वह एक विदेशी लड़की से शादी करता है | स्वदेश लौटकर महरुख से भी वह शादी करना चाहता है | दोनों के परिवारवाले विवाह के लिए तैयार होते है | परंतु महरूख रफत के इस अपमान एवं अन्यायपूर्ण प्रस्ताव को ठुकरा देती हैं | दोनों के परंपरागत खानदान में यह हादसा जितना शर्मनाक था, उतना ही हैरतंगेज भी की औरत मर्द को ठुकरा दे? परंतु महरुख को अपने निर्णय पर गर्व था | रफत उस पर हक जताना चाहता है, तब वह कहती है, "मैं ठोस जमीन पर ठोस जिंदगी जीना चाहती हूँ | मेरी

जिंदगी पर सिर्फ मेरा हक है |"[6] इस प्रकार महरुख का आहत स्वाभिमान यहाँ से अपने लिए एक नई दिशा चुनता है | वह एक छोटे गाँव में प्रधानाध्यापिका बनकर पढ़ाने चली जाती है और अविवाहित रहकर जनकल्याण के लिए जुट जाती है | शाल्मली और महरुख के माध्यम से शिक्षा एवं आत्मविश्वास से प्रेरित नारी संघर्ष के एक नए रूप को लेखिका ने यहाँ प्रस्तुत किया है |

'शेषयात्रा' उपन्यास में भारतीय और पाश्चात्य मूल्यों में टकराव दिखाई देता है। भारतीय संस्कारों में पली अनु का विवाह विदेशी डॉक्टर प्रणव से हो जाता है। विदेश में जाकर अनु अपने पति की इच्छानुसार स्वयं को ढालना आरंभ करती है। 'पहले उसके बाल कटवा कर सँवरवाये जाते हैं। फिर मेकअप करने का पाठ मिलता है। नाखून रंगे गये हैं, भौहे सँवारी गयी हैं |' ऊँची हील के जूते, पर्स, साड़ियाँ, लिपस्टिकें, ढेरों सामान वह लाती है। "हर सुबह प्रणव से मशवरा होता है कि कौनसी पोशाक पहनी जाए, कैसी साडी, कैसा गहना, कैसे उठना-बैठना चाहिए, किस पार्टी में अतिथियों के प्रति विनीत हुआ जाए और किसके यहाँ पति के पद की महत्ता से कम बोला, कम खाया जाय।''[7] इस प्रकार एक भारतीय कस्बाई लड़की पति के प्रेम के लिए पाश्चात्य सभ्यता को अपनाती है, परंतु पश्चिमी संस्कारों में पला उसका पति प्रणव शराब, औरत, सिगरेट जैसे शौक रखता है और अन्य स्त्रियों के खातिर अपनी पत्नी अनु को तलाक देता है। इसप्रकार वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव आज दांपत्य जीवन के लिए घातक सिद्ध हुआ है।

'पति ही परमेश्वर' इस रूढ़िग्रस्त संस्कारों को माननेवाली भारतीय नारी के पत्नी रूप में भी काफी परिवर्तन पाया जाता है | 'कालचक्र' की कल्पना और कुमारेश का प्रेमविवाह हुआ है | पति-पत्नी दोनों में वैचारिक भिन्नता होने के कारण विवाद होते रहते हैं | कल्पना कहती है, "यह मेरी जिंदगी का सवाल है | मैं जिस तरह रहना चाहती हूँ, वह कुमारेश को स्वीकार नहीं और वह जिस तरह रहना चाहता है, वह मुझे मंजूर नहीं |"[8] उन दोनों के दृष्टिकोण में शुरू से ही अंतर था | जो शादी के बाद ओंर बढ़ता ही गया | जिसने दांपत्य संबंधों को विकृत एवं संघर्षरत बना दिया | परस्पर सेवा, त्याग, प्रेम, समर्पण तथा सामंजस्य के अभाव में दांपत्यजीवन आज अभिशाप बन गया है | 'अपनी-अपनी यात्रा' की सुरेखा पति-पत्नी को न चाहते हुए भी एक साथ एक ही छत के नीचे रहने की स्थिति को नहीं मानती | उसके शब्दों में, "एक दूसरे को न चाह कर भी एक-छत के नीचे रहते हैं | क्योंकि बंधन है परिवार का, समाज का और विवाह का |"[9] सुरेखा के यह विचार परिवर्तन के सूचक है | आज की आत्मनिर्भर नारी पति की दासी या गुलाम बनकर जीना पसंद नहीं करती | 'एक जमीन अपनी' उपन्यास की अंकिता अपने दुराचारी पति सुधांशु की ऐयाशियों तथा ज्यादतियों से तंग आकर उसका त्याग कर देती हैं | कुछ साल बाद पति को होश आता है तब वह पत्नी से पुनश्च संबंध स्थापित करना चाहता है तब पति को फटकारते हुए अंकिता कहती है, "सुधांशु जी, औरत बोनसाई का पौधा नहीं है.. जब जी चाहा उसकी जड़े काटकर उसे वापस गमले में रोप दिया | ...वह बोना बनाए रखने की इस साजिश को अस्वीकार भी तो कर सकती है |"[10] पति के इस प्रस्ताव को ठुकराकर अंकिता पति के समक्ष ही आत्मनिर्भर होकर अपने अस्तित्व को प्रखर रूप में उजागर करती है |

नारी प्रसवधर्मिणी है वह अपने जीवन की चरम सार्थकता मातृत्व में ही मानती है | सभ्यता के उदय काल से मातृत्व के प्रति यह धारणा रही है कि विवाहोपरान्त ही नारी का मातृत्व वैध माना जाता है। अपने पति से ही मातृत्व प्राप्ति का अधिकार उसे दिया गया है। परंतु वर्तमान परिवेश में यह धारणा परिवर्तित होने लगी है। आज की नारी अवैध यौन-संबंधों से भी मातृत्व प्राप्त करना बुरा नहीं मानती। वह विवाहपूर्व या विवाहोत्तर प्रेमी अथवा अन्य पुरुषों से संबंध स्थापित कर अपनी मातृत्व की लालसा पूरी करती हुई दिखाई देती है। 'एक जमीन अपनी' की अविवाहित नीता पर-पुरूष सुधीर से यौन संबंध रखकर मातृत्व प्राप्त करती है। वह मातृत्व के लिए अवैध संबंध को गलत नहीं मानती और न विवाह बंधन को स्वीकारती है। बल्कि अविवाहित रहकर अपनी मातृत्व लालसा की पूर्ति करती है | वह एक बेटी को जन्म देती है और उसका पालन हिम्मत के साथ करने का निश्चय कर लेती है। 'दहकन के पार' की तुषार अविवाहित या कुँवारे मातृत्व को मानतावादी संदर्भ मे धारण करते हुई समाज मे एक ऐसी व्यवस्था की कल्पना कराती है, "जहाँ कोई स्त्री माँ बने तो, संसार की इतनी बड़ी अनुभूति उससे छीने नहीं, वैवाहिक समझोते का लेबल भर होने से क्या किसिं जिवंत सच को या सहज अस्तित्व से एव किसी जिवंत बच्चे को नाजायज कहा जा सकता है? इतनी बेतुकी बात, इतने ज्यादा वैज्ञानिक युग की इतनी बड़ी अवैज्ञानिक बात |"[11]

आत्मनिर्भर नारी दांपत्य जीवन के शोषणयुक्त रूप को चुनौती दे रही है। पति की नपुंसकता पत्नी के लिए अभिशाप बन जाती है | ऐसे में आज की नारी इसे नियती मानकर घुट-घुटकर नहीं मरती बल्कि यौन-तृप्ति लिए अन्य पुरुष के साथ अवैध यौन संबंध स्थापित करती है | परिणामस्वरूप आज दापत्य संबंधों के स्थायी मूल्यों मे परिवर्तन एवं विघटन हो रहा है। 'अकेला पलाश' की तहमीना पौरूषहीन पति जमशेद और सुंदर स्वस्थ प्रेमी तुषार के साथ त्रिकोणमिति जीवन बिताती है। वह नपुंसक पति के कारण तुषार से संबंध रखती है | तुषार उसे कहता कि "तुम मुझसे भी संबंध रखो और अपने घर के भी संबंध निभाओ | जमशेद घर से बाहर रहता है तब तुषार अपनी रात तहमीना के साथ बिताता है | तहमीना इसे पाप समझती है परन्तु तुषार कहता है, "पाप-पुण्य वगैरह कुछ नहीं है | दुनिया में जो मन को अच्छा लगता है वही पुण्य है | और जो अच्छा नहीं लगता, वह पाप है।"[12] इस प्रकार आज पाप और पुण्यसंबंधी मान्यताओं के प्रति भी नारी का दृष्टिकोण बदला हुआ है |

'नीलोफर' उपन्यास की नीलम हिंदू है वह मुस्लिम युवक से शादी करती है। शादी के बाद सास उसको बुरखा पहनने तथा नमाज पढ़ने के लिए कहती है। नीलम इसका विरोध करती हुई कहती है, "मुझसे नमाज पढ़ने की बात नहीं निभेगी।" वह जाती और धर्म के भेद को नहीं मानती। वह सिर्फ मानव धर्म को मानती है। जब उसे पता चलता है कि उसका पति देश के साथ गद्दारी कर रहा है तब वह विद्रोही बनती है। वह पति से पूछती है "क्यों? देश तोड़ने के लिए हथियार बांटते? कभी हिंदू को, कभी मुसलमान को |"[13] अंत मे वह पतिधर्म से ज्यादा देश धर्म को महत्व देती है और अपने देशद्रोही पति को स्वयं मार देती है। वह कहती है, "हाँ हिंदू हूँ, पर हिंदू से पहले हिंदुस्तानी हूँ, जिसके सामने पति धर्म से बड़ा, देश धर्म है।"

आज के विज्ञापन युग में 'मॉडलिंग' यह कम समय एवं कम श्रमों में अधिकाधिक अर्थ-प्राप्ति का एक उत्कृष्ट साधन है। नारी अपनी देह को वस्तु बनाकर लज्जा, संकोच, शील आदि बातों को नज़रअंदाज कर इस क्षेत्र में कार्यरत है। 'एक जमीन अपनी' की नीता अर्थ-प्राप्ति के लिए मॉडलिंग करती है। वह अधिकाधिक पैसा और नाम पाना चाहती है। इसके लिए अपने जिस्म का प्रदर्शन करके वह अर्थ-प्राप्ति करती है। अपने व्यवसाय में तरक्की करने के लिए वह बड़े-बड़े अफसरों को खुश रखने का प्रयास करती है। एक विज्ञापन में नीता अपने कपड़े उतारकर तट पर दौड़ती दिखाई देती है। अंकिता उसे पूछती है, "आखिर इस सीमा तक कपड़े कम करने की कौनसी विवशता टकरा गई तुमसे? तुम खूबसूरत हो, सेक्सी हो, यह कपड़ों के

बावजूद छिप नहीं पाता... जरूरी है रातोरात नंबर वन का दर्जा हासिल करने के लिए यह सब करना जो एक स्त्री के लिए ही नहीं, संपूर्ण स्त्री समाज के लिए अशोभनीय और लज्जा का विषय है। किन जीवन मूल्यों को जीना चाहती हो तुम?"[14] नीता मॉडल गर्ल के साथ कॉलगर्ल भी बन जाती है। इस प्रकार पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित नीता अपनी अर्थ-लिप्सा एवं प्रसिद्धि के लिए परंपरागत सभी नैतिक मूल्यों को तिलांजली देती है।

आज की शिक्षित नारी के मन में ईश्वर संबंधी मान्यताओं में भी परिवर्तन दिखाई देता है। 'अपनी अपनी यात्रा' उपन्यास की मधुर परंपरा से हटकर ईश्वर के संबंध में कहती है, "भगवान तो कुछ भी नहीं है, सुरेखा-एक आयडिया है-एक विचार है, जिसे हमने अपने देखे हुए सपने के हिसाब से एक शरीर, एक नाम दे दिया है। उसे रहने को मंदिर दे दिया है और मैं छलावों में किसी झूठी कल्पना और लोगों की बकवास में विश्वास नहीं रखती।"[15] अतः आज की नारी ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करती है।

इसप्रकार भुमंडलीकरण की प्रक्रिया मे व्यक्तिवादी भावना एवं आर्थिक स्वातंत्र्य के परिणामस्वरूप आज की नारी परंपरागत रुढ़ियों से पारिवारिक बंधनों से, तनावों से, जिम्मेदारियों से तथा घृणास्पद माहोल से मुक्ति की तलाश कर रही है | विवेच्य महिला उपन्यासकारों ने भारतीय रूढ़ि-मुक्त नारी का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है |

निष्कर्ष :

उपर्युक्त स्त्री-लेखन से यह स्पष्ट होता है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में भारतीय नारी जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं | अतः परंपरागत अबला ने परिवर्तन के परिवेश में सबला बनकर पुरुष के समक्ष अपने स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा की है | उच्चशिक्षा से प्रेरित आत्मनिर्भर नारी परंपरागत रूढ़ियों और बंधनों को ठुकराकर आगे बढ़ने के लिए संघर्ष कर रही है | विवेच्य लेखिकाओं ने नारी को वस्तु न मानकर व्यक्ति के रूप में चित्रित करते हुए नारी के रूढ़िवादी परिवेश से किए गए संघर्ष को यहां अधोरेखित किया है | नारी अकेली अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करने लगी है | फलस्वरूप अब परिवार में उसकी स्थिति एक याचिका की न होकर प्रबंधक की है | वह समाज तथा परिवार में दुय्यम स्थान लेना नहीं चाहती साथ ही बेटी, बहन, पत्नी या मां बनकर पुरुष के अधीन भी रहना नहीं चाहती बल्कि पुरुष के समान स्तर एवं अधिकार की मांग करने लगी है | प्रस्तुत लेखिकाओंने नारी को अनुगामिनी के रूप में चित्रित न करके सहगामिनी के रूप में चित्रित किया है | परिणाम स्वरूप टकराव, टूटन एवं संघर्ष अधिक मात्रा में दिखाई देता है | विवेच्य स्त्री-लेखन मे रुढि, परंपरा, तथा नारी के दैहिक शोषण के प्रति विद्रोह दिखाई देता है | विवेच्य स्त्री-लेखन के आधारपर यह कहना उचित होगा कि 'स्त्री को स्त्रीत्व से मुक्ति नहीं चाहिए | उन रूढ़ियों से मुक्ति चाहिए जिन्होंने उसे वस्तु बना रखा है |' आज की नारी परंपरागत रूढ़ि, परंपराओं तथा मूल्यों की संकिर्ण बेड़ियों को काट कर मुक्त हो रही है | गृहस्थी के सीमित एवं संकुचित दायरे से निकलकर समाज, सृष्टि एवं नारी जीवन का ज्ञान प्राप्त कर अपनी प्रगति का मार्ग स्वयं प्रशस्त करने लगी है | इसमें भूमंडलीकरण की भूमिका प्रेरक, साधन और साध्य तीनों दृष्टि से महत्वपूर्ण होने लगी है | फलस्वरूप आज की नारी में मानसिक दृढ़ता एवं आत्मविश्वास के दर्शन होते हैं |

संदर्भ:

1. डॉ. हेमंतकुमार पानेरी, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास मूल्य संक्रमण पृ.७४
2. शुभा वर्मा, फ्री लांसर पृ.२०२
3. चित्रा मुदगल, एक जमीन अपनी पृ.११७
4. कृष्णा अंग्निहोत्री, अभिषेक, पृ.३४
5. नासिरा शर्मा, शाल्मली, पृ.१६४
6. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ.११८
7. उषा प्रियवंदा, शेषयात्रा, पृ.२६
8. मधु भादुड़ी, कालचक्र, पृ.१४३
9. कुसुम अंसल, अपनी अपनी यात्रा, पृ.३९
10. चित्रा मुदगल, एक जमीन अपनी पृ.२२०
11. निरोपमा सेवती, देहाकन के पार पृ.७८
12. मेहरुन्नीसा परवेझ, अकेला पलाश, पृ.१३७
13. कृष्णा अंग्निहोत्री, निलोफर, पृ.२१४
14. कुसुम अंसल, अपनी अपनी यात्रा, पृ.४०
15. चित्रा मुदगल, एक जमीन अपनी पृ.१०७

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

चंद्रकांता के 'अंतिम साक्ष' उपन्यास में नारी विमर्श

डॉ.रंजना अप्पासाहेब कमलाकर

प्राचीन काल से ही पुरुष प्रधान संस्कृति में जीवन व्यतीत करते समय नारी पर पुरुषों के अन्याय, अत्याचार, शोषण, विवशता, आदि समस्याओं का वर्णन खुलकर साहित्य में हुआ है l साहित्य समाज का दर्पण है और ऐसे साहित्य से ही समाज परिवर्तन संभव है विभिन्न साहित्यकारों ने नारी समस्या या नारी मन के गोपन का वर्णन करके नारी को सामाजिक सम्मान और सुरक्षा देने का महत्वपूर्ण कार्य किया है l चंद्रकांता, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, कृष्णा सोबती, अमृता प्रीतम, कौशल बसंती, आदि महिला लेखिकाओं ने नारी मन के स्वतंत्र की बात की है l नारी मन के गोपन को ही प्रस्तुत आलेख में विवेचन किया है।

हिंदी साहित्य की एक श्रेष्ठ लेखिका चंद्रकांता द्वारा रचित "अंतिम साक्ष्य" उपन्यास में नारी मन, मुक्ति, नारी स्वतंत्र महत्वपूर्ण प्रश्नों पर आवाज उठाई है l नारी मुक्ति की कामना एवं मुक्ति की प्राप्ति इस उपन्यास की केंद्र बिंदु है l इस उपन्यास में स्त्री जीवन की त्रासदी के साथ पारिवारिक-विमर्श को भारतीय समाज के अनुरूप स्पष्ट किया है। इसमें नारी मन की अपेक्षा समाज की रीती एवं को श्रेष्ठ माना है l इसमें लेखिका ने नारी मन का गोपन और कश्मीरियत दोनों को पहचान देने की कोशिश की है।

आधुनिक युग में हम नारी मुक्ति,नारी स्वतंत्र,नारी परिवर्तन, को लेकर बढ़ा -चढ़ाकर बातें करते हैं l नारी मन का गोपन अभिप्राय है कि नारी की जीवन दशाओं समझे,उसके तन को देखने की अपेक्षा उसके मन की बात को समझ ले l उसके दुख मय जीवन का वास्तविक कारण समझ ले और उसके जीवन दशा में सुधार लाने में के लिए नारी की दीर्घायु ,उसकी स्वास्थ्य -रक्षा, शिक्षा,रोजगार तथा सामाजिक राजनीतिक आर्थिक सभी अधिकारों तथा सुख और स्वावलंबन का पूर्ण संरक्षण से उसकी अस्मिता बनाए रखना यही नारी मन का अर्थ है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य में चंद्रकांता की एक स्वतंत्र पहचान है l उन्होंने समय के बदलते स्वरूप के साथ चलते हुए अनुभूति की यथार्थता पर उपन्यास को युगानुकूल बनाया है समाज की विविध है। समाज की विविध समस्याओं को रेखांकन किया है l खासकर समाज में नारी की स्थिति ,गति, उन्नति उसके सबल और दुर्बल पक्षों को नारी मन को उजागर करते हुए नारी मन को एक स्वतंत्र अभिव्यक्ति प्रदान की है।

" अंतिम साक्ष्य" चंद्रकांता द्वारा लिखित पहला उपन्यास है l इस उपन्यास में उनकी सुदीर्घ रचनायात्रा के बीज विद्यमान है l कश्मीर और वहां का लोक जीवन का जो विस्तार उनके अन्य कृतियों में मिलता है l उसके सभी सूत्र इस उपन्यास में है l इसमें मुलथ: पारिवारिक सूत्रों को उभारा है जो सर्वदेशिक है l

उपन्यास की कथा का प्रारंभ पारिवारिक विघटन से बाल मन पर पड़े प्रभाव से प्रारंभ होता है l यदि उसका अंत भी होता है l पूरा उपन्यास मीना-मौसी और विकी मन के इर्द-गिर्द घूमता है l वास्तव में कथा का प्रारंभ पारिवारिक का कारण मीना को मानकर मीना के त्रासदी जीवन का वर्णन किया है l मातृ- पितृ विहीन बालिका वीना मीणा को चाचा- चाची का संरक्षण मिला। चाची ने बोझ मानकर उसका विवाह बुढालाल से कर दिया l बूढ़े लाल के जवान बेटे थे l मीना की मासूमियत और पुत्रों की गृहदृष्ठी से बूढ़ेलाल बहुत कुछ समझ गया और मीना को उनके चाची के पास सुरक्षित छोड़ आए l लेकिन भारतीय समाज में ब्याहती लड़की को पति ने छोड़ा तो परित्यक्ता माना जाता है। उसकी जिम्मेदारी सिर्फ नारी को समझा जाता है l चाची एक नारी होते हुए भी वह मीना के मन की बात को समझ नहीं पाती l उल्टा उसी को कोसते हुए उसकी शादी एक आवारा लफंगे गुंडे जगन से करा देती है l जगन ने उसे पत्नी के रूप में नहीं तो एक कामभोग्य वस्तु समझी l उसकी देह का उपभोग किया और अंत में एक दलाल मदनलाल को बेच दिया l मदनलाल ने उसे कोठे में कोठे की मालकीण को बेच दिया मीना अब एक स्त्री नहीं तो वेश्या बनी थी l कोठे मै मीना की मुलकात एक संगीत शिक्षक से होती। वह एक एक भला आदमी था l उन्होंने कोठे वाली को पैसे देकर मीना की आवाज और मासूमियत को समझकर कोटे से बाहर निकालता है। मीना का ज्ञान देकर, अच्छी तलीम कराकर उसे रेडियो गायिका ही नही स्टार बना देता है l अब मीना एक, सभ्य समाज, एक भले परिवार, मै रहनेवाली स्वावलंबी महिला जो लोकप्रिय गायिका थी। मीना का परिचय प्रताप यानी बाऊजी से होती है l बाऊजी की पत्नी बीजी और उन्हें विकी, सुरेश दो पुत्र है l प्रताप और मीना दोनों के आकर्षन ke बारे में चंद्रकांता लिखती है, की "बार-बार भीतर के खाली,कोने से त्रस्त बाउजी मीना मौसी को नितांत वैयक्तिक कोने में समेटने में क्यों और कैसे बेताब हो उठे इसके बारे में अपने साथ तर्क वितर्क करने के बाद भी वे कोई उत्तर न पा सके l"

प्रताप बिजी का समजदारी और सुखद दांपत्यजीवन था l सच यह है कि, बीजा जैसा आत्मत्याग और आत्मबलिदान उनमें नहीं था l शायद वो वैसा हो भी नहीं सकता था l पुरुष स्त्री में जन्म से ही संभाव गत भेद है। दोनों ने मिलकर सुखी जीवन के सपने बुने थे। बाऊजी कहते थे मेरे दोनों बेटे बहुत होशियार है। अब वे बड़े हो रहे हैंल उनके लिए यह घर छोटा पड़ रहा है, मैं एक बड़ा मकान बनाना चाहता हूं l जिसमें सब के कमरे अलग-अलग होंगे। तब बिजी टोकती है, " दो तो बैठे हैं हमारे l तीन कमरों में समाते नहीं है क्या? जब शादी -ब्याह होगा तब देखा जाएगा l अपने बेटे के भविष्य के बारे में सोचकर बाबूजी कहते थे। " मेरे बेटे होशियार है। खूब पढ़ेंगे। एक को आर्मी ऑफिसर बनाऊंगा, कई कई स्टार वाला। दूसरे को चीफ इंजीनियर बनाऊंगा।" बाउजी जब प्यार में आते थे, तब बीजी को देसी करते थे। अपने घर परिवार से इतना प्यार करने वाले बाउजी न जाने कैसे मीना के चक्कर में आ गए। अपने घर संसार से जुड़े लोगों की अपेक्षाओं को संतुष्ट करने की अनथक कोशिशों के बावजूद मीना-मौसी के पास आकर वह सब कुछ, भूलना चाहते थे। मीणा ने पहले पहले बहुत विरोध किया, " नहीं, मैं दीदी से किसी प्रकार का विश्वासघात नहीं करूंगी।" " विश्वासघात? " बाबूजी सोचते, बिजी की इच्छा आकांक्षा बहुत सीमित थी। उन्होंने कभी किसी चीजों की मांग याद जिद नहीं की। बीजी पति, घर और बच्चों की छोटी-छोटी जरूरतों को पूरा करते थोड़ी सी हंसी मनुहार से ही संतुष्ट थी l गृहिणी पत्नी मां इन संज्ञाओ में उनके मोटे- खूरदर अर्थो के बाहर उनकी आकांक्षाओं की लक्ष्मण रेखा खुद थी। एक छोटे से शामियाना में वे सुरक्षित थी। ऊपर भी कोई आकाश है, बिजी ने कभी न जाना। मीना और प्रताप के बारे में ख्याल आते ही

बिजी सोचती क्या मेरे प्यार, कमी थी जो पति ने ऐसा व्यवहार किया, सोच कर दुखी होती थी। बीजी लौकिक जगत की तीखी सच्चाई जानती थी। उन्हें कोमल संबंधों की अलौकिक अनुभूतियों का ज्ञान कहा था? बाऊजी पत्नी की मन स्थिति को न समझ सके। समझाने की कोशिश भी नहीं की। क्योंकि वे जानते थे कि दीदी सीधी सीधी सपाट जिंदगी जीने वाली नारी है। सदियों से चले आए तर्कहीन विश्वासो के दकियानूसी संस्कार ओढ़े हैं। जिन्हें वे किसी नए रूप में ढाल न सकेगी। इसका परिणाम हुए मीना के प्रति आकृष्ट हुए। एक घटना के परिणाम स्वरूप हंसी खुशी से रहने वाला परिवार दु:ख की खाई मे लेट गया।

माँ की मृत्यु के बाद पूरा परिवार साथ साथ करता खालीपन में बितता गया। विकी जो माँ का लाडला था वह अंदर से टूटता गया। सुरेश की आवारगर्दी तमाम हदों को पार कर दी और बाबूजी रोग से त्रस्त रहने लगे l और उसी में उनका अंत हो गया l अंत में मकान और सभी चीजों को निकामी करके मीना को थोड़े बहुत पैसे विकी देता है और सभी यादों को छोड़कर दु:खी भाव से अपने मकान से निकालता है l वहां मकान के जगह पर एक धर्मशाला बनाया जाता है।

प्रताप को प्रेमिका मीना और पत्नी बिजी दोनों की मानसिक गोपन के बारे में सोचें तो पता चलता है कि, इसमें दोनों का कोई कसूर नहीं है l लेकिन मानसिक आघात दोनों को सहना पड़ता है l पति की नाजायज हरकतें को देखकर बिजी मनोरुग्ण तपेदिक रोग से ग्रस्त बन जाती है। और उसी में उसका अंत हो जाता है l बाऊजी मीना को घर ले आते हैं lलेकिन उनके दोनों बेटों उनसे दूर हो जाते हैं l मीणा ना तो दुल्हन बन सकी, ना ही रखैल और न प्रेमिका उसका सारा जीवन अधूरा और बेसहारा बना। सब कुछ होने के बावजूद बाऊजी का मीना के प्रति आकर्षण प्रताप भी नहीं समझ सके। मीना मौसी ने भी प्रतिरोध किया और दोनों कोई उत्तर भी नहीं पा सके l पर शायद दोनों सभी सम्पन्नताओ के बावजूद प्रेम के भूखे थे l उस प्रेम के जो प्रतिदान नहीं चाहता उसमें केवल समर्पण हो जो केवल देता जानता हो l मीना मौसी जीवन के कटु अनुभवों से गुजरी थी और उन्होंने सब कुछ देख कर भी प्रेम की शीतलता नहीं प्राप्त की थी। बाउजी का औदार्य है और आदर्श जीवन में केवल प्रेम की परिकल्पना ने बाबूजी और मीना को एक तो कर दिया पर परिवार में बाबूजी का अस्तित्व बिखर गया।

" अंतिम साक्ष्य" में अनेक पात्र आए है lपरंतु मुख्य नारी चरित्र मीना, मौसी,बिजी और जिनके जीवन के घात- प्रतिघात ही इस उपन्यास में संजित समुचय नियती हुए हैं l नारी जीवन सुख - दुख का समय है और परिस्थितियां मनुष्य को सबल और दुर्बल बनाती है। मनुष्य समुचय नीति के विधान का परिणाम है l केंद्रीय चरित्र मीना कन्या से मौसी की पात्रा तक जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव से गुजरती है। इस सामाजिक रूप से उन्हें रेडियो गायिका के रूप में उन्हें लोकप्रियता भी मिली lपर पारिवारिक रूप से वे न पुत्री बन सकी, न पत्नी, न प्रेमिका और न रखेल। कितना उपयोगिता है इस उपन्यास में बताया गया है lबाउजी के प्रति प्रेम और आकर्षण तो रहा पर बाबूजी उसे वह न दे सके जो एक पत्नी के रूप में मिलता है l प्रेम,स्नेह,दया,करुणा से स्त्री को मानसिक प्रतिष्ठा नहीं मिलती उसका अधिकार ही नहींगृहिणी रूप में है जिसे अंत में बाऊजी की पत्नी के मृत्यू के बाद पत्नी रूप देने की कोशिश की पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी। बीजी के न रहने पर मीना मौसी का आना पूरे परिवार को तोड़ गया lऔर बाबूजी का परिवार भी बिखर गया। स्त्री जीवन की दूसरी पीडा बीजी का जीवन है l बिजी एक सभ्य और सम्मानित गृहिणी थी l मोहल्ले में उनका आदर था l बाऊजी को भी उनसे कम प्रेम नहीं था l अट्ट विश्वास और स्नेह पर अवलंबित इस परिवार को अविश्वास एक चुभन ने तोड़ दिया l बीजी एक आदर्श स्त्री थी l उन्होंने परिवार को बचाने के लिए सामाजिक मर्यादा की रक्षा के लिए सारी पीड़ा सहन कर ली l पर स्वयं अंदर से टूट गई। बाऊजी को भी बिजी से कम स्नेहा नहीं था। वे उनकी सेवा, चिकित्सा में तल्लीन रहे पर वह कोना जो रिक्त पड़ा था इस द्विधा स्थिती को बीजी सहन नहीं कर सकी और आहुति दे दी l बीजी की पीड़ा को लेखिका ने समझा है-" डीजी का प्रेरणा स्त्रोत अचानक सूख गया l अपने को महत्वपूर्ण समझते एक दुर्भाग्य भरे दिन उन्हें महसूस हुआ कि उनका अपना आदमी उनके अस्तित्व को नकार गया है। घर की चक्की में चाक की तरफ घूमती बीजी को लगा कि वह एकदम फालतू हो गई है l"

"अंतिम साक्ष्य" उपन्यास का विवेचन देखने से स्पष्ट होता है कि इसमें एक ऐसी नारी के मन का गुपन है जिसमें जिंदगी में सब कुछ स्वीकार कर भी कुछ नहीं पाया l विवाह के बाद भी दुल्हन नहीं बने l इस शरीर केवल भोग की वस्तु बना रहा। प्रेम मिला पर प्रेमिका नहीं बन सकी केवल रखैल बन कर रहना चाहती थी l अंत में रखैल भी नहीं बने। उपन्यास में एक नए समाज में टूटते परिवार की व्यथा इसका परिणाम बालिका पर और युवा होने के बाद नारी मन का किसी प्रकार प्रभाव होता है। इसका एक ज्वलंत उदाहरण दिया है l पारिवारिक सुख समृद्धि आनंदी जीवन बालिका विकास के लिए कितने महत्वपूर्ण होते हैं यह स्पष्ट किया है l इस समग्र रूप में इस उपन्यास में नारी मन और जीवन की पीड़ा उनका अदभूत गुफन स्पष्ट किया है l

संदर्भ ग्रंथ :

1)अंतिमसाक्ष"-चंद्रकांता.
2) दोहरा अभिशाप -कौशल्या बैसंदी .
3) आना इस देश- डॉ कृष्णा अग्नि
4) अंतरवशी- उषा प्रियंवदा
5) आपका बंटी- मन्नू भंडारी.

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श

डॉ. महिपती जगन्नाथ शिवदास
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग, सदगुरू गाडगे महाराज कॉलेज, कराड
E-Mail- shivdasmj@gmail.com

हमारे भारतीय समाज रचना में नर-नारी के अलावा एक तीसरा लिंग भी रहा है उसे किन्नर, हिजड़ा, मौसी, पवैया, छक्का, मेहला, नपुंसकलिंग, थर्ड जेन्डर तृतीयलिंगी, उभयलिंगी,युनक, खोजवा, मोंगा, जनखा, अनरावनी, शिखंडी, खाजासरा इत्यादी नामों से जाना जाता है। महाभारत काल में शिखंडी तथा अर्जुन के ब्रहन्नला रूप को हम साहित्य में जानते है। आज के युग में ऐसे लोगों को 'हिजडा' नाम से पहचानते हैं। साहित्य के क्षेत्र में 'हिजडा' शब्द के अलावा 'किन्नर' जैसे सम्मानित शब्दों से पुकारा जाता है। नर-नारी का जन्म परमात्मा की देन है। यह देन प्रत्येक माता-पिता के लिए वरदान है, अगर किसी पति पत्नी को संतान नहीं रहती तो उनके प्रति समाज का देखने का रवैया कुछ अलग रहता है। ऐसे ही माता-पिता को अगर तृतीय लिंगी संतान की प्राप्ति होती है तब माता-पिता ऐसे बच्चे को अपने पास रखने के बदले उसे किन्नर समुदाय में छोडते है।

आज साहित्य क्षेत्र में दलित, आदिवासी, मुस्लिम, नारी, किन्नर विमर्शों की चर्चा जोरों पर चल रही है। समाज व्यवस्था में पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग इन तीन लिंगों में से पुलिंग की चर्चा अधिक होती है, किंतु स्वाधीनता आंदोलन के दौरान संविधान निर्माता डॉ. भीमराव आंबेडकर जी ने सभी को समानता प्रधान की गई है। 'महाभारत' युग के शिखंडी 'बृहन्नला' जैसे पात्रों को गौण रूप से देखा जाता था। परंतु मानवाधिकार के तहत किन्नरों को तमाम अधिकार देने की बात हो रही है, आज भी किन्नर लोग हमारे समाज व्यवस्था में उदरनिर्वाह के हेतु रूपयों-पैसों की मदद मांगते है किंतु हम दस-पाँच रूपये देने के लिए भी मूँह घुमा देते है। किन्नर योनि में जन्म लेना उसके हाथ में नहीं है आज भी किन्नरों को मानवताभरी नजरों से नहीं देखा जाता। किन्नर साहित्य के बारे में नीरजा माधव- 'यमदीप', प्रदीप सौरभ- 'तीसरी नाली', 'देश भीतर देश', पारू मदन नाईक- 'मैं क्यों नहीं', निर्मला भुराडिया– 'गुलाम मंडी', लक्ष्मीनारयण त्रिपाठी- 'मैं हिजडा मैं लक्ष्मी', महेंद्र भीष्म- 'किन्नर कथा में पायल', चित्रा मुदगल– 'पोस्ट बॉक्स न 203', 'नाला सोपारा', भगवंत अनमोल– 'जिंदगी 50-50', गिरिजा भारती- 'अस्तित्व', सुभाष अखिल– 'दरमियाना', मोनिका देवी– 'अस्तित्व की तलाश में', डॉ. मुक्ति शर्मा– 'श्रापित किन्नर', अनुसुया त्यागी– 'मैं भी औरत हूँ'। जैसी रचनाओं में तृतीय लिंगी व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति धार्मिक मान्यताएँ, गुरू का महत्व, रहन-सहन की जानकारी मिल जाती है। हिंदू धर्म की मान्यता के अनुसार ब्रह्मा, विष्णू, महेश जो निमाणकर्ता, तारणहार, और संहार करनेवाले देवता माने गये हैं, सृष्टी में नर ओर मादा के अलावा एक उभयलिंगी जीव है जो नर है ना मादा है। मानव समुदाय उभयलिंग समुदाय की उपेक्षा करता है। इन्हीं समुदाय का न सम्मान, न सामाजिक आदरभाव, होता है तो उनका हमेशा उममर्द, अपमान, अवहेलना करता है। समाज का दुर्लक्षित समूह मानकर अवहेलना उपेक्षा करता है।

किन्नरों के प्रकार:

किन्नर याने जिनके जननांग पूरी तरह से विकसित न हुए है। या भले ही पुरूष हो किंतु उसकी हरकते नारी के समान हो। ऐसे व्यक्ति को पुरूष के बीच रहने के बदले स्त्रियों के बीच रहने में अच्छा लगता है। विद्वानों ने हिजडों को निम्न वर्गों को मान्यता दी है, जैसे बुचरा, नीलिमा, मनसा, हंसा। समाजशास्त्रीय दृष्टि से किन्नर समाज इस लेख में श्री पटेल धवनकुमार जो अबुआ और छिबरा जैसे और दो प्रकार मानते है।[1] हम यहॉ पर हर एक प्रकार की विशेषता को देखेंगे –

1. बुचरा – वास्तविक हिजड़े बुचरा ही होते हैं वे जन्मजात पुरूष होते हैं न स्त्री होते हैं – किसी परिवार में बुचरा किन्नर पैदा होने पर माता-पिता के द्वारा जल्द से जल्द किन्नर समूदाय में छोड दिया जाता है। छोड देने वाले परिवार को लगता है कि उस संतान के कारण उसके पुरूषत्व पर लोग उँगली उठायेंगे और वह बच्चा बडा होकर माता-पिता की सामाजिक स्थान में आँच आने देगा। अत: ऐसे बच्चे को जो किन्नर रहे है, उसे किसी डॉक्टर की सलाह लिए बगैर उसी बस्ती, परिवार में छोड दिया जाता है कि जहाँ पर किन्नर समुदाय रहा हो।

2. नीलिमा - ऐसे किन्नरों को कई कारणवश स्वयं को किन्नर बनाने के लिए सौप देते हैं।

3. मनसा – यह किन्नर शारीरिक विकलांगता न होते हुए भी मानसिक तौर पर किन्नर होते है, जो स्वयं को विपरीत लिंग अथवा अक्सर स्त्रीलिंग के निकट महसूस करते हैं। इन किन्नरों को सामान्य मनोवैज्ञानिक काऊसिलिंग के द्वारा वापस इनके वास्तविक लिंग में बदला जाता है।

4. हंसा – यह किन्नर शारीरिक कमियां, नपुंसकता आदि यौनिक न्यूनताओं के कारण अपने को किन्नर मानते हैं। ऐसे किन्नरों का ऑपरेशन या इलाज करने के बाद सामान्य पुरूष या सामान्य स्त्री के रूप में जीवन मिलता है।

5. अबुआ – यह किन्नर वास्तव में पुरूष होते है किंतु धन-पैसा मिलाने के हेतू किन्नर का स्वाँग रचते है। धनोपार्जन करने के लोभ से यह लोग सच्चे किन्नरों पर अन्याय करते हैं। ऐसे किन्नर रात के समय सडकों पर घूमकर ट्रक ड्राइवरों के साथ अप्राकृतिक यौन संबंध कर पैसा जुटाते है।

6. छिबरा – जबरदस्ती से बनाये गए किन्नरों को छिबरा कहा जाता है। कभी-कभी परिवार से आपसी बैरभाव या दुश्मनी लेने की वजह से लडके या लडकियों का लिंगोच्छेदन किया जाता है। ऐसे किन्नर भयावह समस्या से गुजरते है। ऐसे जघन्य कृत्य करके एक व्यक्ति के जीवन को नाटक बना देते हैं और पीडित शिशु को बिना किसी अपराध के आजन्म इस यंत्रना से गुजरना पडता है।

असली किन्नरों की तुलना में नकली किन्नरों की संख्या बढ़ती जा रही है। उसके बारे में 'हिजडा नहीं इंसान' इस लेख में महेंद्र भीष्म लिखते है कि, "यह लोग मर्द या स्त्री होते हैं। कई-कई एक दो बाल-बच्चेदार भी होते हैं। पर पैसा कमाने के लिए उन्हें किन्नर बनने से भी कतई गुरेज नहीं है।"[2] महेंद्र भीष्मजी किन्नरों की तादाद के बारे में कहते है कि, किन्नरों की असली तादाद बहोत कम है, कभी-कभी दो-चार रूपयों के लिए मेले-ठेले में भीख माँगने के लिए घूमते हैं।

हिजडा समुदाय में गुरू सर्वोच्च:

किन्नरों में गुरू को अधिक महत्व है एक ही किन्नर समुदाय में आपसी विवाह होता है तो इन्हीं विवादों को सुलझाने का काम गुरू ही करता है। विवाद का कारण जानने पर गुरू अपना निर्णय देता है। और यह निर्णय अंतिम माना जाता है कि किन-किन हिजडों को किस-किस क्षेत्र में जन्मोत्सव या मंगलकार्यों के लिए चला जाना है। जन्मोत्सव और मांगलिक कार्यों में रूपया भी अच्छा मिलता है जिसे 'यजमानी' कहा जाता है। किन्नर समूह पर कार्य करनेवाली लेखिका नीरजा माधव का कहना है कि, "एक समूह के यजमानी क्षेत्र में दूसरे समूह के हिजडों को प्रवेश वर्जित होता है। अपने-अपने क्षेत्र में वे कमाई कर सकते हैं। कमाई के लालच में चुपके से दूसरे क्षेत्र के हिजड़े भी पहुँच पाते हैं। कभी-कभी मौके पर दूसरी पार्टी से मारपीट तक कर लेते है।"[3] यजमानी से नाच-गाकर जो धन मिलता है वह जीविकोपार्जन के काम आता है। आजकल फैमिली प्लॅनिंग की वजह से हिजडों की आमदानी पर गिरावट आई है।

हिजडों में यह बात उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कमाई होती है उन्हीं कमाई में से एक बडा हिस्सा ईमानदारी के साथ अपने गरू के पास जमा करना पडता है। कभी एखाद हिजडा बीमार होता है तो उसकी सेवा करने के लिए दुसरे हिजडों को रखा जाता है। दूसरे सेवा करनेवाले हिजडों कुछ रूपयों भी दिए जाते है। यह खर्चा गुरू ही उठाता है। इस परंपरा में एक दूसरे के प्रति सेवा सहानुभूति की भावना बनी रहती है।

हिजड़ो का अंतिम संस्कार:

अंतिम संस्कारों को बारे में एक बात पढ़ने के लिए मिलती है कि, हिजड़ा समुदाय में किसी की मृत्यु हो जाने पर लाश को जूते-चप्पलों से पीटते हैं ताकि उसका पुनर्जन्म इस योनि में फिर न हो, तो किसी ने बताया कि, अन्तेष्टि के लिए वे रात में लाश को अपने बीच खडा करके ले जाते हैं ताकि किसी को मरने की खबर न हो। और भी विचार मिलते है कि, समशान घाट या कब्रिस्तान में न ले जाकर वे जहाँ रहते हैं वहीं पर गड्डा खोदकर लाश को गाडते है। उस पर थुकते है, उनका मत है कि, फिर इस योनि में इसका जन्म ना हो। किंतु यह मत नीरजा माधवजी के अनुसार भ्रामक तथा तथ्यहीन है, जब अन्तेष्टि के बारे में लेखिका किन्नर गुरू से पूछती है तो किन्नर गुरू का उत्तर आचरजपूर्ण लगता है जैसे "बेटी इसके बारे में हम लोग बाहरी आदमियों को कुछ नहीं बता देते। हमारे समाज में यह नहीं बताया जाता इसलिए हम तो नहीं बतायेंगें।"[4] याने सामान्य बालक में किन्नर के लक्षण दिखाई देने पर उसे उस परिवार से किन्नर समुदाय में भेजा जाता है और जब मृत्यु होती है तो भी उसका मश्चिद छिपाना पडता है ताकि उसके परिवार या समाज को उनके अस्तित्व के बारे में जानकारी न मिले। यह एक विडंबना है, उपहास और मजाक है, अन्धे, लँगडे मानसिक रूप से विकलांग बच्चों को परिवार में संरक्षण मिलता है किंतु प्राकृतिक रूप से विकृति आने पर उस घर में सहज वातावरण के साथ नहीं रखा जाता, ऐसी लैगिंक परंपरा प्रथा को सदा-सदा के बदलना चाहिए। तभी किन्नरों के प्रति समाज के दृष्टिकोन बदल सकता है।

संक्षेप में कोई भी हिजडा ईश्वर से नहीं कहता कि मुझे तृतीय लिंग में निर्माण कर, यह प्रकृति का अदभुत खेलं है। किन्नर भी हमारे समाज का एक हिस्सा है, जब हमें उनकी ओर से आशीर्वाद लेना है तो आवश्यकता होती है, और उनकी जब आवश्यकता नहीं होती है तो तिरस्कृत कर दिया जाता है। तो ऐसी दो मुँहंवाली स्थिति किन्नरों के प्रति आशादायक नहीं है। वह जीव उतना ही समुदाय के लिए आवश्यक है, जितने हम है। उनके प्रति सहानुभूति से देखना यह मानवता-दयाभाव परक होगा।

संदर्भ:

1. संपा- डॉ. दिलिप मेहरा, हिंदी कथा साहित्य में किन्नर समाज, माया प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2018, पृ.10
2. संपा- डॉ. दिलिप मेहरा, हिंदी कथा साहित्य में किन्नर समाज, माया प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2018, पृ. 11
3. नीरजा माधव- किन्नर नहीं हिजड़ा समुदाय, ए.बी.एस. प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण 2019, पृ. 50
4. नीरजा माधव- किन्नर नहीं हिजड़ा समुदाय, ए.बी.एस. प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण 2019, पृ. 54

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

अस्तित्व उपन्यास में अस्तित्व की तलाश: किन्नर विमर्श के संदर्भ में

डॉ मंजु पुरी
सहायक आचार्य, हिंदी इक्डोल, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला
ईमेल -hindi. manju@gmail.com

भूमिका:

बीसवीं शती के उत्तराद्ध और 21वीं सदी के आरंभ में हिंदी साहित्य जगत में अनेक विमर्श उभर कर सामने आए हैं, जो सदियों से उपेक्षित व हाशिएपरक जिंदगी जी रहे थे ।इन विमर्शों में से एक विमर्श है 'किन्नर विमर्श' l

'किन्नर'जो समाज को उसके सुख-समृद्धि का आशीर्वाद तो दे सकता है लेकिन उस समाज का हिस्सा नहीं बन सकता l यह वर्ग तृतीय लिंगी, थर्ड जेंडर, हिजडा, किन्नर, छक्का इत्यादि नामों से जाना जाता है l वर्तमान में यदि देखा जाए तो सुप्रीम कोर्ट के हस्तक्षेप के कारण उन्हें थर्ड जेंडर नाम दिया गया है l जिसे अब समाज में शिक्षा, चिकित्सा, बच्चा गोद लेने,व रोजगार के अवसर प्राप्त करने का अधिकार है l लेकिन इतने अधिकारो को देने के बावजूद भी बहुत सारे प्रश्न है जो निरंतर उठते रहते है कि क्या क़ानूनी अधिकार देने से समाज का नजरिया बदलेगा ? गिरिजा भारती द्वारा रचित 'अस्तित्व उपन्यास 'जो निराशा में आशा का संचार करता हुआ निरंतर आगे बढ़ता है और समाज के लोगों को बार-बार है यह सोचने को बाध्य करता है कि किन्नर समाज का ही अभिन्न अंग है l उनसे शुभ आशीष लेने के साथ-साथ उनको समाज में स्थापित करने का दायित्व भी हमारा ही है l माता-पिता किन्नर बच्चे के लिए ऐसे सम्बल है यदि वे चाहे तो किन्नरों को कभी भी अमानवीय जीवन ना जीना पड़े l

मुख्य शब्द - किन्नर ,विमर्श, ट्रांसजेंडर, तृतीय लिंगी

साहित्य समाज का दर्पण है और दर्पण होने के नाते साहित्य समाज के सामने उन लोगों की सही स्थिति को प्रस्तुत करता है जो समाज में दरकिनार कर दिए गए हैं हाशिएपरक जीवन जीने के लिए बाध्य हैं l आज साहित्य में अनेक वर्ग के विमर्शों का दौर चल रहा है उन वर्गों में से एक वर्ग है 'किन्नर' जिसे समाज में हिजड़ा, छक्का, तृतीय लिंग कहकर पुकारा जाता है l बुचरा, नीलिमा, मनसा और हनसा इन चार नामों से विभाजित इस वर्ग को समाज में अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता l विमर्शों के इस दौर में जहां स्त्री, दलित, वृद्ध, अपंग, आदिवासी समुदाय अपनी मूलभूत मानवाधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं वही तृतीय लिंगी अर्थात किन्नर, हिजरा समुदाय भी अपनी हाशिएपरक जिंदगी को छोड़कर अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रहा है l तृतीय लिंग से अभिप्राय है जो ना तो पूर्ण रूप से स्त्री हो और ना पूर्ण रूप से पुरुष ऐसे लोगों को तृतीय लिंगी कहा जाता है l l"अभी कुछ वर्ष पहले माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले में उपरोक्त शब्दों के स्थान पर था थर्ड जेंडर के नाम से संबोधित किया है इसलिए अब इस समुदाय के लोगों को थर्डजेंडर के नाम से पुकारा जाएगा l l"1अपने अस्तित्व के लिए प्रयत्नशील यह वर्ग समाज में रहते हुए भी, समाज में ही अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है l थर्ड जेंडर का अस्तित्व उतना ही पुराना है जितना मानव जाति का l यदि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखें तो हिंदू, जैन, बौद्ध धर्म ग्रंथों, संस्कृत ग्रंथों व कामसूत्र में भी तृतीय प्रकृति का हमें वर्णन मिलता है l किन्नरों के उद्भव और अतीत के संबंध में अनेक अंतर्कथाएं प्रचलित हैं इनमें से सर्वाधिक प्रचलित कथा भगवान राम की वनगमन से संबंधित है जब पिता की आज्ञा से राम सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट आ गए तब उन्हें मना कर वापस अयोध्या लाने हेतु भरत अयोध्यावासियों के साथ चित्रकूट आए थे l प्रभु राम ने भरत तथा अयोध्यावासियों की अनुनय विनय अस्वीकार करते हुए सभी प्राणियों को वापस जाने को कहा परंतु हिजड़ो के लिए कुछ नहीं कहा जबकि वे उन्हें मनाने हेतु वहां उपस्थित हुए थे l कहा जाता है कि प्रभु का आदेश प्राप्त न होने के कारण हिजड़ों ने 14 वर्षों तक वहीं रुक कर उनकी प्रतीक्षा करने का निर्णय लिया l

" जथा जोगु करी विनय प्रणाम l विदा किए सब सानुज रामां
नारी पुरुष लघु मध्य बड़ेरे l सब सनमानी कृपानिधि फेरे "2

कहते हैं कि प्रभु राम हिजड़ों की इस निश्चल निस्वार्थ भावना से अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया कि कलयुग में तुम लोग राज्य करोगे I कहते हैं भगवान राम ने यह भी वरदान दिया कि तुम जिन्हें अपना आशीर्वाद दोगे उसका कभी अनिष्ट नहीं होगा इसलिए शुभ अवसर पर गृहस्थ इनका स्वागत करते हैंl

महाभारत में शिखंडी का चित्रण, अर्जुन का अज्ञातवास धारण करके 1 साल के लिए किन्नर रूप धारण करना व मध्यकाल में भी हमें किन्नरों के युद्ध निपुणता के अनेक प्रमाण मिलते हैं जैसे अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिकापुर का किन्नर होते हुए भी खिलजी के साथ युद्ध में जाना और वीरतापूर्वक युद्ध में विजयी होना ।इस बात के साक्षी हैं की उस समाज में स्त्री पुरुष दोनों की क्षमता होने के कारण किन्नरों को जासूसी का कार्य भी दिया जाता था लेकिन अंग्रेजों के शासन में हमें किन्नरों के साथ अच्छा व्यवहार दिखाई नहीं देता l यहीं से उनके साथ दुर्व्यवहार की शुरुआत हो जाती है लेकिन वास्तविकता यह है कि शासन, प्रशासन और शासक बदलते रहे हैं लेकिन किन्नर समुदाय व उसकी समस्याएं वहीं की वही है क्योंकि 21वीं सदी में रहने वाला हमारा समाज किन्नरों को केवल शादी बारात या किसी मांगलिक अवसर पर नाचते गाते हुए ही देखना चाहता है यदि इन शुभ अवसरों ये न आए या नाराज हो जाए तो बहुत अशुभ माना जाता है लेकिन समाज का यही उपेक्षित वर्ग यदि समानता की मांग करें, समाज का अंग बनना चाहे तो हमारा सभ्य समाज इसे कदापि स्वीकार नहीं करना चाहता l यद्यपि माननीय न्यायालय ने उन्हें थर्ड जेंडर नाम से संबोधित किया है l जो की इस समुदाय के लिए प्रसन्नता का विषय है l थर्ड जेंडर को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास 'अस्तित्व 'काफी हद तक हमारी संकुचित दृष्टिकोण को विस्तारित रूप देता है l किन्नरों की संघर्ष गाथा को जिसे लेखिका गिरिजा भारती ने एक लड़की के किन्नर होने के माध्यम से सफल अभिव्यक्ति दी है l प्रीत को जब अपने अस्तित्व का बोध होता है तब उसके मन में उठने वाले शंकाओं के तूफान, व अज्ञात भय, मानव मन में उठने

वाले अनेक सवालों की उटक पटक इस संवेदनशील विषय को हमारे सम्मुख यथार्थ अभिव्यक्ति देती है l प्रीत की मां उसके किन्नर होने की सच्चाई को सबसे छुपाना चाहती है ताकि उसकी बेटी को कोई उससे छीन ना सके l जब उसकी मां को अपनी दोहती के किन्नर होने का पता चलता है तब सुधा कहती है " मुझे यह समझ नहीं आता माँ, लोग कुत्ते पालते हैंl उसको अच्छे-अच्छे साबुन, शैंपू से नहलाते हैं l उसको कितना प्यार और इज्जत देते हैंl कितने प्यार से बिठाते हैं, उसको बिस्तर पर सुनाते हैं, वह कुत्ता है, जानवर हैl जब आप उसे जीने का अधिकार देते हैं तो किन्नर को क्यों नहीं "वास्तव में हमारा सामाजिक कुत्ते को एक अधिकार दे सकता है लेकिन एक किन्नर को क्योंनहीं ?3 क्या इसलिए कि वह किन्नर है और वह प्रकृतिजन्य अपराध से ग्रस्त है l कितना गहरा व्यंग्य है भूमंडलीकरण के इस दौर में बड़े-बड़े अनुसंधान करने वाले, चांद -मंगल पर जीवन बसाने की बड़ी-बड़ी बातें करने वाले 21वीं सदी के मानव की सोच पर l जब हमारे तथाकथित आधुनिक समाज में एक किन्नर का जन्म होता है तो घर में मातम छा जाता है यदि आसपास के लोगों को पता चल जाए कि अमुक घर में किन्नर पैदा हुआ है तो उस परिवार की स्थिति इतनी शर्मनाक हो जाती है मानो उस घर में किन्नर पैदा होने के कारण उन्होंने जात बिरादरी से बाहर होने का कार्य कर दिया हो l किन्नर होने का अर्थ है - समस्त रिश्तो का समाप्त होना I यद्पि सुधा अपनी बेटी के किन्नर होने की बात किसी को नहीं बताती लेकिन जब किन्नर उसके घर बधाई देने आते है तो वह डर जाती है उसे लगता है कि वे उसकी बच्ची को उससे छीन लेंगे वह डर के मारे दरवाजा बंद कर लेती है "अरे सुधा, अब तो दरवाजा खोल कितनी देर बंद करके बैठी रहेगी अब तो वह लोग चले गए अरे वह तेरी बच्ची को क्यों ले जाएंगे उनका तो काम ही है लोगों को डराना धमकाना तुम तो ऐसे डर गई अरे मजाल है कि जो मेरी पोती को छू सके हाथ ना तोड़ दूंगी"4एक दंपति जिसे शादी की कई वर्षों के बाद संतान की प्राप्ति हुई है और वह किन्नर हो तो उस माता-पिता के मन में उठ रहे तूफान का अंदाजा लगाना अत्यंत कठिन है क्योंकि उनके लिए जीवन का प्रत्येक क्षण इसी मानसिक दबाव में बीतता है कि उनका बच्चा किन्नर है l अस्तित्व उपन्यास में जहां प्रीत को अपने किन्नर होने के अस्तित्व का बोध होता है तो वह स्वयं को संभाल नहीं पाती यद्यपि उसके माता पिता उसके लिए सम्बल है लेकिन फिर भी स्वयं को बहुत असहाय महसूस करती है l

" प्रभु क्या मुझ में सिर्फ एक कमी के कारण इतना फर्क कि पता चलने पर लोग मुझे इस समाज से अलग कर देगें… तो क्या मेरे माता-पिता से भी दूर कर देंगे l मुझे मेरे माता-पिता से भी दूर कर देगा l चाहती कि खूब दहाड़े मारकर रोए l जिससे उसकी आवाज भगवान तक पहुंचे, लेकिन यह भी नहीं कर सकती दहाड़े मारना तो दूर सिसकने पर ही भीड़ जमा हो जाएगी और पूछेंगे कि क्या हुआ"5भारतीय समाज में किन्नरों के साथ धार्मिक एवं सामाजिक दोनों दृष्टि से भिन्न भिन्न व्यवहार किया जाता है जहां धार्मिक दृष्टि से उनका घर आना, व बच्चों को शुभ आशीष देना शुभ माना जाता है वहीं दूसरी ओर सामाजिक दृष्टि से उन्हें अत्यंत हीन माना जाता है l उनके साथ अत्यंत अमानवीय व्यवहार किया जाता है l प्रीति को अपने किन्नर होने का तो दुख होता ही है पर समाज की इस सोच पर हैरानी होती है कि यह कैसा समाज है जहां मानव में कोई कमी ना होने पर भी उसे उसके द्वारा जातिगत भेदभाव किया जाता है l "भागो, भागो दूर भागो, कुछ भी छुआ तो हड्डी पसली एक कर दूंगा"6

लेखिका अनेक स्थानों पर यह प्रश्न उठाती है कि किन्नर भी किसी की संतान है l उनका भी परिवार, माता-पिता, व भाई बहन होते हैं ऐसे में यदि अपने ही लोग इन्हें छोड़ देगे तो उनके दिल पर क्या बीतेगी l प्रीत टीवी पर एक किन्नर का इंटरव्यू देखकर बहुत आहत होती है l जब उस किन्नर का परिवार उसको केवल इसलिए घर से बाहर निकालना चाहता है क्योंकि वह किन्नर है "मां चुपचाप खड़ी रोती रही कुछ नहीं बोली, पापा चीखते हुए बोले, जितना पैसा चाहती है मैं इसे दूंगा मगर इसे कहो कि ऐसी जगह चली जाएगी मुझे इसकी फिर कभी शक्ल ना दिखाई दे, अब और सहन नहीं होती"7

वास्तव में हमारा समाज हम लोगों ने ही बनाया है यदि हम विरोध करना सीख जाएंगे तो हम समाज के गलत नियमों को अपने ऊपर हावी नहीं होने देंगे l कुछ लोगों की यह धारणा है कि यदि किन्नर बच्चे की परवरिश घर में होगी तो सामान्य बच्चे और किन्नर बच्चे में जायदाद का बंटवारा ठीक तरह से नहीं हो सकेगा इसलिए भी किन्नर बच्चे को घर से बाहर कर दिया जाता है l यहाँ लेखिका अनेक उदाहरण के द्वारा अपने मत को स्पष्ट करना चाहती है कि किस प्रकार से किन्नर बच्चे और सामान्य बच्चे के बीच में अंतर किया जाता है l प्रीत और उसकी मां के बीच में इस प्रकार की वार्तालाप होने पर प्रीत कहती है I I"क्यों होगा ?किन्नर की जायदाद के कारण झगड़ा जाहिर सी बात है कि वह जिसके साथ रहेगा जो उसकी देखभाल करेगा वही उसकी संपत्ति का अधिकारी होगा l प्रीत ने कहा मुझे ही देखो मैं आगे चलकर मैं चाहे रीत के साथ रहूं या भाई के साथ उसको ही मिलेगी मेरी संपत्ति l "8

विकलांग बच्चे के प्रति और हिजड़े के प्रति इस समाज का रवैया दो तरफा है विकलांग के प्रति समाज में अपनेपन का अभाव है लेकिन हिजड़े के प्रति समाज के स्वीकृति नहीं हैI " शर्मा जी के बेटे को जन्म से पोलियो नहीं था अब इसमें उस बेचारे का क्या कसूर और पोलियो ग्रस्त बच्चे को समा स्वीकृत करता है हिजड़े को नहीं "9

कहने का अभिप्राय है कि हिजड़े के रूप में पैदा होने वाला बच्चा इसी भाव से ता उम्र कुंठित रहता है कि वह हिजड़ा है l "वास्तव में देखा जाए तो किन्नरों की जिंदगी विकलांगों से भी बदतर है कम से कम उनके माता-पिता, परिवारजन शारीरिक रूप से अक्षम या सामान्य जन से अलग संवेदना रखने वाले अपने ही संतान को स्वयं से दूर तो नहीं करते l किन्नरों का तो अपना भरा पूरा परिवार होने के बावजूद भी इन्हें परित्यक्त जीवन जीने तथा दूसरे परिवार के साथ जिंदगी काटने का दंश भुगतना पड़ता है" 10

आशालता के अनुसार "वास्तव में किन्नर समुदाय की पीड़ा को समझने की कोशिश और वक्त किसी के पास नहीं है l 4000 वर्ष पुराने इतिहास वाला यह समुदाय अभी भी हाशिए पर खड़ा है जब हमारा पुरुष प्रधान समाज स्त्री को समान अधिकार देने के लिए तैयार नहीं है तो किन्नरों को कैसे दे सकता है"11

ले खिका अनेक स्थानों पर यह प्रश्न उठाती है कि किन्नर भी किसी की संतान है l उनके भी माता-पिता, भाई बहन व खुशहाल परिवार होता है l ऐसे में यदि अपने ही लोग उन्हें छोड़ देगें तो उनके दिल पर क्या बीतेगी है l अस्तित्व उपन्यास में हिजड़े समुदाय के प्रति नकारात्मकता के साथ-

साथ हमें सकारात्मकता भी दिखाई देती है I लेखिका प्रीत व उसके माता-पिता के माध्यम से समाज में संदेश का प्रसार करना चाहती है कि यदि माता-पिता अपने बच्चे के साथ हुए प्रकृति जन्य अन्याय को समझेंगे और उसको सुधारने के स्थान पर उसको शिक्षित करके समाज में खड़ा होने के लायक बनाएंगे तो निसंदेह वे समाज में व्याप्त हिजड़ो के प्रति दुर्भावना समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे जैसे निम्नलिखित पंक्तियों में प्रीत जब सपने में स्वयं को हिजड़ों से घिरी पाती है तो वह नींद में ही सिसकना शुरू कर देती है उसको सिसकते हुए देखकर प्रीत की मां उसकी मनोदशा को भलीभांति समझते हुए कहती है "नहीं मेरी बच्ची, मैं सब जानती हूं तू कुछ भी उल्टा सीधा मत सोचा कर मैं और तेरे पिताजी हमेशा तेरे साथ है हम दोनों के होते मेरी बच्ची का कोई भी बुरा नहीं कर सकता तू बस अपनी पढ़ाई पर ध्यान दे सब ठीक हो जाएगा"12

घर में भाभी की तानों से आहत' प्रीत 'माता और पिता को पल-पल घुटते हुए देखती है वह चाहती है कि भाभी से पहले ही वह समाज को बता दें कि उनकी बेटी है किन्नर है लेकिन उसकी मां समाज से डरती है l वह उसको चुप कराना चाहती है ताकि कोई भी प्रीत की सच्चाई ना जान ले l ऐसी स्थिति में प्रीत स्वाभिमानी महिला की भाँति कहती है-

" अरे मां आप समाज का इतिहास बदलना चाहती हो तो चुप रहकर तो नहीं बदल सकती उसके लिए हिम्मत से ही काम चलता है और उसके लिए हमें समाज से मिलने वाली पीड़ा को भी बर्दाश्त करना होगा क्या माँ, यूँ डर डर कर कब तक रहोगी तुम्हें नहीं पता आज समाज बदल रहा है तुमने कभी लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी का नाम सुना हैI वह किन्नरों के लिए एक मिसाल है उन से हमें सीख लेनी चाहिए उन्होंने अपने दम पर इस नैतिकता वाले समाज में अपनी पहचान बनाई है l"13

पढ़ाई में होशियार प्रीत समय-समय पर किन्नरों के अधिकारों के बारे बारे में पढ़ती रहती है ताकि वह सरकार द्वारा किन्नरों को दिए गएअधिकारों को जान सके l लक्ष्मी त्रिपाठी के प्रयास व माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा किन्नरों के पक्ष में दिए गए फैसले को बताते हुए अपनी मां को कहती है-

" लक्ष्मी त्रिपाठी जैसे अनेक किन्नर है जिनके कारण ही किन्नरों को कई अधिकार प्राप्त हुए हैं l माननीय सुप्रीम कोर्ट के महत्वपूर्ण फैसले ने भी किन्नरों के अधिकारों की रक्षा की है l अपने फैसले के माध्यम से उन्होंने समाज में उनका एक निश्चित स्थान बनाया है l 15 अप्रैल 2014 की रिपोर्ट के अनुसार भारत में वर्ष 2014 में सुप्रीम कोर्ट ने भी सरकारी दस्तावेजों में बकायदा थर्ड जेंडर के तौर पर पहचान दी है l सभी आवेदनों में तीसरे लिंग का उल्लेख अनिवार्य कर दिया गया है, इतना ही नहीं उच्च न्यायालय ने इन्हें बच्चा गोद लेने का अधिकार भी दिया है और इन्हें चिकित्सा के माध्यम से स्त्री बनने का भी अधिकार दिया है l अब ये सरकारी नौकरियों में भी स्थान पा सकते हैं और संविधान के अनुच्छेद 14 16 और 21 का हवाला देते हुए सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि ट्रांसजेंडर देश के नागरिक है और शिक्षा रोजगार एवं सामाजिक स्वीकार्यता पर उनका समान अधिकार है"14

प्रीत और अमन सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए अधिकारों का प्रयोग करते हुए बच्चा गोद लेने के लिए आवेदन करना चाहते हैं l प्रीत जिसने हमेशा अपनी सही पहचान को छुपाया लेकिन आवेदन वाले फार्म पर जब प्रीत तृतीय लिंगी कॉलम देखती है तो उसे अपने अस्तित्व का एहसास होता है और खुशी होती है कि उसे अब अपने असली वजूद को छुपाना नहीं पड़ेगा l "क्या उसे अपने नाम के साथ सम्मान से जीने का कोई हक नहीं I फिर भी माता-पिता के बारे में सोच कर एक बार फिर झूठ का मुखौटा ओढ लेती और फार्म में स्त्रीलिंग लिख देती लेकिन आज उसे अपने नाम के साथ अपने वजूद को जीने का हक मिला तो वह खुशी में ऐसे खिल उठी l मानो कितने दिनों के प्यासे पेड़ को पानी मिल गया या किसी पिंजरे में कैद बुलबुल को खुला आसमान उड़ने को मिल गया हो l क्योंकि आज उसने जो फार्म भरा था उसमें वह अपना वजूद लिखने जा रही थी l l"15

ऐसा नहीं है कि प्रीत को कभी कोई समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ा I वास्तविकता यह है की प्रीति को उन सभी समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो एक किन्नर के सामने आती है लेकिन अपने परिवार के सहयोग, विश्वास के कारण व शिक्षित होने के कारण वह उन समस्याओं से लड़ती रही और आगे बढ़ती जाती हैI जैसे रंजना जो प्रीत की भाभी है और पेशे से एक डॉक्टर है l डॉक्टर होने पर वह जानती है कि एक बच्चे के किन्नर होने में उसकी कोई गलती नहीं है I फिर भी वह अपनी ननंद जो की एक किन्नर है उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती और उसे बार-बार किन्नर होने का अहसास दिलाती रहती है l

" दीदी आप को भगवान ने एक कमी दी, लेकिन आपकी किस्मत बहुत अच्छी है, जो चाहती है वही मिल जाता है l देखिए न, मम्मी पापा का प्यार भी सबसे ज्यादा आपको ही मिला और सबसे अच्छा ससुराल l कौन कहता है कि आप एक किन्नर हैं l "16

अस्तित्व उपन्यास की नायिका प्रीत का सबल पक्ष यह है कि उसका परिवार(मां -बाप, भाई- बहन) उसके साथ हैं जिनके सहयोग व अपनेपन के कारण प्रीत इतनी सशक्त बन पाती है कि वह समाज का सामना कर सके लेकिन समाज में सब किन्नरों की स्थिति ऐसी नहीं है I यमदीप, मैं पायल, मैं भी औरत हूँ, तीसरी ताली, पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा जैसे अनेक उपन्यास है जिनमें किन्नरों की पीड़ा, दुर्दशा, अमानवीय अत्याचारों का वर्णन किया गया है l प्रीत के माता पिता की तरह यदि अन्य किन्नरों के माता-पिता भी अपने बच्चों को लावारिस छोड़ने से पहले उनकी कमी को समझे और डॉक्टरी सलाह लें और मानसिक रूप से मजबूत होकर इस कमी का सामना करने में अपने बच्चों का साथ दें तो उनके बच्चे भी प्रीत व अमन की तरह अपने पांव पर खड़े हो सकते हैं और औलाद गोद लेकर अनाथ बच्चे का सहारा बन सकते हैं

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डॉ एम फिरोज खान, (सम्पादक),थर्ड जेंडर अनुदित कहानियां, कानपुर :अनुसंधान पब्लिशर्स, 2017, पृष्ठ 6
2. रामचरितमानस, अयोध्या कांड,398/4
3. गिरिजा भारती, अस्तित्व पृष्ठ, 10
4. वही, पृष्ठ 19
5. वहीं, पृष्ठ 71

6. वहीं, पृष्ठ 38
7. वहीं, पृष्ठ 50
8. वहीं, पृष्ठ 62
9. वहीं, पृष्ठ 51
10. सीमा भुवनेश्वर सिंह, महेंद्र भीष्म कृत किन्नर कथा, व्यथा दशा एवं दिशा की अभिव्यक्ति
11. आशालता जे, हाशिए पर रखे किन्नरों की व्यथा कथा :चुनी हुई कहानियों के परिप्रेक्ष्य में, पृष्ठ 103
12. गिरिजा भारती, अस्तित्व, पृष्ठ 57
13. 13.वहीं, पृष्ठ 83
14. aajtak.in नई दिल्ली 15अप्रैल 2014
15. गिरिजा भारती, अस्तित्व, पृष्ठ 93

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

भगवान गव्हाडे की कविताओं में आदिवासी चेतना विशेष संदर्भ 'आदिवासी मोर्चा

डॉ. मनोहर जमधाडे
सहा. प्रा. हिन्दी विभाग, राजर्षि शाहू कला व विज्ञान महाविद्यालय वालूज
jamdhadem358@gmail.com

युवा कवि के रुप में ख्यात भगवान जी का 'आदिवासी मोर्चा' कविता संग्रह 2014 ई. प्रकाशित हुआ है। कविता संग्रह की अधिकांश कविता में आदिवासी चेतना, प्रकृति को लेकर लिखी गई हैं। आदिवासी समाज का दु:ख, दर्द की कविता में दिखाई देती हैं। प्रकृति से जूडे हुए आदिवासी समाज प्रकृति से गहरा रिश्ता को कविता में उजागर किया है। रमणिका गुप्ता जी लिखती हैं, वह प्रकृति का सहयोगी सह-अस्तित्व का अभ्यास उँच-नीच भेदभाव, व छल कपट से दूर है।[1] 'आदिवासी मार्चा' कविता संग्रह की कविता में आदिवासी समाज का प्रकृति से गहरा रिश्ता बताया गया है।

शहरीकरण बढ़ रहा है। रास्ते की चौड़ाई के लिए पेडो, जंगलों को काटा गया है। पहाडों को कांटा गया है। आदिवासी समाज के लिए पहाड इनकी संपन्नता का प्रमाण है। "आदिवासी समाज के वैभव, संपन्नता में पहाडों का योगदान रहा है। पहाड़ मनुष्य की संपन्नता वैभव का प्रमाण है।"[2] पहाडों को शहरीकरण बढ़ने से कांटा गया है। पुरखों के अस्तित्व वैभव, संपन्नता को मिटाया गया है। यह चिंता की बात है। नदियों की धाराएँ को बदला गया है। आदिवासी पुरखों की सम्पदा को नष्ट किया जा रहा है। पर्यावरण को प्रदूषित एवं अंसुतलित किया जा रहा है। उसका असर आदिवासी समाज पर सीधा हो रहा हैं। वह प्रकृति के सहारे जीवन बीताता है।

"हमें लौटा दो। हमारे पुरखों की सम्पदा।
झरने, सोते, माटी पानी, पोखर तालाब।
मुक्त हवा खुला आकाश। हमारे हिस्से की
रोशनी। पेड-पौधें का प्यार। लत्ता – बेलियों
की ममता जंगल पहाड का आधार।"[3]

आदिवासी समाज गाँवों जंगलों में रहता हैं। उनसे जमीन एवं प्रकृति के संसाधनों को छिना जा रहा है। पूँजीपतियों द्वारा उनके जंगलों जमीनों पर कब्जा किया जा रहा है। अपने जमीन हक्क के लिए जब वह अपने संवैधानिक अधिकार के लिए संसद की ओर मार्चा निकलता हैं। संसद के प्रांगण में इन पर लाठियाँ चलाई जाती है। पुलिसकर्मियों द्वारा बहू-बेटियों निर्मम तरह से इन्हें पीटा जाता है। कवि आदिवासी समाज पर हुए जूल्मों को निम्न पंक्तियों में बयान करते हैं –

"संसद भवन के प्रांगण में जब पहुँच गया मोर्चा
बरस पडी पुलिस कर्मियों की अनगिनत लाठियाँ।
जैसी झेली थीं सीने में पूर्वजों ने अंग्रेजों की गोलियाँ।
तितर-बितर हो गयी भीड, भागने लगीं हमारी बहू-बेटियाँ।"[4]

इस तरह आदिवासी समाज पर अत्याचार किया गया है। जो कायदे कानून से अपराध हैं। अमानवीय व्यवहार नहीं होना चाहिए था। क्योंकि वह अपने लिए संवैधानिक अधिकार की माँग करने आए है, यह उनका अधिकार है।

आदिवासी संस्कृति प्रकृति के आगोश में पली-बढ़ी है। सूरज, नदी, आकाश, धरती इनके सहचर रहें है। प्रकृति सुरक्षा के लिए कटिबध्द हैं। पर्यावरण से गहरा रिश्ता इनका रहा है। प्रकृति रक्षक है, समाज पूरी तरह से स्वस्थ रहा है। कवि आदिवासी समाज की संस्कृति एवं पर्यावरण का गहरा रिश्ता निम्न पॅकियों में अभिव्यक्त किया है।

"हमारा घर जंगल-जमीन।
हमारा संसार खेत खलिहान
हमारा धर्म प्रकृति सुरक्षा के लिए बलिदान
हमारे माता पिता धरती और असमान।
हमारे देवता सूर्य चन्द्र ग्रहमान।
हमारा विज्ञान ऋतुचक्र गतिमान।"[5]

सारांश :

कवि आदिवासी समाज से पूरी तरह जूडा होने के कारण उनकी कविताओं में आदिवासी समाज का यथार्थ चित्रण हुआ है। आदिवासी समाज का प्रकृति से गहरा रिश्ता, संस्कृति को अभिव्यक्त किया है। आदिवासी समाज पर हो रहे जूल्मों को भी अभिव्यक्त किया है। आदिवासी समाज प्रकृति का रक्षक रहा हैं। वह प्रकृति से अभिन्न रुप से जूडा हुआ है।

संदर्भ :

1. सम्पा, रमणिका फाऊंडेशन, आदिवासी यात्रा पृ. 5, प्रकाशक राधाकृष्ण प्रा. लि. नई दिल्ली, प्र.सं. 2008.
2. डॉ. मनोहर जमधाडे, नौवें दशक की कविता में पर्यावरण संचेतना, पृ. 142, अन्तराष्ट्रीय विज्ञान व तंत्रज्ञान, संस्था मुंबई प्र.सं. 2016.

3. डॉ. भगवान गव्हाडे, आदिवासी मोर्चा, पृ. 88, प्रकाशक वाणी प्रकाशक, नई दिल्ली, प्र.सं. 2014.
4. डॉ. भगवान गव्हाडे, आदिवासी मोर्चा, पृ. 14.
5. डॉ. भगवान गव्हाडे, आदिवासी मोर्चा, पृ. 12.

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में नारी-विमर्श

प्रा. मारुफ मुजावर
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग, चंद्राबाई शांताप्पा शेंदुरे कॉलेज, हुपरी, जि. कोल्हापुर,
मेल : marufmujawar@gmail.com

नारी विमर्श वर्तमान युग का सर्वाधिक चर्चित विषय रहा है। समय के साथ बदलती नारी की स्थिति एवं रूपों को साहित्य में अभिव्यक्त किया जा रहा है। नारी सदियों से पुरुषों के साथ हजारों वर्षो से विभिन्न अनुभव को लेकर अपना जीवन व्यतीत कर रही है। नारी को जननी माता के रूप में पुजनीय माना गया है। फिर भी नारी को असंख्य अभावों का मुकाबला निरंतर करना पड़ता है। पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, वैज्ञानिक, कला, क्रिडा आदि अनेक क्षेत्रों में उन्होंने सफलता से जुड़े कार्य संपन्न किए हैं। वस्तुतः देखा जाय तो मानव जाती की विकास का मूल स्रोत नारी है। वह मानव के सामाजिक जीवन की रीढ़ है। फिर भी उसका सामाजिक स्थान पर आज भी अनेक प्रश्नचिन्ह खड़े हैं। आधुनिका नारी का वास्तव चित्रण हिंदी के बखुबी कथा-साहित्य में चित्रीत किया गया है।

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श का प्रारंभ कथा-साहित्य से होता है। हिंदी के वर्तमान आधुनिक कथा-साहित्य में नारी समाज की त्रासदी और विड़बना, उसकी शोषित स्थिति, उसकी आर्थिक, सामाजिक, पराधीनता, सदियों से चले आ रहे स्त्री–संबंधो, सामंतीय मूल्यों, रुढ़िग्रस्त मान्यताओं और धारणओं से जुड़े प्रश्नों को खुले, तीखे एवं सासहपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया जा रहा है। पुरुष प्रधान समाज में नारी ई नियति को दर्शाने के प्रयास कथा लेखक और लेखिकाओं ने बराबर किए हैं। लेकिन यह माना गया है कि भोक्त होने के कारण एक नारी अपने वर्ग की समस्याओं पर अधिक प्रामाणिक ढंग से लिख सकती है। आज नारीवादी भूमिका को लेकर लिखे गए साहित्य में नारी लेखिकाओं के साथ-साथ पुरुष लेखकों ने भी अहम भूमिका निभाई है। जिनमें प्रेमचंद, यशपाल, निराला, रामदरश मिश्र, सुरेंद्र वर्मा, भीष्म साहनी, विष्णु प्रभाकर, निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, सुधीश पचौरी, अरुणसिंह, सुधा अरोडा, नासिरा शर्मा, शशीप्रभा गुप्ता, क्षमा शर्मा, राजी सेठ, चित्रा मुद्गल, अर्चना वर्मा, निरुपमा सेवती, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, कात्यायनी, मेहरून्नीसा परवेज, मालती जोशी, मृदुला गर्ग आदि ने नारी लेखन को दिन-ब-दिन समृद्ध किया है।

आधुनिक हिंदी नारीवादी साहित्य का बुनियादी दायित्व नारी को खुद की अस्मिता की पहचान कराना है। उसे सीमित दायरे से बाहर निकालकर स्वाभिमानी एवं स्वतंत्र जीवन प्रदान करता है। जैसे प्रभा खेतान की 'आओ पेपे घर चले' की नायिका परंपरागत बंधनों को त्यागकर अस्तित्व को बनाए रखने में संघर्ष करती है। इसी प्रकार क्षमा शर्मा की 'रास्ता छोड़ो डार्लिंग' कहानी नारी अस्मिता की परिचायक है। अत: नारीवादी साहित्य नारी को माँ, बहन, बेटी, बीवी की कोटि से बाहर निकालकर उसे एक मानव के रूप में स्थापित करता है। साथ ही नारी-विमर्श नारी को अपनी अस्मिता के साथ-साथ सामाजिक और राजनीतिक प्रतिष्ठा दिलाने के लिए संघर्ष करता है, जिसमें राजी सेठ की 'गलत नारी होता पंचतंत्र' में सामाजिक प्रतिष्ठा को उभारा गया है।

प्रभा खेतान का 'छिन्नमस्ता' और 'पिली आंधी' उपन्यास में पुरुषों की रुग्ण मानसिकता के खिलाफ आवाज उठाकर आर्थिक स्वतंत्रता को नारी मुक्ति का सशक्त आधार बनाया। चित्रा मुद्गल ने 'आवां' उपन्यास में मजदूर की बेटी नमिता पांडे के संकल्पों, संघर्षों, मोहभंग, पलायन और वापसी को समय और समाज के संदर्भों में परिक्षित किया है। नारी को यौन शुचिता के बंधन, अनेक रूढ़िग्रस्त विचार एवं पारिवारिक आर्थिक बंधनों से मुक्ति दिलाना ही हिंदी नारी विमर्शपरक साहित्य का मूल उद्देश्य रहा है। अनिता राकेश की कहानी 'अर्थसत्य' की नारी आधुनिक चेतना से संपन्न नारी है तो चित्रा मुद्गल की 'एक जमीन अपनी' आदि रचनाएँ नारी मुक्ति की चित्कार को लेकर चलती हैं। संभवत: हिंदी नारीवादी कथाकारों ने पारिवारिक पातिव्रत्य धर्म का विरोध अपने कथा-साहित्य में किया है, जिसमें निर्मल वर्मा की 'लवर्स' कहानी का नायक नायिका से शादी करना चाहता है, लेकिन नायिका शादी के बंधन में बँधकर गुलाम नहीं बनना चाहती अपितु वह जिंदगीभर मित्र के समान रहना चाहती है। अर्चना वर्मा की त्यौहार कहानी की नायिका नारी की पारंपारिक छवि का अस्विकार करती है।

नारी विमर्श का स्वर मुख्यत: नारियों की आर्थिक निर्भरता की माँग करता है। आर्थिक स्वावलंबन के अभाव में नारी परिवार में शोषित वर्ग की भूमिका निभाती है। हिंदी उपन्यासकारों ने इस सत्य को ओझल नहीं होने दिया है कि नौकरी करनेवाली या मॉडलिंग, अभिनय आदि से जुड़ी नारियाँ पुरुष प्रधान समाज के अवमूल्यों को चुनौती देने की स्थिति में होती है। अर्चना सिंह की 'मुझे जीना आता है' कहानी नारी की आर्थिक निर्भरता की माँग करती है। जब नायिका को नौकरी का नियुक्तिपत्र मिलता है तो घरवालों के विरोध के बावजूद भी वह नौकरी करती है। साथ ही नारी-विमर्श नारी-नर की समानता पर बल देते है, जिसमें कृष्ण सोबती, रामदरश मिश्र आदि की रचनाएँ इसका प्रमाण खड़ा करती हैं। नारी-विमर्श की अभिव्यक्ति का मूल स्वर नारियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं नारी-पुरुष की समानता के ईर्दगिर्द घूमता रहा है। 'बेतवा बहती रही' कहानी में मैत्रेयी पुष्पा ने आज की नारी मात्र को वस्तु मानने पर प्रश्न खड़ा किया है।

प्रचलित सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह करना नारीवादी साहित्य की विशेषता रही है। ऐसी व्यवस्था के विरोध में आवाज उठानेवाली कथाकारों में मंजुल भगत, मन्नू भंडारी, कृष्ण सोबती, तसलिमा नसरिन, सुधा अरोडा आदि प्रमुख हैं। तसलिमा नसरीन के 'लज्जा' और 'तीसरी मुठ्ठी' उपन्यास में नारी का क्रूर सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह दिखाई देता है। क्षमा शर्मा की 'परछाई अन्नपूर्ण' कामकाजी महिलाओं के संकट, संघर्ष और सामाजिक स्थितियों के संदर्भ हैं। इस नारी के एक आँख में आँसू हैं तो दूसरी आँख में दुनिया बदलने का मजबूत इरादा। मृणल पांडे के 'परिधि पर स्त्री' में शोषित ग्रामीण, शहरी कामकाजी महिलाओं के दुख:दर्द को प्रभावशाली ढंग से रेखांकित किया है। सुधा अरोडा की 'अन्नपूर्ण मंडल की आखरी चिठ्ठी में ससुराल में प्रताड़ित नारी की व्यथा को बखूबी अभिव्यक्ति मिली है। नारीवादी साहित्य नारी की ऐसी कल्पना करता है कि वह स्वयं को और समाज को भी बदले।

आज आधुनिक कालखंड में हिंदी नारीवाद के क्षेत्र में कोई भी क्षेत्र वर्ज्य नहीं है। अनादि काल से पुरुष के शारिरीक संबंधों के वर्चस्ववाले क्षेत्र में भी नारीवाद ने प्रवेश किया है। इस क्षेत्र में वह अधिक खुलेपन की माँग करती है। नारीवादी साहित्य पाश्चात्यों की तरह किसी के भी साथ स्वच्छंद रूप से शारिरीक संबंध प्रस्थापित करने देने की माँग करती है। नारीवादी साहित्य पाश्चात्यों की तरह किसी के भी साथ स्वच्छंद रूप से शारिरीक संबंध प्रस्थापित करने देने की माँग करता है। इनमें गीताश्री, उषा प्रियवंदा, कृष्ण सोबती जी ने अपनी लेखनी चलाई है।

मालती जोशी के 'पाषाणयुग' में विधुर एवं बेमेल विवाह के पश्न को उठाया है। इसमें नारी मन की छटपटाहट, घुटन और नारी की पीड़ा को चित्रित किया है। शिवानी के 'कृष्णकली' में कुष्ठरोग से पीड़ित माता-पिता की संतान कृष्णकली के जीवन की गाथा है। शिशाप्रभा शास्त्री का 'नाँवे' उपन्यास शादी के पहले कुमारी माता बनने की उत्पन्न विसंगती का चित्रण है। मेहरुन्निसा परवेज का 'आँखों की दहलीज' उपन्यास नारी जीवन के अधुरेपन को चित्रित करता है। ममता कालिया का 'बेघर' उपन्यास पति-पत्नी के भीतर अविश्वास को रेखांकित करता है।कुल मिलाकर हिंदी का आधुनिक कथा-साहित्य नारी की बदलती मानसिकता को अंकित करता है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि नारीवादी साहित्य शोषणरहित मावतावादी व्यवस्था की स्थापना कर स्त्री को मानवीय अधिकार दिलाना चाहता है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक अधिकार के लिए नारीवाद लड़ता है। अत: नारी को मानवोचित अधिकार दिलाना नारीवादी साहित्य का अंतिम ध्येय रहा है। जो बात नारी स्वयं नहीं कह सकती, वह बातें वह साहित्य के समाज तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त कर रही है। इक्कीसवी शती ने संगणक, इंटरनेट और साइबर की सौगात देकर नारी की सोच को बदला है। नारी लेखन ने इस परिवर्तन को खुले दिमाग से स्वीकारा है, परंतु नारी की आत्मप्रतिष्ठा, आत्मसम्मान जब तक समाज स्विकार नहीं करता, तब हमारे समाज में नारी-विमर्श का चिंतन होता रहेगा। इस चित्र को बदलने के लिए समाज में नारी को पुरुषों के बराबर स्थान सम्मान के साथ मिलना चाहिए।

संदर्भ सूची:

१) भारतीय नारी : अस्मिता और अधिकार –आशाराणी व्होरा.
२) हिंदी के समकालीन महिला उपन्यासकार – डॉ. एम. वेंकटेश्वर.
३) स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार – डॉ. वैशाली देशपांडे.
४) आठवे दशक के हिंदी उपन्यास – डॉ. विनोद सिंह राय.
५) महिला सशक्तिकरण – कमलेश गुप्ता.

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

हिंदी उपन्यासों में भूमण्डलीकृत भारत

डॉ. मीनाक्षी चैधरी
सहायक आचार्य हिन्दी, राजकीय डूँगर महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

भूमंडलीकरण शब्द अंग्रेजी के ग्लोबलाइजेशन का हिन्दी रूपांतरण है। इसके लिए वैश्वीकरण, उदरीकरण, निजीकरण, नव पूंजीवाद, नव उदारवाद, नव उपनिवेशवाद आदि शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। भूमंडलीकरण शब्द 'भू' व 'मंडलीकरण' से मिलकर बना है। भू का अर्थ है-भूमि और मंडलीकरण का अर्थ हुआ-समाहित करना अर्थात सम्पूर्ण भूमि का एक हो जाना। यह शब्द बीसवीं सदी के अंतिम दशक में व्यापक रूप में प्रयोग में आया। 1991 में सोवियत संघ के विघटन के बाद जब दुनिया एक ध्रुवीय हो गई और अमेरिका के नेतृत्व में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने दुनिया के, और खासतौर पर तीसरी दुनिया के बाजार पर कब्जा जमाना शुरु किया तो 'भूमंडलीकरण' नाम व्यापक रूप से प्रयोग में आया। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में अमेरिका का विशेष प्रभाव मानते हुए फ्रांसीस फुकुयामा कहते हैं-''मेरा अपना मत है कि इसे अमेरिकीकरण ही होना चाहिए क्योंकि कुछ मामलों में अमेरिका विश्व में आज सर्वाधिक उन्नत पूँजीवादी समाज है, इसलिए इसके संस्थान बाजार शक्तियों के तर्कसंगत विकास का प्रतिनिधित्व करते हैं।''

यह सर्वविदित है कि भूमंडलीकरण ने व्यापार के स्वरूप को आमूलचूल परिवर्तित कर दिया है । स्थानीय व्यापार अपने विशालकाय स्वरूप 'विश्व-व्यापार' में बदल गया है। शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने वैश्विक व्यापार पर कब्जा कर लिया है। पुष्पा तिवारी के अनुसार,'' भूमंडलीकरण पूँजीवाद की एकछत्रता का उद्घोष है। विश्व बैंक, अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन, जी-8 ये सभी इनके एजेंट हैं ।''1 ये ही वे संस्थाएँ हैं जो भूमंडलीकरण की नीतियों को सम्पूर्ण विश्व में लागू करती हैं और कर्ज देने के बहाने अविकसित और विकासशील देशों को भूमंडलीकरण की नीतियों को स्वीकार करने के लिए बाध्य करती हैं।

भूमंडलीकरण अर्थात ग्लोबलाइजेशन शब्द से ऐसा भ्रम होता है कि इस व्यवस्था से सम्पूर्ण विश्व के सरोकार समान हो जाएँगे। विश्व के सभी मानव अपने क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठकर सम्पूर्ण विश्व के मंगल के लिए कार्य करेंगे। लेकिन इस शब्द का निहितार्थ इसके ठीक विपरीत है। इस प्रक्रिया में एशियाई बकरे को कर्ज रूपी चारा देकर हष्ट-पुष्ट किया जा रहा है ताकि पूँजीवादी विकसित देश उसे अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए हलाल कर सके, वो भी एक बार नहीं, बार-बार लगातार।

भूमंडलीकरण या उदारीकरण की नीतियों के सफल क्रियान्वयन के लिए पूँजीवादी ताकतों ने सत्तासीन पार्टियों से हाथ मिलाया, उन्हें धन-बल का सम्बल प्रदान किया लेकिन अब वह अमरबेल की तरह फैलकर उन्हें कमजोर बना रहा है और उनका अस्तित्व लील रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ राष्ट्रों द्वारा नियंत्रित होने की बजाय राष्ट्र को नियंत्रित करने में लगी हैं। भूमंडलीकरण की नीतियाँ राष्ट्र-राज्यों के अस्तित्व पर ग्रहण की तरह छा रही हैं। आज राष्ट्र-राज्य एवं पूँजीवादी ताकतों के मध्य शक्ति के लिए अघोषित युद्ध चल रहा है। राजू शर्मा के उपन्यास 'विसर्जन' का पात्र पी.वी. जो भूमंडलीकरण का प्रतिनिधि चरित्र है, कहता है, ''राज्य का विचार सदा संदिग्ध और धूर्त है और वह निरन्तर धूर्त तरीकों से अपनी वैद्यता जनमानस पर थोपता है। और मैं अपराधी हूँ तो राज्य कितना बड़ा हुआ ?''3

ऐसा लगता है कि यह पी.वी. नहीं भूमंडलीकरण स्वयं राज्य शक्ति को ललकार रहा है। वह देश के कानून को निजीकरण के हित में चुनौती देता है। भूमंडलीकरण की नीतियों को सम्पूर्ण विश्व में लागू करने के लिए प्रतिबद्ध वर्ल्ड बैंक, अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे विश्वस्तरीय एवं शक्तिशाली संस्थान गरीब देशों को कर्ज देने के बदले इन देशों पर मनमानी शर्तें लागू करवाते हैं। जबरन इन देशों से समाज कल्याण योजनाएँ बंद करवाई जाती है और उनके निवेश पर खर्च कम करवाए जाते हैं, दूसरी ओर विदेशी आय के स्रोत पर से सारे प्रतिबंध एवं नियंत्रण हटवाए जाते हैं। वर्तमान समय में अनेक देशों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कार्यकलापों और पूँजी विनिमय पर से नियंत्रण हटा लिया गया है। ''सच्चाई तो यही है कि भूमंडलीकरण के कारण सरकारों को लोक हितकारी योजनाओं को लागू करने एवं देश की जनता के हित में कार्य करने का दम नहीं रह गया है।''

भारत में 24 जुलाई 1991 ई. को भूमंडलीकरण की शुरूआत हुई थी किन्तु यह रातोंरात ही देश में नहीं आ गया था उसकी जमीन पहले से ही तैयार की जा रही थी। 1985 में केंद्र में जब कांग्रेस की सरकार थी और राजीव गाँधी प्रधानमंत्री थे, तब देश की आर्थिक नीतियों में महत्वपूर्ण बदलाव किए गए। इन बदलावों से भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को सहयोग मिला। उक्त सरकार ने उच्च आय वाले वर्ग पर टैक्स दर को कम किया जबकि सरकारी खर्च बढ़ता गया। सरकार ने कच्चे माल और वृह्द परियोजनाओं के संसाधनों के आयात पर से प्रतिबंध हटा दिया। फलस्वरूप केंद्रीय बजट घटा और विदेशी व्यापार में भी घाटा बढ़ने लगा जिसकी भरपाई के लिए विदेशी बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं से भारी कर्ज लिया गया। विदेशी बैंकों और संस्थाओं ने कर्ज के साथ-साथ कठोर शर्तें भी लादी। कर्ज बढ़ता गया, शर्तें बढ़ती गई और अर्थव्यवस्था अंदर ही अंदर खोखली होती गई।

1989 में जनता दल की सरकार बनी किन्तु आर्थिक स्थितियों में सुधार के लिए कोई पहल नहीं की गई और रूपये का अवमूल्यन हुआ। 1991 में पुनः कांग्रेस सत्तासीन हुई और नरसिंहा राव प्रधानमंत्री बने। सरकार बनते ही देश में आर्थिक संकट की घोषणा की गई जिससे बचने के लिए अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष से कर्ज लिया गया। अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष से कर्ज लेते ही रूपये का अवमूल्यन हुआ, साथ ही विदेशी निवेश पर से सारे प्रतिबंध हटा लिए गए। इसी दौर में विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने भारतीय कम्पनियों को खरीद लिया। कोकाकोला ने थम्सअप और हिन्दुस्तान लीवर ने टाटा आयॅल को खरीदा। इस तरह बहुत सी विदेशी कम्पनियाँ यहाँ के वस्तुओं की प्रमुख निर्माता बन गई और भारत भूमंडलीकरण के शिकंजे में आ गया।

हिंदी साहित्य जगत में पिछले दो दशकों में भूमंडलीकरण पर पर्याप्त चर्चा-परिचर्चा हुई है। साहित्यकारों की पैनी दृष्टि से भूमंडलीकरण का कोई भी पहलू छिप नहीं सका है। उपन्यास विधा ने अपने वृहद स्वरूप के कारण भूमंडलीकरण के सभी पक्षों पर बड़ी गहनता से विचार किया है तथा उसकी सच्चाई को पाठकों के सामने रखा है। रेहन पर रग्घू (काशीनाथ सिंह), दौड़ (ममता कालिया), एक ब्रेक के बाद (अलका सरावगी), विसर्जन (राजू

शर्मा), ग्लोबल गाँव के देवता (रणेन्द्र), मुन्नी मोबाइल (प्रदीप सौरभ), आखिरी छलांग (शिवमूर्ति) पिछले दशक के सशक्त एवं चर्चित उपन्यास रहे हैं, जिसमें समकालीन जीवन के विभिन्न पक्षों का बदलती सच्चाइयों और नवीन परिवेश के अनुसार चित्रण किया गया है।

विकास की वेदी पर जिस समुदाय विशेष द्वारा सर्वाधिक शहादतें दी गई हैं,वह आदिवासी समुदाय है। 1991 के बाद देश के विकास की गति में अचानक तेजी आई। वैश्वीकृत बाजार में धरती के दोहन की होड़ सी लग गई।खनन पट्टों की संख्या सैकड़ों से हजारों में पहुँच गई मानो सारा लोह-अयस्क, बॉक्साइड,तांबा,यूरेनियम,बजरी,पत्थर अभी चाहिए। रणेन्द्र के दोनों उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता'(2009) और 'गायब होता देश' (2014) में वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में आदिवासी समाज की मूलभूत समस्याओं और उनसे जुड़ी भयावह हकीकतों का संवेदनशील चित्रण है ''इस बार कथा-कहानी वाले सिंगबोंग ने नहीं टाटा जैसी कम्पनियों ने हमारा नाश किया।''

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमित भादुड़ी इस प्रकार के विकास को 'विकास का आतंकवाद' कहते हैं।इस प्रकिया में हजारों बीघा बहुफसली सिंचित कृषि भूमि विकास के आतंकवाद की भेंट चढ़ गई। 'ग्लोबल गाँव के देवता' का रुमझुम असुर अपनी दारूण व्यथा लिखता है, ''हमारी बेटियाँ और हमारी भूमि हमारे हाथों से निकलती जा रही है।'' उपन्यास में लेखक ने उन सरकारी नीतियों पर भी प्रश्न चिह्न लगाया है जिसमें पशु-पक्षियों के संरक्षण के नाम पर करोडों का बजट आवंटित किया जाता है किन्तु आदिवासियों की कई जनजातियाँ लुप्त होने की कगार पर हैं, उस ओर किसी का ध्यान नहीं है। रुमझुम असुर देश के प्रधानमंत्री से भावुकतापूर्ण निवेदन करता है कि असुर अब सिर्फ आठ-नौ हजार ही बचे हैं।....हम खत्म नहीं होना चाहते। भेड़िया अभयारण्य से भेड़िये जरूर बच जाएँगे श्रीमान। किन्तु हमारी जाति नष्ट हो जाएगी। वैश्वीकरण के समान संस्कृति वाले नजरिये से स्थानीय संस्कृतियों का बच पाना बहुत कठिन हो गया है। कुछ संस्कृतियाँ तो लुप्त होने की कगार पर हैं।

'मुन्नी मोबाइल' कहानी है मोबाइल दुनिया की, जिस दुनिया में आकर बक्सर की सीधी-सादी बिन्दु यादव घोर व्यावसायिक 'मुन्नी' का रूप ले लेती है। वह आसपास के लोगों की देखा देखी पैसे और पावर की अंधी दौड़ में शामिल हो जाती है। झाड़ू-पोंछे वाली बाई से अवैध गर्भपात केंद्र की एजेंट, स्थानीय 'दादा' और फिर लड़कियों की बड़ी सप्लायर में उसका रूपांतरण एक भयावह कथा है। लेखक का मानना है कि सुदूर ग्रामीण अंचलों से महानगरों में विस्थापित होकर आए सीधे-सादे मजदूर वर्ग के लोग अनैतिक कार्य करने वाले दुर्जन के रूप में रूपांतरित हुए हैं। यह पूँजीवादी समाज का एक भयानक सच है।

भूमंडलीकरण के जोर शोर से प्रचारित उद्देश्यों एवं बड़े-बड़े दावों से आभास होता है कि समता, स्वत्रन्त्रता एवं बन्धुत्व जैसी अवधारणाओं के वास्तविक रूप लेने का समय आ गया है किन्तु जैसे ही हम इसके भीतर प्रविष्ट होते हैं, स्वयं को ठगा हुआ पाते हैं। इसका शोषण,दमनकारी चरित्र हमारे सामने आ जाता है। राजू शर्मा अपने उपन्यास विसर्जन के आरम्भ में ही भूमंडलीकरण के वास्तविक स्वरूप से हमारा परिचय कराते हैं, ''कुछ लोग होते हैं, एक नजर देखो और लगता है बादशाहत हासिल है, दूसरे उंगलियों में चक्र से यह चक्रवर्ती है, पर यह आँखों में झाँकने के पहले का अहसास है क्योंकि उसकी आँखें दो सयाह गहरी सुरंगें हैं, और अब तुम वह जान लेते हो जो वह हमेशा से जानता है। यह बादशाह स्वनाशी है, अपना ही निषेध''। लेखक के अनुसार भूमंडलीकरण का चरित्र पहले स्वनाशी तत्पश्चात सर्वनाशी का है। उपन्यास का प्रमुख पात्र पी.वी. बहुत शातिर दिमाग है, वह अहिंसा, गाँधी, परम्परा, राष्ट्र, व्यक्ति स्वातंत्र्य, समानता जैसे भावुक एवं वजनी शब्दों का प्रयोग वैश्वीकरण के अनुकूल मानस निर्माण के लिए करता है। लेखक पी.वी. जैसे लोगों से पाठकों को आगाह करता है जिनको पहचान पाना आसान नहीं है।

भूमंडलीरण पर आधारित एक और उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' हिन्दी साहित्य जगत में अपनी ठोस उपस्थिति दर्ज कराता है। विषय एकरूपता के बावजूद इस उपन्यास के पात्र एवं स्थितियाँ अन्य उपन्यासों से सर्वथा भिन्न है। इसके पात्र अभिजात वर्ग के हैं और जीवन के हर क्षेत्र में सफलता हासिल करने वाले हैं। ये ग्लोबल दुनिया के वे लोग हैं जो मोटे वेतन और सुविधा युक्त जीवन जीने के लिए अपनी बुद्धि की उँचे दामों पर नीलामी करते हैं, ग्लोबल सपनों को बेचते हैं। कम्पनी और अपने काम से इनका भावात्मक लगाव कतई नहीं है। ये जीवन में सदैव नई ऑपट्यूनटि की तलाश में रहते हैं। ''पहले कोई आदमी बरसों तक एक ही कम्पनी में काम करता, तो वह वफादार और भरोसेमंद माना जाता था। अब वह 'डल', 'बोरिंग' और 'बुद्धु' समझा जाता है''। आज जब हिंदी का लेखक बहुधा भूमंडलीकरण विषय के खिलाफ लिखने का अभ्यस्त है, लेखिका ने अपने सोच के दायरे को अलग रखते हुए विषय के अनछुए पहलुओं पर विचार किया है। उनके यहाँ वैश्वीकरण और उससे जुड़े यथार्थ की जनवादी व्याख्या नहीं है। उपन्यास का पात्र कहता है, ''जमाना हर समय बदलता है... जाने लोग कौन सा गुजरा हुआ जमाना पकड़े बैठे है और अपने को आज भी समय के उसी दौर में देखना चाहते हैं।'' हिंदी साहित्य के वरिष्ठ लेखकों की पीढ़ी संस्कृति, संस्कार, रिश्ते-नातों का जो बोझ नई पीढ़ी पर लादे रखना चाहती है, क्या वह उसको उठाने की इच्छुक है ? यह भी विचारणीय है। आप जिसे मनुष्य के मशीनीकरण के लिए, संवेदनहीन, मूल्यहीन होने के लिए जिम्मेदार समझते हैं, युवा पीढ़ी उसे ही विकास मानती है।, ''आखिर यह विकास का रास्ता है। ज्यादा नौकरियाँ होंगी।.. अभी जो पब्लिक सेक्टर और अमीर किसान गरीबों का खून चूस रहे हैं, वह पैसा गरीबों के काम में लगाया जा सकेगा। पूरा देश एक दिन खुशहाल होगा।'' मान लिया जाए कि भूमंडलीकरण से पूर्णतया खुशहाली नहीं आएगी पर पूर्व परिस्थितियों में भी ऐसा क्या है जिसके छूटने का गम हो। किसान, मजदूर, स्त्री, पिछड़े और दलित में से कौन अपनी पूर्व और वर्तमान की सामाजिक स्थिति या आर्थिक स्थिति से संतुष्ट है ? यह उपन्यास कई लोगों को कॉर्पोरेट जगत के प्रति नरम रवैया रखने वाला लग सकता है लेकिन यह भूमंडलीकरण के उन पक्षों को हमारे सामने रखता है जो साहित्य जगत में उपेक्षित हैं, उन प्रश्नों को उठाता है जिन पर बहस बाकी है।

डॉ. मैनेजर पाण्डेय का मानना है कि भूमंडलीकृत भारत के तथाकथित संभ्रांत नागरिक और लेखक धीरे-धीरे वास्तविक भारत से दूर होते जा रहे हैं, ''भूमंडलीकरण के संभ्रांत नागरिक जिस तरह भारत के गाँवों के लोगों को जड़, दकियानूसी, भाग्यवादी, आलसी, और पीछे देखू मानते हैं उसी तरह शहरी जीवन के अनुभवों के कथाकार ग्रामीण जीवन के कथाकारों को भी समझते हैं। इसका असर गाँव की जिन्दगी पर उपन्यास और कहानियाँ लिखने वाले पर पड़ता है। वे हीनता ग्रंथि का शिकार होते हैं और मजबूरी में नागर कथाकार बनते हैं।'' भूमंडलीकृत भारत में किसानों की स्थिति बद से बदतर ही हुई है। न तो सरकार और न ही संभ्रांत नागरिकों के पास किसानों की दशा पर विचार करने हेतु पर्याप्त अवकाश है। संभ्रांत नागरिकों में

समकालीन चेतना के प्रति जागरूक लेखक भी सम्मिलित हैं। जिन्होंने भूमंडलीकरण की नीतियों से प्रभावित नगरीय समाज, नारी, युवा-वर्ग, व्यापारियों, नौकरीपेशा लोगों पर तो अपना ध्यान केंद्रित किया है किन्तु अन्य सरकारी नीतियों की तरह किसान उनकी कृपादृष्टि से उपेक्षित रहा है। काशीनाथ सिंह और शिवमूर्ति ने कुछ प्रयास अवश्य किए हैं किन्तु इतने को पर्याप्त नहीं माना जा सकता है।

अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने पद सम्भालते ही 'हायर अमेरिकन' नीति पर काम शुरू कर दिया था। ट्रम्प सरकार ने एच-1बी वीसा की शर्तें कड़ी करने का बिल संसद में प्रस्तुत कर अपने इरादे जाहिर कर दिए हैं जिसके चलते कम्पनियों को बाहरी लोगों के बदले अमेरिकियों को तरजीह देनी पड़ेंगी। ट्रम्प की नीतियों के कारण भूमंडलीकरण की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अमेरिका की नवीन नीतियों से लगभग सम्पूर्ण विश्व की नीतियाँ प्रभावित हो रही है। वर्तमन समय में श्रीलंका का बेतहाशा कर्ज के कारण आर्थिक रूप से चैपट होना और आपातकाल की घोषणा भूमंडलीकरण की नीतियों के कारण ही है। आने वाले समय में भूमंडलीकरण का क्या स्वरूप होगा और यह अविकसित व विकासशील देशों को किन रूपों में हानि पहुंचाएगा, यह तो वक्त ही बताएगा।

संदर्भ ग्रंथ:

1. तिवाड़ी, पुष्पा, भूमंडलीकरणए किसान और भारतीय कथा साहित्य.2015ए रॉयल पब्लिकेशनए जोधपुर
2. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव के देवता 2009ए भारतीय ज्ञानपीठए नई दिल्ली.3
3. शर्मा राजू, विसर्जनए 2009ए राजकमल प्रकाशनए नई दिल्ली.2
4. सरावगी अलका, एक ब्रेक के बादए 2010ए राजकमल प्रकाशनए नई दिल्ली.2
5. सौरभ प्रदीप, मुन्नी मोबाइलए 2009ए वाणी प्रकाशनए नई दिल्ली.2
6. Bagchi, Amiya Kumar-Globalization: A sketch- 2000, ARR Publication Secunderabad-26
7. Ensyclopeadia Britannica (vol-1-10), New Delhi-26

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

हिन्दी उपन्यासों में किसान विमर्श : स्वरूप विवेचन

('गोदान','ग्लोबल गाँव के देवता' और 'फाँस' के विशेष संदर्भ में)

मिर्जा मासुमे फातिमा
शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग, आन्ध्र विश्व विद्यालय, विशाखपट्टणम
masumefathima786786@gmail.com

अनादि काल से भारतीय संस्कृति और यहाँ की सभ्यता यहाँ के देहाती प्राँतोँ मेँ ही विकसित हुई थी| इस देश के ग्रामीण जीवन में कृषि का जो स्थान है वह अनन्य सामान्य है| युगों-युगों से यहाँ के नागरिक ग्रामीण समाज में रहकर खेतीबाडी करने वाले कृषकों के कठोर परिश्रम से उपजे अनाज से अपने, अपने परिवार एवं समज में आवास करने वाले विविध सदस्यों की भूख मिटाई जाती थी| परन्तु लगभग आठ, नौ शताब्दियों से गुलामी के जंजीरों में जकडे रहकर स्वतंत्रता पाने के पश्चात उपर्युक्त स्थिति में धीरे-धीरे परिवर्तन आता गया| आज अर्थात 21वीं सदी में सबका पेट भरने वाला अन्नदाता आकाल का सामना कर रहा है| उसे एक वक्त की रोटी भी नसीब नहीं होती| वह अपने जीवन की छोटी-छोटी जरूरतों को पूरा करने के लिए या तो दलालोँ, साहूकारोँ, महाजनों अथवा पूँजीपतियोँ के आगे कर्ज के लिए हाथ फैलाता या अपनी दयनीय स्थिति से हार कर जीवन को ही समाप्त कर लेने लगा है| किसान हमेशा समसामयिक परिस्थितियोँ से संघर्ष करता हुआ, गिरता हुआ, उठने की कोशिश करता हुआ नजर आता है| वर्तमान युग में उनकी स्थिति इतनी दुर्भर हो गई है कि वे खेती को छोड कर आजीविका के लिए दूसरे काम करने शहरों की ओर बढ रहे हैँ|

सदियों से चले आ रहे किसानों और मजदूरोँ के शोषण के विकृत यथार्थ का हमारे हिन्दी साहित्यकार विशेष रूप से कथाकार अपने रचनाओँ में यथा संभव चित्रण करते हुए उसे सुधारने के उपाय भी प्रस्तावित करते आ रहे हैं| यह तो सर्वविधित बात है कि किसान और मजदूर वर्ग के लोग या तो अशिक्षित होते हैँ अथवा अर्द्ध शिक्षित होते हैँ और इसीलिए ऐसी कृतियोँ का पठन और अध्ययन कदाचित ऐसे लोगोँ के लिए संभव नहीँ हो पाये| अत: ऐसी कृतियों में चित्रित वर्तमान युग के किसानों की समस्याओं और उनके समाधान से संबंधित वस्तु चेतना का प्रचलन ऐसे लेखोँ से संभव हो सकता है और इसी आशय की पूर्ती हेतु यह निबंध प्रस्तुत है|

हिन्दी कथा साहित्य में उपन्यास सम्राट माने जाने वाले **मुंशी प्रेमचंद** जी ने कृषक जीवन से संबंधित समस्याओँ का अपने कथा साहित्य मेँ व्यापक चित्रण किया है| उनका उपन्यास **'गोदान'** किसानोँ की ऋण समस्या को केंद्र मेँ रखकर लिखा गया वह दस्तावेज है जो किसानोँ की आपबीती मानी जा सकती है| उपन्यास का नायक होरी अपने जीवन में पग-पग पर तरह-तरह के कठिनाइयों का सामना करते हुए भी सदैव अपने मूल्योँ और आदर्शोँ पर स्थिर रहता है| भोला द्वारा दी गई गाय को देख होरी अधिक आनंद का अनुभव करता है| परंतु उसका यह संतोष अधिक समय नहीं ठिक पाता| ऋण अदा किये बिना खेती न जोतने का आदेश से परेशान होकर वह अपनी पत्नी धनिया के सुझाव पर अपनी गाय को झिंगुरीसिंह के पास गिरवी रकना चाहता है परन्तु दुर्भाग्यवश उसी रात गाय को उसका भाई हीरा विष देकर मार देता है| फिर भी होरी अपने भाई के किलाफ आवाज नहीँ उठाता|

महाजनोँ के षटयंत्र से होरी कर्ज के दलदल मेँ फसता चला जाता है| बाप-दादोँ की जमीन भी उसके हाथों से चली जाती है| हार कर वह दातादीन से आधे रहन पर काम करता है परंतु ईख के फसल की सारी कमाई झिंगुरुसिंह और गोरखराम ले लेते हैं तो अब वह पूरी तरह से दातादीन का मजदूर बन जाता है| एक दिन काम करते समय लू लगने के कारण वह बीमार पड जाता है और धनिया उसे काम पर जाने से रोकती है तो वह कहता है ""बीमार वही पडते हैँ जिन्हें बीमार पडने की फुरसत होती है|"[1] ऐसे कर्मष्ट होते हैं हमारे किसान| जिसे अपने जीवन से भी अधिक अपने काम से प्रेम होता है| ""कृषक वर्ग जन्म से ही अभावग्रस्त है, इसीलिए उसे कभी अपने पेट पालने के लिए ऋण लेना पडता है तो कभी प्रकृति के प्रकोप के शिकार होने के कारण ऋण लेना पडता है| कभी बीज के लिए ऋणग्रस्त होना पडता है तो कभी लगान चुकाने के लिए| इसी तरह होरी भी ऋण का शिकार होता है और आपने ही खेती में नौकर बन जाता है|"[2] मनुष्य दुख को सहता है, हारता है फिर भी जीवन लडता है| प्रेमचंद होरी के मनोबल को कहते हैं ""जीवन के संघर्ष में उसे सदैव हार हुई, पर उसने कभी हिम्मत नहीँ हारी| प्रत्येक हार जैसे उसे भाग्य से लडने की शक्ति दे देती थी|"[3]

प्रेमचंद युगीन कथा साहित्य से हमें पता चलता है कि उस समय खेतीबाडी करने वाले किसानों पर मात्र पूंजीपतियों और महाजनों का नियंत्रण रहा करता था| परन्तु यह तो एक सर्वविधित तथ्य है कि वर्तमान युग के किसानों पर उनके अलावा सरकारी पदाधिकारियों एवं राजनैतिक कार्यकर्ताओं का भी हाथ है जो उन्हें काफी परेशान करते रहते हैं| इसी स्थिति का व्यापक एवं प्रभावी चित्रण तथा उसे सुधारने के प्रस्ताव वर्तमान औपन्यासिक कृतियों में देखने को मिलते हैं| इस कथन के कुछ उदाहरणों का संक्षिप्त विवेचन निम्न लिकित पंक्तियों में द्रष्टव्य है| **रणेंद्र** कृत **'ग्लोबल गाँव के देवता'** नामक उपन्यास में समसामयिक भारत के आदिवासी जीवन की प्रतीकात्मक एवं सांकेतिक भाषा में चित्रित करते हुए खेतीबाडी करनेवाले किसान मजदूरोँ को असुरोँ की कोटी में दर्शाया गया है और उनकी दुखद स्थिति का प्रभावी चित्रण

करते हुए कुछ महत्वपूर्ण प्रसंग प्रकाश में लाए गए| ऐसा एक उदाहरण निम्न लिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है "कृषि पदाधिकारी, जन सेवक, सबका पाट पर डेर| क्या तो बरसाती आलू लागाने हैं! पाट के सब परिवारों को, चाहे वो असुर हों, बिरिजिया हों, कोरबा हों, सबके पूरे अनुदान पर बीज आया था| क्या तो ग्यारह लाख का बीच और सात लाख का खाद भेजी थी सरकार! जो आदमी जाति परिवार जीतना खेती करना चाहे उतना बीच दिया जा सकता थ| ब्लॉक के जो हाकीम लोग एक दिन भी पाट में झाँकने नहीं आते थे वो तीन-तीन दिन का कैम्प करने लगे| ...लालिता को बहुत आश्चर्य हुआ कि जो ब्लॉक कम्बल, मच्छरदानी और छगरी-बकरी बाँटने से आगे बढा ही नहीं था, आज एकाएक आलू की खेती की कैसे याद आ गयी? हमें भीखमंगा समझने वाले किसान कैसे मानने लगे?... आज तक पाट के असुर ने विकास के नाम पर यही कंबल, मच्छरदानी, बकरी-छगरी देखी थी| ज्यादा से ज्यादा इन्दिरा आवास| तालाब–कुआँ की बात की बात कीजिये तो हँसने लगेंगे| ... दो पाटों के बीच में बडे बडे दोहर हैं जिनमें हमारी धान की खेती है, वहाँ अच्छे तालाब बन सकते हैं| कोई मानतानहीं था| इतनी दूर आवें, घूमें-फिरेंतबतो जाने| छोटेस्टाफ तो आते, किन्तुहाकिम लोग उनकीबात क्यों मानने लगे|"[4]

प्रस्तुत प्रसंग से हमें स्पष्ट होता है कि देहाती प्राँतों में अन्न उपजाने हेतु खेतीबडी में कठोर परिश्रम करने वाले किसान मजदूरों को हकीमों, दलालों, जमींदारों और सरकारी पदाधिकारियों के जंगुल में फंस कर पिसता जाना पड रहा है| जब तक इस स्थिति को सुधारने के लिए संघर्ष नहीं किया जाता तब तक इस देश का भविष्य धूमिल ही रहेगा| इसी तथ्य को उजागर करने की दिशा में वर्तामान कथाकार **रणेंद्र** ने अपने उपन्यास **'ग्लोबल गाँव के देवता'** में अत्यंत सृजनात्मक प्रयास किया है| जिसका संक्षिप्त विवेचन निम्न लिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है|जब सोमा के बाबा घर वालों को बिना बताए पाँच हजार रुपए में एक एकड खेत एक खदान दलाल को दे देता है तो गाँव में हला मच जाता है| सब लोग फुसफुसाने लगते है कि आये दिन ये दलाली लोग कमजोरों को अपने चंगुल में फंसाकर असुरों की रैयती जमीन हडपरहे हैं| एसी स्थिति से बचने के लिए लालचन और रिमझुम जैसेस लोग उन्हें सचेत करते रहते हैं| वे लोग यह भी चाहते है कि ऐसे विकृत थथार्थ के विरुध आम जनता की ओर सेद आंदोलन आए और स्थिति में सुधार आए इस संदर्भ में डॉक्टर साहब का कथन द्रष्टव्य है "लडाई अकेले जीती नहीं जा सकती| यह केवल लालचन के चाचा के पाँच एकड का सवाल नहीं है, ... अवैध खनन के लिए पाँच-दस असुरों को रोज फुसलाया जाता है| हर उपायसे उनकी जमीन हथियायी जाती है| बाक्साइट निकाल-निकालकर मौत की खाइयाँ छोडी जा रही हैं| इन सब सवालों को जोडिये, तभी असुरों के साथ उराँव, खेरवार, सदान सब आपकी लडाई में जुटेंगे| … कनारी के नवयुवक संघ के साथियों को अपनी लडाई में शामिल करना मजबूरी है|"[5] और ऐसे करने से ही समस्या का सामाधान हो सकता है|

संजीव जी के उपन्यास **'फाँस'** में विदर्भ के किसानों की दयनीय दशा का विवरण मिलता है| खोती में हो रही नुकसान और किसानों की विवशता के बारे में नायक शिबु की पत्नी शकुन कहती है"कहने को दो एकड की खेती? मिलाक्या?कापुस तक एकदम से दगा दे गया मक्का सिर्फ नाम का जो थोडी बहुत उम्मिद है, वह धान से| वह भी कितनी| दो साल से ही सूखा है| यह तो कहो,पस ही जंगल है जिससे सहेर, शाल के बीज, मावा, बाँस, लकडी आदि से कुछ न कुछ मिला जाता है, वरना तो ब्रह्मणों की रहनुमाई करते बीतती| वर्षों पहले कपास का नया बीच आया तो एक आस जगी थी| वो भी साला नपुंसक निकला अब चरों तरफ़ निराश किसानों का एकमात्र अवलम्ब बच उस पर भी वन विभाग का नया फरमान छूना मत"[6]जब घर में किसान लल्लु की आत्महत्या की चर्चा घर मेम होती है तो वह(शकुन) कहती है "इस देश का किसान कर्ज में जन्म लेता है, कर्ज में जीता है, और कर्ज में ही मर जात है|"[7] इस पर कर्ज में डूबा शबू कहता है "इस बार तो फसल की कोई उम्मिद नहीं, दो- चार किलो तुअर, बकी कुछ नहीं मुझे लगता है मैं बीच मझधर में फंस गया हूँ| न आगे बढ सकता हूँ, न लौट पा रहा हूँ, मेरी हालत लालू जैसी होती जा रही है|"[8] वह अपनी बेटियों की शादी नहीं कर पाता| सारी परिस्थितियों से हार माना लेता है और गले में फाँसी डाल कर अपना जीवन समाप्त कर लेता है|

यह भी एक उल्लेखनीय विषय है कि साठोत्तरी हिंदी साहित्य के अंतर्गत भारतीय पौरणिक आख्यानों पर आधारित होकर अनेक मिथकीय प्रनेत किए गए जिनमें गामीण चेतना का व्यापक चित्रण प्रप्त होता है| इनकी वस्तु चेतना में भारतीय ग्रामीण क्षेत्र के कृषकों का भी वर्णन प्रप्त होता हैं| **नरेंद्र कोहली** कृत **'महासमर'** एवं **'अभिज्ञान'**, **मनुशर्मा** कृत **'कृष्ण की आत्मकथा'**, **माया शाबनम** विरचित **'आर्यवर्त की कुलवधु'** एवं **'कैकेयी नंदिनी'**, **भगवती शरण मिश्र** कृत **'देख कबीरा रोया'**, **सुधीर निगम** कृत **'धर्मात्मा विभीषण'** आदि अनेक ऐसे उपन्यास हैं जिनमें भारतीय किसानों के संघर्षमय जीवन का व्यापक चित्रण प्राप्त होता है|इन उपन्यासों के अध्ययन से हमें भारतीय संस्कृति के अंतर्गत अनादि काल से हुए कृषक जीवन के विविध पहलुओं का स्वरूप स्पष्ट है| प्रेमचंद युग हो या 21वीं सदी किसान की हतशा में कोई सुधार नहीं आया| किसानों की दयनीय स्थिति का वर्णन 21वीं सदी के प्रारंभिक दौर में **संजय** कृत **'जंगल जहाँ से शुरू होता है'(2001)** और **'फाँस'(2015)**, **विवेकी राय** कृत **'बबुल'(2001)**, **'सोना** माटी'(2010) और **'समय शेष है'(2011)**, **सदानंद देशमुख** कृत **'बारोमास'(2002), मिथिलेशव**र कृत **'यह अंत नहीं'(2003)** और **'माटी कहे कुम्हार से'(2006)**, **विध्यासागर** कृत **'उत्तर बायां है'(2003)**, **रामधरी सिंह दिवाकर** कृत **'अकाल संध्या'(2006)**, **भीम से**न कृत **'जमीन'(2006)**, **पंकज सुबीर** कृत **'अकाल में उत्सव'(2016)** आदि रचनाओं में देखने को मिलता हैं|

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हिन्दी के औपन्यासिक साहित्य में भारतीय किसानों की भयानक दुर्दशा का प्रभावी चित्रण किया गया है| जिससे सहृदय पाठकों को इस संबंध में उपयुक्त दिशा निर्देशन प्राप्त होगा| इन कृतियों में यह स्पष्ट किया गया कि जब तक इस संबंध

में संबंधित व्यक्तियोँ को उपयुक्त दिशा निर्देशन नहीं किया जाएगा तब तक देश का भविष्य सुधर नहीँ पाएगा| यह तो एक सर्वविधित सत्य है कि भारत जैसे महान राष्ट्र के उन्नयन में किसानोँ की क्या भूमिका होगी| यदि उनके जीवन के विकृत यथार्थ को सुधारने की चेष्टा नहीँ की जाएगी तो समाग्र देश को एक अत्यंत दुःख भविष्य का सामना करना पडेगा| हिंदी उपन्यासोँ मेँ चित्रित विविध प्रसंगों के मिसाल देते हुए इन अवधारणाओं को स्पष्ट करने का यह लघु प्रयास सहृदय पठकों और देश के विविध नागरिकोँ की सहायता करेगा, एसी आशा एवं आकंक्षा है|

संदर्भ सूची :

1. मुंशी प्रेमचंद : गोदान (उपन्यास), सुमित्र प्रकाशन, अशोक नगर, इलाहाबाद, संस्करण-2014, पृष्ठ संख़्या-306
2. डॉ एस कृष्ण बाबु : हिन्दी का उपन्यास सहित्य : मिथकीय चेतना और सामाजिक सरोकार,अमन प्रकाशन, राम बाग, कानपुर, प्रथम संस्करण-2021, पृष्ठ संख़्या-164
3. मुंशी प्रेमचंद : गोदान (उपन्यास), सुमित्र प्रकाशन, अशोक नगर, इलाहाबाद, संस्करण-2014, पृष्ठ संख़्या-258
4. रणेंद्र : ग्लोबल गाँव के देवता (उपन्यास),भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, लोडी रोड, नई दिल्ली, प्रथम ज्ञानपीठ संस्करण-2010, पृष्ठ संख़्या-95
5. रणेंद्र : ग्लोबल गाँव के देवता (उपन्यास), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, लोडी रोड, नई दिल्ली, प्रथम ज्ञानपीठ संस्करण-2010, पृष्ठ संख़्या-48
6. संजीव : फाँस (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, लोडी रोड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2016, पृष्ठ संख़्या-115
7. संजीव : फाँस (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, लोडी रोड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2016, पृष्ठ संख़्या-15
8. संजीव : फाँस (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, लोडी रोड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2016, पृष्ठ संख़्या-15

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr -2022

शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यासों में नारी विमर्श

मोल्लम डोलमा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी, डॉ. वाई.एस. परमार राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नाहन
Email: dolmamollam@gmail.com

नारी विमर्श भारतीय साहित्य संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। जब हम किसी भी प्राचीन, मध्य या आधुनिक साहित्य परम्परा को देखते हैं तो नारी से संबंधित, विषय में कुछ ना कुछ जानकारी प्राप्त होती है। ऐसा मानना तर्कपूर्ण एवं उचित है कि नारी विमर्श का विचार समसामयिक आधुनिक युग की देन है। यदि हम इस पर विचार-विमर्श को एक सकारात्मक दृष्टिकोण से समझें, देखें तो इसका आशय पुरुष समाज को नीचा दिखाना नहीं बल्कि स्त्री समाज के अधिकारों को समान दृष्टिकोण से समझना है।

नारी विमर्श समकालीन साहित्य की देन है, जहाँ नारी समाज में पुरुष के समान स्थान पाने के लिए कोशिश कर रही है। आधुनिक काल में नारी पर अनेक लोगों ने लिखा है। स्वयं नारी ने भी अपनी व्यथा-कथा सुनाई, लेकिन यह साहित्य केवल स्थिति का बयान करके रह गया। अपने अस्तित्व के प्रति सजगता, आत्मचेतना आदि भाव हमें स्वातंत्र्योत्तर भारत में लगभग सन 1960 के बाद के काल में साहित्य में नजर आने लगे। 'स्व' के प्रति सजगता और अपने अधिकारों एवं अस्तित्व के प्रति चेतना नारी विमर्श की शक्ति है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में अनेक पुरूष रचनाकारों के साथ-साथ नारी रचनाकार लेखन का कार्य करने लगी, इसकी वजह से नारी की अपनी परिस्थितियां, भावनाएं, अनुभव, सोच आदि का रेखांकन साहित्य में होने लगा। मृदुला गर्ग, ममता कालिया, शशिप्रभा शास्त्री, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, सूर्यबाला, चंद्रकांता, अलका सरावगी जैसी अनेक लेखिकाओं ने नारी विमर्श को अपने साहित्य में स्थान दिया।

शशीप्रभा शास्त्री हिंदी की महान समकालीन लेखिकाओं में से एक है। उन्होंने अपने उपन्यासों में बदलते हुए समाज और उसकी रूपरेखा का वर्णन किया है। शशिप्रभा शास्त्री ने एक समर्थ, मनोवैज्ञानिक की भांति नारी के मन की शंकाओं, उत्कंठाओं एवं भावनाओं को बड़ी ही सूक्ष्मता से उजागर किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी को ही केंद्र में रखा है। शशिप्रभा शास्त्री ने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्री के मर्म तथा मनोभावों तक पहुंचने का प्रयास गहरी संवेदना में ईमानदारी से किया है। इनकी रचनाओं में स्त्रियां अपनी दुनिया बदलना चाहती है। दांपत्य जीवन की तकरार को भी इन्होंने बहुत ही सहजता से दर्शाया है। वह नारी को बदलती हुई देखना चाहती है। वह पुरूष की उपस्थिति के कारण दांपत्य जीवन में तनाव नहीं चाहती। पत्नियों का अपमान उन्हें असहनीय लगता है। इनके उपन्यासों में स्त्रियां बंधे-बंधाए ढाँचें से बाहर आकर जमाने के यथार्थ और उसके लगातार कठिनतम होते हालात से मुठभेड़ करने का साहस दिखाती है। इनके स्त्री पात्रों ने अपने लिए सोचना और जीना सिखा है।

शशिप्रभा शास्त्री का स्वभाव बड़ा सरल रहा है और यही बात उनके लेखन में भी उतरी है। अधिकारों की समानता की मांग तो उन्होंने भी की है, किंतु जो बोल्डनेस, अन्य लेखिकाओं ने अपनाया, और सेक्स को जो अत्याधिक महत्व दिया, उसे ही सर्वस्व माना यह बात शशिप्रभा के स्वभाव या लेखन में नहीं है, उन्होंने बड़ी सहजता के साथ और सरलता के साथ नारी के अधिकारों की मांग की है। यही उनके स्वभाव की विशेषता है। 'कोडवर्ड' उपन्यास में उन्होंने समलैंगी संबंधों की बात की है। परंतु अत्यधिक मर्यादाओं में रहकर। कहीं पर भी बोल्डनेस या बेछूट वर्णन नहीं है।

शशिप्रभा शास्त्री ने दांपत्य जीवन संबंधी अपनी मान्यताओं को भी व्यक्त किया है। "शशिप्रभा शास्त्री ने सुखी दांपत्य जीवन के लिए वाद-विवाद अधिकार बनाया है। लेखिका दांपत्य जीवन में यौन-संबंधों की महत्ता को स्वीकार करती है तथा इसे आवश्यक मानती है। दांपत्य-जीवन को सुमधुर बनाने के लिए उनसे एकरसता की अपेक्षा कुछ नयापन होना अनिवार्य है।" लेखिका ने बड़ी सरलता से नारी के हक की बात की है।

शशिप्रभा शास्त्री ने नारी के हक की मांग करते हुए दहेज प्रथा का भी धिक्कार किया है। भारतीय युवकों के प्रति भरपूर आक्रोश व्यक्त करते हुए 'क्योंकि' उपन्यास में वह शकुंतला तायल के माध्यम से कहती है कि, "मिसिस जायसवाल मैं सोचती हूं, इस देश में तमाम युवक नपुंसक हो गए हैं, इनकी शादियों की बात चलती है और यह आटे के बबुए बने बैठे रहते हैं। इन्हें शर्म नहीं आती, इनके मां-बाप इनके सौदे करवाते रहते हैं और ये भेड़ बकरियों की तरह सिर झुकाए अपने सौदे करवाते रहते हैं, लगता है भेड़ बकरियों की तरह ही इन सब की गर्दन उड़ा दूं।" लेखिका ने स्वयं अंतरजातीय विवाह किया है। विवाह में वे जात, पात, धर्म, दहेज को महत्व नहीं दिया।

'उम्र एक गलियारे की' उपन्यास की नायिका सुनंदा खुले विचारों की एवं स्वतंत्र है। उसने अपनी विपरीत परिस्थितियों से विद्रोह किया है। जब वह अपने पति से शारीरिक सुख की प्राप्ति नहीं कर सकती, तब उसने अपने सुख का रास्ता ढूंढ लिया है। पुरुष नारी को अपनी जायदाद मानता आ रहा था और नारी भी उसे स्वीकारती आ रही थी, इस बात को सुनंदा ने पहली बार उतारकर फेंक दिया। पाप-पुण्य, पवित्रता और अपवित्रता सारे विचार, बंधन नारी के लिए ही क्यों? पुरुष क्यों इस तरह के बंधनों को नहीं स्वीकारता। सुनंदा अपने सुख-दुख के लिए किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहती थी। पति नवल के अतिरिक्त उसका एक घर और भी होगा यह उसने तय किया। सुनंदा अपने पूर्व प्रेमी देवेश को छोड़ना नहीं चाहती। वह सोचती है कि क्या उसका एक और घर नहीं हो सकता? और वह दोनों के साथ रहने की बात सोचती है। वह कहती है "सोचो न देवेश, तुमने मुझे यह राह दिखाई है, मुक्त किया है और तुम ही मुझसे दूर रहोगे वैसे कैसे होगा?" नायिका ने अपने संस्कारों को तोड़ते हुए किसी की परवाह ना करते हुए स्त्री के एक अलग रूप की व्याख्या से परिचित करवाया है। लेखिका नारी विमर्श की चेतना के रूप में प्रकट हुई है।

'नावें' उपन्यास शशिप्रभा शास्त्री का नारी विमर्श का सार्थक उपन्यास है। इस उपन्यास की नायिका मालती एक ऐसी स्वतंत्र विचारों वाली स्त्री है जो मात्र आर्थिक सुरक्षा नहीं चाहती उसे परिवारिक अस्मिता के बीच अपनी हैसियत और अस्तित्व की सामाजिक स्वीकृति भी चाहिए थी। यह साहसी स्त्री अपनी गर्भावस्था के दौरान ही सोमजी का घर छोड़कर चली जाती है। क्योंकि यह सब स्वाभिमानी स्त्री रखैल की तरह रहना पसंद नहीं

करती। वह सोमजी से बराबर का दर्जा चाहती है और सोमजी पहले से शादीशुदा थे तथा बाल-बच्चों के पिता थे। सोमजी मालती को सभी सुख-सुविधाएं देना चाहते हैं और उसे अपने परिवार से अलग रखना चाहते हैं, लेकिन मालती को यह मंजूर नहीं है वह स्पष्ट शब्दों में सोमजी से कहती है- "क्या आप इसी तरह मुझे थामे रहने की बात कह रहे थे कि मैं आपकी एक रखैल बन कर इतनी दूर एक अनजान शहर में आपकी दया पर पड़ी रहूं? मैं आपके साथ रहूंगी, गाजियाबाद में आपके परिवार के साथ। आपने बहुत दूर तक भले ना सोचा हो पर मैंने अपनी जिंदगी के बारे में सोच लिया है।" मालती समाज की बनाई परंपराओं को चुनौती देती है। ना तो लाज और शर्म के मारे ना ही समाज के भय से जिंदगी से हारकर आत्महत्या नहीं करती है। वह अविवाहित होने पर न केवल गर्भ धारण करती है अपितु अपनी आने वाली संतान को जन्म देती है और उसके भविष्य के लिए नौकरी की तलाश भी करती है। मालती पुत्री नीलू को पिता का नाम देने के लिए विजयेश से विवाह करती है और एक बेटे की तरह वह नीलू को पूरी स्वतंत्रता प्रदान करती है। इस प्रकार लेखिका ने स्त्री अंतर्मन की पीड़ा, अवैध संबंधों से उत्पन्न जटिलता और आज की परिवर्तित सोच को यथार्थ चित्रण किया है।

शशि प्रभा शास्त्री स्वयं एक महिला कॉलेज की प्रधानाचार्य होने के कारण उन्होंने अपने कार्यों के माध्यम से भी विभिन्न स्त्रियों को, युवतियों को, महिलाओं को देखा था। तथा उनकी विभिन्न कार्यों तथा समस्याओं का सूक्ष्म निरीक्षण भी किया था। इन सभी बातों का परिणाम उनके लेखन पर हुआ है। उन्होंने अपने सूक्ष्म अवलोकन के स्वभाव का, अंतर्मन का निरीक्षण किया और उन्हीं में से अपने लेखन के लिए पात्र चुने। अतः हम कह सकते हैं कि शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यासों में नारी 'स्वअस्तित्व' व 'सहअस्तित्व' की मान्यता का पोषण करने वाली है यानि जियो और जीने दो। वह अपना विकास पुरूष के समानन्तर चाहती है।

संदर्भ सूची:

1. डॉ साधना अग्रवाल, वर्तमान हिंदी महिला कथा लेखन और दांपत्य जीवन, पृष्ठ 187
2. शशिप्रभा शास्त्री, 'क्योंकि', पृष्ठ 33
3. वही, उम्र एक गलियारे की, पृष्ठ 264
4. वही, नावें, पृष्ठ 23

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

'भावना के पीछे' नाटक में चित्रित नारी

प्रा. साठे नीता पोपट
सहाय्यक प्राध्यापक, राजर्षि छत्रपति शाहू कॉलेज, कोल्हापुर
ईमेल – satheneeta7@gmail.com

बीसवी शताब्दी की सबसे बड़ी उपलब्धि है, 'नारी जागरण' या नारी स्वतंत्रता | पितृसत्ताक संस्कृति के कारण प्राचीन काल से नारी की स्थिति शोषित, दमित या दोहरे स्थान के व्यक्ति के रूप में ही रही है लेकिन आधुनिक नारी का रूप बिल्कुल भी परिवर्तित हो गया है | आज वह शिक्षित, जागरूक एवं आत्म-निर्भर बन चुकी है | वह सभी प्रकार के शोषण का विरोध करती हुई 'नारी जागरण' का नारा लगा रही है | अनेक साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में नारी के इस रूप का चित्रण किया है | नारी का यह रूप डॉ. सुरेश शुक्ल चन्द्र के अनेक नाटकों में दिखाई देता है | हिंदी नाट्य साहित्य में एक प्रख्यात नाटककार के रूप में डॉ. सुरेश शुक्ल चंद्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है | उन्होंने अपने लेखन के प्रारम्भिक दौर में आदर्श या यथार्थपरक नाटक लिखे लेकिन बाद में परिवेश प्रधान नाटकों का सृजन किया | हिंदी नाटक साहित्य जगत में चन्द्र जी के नाटक एक नए नाटकों की शुरुआत करते हुए दिखाई देते है, इसी कारण अनेक साहित्यकारों ने उन्हें 'प्रयोगधर्मी नाटककार' की संज्ञा दी है | उन्होंने सामाजिक नाटकों के माध्यम से पारिवारिक विघटन, नारी स्वतंत्रता के पक्ष को उजागर किया है | नारी को केन्द्र में रखकर अनेक नाटकों की रचना की है | उनके नाटकों में स्थित नारी जीवन को देखने से पहले नारी शब्द का अर्थ जानना जरुरी है –

नालंदा विशाल शब्दसागर में 'नारी' शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है –''[संज्ञा स्त्री.] (सं) 1.स्त्री | औरत | [1]

प्राचीन युग में स्त्री को एक भोग-विलास की वस्तु के रूप में देखा जाता था लेकिन आधुनिक युग में शिक्षित नारी ने वस्तु से एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में स्वयं को परिवर्तित किया है | इस परिवर्तन के कारण स्त्री और पुरुष में अपने अधिकार या अहं को लेकर टकराहट हो रही है और यही पारिवारिक विघटन का कारण बनता जा रहा है | इसी संदर्भ में डॉ. जयदेव तनेजा लिखते है, ''स्त्री के 'वस्तु से व्यक्ति' बनने के लिए उसका सुशिक्षित, स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और जागरूक होना एक बुनियादी शर्त है | परन्तु विडम्बना यह है जैसे-जैसे यह स्तर, रुतबा और स्थान पाया है वैसे ही वैसे पति-पत्नी में अहं और अधिकार की टकराहट भी तेजी से बढ़ रही है | परिणामस्वरूप विवाह नामक संस्था और घर-परिवार की व्यवस्था के लिए विध्वंसक एवं विस्फोटक स्थितियों का अनुपात भी तेजी से बढ़ता गया है |''[2] आज की शिक्षित नारी समान अधिकार, सम्मान तथा न्याय के लिए लड़ रही है | वह पूरी तरह से बदल चुकी है | उसने आधुनिकता तथा पाश्चात्य संस्कृति को अपनाया है इसी वजह से वह पारिवारिक विघटन का कारण बनती जा रही है | डॉ. सुरेश शुक्ल चन्द्र का सन 1978 ई. प्रकाशित 'बदलते रूप' नाटक संग्रह पारिवारिक विघटन की समस्या को ही प्रस्तुत करता है | इसमे तीन लघु पारिवारिक नाटक संगृहीत है – 'भावना के पीछे', 'शादी का चक्कर' और 'बदलते रूप' | तीनों ही परिवार प्रधान सामाजिक नाटक है |

'बदलते रूप' नाटक संग्रह का प्रथम नाटक है – 'भावना के पीछे' | डॉ. चन्द्र ने उसे पहले 'आधुनिका' नाम से सामाजिक एकांकी के रूप में लिखा था, बाद में उसे 'भावना के पीछे' नामक नाटक में परिवर्तित किया | प्रस्तुत नाटक नारी स्वतंत्रता के प्रश्न को उजागर करता है | नाटक की केंद्रीय पात्र रेखा पुरुष स्वतंत्रता का विरोध करनेवाली प्रतिक्रियावादी नारी है , जिसे आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति तथा सभ्यता ने विकृत बनाया है | डॉ. परवीन अख्तर के शब्दों में, '' आज की अति भौतिकता ने जिस संस्कृति को जन्म दिया है, उसी संस्कृति ने रेखा जैसे चरित्र की सृष्टि की है |''[3] रेखा आधुनिकता तथा पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करनेवाली महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है | नारी स्वतंत्रता की पक्षधर नौकरी पेशा नारी रेखा परिवार की कर्ता धर्ता बनी है | इंटरमीडिएट तक पढ़ने के बावजूद भी अपने ग्रजुएट पति अखिलेश को घर की सारी जिम्मेदारी सौपकर स्वयं नौकरी करती है , क्योंकि वह पुरुषों की स्वतंत्रता के बिल्कुल खिलाफ है | अपने बेरोजगार पति अखिलेश से कहती है, '' मै पुरुषों की स्वतंत्रता पसंद नहीं करती | पुरुष बड़े चालबाज होते है | अगर मैंने तुम्हें कभी बाहर जाते देख लिया तो उसी दिन घर से निकल बाहर करुँगी |''[4] रेखा अपने ग्रजुएट पति अखिलेश की बेरोजगारी का पूरा-पूरा फायदा उठते हुए दिखाई देती है | वह अपने पति के साथ घरेलू नौकर के समान बर्ताव करती है | चाय-नाश्ता तथा खाना बनाने से लेकर कपडों पर इस्तरी करने तक के सारे काम अखिलेश से करवाती है | किसी काम में गलती होने पर उसे बुरी तरह से अपमानित करती रहती है तथा उसे हर वक्त अपने पर बोझ होने का एहसास दिलाती है |

नाटक की दूसरी पात्र उर्मिला रेखा की सहेली है, जो रेखा से बिल्कुल भी विरोधी स्वभाव की एक समझदार स्त्री है | उर्मिला के माध्यम से चन्द्र जी ने भारतीय नारी के आदर्श रूप को रेखांकित किया है | रेखा का पति के साथ इस तरह का व्यवहार देखकर उर्मिला रेखा को समझाते हुए कहती है, '' मेरी समझ से, जो तुम कर रही हो, ठीक नहीं है |''[5] उर्मिला के समझाने के बाद भी रेखा में किसी तरह का परिवर्तन नहीं होता , बल्कि वह उल्टा उर्मिला को ही समझाते हुई कहती है, ''अब पुरुषों के नकेल लगाना जरुरी है | स्वतंत्र रहने पर वे बिगड़ जाते है...दूसरों की बहू-बेटियाँ ताकते है | मैं तो अखिलेश को बाहर तक निकलने नहीं देती |''[6] रेखा अपने मित्र उमेश के सामने भी अखिलेश को अपमानित करती है | स्वच्छंद विचारों की रेखा उमेश

के साथ घुमती-फिरती है या पिकनिक पर जाती है | रेखा उमेश के बहकावे में आकर अखिलेश जैसे सदाचारी युवक को छोड़कर भाग जाती है और उमेश से शादी करती है | शादी के बाद उमेश बदल जाता है और रेखा को नौकरी छोड़कर घर के कम करने के लिए कहता है | रेखा इस बात का विरोध करती है, लेकिन उमेश रेखा को अपनी प्रकृति बदलने को कहता है और यदि ऐसा नहीं हुआ तो उसे छोड़कर चले जाने की धमकी देता है | रेखा के स्वच्छंदता को पसंद करनेवाला उमेश अंत में विरोध करता हुआ दिखाई देता है | वह रेखा से कहता है, '' जिस नारी में पुरुष वर्ग के प्रति आक्रोश है, वह सच्ची पत्नी बनकर नहीं रह सकती |''[7] अलग-अलग प्रकृति के कारण रेखा और उमेश में झगड़े बढ़ जाते है और एक दिन उमेश रेखा को छोड़कर दूसरी लड़की के साथ शादी करता है | यह बात रेखा को पता चलती है तो वह पूरी तरह टूट जाती है | वह कहती है, ''मैंने अपने हाथों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारी | अखिलेश कितना अच्छा था, मैं जो कहती थी, वही करता था | मै यह भूल गई कि मै नारी हूँ, और मेरी स्वतंत्रता की भी एक सीमा है | आज मै कही की न रही |''[8]रेखा को अपने पति अखिलेश को छोड़ आने का पछतावा होता है | इस बात का परिणाम रेखा पर इतनी गहराई से होता है की वह आत्महत्या कर लेती है |

रेखा के चरित्र के माध्यम से चंद्र जी ने आधुनिक बनी नारी का भीतरी खोखलापन उजागर किया है | इस बात की पुष्टि महेश द्वारा कही गयी बात से होती है- '' उसकी स्वतंत्रता उसे खा गयी | भावुकता और आवेश ने उसके विवेक को नष्ट कर दिया | जितनी स्वतंत्रता उसे मिली थी, उतनी एक नारी के लिए उचित नहीं थी |''[9] इस तरह नारी स्वतंत्रता की पक्षधर रेखा भावना के पीछे बह जाती है और अपनी जिंदगी नष्ट करती है | वास्तविकता से पति-पत्नी में प्रेम, आदरभाव, विश्वास, स्नेहभाव, भावात्मक समन्वय, आदि होना आवश्यक है तभी उनका दाम्पत्य जीवन सुखी होता है | हर एक मनुष्य को स्वतंत्रता से जीवन जीने का अधिकार है, चाहे वह पुरुष हो, या स्त्री | अपनी स्वतंत्रता का गलत इस्तमाल करने की वजह से रेखा जैसी आधुनिक नारी को अपनी जिंदगी ख़त्म करनी पड़ी |

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि, डॉ. सुरेश शुक्ल चन्द्र जी ने प्रस्तुत नाटक के माध्यम से आधुनिक युग की नई संस्कृति से निर्मित 'नारी स्वतंत्रता' जैसे अच्छे विचारों का गलत व्यवहार करने का परिणाम क्या हो सकता है यह रेखा के माध्यम से प्रस्तुत किया है | आत्मनिष्ठ, अहंवादी नारी का स्वर्थप्रेरित बर्ताव पारिवारिक समाज व्यवस्था को ध्वंस कर देता है

| प्रस्तुत नाटक द्वारा समाज में पाश्चात्य जीवन पद्धति का अंधानुकरण करते हुए स्वयं को आधुनिक माननेवाली नारी अपनी संस्कृति के प्रति विद्रोह करती है | पितृसत्ताक पद्धति का विरोध करने के प्रयास में तथा रूढ़ि-परम्पराओं का विरोध करने की जिजीविषा में जीवन नष्टप्राय कर देती है | आज के पारिवारिक संबंधों में नए तनावों की स्थिति को संवेदना से अभिव्यक्त किया है | आधुनिक जीवनशैली को प्रगट करने के लिए आधुनिकता का अर्थ आत्म-ग्रस्तता एवं अहंकार के रूप में लिया है | भारतीय पुरुष सत्तात्मक समाज व्यवस्था के प्रति और परम्पराओं के प्रति विद्रोह व्यक्त करने की अहंवादी प्रवृत्ति नारी को विपरीत मनस्थिति में पहुंचती है | नाटक में व्यापक और परिपक्व दृष्टि से समाज, व्यक्ति और उसके नए संबंधों, तनावों के कारण उत्पन्न समस्याओं को जीवन नष्टप्राय होने की परिस्थितियों तक पहुँचने की दर्दनाक दास्ताँ रेखांकित की है |

संदर्भ ग्रंथ सूचि:

1. श्री नवल जी – नालंदा विशाल शब्द सागर, आदिश बुक डेपो, दिल्ली-6 पृष्ठ क्र.694
2. डॉ. जयदेव तनेजा – आधुनिक भारतीय नाट्य-विमर्श, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ.क्र. 52
3. डॉ. परवीन अख्तर – समकालीन हिंदी नाट्य परिदृश, विकास प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण, 2007ई., पृ.क्र. 122
4. डॉ. सुरेश शुक्ल चन्द्र – बदलते रूप, अभिलाषा प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 1978, पृ.क्र.12
5. वही, पृ.क्र.15
6. वही, पृ.क्र.14
7. वही, पृ.क्र.24-25
8. वही, पृ.क्र. 28
9. वही, पृ.क्र. 32

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

'कुइयाँजन' उपन्यास में महानगरीय विमर्श

प्रा. डॉ. नेहा अनिल देसाई
सहाय्यक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, राजर्षि छत्रपति शाहू कॉलेज, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
drnehaadesai@gmail.com

औद्योगिकरण के साथ गांव के लोगों का नगर की ओर आकर्षण बढ़ता गया ।महानगरों की चकाचौंध, शिक्षा व्यवस्था, रोजगार के अवसर बढ़ने के साथ महानगरों में अपने लिए नए सार्थक अवसरों की खोज के परिणामस्वरूप जसंख्या वृद्धि हुई । आर्थिक विकास की ओर आकर्षित समाज आज के भौतिक युग में आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए महानगर की ओर आकर्षित हो जाता है। भौतिक विकास की संकल्पना को प्राप्त करने के साथ उससे उत्पन्न समस्याओं को देखना आवश्यक है ।

महानगरों की समाज व्यवस्था आर्थिक विकास के साथ तैयार हो गई है। मुक्त जीवनशैली का आकर्षण एवं गाँव के जातिव्यवस्था को और निर्धनता को अंशरुप से कम करने में नगरीय क्षेत्र सफल रहे है। भूमण्डलीकरण के बाद आर्थिक विकास महानगरों में हो सकता है ऐसा अलिखित सिद्धांत हो गया है। कुशल, अर्धकुशल, अकुशल मजदूर और छात्रों के कारण महानगरों की जनसंख्या वृद्धि हो गई है। महानगर का रूप स्पष्ट करते हुए गोपालराय जी का कथन है, "जहाँ तक कस्बों से लेकर महानगरों तक के जीवन का प्रश्न है उसे बिलकुल अलग-अलग खानों में नहीं बाटा जा सकता । जिंदगी की बहुत-सी स्थितियां और उनकी वास्तविकताएं समान होती है।" [1] इससे स्पष्ट होता है कि भूमण्डलीकरण के साथ महानगरों में साधन संपन्नता को अर्जित करने के लिए गाँवो एवं नगरों से युवाओं का स्थलांतर बढ़ता गया है। गाँव से रोजगार के लिए निकली युवा पीढ़ी अपने साथ गाँव की संस्कृति ले जाती है। लेकिन महानगरों में एक नई दिशा में तब्दील होने के कारण समाज व्यवस्था का नया रूप धारण कर सकती है ।

नासिरा शर्मा हिंदी साहित्य में संवेदनशील और प्रगतीशील विचारों की लेखिका के रूप में ख्यात हैं। यह वह लेखिका है जो मानवता को धर्म सांप्रदायिकता से ऊपर मानती हैं। मुस्लिम पारिवारिक स्थितियाँ, रीति-रिवाज और विडंबनाओं की भयानक स्थिति, हिंदुओं की पाखंडी प्रवृत्ति आदि का मार्मिक चित्रण नासिरा शर्मा के साहित्य की विशेषताएँ रही हैं। 'कुइयाँजान' उपन्यास का प्रकाशन सन् 2005 में हुआ है। महानगर के बदलते समाज का यथार्थ चित्रण 'कुइयॉजन' में है।

कुइयाँजन उपन्यास महानगरीय जीवन को अधोरेखित करता हैं । प्रस्तुत उपन्यास का नायक डॉ. कमाल साधन संपन्न परिवार से है लेकिन वह गरीब परिवार की सहायता करता है। उसके बहन की शादी, बारातियों का रहन सहन, घूमने के लिए जाना, खान पान की व्यवस्था आदि में महानगरीय जीवन की अमीरी दिखाई देती है । इसी के साथ धर्म के अनुसार त्यौहारों का धूमधाम से मनाए जाने का वर्णन किया है।

अकाल के कारण महानगर का जीवन

महानगर में गरमी के मौसम में बदतर स्थिति होती है । पानी के अभाव के कारण और बढ़ती गरमी से लोग परेशान हो जाते है। उपन्यास के मास्टरजी अकाल की परिस्थितियों पर काफी गहरा विचार करते है। उनके मतानुसार नगरों में पानी का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाता है लेकिन पानी के संचय की किसी प्रकार की सुविधाओं का प्रयोजन नहीं किया जाता है। गरमी से उत्पन्न परिस्थितियों पर मास्टर जी के विचार है , " लगता है , अब जाड़ा बरसात केवल दो –दो माह के होंगे और बाकी आठ माह गरमी पड़ेगी । लू के थपेड़े चलेंगे , वनस्पतियों सूखेंगी , नदियों में पानी कम हो जाए। लोग बीमार पड़ेगे । कुछ लू लगनेसे चल बसेंगे । शायद इस तरह जनसंख्या घटने लगेगी । " 2 सीमित जगह में अधिक से अधिक मात्रा में लोगों को रहना पड़ता हैं। छोटी जगह में बाढ़ एवं गर्मी के दिनों में समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं ।

बाढ़ के कारण महानगर का जीवन :

महानगरों की अर्थव्यवस्था विकास की ओर बढ़ने से सभी प्रकार के लोग अपनी आय प्राप्ति के लिए इस ओर प्रस्थान करते है। आर्थिक प्राप्ति के लिए कुशल –अकुशल मजदूर वर्ग भी है। जो प्रस्तुत उपन्यास में नगरीय क्षेत्र की विलासिता के साथ निम्न वर्ग की दयनीयता को भी दर्शाया है। आज के महानगर आर्थिक स्तर से अमीर और गरीब दो भागों में विभाजित हो गए हैं । अमीर वर्ग की सेवाओं के लिए गरीब वर्ग महानगरों में बस चुका है ।" ग्रामीण विभागात अपुऱ्या उपजीवीकेच्या संधी आहेत तर शहरी अनौपचारिक क्षेत्रात कमी उत्पादन क्षमता या वैशिष्टामुळे स्थलांतरणात वाढ होत आहे. यामुळे शहरीकरणाच्या समस्यत नवी आव्हाने निर्माण होत आहेत. भारतीय संदर्भात गावाकडून शहराकडे स्थलांतरणाचा दर मध्यम असला तरी गावाकडून शहराकडे लोकसंख्याचा वाढता ओघ हा चिंताजनक आहे. म्हणजेच शहरांची वाढ , अनौपचारिक क्षेत्रातील रोजगार आणि झोपड़पट्टीतील राहणी धरता एकन्दर बकाल आणि निम्न राहणी हे सर्व एकमेकाना व्यापणारे मुद्दे आहेत ." 3 (ग्रामीण क्षेत्र में उपजीविका के साधनों की कमी है तो नगरों में अनौपचारिक क्षेत्र में उत्पादन की विशेषताओं के कारण स्थलान्तरन में वृद्धि हुई है । इस कारण महानगर की समस्या बढ़ जाती है। भारत के संदर्भ में गाँव से नगर की ओर स्थलान्तरन का प्रतिशत मध्यम हुआ तो भी गाँव से नगर की ओर जनसंख्या की वृद्धि चिंता का कारण बन सकती है। याने नगरों का बढ़ना अनौपचारिक क्षेत्र के रोजगार के अवसर और झुग्गी झोपड़ी का अधिवास को ध्यान में रखते है तब इन बस्तियों में निम्न स्तर का रहन –सहन एक दूसरे के साथ है।) स्पष्ट है कि गाँवो से शहरों की ओर आकर्षित होने में उपजीविका का महत्त्व अधोरेखित होता है। महानगर में जीवन यापन करने के लिए आनेवाली जनसंख्या अधिक मात्रा में है | इन सभी के लिए जगह की कमी के और उचित मूल्य नहीं अदा करने के कारण झोपड़ीयों की संख्या बढ़ जाती है। छोटी जगहों में अधिक मात्रा में लोगों का रहना बाढ़ के समय समस्याओं को बढ़ाता है । "जरा गौर करें…..बरसात ने सूखे नाले और छोटे तालाब पानी से जरूर भर दिए हैं। जिनमें संक्रामक रोगों के कीटाणु भी कुछ सप्ताह बाद भारी मात्रा में पनप उठे हैं । मक्खी –मच्छर के छतों से पटा पानी भैसों के नहाने और सुअरों के फिसलकर गिरने से भी पीने के काबिल नहीं रह पाता, मगर मजबूरी के चलते लोग उसमें बरतन, कपडा धोते हैं

और वहीं से शौच इत्यादि के लिए पानी लेते हैं। कहीं –कहीं तो खुद हाथों से उलचकर, नीचे का पानी साफ़ समझ, घड़ा भरकर घर भी ले जाते हैं।"4 कुइयाँजान उपन्यास में बाढ़ के समय की महानगरीय जीवन की दयनीयता को दर्शाया है।

महानगरों में बाढ़ आने से परिस्थिती बद्तर होती है। निम्न स्तर के लोगों के जीवनमें बीमारी फैलती है - " मच्छरों, कीड़ो और तरह- तरह के कीटाणुओं ने इस ठहरे पानी में रहकर बीमारी फैला दी। रोज किसी न किसी इलाके में होती मौतों की खबर छपने लगी थी। साफ पानी की कमी थी। जगह–जगह से नल टूटने और सड़क धंसने से शहर के कुछ रास्ते बंद पड़े थे।" 5 स्पष्ट है कि यह आबादी बढ़ने से लोगों ने अपने रहने की व्यवस्था छोटी छोटी जगह में की है जहाँ हर एक मौसम में तकलीफ उठानी पड़ती हैं। बरसात के दिनों में पानी भर जाने से बीमारी बढ़ जाती है। उचित मूल्य चुका न पाने के कारण स्वास्थ सबंधी सुविधाओं का लाभ नहीं उठा सकते।ससमाज में पानी समस्याओं के लिए योगदान आवश्यक है। इक्कीसवीं सदी के गहन सवालों में चुनाव करना होगा कि नदी का चलता जल या बहती नदी, फलता जल एवं नदी किनारों की खुशहाली और जलता जल एवं प्रदूषण से व्याप्त नदी आदि में से किस रूप को अपनाना है, उसी प्रकार के प्रयास करना भी आवश्यक है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत उपन्यास का नायक महानगरों की समाज व्यवस्था में कठिन दौर में, घोर निराशा में संबल और सहारा देता हैं। रोजगार के अवसर एवं तरक्की के लिए महानगरों की आबादी बढ़ती गई है।जन-मानस की पहचान उसका दिशा निर्देश करने का प्रयास किया है। भूमंडलीकरण के साथ परिवर्तित परिस्थिति और परिवेश में उभरते नये सवालों को सुलझाने का प्रयास किया है। निम्नवर्ग के संवेदना को अभिव्यक्ति दी है। उपन्यासकार ने नये परिप्रेक्ष्य में और नये संदर्भ में खुली दृष्टि से महानगर की यथार्थ परिस्थितियों को अभिव्यक्त किया है। समकालीन सामाजिक समस्याओं को समस्या के रूप में प्रस्तुत करने के साथ समाज की सहायता की आवश्यकता को अधोरेखित किया है।

संदर्भ सूची :

1. गोपालराय , हिंदी साहित्य का इतिहास पृ. 411
2. योजना विकास समर्पित मासिक 2019 अंक - 5 संपादक : राजिंदर चौधरी , (शहरीकरण आणि अनौपचारिक क्षेत्र -अरुप मित्र) पृ. 17
3. शर्मा नासिरा, कुइयाँजान, सामयिक प्रकाशन, 3320- 21 जटवाड़ा , नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002 प्र. सं. 2008 पृ . 91
4. वही पृ . 218
5. वही पृ . 177

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

दलित चेतना की बेबाक अभिव्यक्ति
(सूरजपाल चौहान का कविता संग्रह 'क्यों विश्वास करूँ' के विशेष संदर्भ में)

डॉ. भूपेंद्र सर्जेराव निकाळजे
सहयोगी प्राध्यापक,हिंदी विभाग, छत्रपति शिवाजी कॉलेज सातारा, महाराष्ट्र
bsnikalje7@gmail.com

दलित चिन्तन के विकास-क्रम में बीसवी सदी महत्वपूर्ण रही है। इस सदी ने दलित-चिन्तन के विविध आयामों मे उत्कर्ष को प्राप्त किया है। इस सदी के जिन हस्ताक्षरों ने दलित-चिन्तन को उत्कर्ष प्रदान किया उनमें एक नाम सूरजपाल चौहान का लिया जाता हैं। दलित-जीवन की त्रासदी को उन्होंने अनुभव किया तथा उसे अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है। सूरजपाल चौहान का जन्म 20 अप्रैल *1955* में अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश) के 'फुसावली' नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता एक साधारन ईन्सान थे उनका नाम रोहनलाल तथा माता का नाम अशरफी था। सूरजपाल को दो भाई थे, बड़ा भाई सुनहरीलाल तथा छोटा भाई रगबर था। एक गरीब परिवार में उनका जन्म हुआ | यह परिवार मेहनत मजदूरी करके जीवन जीता थाI पिता एक सफाई कर्मचारी के रूप में दिल्ली में काम करते थे। माँ, पिता का हाथ जुटाती थी झाड़ू सफाई का काम करती थी। यह परिवार जीवन के प्रत्येक संकट का सामना हिंमत से करता था । सूरजपालजी का बचपन बड़े अभागों में बीता अनेक कठिन प्रंसगों का सामना उन्होंने किया, फिर भी कभी उन्होंने हार नही मानी, जीवन कैसा भी हो उसे अच्छा बनाना यह उनका मकसद था । गरीबी के कारण एक ही कमीज पर उन्हें रहना पडता था वह खूब मटमैली होती थी। एक ही कमीज को लगातार पहनने के कारण मैल कमीज पर जम जाता था। गाँव में जातिगत भेदभाव था सूरजपाल चौहान वाल्मीकि (भंगी) समाज के होने के कारण गाँव में भंगी और चमार के बाल नाई नहीं काटता था लंबे बाल मटमैले कपडे पेट में भूक की आग ऐसा एक अभागा जीवन उनका था। सूरजपाल अपनी माँ के साथ झाड़ू लगाने का काम करते थे। जिंदगी को आगे बढाने के लिए सबकुछ करना पडता था । आनेवाला प्रत्येक दिन चूनौतियों से भरा हुआ था।

जीवन एक कठीण मोड से गुजर रहा था, प्रत्येक मोड़ पर उन्हें सदमों ने घेर रखा था, बाल्यावस्या में ही सूरजपाल की माँ का देहांत हो जाता है। ममता से परे होकर जिंदगी को जीते है लेकिन कही बार भूखे पेट उन्हें रहना पड़ता था। दिल्ली शहर में रहने का कोई ठिकाणा नहीं था, पिताजी के साथ दिल्ली में रातभर मंदिर के सामने सड़क पर चादर बिछाकर सो जाते थे। ठंड के मारे शरीर ऐठ जाता था। माँ के बिना बच्चे की कैसी दशा होती है उसे भोगा था, एक अभागा जीवन उनका था । अपने बचपन के जीवन के बारे में लिखा है - "**मेरा बचपन बहुत अभागों में बीता है। रूखे-सुखे निवालों के भी लाले पड़े हुए थे। उन दिनों में सारे दिन भूखा रहेता, पिता सुबह अपने काम से चार बजे तक वापस आते थे, तभी खाना बनाकर देते थे। बिन माँ के बच्चे की कितनी दुर्दशा होती है यह तो में ही अच्छी तरह से समझ और जान सकता हू। एक दौर तो ऐसा भी आया कि मैं पास-पडोस के घरों में घुसकर रोटी चुराकर अपनी भूक को शांत करता।**"[1] सूरजपाल जी को कही बार भूखा रहना पडता परिणाम जब सहा नही जाता तो भूख उन्हें बेहोश कर देती थी, समय पर खाना न मिलने से उन्हें चक्कर आती थी और वे बेहोश हो जाते । विषम परिस्थितीयों में उन्होने जीना सिखा है। प्राथमिक शिक्षा गॉव फुसावली में होती है फिर पिता के साथ दिल्ली गये नगर निगम की प्राथमिक स्कूल में शिक्षा ली घर के हालात अच्छे नही थे फिर भी पढने की जिद्द उन् में थीI पाँचवी कक्षा तक पैर में पहनने के लिए चप्पल नहीं थी। जुठन खाकर उन्होंने दिन काटे जैसा भी हो जीवन वे जीते थे । एक बार मौसी के कहने पर पढ़ाई छोड़कर झाड़ू लगाने का काम शुरू किया लेकिन पिताजी के समझाने पर फिर से पढ़ना शुरू किया I पिता की आँखों में एक स्वप्न था बेटे के प्रति मैंने जिंदगी भर यह काम किया लेकिन बेटे का भविष्य उज्वल होना आवश्यक है। इसलिए बेटे को वे पढाना चाहते है सूरजपाल का बचपन विंडबना, गरीबी के कारण भयानक थाI रोज नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ता था I अपमान सहकर ठोकर खाकर जिंदगी को संवारना उन्होने सिखाI गरीबी के कारण अभागों भरा जीवन लोगों के ताने सुनकर वे जीवन जीते थेI Iछठी कक्षा में आने के बाद उन्होंने पुराने और फटे हुए जूते मोची से ठीक करवाकर पहने और उसी में आनंद लेते है। रोज स्कूल से आते वक्त कब्र के पास जाकर खाने की चीजे खोजते क्योंकि उन्हे वहाँ अच्छा खाना मिलता था, जो पदार्थ दूसरो की थाली में देखकर मन उछलता था, उसकी पूर्णता कब्र पर पूरी होती हलवा- पूरी भी खाने को मिलती थी इसलिए वे रोज कब्र के पास से गुजरते और अपनी भूख को मिटाते थे, उन्होने लिखा है कि **" रूखे सूखे निवालों के लिए भी तरसा हूँ मैं बचपन में पंराडा रोड की मार्किट के ढाबों रेस्टोरेंट के नौकर रात भर की जुठन सुबह 'टब' (कुडाघर) पर फेंक जाते थे। मैं भोर होने से पहले उसमें से रोटी के छोटे-छोटे टुकडे चुनकर खाता, वहीं दूसरी ओर उसी फेंके गए जूठे खाने को गली के कुत्ते भी खाते। कई बार कुत्ते मेरे ऊपर गुर्रा कर पड़ते क्योंकि मैं उनके हिस्से को चुन-चुनकर जो खाता था।"**[2] गरीबी में जीवन को आकार दिया था प्रत्येक वस्तू के लिए तरसना सिखाया था कही बार यही सब देखकर अपने जीवन की दशा को महसूस कर वे हताश होते लेकिन जीवन से कभी भी हार नहीं मानते उन्होंने बचपन से ही आगे बढ़ना सिखा था । इस प्रकार सूरजपाल चौहान का बचपन आर्थिक विडंबना, भूख, गरीबी जाति भेद माँ का देहात आदि के कारण अभावों में बीता था। लेकिन जीवन से वे कभी हारे नही थे। पिताजी के मार्गदर्शन से पढ़ाई की ओर बढ़े पिताजी को मालूम था शिक्षा का महत्व अपने जीवन से अपने बच्चों का जीवन अच्छा देखना चाहते थे। सुरजपाल जी पढ़ाई में अग्रेसर थेI पढायी के साथ पेट भरणे के लिये सबकुछ काम उन्होने किया था। सूरजपाल चौहान बड़ी मुश्किलों का सामना करते हुए पढते हैI बी.ए.की उच्चशिक्षा दिल्ली की भगतसिंह कॉलेज से प्राप्त करते हैI पिताजी उनकी शादी बिरादरी के लडकी के साथ करते है I समाज के भय से सूरजपाल की शादी तुरंत करनी पडती हैI लेकीन शादी के बाद सूरजपाल को बेरोजगारी में घर चलाना बड़ा कठीन हुआ था लेकिन पढ़ाई काम आती है उन्हें एक दिल्ली के सरकारी ऑफिस मे अपनी शिक्षा के अनुरूप नौकरी मिल गई और उनके आरमान पूर्ण हो गए। घर, के साथ स्कूटर, सोफा पलंग टेलीफोन, कार आदि लाकर अपने परिवार को खुशीहाल बनाया I समय के साथ

परिवार के खुशी के दिन भी खत्म हो गए और पारिवारिक समस्याओं का सामना उन्हें करना पड़ा I पूरा परिवार टूट गया दात्पंत्य जीवन में दरार आ गयी और सूरजपाल अपनी बेटी के साथ अलग रहने लगे। एक पल में सब बिखर गया था। पत्नी उनसे दूर चली गयी। इस तरह सूरजपाल का जीवन समस्याओं से भरा हुआ था। इन समस्याओं ने सूरजपाल को एक अच्छे दलित साहित्यकार के रूप में अपना स्थान प्राप्त किया था। इसलिए उनका कविता संग्रह 'क्यो विश्वास करूँ' में समर्पण मे ही उन्होंने लिखा है उन सबको जो अपने है लेकिन दुश्मन की तरह छलते रहे हैं। अपने जीवन की त्रासदी तथा समाज की व्यथा उन्होंने कविता संग्रह में प्रस्तुत की है। यह कविता संग्रह समाज के उन लोगों का प्रतिनिधित्व करता है जो जीवन सफर में हार गए हैं। उन्हीं का चित्रण इन कविताओं में हुआ है। यह कविता समाज में बदलाव का सन्देश देती है, दलितों के दलन-दमन, अपमान, तिरस्कार, उपहास, निन्दा और बहिष्कार की नीति से संचलित सामाजिक व्यवस्था को उन्होंने फटकारा है। यह कविता नकार और विद्रोह को व्यक्त करती कविताएँ है। सूरजपाल चौहानजी ने अपनी कविताओं में दलित-चेतना के प्रति प्रतिबद्धता के साथ-साथ अनुभवों की प्रामाणिकता को प्राथमिकता दी है।

दलित साहित्यकार की सोच व्यापक है वह विश्व शांती की कामना करता है, सभी मानव के कल्याण की चाह उसके मन के भितर है। दलितों के मसिहा डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर है, उनके विचारों से प्रभावित दलित साहित्यकार होने के से समाज के भितर समानता लाना उनका मुख्य उद्देश रहा है। मानवता की स्थापना करना उनका लक्ष्य रहा है। इसलिए इस कविता संग्रह की पहली कविता यह डॉ बाबासाहब आंबेडकरजी को शत-शत नमन है - ***"मानवता के प्रतीक / तुमने / इस भारत भूमि पर आकर / भुखे नंगे / और शोषितों को जगाया /"***[3] कवि डॉ.बाबासाहब आंबेडकर को पहले शतशत नमन करते है, उन्ही की प्रेरणा से शिक्षा के प्रति जाग्रति निर्माण हो जाती है हाथ में का झाडू चला गया और कलम हाथ में आ गयी आत्मसम्मान की भावना निर्माण हो गयी शिक्षा प्राप्त करने से नौकरी प्राप्त हो गयी परिणाम सारी इच्छा आंकाशा यह पूर्ण हो गयीI अब समाज में आत्मसम्मान से जीवन जीते है इसलिए कवि सबसे पहले डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरजी को नमन करते है।

कवि सूरजपाल चौहान समाज के भीतर समता स्थापन करना चाहते है। समाज में समता, ममता तथा, समानता की स्थापना मुख्य लक्ष्य है। समाज के भीतर दलितोत्थान के साथ सामाजिक उत्थान उनकी कल्पना रही है। इसलिए वे गतिशील रहे है, अपनी कविताओं के द्वारा सामाजिक संदेश भी देते है। अपनी कविताओं के माध्यम से सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक मुल्यों के परम्परागत संदर्भों को तोडकर नये संदर्भ को स्थापन करणा उनका उदेश रहा है I आज दलित साहित्य सक्षम है। दलित साहित्य के संदर्भ में पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी की बात स्पष्ट है कि **"दलित साहित्य में क्रांती एवं शांति का समन्वयकारी स्वरूप एवं उनकी रचनात्मकता से हमारा आशय उस सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति से है जो शिक्षित, संगठीत, एवं संघर्षरत व्यक्ति-स्तर और समाज स्तर पर अपना दीपक आप बने तथा आत्मिक सचेतना को अपनाए। वह लिंग, जाति, वर्णभेद को अस्वीकार कर अस्पृश्यता, तिरस्कार, शोषण, उत्पीडन एवं यातना,अलगाववाद आक्रोश विद्रोह की भावना से निषेध के आधार पर नये जनतांत्रिक समतावादी समाज की संरचना के निमित्त स्वतंत्रता समानता, न्याय एवं बंधूता के संवैधानिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में सृजनात्मक क्रांति चेतना के पथ पर सक्रियता से अग्रेसर है। वस्तुत: दलित साहित्य संवेदना से विचार की ओर की सृजनात्मक क्रांतिचेतना, का एक ऐसा साहित्य है जो मानव के लिए मानव की दासता पराधीनता से मुक्ति के द्वार पर दस्तक देकर मानव मात्र की मानव के रूप में मानव समाज में सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए सक्रिय संकल्पना है।"**[4] कवि सूरजपाल चौहान अपनी कविता - 'गरीबी-भेद के व्दारा समाज के विषमता को दूर करने का प्रयास करते है। तो 'गूँगा मत समझो' कविता के माध्यम से सचेत करते है कि मैं कुछ नहीं बोल रहा हूँ इसलिए मत समझों की मैं गुंगा हूं लेकिन किसी मजबूरी के कारण मुझे चूप रहने को मजबूर किया है। लेकिन समय आने पर मैं तुम्हे जबाब देनेवाला हूँ।

"मैंने जान- बुझकर साध ली है चुप्पी/ समय आने पर/ तोडूँगा जब मैं मौन/ रह जाओगे तुम ढगे से/ और भरभरा कर ढह जाओगे/ रेत की दीवार की तरह/ "[5] सूरपाल चौहान आशावादी तथा परिवर्तनवादी कवि है। शिक्षा संगठन और संघर्ष तत्व को उन्होंने स्विकार किया है। समाज में जो घटीत होता है उस पर व्यंग्य उन्होंने किया है तथा समाज में जातियता के नाम पर जो हो रहा है उन पर वे अपनी कविता के व्दारा प्रहार करते है- 'पत्थर' नाम की कविता में लिखते हैं- **"हाथ तुम्हारे है/ पत्थर उनका है/ ताकत तुम्हारी है/ दिमाग उनका है।"**[6] कवि अपने जीवन का यथार्थ कविता में व्यक्त करते हैं, 'मेरा गाँव' यह कविता दलित जीवन का यथार्थ का चित्र है, दलित समाज का गाँव के बाहर बसेरा अपना गॉव होने के बावजुद उन्हें गांव के लोग स्विकार करते नही गाँव में निम्नवर्ग के प्रति आस्था नहीं गाँव ने उन्हें कभी अपनाया नहीं गाँव में होकर भी अकेलापन उन्हें महसूस होता है, गंदगी झुग्गी झोपड़ी में रहना और सिर्फ मेहनत ही करणा यही जीवन है इसलिए कवि लिखते है- **"उनका खेत, उन्हीं का बैल/ और उन्हीं का है ट्यूबवैल / मेरे हिस्से मेहनत आई/ उनके हिस्से है आराम / मेरा गाँव, कैसा गाँव ? न कहीं ठौर, न कहीं ठॉव।"**[7] दलित समाज की वेदना दुःख तथा जीवन की सभी गतिविधियों को लेकर आज दलित साहित्य अपनी आवाज उठा रहा है। वह समाज के प्रति अपने विद्रोह को प्रकट करने के पक्ष में हैं। आज भी दलित बस्तीयों की अवस्था भयानक दिखाई देती है। इस में परिवर्तन अपेक्षित है हमें केवल सुधार शहरों के भीतर दिखाई देता लेकिन गाँव में आज भी पंरपरांगत जीवन तथा उच्च- निच अमीर-गरीब, जातिभेद, विरोध रूढी परंपरा का प्रभाव दिखाई देता है। प्रसिद्ध दलित लेखिका विमल थोरात के अनुसार **"दलित कविता, दलित जीवन के यतार्थ की कविता है, उसने दलित जीवन के हर क्षण, हर पीड़ा, हर एक वेदना और क्रांति गर्भ संवेदना को साकार किया है। दलित कवि के सामने भावावेश में बहने अनेक अवसर थे, क्योंकि उन्होंने जीवन बड़ी घिनौनी तस्वीर देखी है, परन्तु उसकी कविता जीवन वस्तुगत यथार्थ को मूलाधार मानती है।"**[8]

दलित साहित्य के प्रेरणास्त्रोत - आंबेडकरी दर्शन है । दरअसल डॉ.बाबासाहब आंबेडकरजीने दलितों में आत्मसम्मान जगाया, स्वालंबन की वृत्ति निर्माण की उन्होंने दलितो में उर्जा भरने का स्तुत्य कार्य किया। उसकी प्रेरणा से सदियों की चुप्पी टूटी वर्णवादी लोहा टूटा समाज के साचे में सिमटा जकडा था वह टूटा शोषित-पीडित दलित मन, दलित साहित्य के द्वारा अपने आक्रोश, पीड़ा, मुक्ति को व्यक्त करने लगे। दलित साहित्य कल्पना का साहित्य नहीं हैं किन्तु भोगे हुए यथार्थ आपबीती का साहित्य है। मानवीय पीड़ा उनका बिन्दु है। वह मानव मुक्ति की घोषना करता है। कवि लिखते है **"और में-/ इस देश का जीता जागता मानव / जिसे पुकारा जाता है/ सभ्य और सुसंस्कृत लोगो में अछूत / आये दिन । घुमाया जाता हूँ नंगा। "गाँव, शहर की गलियों में।**"9

जाति-उत्पीडन की पिडा हजारों सालों की गुलामी दलित समाज की वेदना को कवि ने कविता व्दारा अभिव्यक्त किया है। यही दलित जीवन की यथार्थ गाथा है। गरीबी के कारण दलित बच्चे स्कूल में जाने के बजाए घर मे ही खेलते हैं, थोडे बडे होने पर काम पर चले जाते हैं। पिता के बाद बेटा भी वही काम करता है, इस तरह से एक चक्र के समान इनका जीवन रहा है। इससे बाहर निकलता कठिन हो जाता है। सूरजपाल चौहान' 'फिर बात न करते' कविता मे लिखते हैं- **"काश! / तुम / किसी दलित के घर पैदा होते / विशेषकर दलितों में दलित कहे जाने वाले भंगी के घर / तुम्हें उठानी पड़ती / बजबजाती गन्दगी और / ढोना पड़ता / गु-मूत से भरा टोकरा / सिर पर रखकर/"**[10] सूरजपाल चौहान को अपने देश पर नाज है, यह मिट्टी हमारी है, देश की प्रगति हमारी प्रगति है हमारा यह फर्ज है हमें अपने देश के लिए कुछ कार्य करना है कुछ लोगों ने देश को लूटा है तथा अपने ही देश कमियों पर बात करते हैं लेकिन वे भूल गए है इसी मिट्टी से हम बड़े हो गए है हमें हमारे देश पर गर्व होना चाहिए इसलिए कवि लिखते है- **"देश का नागरिक / विदेश का नित करता गुणगान / हाँ, हाँ "बस यही है। मेरा हिन्दुस्तान / प्यारा हिन्दुस्तान"**[11] कवि को अपने आप पर नाज है अपने देश पर गर्व है, ऐसा भाव हम सभी को रखना चाहिए लेकिन कुछ लोगों की ओर संकेत किया है कि ऐसे लोग जो भ्रष्टाचारी है लूटमार करते हैं निकम्मे है वे लोग ही सही मायने में गद्दार है, यही धरती पर एक प्रकार से बोझ है।' **"बुद्धिजीवी/ ड्राईग-रूम में बैठकर/ बजाते ढपली / अलापते अपना-अपना राग|"**[12] कवि ऐसे लोगो को फटकारते हैं। दलित कविता की भाषा शिल्प संरचना परंपरागत कविता से भिन्न है। उसमें वह रस, आनंद नहीं है, जो परंपरागत कविता में है। लेकिन उसमें जीवन जगत की सच्चाई है। वह एक हृदय से निकल कर दूसरे हृदय को तुरन्त स्पर्श करती है। दलित कविता की संवेदना को बताने के लिए किसी की जरूरत नहीं पड़ती वह सिधा हृदय को स्पर्श करती है। सूरजपाल चौहान लिखते है, **"मैं भी लिखना सीख गया हूँ । गीत कहानी और कविता / इनके दु:ख और दर्द की बातें/ मैं भी भला कहाँ लिखता/ कैसे पाऊँ ! ज्ञानपीठ मै/ चिंता यही खटकती हैं। यह दलितों की बस्ती है।"**[13]समय के साथ मनुष्य स्वार्थी हो गया है, भूमंडलिकरण का बढता प्रभाव जनजीवन पर हो रहा था मूल्यों को पैरोतले रौंदा जा रहा था। ऐसे में कवि समाज का चित्र अपनी कविता में अभिव्यक्त करते है कल का हमारा देश संस्कारों से ओतप्रोत भरा था। अब यह सब नष्ट हो गया है और मनुष्य भौतिक सुख के पिछे दौर रहा है बदलते सांस्कृतिक परिवेश को कवि अभिव्यक्त करते हैं – **"मेरे भारत में अब परियों ने आना छोड़ दिया और माताओं ने भी लोरी गाना छोड़ दिया पिता को 'डैड' कहा है उनके जीते जी अपनी जननी को बना के 'ममी' छोड़ दिया।"**[14] वर्तमान समाज के भूमंडलीकरण, बाजारीकरण के संदर्भ में यह स्थिति बनी है।

'क्यों विश्वास करूं' यह कविता का शीर्षक अत्यंत यथार्थ तथा सार्थक है। यह शीर्षक अमानवीय उत्पीडन को समाप्त करने की अपनी विद्रोहात्मक भूमिका स्पष्ट करता है। दलित कविता अपने सामाजिक स्तर के माध्यम से दलितों के ऊपर किए हुए अत्याचारों को वाणी दे रहा है। हम जानते है कि हजारों सालों तक दलित समाज अपने सामाजिक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति से वंचित रहा इसका मूल कारण भारत के वर्ण एवं जाति व्यवस्था थी। आज भी वर्ण तथा जाति के आधार पर समाज के कुछ विशेष वर्ग के लोग तिरस्कृत एवं पिछडे रह गये हैं। उनका जीवन एक भयानक यथार्थ है। दलित कविता अपने समय और समाज की सच्चाई को प्रस्तुत करता है। अतः दलित कविता मनुष्य के सामाजिक अस्तित्व की धारणा, समता, स्वतंत्रता एवं विश्व बन्धुत्व की भावना को उजागर करती है। अब दलित कविता भारतीय साहित्य में नई और विशिष्ट साहित्य धारा है। "सर्वे भवन्तु सुखिन, बहुजन हिताय, अप्पो दिप भवः आदि दलित संस्कृति के उद्घोषित मूलमंत्र है। दलित विचार को और लेखको को संबोधित करते हुए डॉ बाबासाहेब आंबेडकजी के विचार उल्लेखनीय है हमारे देश में उपेक्षितों और दलितों की बहुत बड़ी दुनिया है। इसे भूलना नहीं चाहिए। उनके दू:खो को उनकी व्यथाओं को पहचानणा जरूरी है और अपने साहित्य के व्दारा उनके जीवन को उन्नत करने का प्रयत्न करना चाहिए इसी में सच्ची मानवता है।

निष्कर्ष : उपर्युक्त विश्लेषन एवं विवेचन के पश्चात हम कह सकते हैं सूरजपाल चौहान ने अपनी कविताओं में यथार्थ को धार्मिक राजनीतिक विसंगतियों के प्रति वे सचेत होकर अपने समय का दस्तावेज उन्होंने इस काव्यसंकलन में प्रस्तुत किया है। आज हम भावी चुनौतियों के साथ 21 सवी सदी में प्रवेश कर चुके है। विकास के शिखर पर आसिन भारत जहा विश्व का एक महाशक्ति बनने की ओर अग्रेसर है वहीं दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी, अशिक्षा, आतंकवाद प्रदूषन जैसी समस्या जनमाणस को प्रभावित कर रही है। उनमें एक बड़ी समस्या दलित उत्पीडन भी है। इन पर कवि की दृष्टि रही है इसे दूर करना समय की माँग है । दलित कविता समय की जरूरत है समाज का प्रतिबिंब उस में दिखाई देता है इन कविताओं में समय के अनुरूप ही संवेदना व्यक्त होती है। स्वतंत्रता, समता बंधुता और न्याय दलित समाज को मिलना चाहिए। सूरजपाल चौहान 'क्यो विश्वास करू' जैसी परिवर्तनवादी रचना के जागरण में भारतीय विषम व्यवस्था कुछ हद तक कम होकर सामाजिक चेतना जगाना आसान होगा।

संदर्भ :

1) बोधिसत्व बाबासाहेब टुडे - जुलाई 2021, पृष्ठ-12
2) वही, पृष्ठ 12
3) क्यों विश्वास करू - सूरजपाल चौहान,पृष्ठ-15
4) रमणिका गुप्ता, दलित चेतना साहित्य,पृष्ठ -75
5) क्यों विश्वास करू - सूरजपाल चौहान,पृष्ठ -19
6) वही,पृष्ठ 21
7) वही,पृष्ठ 22
8) रमणिका गुप्ता, दलित चेतना साहित्य, पृष्ठ -133
9) क्यों विश्वास करू - सूरजपाल चौहान, पृष्ठ–25
10) वही, पृष्ठ–27
11) वही, पृष्ठ 37
12) वही, पृष्ठ 37

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

'फाँस' उपन्यास में चित्रित कृषक जीवन

डॉ.परमेश्वर जिजाराव काकडे
सहा.प्राध्यापक हिंदी विभाग, जनता शिक्षण प्रसारक मंडल सं.,महिला कला महाविद्यालय,औरंगाबाद.
Email- kakdepj@gmail.com

भारत यह कृषी प्रधान देश है। गाँव में रहने वाले अधिकांश लोग अपनी आजीविका के लिए पूरी तरह से कृषि पर निर्भर हैं। कृषि भारत की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है – "कृषि भारतीय जीवन और सभ्यता का मुख्य स्रोत है और उनका विस्तार ग्रामीण जीवन में ही परिलक्षित होता है।"[1] किसान और उसके परिवार का दृष्टिकोण, मिट्टी से खून और पसीने की गंध, लहराते सुनहरे खेत, हाट-बाजार, मेला-पर्व आदि मन और मस्तिष्क को मोह लेते हैं। फलों और फूलों के साथ पके हुए खेतों आदि की गंध सामने आती है। ग्रामीण समाज में अधिकांश जीवन कृषि पर निर्भर है। ग्रामीण समाज सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पर निर्भर करता है। किसान जीवन के इन खट्टे-मीठे अनुभवों को लेखक ने अपने साहित्य में उकेरा है। 'फाँस' उपन्यास में संजीव ने किसान के जीवन के सुंदर रूप को चित्रित किया है- "इसमें अशिक्षा, गरीबी, आत्महत्या, मजबूरी, लाचारी, प्रलोभन भी, यथार्थ रूप में अंकन हुआ है।"[2] उपन्यास में उनके वास्तविक जीवन का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास के माध्यम से सूक्ष्म से सूक्ष्म किसान जीवन और सामाजिक जीवन को व्यक्त किया गया है।

किसान हर देश की रीढ़ होते हैं। इन्हीं पर देश की आर्थिक व्यवस्था टिकी हुई है। हम किसानों के कारण ही सांसारिक सुख और वैभव का आनंद लेते हैं। अन्य देशों की तुलना में भारत में किसान अधिक महत्वपूर्ण हैं। वर्तमान में भारतीय किसानों की स्थिति अत्यंत दयनीय है।

कृषि नीति –

यह नीति किसान को खेती छोड़ने पर मजबूर करने के लिए थी। भारत के किसानों में इस औद्योगिक दृष्टि का अभाव है। गोदान का होरी इसका प्रतीक है। जमाना बदल गया, हालात बदल गए। प्रेमचंद इस बात का संकेत दे रहे थे कि उभरते हुए पूंजीवाद के कारण किसानों के जीवन में बदलाव आने लगे। लेकिन 1991 के बाद, जब वैश्वीकरण की प्रक्रिया तेज हुई, कृषि जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन हुए। भारत के संसाधनों, विशेषकर जल-जंगल-भूमि और खनिज संपदा में रुचि रखने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने कृषि जीवन को बर्बाद कर दिया। 'फाँस' उपन्यास का शकून कहता है कि, "इस देश का किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज में ही जीता है, कर्ज में ही मर जाता है।"**3** भारत की कृषि नीति प्रभावित और नियंत्रित। अमेरिका जैसा देश, जिसने अपने देश में किसानों के लिए कई योजनाएं प्रदान की हैं, संजीव का उपन्यास 'फाँस' भारतीय कृषि नीति का उल्लंघन करता प्रतीत होता है।

खेती के लिए मशीनीकरण के प्रतिकूल प्रभाव -

भूमि की खुदाई या जुताई, बीज बोने से व्यवस्थित रूप से अनाज पैदा करने की प्रक्रिया को खेती कहा जाता है। वर्तमान बाजार के औद्योगीकरण के प्रभाव के कारण कृषि क्षेत्र के लगभग सभी कार्यों को कृषि उपकरणों के साथ करना संभव हो गया है, जैसे - जुताई, बुवाई, सिंचाई, कटाई, थ्रेसिंग और भंडारण आदि। कृषि उपकरणों में बहुत अधिक महत्वपूर्ण योगदान। कृषि मशीनरी उत्पादन और उत्पादकता दोनों को बढ़ाती है। मशीनीकरण से कम समय में अधिक कार्य कुशलता से किया जा सकता है। लेकिन यह किसानों और मजदूरों के लिए एक बड़ी समस्या बन गई है। क्योंकि निम्नवर्ग के लोग मेहनत-मजदूरी करके अपने परिवार का पालन-पोषण करते थे, उनकी आजीविका इसी पर निर्भर थी, लेकिन कृषि यंत्रों के आने से किसान और मजदूर बुरी तरह प्रभावित होने लगे हैं। पहले लोग दूसरों के खेतों में काम करके अपनी आजीविका कमाते थे जब उनके पास अपना खेत नहीं था लेकिन इन मशीनों ने उन्हें बेरोजगार बना दिया है। पहले हमारे देश की कृषि पशुओं पर निर्भर थी। लेकिन अब किसान खेती के नए तरीके अपना रहे हैं। पहले हमें निराई जैसे काम के लिए काफी मजदूरों को लगाना पड़ता था। जैसे-जैसे समय बदला, मशीनों ने श्रम और कृषि मशीन निर्माताओं की जगह ले ली, कई संस्थाओं ने खेती की मशीनें बनाना शुरू कर दिया, जिससे किसानों का काम आसान हो गया। एक तरफ तो काम आसान हुआ, लेकिन दूसरी तरफ बेरोजगारी बढ़ी। आज मजदूर वर्ग का किसान अपने बच्चों को लिखना सिखाने में असमर्थ होता जा रहा है। क्योंकि उन्हें कहीं काम पर नहीं बुलाया जा रहा है. इससे उन्हें आमदनी नहीं हो पा रही है, वे अब घर बैठे हैं। कृषि यंत्रों के आगमन से किसान, दलित, मजदूर सभी प्रभावित हुए। 'फाँस' उपन्यास में लेखक ने अंकित किया है कि- "1970 में भी 2 रुपए पुरुष, 1 रुपए स्त्री, और आज मर्द को 200 से 250, वही औरत को भी ... तब स्कूल टीचर को मिलते थे 150 रुपये प्रतिमाह और आज मिलते हैं सोलह हजार से चालीस हजार, पेंशन अलग से सरकारी कर्मचारियों के लिए फिफ्त और सिक्स्थ पे कमिशन और किसानों के लिए कुछ नहीं!"[4]

जैसे-जैसे तकनीक विकसित हुई, किसानों द्वारा खेती में उपयोग किए जाने वाले उपकरण अधिक महंगे हो गए। उर्वरक, बीज, कीटनाशक, महंगी दवाएं, आधुनिक तकनीक के उपकरणों ने किसानों को खेती से दूर कर दिया है, छोटे किसान आधुनिक तकनीक से खेती नहीं कर पा रहे हैं और इसका कारण यह है कि वे पिछड़ रहे हैं, सामाजिक-आर्थिक स्तर पर 'उपन्यास की पड़ताल यह गहराई से इस तथ्य का उल्लेख करते हुए कि भारत का किसान उपेक्षित और तिरस्कृत हो गया है। संजीव अपनी बात बेहद सटीक शब्दों में बताते हुए लिखते हैं- "जल हमारी प्राथमिक जरूरत है। सिंचाई के नाम पर हमें पानी नहीं घोटाले मिले हैं।"[5] आज इतने सारे किसान कड़ी मेहनत कर रहे हैं या स्थिति से जूझ रहे हैं, इसका कारण यह है कि उनकी यह लड़ाई एक तरह से कृषि मशीनरी के आगमन के कारण है।

बाजारवाद में वृद्धि और कीमतों में गिरावट का प्रभाव -

उपनिवेशवाद से पहले बाजार की प्रकृति बहुत सरल हुआ करती थी। जिसका मुख्य उद्देश्य व्यक्तियों की समान आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। जिसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व और बाजार के बीच संतुलन देखा गया। लेकिन औद्योगीकरण ने व्यक्ति के व्यक्तित्व को छीन कर एक वस्तु में बदल दिया है।

जब भी सत्ता के लिए चुनौती होती है। तो शक्ति, अपनी सभी चालों के तहत, या तो उसे उत्पाद को बहुत कम कीमत पर बेचें या इसे घर पर सड़ने दें। फसल तैयार करने के लिए साहूकारों और बैंकों से लिए गए कर्ज को चुकाने के लिए उसे एक चौथाई कीमत पर बेचने को मजबूर होना पड़ता है। किसान हमेशा कर्ज में रहता है, 'साहूकारों और बैंक अधिकारियों का लगातार उत्पीड़न उसकी आत्मा को शाप देता है, उसके अस्तित्व को चुनौती देता है, उन स्थितियों में उसे आत्महत्या के अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं दिखता है। कर्ज के इस भयानक आतंक ने भारतीय किसानों का जीना मुश्किल कर दिया है। आजादी से पहले जमींदार और साहूकार दोनों लूटते थे, लेकिन आजादी के बाद गांव का बड़ा जमींदार साहूकार बन गया है और अपने ही किसानों को लूट रहा है।

इस प्रकार इस उपन्यास में संजीव ने बढ़ते बाजार, पूंजीवाद के कारण किसानों की फसल की कीमतों में गिरावट का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत किया है। आज भी भारतीय किसान भगवान भोरेसे पर खेती करते हैं। बीज खरीदता है और खेती करता है, और अंत में, जब वह अपनी फसल बेचने जाता है, तो उसे बाजार बढ़ने के कारण कम कीमत दी जाती है।

वैश्वीकरण का किसान के जीवन पर प्रभाव –

वैश्वीकरण का अर्थ है जब प्रत्येक देश अपनी सीमाओं को छोड़कर एक दूसरे का समर्थन करने के लिए एक छत के नीचे आता है तो इसे वैश्वीकरण कहा जाता है। वैश्वीकरण का कृषि पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। भारत में 90 प्रतिशत किसान छोटे और मध्यम वर्ग के हैं। सीमित पूंजी और किसानों की आय कम होने के कारण वे कृषि मशीनरी का पूरा उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। हरित क्रांति के परिणामस्वरूप जिन किसानों के पास पूंजी थी उन्हें सबसे अधिक लाभ हुआ लेकिन छोटे किसानों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। वैश्वीकरण का कृषि उत्पादकता पर भी बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जैविक उर्वरकों की उच्च लागत, कीटनाशकों की उच्च लागत, कृषि अनुसंधान में बाधा, जैव विविधता में बाधा आदि के कारण कृषि और कृषि प्रणाली की उत्पादकता प्रभावित हुई थी। विदेशी कंपनियों की आकांक्षाएं कभी पूरी नहीं होतीं। लक्ष्य है कि किसान को हर बार नए बीज खरीदने के लिए बाजार में आने के लिए मजबूर किया जाए। इसकी गम्भीरता को उजागर करता है, गंभीर चिंताओं और सवालों को सामने लाता है। पूंजी की सर्वशक्तिमानता ने जीवन के विभिन्न पहलुओं को व्यवसाय में बदल दिया है। भूमंडलीकृत व्यवस्था में पोषण विकास के तर्कहीन मॉडल ने पूरे देश के किसानों को दलदल में फंसा दिया है। संजीव न केवल विदर्भ के किसानों की समस्या को उजागर करते हैं बल्कि यह भी दिखाने की कोशिश करते हैं कि उस समस्या से पूरा देश, किसान संघर्ष कर रहा है।

संजीव का यह उपन्यास वास्तव में एक विस्तृत जांच और गहन खोज है जो किसान के जीवन की हर परत को खोलने में सक्षम है। एक साधारण किसान परिवार में न केवल मानवीय संबंध बल्कि उस परिवार के पशु-पक्षी भी घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं। जानवर भी अपने मालिक की हर बात से वाकिफ होता है। जैसे- "आँखों से अश्रु बह रहे थे। वह परिवार का सदस्य उसकी बेबसी पर आंसू बहाएगा। गलती के लिए माफ़ी मांगना - मैं हमेशा के लिए अलविदा कह रहा था, मुझे माफ़ करना, मुझे जो करना था वो किया, अभी नहीं ... "उपन्यासकार ने खामोश भाषण के दर्द को भी जीवंत किया है। उद्योगों का आधार भी भारतीय है कृषि। उद्योगों के लिए कच्चा माल तैयार करने से लेकर शहरों में उर्वरक भेजने तक, सब कुछ कृषि पर निर्भर है। वह खेती नहीं करना चाहता। वह विकल्प की कमी की स्थिति में ही यह रास्ता चुनता है। तभी लगभग 80 लाख किसानों ने खेती छोड़ दी है इसलिए दूर और कोई विकल्प नहीं है। कई किसान ऐसे हैं जिनके लिए खेती सिर्फ आजीविका का साधन नहीं बल्कि जीवन शैली है। राणा प्रताप की जिद को आदर्श मानकर शिबू और उसके परिवार को बैंक कर्ज चुकाने की जद्दोजहद में परिवार में कोई उत्सव नहीं, खाने का कोई अंदाज नहीं, सिर्फ कर्ज चुकाने की जिद है। कर्ज एक फंदा बन गया है। कर्ज ने मन की इच्छाओं, आकांक्षाओं, सपनों को चुरा लिया है। अपने सीमित साधनों में लड़ते हुए, कुचलते हुए, व्यवस्था से लोहा लेते हुए, शिबू अपनी पत्नी शकुन और दो बेटियों को छोड़ देता है और उसके गले में फंदा डाल देता है। यहाँ उमाशंकर चौधरी की कविता एक उदाहरण के रूप में दी गई है। यह देखा गया है कि इस उपन्यास में वैश्वीकरण का प्रभाव विभिन्न स्थानों पर महसूस किया गया है। इस उपन्यास में वर्णित अधिकांश किसान छोटे किसान हैं। उनके पास न तो खेती करने के लिए पूंजी है और न ही वे व्यापार के लिए खेती कर रहे हैं। इन किसानों का मकसद किसी भी तरह से खेती से अपना और अपने परिवार का पालन-पोषण करना है। लेकिन देश में इस वैश्वीकरण के प्रभाव से इन छोटे किसानों की स्थिति दयनीय होती जा रही है।

किसान आत्महत्या -

'फाँस' 21वीं सदी के महाराष्ट्र के आत्महत्या करने वाले किसानों की दुखद कहानी है। संजीव ने इसे एक ओर समस्याग्रस्त के रूप में चित्रित किया है, दूसरी ओर उर्वरक, बीज, पानी, बिजली की कमी के कारण भारत में कई किसान आत्महत्या के शिकार हो रहे हैं। सरकार भी इन किसानों की अनदेखी कर रही है। किसानों को सही दाम नहीं मिल पाने के कारण किसान के जीवन में तरह-तरह की परेशानियां आ रही हैं। जिससे किसान आत्महत्या कर रहा है। भारतीय किसानों के गले में फांसी का फंदा लटक रहा है, भारतीय किसान जहर खाकर मौत को गले लगा रहे हैं, भारतीय किसान आग में जलकर दर्दनाक मौत पा रहे हैं। कुल मिलाकर भारतीय किसानों को मौत के कगार पर धकेला जा रहा है। संजीव ने उपन्यास 'फाँस' में इसके कारणों को जानने की कोशिश की है। उन्होंने उपन्यास में सरकार, प्रशासन, नेताओं, नौकरों, बैंक कर्मचारियों और किसानों पर भी कई सवाल उठाए हैं। हमें प्रकृति से समझौता करना होगा, यह हमारे हिसाब से काम नहीं करेगा। इसलिए उनकी अनुकूल खेती से जुड़ा निर्णय भारतीय किसानों, प्रशासन और सरकार को लेने होते हैं, लेकिन हमारे देश में इस पर कभी गंभीरता से विचार नहीं किया गया। किसी भी कार्य की सफलता के लिए उचित योजना और नीतियों की आवश्यकता होती है। हमारे चारों ओर ऐसे कई उदाहरण हैं जो कृषि, उद्योग, व्यवसाय, शिक्षा, खेल और कई अन्य क्षेत्रों में निर्णयों, योजनाओं और नीतियों के साथ आसमान छू रहे हैं। किसान को पारंपरिक धरा और सामान्य ज्ञान के दृष्टिकोण को गंभीरता से लेना होगा। तभी खेती प्रगति के पथ पर आएगी और किसान को आत्महत्या करने से रोका जा सकेगा। संजीव ने 'फाँस' में नीतिगत गलतियों पर सीधे उंगली उठाई है और इस उपन्यास में यह विवरण दिया है कि कैसे ये गलतियां किसानों को बर्बाद कर रही हैं। किसानों के प्रति संजीव कहते हैं कि- "बल्कि मरना एक मुक्ति है

और जीना एक बंधन। आये दिन तो आत्महत्या की खबरे सुनते हैं। जिधर देखो उधर, कोई पेड की डाल पर लटका पडा है, कोई कुएँ में गिर पडा है तो कोई कीटनाशक खाकर मुंह से झाग फेंक रहा है।"[6]

अंत में, हम देख सकते हैं कि उपन्यास 'फाँस' का किसान, चाहे वह शिबू हो या सुनील या मोहन बाघमारे, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक प्रताड़नाओं का सामना कर रहा है, बैंक कर्ज के बोझ तले दब गया है। शिबू अपनी पत्नी के गहने बेचता है और बीज लाता है, और अपने खेतों में बोता है, वह भी नपुंसक हो जाता है। इस तरह किसान के जीवन की हकीकत सामने आती है। कृषि नीति भी किसानों के लिए अधिक सही साबित नहीं होती है सरकार केवल नीतियां बनाती है और उन्हें फाइलों तक ही सीमित रखती है। किसानों तक नहीं पहुंच पा रहा है, यहां तक कि इन नीतियों को भी किसान को ही वहन करना पड़ता है। खेती के लिए मशीनीकरण के आने से किसान का काम तो हुआ है लेकिन दूसरी तरफ किसान बेरोजगार हो गए हैं, मशीनों से किसानों की मजदूरी छीन ली गई है, किसान को कभी भी कीमत तय करने को नहीं मिलता उसकी वस्तु। वह कड़ी मेहनत करता है, अनाज उगाता है, लेकिन जब वह बाजार में बेचने जाता है, तो साहूकार, साहूकार, दलाल, ठेकेदार, नेता होते हैं, अपना काम करते हैं और कीमत खुद तय करते हैं। इससे किसान भी आत्महत्या कर लेता है। वैश्वीकरण के कारण विदेशी बीज, विदेशी खाद, विदेशी गाय थोपी जा रही हैं। देशी चीजें गायब हो रही हैं। किसानों की आत्महत्या थम नहीं रही है।

सन्दर्भ:

1. स्वांतत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, ज्ञानचंद गुप्त, पृ. 23
2. संजीव, फाँस, पृ. 63
3. संजीव, फाँस, पृ. 15
4. संजीव, फाँस, पृ. 159
5. संजीव, फाँस, पृ. 250
6. संजीव, फाँस, पृ. 43

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण और सबसे कठिन काम कहानी

प्रा. डॉ. पवन नागनाथ एमेकर
कै. बापूसाहेब साहेब पाटील एकंबेकर ग्रामीण, महाविद्यालय हनेगांव ता. देगलूर जि. नांदेड महाराष्ट्र

आज के इस जागतिकीकरण के युग में इंसान की इंसानियत में किस प्रकार से परिवर्तन होते जा रहे हैं,इसे हम वर्तमान जीवन में देख सकते हैं । जिस प्रकार से युग परिवर्तन हो रहा है उस प्रकार से मनुष्य के व्यवहार, विचार, वर्तन में परिवर्तन होता नजर आ रहा है। हिंदी साहित्य में भी अन्य भाषा के साहित्य की भांति जागतिकीकरण को लेकर बहुत कुछ लिखा हुआ नजर आता है। मधु कांकरिया एक ऐसी लेखिका है जिन्होंने अपने लेखन के माध्यम से आधुनिकता की सोच को अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

मधु कांकरिया ने अपनी कहानी 'सबसे कठिन काम' के माध्यम से जागतिकरण के जीवन का चित्रण किया है। प्रस्तुत कथा के माध्यमसे लेखिका ने जागतिकीकरण के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं । आलोच्य कथा के नायक डॉ.मधुसूदन के माध्यम से लेखिकाने आधुनिक जीवन शैली की विचारधारा को प्रस्तुत किया है । कहानी की शुरुआत में डॉ. मधुसूदन को एक समाज सेवक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। लोगों का मुफ्त में इलाज करना,मुफ्त में ऑपरेशन कैंप लेना,अपने परिवार से भी अधिक जनसेवा को महत्व देने वाले यह डॉक्टर है।

डॉ. मधुसूदन के समाज सेवा भाव को प्रस्तुत करते हुए लेखिका लिखती है, " कहां निशुल्क दवाइयों और मुफ्त ऑपरेशन की व्यवस्था की। गंधाती, मच्छरों -मक्खियों से बचबजाती गंदगी और कचरे के ढेर पर आबाद बस्तियों में हेल्थ और हाइजिन से संबंधित कई डॉक्यूमेंट्री दिखाई ।"[1]गरिब लोगों की सेवा में ही अपना सुख मानने वाले डॉ.मधुसूदन हर वक्त जनसेवा में लगे रहते थे। दिन हो या रात डॉक्टर साहब लोगों का इलाज करने से नहीं चूकते थे।

आज के युग में भी कुछ ऐसे लोग हैं जो डॉ.मधुसूदन की तरह ही जनसेवा की कामना करते हैं लेकिन इनकी मात्रा अत्यंत कम है । आज ऐसे डॉक्टर अधिक है जो जनसेवा से अधिक पैसे के पीछे पड़े नजर आते हैं। कई बार हमें वास्तव में इसके उदाहरण देखने और सुनने को भी मिलते हैं। डॉक्टर मरीजों के लिए भगवान है लेकिन इस बात को कुछ लोगों की गलत करतूतों ने झूठ साबित कर दिया है। पैसों के लिए गलत काम करने वाले डॉक्टरों ने आज डॉक्टर के पवित्र पेशे को कलंक सा लगाया है।

कहानी के डॉक्टर को लेखिकाने समाज सेवक के रूप में चित्रित किया है। इसका अत्यंत मर्म भरा उदाहरण भी लेखिकाने डॉक्टर की सुहागरात की रात से दिया है, " मधुयामिनी में मधुमति की भूमिका में आए ही थे कि कर्कश फोन घनघना उठा। दुल्हन ने जैसे ही सुना ' आ रहा हूं उसकी गालों की सुर्ख लालिमा कालिमा में बदल गई । सतरंगी सपनों की उड़ान शुरू हुई ही थी,मादक कामनाओं ने पूरी तरह अंगड़ाई ली भी नहीं थी, अधमुदी आंखें पूरी तरह मुंदी भी न थी कि यह जानलेवा जुदाई! उधाम आवेग से भरी और अतृप्त आत्मा चित्कार कर उठी- आज की रात मत जाओ"[2]

सुहागरात की रात में अपनी पत्नी को छोड़कर मरीज का इलाज करने वाला यह डॉक्टर महान ही होगा ना! इस दुनिया में ऐसा कोई भी डॉक्टर आमतौर पर हमें देखने को नहीं मिलेगा जो सुहागरात की रात में अपनी पत्नी को छोड़ मरीज का इलाज करने जाएगा। इस अच्छे बरताव के कारण वह गली मुहल्ले में सबके आदर्श हो गये । दिन -रात लोगों की सेवा करने वाले इस डॉक्टर ने अपने पिता बनने की खुशियों को भी उतनी अच्छी तरह से नहीं मनाई जितनी उसे मनानी चाहिए थी । हर जगह अब डॉक्टर का सम्मान होने लगा इस बात का वर्णन करते हुए लेखिका लिखती है खूब भालो डॉक्टर मोधुदा "[3]

डॉक्टर की इस समाज सेवा के कारण लोग डॉ. मधुसूदन को भगवान मानने लगे । डॉक्टर को डाइयग्नोस्टिक सेंटर वाले डॉ. मधुसूदन को भगवान मानते थे क्योंकि किसी भी टेस्ट के लिए न तो उन्होंने कभी कमीशन मांगे और न ही कभी उन्होंने रिपोर्ट को बदलने का दुराग्रह ही किया । इस वर्णन के माध्यम से लेखिकाने वर्तमान बाजारु व्यवस्था का पर्दाफाश किया है । प्रस्तुत कहानी के शुरुवात में लेखिकाने एक आदर्श विचारवादी डॉक्टर के जीवन का चित्रण किया है । अपने घर परिवार की खुशी को त्याग कर समाज सेवा करने वाला डॉक्टर ऐसा रूप लेखिकाने प्रस्तुत कहानी के शुरुवात में प्रस्तुत किया है।

अपनी व्यस्तता को दिखलाते हुए डॉक्टर अपनी पत्नी पर रौब दिखाते हैं तब पत्नी उसका उत्तर किस प्रकार से देती है, इसका वर्णन लेखिकाने इस प्रकार से किया है," लेकिन जब देखते कि घरवालों को न उनमें दिलचस्पी रह गई थी और न ही उनके रोगियों में तो कभी वे गांव में फ्री मेडिकल कैंप लगाने निकल पड़ते तो कभी पत्नी और बेटे को वही जुमला पकड़ा देते,' बहुत कठिन है डॉक्टर बनना' वे इतना डूब कर बोलते इसे कि उनका अंग-अंग लय-ताल में होता। पत्नी कूढ जाती और मुंह फुलाकर नहले पर दहला जड़ देती, उससे भी कठिन है अच्छा पति बनना।"[4]

डॉक्टर अभीतक तो लोगों की निस्वार्थ सेवा करते थे लेकिन अचानक एक ऐसा आंदोलन आया जिसमें देश सेवा का भूत डॉक्टर मधुसूदन के सर चढ गया । डॉक्टर ने विधानसभा का चुनाव लड़ने का तय किया। यह बात टीएमसी एवं सीपीएम दोनों मुख्य दलों को पता चली दोनों ने डॉक्टर को अपनी पार्टी से चुनाव लड़ने का ऑफर दिया । लेकिन डॉक्टर ने इन प्रस्तावों को ठूकराकर अपक्ष चुनाव लड़ने की घोषणा की । डॉ. मधुसूदन चुनाव में तो खड़े हुए लेकिन प्रचार की ओर उतना ध्यान नहीं देकर मरिजों के इलाज पर, उनकी सेवा पर अधिक जोर दे रहे थे । डॉक्टर को अपने 30 साल की सेवा पर अधिक भरोसा था। वह प्रचार को महत्व नहीं दे रहे थे। जनसेवा पर ही जोर दे रहे थे।

डॉक्टर के मित्रों एवं शुभचिंतकों ने ही उनका प्रचार किया मित्र कहते, "आज कल बिना प्रचार, मीडिया की ठकुरसुहाती और विज्ञापन के कुछ नहीं होता। बिना मांगे तो मां भी रोटी नहीं देती तो लोग क्यों देंगे वोट?"[5] डॉक्टर के मित्रों की इन बातों से यह स्पष्ट होता है कि आज सेवाभाव की वृति से ही केवल चुनाव नहीं जीते जा सकते हैं इसके ढेर सारे फंडे भी आज हम वर्तमान समय में देख रहे हैं । लेकिन डॉक्टर को अपनी 30 साल की सेवा पर भरोसा था । चुनाव के दिन भी डॉक्टर मरीजों के इलाज में लगे रहे और इनके दो प्रतिस्पर्धी जो थे वह कुख्यात गुंडे थे जो चुनाव में डॉक्टर के

आगे चले गये। डॉक्टर को जब पता चलता है कि उनको केवल 55 वोट मिले हैं तो वह अत्यंत निराश हो जाते हैं। अपने घर पर टूट कर, हारकर बैठे डॉक्टर 55 घंटे बाद घर से बाहर निकल कर देखते हैं कि सबकुछ पहले जैसा ही दिखाई देता है लेकिन डॉक्टर ही केवल आज ऐसे व्यक्ति है जो अपना सब कुछ हार कर बैठे हो ऐसा माहौल यहां पर प्रस्तुत किया गया है।

डॉक्टर अब बदल चुके थे उन्होंने फ्री में इलाज करना बंद कर दिया था। फीस बढ़ा दी थी। नाइट सेवा बंद, अब वह अपने परिवार का खयाल करने लगे। डॉक्टर के मन में यह खयाल आता," पचपन वोट! क्यों किया ऐसा?....काश नहीं लड़ा होता उन्होंने यह चुनाव!पर नहीं लड़ते तो पता कैसे चलता लोगों का यह रंग?क्या ऐब था उनमें जो मिला उन्हें यह फरेब किस गलतफहमी में धंसे हुए थे वे कि लोग उन्हें फरिश्ता मानते हैं। सारे छिलके उतर गए! उफ हारे तो भी किससे? एक गुंडे से! और कैसी शर्मनाक हार!"[6] डॉक्टर को यह हार बहुत गहरी चोट दे चुकी थी जिसे वह भूलना चाहते हैं पर वह भूल नहीं पाते हैं।

डॉ.मधुसूदन आप पूरी तरह से बदल चुके हैं अब वह सेवाभाव भूल चुके हैं। एक दिन जब लेखिका के पड़ोस में एक बच्ची डायरिया से बीमार थी और लेखिका डॉक्टर को लेने उनके चेंबर में जाती है। लाख कोशिश करने पर भी डॉक्टर लेखिका के साथ चलने से मना कर देते हैं। अपनी व्यस्तता को जताते हुए डॉक्टर कहते हैं, "उफ बहुत कठिन है डॉक्टर बनना!"[7] डॉक्टर के इन शब्दों को सुनकर लेखिका अपने मन में सोचने लगती है,"और मैं सोच रही थी कितना कठिन है इंसान बनना!"[8]

लेखिका के इन शब्दों के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि हर पल हम इंसान क्यों नही बने रह सकते है। परिस्थिति के अनुरूप हममे किस प्रकार परिवर्तन होता रहता है। लोगों की निस्वार्थ सेवा करने वाले डॉ. मधुसूदन अपनी चुनावी हार के कारण अपने अंदर के इंसानियत को कैसे खो देते हैं? अपनी पहली सुहागरात की रात एवं अपने परिवार के सुख की चिंता न करने वाले डॉक्टर साहब अपनी करारी हार के बाद जनसेवा का चोला उतार फेंक आज के 90% डॉक्टरी विचारधारा में शामिल हो जाते हैं। ऐसे विचार जो आज के युग में अधिक मात्रा में देखने को मिल रहे हैं। लेकिन वास्तव यह है कि इस पल भर की जिंदगी ने हमें इंसान बनकर रहने से ही अधिक सुख मिलेगा।

संदर्भ :

1. साहित्य सौरभ- डॉ. परिहार सुजीत -पृ. सं -115
2. वही -पृ. सं -116
3. पृ. सं -117
4. पृ. सं -117
5. पृ. सं -118
6. पृ. सं -119-20
7. पृ. सं -120
8. पृ. सं -120

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

'अकाल में उत्सव' उपन्यास में किसान जीवन की व्यथा

प्राजक्ता शिवाजी कुरळे,
शोधछात्रा, हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

भारत एक कृषि-प्रधान देश है और यहाँ की लगभग 70 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती हैं। जो अपना जीवनयापन खेती-किसानी कार्यों पर करती हैं। हिंदी उपन्यासकारों ने विभिन्न विषयों को लेकर विभिन्न प्रकार के उपन्यासों की रचना की हैं। हिंदी उपन्यासकारों ने सामाजिक और आँचलिक उपन्यासों के वर्ण्य विषय के रूप में किसान जीवन को प्राथमिकता दी हैं। जिसमें साहित्यकारों ने किसान जीवन के विभिन्न अंग या परिस्थितियों के यथार्थ को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। किसान जीवन का सबसे पहला चित्रण शिवपूजन सहाय के 'देहाती दुनिया' इस उपन्यास में हुआ है। उसके बाद निराला के 'बिल्लेसुर बकरीहा' में भी किसान जीवन का चित्रण दिखाई देता है। फिर आगे चलकर मुंशी प्रेमचंद जी ने इस परंपरा को बरकरार रखा। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में "भारतीय समाज का पूरा परिवेश अपनी कुरूपता, असमानता, अस्पृश्यता, शोषण की विभिन्न विभिषिकाएँ, कमजोर वर्ग और स्त्रियों का दमन आदि के साथ यथातथ्य चित्रण किया है।"[1] जो वास्तव, यथातथ्य चित्रण 'गोदान' और 'प्रेमाश्रम' इन दो उपन्यासों में दिखाई देता है। आज के किसान की इस वास्तविकता को देखने के पश्चात् कहना उचित होगा कि, "जो किसान अपने खेत में अनाज पैदा कर दुनिया की भूख मिटाता है, आज वहीं भूखा क्यों है?" "किसान सर्वदाता है, उसे ईश्वर की उपाधि दे, तो कोई अन्याय नहीं होगा। हमारे मन में बराबर प्रश्न घूमता रहता है कि भारतीय समाज की आधी आबादी गाँव में बसती है, और उनका आय स्त्रोत का आधार कृषि ही होता है। फिर भी हमारे देश के किसान की क्या वजह हो सकती है कि वे आत्महत्या कर रहे हैं।"[2]

गांधीजी किसानों की शक्ति का परिचय कराते हुए कहते है कि "हमें केवल किसान ही मुक्ति दिला सकते हैं। वकीलों, डॉक्टरों या धनी जमींदारों के बूते की बात नहीं।"[3] आज के इस आधुनिक क्रांति के युग में भी किसानों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इस कारण से वह आगे नहीं बढ़ रहा है। उसके परिवारवालों को भी कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। "भारतीय किसानों की सबसे ज्वलंत समस्या ऋण के बोध से मुक्ति होने की है।"[4] इन समस्याओं से छुटकारा न मिलने के कारण किसान अपना आपा खो बैठता है और नए रास्ते को अपनाता है-"यह बड़े ही दुःख की बात है कि जिस किटकनाशक दवा का उपयोग वह अपनी फसल को जंतुओं से बचाने के लिए करता है। उसी किटकनाशक दवा का वह स्वयं सेवन करके अपनी जीवनलीला ही समाप्त कर देता है।"[5] पर उसके जाने के बाद क्या उसका परिवार शांति से रह सकता है? क्या उसके बच्चों का भविष्य बन सकता है? क्या उसकी पत्नी को समाज से सहयोग मिल सकता है? आदि कई सवाल उपस्थित रहते हैं; पर उनके जवाब नहीं मिलते। आखिर किसान की मजबूरी इतनी क्यों बढ़ी है कि वो आत्महत्या का रास्ता अपनाता है। क्या है इसकी वजह? क्या हमारी शासन-व्यवस्था और राजनीति में फैला भ्रष्टाचार? इस बात को लेकर प्रेमचंद सवाल करते हैं-"ब्रिटिश शासनकाल में इतने अत्याचार होने के बावजूद किसान आत्महत्याएँ नहीं करता था। यह बड़े दुःख की बात है कि सबका अन्नदाता आज आजादी मिलने के बावजूद, उत्पादन अधिक होने के बावजूद, टेक्नॉलॉजी का विकास होने के बावजूद, शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने के बावजूद भी निःसहाय है, अकेला है, उसकी दशा का वर्णन करनेवाला प्रेमचंद की सी लेखनी कहाँ है?"[6] किसान की इन्हीं समस्याओं का वास्तव चित्रण लेखक पंकज सुबीर ने अपने 'अकाल में उत्सव' इस उपन्यास में चित्रित किया है। प्रस्तुत उपन्यास में प्रमुख किसान के रूप में रामप्रसाद दिखाई देता है जो अपनी पुरी जिंदगी कर्जे के बोझ तले दबा रहता है। कर्ज के कारण जिसकी पत्नी 'लंका की पार्वती' बनकर रहती है।

प्रस्तुत उपन्यास में पंकज सुबीर ने ग्रामीण परिवेश का चित्रण किया है। जहाँ किसान हमारी भ्रष्ट शासन-व्यवस्था, गरीबी, साहुकारी, सामंतशाही और समाजव्यवस्था के शिकंजे में फँसा है। ये जो व्यवस्था है वो किसान को न ही चैन से जीने देती है, न ही मरने देती है। "रामप्रसाद का पिता जब मरा, तो जमीन के साथ बैंक का, सोसायटी का, सूदखारों का सूद बड़े विचित्र तरीके से चलता था।"[7] अगर कोई किसान 1000 रुपए का कर्जा लेता है तो वो अगले महीने 2000 रुपए हो जाता है। अगर 10,000 रुपए छह महीने के ब्याज पर लेता है तो किसान के हाथ में सिर्फ 4000 रुपए आते हैं।

रामप्रसाद अपनी पत्नी और तीन बच्चों के साथ रहता है। छोटे भाई ने शहर में परिवार बसाया है। पैसों की कमी और भूखमरी के कारण रामप्रसाद बच्चों को सरकारी स्कूल में डालता है जहाँ दोपहर के भोजन के सिवा कुछ नहीं मिलता। बच्चे स्कूल तो जाते ही है पर साथ भोजन को हजम करने का काम भी करते हैं। "पचाते इसलिए कि यह बच्चे मच्छर, मक्खी, कीड़े-मकौड़े जैसी चीजें भी उस भोजन के साथ पचा लेते थे।"[8] रामप्रसाद की पत्नी शादी के वक्त जेवरों से लदी थी। जिसके पास आज नाम के लिए भी जेवर नहीं है। पिता मरते समय रामप्रसाद के कंधे पर कर्ज का बोझ तो रखते ही हैं, साथ में उसे तीन बहनों का पिता भी बनना पड़ता है। जो बेटी के हर सुख-दुःख में सहभाग लें। कई महीनों से थका बिजली का बिल भरने के लिए भी रामप्रसाद के पास पैसे नहीं तो वो पत्नी के तोड़े बेचता है, जो अंतिम चीज कमला के पास थी।

बिजली का बिल भकर बचे पैसे रामप्रसाद ने पत्नी और बच्चों के कपड़ों के लिए रखे थे जिन्हें बहन की सास की बीमारी पर खर्च करने पड़ते हैं। जिनकी मृत्यु पर गिरवी रखी तोड़ी रामप्रसाद को मजबूरी में बेचनी पड़ती है। ये समस्या खत्म होती है कि नहीं, रामप्रसाद को बैंक का नोटीस आता है। जिसकी पूछताछ के लिए वो तहसील ऑफिस में जाता है पर कोई नहीं मिलता। सभी ऑफिसर नगर उत्सव की बैठक में कलेक्टर ऑफिस गए थे। जिन्हें काम से ज्यादा नगर उत्सव की चिंता थी। आगे रामप्रसाद बैंक में आवेदन दे आता है। यहाँ तक की रामप्रसाद कलेक्टर के पैर पकड़ता है। बेचारा सुबह से भूखा घूम रहा था। कलेक्टर की कमेंट थी-"देखा...? मैं नहीं कह रह था अभी कि हिंदुस्तान के किसान से लालची कोई नहीं होता। भरपेट खाया भी और उसके बाद बाँध के भी ले गया।"[9] जो किसान पूरे दुनियाभर के खाने का इंतजाम करता है क्या वो कभी अच्छा भोजन नहीं खा सकता? क्या जरूरी है उसके बच्चे हमेशा सूखी रोटी ही खाए? ऊपर से पंडितों का हिस्सा अलग से। जो भगवान के नाम पर, मंदिर के जीर्णोद्धार के नाम पर

किसानों से निकालते हैं। "एक एकड़ पर एक बोरा गेहूँ हर किसान को देना है मंदिर के जीर्णोद्धार के लिए। रामप्रसाद जैसे किसानों को भी देना है, जो पैसों की तंगी के चलते अपने घरों का ही जीणोद्धार नहीं करवा पा रहे हैं।"[10] इस अवस्था में छोटे किसानों को भूक से ज्यादा, परिवार से ज्यादा मंदिर के जीर्णोद्धार के बारे में सोचना पड़ता है। जिस मंदिर को जीर्णोद्धार की जरूरत ही नहीं होती।

रामप्रसाद आनेवाली फसल पर आशा लगाए था। पर शायद भगवान को मंजूर न था। जैसे कि रामप्रसाद की मौत ही दरवाजे के बाहर खड़ी थी। जोरों की हवा के साथ बारिश का आगमन। जिसमें सफेद ओलों ने भयावहता डाल दी थी। रामप्रसाद और कमला के सपने बारिश के पानी के साथ चूर-चूर होकर बह रहे थे। कमला रो रही थी। बारिश के बढ़ते प्रभाव से छप्पर टूट गया तो? इस भय से बच्चों को खटिया के नीचे रखा था। दोनों की आँखों के सामने सबकुछ समाप्त हो रहा था। कमला की भगवान से मिन्नते बंद हो चुकी थी। पूरे खेत को ओले के सफेद कफन ने ढक लिया था। इस भयावह रात ने रामप्रसाद को पत्थर बना दिया था। अब कर्जा चुकाने के लिए (जो उसने लिया ही नहीं) उसके पास कुछ भी बचा नहीं था। इससे मुक्तता के लिए रामप्रसाद पटवारी से लेकर कलेक्टर तक सबके पैर पकड़ रहा था। पर कोई उसकी तरफ ध्यान नहीं देता। हरएक अधिकारी उसका अपमान करता है पर एक अनपढ़ किसान को मान-अपमान से क्या मतलब। पटवारी उससे भेट की अपेक्षा रखता है और इसी विवंचना में फँसकर बेचारा रामप्रसाद अपनी जीवनयात्रा को समाप्त करता है। जिसे नहीं पता की उसकी आत्महत्या के बाद उसकी पत्नी और बच्चों का क्या होगा। क्या वे जीवित रह पाएँगे।

निष्कर्ष :

लेखक पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' इस उपन्यास में चित्रित किसान रामप्रसाद के जीवन और उसकी समस्याओं को देखने के पश्चात् निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आज 21 वीं सदी में प्रवेश करने के बाद भी किसान को आर्थिक और प्राकृतिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आज भी भारतीय किसान साहुकारी, सामंतशाही के शिकंजे में फँसा है। जिसके सामने ऋण की सबसे बड़ी समस्या है। जिससे छुटकारा पाने के लिए किसान आत्महत्या का रास्ता अपनाता है।

संदर्भ:

1. सं. डॉ. दिलीप मेहरा, प्रेमचंद के कथा साहित्य में सामाजिक सरोकार, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 104
2. MADHYABHARATI711012
3. रामाज्ञा शशिधर, किसान आंदोलन की साहित्यिक जमीन: किसान
4. दिलीप मेहरा, प्रेमचंद के कथा साहित्य में सामाजिक सरोकार, पृ. 105
5. वही, पृ. 106
6. वहीं, पृ. 106, 107
7. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, पृ. 8
8. वही, पृ. 12
9. वही, पृ. 176
10. वही, पृ. 184

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

दलित अस्मिता और हमारे हिस्से का सूरज

डॉ.प्रकाश आठवले
सहायक प्राध्यापक, कर्मवीर भाऊराव पाटिल कॉलेज, उरुण इस्लामपुर
इ-मेल : prakashathavale@rediffmail.com

दलित जीवन के चित्रण की अभिव्यक्ति दलित कविता है I वह पारम्परिक साहित्यिक मापदन्डों के विरुद्ध खड़ी होकर अपने अस्तित्व की लड़ाई के लिय प्रेरणा देती है Iदलित कविता में जो यातना, बेचैनी, विद्रोह, नकार, संघर्ष, आक्रोश दिखाई देता है, वह हजारों साल के इतिहास में घुटते, सिसकते दलितों की व्यथा-कथा है Iदलित कविता अपने इर्द-गिर्द फैली विषमताओं, सामाजिक भेदभावों को प्रमुखता से दर्शाती है I जिस सामाजिक उत्पीड़न से दलित का हर रोज सामना होता है, वह जिस यातनाओं, संघर्षों से गुजरता है, उसी अनुभूती को दलित कविता अभिव्यक्ति देती है I दलित कविता में डॉ. अम्बेडकर की वाणी का ओज है, वेदना है, संघर्ष है और जीवन दृष्टि है I

दलित कविता जागृति का सन्देश देती है I इसमें कवि अपनी अनुभूतियों और वेदना-संवेदना को वाणी दे रहे हैं I इनका प्रमुख आधार अम्बेडकरवादी विचारधारा है I इस सन्दर्भ में सुशीला टाकभौरे जी का कथन है "दलित कविता में शोषण, अन्याय के विरुद्ध विद्रोह और दुश्मनों को ललकारने की चेतना है I इसमें कहीं यातना के स्वर है, कहीं चेतना के स्वर है I कहीं शोषकों को धिक्कार है, तो कही अन्याय के विरुद्ध अत्याचारियों से बदला लेने की हुंकार है I दलित कविता में विषय, भाव एक जैसे होने के बाद भी, वे अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग दलित वर्ग की भोगी हुई पीड़ा की अभिव्यक्ति है I"[1]

हिंदी साहित्य में कविता का महत्वपूर्ण स्थान है I दलित रचनाओं की शुरुवात कविता से ही हुई है I अन्य भारतीय भाषाओँ के साथ हिंदी में भी दलित साहित्य की यही स्थिति रही है I साहित्यकारों को संबोधित करते हुए डॉ.अम्बेडकर ने कहा था "उद्दात जीवन मूल्यों एवं सांस्कृतिक मूल्यों को अपने साहित्य में स्थान देना चाहिए I साहित्यकार का उद्देश्य संकुचित न होकर विस्तृत एवं व्यापक हो I वे अपनी कलम को अपने तक ही सीमित न रखें, बल्कि उनका प्रखर प्रकाश देहाती जीवन के अज्ञान का अंधकार दूर करने में हो I दलित उपेक्षितों का बड़ा वर्ग इस देश में है I इस बात को सदा याद रखे I उनका सुख-दुःख एवं उनकी समस्याएं समझ लेने की कोशिश करें I साहित्य के द्वारा उनका जीवन उन्नत करने के लिए प्रयत्नरत रहें I यही सच्ची मानवता है I"[2] इस संदेश से प्रेरणा पाकर दलित रचनाकार साहित्य सृजन कर रहे है I इन साहित्यकारों में सुशीला टाकभौरे का स्थान शीर्षस्थ रहा है I

सुशीला टाकभौरे जी ने 'स्वाति बूंद और खारे मोती', 'यह तुम भी जानो', 'तुमने उसे कब पहचाना', 'हमारे हिस्से का सूरज'आदि काव्य-संग्रहों का सृजन किया है I उनका साहित्य दलित एवं शोषित वर्ग की व्यथा का जीवंत दस्तावेज है तथा उच्च वर्ग द्वारा दलितों पर होते अन्याय का खुला चिट्ठा है I सुशीला जी ने बाबासाहब से प्रेरित होकर ही साहित्य का सृजन किया है I उनकी कविता पढ़कर पाठक को सजग रहने का संदेश मिलता है I उनकी कविता में दलित जीवन की त्रासदी, सवर्ण मानसिकता से ग्रस्त दलित समूह के द्वारा दलितों को हाशिए पर छोड़ा जाना, वंचना और वर्जनाओं के दौर से गुजरना आदि सभी सजीव अनुभओं का चित्रण दिखाई देता है I सुशीला जी की कविताओं के केंद्र में ऐसा आदमी है जो सदियों से गुलामी की ठोकरे खा रहा है I निरंतर पीड़ित, शोषित, आभावग्रस्त, उपेक्षित तथा दीन-हीन जीवन जीने के लिए विवश किया गया है I

सुशीला टाकभौरे जी ने अपने काव्य के माध्यम से दलितों की अस्मिता से जुड़े सवालों को समाज के सामने रखा है I नई सदी में भी दलितों की अस्मिता को ठेस पहुँचाने में मनुवादी कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रहे यही दिखाने का प्रयास उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से किया है I सुशीला जी ने अपनी लेखनी द्वारा दलितों में विद्रोह एवं क्रांति के लिए मैदान तैयार कर उनपर होने वाले अन्याय एवं अत्याचार, जुल्म के विरोध में खड़ा होने की ताकत दी है I

सुशीला टाकभौरे जी का 'हमारे हिस्से का सूरज' यह काव्य संग्रह सिर्फ दलितों की व्यथा को प्रस्तुत नहीं करता तो उन्हें अपनी गुलामी से परिचित कर क्रांति के लिए तैयार करता है I प्रस्तुत काव्य-संग्रह में संकलित कविताओं में उन्होंने भोगे हुए यथार्थ को वाणी द्वारा उद्घाटित किया है I जैसे-

"लाख कोशिशें की हैं, दुश्मनों ने
हमारे हिस्से के सूरज को ढाकने की,
फिर भी
चमका है दुनिया के आकाश में
हमारा क्रांतिसूर्य I"[3]

प्रस्तुत काव्य में सुशीला जी का आक्रोश यह है कि दुश्मनों ने दलितों के हिस्से के सूरज को ढाकने की लाख कोशिश की लेकिन फुले, शाहू, अम्बेडकर जैसे महापुरुषों के अथक प्रयासों से क्रांतिसूर्य चमक उठा है I

"क्रांतिसूर्य चमक रहा है
तब भी
हमारे अपने कुछ लोग
अन्धेरे के अभ्यस्त,

आँखें मूंद कर ही चलते हैं I"[4]

इन पंक्तियों के माध्यम से सुशीला जी दलितों की प्रवृत्ति को उजागर करती है I उनके अनुसार क्रांतिसूर्य चमकने के बावजूद भी कुछ दलितों को आँखे मूंद कर चलने की आदत-सी हो गई है I

दलित युगों-युगों से पुश्तैनी कार्य कर रहा है I उच्च वर्णीय लोग दलितों को रोटी, कपड़ा देकर अपनी सेवा में लगाना चाहता है इससे उनकी उन्नति रूके, वे गुलाम बन जाए I अपने आत्मसम्मान से अनभिज्ञ दलित समाज सवर्णों से ही दया, सहानुभूति की भीख मांगता है I जिनके द्वारा प्रताड़ना हुई उनके ही समक्ष याचक बनने की यातना को सुशीला जी ने 'हमारे हिस्से का सूरज' रचना में चित्रित किया है-

"सदियों की गुलामी है
ऊपर देखने की आदत ही नहीं है
कैसे देखेंगे क्रांतिसूर्य को
कैसे समझेंगे
जागृति और परिवर्तन के प्रकाश को I"[5]

आज भी कुछ दलित लोग सदियों से चली आ रही गुलामी छोड़ने को तैयार नहीं है I उन्हें ऊपर देखने की आदत नहीं है I कैसे देखेंगे क्रांतिसूर्य को, कैसे समझेंगे जागृति और परिवर्तन के प्रकाश को ?कुछ दलित शिक्षा के माध्यम से सजग हो रहे है अपनी उन्नति कर रहे है I लेकिन जो पीछे है वे पीछे ही रह गए हैं इसका एक मात्र कारण है कि वे अपने नेता को भूल दुश्मनों के बहकावे में आकर उनपर आँखे मूंद कर विश्वास कर रहे है I

दलित स्वतंत्रता, समता तथा अपने अधिकारों से बेखबर हैं I फुले, शाहू, अम्बेडकर जैसे महामानवों ने समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास किया,इससे चारों ओर प्रगति का प्रकाश फैलने लगा है फिर भी कुछ दलित आज भी अँधेरे में भटक रहे हैं, अपने हिस्से का सूरज ढूंढ रहे है I आगे आनेवाली पीढ़ी को आपमनित जिन्दगी विरासत के रूप में दे रहे हैं Iसुशीला जी उन लोगों पर आक्रोश प्रकट करते हुए लिखती है-

"कैसे स्वतंत्रता, कैसा लोकतंत्र ?
जानते नहीं संविधान में मिले अधिकार I
आज भी निश्चित, तुच्छ
पुश्तैनी रोजगार में लगे
अपमान और अभाव का जीवन जी रहे हैं
ये लोग !"[6]

कवियित्री उन लोगों पर गुस्सा हो रही है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी गरीबी, भुखमरी, गुलामी की जंजीरों में जकड़े हैं लेकिन उनमें मुक्ति के लिए कसमसाहट एवं उबलता लावा नहीं है I दलित गरीबी, भुखमरी, गुलामी से कब मुक्त हो पायेंगे इसके बारे में वे स्वयं अनभिज्ञ हैं I

'स्वयं को पहचानो' इस कविता में सुशीला जी विद्रोह की आग उगलती हैं I वे दलितों के प्रति मात्र सहानुभूति नहीं दिखलाती अपितु शोषकों के विरोध में उनकी धमनियों का खून खौला देती है I जैसे-

"दो-चार सितारों से
अमावस का अँधेरा नहीं हटता,
सुबह की रौशनी खुद आयेगी-
कब तक करोगे इन्तजार?....[7]
"उठने दो कर्मठ हाथों को
आकाश तक/
तुम भी तीन डग में नाप लो
सम्पूर्ण विश्व
विधाता एक मुट्ठी चांवल
तुम्ही से मांगेगा I"[8]

सैकड़ों वर्षों से समस्त उच्च वर्णीय लोग अधिकारों, सुविधाओं, सुख-साधनों एवं संसाधनों के स्वयं घोषित मालिक बन बैठे है I धन और अधिकारों के मालिकों ने दलितों को उनके हक और अधिकारों से वंचित रखने प्रयास किया ताकि वे गुलाम बनकर अपना जीवन जिए I अपने को प्रबल तथा दलितों को दुर्बल बनाने की कूटनीति से दलितों की हुई स्थिति को सुशीला जी ने 'यातना के स्वर' कविता में अभिव्यक्त किया है-

"दलित-पीड़ित, अपाहिज पीढियां
न कुछ समझ पाई, न कुछ कह पाई
अपना दुख दर्द !
अन्याय अत्याचार को
समझती रहीं जीवन का यथार्थ
कर्मो का फल, ईश्वर का श्राफ I
पाप-पुण्य से भ्रमित, वे नहीं जान पाई
जीवन में प्रगति का मार्ग I"[9]

सवर्ण समाज का दलितों के साथ सदियों से अमानवीय व्यवहार होता रहा है I उन्होंने दलितों को हमेशा उपेक्षित ही रखा I विषमतामूलक भारतीय सामाजिक व्यवस्था के पीछे मनु स्मृति रही है I सुशीला जी लिखती है-

"संवेदनशील प्रगतिशील हृदय
विचलित हो जाता है,
व्यथित हो जाता है देखकर !
हमारी जाति, हमारा धर्म
हमारी स्थिति, हमारा कर्म
मनु स्मृतिकाल से आज तक
अपनी जगह पर है I"[10]

भारतीय देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था विषमतामूलक रही है इसके पीछे मनु स्मृति रही है I मनु स्मृति में धर्म के नाम पर ऐसी समाज व्यवस्था बनाई है जिससे दलित हमेशा दलित रहे, वे झाड़ू लगाए, जूतों की मरम्मत करें, सिर पर मैला ढोते रहे, शिक्षा से वंचित रहे, सिर झुकाकर सवर्णों की सेवा करते रहे, कोड़े सहते रहे लेकिन सवर्णों का विरोध न करें I सैकड़ों वर्षों से मनुवादी सवर्ण सभी अधिकारों, सुविधाओं और लाभों के अधिकारी बने बैठे है I अधिकारों और धन से सम्पन्न, वे किसी भी स्थिति में समाज में समता और भाईचारा नहीं चाहते I वे वर्णव्यवस्था के अनुसार स्वयं उच्च और शेष सभी को आज भी निम्न बनाकर रखना चाहते हैं I साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति अपनाकर वे अपनी श्रेष्ठता हमेशा बनाये रखना चाहते है I कवियित्री इन सब समस्याओं के समाधान को तलाशने की कोशिश करती है I सुशीला जी को एकलव्य की अंधी गुरुभक्ति, शम्बुक की हत्या और बापू का सन्देश अमान्य है I वे दलितों में जागरण एवं क्रांति के शोले भड़काने के लिए कलम का शस्त्र के रूप में स्वीकार कर उन्हें सजग करने का प्रयास करती है-

"समय की गति से,
शोध-बोध से
संदर्भ बदल जाते हैं
समझेंगे ये अज्ञानी शिष्य
भक्ति से बड़ी जागृति
मंदिर नहीं चाहिए
विद्यालयों के दरवाजे खटखटाइए I"[11]

दलितों में शिक्षा ही जागृति ला सकती है सामाजिक क्रांति के लिए उनमें बारुद भर देगी I सुशीला जी की काव्यरचनाएँ निश्चित ही सदियों से ठंडे पड़े बारूदों के ढेर को आग लगा देने में समर्थ है I

सुशीला जी सामाजिक क्रांति के लिए तमाम कलम के सिपाहियों को चुनौती देती हैं कि वे अपनी कलम को हथियार बनाए और सामाजिक परिवर्तन करें, गलत प्रथा-परम्पराओं का विरोध करें, समाज में फैली सवर्ण-अवर्ण, शोषक-शोषित भेद मिटाएं, दलितों की मानसिकता में परिवर्तन करें I

"उनको दिशा देना ,
राह दिखाना क्रांति की राह में
सफलता के फूल बिछा देना I"[12]

डॉ. अम्बेडकर जी ने दलितों को गुलामी से मुक्ति देने का उचित कार्य किया है I दलित साहित्य तथा सहित्यकारों को दलितोंत्थान में निरंतर कार्य करना है I सुशीला जी 'दलित चेतना' इस कविता के माध्यम साहित्यकारों से उम्मीद करती है-

"दलितोत्थान का लक्ष्य
दलित आन्दोलन की सफलता
तुम्हारे हाथों में है I"[13]

अब दलित शिक्षा एवं विवेक से जाग उठे है I आज तक उसे भगवान तथा नसीब का वास्ता देकर उसकी चेतना को दबाकर रखा था लेकिन अब फुले, शाहू और अम्बेडकर की संताने मौन-बेबस नहीं रहेंगी, गुलामी की जंजीरे तोड़कर नया इतिहास रचेगी, समाज में परिवर्तन लाएगी I 'बुद्धवादी चिंतन' कविता में कवियित्री लिखती है-

"ये कोटि-कोटि शोषित मानव
स्वयं
सूरज बन जायेंगे,
इनसे उपजी सन्तान
भावी पीढ़ी
संसार में युग परिवर्तन लाएगी,
जीवन रस की, सुख प्रगति की
सरिता बहायेगी,
जीत लेगी काल को I

संघर्ष सागर को पार कर,
दुनिया से
अपना लोहा मनवायेगी I"[14]

सुशीला जी ने बाबा साहब के विचारों से प्रेरित होकर की साहित्य का सृजन किया है I उनके साहित्य की संजीवनी अम्बेडकर जी के विचार मूल्य ही है I कवियित्री ने बाबा साहब को क्रांतिसूर्य की उपमा दी है I अपनी रचनाओं के माध्यम से बाबा साहब के कार्यों का गौरव किया है I 'जय भीम' कविता में दलित उद्धारक बाबा साहब का गुणगान करते हुए सुशीला जी लिखती है-

"तन-मन का सुख छोड़कर
कष्टों को सहा आपने
तपन सहकर, दीप-सा जलकर
उजाला दिया आपने I...
अर्पित कर अपना जीवन
सबके लिए जिया आपने
निर्बल को बल, गूंगों को हुंकार
दलितों में चेतना संचार किया आपने I"[15]

निष्कर्ष :

दलित जीवन के चित्रण की अभिव्यक्ति ही दलित कविता है I इसमें हजारों साल की दलितों की घुटन, सिसक की अनुगूँज है I ये कविताएँ अपने इर्द-गिर्द फैली सामाजिक विषमताओं, विद्रूपताओं,जातिगत भेदाभेद को प्रमुखता से उद्घाटित करती है I इनका प्रधान स्वर अम्बेडकरवादी विचारधारा है I

सुशीला टाकभौरे जी का 'हमारे हिस्से का सूरज' काव्य-संग्रह दलित एवं शोषित वर्ग की व्यथा का जीवंत दस्तावेज है I उनकी कविता में डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर जी के विचारों का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है I उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से दलितों की अस्मिता से जुड़े कई सवालों को समाज के सामने रखने का प्रयास किया है Iउन्होंने अपनी लेखनी द्वारा दलितों को विद्रोह एवं क्रांति के लिए मैदान तैयार कर उनपर होनेवाले जुल्म के विरोध में खड़ा होने के लिएसबल प्रदान किया है I प्रस्तुत काव्यसंग्रह सेदलित फुले, शाहू और अम्बेडकर आदि महामानवों के विचारों से ऊर्जा लेकर परम्परा से चली आ रही गुलामी की जंजीरे तोड़कर नया इतिहास रचेगा तथा विषमतामूलक समाज में परिवर्तन लाने के लिए उचित कदम उठाएगा I

संदर्भ :

1. सुशीला टाकभौरे- मेरे काव्य संग्रह, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण- 2014, पृष्ठ- 17
2. प्रधान सम्पादक- नामवर सिंह, आलोचना- त्रैमासिक पत्रिका, जुलाई-सितम्बर, 2013, पृष्ठ- 121 से उद्धृत
3. सुशीला टाकभौरे- मेरे काव्य संग्रह, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण- 2014, पृष्ठ- 17
4. वही, पृष्ठ- 117 5. वही, पृष्ठ- 117 6. वही, पृष्ठ- 118 7.वही, पृष्ठ- 139
8. वही, पृष्ठ- 139 9. वही, पृष्ठ- 119 10. वही, पृष्ठ- 138 11.वही, पृष्ठ- 129
12. वही, पृष्ठ- 171 13. वही, पृष्ठ- 172 14. वही, पृष्ठ- 176 15.वही, पृष्ठ- 203

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

उत्तरशती के हिंदी उपन्यासो में नारी समस्या

डॉ. प्रकाश राजाराम मुंज
सहायक प्राध्यापक, यशवंतराव चव्हाण (केएमसी) महाविद्यालय, कोल्हापूर

प्रस्तावना :

स्त्री और पुरूष समाज निर्माण प्रक्रिया के प्रमुख दो अंग है। संपूर्ण समाज विकास के लिए दोनो का समांतर विकास आवश्यक है। भारतवर्ष में प्राचीन काल से नारियो का सम्मान दिया जाता है, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता' कहकर भारतीय नारी को सम्मान एवं गौरव दिया है। बिना शक्ति के शिव शव है- यह विचार नारी शक्ति को उचित महत्त्व प्रधान करता है। संसार के प्राचीनतम ग्रंथ क्रग्वेद में भी महान महिलाओं का वर्णन मिलता है। विद्या की देवी सरस्वती, शक्ति की देवी दुर्गा और धन की देवी लक्ष्मी को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। समाज में नारी की स्थिति जितनी बेहतर होगी, उतना ही उस समाज का विकास अधिक होता है। नारी के सामाजिक स्तर पर डॉ. शिवेंद्रचंद्र सोती के विचार है, "सामाजिक संगठन में स्त्रियो के स्थिति समाज की दशा की

परिचायक है। जिस समाज में स्त्रियों की दशा जितनी ही अधिक गिरी हुई होगी, उनकी स्थिति जितनी ही नीची होगी बह समाज उतना ही अवनत माना जाएगा।"१ इसमें तथ्य भी है, जिन संस्कृतियो, जिन युगों ओर जिस समाज में नारी का स्थान ऊंचा रहा है, उस युग संस्कृति एवं परिवार का विकास स्पष्ट परिलक्षित होता है।

भारत में नारी ने अपने मुक्ति एवं अधिकारो की लडाई हर युग में की है लेकिन आधुनिक युग में नारी स्वतंत्र, उसका अस्तित्व तथा उसकी पहचान आदि पर सकारात्मक कार्य हो रहा है। हिंदी रचनाकारो ने भी नारी के आजादी, शोषण एवं उपलब्धियो को वाणी देने का कार्य अपने साहित्य के माध्यम से किया है। आज के युग में 'नारी' विमर्श एक आंदोलन के रूप में खडा हुआ है। आज तक जिस नारी के संदर्भ में पुरष लिखते आ रहे थे, आज वे खुद लेखनी को उठाकर अपनी शक्ति, पीडा और सफलता को लिपिबद्ध कर रही है। उत्तरशती के आदिवासी केंद्रित उपन्यासो में नारी जीवन पर केंद्रित उपन्यासो की संख्या अधिक है। उत्तरशती के आदिवासी जीवन पर केंद्रित उपन्यासो में 'कगार की आग', सु-राज, नीलोफर, वनतरी, धार, सीता, मोसी, इदन्नमम् और अल्मा कबूतरी की केंद्रिय विषय वस्तु आदिवासी नारी और उनका जीवन संघर्ष है।

१ शोषण:

सामान्य नारी से कई गुना अधिक बाह्य कारकों दूवारा आदिवासी नारी अधिक शोषित होती है। आदिवासी नारी का शारीरिक, मानसिक और आर्थिक शोषण-दोहन होता है। चारों तरफ से जमींदार, ठेकेदार, पुलिस, साहकार, वन अधिकारी आदि उसे शोषित करते हें। इस शोषण को हिंदी र्चनाकारों ने केंद्रिय विषय बनाकर यथार्थ रूप में चित्रित किया है। नारी शोषण के संदर्भ में गोपालराय के विचार है- "बलात्कार, पति दूवारा पत्नी का मानसिक, शारीरिक उत्पीडन, परंपरागत नारी संहिता को स्वीकार करने की स्त्री की मजबूरी, स्त्री को आर्थिक, राजनीतिक अधिकारो से वंचित रखने की साजिश आदि नारी शोषण और दमन के प्रमुख रूप है।"२ आदिवासी नारी भी चारो ओर से शोषित है। आदिवासी नारी का परिवार में कम शोषण लेकिन बाहर उसे सिर्फ एक मनोरंजन एवं भोग की वस्तु माना जाता है। ठाकुर हो या साहकार पुलिस हो या ठेकेदार सब उसे भोगना चाहते हें। आदिवासी नारी शारीरिक शोषण सबसे अधिक होता है। वह इन दीकूओं के बलात्कार का एवं हवस की शिकार बार-बार बनती है।

हिमांशु जोशी ने 'कगार की आग' उपन्यास में आदिवासी 'गाडिया लोहारो' की कहानी गोमती को केंद्र में रखकर लिखा है। गोमती का अकथनीय शोषण पढ़कर लगता है शायद गोमती दुर्भाग्य को लेकर ही पैदा हुई हो। पहले पति, ससूर, ककिया, तेजुआ, तिरपन लाल और दरोगा गोमती का शोषण करते है उस पर बलात्कार करते है। उसका मानसिक और शारीरिक शोषण इतना होता है कि उसे शब्दो में व्यक्त करना कठिन है। गोमती के शोषण के संदर्भ में डॉ. भगवतीकरण मिश्र के विचार है, "स्वतंत्रता प्राप्ति और सरकारी योजना ओं के बावजूद गरीबी -ग्रस्त पहाडियों के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। गरीबों का शोषण यथावत है। सबसे अधिक त्रस्त है नारियाँ जिनकी इज्जत की कोई कीमत नहीं। आज एक तरफ गोमती के सदृश्य अबला, गरीब और बेबस नारी है तो दूसरी तरफ कलिया, तेजुआ, खुशाल और तिरपनलाल आदि दरिंदे हें जिकके लिए एक औरत भोग्या से अधिक कुछ नहीं।"३ उपन्यासकार गोमती को अंतत: कालभैरबी का रूप देकर यह संदेश देता है कि नारी यदि अपनी वास्तविक शक्ति के प्रदर्शन पर आ जाए तो वह किसी दुर्गा - चंडी की तरह ही दुष्ट का विनाश करने में सक्षम हो सकती है। आदिवासी नारियो को पुलिस वाले किसी न किसी वजह से थाने बुलाकर उनका शारीरिक शोषण करते हैं। गोमती "सु-राज' (अंधेरा और) में शंखी, पिरथी उच्च वर्गीय लोगों का शिकार बनती है। शंखी को तो शहर में बेचा जाता है तथा पिरथी के साथ सोहन सिंह बलात्कार करता है। बाद में पिरथी की सड़ी लाश उसके पिता भीखू के हाथ में मिलती है। ऊपर से पुलिस बाले भीखू को ही पत्नी और बेटी की दोषी मानकर पुलिस थाने ले जाती है। भीखू की पत्नी एव बेटी चंदरिया पर पुलिस अत्याचार करती है। लेखक ने इस घटना को इन शब्दों में व्यक्त किया है- "भीखू की पत्नी अमिया अपने को मुंह दिखाने लायक नहीं समझ रही थी- लाज शर्म के मारे। चंदरिया की फूल से देह मुरझा आई थी। आंखों के नीचे काली-काली झाड्यां। देह में दर्द के मारे चला तक नहीं जा रहा था।"५ आदिवासी नारियो को शोषण अपने परिवार एवं कबीलो में कम ही होता है लेकिन तथाकथित सभ्य कहा जाने वाला समाज उनके जीवन को ध्वस्त कर रहा है। उनके जीवन के साथ खिलवाड किया जा रहा है। जैसे की बह मानव न हो।

'नीलोफर' उपन्यास में धार्मिक दंगों का शिकार हु आदिवासी कन्या नथनी की पीडा का यथार्थ अंकन कृष्णा अम्निहोत्री ने इन शब्दो में किया है- "जब मन में आता, वे सब हथियार रखकर हमें नोचने लगते, दो-चार तो इस जुल्म से मर गई। साल भर में हमारे कपडे फट गए ओर कुछ स्त्रियो ने तो कराह- कराहकर वहीं बच्चों को जन्म दिया लेकिन मै मरी नहीं, जंगली लडकी थी, सब सह गई। हरामी संतान को जन्म देने के लिए अब तक जिंदा हु।६ आदिवासी नारी का शोषण करना सभ्य समाज अपना अधिकार मानता है। उनका जन्म सिर्फ सेवा के लिए हुआ है, यह उनकी धारणा है। संजीव ने

'धार' उपन्यास में संथालो की दुर्दशा एवं विद्रोह का चित्रण मैना को केंद्र में रखकर किया है। मैना जो विद्रोही नारी है। उसका पुलिसबाले शोषण करते है। जेल में ही उनके साथ बलात्कार करते है। इससे एक बच्चा जन्म लेता है। ठेकेदार भी मैना से अधिक श्रम करवाकर मेहनताना नहीं देता। 'इदन्नमम्' में आदिवासी नारी का शोषण ठेकेदार, साहकार मिलकर करते हें। उपन्यास के नारी पात्रो के संदर्भ में विजबहादूर सिंह का कथन, "उपन्यास उन तमाम भारतीय स्त्रियो को लेकर लिखा गया है जो सनातन पुरुष प्रधान व्यवस्था में सदियो में तरह-तरह से अधिकार वंचित ओर काम शोषित रहती आई है।"७ इदन्नमम् में उच्चवर्गीय एवं आदिवासी दोनों समाज की नारियां हमें शोषित दिखाई देती है। राउत नारी तुलसिन मंदा के सामने अपनी दुर्दशा व्यक्त करते हुए कहती है- "अरे हमारी तो बेबसी है ठेकेदार, हमें पेट के लाने दिन में ही पथरा पडुत। रात में देह भी... हमें बिना रौंदे- चीते तुमारी बिरादरी के लोग पथरो से पथरो को हाथ नहीं लगा देत।"८ भूख तथा रोजी-रोटी के लिए इन राउतों को पथर-क्रेशर के ठेकेदार शहद की छत्ते से जैसे शहद नीचोडुते है, वैसे इनका शोषण करते है। बार- बार इनकी ओरतों पर बलात्कार करते हें। ये आदिवासी नारियाँ गुप्त रोग का घर बन जाती है। 'सीता' उपन्यास की सीता और 'मोसी' उपन्यास की मोसी इसी तरह खदानो के ठेकेदारो दूवारा और उच्च वर्ग के लोगों दूबारा शोषित होती है। मैत्रेयी पुष्पा का अल्मा कबूतरी उपन्यास कबूतरा नारी के शोषण की दासतां है। इस संदर्भ में डॉ संजय एल. मादार कहते है- "स्त्री कोई जाति नहीं होती। सभी स्त्रियां एक है। लेकिन कबूतरा जनजाति की कबूतरी | उसे पुरुष अपनी हवश का शिकार बनाने में थोडा भी डरता नहीं। कबूतरी पर दोगुनी ताकत से आक्रमण किया जाता है। कबूतरा की कमजोरी का फायदा पुरुष समाज लेता है। उनकी कोई रक्षा नहीं कर सकता? रक्षा करने वाले पुरुष तो इन स्त्रियों को दौड़ाकर बलात्कार करते है ।"९ मैत्रेयी पुष्पा नारियो के इस अत्याचार को देखकर अधिक चिंतित है। कदमबाई बलात्कार की शिकार है, उसी तरह भूरी और अल्मा भी शोषण का शिकार हो जाती है|

प्रस्तुत उपन्यासो के आदिवासी नारी पात्रो पर जमींदार, ठेकेदार, साहकार, पुलिस आदि उच्च वर्गीय लोगों दूबारा बेदर्दी अत्याचार किया हुआ दृष्टिगोचर होता है। ये नारियाँ पहले ही कई समस्याओं का सामना करती आ रही है लेकिन बाहूय जगत के संपर्क में आने के कारण उनका शोषण चरम पर पहुंच गया है। यह समाज उसे सिर्फ एक वस्तु के रूप में देखता है। वह जब चाहे उसे इस्तेमाल कर फेक देता है।

२ रखेल:

किसी भी पुरुष की ओर से बिना विवाह के किसी लडकी या ओरत को अपने घर में रखना रखेल कहा जाता है। इससे घर का सारा काम करवाया जाता है। साथ ही संबंधित पुरुष उसके साथ शारीरिक संबंध भी स्थापित करता है। कोई पुरुष अपनी पत्नी के होते हुए भी दूसरी औरत को शरीर सुख के लिए घर से बाहर भी रख लेता है, उसे भी रखेल कहा जाता है रमणिका गुप्ता ने 'सीता' उपन्यास में रखनी की परिभाषा की है- "घरनी' याने पत्नी के बराबर का दर्जा। पर समाज के मर्जी के बिना विपरित बिना ब्याहे किए जा कर किसी मरद के यहाँ अपनी इच्छा से रहनेवाली या बैठ जानेवाली ओरत अथवा जबरन अगवा करके लालच देकर लाई गई औरत भी 'रखनी' कहलाती है।"१० ज्यादातर रखेलों को पुरुष जब तक योवबन है, सौंदर्य है तब तक उसकी मर्जी संभालते है। उन्हे सम्मान देते हें। बाद में उन्हे त्यागने का काम करते है। उनकी हर समय पर अवमानना करते रहते है। समय आने पर पीटने भी पीछे नहीं हटते। इससे उनका जीवन नरक जैसा बन जाता है।

'कगार की आग' की गोमती पुलिस, ससूर ककिया, तेजुआ और पहले पति दवारा शोषित है। दूसरी ओर जमींदार तिरपनलाल की वह रखेल बनकर उसके जब गर्भवती बन जाती है तो दादू सिंह अपने बंधुआ बंगडू के साथ उसकी साथी करवबाता है। आदिवासी नारी का सबसे शोषित रूप प्रस्तुत उपन्यास में दिखाई देता है। "इदन्नमम्' में लीला राउतिन स्वेइच्छा से अभिलाख सिंह की रखेल बन जाती है। वह अन्य आदिवासी नारियो पर होनेवाले अत्याचार में अभिलाख सिंह और जगसेर की मदद करती है। आदिवासी नारी होकर भी उसे इन भूखे, अभावग्रस्त एवं शोषण से पीडित आदिवासियो की पीडा समझ में नहीं आती है। नारी के इस स्वभाव के संदर्भ में राकेश कुमार सिंह लिखते हें- "नारी की एक बड़ी विडुंबना यह है कि नारी ही नारी की प्रबल शत्रु है।१२ लीला को उसके कुकर्मो की सजा उसे मिलती है। राउत आदिवासी अभिलाख के साथ उसे भी पीटते है।

रखेल समस्या का चित्रण 'सीता' उपन्यास में अत्यंत गहराई के साथ रेखांकित किया गया है, "कोयला खदानों में प्रायः मुशी, ठेकेदार कुछ एक कामिनो को रखेल के रूप में रख लेते है। जिसका अर्थ था उनका आर्थिक ओर योन शोषण|"१३ यासिन सीता को रखेल बनाता है प्रेम के कारण नहीं तो शारीरिक भूख एवं धन की लालच में। सीता कठोर परिश्रमी थी, उसकी की कमाई से ट्रक खरीदता है, जमीन खरीदता है लेकिन उसके बच्चो को अपना नाम नहीं देता। अंत में उसे घर से निकाल देता है। वह सीता की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करता है। यासिन मियाँ प्रतीक है- धुर्त एवं चालाक पुरुषो का जो भोली- भाली आदिवासी कन्याओं को हवस का शिकार बनाता है।

आदिवासी समाज में स्त्री की देह वस्तु रूप में परिवर्तित करने की होड़ मची है। पुरुषो की हवस का आदिवासी नारियां शिकार होती दृष्टिगोचर होती है।

आदिवासी स्त्रियां रखेल बनने को दो कारण है, एक विवश, मजबूर होकर और दूसरा ठाकुरों, साहकारो दुवारा इन्हें जबरन रखेल बनाया जाता है। दोनो स्थितियो में ये नारियाँ पीडित एवं दु-खी है। इनकी जिंदगी दर्दनाक है ।

३ वेश्या व्यवसाय:

एक स्त्री अपने अर्थाजन या किसी कमजोरी के लिए जब अनेक पुरुषो के साथ यौन संबंध बनाए रखती है तो वह 'वेश्या' कहलाती है। आदिवासियो की कई जातियों में परंपरागत वेश्या व्यवसाय चलता आया है। इनमें नट, करनट, कबूतरा आदि जाति के नारियाँ शामिल हें। इन जाति की नारियो का वेश्या व्यवसाय आमदनी का साधन भी है।

हिंदी उपन्यासकारो ने आदिवासी नारी की इन वेश्यावृत्तियो को रेखाकिंत किया है। बह परंपरा से ज्यादा गरीबी, अभाव एवं मजबूरी के कारण वेश्या बन जाती है। शरीर का इस्तेमाल पेट की आग बूझाने, पति को पुलिस के चंगुल से छुड़ाने के लिए यह महिलां वेश्या व्यवसाय करती हें। संजीव ने 'धार' में संथाल आदिवासी नारी लुहिया की पीडा को इन शब्दों में किया है- पेट का ये गड्डा भरने का खातिर का नहीं किया दीदी। हुवंड राग हो गया। अब कोई पानी तक देनेबाला नहीं। का जाने अभी का-का दुरगति लिखा है।"१४ तुरिया चकला घर तो पेट की आग बुझाने के लिए चली जाती है लेकिन

वबहाँ से रोग ले कर आती है। अनेक संथाल लडकिया अब वेश्या बनती जा रही है। कुछ धन के लिए तो कुछ भूख मिटाने के लिए लेकिन इनमें से अनेक लड़किया रोगग्रस्त होती दिखाई देती है।

'नीलोफर' में भी ट्रक डाइवरो के साथ लडकियाँ शहर आती है वेश्या धंधे को स्वीकारती है। आज ज्यादातर महानगरो में पाई जानेवाली वेश्या आदिवासी

नारियाँ है। इसका मूल कारण उनकी अभावग्रस्त जिदगी। एक ओर वे दीकूओं, साहकारो, ठाकुरो से शोषित हें और शहरों में दलालो से बेची गई है। अपनी विवशता के कारण उन्हे यह गंदा काम करना पड रहा है। दूसरी ओर वे जंगलों के सभी स्त्रोत खतम हो गए है, गाँव का कोई भी कार्य जैसे नौकरी, घर की सफाई, खेती आदि इनको नहीं आता । परिणामस्वरूप विवशता से इनको अपना शरीर बेचना पड रहा है लेकिन एक नई गंभीर समस्या निर्माण हो गई है वह है गुप्त रोगों की। एड्स जैसी महाबीमारी आदिवासियो को खतरे में डाल रही है। इन जातियों में योन संबंधो में कडे नियम न होने के कारण यह बीमारी कबीलो के पुरुषो एवं अन्य नारियो में भी फैल रही है, जिससे पूरा का पूरा कबीला खत्म होने की कगार पर पहुंच गया है|

४ स्वास्थ की समस्या:

आदिवासी समाज की तरह ही आदिवासी नारी की भी भूख बहुत बड़ी समस्या है। आदिवासी नारियो को अच्छा खाना नहीं मिलता । वैसे भी समय का खाना न मिलने बाले लोगों को क्या अच्छा और क्या बूरा सब समान होता है। खाने के अभाव के कारण ज्यादातर आदिवासी नारियाँ कुपोषित दिखाई देती है। जिसका उनके स्वास्थ पर गंभीर परिणाम हुआ है। रोजी-रोटी की समस्या इतनी गंभीर है कि जब यह गर्भवती होती है तब प्रसव की दिनों में भी इन्हें कोयला खदानों में, जंगलों, पत्थर क्रेशरो, खेतों में खटना पडता है वरना पेट कहाँ से भरेगा? प्रसव के बाद भी यह दो-तीन दिनों के बाद वे काम पर चली जाती है। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता का सीता उपन्यास में नारी की दशा का चित्रण - "सीता की माँ तो तीसरे दिन ही उसे पीट पर बांध कर सडक पर खटने चली आदिवासी नारी की स्वास्थ संबंधी समस्या गंभीर है। आदिवासी इलाके में स्वास्थ्य की सुविधा न होने के कारण प्रसव के समय अनेक नारियों की मृत्यू हो जाती है। 'नीलोफर' उपन्यास में नथनी की माँ के प्रसव के बाद उसपर जटी-बुटियाँ का इलाज कराया जाता है। लेकिन उसकी मृत्यू हो जाती है। कृष्णा अग्निहोत्री के मत के अनुसार - "बुढा उठा और बच्चे को बगल के झोपडे में दे दिया। बहू की अर्ध नग्न लाश को बुढ़ा कंधे पर लटकाए ढलाव के नीचे ढुलक गया...। जैसे तैसे गडूढा बनाकर लाश गाढ़ दी।१६ उसी तरह जुग्गी के प्रसव के बाद उसे न खाने को मिलता है न पीने के लिए। प्रसव के समय उसे आसरा भी नसीब नहीं है। पति झिंगूर ही उसका प्रसब कराता है ओर बच्चे की नाल पत्थर से काटता है।

बेश्यावृत्ति तथा बलात्कार के कारण आदिवासी नारियाँ अनेक बीमारियो का शिकार बनती जा रही है। "धार' की तुरिया तथा अन्य औरतें तड्पकर मर जाती है। तो कभी कभी ठेकेदार जगसेर दूबारा बलात्कार होने पर तुलसिन की पंद्रह साल की बेटी अहिल्या गुप्त बीमारी का शिकार हो जाती है। तुलसिन बेटी की दवाइयो के लिए जगसेर से बिनती करती है, "तुम पहाडियाँ बेच रहे हो ठेकेदार! अहिल्या बहुत बीमार है। डाकधर को दिखाई, भराई है, पैसा लगा रहे है, गुंजारिश भर|"१७ अहिल्या इस बीमारी के कारण मर जाती है। प्रस्तुत उपन्यास में आर्थिक कमजोरी, स्वास्थ की सरकारी सुविधा न होना, पति, परिवार द्वारा प्रताडित आदि कारणों के कारण आदिवासी नारियो में कुपोषण, भूख की समस्या दृष्टिगोचर होती है। प्रसव के समय उचित और समय पर उपचार न होने के कारण कई नारियो की मृत्यू हई है। अत: उनकी स्वास्थ की सुधार के लिए पुख्ता प्रयास करने की जरूरत है |

निष्कर्ष :

उत्तरशती के आदिवासी जीवन पर केंद्रित उपन्यास नारी को केंद्र में रखकर लिखे गए है। 'कगार की आग', सु-राज, नीलोफर, वनतरी, धार, सीता, मोसी, इदन्नमम् और अल्मा कबूतरी इन उपन्यासों की केंद्रिय विषय वस्तु आदिवासी नारी और उनका जीवन संघर्ष है। आदिवासी कबीलों में मातृसत्ता एवं पितृसत्ताक व्यवस्था विद्यमान है। पितृसत्ताक परिवार व्यवस्था में भी पुरुष को नगन्य स्थान है। परिवार के सभी कार्या में स्त्रियों को अधिक महत्त्व है। परिवार का संचलन नारी ही करती है। बह जंगलों में गाट, चिरौंजी, जलावन, शहद, कत्था इकट्टा कर गाँब में बेचकर परिवार चलाती है। इसके साथ साथ खेती, पशुओं की देखभाल, आवास की सफाई आदि कार्य भी उन्हे ही करना पडुता है।

आदिवासी नारी अनेक समस्याओं से पीडित दिखाई देती है। भूख, बेरोजगारी, निरक्षरता और अंध विश्वास उसके जीवन को खोखला बना रहे है तो दूसरी ओर पुलिस, ठाकुर, साहूकार, जमींदार, बन - अधिकारी आदि द्वारा होने बाला उसके जीवन को अंतहीन यातना देता है। सभ्य समाज सिर्फ एक भोग की वस्तु समझता है। बलात्कार, रखैल बनना स्वास्थ की दुरावस्था भी आदिवासी नारियो को शक्तिहीन बना रहा है। प्रस्तुत हिंदी उपन्यासो में आदिवासी नारी सड़क से संसद तक का रास्ता तय करते हुए दिखाई देती है। 'कगार की आग" में गोमती जो शोषित होकर दर-दर की ठोकरें खाती दिखाई देती है। तो दूसरी ओर अल्मा कबूतरी' की अल्मा सभी प्रकार की सीढियों को पार कर विधायक का चुनाव जीतती है। यह फासला तय करते हुए उन्हे अनंत यातनाओं का सामना करना पडता है लेकिन आदिम जीवन का साहस, शौर्य एवं विद्रोह और संघर्ष की जीजिविषा उसे यहाँ तक पहुंचने में मदत करती है।

संदर्भ:

१. सोती शिबवेंद्रचंद्र, भारतीय सामाजिक संरचना, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली, सं. २००२, पृ. २४१
२. राय गोपाल, बीसबीं सदी के अंतिम दशक में हिंदी उपन्यास (लेख), अक्षरा, संपा. गोविंद मिश्र, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल, मार्च -अप्रैल, २००३, पृ. २१
३. मिश्र भगवतीशरण, हिंदी के चर्चित उपन्यास, राजपाल एंड संस, दिल्ली, सं. २०१०, पृ. २७२
४. जोशी हिमांशु, कगार की आग, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सातवा सं. २००६, पू. ३७
५. जोशी हिमांशु, सु-राज, भारतीय प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं, २००४, पू. ३७
६. अग्निहोत्री कृष्णा, नीलोफर, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, सं. १९८८, पृ. ११७
७. सिंह विजय बहादूर, उपन्यास समय और संवदेना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. २००७, पृ. ७८

८. पुष्पा मैत्रेयी, इदन्नमम्, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवां सं. २०१०, पृ. २४१
९. मादार संजय एल., कथा साहित्य की सामाजिक भूमिका, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. २०१६, पृ. २३१
१०. गुप्ता रमणिका, सीता, ज्योतिलोक प्रकाशन, दिल्ली, सं. २०१०, पृ. ४१
११. जोशी हिमांशु, कगार की आग, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सातवां सं. २००६, पृ. ९१
१२. (सिंह राकेश कुमार, नारी चेतना की महागाथा (लेख), वागर्थ, संपा. प्रभाकर क्षेत्रिय, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, दिसं. २०००, पू. १०६
१३. गुप्ता रमणिका, सीता, ज्योतिलोक प्रकाशन, दिल्ली, सं. २०१०, पृ. ४०
१४. संजीव, धार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. १९९०, पृ. १४३
१५. गुप्ता रमणिका, सीता, ज्योतिलोक प्रकाशन, दिल्ली, सं. २०१०, पृ. ५७
१६. अग्निहोत्री कृष्णा, नीलोफर, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, सं. १९८८, पृ. ५४

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

दलित चेतना का दस्तावेज : छप्पर

प्रा. डॉ. आर. बी. भुयेकर
हिंदी विभाग प्रमुख, गोपाळ कृष्ण गोखले कॉलेज, कोल्हापुर।

साहित्य मनुष्य द्वारा लिखा जाता है और मनुष्य को सचेत करने का काम करता है। समाज की सच्च्चाई प्रस्तुत करने का काम उपन्यास करता है। उपन्यास में तत्कालीन युग की चेतना, संवदेना तथा समाज के विभिन्न पहलुओं की अभिव्यक्ति मिलती है। उपन्यास का स्वरूप बहुत व्यापक है। उपन्यासों में समाज की विविध समस्याओं के साथ राजनीतिक विदुरपता, हिंसा, आतंकवाद, नारी चेतना, वर्ग भेद, वर्ग संघर्ष आदि विषयों का यथार्थ चित्रण किया गया है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में दलित उपन्यासों में जयप्रकाश कर्दम का छप्पर उपन्यास काफी चर्चित रहा है। इसे दिल्ली के संगीत प्रकाशन ने 1994 में प्रकाशित किया। प्रस्तुत उपन्यास दलितों की चेतना का दस्तावेज माना जाता है। सदियों से चली आ रही जातिव्यवस्था तथा वर्णव्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है। उपन्यास में दलित विमर्श अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से रेखांकित किया है। समाज भले ही कितना सभ्य हो, परंतु उसमें जातीयता का बीज कितना गहराई तक बसा है, इसका मार्मिक चित्रण 'छप्पर' में दृष्टिगोचर होता है।

उपन्यास की कथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मातापुर गाँव की है। इस गाँव में विभिन्न जन-जातियों के लोग रहते हैं। उनकी गुजरान का एकमात्र साधन है खेती। इसी गाँव में चमार जाति के अछूतों की बस्ती है, जो हमेशा सवर्ण जातियों के लोगों द्वारा अपमानित हो जाती है। सवर्ण हमेशा अपने आप को ऊँची जाति का मानते आए हैं। इसी कारण वे चमारों तथा अछूत जाति के लोगों की घृणा करते हैं। उपन्यास की कथा की शुरुआत सुक्खा चमार से शुरू होती है। सुक्खा मातापुर गाँव के चमारों की बस्ती में रहता है। उसका अपना छोटासा परिवार है, जिसमें उसकी पत्नी और उसका जवान बेटा चंदन है। सुक्खा अपने बेटे चंदन को पढ़ाना चाहता है। शिक्षा प्राप्त करने के लिए सुक्खा चंदन को शहर भेज देता है। वह स्वयं गाँव में रहकर गरीबी से जुझता हुआ तथा अपमानित होकर अपनी छोटी -सी जमीन के टुकड़े पर काम करते हुए अपने परिवार का तथा चंदन की शिक्षा का खर्च चलाना चाहता है। परंतु इस छोटी-सी जमीन से सुक्खा अपने परिवार की रोजी-रोटी तथा घर की जरूरतों की पूर्ति नहीं कर पाता है। इसलिए वह मजदूरी करने लगता है। वह गाँव के संपन्न किसानों की खेती पर मजदूरी करता है, तथा सवर्णों से अपमानित भी होता है। आजादी के बाद भी आज भारतीय गाँवों में सामंतवादी व्यवस्था ज्यों की त्यों बनी हुई है। गाँव तो अशिक्षितों का अड्डा बना हुआ है। ऐसी कठिन परिस्थिति में सुक्खा अपने बेटे चंदन को शिक्षा के लिए शहर भेजता है। चंदन बहुत ही बुद्धिमान और मेधावी छात्र है। वह गाँव का एक मात्र दलित युवक है जो शिक्षित होने का गौरव प्राप्त करता है। परंतु गाँव के सवर्ण लोगों को यह बात खटकती है। वे चंदन की पढ़ाई से ईर्ष्या करने लगते हैं। एक अछूत के बेटे का शिक्षित होना वे गाँव का अपमान समझते हैं। परिणामत: वे सुक्खा पर हर प्रकार से दबाव डालने का प्रयत्न करते हैं। वे सुक्खा के बेटे को शहर से गाँव बुलाकर सवर्णों की खेती में मजदूरी करने की सलाह देते हैं।

इस दौरान सुक्खा पर एक मुसिबत आ जाती है। वह अपनी जमीन का लगान नहीं दे पाता है। परिणामत: उसकी जमीन के छोटे-से टुकड़े की नीलामी हो जाती है। गाँव के सवर्ण लोग सुक्खा से घृणा करने लगते हैं। लोगों के द्वेष और नफरत के सामने सुक्खा लाचार हो जाता है। गाँव के सवर्ण लोग उसे कर्ज नहीं देते। दिन-ब-दिन उसकी दशा इतनी बिगड़ती है कि उसे अपनी घर-गृहस्थी चलाना कठिन हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में बेटा चंदन की पढ़ाई के लिए पैसा नहीं भेज पाता। गाँव के कामेपंडित, ठाकुर हरिनामसिंह तथा अमीर लोग उसपर दबाव डालते हैं कि चंदन को वापस बुला ले। सुक्खा जिद्दी है, वह चंदन को वापस बुलाना नहीं चाहता। वह पत्नी से कहता है, "दुक्खम-सुक्खम अपनी तो देख भी ले तो पर चंदन का क्या होगा? क्या उसकी पढ़ाई अधूरी छूट जाएगी? क्या उसकी इच्छाओं का जिन्दे ही गला घूंट जाएगा? हमने कौन से पाप किए हैं रमिया जो यह दिन देखना पड़ रहा है? हम सब दुख सह लेंगे, पर चंदन के जीवन की बर्बादी हम नहीं देख सकेंगे।"1 शहर में चंदन अपनी ही बिरादारी के अछूत और दलित मजदूरों की बस्ती में रहकर पढ़ाई करता है। शिक्षित होकर चंदन नए विचारों से प्रभावित हो जाता है। वह अपने अधिकार तथा कर्तव्य के प्रति जागृत होता है। वह सोचता है कि दलित समुदाय के लोगों की दुर्दशा का एकमात्र कारण है, शिक्षा का अभाव, जब तक ये शिक्षित नहीं होंगे, तब तक इनका विकास असंभव है। इसलिए चंदन सोचता है कि इन दलित बाँधवों को शिक्षित करके तथा संगठित करके सामंतवादी व्यवस्था से उनकी मक्ति हो जाएगी। इसलिए वह अपनी व्यथा प्रकट करता है, "दुनिया में कोई ऐसा भगवान,ईश्वर या परमात्मा नहीं है जो सर्व शक्तिमान और सर्वव्यापी है, जो सबको पैदा करनेवाला और संहार करनेवाला है, जो शाश्वत और चैतन्यमय है। सच्चाई यह है कि दुनिया में आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्मा या इस तरह की किसी सत्ता का कोई अस्तित्व ही नहीं है। ये सब मिथक है, काल्पनिक है तथा भोले-भाले लोगों को बेवकूफ बनाकर अपने स्वार्थ सिद्ध करने के उद्देश्य से चालाक लोगों द्वारा इजाद किए गए हैं।"2 चंदन अपने समुदाय के लोगों को जागृत कर उन्हें शिक्षित होने का तथा संगठित होने का मूलमंत्र देता है। सभी को संगठित करके तथा स्वयं अध्यापक बनकर अपनी बस्ती के सभी बच्चों, महिलाओं, मजदूरों पुरूषों को शिक्षित करके नए विचारों से प्रभावित करता है। उनके मन में विद्रोह की नई चेतना भर देता है। वह अपनी शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी नहीं मानता। चंदन कहता है कि शिक्षा के अभाव के कारण ही दलितों को सदियों से उपेक्षित रखा गया। इसी कारण अन्याय और अत्याचार से उनको मुक्ति नहीं मिली। वे अपने न्याय से वंचित रहे। चंदन के आंदोलनों का प्रभाव गाँव तक पहुँच जाता है।

गाँव के सभी दलित लोग संगठित होकर विद्रोह करने लगते हैं। विद्रोह की नई चेतना जागृत हो जाती है। परिणामत: गाँव के कई षडयंत्रकारी सवर्ण लोग सुक्खा को सताते रहते हैं। यहाँ तक की सुक्खा को गाँव छोड़ने तक मजबूर करते हैं, परंतु गाँव के जमींदार ठाकूर हरिनामसिंह की बेटी रजनी जो चंदन की सहपाठी है। वह सुक्खा को सहारा देती है और उसे पुन: गाँव में ले आती है। गाँव में दलित विद्रोह तथा उनका आंदोलन काफी प्रभावित हो जाता है। परिणामत: मातापुर गाँव के सवर्ण लोगों का प्रभाव नष्ट हो जाता है। गाँव के काणेपंडित को अपनी पोथी लेकर गाँव छोड़ना पड़ता है। सौदागर दुर्गादास भी भाग जाता है। सवर्ण ठाकूर हरिनाम का आतंक भी खत्म होता है। उपन्यास के अंत में लिखता है- कहते हैं, "हम व्यवस्था के

विरोधी हैं, व्यक्ति के नहीं। हम न्याय और समता के पक्षधर हैं और समानता प्राप्त करने के लिए हमें व्यवस्था को बदलना है।"3 इस प्रकार शोषण पर चली आ रही व्यवस्था टूट जाती है, बिखर जाती है और गाँव में एकता, भाईचारा और स्वतंत्रता स्थापित होती है।

युवा आक्रोश :

जय प्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास में युवा आक्रोश के दर्शन तथा रचनात्मक रूप के दर्शन होते है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र 'चंदन' प्रस्थापित समाज शोषक वर्ग के प्रति संघर्ष करता है। स्वयं दलित समाज का होने के कारण समाज में व्याप्त शोषण, अन्याय-अत्याचार का विरोध करता है। परंतु उसका विरोध वैचारिक है। वह धार्मिक आडंबर, रूढ़ि, परांपरा, अंधविश्वास, कर्मकांड के प्रति विरोध दर्शाता है। अपने लोगों को समझाते हुए वह पाखंडी के बारे में कहता है, व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी न किसी रूप में ब्राह्मण उससे टैक्स वसूल करता है।"4 वह समाज में समतावादी विचार को स्थापित कर देता है। "हमारा उद्देश्य समाज में सब लोग सब क्षेत्रों में समाज हो और इस उददेश्य की पूर्ति के लिए हमें शांतिपूर्ण और अहिंसक तरीके से संघर्ष करना है।"5 यह उसकी शांति की पथधारा है। उसके विचारों में फुले, आंबेडकर, गांधी, कबीर, मार्क्स की विचारधारा है। इसलिए अपने भाइयों को वह कहता है, "हम व्यवस्था के विरोधी है, व्यक्ति के नहीं।"6 अंत में हरनामसिंह ठाकुर के विरोधी लोग सदभावनापूर्ण व्यवहार करने लगते है। दलित-सवर्ण के बीच का संघर्ष तो उभारना नहीं चाहता। बल्कि व्यापक तथा बदले हुए विचार के साथ ठाकुर को सोचना पड़ता है। जिन लोगो ं का उन्होंने शोषण किया, दबाया, कुचला दिया, घृणा, अन्याय, अपमान किया वे लोग बदला न लेकर शांति अपनाते हैं। एक रचनात्मक गाँव का निर्माण चंदन द्वारा होता नजर आता है। यही इस उपन्यास का मार्मिक पहलू सामने आता है।

अधिकार की लड़ाई :

जयप्रकाश कर्दम के उपन्यास 'छप्पर' में कमला नामक पात्र पर समाज के उच्चवर्गीय लोगों द्वारा शारीरिक शोषण किया जाता है। कमला अत्याचार के खिलाफ लड़ती है। बलात्कार के पश्चात वह अपने बच्चे को जन्म देती है। वह कुमारी माता बनती है। यही कमला चंदन नामक उपन्यास के प्रधान पात्र के दलित आंदोलन में शामिल होकर अन्य महिलाओं को प्रेरणा देती है। समाज सेवा करती है। पीड़ित बच्चे के बारे में वह कहती है, "अब यही मेरा सहारा है। बड़ा होकर यह मेरे साथ हुए जुल्म और अत्याचार का बदला ले यही मेरी कामना है।"7 इस तरह पीड़ित कमला आशावाद लेकर जीती है। कमला समाज के दुष्कृत्यों के प्रति निरुत्साह नहीं, क्योंकि स्वयं के बरबादी का कारण खुद का सौंदर्य मानती है। इस बात का वह स्पष्टीकरण देती है, "मेरा दोष यही था कि मेरा रंग दूसरी लड़कियों से थोड़ा साफ-सुथरा था और मेरे नाक-नक्श दूसरी लड़कियों अच्छे थे। काश! मैं बदसुरत होती तो कम से कम मेरा जीवन तो बर्बाद नहीं होता।" 8 इस तरह से कमला अपने ऊपर हुए अत्याचार को स्वयं जिम्मेदार मानकर जीवन के प्रति आशावादी रहती है। 'छप्पर' उपन्यास में चंदन कारखानों में काम करनेवाले कामगारों को इकट्ठा करके सरंजामदारों के विरूद्ध लड़ता है। सब लोगों को उनके ऊपर हो रहे अत्याचार के विरोध में खड़ा करता है। इस सर्कल में "चंदन के अलावा रतन और नंदुलाल कॉलेज पढ़ते थे।.... लेकिन एक चीज सबके अंदर समान रूप में व्याप्त थी, अन्याय का विरोध।"9 ठाकुर और जमींदारों ने उन्हें अपनी खेती में काम करने के लिए मना करने के पश्चात मजदूरों का स्वाभिमान जागृत कर उन्हें खड़ा कर देता है। उनमें आर्थिक चेतना निर्माण कर देता है। यह वर्ग अपने दाम और अपने जीवन को उभारने के लिए खड़ा होता हैं। छप्पर का नायक चंदन उनके जीवन में चेतना जागृत कर देता है। वे अपने खुद के अधिकार के लिए लड़ने के लिए तैयार होते हैं।

सामाजिक विषमता:

'छप्पर' उपन्यास में सामाजिक विषमता से युक्त जातीय व्यवस्था पर आधारित अत्याचार का लेखा-जोखा प्रस्तुत हुआ है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र चंदन के पिता 'सुक्खा' अत्यंत गरीब और अर्थाभाव से ग्रस्त व्यक्ति है। अनपढ़ दलित होने के कारण घर में दो वक्त की रोटी के लिए मोहताज है। वे दलित सर्वहारा चमार समाज के है। वह अपने बेटे को पढ़ाना चाहता है, परंतु सवर्ण समाज उनका काम करने के लिए उसे पीटते है। बेटे की शिक्षा में रुकावटे पैदा करते हैं। सुक्खा को खेत का लगान न चुकाने के कारण खेत से बेदखल किया जाता है। साहूकार उसकी खेती में जानवर बाँधता है। कुछ दिन वह घबराकर गाँव छोड़ देता है। मगर फिर हिम्मत कर वापस आता है। चंदन को पढ़ाना उसका सपना है। किसी भी संकट का वह सामना करने को तैयार है। सुक्खा कहता है- "चाहे भूखे रहकर प्राण तजने पड़े मुझे, चाहे चील-कौएं नोंच नोंचकर खा जाए मेरी लाश को, लेकिन अपने जीते जी चंदन को इस नरक में नहीं पड़ने दूँगा मैं।"10 इस प्रकार का संकल्प कर सुक्खा चंदन को पढ़ाता है। नायक सुक्खा अपनी विवशताओं के विषय में सोचता है, " एक बार गला घोंटू की बीमारी फैली पशुओं में। बहुत सारे पशु इस बीमारी की भेंट चढ़ गए। सुक्खा की भैंस भी इस बीमारी की चपेट में आई और मर गई। हाथ पल्ले कुछ होता तो दूसरी भैंस खरीद लेता सुक्खा, पर चंदन की पढ़ाई का खर्च ही कैसे तैसे पूरा हो पाता था और कुछ तो कर ही नहीं सकता था वह। फिर चिट्ठी आई है चंदन की दो सौ रुपए चाहिए इम्तहान की फीस के लिए। फीस जमा नहीं हुई तो इम्तहान, संकल्प सारे करे धरे पर पानी फिर जाएगा।"11 इस तरह से खस्ता हालत के बावजूद अनपढ़ व्यक्ति शिक्षा को ज्यादा महत्त्व देता है।

मजदूर वर्ग में चेतना:

जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास में संतनगर के दलित मजदूर वर्ग यज्ञ-हवन का आयोजन करना चाहते हैं। क्योंकि उस समय बारिश की जरूरत थी। किंतु चंदन उसका विरोध करते हुए कहता है, "यज्ञ-वज्ञ से कुछ होनेवाला नहीं है। दुनिया में ऐसा कोई देवता या भगवान नहीं है जिसके द्वारा वर्षा कराए जाने की कोई संभावना हो। पत्थर के इन देवी-देवताओं या भगवानों की पूजा-अर्चा करने या उनको भेंट चढ़ाने से कुछ भी होनेवाला नहीं है। इससे सिर्फ कुछ लोगों की आजीविका चलती है। उन्हें मेहनत करके कमाने की जरूरत नहीं पड़ती।"12 इस प्रकार प्रगतिवादी और चेतना संपन्न विचारधारा को समझाकर लोगों को संगठित करके सुधार देता है। चेतना संपन्न मजदूर वर्ग को अलग पहचान देता है। जो आगे चलकर सिर्फ अपने काम और मेहनत पर ध्यान देते हैं। चंदन सोए हुए दलित मजदूरों में चेतना जगाता है वह हरिया से कहता है, " हमारा समाज न केवल सोया हुआ है बल्कि वह जंजीरों में जकड़ा हुआ है। शोषण और अत्याचार की मार से पीड़ित और जर्जर है। अत: उसे जगाने तक उसकी रक्षा और पहरेदारी करने के लिए अपनी नींद और आराम को त्याग करना ही पड़ेगा। मुझे ही क्या हर किसी को अपना अधिक से अधिक योगदान समाज के हित और उत्थान के प्रति देना चाहिए।"13 इस प्रकार वह अपने समाज के मजदूर वर्ग में चेतना जागृत करता नजर आता है।

समानता का आशावाद 'छप्पर' उपन्यास के जरिए दलित साहित्यकार जयप्रकाश कर्दम ने दिया है। अत: कहना सही होगा कि प्रस्तुत उपन्यास दलितों की चेतना का दस्तावेज है। सदियों से चली आ रही जातिव्यवस्था तथा वर्णव्यवस्था पर कड़ा प्रहार किया है। प्रस्तुत उपन्यास के पात्र समाज में व्याप्त शोषण, अन्याय-अत्याचार का विरोध करते हैं। परंतु उनका यह विरोध वैचारिक स्तर पर है। जिन लोगो ं का उन्होंने शोषण किया, दबाया, कुचला दिया, घृणा, अन्याय, अपमान किया वे लोग बदला न लेकर शांति अपनाते हैं। वह धार्मिक आडंबर, रूढ़ि, परांपरा, अंधविश्वास, कर्मकांड के प्रति कड़ा विरोध करते हुए देखाई देते हैं। प्रगतिवादी और चेतना संपन्न विचारधारा को समझाकर लोगों को संगठित करके सुधार देता है। कथ्य, संवाद, भाषा की दृष्टि से उपन्यास की प्रस्तुती उल्लेखनीय है। अत: एक रचनात्मक गाँव का निर्माण करना, यही इस उपन्यास का मार्मिक पहलू है।

संदर्भ :

1. कर्दम जयप्रकाश, छप्पर, संगीत प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1994, पृ. 21
2. वही, पृ. 21
3. वही, पृ. 104
4. वही, पृ. 31
5. वही, पृ. 79
6. वही, पृ. 35
7 वही, पृ. 50
8. वही, पृ. 50
9. वही, पृ. 36
10. वही पृ. 45
11. वही पृ. 81
12. वही पृ. 21-22
13. वही पृ,. 77

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

भूमंडलीकरण और हिंदी कविता

लैफ्ट. डॉ. रविंद्र पाटील
राजर्षि छत्रपति शाहू कॉलेज, कोल्हापुरमहाराष्ट्र – ४१६००३
*ई-मेल – **rcpatilshahu@gmail.com***

महत्वपूर्ण बात यह है कि भूमंडलीकरण है क्या? इसका अर्थ क्या है? इसकी शुरुवात कैसे और क्यों हुई? इसके फायदे और नुकसान क्या है? ऐसे अनेक सवाल पाठकों के मन में उठते हैं। अमरिका और सोवियत संघ के बीच चली शीत युध्द की समाप्ति सन १९९१ हुई। इसी समय सोवियत संघ का विघटन हुआ। इसी के परिणाम के चलते अमरिका के नेतृत्व में पूँजीपति विकसित राष्ट्रों की एक मंडली बनी। आगे चलकर इसी पूँजीपति देशों की मंडली ने देखते ही देखते पूरे विश्व की व्यापार पर अपना दबदबा कायम की। इसी के चलते अनेक समझौते होने लगे। परिणामत: पूरा विश्व एक बाजार बन गया। यहीं से भूमंडलीकरण (वैश्वीकरण) की शुरुवात हुई। वैश्वीकरण के संदर्भ में श्री. डॉ. रमेश वर्मा लिखते हैं, "पूरी दुनिया को बाजार बना देने की प्रक्रिया या चाहत ही वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण कहलाती है। इस सिद्धांत के मतानुसार भूमंडल पर निवास करनेवाला मनुष्य या तो पण्य है, होगा या पण्यभोगी है। भूमंडलीय या वैश्वीकृत व्यवस्था की पहली अपेक्षा यह है कि किसी भी देश की भौगोलिक और राजनीतिक सीमाएँ वस्तुओं तथा पूँजी के मुक्त आवागमन में बाधक न बनें। व्यापार विश्वस्तर पर निर्बंध ढंग से चल सके।"[१] भूमंडलीकरण के केंद्र में आर्थिक वर्चस्व, सांस्कृतिक वर्चस्व और मीडिया वर्चस्व ये तीन महत्वपूर्ण बिंदू है। वर्तमान समय में यह विश्व की प्रमुख व्यवस्था बन चुकी है। इस व्यवस्था का संचलन अमेरिका और कुछ पश्चिम के देश कर रहे हैं।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में भारत में भूमंडलीकरण, उदारीकरण, नवनिवेशीकरण आदि का उदय हुआ। भारत ने भी अपना दरवाजा मुक्त बाजार के लिए खोल दिया। परिणामत: पूरा देश 'ग्लोबल व्हिलेज' बन गया। गावों से लेकर महानगरों तक बदलाव दिखाई देने लगा। संयुक्त परिवार की जगह एकल परिवारों की संख्या बढने लगी। परिवार का विघटन अधिक मात्रा में होने लगा। हर कोई बाजार पर निर्भर होने लगा। इन सभी घटनाओं से साहित्य भी अच्छुता नहीं रहा। भूमंडलीकरण के दौर में मनुष्य ने एक ओर भौतिक सुखों को प्राप्त किए वहीं दुसरी ओर प्राकृतिक सुख सुविधाओं को खो दिए। इसका सीधा प्रभाव इक्कीसवीं सदी के साहित्य एवं साहित्यकारों पर भी हुआ। अनेक साहित्यकारों ने विविध विधाओं के माध्यम से भूमंडलीकरण के वास्तविकता पर प्रकाश डाला है। इनमें खासकर महानगरीय विमर्श, किसान विमर्श, आदिवशी विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श आदि विमर्शो के माध्यम से गतिशील यथार्थ पर प्रकाश डाला है। असंतोष एवं आक्रमकता इसके स्वर है।

सन १९९० के बाद हमारा देश कुछ क्षेत्रों में जमीन से उठकर शिखर की चोटी पर पहुँच गया वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक धरोहर में चोटी से जमीन पर आ गिरा। वर्तमान समय में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की जगह अमरिका और पाश्चात्य देशों की देन भूमंडलीकरण ने लिया। स्वदेशी चीजों पर विदेशी ने अपना अधिकार स्थापित कर नया ब्रँड बना लिया। इसके संदर्भ में कवि बोधिसत्व लिखते हैं,

"धीरे धीरे उठान हुआ
लाल भात का।
पहले थाली से फिर रसोई से
अहदन से फिर कोठिला से जहाँ रखे जाते थे।
फिर खेत से।
उस न महकनेवाले काले से चावल की,
उस खूरदूरे अन्न की जगह
आए धीरे-धीरे महकनेवाले
सफेद भूरभूर चावल।"[२]

प्रस्तुत काव्य पंक्तियों के माध्यम से कवि यह स्पष्ट करना चाहते है कि भूमंडलीकरण का सीधा प्रभाव अपने खानपान पर हुआ है। थाली में परोसी हुई देशी चावल की जगह विदेशी सुगंधी चावल ने ली है। जिस प्रकार देशी खानपान की संस्कृति पर भूमंडलीकरण का प्रभाव हुआ है ठिक उसी प्रकार का प्रभाव देशी पशुओं पर भी हुआ है। देशी गायों की नस्ल खत्म होती जा रही है। वहीं दुसरी ओर विदेशी की पुजा हो रही है। देशी नस्ल की कुत्ते धीरे-धीरे कम हो रहे हैं और विदेशी नस्ले बढ रही है। इसके संदर्भ में कवि लिखते हैं,

"जैसे उच्छिन्न हुआ लाल भात
वैसे ही कहाँ खों गए छोटे-छोटे देशी बैल खो गए कहीं
कम दूध देनेवाली उनकी माँयें
खराब नस्लवाली कपिला, कृष्णा गाय।
यों...तो यह सब धीरे-धीरे हुआ .....पर हुआ।
देशी भैंस देशी कुत्ते.....देशी अन्न देशी गाय।
सबको कम गुणी कहकर खत्म किया गया।"[३]

आज का समय बाजार का समय है। आज बाजार में ओ सबकुछ उपलब्ध है जिसे उपभोगता चाहता है। 'मॉल्स' संस्कृति ने बाजार का स्वरूप ही बदल दिया है। ग्राहक जो चाहता है वो सब एक ही जगह पर उपलब्ध है। एकांत श्रीवास्तव की 'बाजार' कविता की कुछ पंक्तियों प्रस्तुत है

"यहाँ थोडे से लोग विक्रेता हैं बाकी सब क्रेता
बाकी सब में बहुत से लोग क्रेता भी नहीं हैं
जो क्रेता नहीं है यानी जिनकी जेबें खाली है
वे बाजार के वृत्त से बाहर हैं
चढ गई हैं किंमते चीजों के आकाश में
गिर गया है आदमी का बाजारभाव।"[४]

भूमंडलीकरण के कारण सबसे बडा रुपयावाली बात सच साबित हो रही है। जिसके पास पूँजी है उसके पास सबकुछ है। जिसकी जेब खाली है वह भिखारी है। जलजीरे और नींबू पानी की जगह कोका-कोला और पेप्सी जैसी कंपनियों ने ली है। पॉकेट बंद खाने की संस्कृति तेजी से बढ रही है।

इक्कीसवी सदी के कवियों ने वास्तविकता को अधिक महत्व दिया है। अनेक कवियों ने स्त्री के संघर्ष का चित्रण किया है। उसकी पीडा को वाणी दी है। निर्मला पुतुल की 'उतनी दूरमत ब्याहना' चर्चित कविता है। प्रस्तुत कविता में कवियत्री अपने बापू से कहती है कि मेरी शादी बहुत दूरवाले रिश्तेदारों के यहाँ मत करना, जहाँ मुझसे मिलने आने के लिए तुम्हें अपनी बकरियाँ बेंचनी पडें।

"मुझे उतनी दूर मत ब्याहना
जहाँ मुझसे मिलने जाने खातिर
घर की बकरिया बेचनी पडे तुम्हें
मत ब्याहना ऊस देश में
जहाँ आदमी से ज्यादा ईश्वर बसते हैं"।[५]

भूमंडलीकरण के इस दौर ने कवियों को अनेक विषयों पर लिखने के लिए मजबुर किया है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि विविध पहलुओं का समावेश इसके अंतर्गत है। वैश्वीकरण के समय की आर्थिक विषमताएँ कवि मन को लिखने के लिए मजबूर कर देती है। कवि भूमंडलीकरण की वास्तविकता को उद्घाटित करते हुए लिखते हैं,

"और मैं सोचने लगा
कि दो रुपये का आलू
कैसे हो जाता है एक सौ साठ का अंकल चिप्स?
क्या वहीं से आया है डंकल
जहाँ से आये थे अंकल जी।"[६]

भूमंडलीकरण दे दौर में वैश्वीक बाजार एक क्रूर किस्म की पूँजीपति व्यवस्था को जन्म दे रहा है। पूँजीपति व्यवस्था से ही उपभोगतावादी गलत संस्कृति की जन्म हुई है। इस उपभोगतावादी संस्कृति ने रचनाकारों के दिल को झकझोर दिया है। इस व्यवस्था ने व्यक्तिवाद को बढ़ावा दिया है। भूमंडलीकरण ने पूरी दुनिया को 'ग्लोबल विलेज' बना दिया है। इस पूरी व्यवस्था का कप्तान अमरिका है। यह एक नया आर्थिक साम्राज्यवाद है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के माध्यम से पूरी दूनिया को अपनी मुठ्ठी में किया है। परिणाम के चलते अमरिका का डॉलर सबका बाप बन गया है । कवि देवी प्रसाद मिश्र जी की काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य है,

"देश में एक और बहुराष्ट्रीय कंपनी के आने की
घोषणा होती है और एक आदमी
जिसके पास अब भी आदमी होने की स्मृति बची
होती है, सोचता है
वह अपनी राष्ट्रीयता किस कुँए में फैंक दे।"[७]

भूमंडलीकरण के प्रभाव के चलते आज हरचीज बाजार में बेची जानेवाली वस्तु बन गयी है। मनुष्य चक्का-चौंध बाजार में कटपुतली बन गया है। बाजार ने मानव शरीर के साथ-साथ पानी, शिक्षा व्यवस्था, स्वास्थ आदि को भी नहीं बक्शा है। कवि इन बातों का विरोध करते है,

"वे बनाऐंगे सामान
हम वहीं खरीदेंगे
वे तय करेंगे सदी का रस्ता
हम नहीं चलेंगे
मोहक विज्ञापनों का असर नहीं होगा हम पर
एक मुट्टी अन्न रोज खायेंगे
और बचाऐंगे बीज
दुनिया में
विरोध सारे हथियार जब चक्र जाऐंगे
फिर भी बचा रहेगा ह्यारा असहयोग

हमारी आत्मनिर्भरता।"[८]

आज भूमंडलीकरण के होड में हर कोई पेंटेन्ट के पिछे पडे हैं। पेंटेन्ट एक व्यापार बन गया है। चीजों को पेंटेन्ट करके अपने अपने नाम पर सुरक्षित रखने की नई परंपरा चली हैं। इस प्रसंग का चित्रण करते हुए कवि संजय कुंदन लिखते हैं,

"विजेता आयेंगे और
हमें जीतकर ले जायेंगे
तब तुम अपने खेत की
वे हम ले जायेंगे
और वे देंगे अनाज मंडियों में
फिर बिकने आऐंगे तुम्हारे ही घर
गले में एक विचित्र नाम का पट्टा डालें
तब कैसा लगेगा तुम्हें।"[९]

अत: यहाँ कवि स्पष्ट करते है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों की साजिश ने वैश्वीकरण के नाम पर दुनिया को गुमराह किया है।

निष्कर्ष :

शीत युध्द की समाप्ति के बाद सोवियत संघ का विघटन हुआ। इसी के परिणाम के चलते अमरिका के नेतृत्व में पूँजीपति विकसित राष्ट्रों की एक मंडली बनी। आगे चलकर इसी मंडली ने पूरे विश्व में अपना दबदबा कायम किया। परिणामत: विश्व एक बाजार बन गया। परिणाम के चलते साहित्य भी इससे अछुता नही रहा। भूमंडलीकरण के केंद्र में आर्थिक वर्चस्व, सांस्कृतिक वर्चस्व और मीडिया वर्चस्व ये तीन महत्वपूर्ण बिंदू है। भूमंडलीकरण का सीधा परिणाम परिवार, खानपान, किसान, छोटे-व्यापारी, देशी पशुओं, पर्यावरण आदि सभी पर हुआ है। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव देश के सांस्कृतिक धरोहर पर हुआ है। इन सभी बिंदूओं को साहित्यकारों ने अपने साहित्य में उठाया है।

संदर्भ संकेत :

१) सं.डॉ. नवीन नंदवाना, समकालीन कविता विविध संदर्भ, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम, २०१४, पृष्ठ १६६.
२) बोधीसत्व, खत्म नहीं होती बात, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, २०१०, पृष्ठ ७९.
३) वही, पृष्ठ ८०.
४) एकांत श्रीवास्तव, बीज के फूल तक, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, २००३, पृष्ठ ३८.
५) बोधीसत्व, दूख तंत्र भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, २००५, पृष्ठ ५०.
६) दिनेश कुशवाह, हंस सितंबर १९९४, पृष्ठ ५०.
७) देवी प्रसाद मिश्र, इंडिया टुडे, साहित्य वार्षिकी, २०००, पृष्ठ १४१.
८) निलम उपाध्याय, इंडिया टुडे, साहित्य वार्षिकी, १९९५, पृष्ठ २१७.
९) संजय कुंदन, हंस, अप्रैल, १९९९, पृष्ठ ५०.

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

हिंदी साहित्य में आदिवासी साहित्य की विकास धारा: एक परिपेक्ष्य के रूप में

डॉ. आर. पी. भोसले
सहयोगी प्राध्यापक, छत्रपति शिवाजी कॉलेज, सातारा
ई.मेल- bhosalerajendra501@gmail.com

प्रस्तावना :

भारत में आज तक साहित्य पर जो भी लेखन कार्य हुआ है, प्राचीन से लेकर आज तक उसमें गद्य-पद्य साहित्य, भक्ति साहित्य, समकालीन साहित्य, स्वतंत्रापूर्व, स्वातंत्र्योत्तर, आधुनिकतावाद उत्तर आधुनिकता, नारी लेखन, नारी विमर्श, दलित लेखन, दलित विमर्श एवं दलित साहित्य आदि है। इन सब पर विचार करें तो दिखाई देता है कि इन सबमें हमारे देश के जो प्रमुख आदि निवासी हैं, जो आज भी जंगलो में अपना गुजर बसर करते है, उनकी ओर किसी का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ। महाभारत में सिर्फ एकलव्य को देखते है या सुनते है जो जंगल निवासी भील राजकुमार था। तो रामायण में हम निर्बंध राजा को सुनते है।

साहित्य ही हमारे समाज का दर्पण होता है। लेकिन आज तक साहित्य ने आदिवासियों को कलम द्वारा उद्घाटित नहीं किया। जब हम भारतीय हिंदी साहित्य पढते है तो उसमें हम बाहर से आनेवाले और यहाँ आकर बसने वाले लोगों का ही साहित्य पढते हैं। बाहर से आकर जिन्होंने यहाँ राजकाज किया इस देश को चलाया। उनकी शौर्य गाथाएँ, कथाएँउनके द्वारा सामान्य लोगों पर किए गए अन्याय, अत्याचार या दानता को ही रेखांकित किया गया और उनपर साहित्य लिखा गया। पर जो यहॉ मूल आदिम है, जिनका अपना इतिहास है, अपनी कथाएँ है, साहस है, शौर्य है। ऐसे लोगों पर किसी ने अपने विचार नहीं तथा आय उसे साहित्य से परे रखा है। वैसे तो हिंदी साहित्य के आदि मध्य और, आधुनिक काल में इसका विचार किया जाना चाहिए था। पर विद्वानों ने उस साहित्य की ओर लक्ष्य केंद्रित नहीं किया "आदिवासी साहित्य याने कि जिसमें अपनी भाषा में लोकगीत कथाएँ, प्रथाएँ आदि का वर्णन होता है। वही आदिवासी साहित्य कहा जाता हैं।"[1]

आदिवासी साहित्य वर्ष और काल के आधार पर तीन कालों में विभक्त किया जाता हैं। आदिवासी लोगों की भाषा युरेशिया भाषा परिवार में आती है। जिसे आस्ट्रो एशियाटिक कहा जाता है। यह भाषा भारत के झारखंड, बिहार, पश्चिम बंगाल, उडीसा असम, मध्य प्रदेश आदि राज्यों के विभिन्न भागों में बोली जाती हैं। संथाली भाषा को संविधान की 8 अनुसूची में शामिल होने का सौभाग्य 22 दिसंबर 2003 को मंगलवार दिन एक स्वर्णिम रूप में याद किया जाएगा। इस संबंधी रमणिका गुप्ता जी का मानना है कि "आदिवासी साहित्य अक्षर सें वंचित रहा, इसलिए वह उसकी कल्पना और यथार्थ को लिखित रूप में न तो साहित्य में ही दर्ज कर पाया और न इतिहास में ही । लोकगीतों, किवदंतियों, लोककथाओं तथा मिथकों के माध्यमसे लोकगान में उसकी गहरी पैठ है। इनमें उसकी संपूर्ण परंपरा, इतिहास और उसकी गौरवशाली शौर्य-गाथा वर्णित हैं।"[2]आदिवासी साहित्य तीन कालों में विभाजित किया हैं।

1) आदिकाल :

आदिवासी साहित्य का आदिकाल इ.स.1854 पूर्व का साहित्य माना जाता हैं। यह साहित्य 'होड' अवतार या लोकयुग के नाम से प्रचलित है। आदिकाल में आदिवासी होड, मुंडारी आदि नाम से परिचित थे। आदिकाल का समस्त आदिवासी साहित्य मौखिक रूप में ही उपलब्ध है। इनके मौखिक साहित्य में कहानी, गीत, गाथा, कथा, मुहावरे, लोकोक्तीयॉ, कहावतें, कुकुम आदि प्राप्त होते है। आदिवासी लोकसाहित्य में मानव की परंपरागत भावनाएँ एवं चेतनागत अभिव्यक्तियों का लेखा-जोखा निहित है। आदिवासियों के उदभव ओर विकास की कथाएँ इनके लोकसाहित्य तथा लोकगीतों में हमें मिलती है। संथाली साहित्य में कई तरह के पौराणिक मिथक पाए जाते है। यथा- तत्व शास्त्रीय मिथक, आख्यान मिथक आदि। संथाल लोग प्रकृति पुत्र हैं। सदा ही प्रकृती की गोद में खेलते हैं: उसे पूजते हैं। **आदिकालीन आदिवासी साहित्य की विशेषताएँ:**

1) लोकगीतों में भावों की अभिव्यक्ति :

आदिवासी लोकगीतों में भावों की अभिव्यक्ति प्रचुर मात्रा है और वह स्वाभाविक भी है। गीत ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने भावों को विविध रूप में अभिव्यक्त कर सकते है। उसी तरह आदिवासी लोकगीत है। जो हृदय से निकली हुई लय ताल है। जिस प्रकार जंगल में पक्षी उन्मुक्त और स्वच्छंदी गाते है, उसी प्रकार लोकगीत स्वाभाविक स्वरों में हृदय से फुट निकलते है। इनमे एक सरल काव्य होता है, भावों की कहीं पर भी खिंचतान नहीं होती। इसमें जीवन की सच्ची झलक, भाई-बहन की विरह-गाथा, युगल प्रेमियों के मिलन-विरह के गीत, किसानों की गरीबी, सौतिया डाह आदि भाव इन गीतों द्वारा व्यक्त होता है।

वर्षा अधिक होने के कारण किसान की दैयनिय स्थिति होती है। खूब वर्षा हुई पानी से खेत की सारी मिट्टी बह गई है और उसके साथ पूरा अनाज भी चला गया। अब हम क्या खायेंगे। जब मेहमान आयेंगे तो उनका मान सम्मान कैसे करेंगे। बाल बच्चों को क्या खिलाऐंगे। उनके लोक गीतों में जीवन का ज्ञान, त्रासदी, सुख-दु:ख सभी समाया है।इन गीतों की शैली सरल और गेय प्रधान होती है। लोकगीत सहज, स्वाभाविक, स्वच्छंदता और सरलता गेय के साथ मानव के सुख-दु:ख,मिलन-बिछुडन
का इतिहास है। इनमें स्नेह और करुणा का पूट है। इन गीतों की भिन्नता में एकरूपता समाई हुईहै। यही इन गीतों की स्वाभाविकता का रहस्य प्रतीत होता है।

2. प्रकृति का मानवी रूप में चित्रण :

आदिवासी लोककथाओं में और लोकगीतों में प्रकृति का वर्णन मानवी रूप में किया गया है। इन कथाओं में आदिवासियों की बोली कल्पना की उडान है। इन कथाओं में उनका जीवन और संस्कृति का जैसा सर्वव्यापी रूप दिखाई देता है वैसा कहीं अन्यत्र नहीं है। आदिवासियों के लोककथा नुसार रैया राक्षस की बेटी बासिन कन्या थी। वह बासिन कन्या के पास गया और संपूर्ण बातें विशद की। इस पर बासिन(बॉस) कन्या ने कहा, ""मैं धरती पर अपना समस्त सौंदर्य और शृंगार लेकर आकाश दुल्हे की बारात की प्रतीक्षा करती रही। आकाश ने दूर से उनका सौंदर्य देखा और कामावेग में उसका बीज-पतन हुआ| इस बीज से मछलियॉ और कीडे पैदा हुए| आकाश की सवारी के रूप में हीरे-जवाहरातों से जुडा हुआ घोडा आज भी इंद्रधनुष्य बनकर चमकता है|''[3] ऐसी अनेक कहानियॉइन आदिवासियो में देखने को मिलती है| लोकगीतों में भी प्राकृतिक गान दिखाई देता है| उसमें लोक का जीवन व्यक्त होता है|

3. देशकाल पात्र और घटनाओं के अनुरूप कथा-विकास :

आदिवासी आदिकालीन साहित्य में लोककथा, लोकगाथा, किंवदंतियाँ तथा मिथक कथाएँ सभी देश काल क्रमानुसार चलते हैं| आदिवासी लोककथाओं या लोकगाथाओं में आदिकालीन समय का वातावरण के अनुसार चाहे वह रामकथा हो या महाभारत कथा या फिर हरिश्चंद्र कथा उसी अनुसार घटना क्रम को महत्त्व देते हुए पात्रोंका चुनाव किया जाता है और कथा को एक विकसित चरम सीमा पर रखा जाता है| उनकी कथाओं के पात्र कल्पना के है और गाथाए भी कल्पना की उपज है|

4. पशु पक्षी द्वारा संदेश भेजना :

आदिवासी आदिकालीन साहित्य की लोककथाओं में प्रमुख रूप से एक-दूसरे को संदेश भिजवाने के लिए पशु या पक्षी का सहारा लिया जाता है| एक प्रेमी कहता है – पहाड पर उच्च समतल भूमि में गॉव बसा है| जहॉ मयूर और नील गाय चर रहे है| काली बदली में जैसे चंद्रमा छिपता है, मैं उसी प्रकार तुझे छिपा लूँगा| जिस प्रकार सडकों पर पत्ते उडते है, उसी तरह तुझे उडाकर ले जाऊँगा| मैने कोआ के द्वारा कागज लिखकर भेजा है तथा सुआ पक्षी द्वारा संदेश भेजा है|

5. जादू एवं जादू शक्तियों का महत्त्व :

आदिवासी आदिकालीन साहित्य में जादू-टोना एवं तंत्र-मंत्र जाननेवाले गुनियाओं, ओझाओं पेडों के तीन गुरु हैं। आदिवासी साहित्य जादुई शक्तियों पर विश्वास करता है तथा उनमें तंत्र-मंत्र का चलन है।आदिवासी आदिकालीन साहित्य इन प्रवृत्तियों के द्वारा देखा जाता है कि आदिकालीन साहित्य अलिखित ही रहा है। जिसे अलिखित साहित्य कहा गया है । अलिखित साहित्य के कहानी, गीत, कथा आदि सुनने वाले अलग अलग होते है। यह सब कई रूपों में मिलते हैं। लेकिन इनका सारांश या सार समान होता है। कहानियाँ हास्यपूर्ण तथा मनोरंजक और उपदेशात्मक होती हैं। आदिवासी साहित्य लोकजीवन से जुडा हुआ है।

2. मध्यकाल (इ.स.1854 से 1945 तक):

आदिवासी आदिकालीन साहित्य अलिखित होने के कारण उसे 1854 इ.स. पू माना गया है। जब आदिवासियों की बुद्धि जागी, उनमें चेतना आई, वे अपने ऊपर हो रहे अन्याय-अत्याचार को समझने लगे, उससे संघर्ष करने लगे, तब उस युग को मध्यकाल कहा गया। इस युग के साहित्य को खेखाड अवतार का साहित्य कहा जाता हैं। इस काल में संथाली साहित्य लिखित रूप में मिलता है। यह साहित्य लिपिबद्ध हुआ। इसमें गाथा, गीत, काव्य, कथा आदि सभी सम्मिलित हैं। इससे आदिवासियों की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का परिचय प्राप्त होता है।

19 वीं शताब्दी के अंत में बिरसा और उनके आंदोलनों के संबंध में खासकर 1895 से 1900 तक की उपाधि की सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इसमें विभिन्न अभिलेखों, रिपोर्ट, बिरसा की कहानी आदि देखने को मिलती है। आजादी के बाद भारत में कहानियों, नाटको और गीत विधाओं में बिरसा के संबंध में एक बाढ सी आ गई है।

3) आधुनिक काल (1945 ई. से अब तक):

सन 1945 से अब तक आदिवासी साहित्य का तीसरा युग है। इस युग में अनेक गीत, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विधाओं का लेखन अपनी चरण सीमा पर था। इस काल में संथाली और मुंडा साहित्य अपनी प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है। इस काल के साहित्य को आधुनिक काल का संथाली अवतार तथा मुंडाओ की क्रांतिकाल मानते है। इसी काल में परंपरागत कहानी, गाथा, कथा, पहेलियाँ, मुहावरें तथा लोकोक्तियों का संकलन एवं प्रसारण हुआ। कविता, कहानी, गीत, उपन्यास, नाटक आदि का निर्माण तथा प्रचार –प्रसारण हुआ । साथ ही आलोचनात्मक लेखन तथा शोध लेखन एवं प्रसारण हुआ है ।"परंपरागत लोकगीतों का प्रमाण जादा है और हर पर्व त्यौहार, ऋतु पर यह गीत गाए जाते है।"[4]लोकगीत आदिवासी साहित्य की एक महत्वपूर्ण रचना है, जिसके माध्यम से हम आदिवासी लोगों के नजदीक पहुँच सकते हैं। इन गीतो में भाव, भक्ति और आत्मा का मिलन दिखाई देता है। यह लोकगीत हमें भावविभोर कर देते है।

परंपरागत लोककथाओं का नायक मानव न होकर पशु-पक्षी, पेड – पौंधे, देव- दानव आदि है। "इन कथाओं में प्रमुख रूप से प्रकृति को ही मानव जीवन का प्रतिनिधि बताया गया है।"[5] इन कथाओं में आचार-विचार, परंपरा- विश्वास, विभिन्न प्रथाएँ, जीवन – हर्ष – विवाद, अतीत एवं वर्तमान के सभी गुण विद्यमान है । इन कथाओं का न कोई शिल्प है, न शैली । लेकिन कथाओं में मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में आदिवासी काव्य तथा कथा साहित्य की बाढ सी आ गई है। इन कवियों ने कविता में नए प्रतीक, बिम्ब और सौंदर्य बोध प्रदान किए है। भुजंग मेश्राम का 'उलगुलान' कविता संग्रह बहुचर्चित रहा है। प्रो. इंद्रजीत उराव का 'खल्ली अयंग', डायन- प्रथा पर आधारित 'महुआ गिरे आधी रात' नाटक बहुचर्चित रहा है। विविध समस्यासुचक नाटक लिखकर साहित्य हो गतिशीलता प्रदान की है।

आधुनिक युग में आदिवासी आंदोलन बिरसा मुंडा विद्रोह, स्वतंत्रता संग्राम आदिवासियों पर आधारित उपन्यास भी लिखे गए। इस युग में आदिवासी संथाली और मंडा लेखको ने कई उपन्यास लिखे है ।आदिवासी उपन्यास में सन 1956 ई. में प्रस्थान बिंदु है। इसके साथ-साथ कहानी,

निबंध, जीवनी, गीत की परंपरा रही है। कहानी में स्त्री विमर्श की प्रधानता और सामाजिकता की प्रधानता का चित्रण किया गया है। इन निबंधों, जीवनी तथा लेखों के माध्यम से समाज-सुधार, शिक्षा-प्रचार–प्रसार तथा राजनीति गतिविधियोंको महत्व दिया गया है।

निष्कर्ष :

इससे यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी साहित्य की परिभाषा, स्वरूप, उद्भव और विकास के बरे में जहाँ कहीं से भी सामग्री प्राप्त हुई । उन सामग्री को एकत्रित कर यहाँ दर्शाने का विनम्र प्रयास हुआ है। इस साहित्य में वह सब कुछ है, जो हम अपने हिंदी साहित्य में देखते हैं । पर विडम्बना यह है कि या तो हमने उधर देखा ही नहीं या फिर हमारी दृष्टि उस साहित्य की ओर गई ही नहींहै।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉ. शहेनाज शेख बेगम अहेमद, 'आदिवासी साहित्य स्वरूप एवं विश्लेषण', समता प्र. प्र.सं. 2014 कानपुर , पृष्ठ 13
2. रमणिका गुप्ता, 'आदिवासी स्वर और नई शताब्दी', अभिव्यंजना प्र. प्र.स. 2016 दिल्ली पृ. 10
3. हरिनारायणदत्त , 'आदिवासी स्वर', समता प्र. प्र.सं. 2005, कानपुर, पृ.187
4. डॉ. शहेनाज शेख बेगम अहेमद, 'आदिवासी साहित्य स्वरूप एवं विश्लेषण', समता प्र. प्र.सं. 2014 कानपुर , पृष्ठ 27.
5. डॉ. शहेनाज शेख बेगम अहेमद, 'आदिवासी साहित्य स्वरूप एवं विश्लेषण', समता प्र. प्र.सं. 2014 कानपुर , पृष्ठ 27

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

सुनील अवचार यांच्या कवितेतील ग्लोबल वर्तमान

डॉ सुनिता रामचंद्र कांबळे
कला, वाणिज्य आणि विज्ञान महाविद्यालय, कोवाड

बदल हा निसर्गाचाच स्थायीभाव आहे. त्यात नैसार्गिकरित्या आत्यंतिक बौद्धिक उर्जा प्राप्त झालेल्या मानवाने बदल हा प्रकाशवेगाने खेचून आणला आहे. जग बदलाची प्रक्रिया सातत्याने जागतिक आणि देशपातळीवर घडताना दिसून येते. जुन्या व्यवस्था कोलमडून नव्या व्यवस्थांची स्थापना सातत्याने घडते आहे. समकालीन समाजव्यवस्थेचे निरीक्षण करता, जगतीकीकारांच्या रेट्यात सगळे देश अगदी खेडीदेखील एक कुटुंब झाले आहे. परंतु जागतिक पातळीवर येणारे आर्थिक शिथिलीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपन्यांचा प्रभाव आणि एकच बाजारपेठ झालेलं अख्ख जग यांचा प्रचंड मोठा परिणाम राजकारण, समाजव्यवस्था, कुटुंबव्यवस्था, संस्कृती, साहित्य ह्या जीवनाच्या वेगवेगळ्या पैलूंवर झालेला दिसून येतो. अर्थव्यवस्था हा माणसाच्या आणि पर्यायाने देशाच्या जगण्याचा कना असल्याने आर्थिक बदल हे समाज परिवर्तनाला मोठ्या प्रमाणात कारणीभूत असतात आणि परिवर्तन जेंव्हा काही मुठभर लोकांच्या हाती जाते, तेंव्हा ते सामान्य जनतेसाठी अत्यल्प विधायक म्हणजेच फायदेशीर गोष्टींचा लाभ समाजातील उच्चावर्गाला अधिक मिळतो. आणि विघातक परिणाम निम्न स्तरावर अधिक होतात, ज्याची फारशी परवा व दुख कुणालाच नसते. आर्थिक दृष्ट्या दुर्बल समाज, दलित आदिवासी आणि स्त्रिया हा सर्व वर्ग जागतिकिकारणामुळे अधिक विकलांग झाला आहे. अमर्त्य सेन म्हणतात कि, *जागतीकीकरनांचा विचार एका बाजूला जगाने पूर्वी कधी पहिली बावती इतकी प्रचंड श्रीमंती आणि दुसर्या बाजूला अभूतपूर्व दारिद्र्य यांच्यामुळे निर्माण झालेला असमतोल व असमानता यांच्या संदर्भात करायला हवा.* (संदर्भ : अश्विनी धोंगडे यांच्या जागतिकीकरण आणि स्त्रीवाद या शोध्निबंधातून) समाजावर अनेक अंगणी हा होणारा परिणाम सहा पद्धतीचा आहे याचे अत्यंत सूक्ष्म चित्रण सुनील अवचार यांची कविता करते.

सुनील अवचार अशा कनेक स्तरातल्या असमतोल वास्तव परिस्थितीचा वेध आपल्या कवितेमध्ये घेतात. सामाकालामध्ये परिस्थितीचा अत्यंत समर्पक असा मागोवा त्यांनी आपल्या कवितांमधून घेतला आहे. ग्लोबल वर्तमानात होत असणारी माणसाच्या मनाची आणि सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, कौटुंबिक आणि सांस्कृतिक अशी अनेक आंदोलने सुनील अवचार यांची कविता टिपते. सामान्य माणसाची उद्विग्नता अत्यंत नेमकेपणाने त्यांची कविता ठाव घेते. ते म्हणतात. कॉमन मॅन / जगात आहे सगळीकडे / राष्ट्रा-राष्ट्रात: / गावागावात: नगरा नगरात /आणि जंगल दऱ्यात /कॉमन मॅन/ रडतो ...हसतो....रागावतो..../विनोद करतो....वाकुल्या दाखवतो....नक्कल करतो....(पृ.७,कॉमन मॅन)

हे सगळ करतो कारण परिस्थितीसमोर तो हतबल आहे. या काळात निर्माण झालेली स्थितीभिन्नता ही कविता अधोरेखित करते. आजच्या भांडवलदारी व्यवस्थेत आदर्श मूल्ये, व्यक्ती आणि तत्वज्ञान हे नव्या दृष्टीने परिस्थितीला सामोरे जात असतानाचे अत्यंत नेमके निरीक्षण नोदावले आहे. ते म्हणतात,

कॉमन मॅनच्या ...डोळ्यात उतरू लागल्या आहेत ख्रिस्ताच्या यातना / तो पाहतो आहे जगाकडे बुद्धाच्या करुण डोळ्याने / करतो आहे चर्चा चार्वाकाच्या विवेकाने / आणि कंदिलाच्या उजेडात चाळतो आहे 'दास कॅपिटल' ची पाने / गटे : नेरुदा: कबीर: तुकाराम / आदींच्या कविता वाचून मग /हळूच गॉर्कीच्या आईच्या कुशीत शिरतो....(पृ.७, ग्लोबल वर्तमानाच्या कविता)

जागतिकीकरण – खाजगीकरणाच्या माद्यमातून अधिक गतीनं आलेल्या जात धर्म-वंश-अर्थ यातून चंगळवादी, साम्राज्यवादी व्यवस्थेने माणसाला विचारशून्य करण्याची प्रक्रिया अधिक गतिमान केली. जागतिकीकरणाचे बळी ठरणाऱ्या सर्व समूह घटकांना आपल्या विचारकक्षेत सामाऊन घेणारी ही कविता असल्यामुळे स्वाभाविकच ही कविता या काळाचे अपत्य म्हणून जन्माला आली आहे. या काळातील संदर्भांच्या सगळ्या खाणाखुणा सुनील अवचार यांची कविता वेध घेते. त्यामुळेच ही कविता समकालीन वास्तवाची कालसंहिता मांडण्यात यशस्वी ठरत आहे. म्हणून आपसूकच या काळात बुद्धच रोबोसॅपियनला प्रश्न विचारतो कि तू नेमके या तंत्रज्ञानाच्या युगात काय करणार आहेस. कवी लिहितो,

रोबोसॅपियनला बुद्धाने प्रश्न केला/ तू माणसा-माणसांच्या क्लोनमध्ये / भेद करणार आहेस?/ तू भ्रूणहत्या करणार आहेस?/ परग्रहावरही राष्ट्राराष्ट्रात सीमारेषा आखणार आहेस?/ मंगळावरही तू मस्जिद-मंदिर बांधणार आहेस?/ संवेदनेला आर्थिक साम्राज्याशाक्तीच्या बेड्या ठोकणार आहेस?/ पुन्हा असत्याचे काल्पनिक वेद रचणार आहेस?/ की / माणसाला प्रेषित ठरविणार आहेस?/ रोबोसॅपियन , तू नेमके काय करणार आहेस? (पृ.१३, रोबोसापिओन तू नेमके काय करणार आहेस.)

आधुनिक काळातील तंत्रज्ञान प्रगत होतं आहे पण मूल्ये आणि महासत्तेच्या झेंड्याखाली मानवी हक्कांची होणारी पायमल्ली मात्र थांबत नाही, म्हणून आधुनिक यंत्रे सुद्धा मुल्याहीन कामे करतील असे कवीला वाटते. या सगळ्या वास्तवात माणसाचा नामशेष होईल कि काय अशी शंक कवीला वाटते. कवी जेंव्हा जुलुसात सामील होतो कारण त्याच्यामध्ये अजून क्रांतीचे पोटेंशीयल त्याच्यामध्ये शिल्लक आहे असे कवीला वाटते. हे सगळं करीत असताना तो स्वताचेच चिंतन करीत म्हणतो आहे,

मी करत असतो चिंतन तेंव्हा-/ धुंडाळत असतो वाघ/डायनासोर ह्या प्राण्यांच्या बरोबरीने/ माणसाचा नामशेष होण्याचा नंबर/ किंवा क्लोनमधील माणसाच्या हृदयाचे ठोके/ त्याच्या मेंदूतील जीवंत विवेक/ किंवा ग्लोबल वार्मिंग मध्ये स्लम-एरिया किती क्षणात बुडणार?/ असा भीतीदायक अंदाज मी घेत असतो.(पृ.१७) सुनील अवचार यांची कविता संबंध सामाजिक वास्तवाचा सूक्ष्म वेध घेण्याचा प्रयत्न करते. तो वेध घेताना वाचकाला समकाळातील अनेक अनभिज्ञ गोष्टी, घटना आकलन व्हायला लागतात, त्यांच्या कवितेतील ग्लोबल वर्तमान किती भयंकर आहे याची अनुभूती आजूबाजूचे वास्तव पाहत असताना आकलन होते. त्यांची कविता पाठीशी किंगमेकर/ गॉडफादर नसलेल्यांची आहे, ज्यास पॉलिटीकल बॅकराउंड नाही, कॅलीबर न स्वीकारणारी ब्लाईन्ड फॉलो सिस्टीम जी समान्य लोकांना टकल्या टायरसारखी कुजत राहायला लावते.

'बी.पी.एल.चा गहू: देत नाही जगु अन देत नाही मरू !' या कवितेने तर आख्खी व्यवस्था कवेत घेऊन वाचकांच्या समोर ठेवली आहे. विद्यापीठाच्या चकरा मारून मिळालेल्या पदवीला ते पुंगळी असे संबोधतात. आटापिटा करून तो डिगरी मिळवितो आणि शिकवतो मात्र तासिका तत्वावर, ज्याला विध्यार्थ्यासकट कुणीही गंभीर घेत नसल्याची खंत कवीला वाटते. डिजिटलच्या युगात सगळ्याच गोष्टी आभासी झाल्या आहेत. कवी लिहितो,

मी अपत्य डिजिटल युगाचे! – पण आभासी/ मोबाईलवरून बोलतो – गरज्वादी म्हणून/ गुगलवर सर्च करतो- 'सोबत': 'आम्ही' आणि 'ते'/ आम्ही: wwwजॉब डॉट com वर / ते wwwसेक्स डॉट comवर (पृ.१५, ग्लोबल वर्तमानाच्या कविता). जगण्याचे आणि जागविण्याचे सगळेच संदर्भ बदलत चालले आहेत. सामान्य माणसाच्या अस्तित्वाच्या सगळ्या खाणाखुणा परिस्थितीने बदलून टाकलेल्या आहेत. गरिबीत अख्खी तरुण पिढी पिचून गेली आहे. तडजोड करत जगायला लागणारे जीवन अत्यंत भयावह आहे. कवी म्हणतो,

माझी रूम लो रेटची / टॉयलेट स्वतः वॉश करणे हे एक राज/ कोणी गेस्ट आला तर वेगवेगळे चार्ज/ टेबलावर एकावर एक गाजलेली पुस्तकं: अमर्त्य सेन ते मार्टिन लुथर किंग/ म्हणून तर आली जगण्याला झिंग./ झोपण्यासाठी रद्दीतील : द टाइम्स , द हिंदू / दात घासण्यासाठी : टूथ पेस्ट वर फ्री ब्रश / एक टी शर्ट , एक जीन्स, एक शु: डिफेक्टिव सेल मधला/ सोडून गेलेल्या प्रेयसीचे मोबाइल सेव केलेले एसएमएस/ आतापर्यंतची माझी डेड प्रॉपर्ती/ जि कोणत्याच बँकेत मोर्गेज होऊ शकत नाही/ बँक माझ्यासारख्या गरजवंताला कर्ज देऊ शकत नाही. (पृ.१७, बीपीएल चा गहू देत नाही जगु आणि देत नाही मरू)

काळाची वाढलेली प्रचंड गुंतागुंत माणसाच्या जगण्याचे अनेक प्रश्न निर्माण ज्यांना उत्तरे क्वचितच आहेत.संभ्रम आणि संमोहन यांच्या निष्क्रिय अवस्थेत आजचा तरुण रुतून बसला आहे. म्हणून मॉडर्ण हिस्ट्री चा स्टार असणारा ब्रांड अम्बेसिडर नव्या पिढीने कसा स्वीकारावा असा प्रश्न कवीला पडतो. कारण आताच्या पिढीचे हे स्वप्न अआहे कि त्याला ब्रांड अम्बेसिडर व्हायचे आहे, मुलांना शिक्षक त्यांचा आयडल कोण आहे हे विचारले तर कुणी अर्थातज्ञ किंवा शास्त्रज्ञ सांगत नाहीत तर , कुठल्या तरी थंड पेयाचा ब्रांड अम्बेसिडर व्हायच असल्याचे सांगतात. यावरून आजच्या तरुण पिढीच्या भविष्य घडविण्याचे मार्ग किती बदलले आहेत याची प्रचीत येते. मात्र या अम्बेसेडरशी गरीब झोपडपट्टीतील मुलांना याचे काहीच देणे घेणे नसते. आजचे हे ब्रांड आम्बेसेडर चॅरीटी शो करतात, वाईट प्रसंगावर भाऊक होतात, रेव पार्ट्या करतात असे अनेक उपद्व्याप हे करीत असतात म्हणून कवी शेवटी यांच्याविषयी म्हणतो कि,

ब्रांड आम्बिसीडर म्हणजे मल्टीनॅशनल जोकर/ मूल्यांना ठोकर..... / ब्रांड अम्बिसिडर / ग्राहकांच्या डोळ्यात फेकलेली धूळ..../ विसरतो न्याय मूल्यांचे मूळ/ ब्रांड अम्बिसिडर चे सुरु आहे समकालीन युद्ध/ नव्या पिढीने कसा करावा हा आयडॉल रद्द?(पृ.२७, ब्रांड अम्बेसिडर)

काळानुसार बदलत जाणारे शिक्षण आणि नोकरीविषयीचे संदर्भ इथे कवी निदर्शनास आणून देतात. असे अनेक विषय सुनील अवचार यांची कविता मांडते. ऑक्यूपाय आंदोलन इंटरनेट मुळे खूप मोठ्या प्रमाणात वेगाने पसरले होते. आर्थिक मंदी, महागाई, बेरोजगारी व समस्याविरुद्धचा राग यातून व्यक्त होत होता. एकत्रपणे चालविली जाणारी आर्थी व राजकीय व्यवस्था आणि या व्यवस्थेच्या केंद्रस्थानी असणारी लोकशाही मूल्ये अशी या आंदोलनाची भूमिका होती. ह्या ऑक्चुपाय आंदोलनाच्या निमित्ताने जगभरातील तरुण युवकांनी साम्राज्यशाहीच्या विरोधात आवाज उभा केला होता. सुनील अवचार यांची ऑक्चुपाय वरील कविता नव्या क्रांतीचा आदमास घेणारी कविता आहे. ऑक्चुपाय आंदोलनाला बळकटी तसेच वैचारिक भूमिका प्रदान करणारी आहे. सुनील अवचार यांची पोएम ऑफ दी ऑक्चुपाय एव्हरीथिंग ही कविता वाल स्ट्रीट वर जमलेल्या तमाम कष्टकरी, शेतकरी, शेतमजूर, स्त्रिया, विद्यार्थ्यांच्या वतीने स्वयंस्फूर्त साहित्यिक आविष्कार आहे.वाल स्ट्रीट वर साम्राज्यशाहीच्या विळख्यात म्हणजेच एक टक्के लोकांच्या विळख्यात दुखी-कष्टी झालेले, बेकार आणि बेजार झालेले, इटली, स्पेन, जर्मन, ऑस्ट्रेलिया, होण्कोंग ,भारत अशा विविध भूभागावरील एकत्र आलेले लोक म्हणायला लागले होते, जगात क्रांती का व्हायला हवी? या विचारला उर्जा देण्याची ताकद सुनील अवचार यांच्या कवितेमध्ये आहे. त्यांची कविता जागतिकीकरणाच्या रेट्यातदेखील भांडवलशाही आणि धर्मशाही य्नाचे नियंत्रण झुगारून वोल्तर , मार्क्स , फुले, शाहू, आणि आंबेडकर यांच्या विचारांचा मार्ग स्वीकारताना दिसते. म्हणून ते अत्यंत संवेदनशील भावनेतून मानवी कल्याणाची बात करतात, कवी म्हणतो,

मी कोणत्याही राष्ट्रीय पक्षाचा विवेकहीन कार्यकर्ता बनू इच्छित नाही./ शाळा दवाखाण्यापेक्षा / मंदिर,मस्जिद,गुरुद्वार उंच नाहीत.../ संसद हायकोर्टपेक्षा/ महात्मा,बिझनेसमन, ब्रांड अम्बिसीदार , / खादीधारी पुढारी मोठे नाहीत, मी त्यांना ऑनर देऊ शकत नाही/ माझ्यातील दया-माया, शेअर मार्केट च्या दलालीसारखी, बुल्वर कृत्रिमपाने विराजमान नाही/ माझ्यातील करुणा/ मला जगावर प्रेम करायला शिकवते/ आय लव हुमन बीइंग / किंवा कोणत्याही पुरुषाच्या पायाजवळ/ स्वातंत्र्य गहन ठेवणार नाही किंवा ज्यांनी स्वतःला भाई, डॉन , प्रेषित, महात्मा/ संत गॉडफादर वदउन घेतले/ ज्यांनी मिसाईल , अण्वस्त्र तयार केले/ ज्यांनी झोपड्यावर बुलडोजर फिरवले/ ज्यांनी गॅस चेंबर मध्ये डांबले/ अस्पृश्य म्हणून, निग्रो म्हणून तिरस्कार केला/ सोबत एका पंगतीत बसू दिले नाही/ शाळेबाहेर ठेवले/ त्यांच्या समोर आम्ही गुदगे टेकविण्याचे सोडले आहे.(पृ.१५, पोएम ऑफ दि ऑक्चुपाय एव्हरीथिंग)

या भूमीवर ज्याला कुणाला माणूस म्हणून जगायचे आहे त्या सर्वांचा हुंकार म्हणजे सुनील अवचार यांची कविता आहे. जसा हुंकार आहे तसच सुनील अवचार यांच्या कवितेमध्ये विद्रोह देखील आहे. जे जे माणसाच्या कळयांचे नाही ते ते सर्व चुकीचे आहे ही कवीची भूमिका आहे. माणसाला कुणी तुच्छ लेखले तर ते मानवी मूल्यात बसत नाही. कवी म्हणतो,

माणसांच्या चांगुलपणाविषयी त्याला द्यावे वाटते आलिंगन/ माणसाच्या नाकार्तेपनाविषयी हरकून द्यावीशी वाटते शिवी/ साल्या नामर्द आहेस का?/ माणसाने दाखवाले शौर्य / तर अभिमानाने छाती भरून येते/ माणसाने केली विकृती/ तर तोंडावर हनावीशी वाटते चप्पल/ किंवा बॉक्सिंग चा एखादा ठुस्सा....(पृ.४०, २१) अशा प्रकारचा विद्रोह सुनील अवचार यांची कविता अभिव्यक्त करते. जागतिकीकरणाच्या संदर्भाने येणारे अनेक विषय ही कविता मांडत जाते. वस्तू, मूल्ये, तत्वज्ञान, विचार, बदलते जग यांच्या केंद्रस्थानी सध्या माणूसच कसा नाहीसा होत चालला आहे याचे विवेचन ही कविता करते. त्यांची कविता म्हणजे व्यवस्थेचे पोस्टमार्टेम आहे. बीपीएल चा गहू, ब्रांड अम्बिसिडर , ग्लोबल विलेज, मल्टी लुटालूट, ती मला भेटली, पोएम ऑफ दि ऑक्चुपाय एव्हरीथिंग, ब्राव्हो! फॉक्स माइंड ऑफ कॅपिटलीस्टस या कविता म्हणजे समकालीन वास्तवाचा लेखाजीखाच आहे.

संदर्भ:

१. सुनील अवचार : ग्लोबल वर्तमानाच्या कविता , प्र.आ.२००९.
२. सुनील अवचार : ब्राव्हो! फॉक्स माइंड ऑफ कॅपिटलीस्टस , गौरव प्रकाशन औरंगाबाद, प्र.आ. २०१०
३. सुनील अवचार : पोएम ऑफ दि ऑक्चुपाय एव्हरीथिंग, नभ प्रकाशन, अमरावती, प्र.आ. २०१२
४. सुनील अवचार : मी महासत्तेच्या दाराशी कटोरा घेऊन उभा राहणार नाही,गौरव प्र.औरंगाबाद, प्र.आ.२०१०

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

प्रेमचंदजी की गोदान में आदिवासी विर्मश

रविंद्रनाथ माधव पाटील
सहयोगी प्राध्यापक हिन्दी, डॉ. खत्री महाविद्यालय, तुकूम चंद्रपुर महाराष्ट्र
गोंडवाना विद्यापीठ, गडचिरोली, डॉ. खत्री महाविद्यालय, तुकूम चंद्रपुर महाराष्ट्र
email-ravindranathpatil5@gmail.com

सारांश

हिन्दी साहित्य में आदिवासी जनजीवन के चित्रण में ''अयौध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का अधखिला फूल 1907, देवेंद्र सत्यार्थी का रथ के पहिये, मन्नन द्विवेदी का रामलाल, वृदावनलाल वर्मा का कचनार, डॉ. रांगेय राघव का कब तब पुकारू, उदयशंकर भट्ट का सागर लहरें और मनुषय, राजेंद्र अवस्थी लिखित जंगल के फुल, राकेश वत्स का जंगल के आस-पास, शिवप्रसाद सिंह लिखित शैलेश, विरेंद्र जैन का पार, रणेंद्र का ग्लोबल गॉव के देवता, हरिराम मीणा कृत ध्रुणी तपें पीर, तेजिंदरकृत काली पादरी, हिमांषु जोषी लिखित अरण्य, डॉ सतीश दूबें लिखित कुर्राटी, भगवानदास मोरवाल लिखित काला पहाड आदि उल्लेखनिय है।''1 इन उपन्यासों में आदिवासी जनजीवन को बखुबी चित्रित किया गया है। प्रेमचंदजी ने गोदान उपन्यास में आदिवासी जनजीवन के एक छोटे से अंश का चित्रण किया है धनुष यज्ञ समाप्ति के दूसरे दिन यज्ञ में संम्मिलित महानुभाव समूह बनाकर शिकार खेलने के लिए जाते है, इन्हें जंगल में मीलें आदिवासियों का चित्रण है।

प्रस्तावना

आदिवासी सभ्य मानवोनचित अनेक असुविधाओं से परेशान है। सामान्यता जो आधुनिक संभ्यता व मानव के लिए आवश्यक सर्वांगिण विकास से कोसों दूर हैं, उन्हें आदिवासी कहा जाता है। आदिवासी का अर्थ प्रो. गिलानी के अनुसार'' एक विषेश भू-प्रदेश में रहने वाला, समान बोली बोलने वाला, अक्षरों की पहचान न होने वाला समूह, गुट'' आदिवासी समाज कहलाता है। डॉ विवेकी राय के अनुसार'' पिछडे, अंचलों, पहाडों, वनों के निवासियों को आदिम, आदिवासी माना जाता है।''2

प्रेमचंदजी के गोदान में आदिवासी महिला, पुरूष, बच्चे व टोलीयों के समूह का चित्रण किया गया है, जो बहुंत ही सच्चा, जाना पहचानासा, आकर्षक और वास्तविक महसूस होता है। वह आदिवासी जनजीवन का र्सवांगिण परिचय कराता है। जिस आदिवासी जनजीवन की तुलना सभ्य कहें जानेवाले विकसित मानव से करने के लिए हमें विवश होना पडता है। इन आदिवासियों में, ऐसा कुछ है जो हर मानव कम लिए अनुकरणीय है। जिससे गोदान उपन्यास के प्रो. मेहता दर्शनशास्त्र के विद्वान प्रभावित होते है। और आदिवासी यूवती के निस्वार्थ, निर्मल और स्वच्छ आचरण को देखकर वे कहते है - ''इस
गॅवारिन के चरणों को चूम लें।''3 यह दृष्य देखकर अनायास यह भावना उभरकर आती है।
आदिवासी, मूलनिवासी हम है, भारत देश के। त्याग, समर्पण, सेवा, सुरक्षा है, हमारे खून में।
बीजशब्द- आदिवासी। भावुक। जीवनावश्यक चीजों के संरक्षक। परिश्रमी। त्यागी। स्वाभिमानी।

आदिवासी विमर्श का विश्लेषण

गोदान में चित्रित छोटे से तीन प्रसंगों द्वारा हम आदिवासीयों के शारीरिक मानसिक आदि मानविय गुणों को स्पष्ट करने का प्रयास कर रहे है। जिन गुणों की सभ्य मानव को जरूरत है।

साहसी, मानवतावादी:

प्रो. मेहता व डॉ मालती के पहले समूह के प्रो. मेहता ने नाले पर उडे जा रहे एक लालसर पक्षी पर बंन्दूक से गोली चलायी। चिडिया चोट खाकर भी कुछ दूर उडी, फिंर बीच धार में गिर पडी और लहरों कें साथ बहने लगी। प्रो. मेहता नाले में कूद पडें और बहाव की ओर तैरने लगे पर भी चिडिया न पा सकें। एक युवती किनारे की एक झोपडी से निकली, चिडिया को बहते देखकर साडी को जॉघों तक चढाया और पानी में घुस पडीं एक क्षण में उसने चिडिया पकड ली और मेहता को दिखाती हुई बोली-पानी से निकल आओं बाबूजी, तुम्हारी चिडिया यह है।

वनपुष्पसम सुंदरता :

युवती का रंग था तो काला और वह भी गहरा, कपडे बहुत ही मैले और फुहड, आभुषण के नाम पर केवल हाथों में दो-दो मोटी चूडियॉ सिर के बाल उलझे। मूख मंडल का कोई भाग ऐसा नहीं, जिसे सुन्दर या सुघड कहा जा सकें, लेकिन उस स्वच्छ, निर्मल जलवायु ने उसके कालेपन में ऐसा लावण्य भर दिया था। और प्रकृति को गोद में पलकर उसके अंग इतने सुडौल, सुगठित और स्वच्छंद हो गए थें कि यौवन का चित्र खींचने के लिए उससे सुन्दर कोई रूप न मिलता। वनपुष्प की भॉति धूप में खिली हुई। आदिवासी युवतीयों की मनोभावों की सुंदरता का वर्णन।

मानवोचित व्यवहार, निर्मल वाणी, मदत के लिए तत्पर :

मैने तुम्हें तैरते आते देखा, तो दौडी। शिकार खेलने आए होंगे? ''हॉ, आए तो थे शिकार ही खेलने, मगर दोपहर हो गया और यही चिडिया मिली है।'' इसपर आदिवासी लडकी कहती है ''तेंदुआ मारना चाहों, तो मै उसका ठौर दिखा दूँगी। रात को यहॉ रोज पानी पीने आता है। कभी-कभी दोपहर में भी आ जाता है।'' फिर जरा संकुचाकर सिर झुकाए बोली-उसकी खाल हमें देनी पडेगी। चलो मेरे व्दार पर। वहॉ पीपल की छाया है। यहॉ धूप में कब तक खडें रहोगे? कपडे भी तो गीले हो गए है। प्रो. मेहता के ''तुम्हारे कपडें भी तो गीले है कहने पर लापरवाही से युवती कहती है-उॅह हमारा क्या, हम तो जंगल के है। दिन-दिन भर धूप और पानी में खडें रहते है। तुम थोडे ही रह सकते हो। खिलाओगी क्या कहने पर-मक्कें की रोटियॉ खाओ। चिडियें

का सालन पका दूँगी, थोडा दूध भी है। मै अकेला नहीं हूँ। मेरे साथ एक औरत भी है कहने पर युवती कहती है, मै दौडकर उनको बुला लाती हूँ। तुम चलकर छॉह में बैठों। तुम थक गए होंगे।

गृहकार्य में कुशल, मेहमान की फिकर और निस्वार्थ सेवा :

युवती दो बडें-बडें मटके उठा लाई और बोली-तुम जब तक यहीं बैठों, मै अभी दौडकर पानी लाती हूँ, फिर चूल्हा जला दूँगी, और मेरे हाथ का खाओ, तो मै एक छन में रोटियॉ सेंक दूँगी, नहीं अपने आप सेंक लेना। हॉ, गेंहूँ का आटा मेरे घर में नहीं है और यहॉ कहीं दुकान भी नहीं है कि ला दूँगी । मेहता के हाथ कुए से मटका खींचते-खींचते हाथ षिथिल हो गए। युवती ने दौडकर उनके हाथ से रस्सी ली और बोली-तुमसे न खिंचेगा। तुम जाकर खाट पर बैठो, मैं खींच लेती हू। यूवती ने चटपट आग जलायी, लालसर के पंख झुलस डाले। छूरे से उसकी बोटियॉ बनायी और चूल्हें में आग जलाकर मांस चढा दिया और चूल्हें के दूसरें ऐले पर कढाई में दूध उबालने लगी। प्रो. मेहता के यह कहने पर कि मुझे भी तो कोई काम बताओ-युवती ने मीटी झिडकी के साथ कहा-तुम्हें कुछ नहीं करना है, जाकर बाई के पास बैठो, बेचारी बहुत भूखी है। दूध गरम हुंआ जाता हे, उसे पिला देना। एक घडें से आटा निकाला और गुँथने लगी। प्रो मेहता और डॉ मालती के चिंता भरे संवाद को देखकर चिंतित होती है-मालती के सिर मे बाई ओर दर्द है पता चलने पर-लू और धूम में पहाडियों पर चढकर जडी खोज लायी। और कहा कि अभी घिसकर लगाती हूँ। दर्द ठीक होगा।

पवित्रता, नियोजनबद्धता, पवित्र सेवा :

प्रो. मेहता को कपडे पहनकर जातें देखकर आदिवासी यूवती निस्संकोच भाव से मेहता के अचकन की बटनें खोलने लगती है। प्रो. मेहता अपने को बहुत रोके हुए थें। जी होता था, इस गॅवारिन के चरणों को चूम लें। मालती ने यूवती से कहा-अपनी दवाई रहने दो। नदी के किनारे, बरगद के नीचे हमारी मोटरकार खडी है। वहॉ और लोग होंगे। उनसे कहना, कार यहॉ लायें। दौडी हुई जा। बूटी जमीन पर रखकर पूछा तब तक तों, चूल्हा ठण्डा हो जायेगा बाईजी। कहों तो रोटिया सेंककर रख दूँगी। बाबूजी खाना खा लें तुम दूध पी लो और दानों जने आराम करो। तब तक मैं मोटर वाले को बुला लाऊँगी। वह झोपडी में गई, बुझी आग फिर जलायी। देखा तो मांस उबल गया था। कुछ जल भी गया था। जल्दी-जल्दी रोटियॉ सेंकी, दूध गर्म था, उसे ठंडा किया और एक कटोरे मे मालती के पास लायी। मालती ने कटोरे के भद्देपन पर मुँह बनाया, लेकिन दूध त्याग न सकी। मेहता झोपडी के व्दार पर बैठकर एक थाली में मांस और रोटियॉ खाने लगे। यूवती खडी पंखा झल रही थी।

स्वाभिमानी:

मालती के आदेश देने पर युवती ने कहा-मै किसी की लौंडी नहीं हूँ बाईजी। तुम बडी हो, अपने घर की बडी हो। मै तुमसे कुछ मॉगने तो नहीं जाती। मैं गाडी लेने न जाउँगी। रायसाहब के हाथों पिटवाने की धमकी देने पर यूवती कहती है-''मुझे पिटवाने से तुम्हें सुख मिले तो पिटवा लेना बाईजी। कोई रानी-महारानी थोडी हूँ कि लस्कर भेजनी पडेंगी। मालती के आग्रह पर चलने को तत्पर मेहता ने युवती से कहा-अब मुझे आज्ञा दो बहन, तुम्हारा यह नेह, तुम्हारी नि:स्वार्थ सेवा हमेषा याद रहेगी। यूवती ने दोनों हाथों से, सजल नेत्र होकर उन्हें प्रणाम किया और झोपडी के अन्दर चली गई।4

व्यावसायिक से मुलाकात:

दूसरी टोली रायसाहब और मिस्टर खन्ना की थी जिन्हें जंगल के रास्ते पर सहसा एक आदिवासी देहाती एक बडी-सी टोकरी में कुछ जडें, कुछ पत्तियॉ, कुछ फल लिए जाता नजर आया। पूछने पर देहाती सकपका गया। डरा, कहीं बेगार में न पकड जाए। बोला-कुछ तो नहीं मालिक! यही घास-पात है? ''क्या करेगा इनका?'' बेचूगा मालिक!

औषधि वनस्पतियों का ज्ञान:

बेचूगा मालिकं। कौन-कौन सी जडी-बूटी है, बता? कहने पर देहाती अपना औषधालय खोलकर दिखाता है। मकोय, कंघी, सहदेइया, कुकरौंधे, धतूरे के बीज, मदार के फूल, करजे, घुमची आदि। हर एक चीज दिखाता था और रटे हुए षब्दों में उसके गुण भी बयान करता जाता था। यह मकोय है सरकार। ताप हो, मंदाग्नि हो, तिल्ली हा, धडकन हो, षुल हो, खॉसी हो, एक खोराक में आराम हो जाता है। यह धतूरे के बीज मालिम हो, गठिया हो, बाई हो.....

व्यापार में इमानदारी, समधानी :

''खन्ना ने दाम पूछा-उसने आठ आने कहे। खन्ना ने एक रूपया फेंक दिया गरीब ने मुँह-मॉगा दाम ही नहीं पाया, उसका दुगुना पाया। आशीर्वाद देता चला गया।''5

परिश्रमी, मजदूर, तत्पर :

तीसरी टोली मिर्जा खुर्षेद और मिस्टर तंखा की थी। जिन्होंने एक काले-से हिरन का शिकार किया। समीप ही एक वृक्ष पर एक आदमी लकडियॉ काट रहा था। वह भी चट-पट वृक्ष से उतरकर मिर्जाजी के साथ दौडा। हुकुम हो, तो मैं उठाकर पहुचा दू। आदिवासी लकडहारे नें पूछा-कहॉ पहूँचाना होगा मालिक? मुझें भी दो-चार पैसे दे देना।

भलमनसाहत, समझदारी, मानवता :

मिर्जा ने आदिवासी से कहा ''जहॉ तेरी इच्छा हो वहॉ ले जा। मै तुझे देता हूँ।'' लकडहारे ने मिर्जा की ओर कुतूहल से देखा, कानों पर विश्वास न आया। कहा ''अरें नहीं मालिक, हुजूर ने शिकार किया है, तो हम कैसे खा लें।'' नही-नहीं, मैं खुशी से कहता हूँ, तुम इसे ले जाओ। तुम्हारा घर यहॉ से कितनी दूर है? 'कोई आधा कोस होगा मालिक।' तो मै भी तुम्हारे साथ चलूँगा। देखूँगा, तुम्हारे बाल-बच्चे कैसे खुश होते है।' लकडहारे के मना करने पर मिर्जा कहते है-'उठा उठा, देर न कर। मुझे मालूम हो गया, तू भला आदमी है।' लकडहारें ने डरते-डरते और रह-रहकर मिर्जाजी के मुँह की और सशंक नेत्रों से देखते हुए कि कहीं बिगड न जाए, हिरन को उठाया। सहसा उसने हिरन को छोड दिया और खडा होकर बोला-'मै समझ गया मालिक, हुजूर ने इसकी हलाली नहीं की।' मिर्जा ने हॅसकर कहा-''बस-बस, तूने खूब समझा। अब उठा ले और घर चल।'' लकडहारें को इस ख्याल से जो संतोष हुआ था कि हिरन अब इन लोगों के लिए अखाद्य हो गया है, उसे फीका न करना चाहते थे।

दूसरों की फिकर, शरीर से मजबूत, चुटकी लेनेवाले :

लकडहारे नें हलके मन से हिरन को गर्दन पर रख लिया और घर की और चला। लकडहारें ने हिरन को एक ठूँठ पर उतारकर रख दिया था और दम लेने लगा। मिर्जा के थक गए, कहने पर-लकडहारें ने सकुंचाते हुए कहा- 'बहुत भारी है सरकार।' 'तो लाओ, कुछ दूर मैं ले चलूँ।' कहने पर लकडहारा हँसा। तूम हँसे क्यौं? पूछने पर लकडहारेने मानो क्षमा मॉगी, 'क्षमा'-सरकार, आप बडें आदमी है। बोझ उठाना तो हम जैसे मजदूरों का ही काम है।' मैं तुम्हारा दुगुना जो हूँ।' मिर्जा के कहने पर लकडहारा कहता है-'इससे क्या होता है मालिक?' मिर्जा हिरन को गर्दन पर उठा कर मुश्किल से पचास कदम चले होंगे कि गर्दन फटने लगी, लकडहारे ने चुटकी ली,' ''कहो मालिक, कैसे रंग-ढंग है? बहुत हलका है न?'' मिर्जा कहते है-''उतनी दूर तो ले ही जाऊँगॉ, जितनी दूर तुम लाये हो।''लकहडहारा कहता है-'कई दिन गर्दन दुखेगी मालिक।'

संवेदनशिल, उत्सुक बच्चे:

नाले के उस पार टीले पर एक छोटा-सा पॉच छ: घरों का पुरवा था और कई लडके इमली के नीचे खेल रहे थे। लकडहारे को देखकर ही बच्चों ने उनका स्वागत किया और लगे पूछने,-किसने मारा बापू? कैसे मारा, कहॉ मारा, कैसे गोली लगी, कहॉ लगी, इसी को क्यों लगी, और हिरनों को क्यों न लगी? लकडहारा हूँ-हॉ करता इमली के नीचे पहूँचा और हिरन को उतारकर पास की झोपडी से दोनों महानुभावों के लिए खाट लेने दौडा। उसके चारो लडकों और लडकियों ने षिकार को अपने चार्ज में ले लिया ओर अन्य लडको को भगाने की चेश्टा करने लगें।

सरल भाषा, सच्चें, नटखट, तुरन्त घुलमिल जानेवाले बच्चें:

सबसे छोटे बालक ने कहा, 'यह हमारा है।' उसकी बडी बहन ने, जो चौदह-पद्रह साल की थी, मेहमान नवाजी की ओर देखकर छोटे भाई को डॉटा- 'चुप, नहीं सिपाई पकड ले जायेगा।' मिर्जा ने लडके को छेडा-'तुम्हारा नहीं, हमारा है।' बालक ने हिरन पर बैठ कर अपना कैंजा सिद्ध कर दिया और बोला-'बापू तो लाये हैं।' बहन ने सिखाया-'कह दे भैया, तूम्हारा है।' लडके तो उन पर लदे पडतें थें। कोई उनकी फुॅदनेदार टोपी सिर पर रख लेता था, कोई उनकी राइफल कन्धें पर रखकर अकडता हुआ चलता था, कोई कलाई की घडी खोलकर अपनी कलाई पर बॉध लेता था।

आदर्श व परिश्रमी पत्नी, आर्थिक, सामाजिक, सांसकृतिक परिस्थितियों का अहसास:

बच्चों की मॉ बकरी के लिए पत्तियॉ तोड रही थी। दो नए भले आदमियों को देखकर ''जरा-सा घूँट निकाल लिया और षरमायी, कि उसकी साडी कितनी मैली, कितनी फटी, कितनी उटंगी है। वह इस वेश में मेहमानों के सामने कैसे जाय? और गए बिना काम नहीं चलता। पानी-वानी देना है।''

सिधे-सादे लोग, स्वभाव की सहजता:

आदिवासी बडे ही सीधे-सादे रहन-सहन व निर्मल स्वभाव के होते है जैसे-''छोटे-बडें स्त्री-पुरूश सबों ने दावत उडायी। मर्दो ने खूब शराब पी और मस्त होकर षाम तक गाते रहें। मिर्जाजी के मिलनसार स्वभाव से इतनी देर में सारे गॉव से घनिश्ट, परिचित हो गए थे, मानो यहीं के निवासी हों। मिर्जा ने खुद खूब देषी षराब पी और झूम-झूमकर जंगली आदमियों के साथ गातें रहें। जब ये लोग सूर्यास्त के समय यहॉ से बिदा हुंए तो गॉव-भर के नर-नारी इन्हें बडी दूर तक पहूँचाने आये। कई तो रोते थे। ऐसा सौभाग्य उन गरीबों के जीवन में षायद पहली ही बार आया हो कि किसी शिकारी ने उनकी दावत की हो। जरूर यह कोई राजा है, नही तो इतना दरियाव दिल किसका होता है। इनके दर्षन फिर काहें को होंगे।''6

निष्कर्ष:

भारतीय संविधान में आदिवासियों को आरक्षण के साथ ही पॉचवी और छठवी अनुसूची में स्वयं षासन व मालकी हक्क का प्रावधान किया गया है। साथ ही इनके लिए आम बजट में आरक्षित रक्कम का प्रावधान भी है। फिर भी भारतीय आदिवासियों की दशा बडी दयनिय, शोचनिय है। आदिवासी शरीर, मन, स्वभाव आचार-विचार से कितने स्वच्छ, निर्मल व पवित्र है। जो दूसरों की चिंता करते है, मानववोचित व्यवहार करते है। त्यागी, परिश्रमी, भविश्य की सोच रखने वाले आदिवासी महान सभ्यता व संस्कृति के वाहक है। मानविय गुणों से परिपूर्ण, मानव समाज के लिए आदर्श है। औशधि वनस्पतीयों का ज्ञान है। व्यापार में, व्यवहार में भी इमानदारी और पवित्रता है। जिसकी आज सारे संसार को जरूरत है। सारे संसार के मानव व पर्यावरण के लिए परम आवश्यक जल, जमीन, जंगल, संस्कृति, भाषा, आदि का संरक्षण, संवर्धन व सर्वागिण विकास जिसे आजतक आदिवासियों ने किया है, आज वही कार्य भारतीय सरकार ने सारी जनता के हीत के लिए मानव व मानवता के संगोपन के लिए गंभिरता से करने की जरूरत है। यही गोदान उपन्यास मे आदिवासी विमर्श के संदर्भ मे हम स्पष्ट करना चाहते है।

संदर्भ-

1 हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्ष-प्रकरण हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्ष-लेखक डॉ पंडित बन्ने अमन प्रकाशन कानपुर'-12 प्रथम संस्करन 2014 पृश्ट क्रं. 29 से 135 ,

2 उपरोक्त पृष्ट क्रं. 13

3 गोदान उपन्यास-प्रेमचंद नया संस्करण: 2013 प्रकाषक श्री आर.बी. सिंह, विश्वभारती प्रकाशन, धनवटे चेम्बर्स सीताबर्डी नागपुर-12पृष्ट क्र. 79

4. गोदान पृष्ट क्रं. 75 से 80 तक

5 गोदान पृष्ट क्रं. 83

6 गोदान पृष्ट क्रं. 87 से 92 तक

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

कुर्सी पहियोंवाली' में उद्धृत नारी आत्मनिर्भरता

कु . प्राजक्ता अंकुश रेणुसे
शिवाजी विश्वविद्यालय , कोल्हापुर
E mail - prajurenuse30@gmail.com

विश्व में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। वैसे ही भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है। उन भाषा में अपने सामग्री के रूप में शोध ज्ञान, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, भौतिकी, साहित्य, कला आदि उपलब्ध है जो अनुवाद के माध्यम से दूसरी भाषा में पहुँचती है। वैसे देखा जाए तो अनुवाद विश्वस्तर पर ही नहीं देशीय एवं राष्ट्रस्तर पर भी हो रहे है। आज-कल अनुवाद व्यक्ति की सांस्कृतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक आवश्यकता बन गई हैं। इसी अनुवाद के कारण हम दूसरी भाषा-भाषियों का मौलिक साहित्य पढ़ सकते हैं और समझ भी सकते हैं।

हिंदी में आत्मकथा के लिए अनेक शब्द प्रचलित मिलते हैं - आत्मजीवनी, आत्मचरित्र, आत्मवृत्त, आत्मकहानी, आपबीती जीवन कथा आदि अंग्रेजी में 'बायोग्राफी' शब्द के आगे 'ऑटो' उपसर्ग लगाकर 'ऑटोग्राफी' नामकरण किया है। लेखक स्वयं अपने जीवन की अनुभूति या अपने जीवन में घटित घटनाओं का प्रस्तुतीकरण करता है उसे 'आत्मकथा' कहा है। हिंदी में आत्मकथा के लिए 'आत्मजीवनी'शब्द भी प्रचलित मिलता है लेकिन इसमें 'कथा' की सरसता लुप्त हो जाती है उसपर अकबर इलाहाबादी का एक शेर है -

" अब क्या कहे अहबाब क्या कारे नुमायां कर गए
. बी.ए. किया, नौकर हुए, शादी करी और मर गए।"[1]

आत्मकथा को जीवन का इस तरह क्रमानुसार, कथावाचन बनने से बचाएँ इसलिए ऑटोबायोग्राफी के लिए 'आत्मजीवनी' शब्द चुनकर 'आत्मकथा' यह शब्द ज्यादातर प्रचलित मिलता है।मानक हिंदी कोश में आत्माकथा को इसप्रकार स्पष्ट किया है कि - "आत्मकथा 'आत्मन' और 'कथा' का सामासिक रूप है जिसमें आत्मन का अर्थ है- अपना, निज का आत्मा का मन का और कथा का अर्थ है अपनी जीवन कहानी। इस प्रकार आत्मकथा का अर्थ हुआ अपने जीवन की कहानी।"[2]

हिंदी की सुप्रसिद्ध लेखिका प्रभा खेतान का साहित्य 'स्त्री जीवन के संघर्ष' उसकी इच्छा मनोकामना, पीड़ा, छटपटाकर एवं स्त्री मानसिकता का जीवंत दस्तावेज हैं। प्रभा खेतान स्वतंत्र, धनाढ्य महिला व्यवसायी है और लेखिका है वह एक विवाहित पुरुष की रखैल की भूमिका स्वेच्छा से स्वीकार करती है। इसी पर पुनीता जैन जी का मत है कि "सभी आत्मकथनों में सबसे महत्वपूर्ण पहलू है, पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री का निरन्तर शोषण, उसके अस्तिव और अस्मिता को कुचला जाना और इनके विरोध में स्त्री का संघर्ष।" [3]इसतरह स्त्री होने के कारण घर और बाहर होनेवाली अवहेलना, अपमान और शोषण को सहन करना पड़ता हैं।

मराठी से अनूदित हिंदी आत्मकथा 'कुर्सी पहियोंवाली' में नसीमा हुरजूक एक स्त्री होने के साथ-साथ विकलांग भी है मतलब समाज में एक तो औरतों को दुय्यम स्थान दिया जाता है और उसके साथ नसीमा हुरजूक जी विकलांग है तो उनके जीवन में ऐसे 'दोहरा अभिशाप' हमें दिखाई देता है। नसीमा हुरजूक जी ने इस आत्मकथा के जरिए यह बात सामने लाई है कि विकलांग लोग भी आत्मनिर्भर बनकर, आत्मसम्मान से समाज में अपना जीवन अच्छे से व्यथित कर सकते हैं। इस तरह 'कुर्सी पहियोंवाली' इस आत्मकथा के अंतर्गत चित्रित नारी आत्मनिर्भरता पर हम प्रकाश डालते हैं।

मराठी से अनूदित हिंदी आत्मकथा 'कुर्सी पहियोंवाली' नसीमा हुरजुक जी की है। डॉ. गिरीश काशिद और डॉ. चंदा गिरीश जी ने इस कृति को हिंदी अनूदित किया है। इस आत्मकथा में शारिरिक विकलांगो का चित्रण किया गया है।नसीमा जी खुद 'पैराप्लेजिक' बिमारी की शिकार बन गई है। नसीमा जी ने विकलांग की पीड़ा को खुद सहा है। एक तो नारी होना और शरिर से विकलांग यह 'दोहरा अभिशाप' उनके सामने था। इस लड़ाई को लढ़ते समय उनके सामने कई बातें आ गई उसमें से वर्णव्यवस्था, आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान, आत्मसंघर्ष, शारिरिक व्यंग्यत्व नारी चेतनाएँ उनके सामने उभरकर आयी थी।

वर्णव्यवस्था के कई अर्थ हमारे सामने आते हैं जैसे कि क्षत्रिय, ब्राह्मण, सुवर्ण उसके साथ काला- गोरा रंग इन रंगों के कारण भी समाज में लोग उच-निचना के स्तर दर्शाते हैं। नसीमा हुरजूक के घर में उनकी अम्मी, अब्बा, भाई-बहन सभी गोरे थे। नसीमा उनके घर में अकेली साँवली थी। जब उनका बड़ा भाई ढाई साल का था। तभी उनकी अम्मी भगवान को प्यारी हो गई थी। तीन लड़कियाँ और एक लड़के की परवरिश के लिए उनके अब्बा ने दूसरी शादी की थी। लेकिन उनकी दूसरी अम्मी उन बच्चों को सगे बच्चों की तरह प्यार करती थी। नौंवी कक्षा तक उन्हें इस बात का पता नहीं था। लेकिन अचानक से मेहमानों की तरफ से उन्हें पता चलता है कि यह मेरी सगी माँ नहीं हैं। "जब कोई मेहमान हमारे घर आते तो मेरा साँवला रंग देखकर अम्मी से पूछते, "हलिंबी। यह लड़की तुम्हारी है?" अम्मी द्वारा 'हाँ' कहने पर वे कह देते, "यह तो अलग ही दिखाई देती है। इसके अब्बा और तुम गोरी हो फिर यह ऐसी क्यों?" शायद अम्मी की आँखे और मेरा मासूम चेहरा देखकर वे आगे कहते, "हाँ, चेहरा मात्र तुम्हारे जैसा है।"[4]इसतरह नसीमा की माँ सौतेली होने के बावजूद भी नसीमा को उसकी माँ बहुत प्यार और अपनापन से उसे बड़ी करती है। इसतरह समाज में हमें आज- कल यह दिखाई देता है कि लोग काले-गोरे होने के कारण उन्हें समाज में उचा-नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं।

'कुर्सी पहियोंवाली' इस आत्मकथा में नसीमा हुरजूक जी ने खुद आत्मानिर्भर बनने का प्रयास किया है और विकलांग लोगों को भी आत्मनिर्भर बनाने के लिए उन्होंने अलग-अलग संस्थाओं की स्थापना की है। आत्मनिर्भरता एक श्रेष्ठ गुण है जिसका आधार आत्मविश्वास है। इस गुण से संपन्न व्यक्ति संपूर्ण विश्व को अपना कर्मक्षेत्र मानकर परिश्रम करता है और अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। इसी गुण के सहारे वह बड़ी बाधा को भी दूर कर देते है और सफलता का अलिंगन करता है।

नसीमा हुरजूक जी के नसीब में हमेशा परिश्रम और वेदना ही सहनी पड़ी है। नसीमा पाठशाला में थी उस वक्त नसीमा जी को गैदरिंग में भाग लेना था लेकिन उसकी अम्मी बिल्कुल तैयार नहीं थी लेकिन बाद में रेहाना के समझाने पर वह मान गई।आखिर में गैदरिंग का दिन आ जाता है - "जाते समय रंजना के बड़े भाई ने पूछा, "नृत्य में किसने हिस्सा लिया है? आज आपका नृत्य पूरा नहीं हो पाएगा। मैं अभी स्टेज देखकर आ रहा हूँ। वह बीच में ही टूटने की संभावना है।" मुझे लगा, हमेशा की तरह मजाक कर है। मैंने कहा , 'लगी शर्त? आज हमारा नाच होकर रहेगा।"[5]

नसीमा के पिताजी सामने ही बैठे होते हैं खुशी में वह नाच रही थी। लेकिन कुछ तांत्रिकी परिणामों के कारण सच में वह स्टेज टूट जाता है और नसीमा स्टेज के नीचे जाती है। फिर एन.सी.सी. में भी उसे प्रवेश नहीं दिया जाता। बाद में वह पैराप्लेजिया की शिकार भी बन जाती है लेकिन नसीमा जी हार नहीं मानती है। प्रतित होता है कि उनकी बौद्धिक क्षमता बड़ी ही सक्षम है। वह अर्थशास्त्र में बी.ए. पूरा करती हैं। उसके बाद उन्होंने विकलांगों के लिए अलग-अलग संस्थाओं की स्थापना की। जैसे कि - 'हेल्पर्स ऑफ दि हॅन्डिकॅप्ट कोल्हापुर' नाम की संस्था की स्थापना की जैसे कि उस संस्था में विकलांग लोग काम करके आत्मनिर्भर बन जाएँगे |

सन 1970 में अरुणा के पिताजी ने नसीमा जी की बाबूकाका से मुलाकात करके देते है बाबूकाका नसीमा जी का हौसला बढ़ाने है और उसे मार्गदर्शन भी करते है "खुद को कर बुलंद इतना' में होनेवाली बुलंद हस्ती से आखिर मेरी मुलाकात हो गई। वे मुझे सुझाव और सलाह देते गए कि मुझे अपनी शिक्षा कैसे पूरी करनी चाहिए? खेल प्रतियोगिताओं में किस प्रकार हिस्सा लेना चाहिए ? स्वयं आत्मनिर्भर बनकर कोल्हापुर के अन्य अपाहिजों के लिए मुझे किस प्रकार काम करना चाहिए?"[6]नसीमा हुरजूक जी पैराप्लेजिक की शिकार बन गई थी लेकिन उन्होंने कभी भी हार नहीं मानी थी बल्कि वह अपने पैरों पर खड़ी होकर बाकी। विकलांगो के लिए अलग-अलग संस्थाओं की स्थापना की है। इस कार्य के लिए उन्हें 1986 में दिल्ली का विकलांग कल्याण फेडरेशन का राष्ट्रीय सम्मान मिला है। इसतरह नसीमा जी खुद आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरणा देती है।

आत्मनिर्भरता के साथ साथ आत्मसम्मान यह भी एक सफल सुखी जीवन का आधाभूत तत्व है। पुनीता जैन ने 'हिन्दी दलित आत्मकथाएं एक मूल्यांकन' में ग्रामीण समाज की स्त्रियों का जिक्र किया हुआ है इसका चित्रण हमें दिखाई देता हैं, उन्हें समाज में आत्मसम्मान नहीं दिया जाता है। "ग्रामीण समाज में सवर्ण स्त्रियां कभी स्त्री होने के नाते ही सही, दलित स्त्री के देह-शोषण के विरुद्ध खड़ी नहीं हुई, बल्कि अपने पति के कुकृत्य का बचाव करते हुए संवेदनशून्य बनी रहीं। दूसरी ओर दलित समुदाय में घोर गरीबी भूख ने भी स्त्री-पुरुष के भेदभाव को समाप्त नहीं किया। आर्थिक मोर्चे पर तो दलित स्त्री का पूरा सहयोग लिया गया, किन्तु घरेलू मोर्चे पर वह अधीनस्थ ही बनी रही। दलित पुरुष आशक्षित व उत्पीड़ित होते हुए भी घर के भीतर उसी वर्चस्व के हथियार को अपनाने से परहेज नहीं करता है।"[7]इसतरह ग्रामीण समाज में आज भी औरतों को दुय्यम स्थान दिया जाता है। व्यक्ति आत्मसम्मान के अभाव में सफल तो हो सकता है, बाहय उपलब्धियों भरा जीवन भी हो सकता है, किंतु वह अंदर से भी सुखी, संतुष्ट और संतृप्त होगा, यह संभव नहीं है। आत्मसम्मान के अभाव में जीवन एक गंभीर अपूर्णता और रिक्तता से भरा रहता है। यह रिक्तता एक गहरी कमी का अहसास देती है और जीवन एक अनजानी -रिक्तता, एक अज्ञान पीड़ा असुरक्षा और अशांति से बेचैन रहता है। इसलिए आत्मसम्मान यह एक अपना विशेष महत्व रखता है।

नसीमा हुरजूक की मराठी से अनूदित हिंदी आत्मकथा 'कुर्सी पहियोंवाली' इस आत्मकथा के जरिए हमें इस बात का पता चलता है कि कई ऐसे विकलांग हैं उन्हें समाज में दुय्यम स्थान दिया जाता है। एक दिन विकलागों के लिए कैंप लगाया जाता हैं। फिर एक दिन खाना जल्दी खत्म होने के बाद सभी मिलिटरी महादेव के बगीचे में जाते है। फिर वापस आने के बाद सभी बच्चे शिकायत करते हैं कि "जो बच्चे चल नहीं सकते थे ऐसे बच्चों को दक्षिण परिक्रमा की सलाह देनेवाले उस वॉचमैन को समझाने गई तो वह उल्टा मुझ पर ही बरसने लगा, "आपके पैरों में जूते हैं और कोई भी | सवारी (हमारी पहियेदार कुर्सियाँ) अन्दर ले जाना मना है। आपको यह फलक दिखाई नहीं देता? मेरी नौकरी का सवाल है।" उसकी बदतमीजी में सह न पाई। उससे भी ऊँचे स्वर में मैंने कहा, "तुम्हें नौकरी की फिक्र तब होगी जब तुम्हारे अधिकारियों को यह पता चलेगा कि तुमने इन सपाहिज बच्चों को अन्दर जाने से मना किया है। यह कुर्सियाँ नहीं हमारे पैर हैं, जिसके बिना हम अन्दर नहीं जा सकते।"[8]

इसतरह मंदिर में भगवान का दर्शन करने के लिए भी वह वॉचमन उन बच्चों को छोड़ नहीं रहा था। उन्हें दूसरे रास्ते से जाने के लिए कहा जा रहा था नहीं तो बाहर से दर्शन लो और चले जाओ ऐसा भी कहा गया। इसतरह इन विकलांग बच्चों को अपमान जनक होना पड़ता है। लेकिन इन्हीं समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए नसीमा जी उन्हें स्वावलंबी बनाना चाहती है। इसलिए वह विकलागों के लिए अलग-अलग संस्थाओं की स्थापना करती है ताकि लोग स्वावलंबी बने इसी कारण ही न क्यों सही लेकिन लोग उन्हें समाज में सम्मान दे सकें। इसी संस्थाओं के कारण विकलागों को काम मिल गया, सहारा मिल गया और खुद के पैरों पर खड़ा होने का उन्हें नसीमा जी के कारण हौसला भी मिल गया।

नसीमा हुरजूक ने आत्मसंघर्ष करके आत्मनिर्भता की ओर बढ़ने की प्रेरणा दी है। नसीमा हुरजूक जी का जन्म 2 सितंबर 1950 को सोलापुर में हुआ। जब वह 16 साल की थी तब एक अपघात के कारण वह पैराप्लेजिक (पक्षघात) की शिकार हो गई। पक्षघात का प्रभाव यह रहा कि उनके कमरे के नीचे की | संवेदना ही नष्ट हो गई। इस भयानक विकलांगता के सामने उन्होंने हार नहीं मानी। उन्होंने पूरे दिल से मन से पढ़ाई की और अर्थशास्त्र में बी. ए. पूरा किया। नसीमा जी आत्मसंघर्ष करके क्रांति की ओर भी बढ़ रही है। उसके बाद उन्होंने 'केंद्रिय अबकारी कर' (Central exaise) सरकारी विभाग में नौकरी की। नसीमा जी के मन में यह बात आ गई कि कई ऐसे मेरे जैसे विकलांग समाज में है तो उन्हें भी आत्मनिर्भर बनाने के लिए उनके लिए कुछ तो करना जरूरी है।इसलिए उन्होंने कई संस्थाओं की स्थापना जैसे कि- 'हेल्पर्स ऑफ दि हैन्डिकैप्ट कोल्हापुर' 1993 में उन्होंने व्यवसाय प्रशिक्षण केंद्र की स्थापना की। विकलांग होने के कारण कई बार लोगों को खुद का काम करना नहीं आता है, उनके जीवन में कठिन परिस्थितियों का उन्हें सामना करना पड़ता है । इसीकारण नसीमा जी ने अपने जीवन में कई संघर्षों का सामना कर के वह एक कोल्हापुर की सर्वोत्कृष्ठ स्त्री उदयोजिका बन गई। पहले विकलागों पर घर में ही इलाज किया जाता था आज-कल बड़े-बड़े अस्पताल हो गए हैं। इन्हीं लोगों को स्वावलंबी बनाने के लिए नसीमा जी ने एक संस्था की स्थापना की। "हेल्पर्स ऑफ़ दि हैंडिकैप्ड कोल्हापुर संस्था को स्थापित करने से पूर्व मैंने स्वयं को अजमाने के लिए, अपनी सामर्थ्य को पहचानने हेतु बिल्कुल छोटी उम्रवाले राजीव वणकुद्रे (उम्र सोलह साल), अभिजित मोरे (उम्र बारह साल) और अशोक शेलार (उम्र बारह साल) इन

पोलियोपीड़ित बच्चों के साथ ले लिया था। अपाहिजों की वेदना से वे समरस हो सकते थे । सामान्य शक्ति को अगर ढंग से उपयोग में लाया जाए तो काम में जरूर सफलता मिलती है, यह अनुभव मुझे इस दरमियान मिला।"[9]

इसप्रकार विकलांग लोगों को मदत करने के लिए उन्होंने ऐसी संस्थाओं की स्थापना की हैं। उन्होंने 1993 में व्यवसाय प्रशिक्षण केंद्र की स्थापना की है। 1996 में घरोंदा वसतिगृह पुनर्वसन की स्थापना की है। 2000 में उन्होंने विकलांग और सक्षम छात्र एकत्रित आकर शिक्षा प्राप्त करने हेतु उन्होंने 'समर्थ विद्यामंदिर' की स्थापना की है। 2001 में कुडाळ में 'स्वप्ननगरी प्रकल्प' की स्थापना की है ताकि जो शरीर से विकलांग है वह आत्मनिर्भर बनें | इसीतरह उन्होंने समाज के लोगों की मानसिकता में परिवर्तन लाकर दिखा दिया कि विकलांग लोग परिवार पर बोझ नहीं बल्कि आत्मनिर्भर भी बन सकते हैं।

सन् 1996 में मुंबई में एक कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है उसमें 'पैराप्लेजिक स्त्री' के जीवन पर नसीमा हुरजूक जी का व्याख्यान रखा जाता है उसमें नसीमा जी कहती है "पैराप्लेजिक की शिकार स्त्री छब्बीस वर्ष पहले भी चारदीवारों के अन्दर दम तोड़ देती थी और आज भी उसकी स्थिति वही है, जिसे बदल देना बहुत जरूरी है।"[10]इसतरह उन विकलांग लोगों को चार दिवारों में ही न रखा जाए इसलिए नसीमा जी ने खुद आत्मसंघर्ष करके अलग-अलग संस्थाओं की स्थापना की है और उन्हें आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया है और वो खुद आत्मनिसंघर्ष करके विकलांग लोगों के सामने एक प्रेरणा बनकर उनके सामने खड़ी है। -

निष्कर्ष:

वर्तमान में स्त्री अपने जीवनानुभवों को आत्मकथा के माध्यम से सशक्त रूप में अभिव्यक्त कर रही है। इससे पहले भी स्त्रियाँ विभिन्न रूपों में अपने भाव-विचार एवं अनुभव अभिव्यक्त करती थी। जैसे लोकगीत, लोककथा, चित्रकला आदि । कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, आदि विधाओं में वे अपने अनुभवों को विस्तारदेने लगी। अर्थात वर्तमान समय में स्त्रियाँ कलम को हाथियार बनाकर अपने अधिकार एवं अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही थी।

आत्मकथा की महत्वपूर्ण शर्त प्रामाणिकता है। जिससे लेखक अपने जीवन के अत्यंत निजि एवं गोपनीय तथ्यों को उद्घाटित करता है। वर्तमान में आत्मकथा विदया विकास के पथ पर अग्रेसर है लेकिन स्वतंत्रता पूर्वकाल में आत्मकथा लेखन न के बराबर रहा है। तुलना में आज अधिक आत्मकथाएँ लिखी जा रही है।

मराठी से अनूदित हिंदी आत्मकथा 'कुर्सी पहियोंवाली' इस आत्मकथा के अंतर्गत नसीमा जी के पूरे जीवन में व्यथित किए हुए अनुभवों का प्रस्तुतीकर किया है। वह शरीर से विकलांग पैराप्लेजिक (पक्षघात) बिमारी की शिकारी होने के बावजूद उन्होंने समाज के सामने एक आदर्श रखा है इसी बात का पता चलता है। इस आत्मकथा के जरिए समझ में आता है कि एक तो नारी होना और दूसरी विकलांग यह एक दोहरा अभिशाप होने के बावजूद भी वह समाज में एक आदर्श नारी के रूप में हमारे सामने आती हैं।

संदर्भग्रंथसूची:

(1) उर्दू साहित्य का इतिहास : फिराक गोरखपुरी पृ. क्र. 222
(2) मानक हिंदी कोश : संपादक - रामचंद्र वर्मा, खंड - 1
(3) दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर (2008), विमल थोरात अनामिका पब्लिशर्स दिल्ली, पृ. 15
(4) कुर्सी पहियोंवाली - नसीमा हुरजुक , अनुवाद - डॉ. गिरिश काशिद, डॉ. चंदा काशिद - राजकमल प्रकाशन (2019) पृ. 8
(5) वही पृ. 13
(6) वही पृ. 39
(7) हिन्दी दलित आत्मकथाएं एक मूल्यांकन - पुनीता जैन (2017) पृ. 65
(8) कुर्सी पहियोंवाली - नसीमा हुरजूक, अनुवाद - डॉ. गिरिश काशिद, डॉ. चंदा काशिद - राजकमल प्रकाशन (2019) पृ. 104
(9) वही पृ 98
(10) वही पृ. 43

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

समकालीन हिंदी उपन्यासों में स्त्री- विमर्श

सौ. रेशमा गणेश लौंढे

मारुतिराव हरिराव महाडिक कला व वाणिज्य महाविद्यालय मोड़निंब, ता. माढा जि. सोलापुर महाराष्ट्र, पिन कोड-413 301

मानव जीवन के शुरुआत के साथ स्त्री- पुरुष के संबंधों की शुरुआत हुई है| प्राचीन युग में स्त्री- पुरुष बिना किसी बंधन के साथ रहते| जैसे-जैसे समय बदलता गया इन संबंधों का स्वरूप बदलता गया| जब समाज और परिवार की परिकल्पना अस्तित्व में आई तो स्त्री-पुरुष संबंधों को भी विवाह संस्था के रूप में बांध दिया गया| हजारों वर्षों के बाद आज भी विवाह विविध जातियों, देश- विदेशों में भिन्न-भिन्न है| भारतीय परिप्रेक्ष्य में तो आज भी स्त्री-पुरुष संबंधों को सामाजिक मान्यता तभी दी जाती है जब विवाह द्वारा स्त्री-पुरुष संबंधों को मंजूरी मिली हो| रूढ़िवादी परंपरा आज भी समाज में अपनी जड़ें जमाए बैठा है| भारतीय विवाह संस्था में स्त्री की अवस्था दयनीय है| स्त्री को परिवार में महत्वपूर्ण भूमिका होने के बाद भी निर्णय लेने का अधिकार नहीं होता कई बंधनों से जकड़ी हुई है|

प्रोगैतिहासिक काल में मातृसत्ताक समाज होने के कारण स्त्री स्वतंत्र थी, स्वावलंबी थी और निर्णय लेने का अधिकार भी था क्योंकि उस समय वर्चस्व वादी संस्कृति स्त्रियों के ऊपर हावी नहीं थी इसलिए स्त्री पूर्ण रुप से स्वतंत्र थी| लेकिन पितृसत्ताक समाज में स्त्री पुरुष की संपत्ति बन गई| उसका रूप सहचरी के बदले अब अबला जैसे हो गई |रमणिका गुप्ता का कथन है "विवाह की प्रथा भी सभ्यता और संस्कृति के विकास के इतिहास में औरतों को संपत्ति बनाने की तरफ अंकुश लगाने के लिए बढ़ाया गया| विवाह औरत की गुलामी का प्रथम दस्तावेज था|" रमणिका गुप्ता का कहना विचारणीय है ,विवाह संस्था स्त्री को गुलाम, घरेलू हिंसा का शिकार तथा पुरुषों के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है| विवाह संस्था इस संबंध में स्त्री को सिर्फ संबंधों का बोझ ढोना पड़ता है और इस पितृसत्ता के समाज में स्त्री के त्याग और बलिदान का नाम दिया गया है|

बदलाव मानव जीवन के लिए जरूरी है, रमणिका गुप्ता का इस संदर्भ में कहना है "विवाह नाम की संस्था को टूटना चाहिए मैं परिवार और विवाह को , स्त्री के लिए पिंजरा मानती हूं| वह स्त्री को पिंजरे में कैद करता है| मैत्रेय पुष्पा कहती है, "मेरी तो इच्छा है, हजारों साल से चला आ रहा सिलसिला टूटना चाहिए| अपने हक के लिए लड़ना चाहिए| संरक्षण और सुरक्षा स्त्री के लिए खतरनाक और बर्बाद शब्द है, भरोसा देकर उसे नष्ट करते हैं| बात वही है कि जो अपने प्रति न्याय की बात नहीं सोचता उसे न्याय देने की मूर्खता कौन करेगा? आज विवाह का स्वरूप बदलता हुआ दिख रहा है| आज लिव इन रिलेशनशिप का कंसेप्ट आ गया है| विवाह संस्था में बदलाव का एक बड़ा कारण आर्थिक आधार भी है| वर्तमान समय में स्त्री शिक्षित होकर आर्थिक रूप से मजबूत हो रही है| अब इस मानसिकता में बदलाव आ रहा है लेकिन अभी भी भारतीय समाज में ज्यादातर लोगों की मानसिकता स्त्री को गुलाम बनाकर रखने की है|

प्रभा खेतान भी विवाह को स्त्री के लिए अनिवार्य नहीं मानती हैं उनका कहना है, "विवाह एवं पति बच्चे ही सब कुछ नहीं है| अगर पुरुष स्त्री का शोषण करें तो पत्नी को इसका प्रतिकार करना सीखना चाहिए| विवाह ,पति, बच्चों से अलग हटकर भी स्त्री का अपना सा अस्तित्व होता है जिसके आधार पर वह अपनी अलग स्वतंत्र पहचान बना सकती हैं| फलतः स्त्री भी अपने अलग अधिकारों को समझ रही है, इसकी झलक समाज में दिखने लगा है और साहित्य में भी, क्योंकि साहित्य और समाज का गहरा संबंध होता है| तभी तो कृष्णा सोबती मित्रों जैसी स्त्री चरित्र को गढी| इस उपन्यास में मित्रों का चित्रण परंपरागत स्त्री की छवि से हटकर है| मित्रों के व्यक्तित्व में एक नैसर्गिक खुलापन दिखाई देता है| वह अपनी भावनाओं बेबाक तरीके से अभिव्यक्त करती है| मित्रों मां नहीं बन पाती है तो अपनी सास को करारा जवाब देते हुए कहती है, "मेरा बस चले तो सो- सो गौरव जन रख दूं| पर अम्मा अपने लाडले बेटे का…….| निगोड़े उस पत्थर की बूतमें भी कोई हरकत तो हो| इस तरह की बात परंपरा से जकड़े हुए स्त्री नहीं कर सकती थी बल्कि मित्रों जैसी बोल्ड स्त्री ही कर सकती है| स्त्री बिना विवाह के मां बनने की जहमत उठाती है तो उसे कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है |प्रभा खेतान का मानना है, "व्यापक परिप्रेक्ष्य में विवाह व्यवस्था इसलिए दमनकारी है क्योंकि यह पितृसत्ता समाज की अभिव्यक्ति है |परिणाम स्वरूप समाज स्त्री की देह पर नियंत्रण चाहता है, जबकि आज वह अपनी देह पर अपना नियंत्रण चाहती है | भूमंडलीकृत समाज में स्त्री अपनी देह की मालकिन स्वयं होती जा रही है|" गौरतलब है कि चित्रा मुद्गल का आवा मृदुला गर्ग का कठगुलाब प्रभा खेतान का छिन्नमस्ता मैत्रेय पुष्पा का चाक आदि प्रमुख उपन्यासों में विवाह संस्था के सवाल को उठाया गया है| चाक उपन्यास में मितवा रेशम का अवैध गर्व धारण करना कहीं ना कहीं विवाह जैसी संस्था को चुनौती देना है|

विवाह बंधन में स्त्री और पुरुष दोनों इस संबंध को निभाने की कसमें खाते हैं| विवाह के बाद स्त्री पर पूरा अधिकार पुरुष का होता है| वह जैसे चाहे जब चाहे स्त्री का उपभोग कर सकता है| प्रभा खेतान कृत उपन्यास छिन्नमस्ता में प्रिया की मां कस्तूरी राधे से कहती है, "हम लोगों का भी कोई जिंदगी है? जब से शादी हुआ हर दसवें महीने बच्चा पर बच्चा| एक लड़का तो मरा हुआ पैदा हुआ| पहली लड़की आठ बरस की उम्र में मर गई| चार बार तो गर्भपात हो गया शरीर में कोई दम रहता है क्या?" प्रिया की मां भारतीय समाज के यथार्थ को बयां कर रही हैं| इस संदर्भ में सीमोन दा बो उवार का कहना है कि "पुरुष के जीवन में विवाह का अर्थ सिर्फ वही नहीं होता जो औरत के लिए| स्त्री और पुरुष एक दूसरे के लिए अनिवार्य होते हुए भी समानता के स्तर पर पारस्परिक नहीं होते क्योंकि औरत जाति ने कभी समानता के स्तर पर पुरुष जाति से कोई अनुबंध विनिमय किया ही नहीं|" विवाह को भारतीय समाज में पवित्र बंधन माना जाता है लेकिन इस बंधन में सबसे ज्यादा स्त्रियां शोषित होती है| फिलिप का यह वक्तव्य महत्वपूर्ण है कि विवाह व्यवस्था में पुरुष का अपने स्त्री पर मालिकाना भाव रहता है| वह मालिक की तरह अपने पत्नी के साथ पेश आता है| विवाह का अर्थ ही स्त्री पुरुष का एकाधिकार का है| यही स्त्री की नियति बन कर रह गई है| पुरुष दिन हो या रात नहीं देखता और न स्त्री की पीड़ा को समझता है |बस वह अपनी तृप्ति की पूर्ति करता है| इस तरह के दृश्य को छिन्नमस्ता उपन्यास में नरेंद्र के हवाले से देख सकते हैं |नरेंद्र जिस तरह से अपनी पत्नी प्रिया के साथ जानवर की तरह पेश आता है| भारतीय समाज में इसी तरह के पुरुषों की तादाद है|

'छिन्नमस्ता' उपन्यास में हुकूमत तो नरेंद्र की चलती है प्रिया की नहीं| आखिर घर तो दोनों का है और घर में रहने का अधिकार दोनों के पास होना चाहिए जो कि समाज में पुरुषों की सत्ता है इसलिए नरेंद्र का पलड़ा भारी है और वह प्रिया को धमकी देता है |धमकी से प्रिया रुकती नहीं बल्कि नरेंद्र की धमकी की अवहेलना कर लंदन चली जाती है| जैसे ही लड़की बड़ी होती है मां-बाप उसकी शादी के लिए चिंतित होने लगते हैं| प्रिया का करियर बनाने की किसी को चिंता नहीं है प्रिया का काला रंग मां के लिए चिंता का विषय है| कैसे होगी प्रिया की शादी कौन करेगा? इससे विवाह सरोज के लिए कोई दिक्कत नहीं होगी क्योंकि सरोज का रंग गोरा है भारतीय समाज में विवाह के लिए गोरी चमड़ी महत्व रखती है |प्रिया अपने घर के लिए एक अनचाही बेटी है |वह बचपन से अपने घर में ही उपेक्षित जीवन जीती है| उसका पालन पोषण उसकी मां नहीं करती बल्कि उसकी दाई मां करती है| वह अपने दाई मां की बेटी कहलाती है वह अपने ही घर में अपने बड़े भाई के द्वारा यौन शोषण का शिकार भी होती है |जिसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर पड़ता है|

प्रभा खेतान प्रिया के हवाले से समाज का यथार्थ पूर्ण चित्रण की है| प्रिया जब अपने मन का काम करने लगती हैं तो उसकी इच्छाओं को अस्वीकार किया जाता है |अगर कोई स्त्री अपने व्यवसाय में व्यस्त हो और अपने घर परिवार को समय नहीं देती हैं| साथ ही पति के इच्छा को पूरा नहीं करती है ऐसे में स्त्री के व्यवसाय करने का कोई महत्व नहीं होता| क्योंकि समाज का एक ढांचा बना हुआ है कि स्त्री है तो पहले अपने पति को देखेगी पति की इच्छा को पूरा करेगी चाहे पत्नी की इच्छा हो या ना हो इस प्रकार समकालीन हिंदी उपन्यासों में स्त्री के विविध रूपों द्वारा स्त्री की समस्या का चित्रण बहुत ही यथार्थता के साथ दर्शाया है| विवाह एक ऐसी संस्था है जो वैधानिक अधिकार प्राप्त कर स्त्री का हर तरह से शोषण करता है| इस संस्था में स्त्री का अपना कोई अस्तित्व ही नहीं होता दरअसल इस संस्था में स्त्री को संरक्षण तो मिलता है| लेकिन रोटी कपड़ा और मकान के एवज में स्त्री जीवन भर के लिए पुरुष के बंधुआ मजदूर बन जाती है| भारतीय समाज में यह जगजाहिर है कि विवाह के बाद कितने प्रतिशत स्त्री सुखमय जीवन जीते हैं आंकड़े उठाकर अवलोकन करें तो बहुत कम स्त्रियां खुश रहने वाली ही मिलेगी|

संदर्भ:

1. रमणिका गुप्ता ,स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने, पृष्ठ संख्या -21
2. अनीता भारती, स्त्रीकाल, अंक:दलित स्त्रीवाद, पृष्ठ संख्या- 66
3. मैत्रेयी पुष्पा सुनो मालिक सुनो पृष्ठ संख्या 23
4. प्रभा खेतान ,अपने अपने चेहरे पृष्ठ संख्या-94
5. कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी ,पृष्ठ संख्या- 84
6. कथादेश, जुलाई 2003, पृष्ठ संख्य- 65
7. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता, पृष्ठ संख्या- 102
8. सिमोन द बो उवार इस्त्री उपेक्षिता पृष्ठ संख्या -178
9. प्रभा खेतान ,छिन्नमस्ता ,पृष्ठ संख्या -174

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

आँचलिक उपन्यासों में नारी विमर्श

प्रा. रोहिणी गुरुलिंग खंदारे
सहाय्यक प्राध्यापिका, डॉ.घाळी कॉलेज, गडहिंग्लज
Email – rohinikhandare10@gmail.com

साहित्य समाज का दर्पण होता है I साहित्य के माध्यम से समाज की विविध समस्याओं तथा असलियत को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जाता है I आज हिंदी साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से नारी विमर्श, किसान विमर्श, वृध्द विमर्श, बाल विमर्श, किन्नर विमर्श, दलित विमर्श , आदिवासी विमर्श का चित्रण किया है I इन सभी विमर्शो में एक विमर्श है, नारी विमर्श

भारतीय संस्कृती में नारी की महत्ता के बारे में ऐसा कहा है कि "यत्र नार्यस्तु पुजन्ते रमन्ते तत्र देवता" याने जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ ईश्वर का वास होता है I नारी एक साथ लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा का रूप धारण करती है I लक्ष्मी का रूप धारण करके घर का वैभव बढाती है I सरस्वती का रूप धारण करके बच्चों को शिक्षित और सुसंस्कृत बनाती है और दुर्गा का रूप धारण करके अन्याय के विरुद्ध लडती है I बेटी, बहन , पत्नी, माँ, सास, भाभी, दादी आदि भूमिकाओं को निभाते हुए अपना कर्तव्य पुरा करती है I आज नारी को सन्मान देने के लिए ८ मार्च को 'महिला दिन' मनाते है I महिला दिन के अंतर्गत स्त्री मुक्ती, स्त्री शक्ती , स्त्री सबलीकरण , स्त्री आरक्षण के आंदोलन किये जाते है सचमुच नारी को स्वातंत्र्य मिला है ? क्या हर एक घर में नारी का सन्मान होता है ? आज उन्हे न जाने कितने समस्याओं का सामना करना पड रहा है I स्त्री भ्रुण हत्या, बलात्कार, वेश्या प्रश्न, विधवाओं के प्रश्न नारी पर अन्याय, अत्याचार ऐसे अनेक मुसिबतों ने नारी तथा समाज को झकझोर दिया है I

युगों-युगों से पीडित, अत्याचार- अनाचार का शिकार एवं वासनापूर्ती का साधन बनकर जीवन यापन करनेवाली नारी के बेबस, लाचार, दयनीय जिंदगी को अनेक उपन्यासकारोंने कथा का आधार बनाया है I जैसे-

संजीव कृत धार उपन्यास में शोषित तथा विद्रोही नारीओं का चित्रण किया है I प्रमुख पात्र मैना जेलर, सिपाही, सीताराम पंडित आदि के हवास का शिकार बनती है I जेलर ने जेल में मैना पर अत्याचार किया I अपने पति को पुलिस द्वारा होती पिटाई को वह देख न सकी I अपने पती को बचाने के लिए वह पुलिस के सामने गिडगिडाती है लेकिन समाज की रक्षा करनेवाला पुलिस भी मैना का शोषण करता है I इसलिए औरतों पर होते अत्याचार को बताते हुए मैना कहती है –"हाँ, हम पापिन, हमरा माँ पापिन ऊ सब धरमात्मा कोई भी जनना ई कुत्ता लोग से बचा नई को S.S.S ई नई I"[1] . वासना का शिकार होने के बावजुद भी आदिवासी परंपरा की माटी से उपजी मैना संथालो के जीवन को बेहत्तर बनाने के लिए जुझती रहती है I भूमिहार ब्राम्हण महेंद्र बाबू बाँसगडा में तेजाब की फॅक्टरी शुरू करते है तब मैना विरोध करती है I हैदर मामा उसके बारे में कहते है कि "रात होते ही मैना कुल्हाडी लेकर फैक्टरी की टंकी तोडने के लिये निकाल पडती है और उधर टैंगर रात-रात भर लाठी लेकर फैक्टरी का चक्कर काटता पहरा देता- धर्मयुद्ध I"[2] इसप्रकार मैना अन्याय को सहना करना पाप समजती है उसके खिलाफ लडना अपना धर्म समजती है I अन्याय के खिलाफ रणचंडी का रूप धारण करती है I भयानक संघर्षोसे गुजरती अपनी आदिवासी जाति के अस्तित्व हेतु वह आजीवन संघर्ष करती रहती है I

मैत्रयी पुष्पा जी कृत 'अल्मा कबुतरी' नारी केंद्र –बिंदू है I इस उपन्यास में कदमबाई एक नारी पात्र है जिसका शोषण मंसाराम के द्वारा हुआ था I कदमबाई रात के अंधेरे में अपने पति का इंतजार कर रही थी तब वहाँ मंसाराम पहुँचकर अंधेरा का फायदा उठाता है और उसके पति की भूमिका निभाता है I कदमबाई उनके स्पर्श से समझ जाती है कि वह उसका पति नहीं है लेकिन कमजोर तथा मजबूरन कदमबाई वासना का शिकार बन जाती है I

अल्मा भी एक ऐसी नारी है जो राणा से प्रेम करती है I शादी से पहले ही उसके पिता की हत्या होती है I अल्मा को दुर्जनसिंह कबुतरा सुरजभान के हाथों बेच देता है I तब अल्मा के पेट मे राणा के अंश का चार महीने का गोला था परंतु सुरजभान बलात्कार करके सब कुछ नष्ट कर देता है I इसप्रकार अल्मा शोषणयुक्त पात्र बन जाती है I लेकिन उपन्यास के अंत तक उसका शोषितरूप विद्रोही में परिवर्तीत हो जाता है I अपने जिंदगी के कटु अनुभवों का सामना करते-करते उसके मन के भीतर संवाद चलता है कि, "आप जानते है मैं यहाँ क्यो रुकी हुई हूँ ? आप समझते हैं कि मै जिंदा भी क्यों हूँ ? बडी सीधी सी बात, आप लोगों ने हमारी दुनिया उजाडी है , मै आपको उजाडे बिना नहीं मरुँगी I मै सबको बता दूँगी कि पाप कहाँ पलता है? अपराध कौन लोग करते है ? सताने और मारने वाले ठेकेदार कौन है ? मै बहुत समझदार नहीं, पर इतना तो समझती हूँ कि हमारे लिए क्या गलत है, क्या सही ?"[3] अल्मा श्रीराम शास्त्री से बदला लेने हेतू सबकुछ सह लेती है I उनके द्वारा दिया गया पत्नी का दर्जा भी अपनाती है और मौका पाते ही उसे मौत के घाट उतारकर उसकी चिंता को स्वयं अग्नी देती है I

'मैत्रयी पुष्पा द्वारा लिखित उपन्यास 'बेतवा बहती रही' की नायिका उर्वशी आनेवालो मुसीबतों को चुपचाप सहती है I उसकी शादी सर्वदमन से होती है लेकिन कुछ ही दिनों में वह विधवा बन जाती है I वह एक दिन पिता समान बरजोरसिंह के वासना का शिकार बन जाती है I वह अपने सहेली के पिता बरजोरसिंह को दुध देने के लिए गई थी तब उनके साथ कुछ गलत हो जाता है I वह घटना उनके मन पर गहरी चोट करती है I "दुध का गिलास न लेकर समुचा हाथ पकड लिया था I निकट को भरपूर जोर से खींचने लगा I वह पलंग पर चित्त गिरी थी I कामातुर धिनौनी चितधन छाती से चिपक गयी I कितने प्रतिरोध, कितने संघर्ष के बाद छूटी थी I हाथ में पहनी सोने की चुडी माँस में गड गयी थी वह निशान छिः I मन वितृष्णा से भर उठा I" [4]. विधवा नारी अपनी वेदना को दुसरों के सामने कभी नही प्रकट कर सकती है उसके बाद उसका भाई अजीत बरजोरसिंह के साथ उर्वशी का विवाह कर देता है I वह भी एक प्रकार का शोषण ही था I वैधव्य के कारण आयी असहायता और कठिन परिस्थितीयों का सामना करती है I उनके घरवाले छोटे बेटे विजय की मृत्यू के बाद उसकी बहू ससूराल में न आए ऐसा वे सोचते थे और उसी वक्त छोटे बेटे की शादी की

बातचीत होती है तब विधवा बहू की शादी देवर उदय के साथ हो इसलिए उर्वशी विद्रोही स्वर में कहती है कि, "उदय की शादी के लिए जो लोग आये है, पइसा वाले में है, अपनी बिटिया के लिए आसानी से उदय जैसा वर खोज लेंगे I लेकिन हमारे विजय की बहू कहाँ जायेगी वह ? कौन ब्याहने आयेगा उसे ? तुमने कब हूँ सोची जे बात ? कैसे कटेगी उसकी जिन्दगानी ? बेटा नहीं रहौ तो बहू विरानी हो गयी / धक्का मारदऔ वाय ? हमारे रहते जा अनरथ नहीं हो सकत एक से हजार तक नहीं I" [5]. उर्वशी का यहाँ विद्रोहिणी रूप प्रकट होता है I उसका विद्रोह देखकर सहेली मीरा भी हक्का – बक्का होकर सोचने लगी कि, बचपन से चुपचाप रहनेवाली उर्वशी अचानक इतना रौद्र रूप धारण कैसे किया ? समय आने पर नारी विद्रोहिणी भी बन जाती है I

मनोहर श्याम जोशी कृत 'कसप' उपन्यास की नायिका गुलजार अपने सौतेले पिता से शोषित है I अपनी दर्दभरी कहानी डी.डी को सुनाते हुए कहती है कि, " क्या तुम समझते हो कि वह मेरा सौतेला पिता, रंगमंच का जी नियस, कभी मेरी मदद करता आगे बढने में ? वह तो मुझे वात्सल्य भाव से भोगता रहता और चाहता है कि मै प्यारी प्यारी बच्ची बनी रहूँ, उसके बिस्तर की शोभा बढाती रहूँ I"[6]

इस उपन्यास में बेबी नामक आधुनिक स्त्री है जिसे एक सजग नारी के रूप में प्रस्तुत किया है I वह डी.डी से प्रेम करती है लेकिन उसका भाई उसकी पिटाई करता है I वह अपने भाई से झगडती है I जोर जोर से चिल्लाकर अपने पिताजी से कहती है कि, "मैने उस बगडगौ के लाटे से कर ली है शादी I इनसे कह दो बाबू आने से उसे गाली न दे ,उस पर हाथ न उठाये I" [7] जब डी.डी शादी के लिए टाल मटोल करने लगता है तब वह विद्रोही स्वर में कहती है कि, "बाबू, मैने तुम से एक दिन आकार कहा था मेरी शादी हो गयी I आज मै तुमसे कह रही हूँ उस शादी में मै विधवा हो गयी I"[8] इसप्रकार बेबी विद्रोही बनकर आगे पढती है और प्राध्यापिका बनती है I बाद में बेबी से मैत्रयी मिश्रा बनती है I

हिमांशु जोशी कृत सु-राज इस उपन्यास में जमींदार और पुलिस द्वारा होनेवाले शोषण का चित्रण किया है I आदिवासी नारी घर –परिवार में जीवन यापन करती है लेकिन जमींदार इस औरतों के साथ जोर जबरदस्ती करके उनका शोषण करते है I गाँव के धरमप्रधान का बेटा सोहनसिंह शखी को मेला दिखाने का बहाना बनकर जबरदस्ती शहर लेकर जाता है I जब वह शहर से वापस लौटती है तब उसके शरीर पर नाममात्र कपडे थे I वह रोती हुई वहाँ का पुरा वृतांत बताती है I उस घटना का सगमा उसे ऐसा पहुँचा था कि वह पागल बन जाती है और एक दिन मर जाती है I उसकी हालत का वर्णन करते हुए लेखक लिखते है कि, "जगह-जगह उसके शरीर पर नीले निशान थे, घाव थे I बहुत दिनोंतक बिस्तर पर पडी रही I बाद में पता नही क्या हुआ उसे, वह पगली-सी हो गई थी I" [9]

उसीप्रकार पिरथी गायों को चराने गई थी तब वहाँ सोहनसिंह आकर उसे जबरदस्ती उठाकर उसका शोषण करता है I वाह उसके वासना की शिकार बन जाती है I बाद में वह उसकी हत्या करके लाश को झाडियों में फेंक देता है I

निष्कर्ष:

हिंदी उपन्यासकारों ने अपने आँचलिक उपन्यासोंमें नारी शोषण का यथार्थ अंकन करने का प्रयास हुआ है I ज्यादात्तर अँचल प्रदेशों में जमींदार वर्ग,उच्च वर्ग , पुलिस या प्रशासन, गाँव के मुखिया आदि के द्वारा नारी का शोषण होता रहा है I अशिक्षा, गरीबी, नारी का वैधव्य, मजबुरी, बेसहारा आदि कारणवश नारी का शोषण होता रहा है I उपन्यासकारोंने नारी के शोषण के साथ-साथ उसके विद्रोही रूप का भी चित्रण किया है I कभी-कभी वह अन्याय, अत्याचार, शोषण, बलात्कार आदि के विरूद्ध आवाज उठाती है I उसे जब भी मौका मिलता है तब विद्रोहिणी का रूप धारण करके अन्याय के खिलाफ लडती है I इसप्रकार हमारे हिंदी साहित्यकारों ने अपने आँचलिक उपन्यास में युगों-युगों से पिडीत, अत्याचार का शिकार वासनापूर्ती का साधन बनकर जीवन यापन करनेवाली नारी के बेबस, लाचार, दयनीय जिंदगी का यथार्थ चित्रण किया है I सामंती एवं पूँजीवादी समाज व्यवस्था की अनेक समस्याओं से घिरी नारी का चित्रण किया है I नासीरा शर्मा नारी की महत्ता के संदर्भ में कहते हैं कि, "औरत अधिक ईमानदार , निष्ठावान, कर्मठ, धैर्यवान और बलिदान करनेवाली एक ऐसा जीव है जिसका मुकाबला दुनिया का दूसरा प्राणी नही कर सकता है I"[10]

संदर्भ सूची:

1. धार –संजीव –पृ 13
2. वही – पृ .23
3. अल्मा कबुतरी – मैत्रयी पुष्पा पृ 370
4. बेतवा बहती रही- मैत्रयी पुष्पा पृ113
5. वही –पृ. 142
6. कसप –मनोहर सयाम जोशी –पृ 151
7. वही –पृ 219
8. वही –पृ 264
9. सु राज –हिमांशु जोशी –पृ 64
10. औरत के लिए औरत – नासिश शर्मा पृ 6

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

नारी की व्यथा को उजागर करता नाटक 'जी, जैसी आपकी मर्जी....

प्रा.रूकसाना अल्ताफ पठाण
असोसिएट प्रोफेसर,हिंदी विभाग कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, पुसेगाव
ruksanapathan1402@gmail.com

प्रस्तावना:

नारी प्राचीन काल से ही उपेक्षित रही है। उसे मनोरंजन का साधन तथा भोग की वस्तु माना गया है। परंपरा से चले आ रहे गंदे विचारों की वह शिकार बनती आई है। पुरूष के कंधे से कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाने का प्रयास वह करती रही है। साठोत्तरी हिंदी नाटको में नारी के बदलते रूप को चित्रित करने का प्रयास नाटककारों का रहा है। उसमें हम महिला नाटककार 'नादिरा जहिर बब्बर' का नाम ले सकतें है,जिन्होंने अपने पिता उर्दू के प्रगतिशील एवं प्रतिष्ठित रचनाकार सज्जाद जहीर से संस्कार लेकर रंगमंच, सिनेमा और टेलिविजन के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई है।

नादिरा जहिर बब्बर भारतीय कला जगत में अपने कलाकर्म और सामाजिक सक्रियता के कारण वह जानी जाती है। वे प्रमुख रूप से नाट्य लेखिका के रूप में ख्यात है। साथ ही साथ अभिनेत्री, निर्देशिका, रूपान्तरकार, अनुवादक के रूप में भी उन्होंने ख्याति प्राप्त की है। उन्होने नारी को केंद्र में रखकर 'सकुबाई', 'सुमन और सना', 'जी, जैसी आपकी मर्जी..' जैसे मौलिक नाटकों का सृजन किया है। आपने नाटको के माध्यम से देस के नारी जीवन की समस्याएँ समाज के सामने रखकर देशकाल के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रकट की है।

नादिराजी का 'जी जैसी आपकी मर्जी..' एक सफल नाटक है। स्त्री के प्रति समाज की धार्मिक मान्यताएँ, रूढीवाद,परंपराएँ उनका दम घोंट लेती है। "स्त्री की स्थिति अधीनता की है, स्त्री सदियों से ठगी गई है और यदि उसने कुछ स्वतंत्रता हासिल की है तो बस उतनी ही जितनी पुरूष ने अपनी सुविधा के लिए उसे देनी चाहिए। यह त्रासदी उस आधे भाग की है, जिसे आधी आबादी कहा जाता है।"[1] पुरूष के मनमर्जी से हुई स्त्री जीवन की विडंबना की समस्या को नाटककार ने उजागर किया है, साथ ही समाज ने किस प्रकार स्त्री को अबतक कठपुतली के रूप में नचाया है इसका भी चित्रण किया गया है।

प्रस्तुत नाटक में चार स्त्री पात्रों ने समाज से बहुत प्रश्न पूछे है, उनका उत्तर समाज ने आज तक नहीं दिया है। पहला स्त्री पात्र दीपा माँ के पेट में थी तब से अब तक की अपनी आपबीती सुनाती है। दीपा घर की चौंथी संतान, जिसे इस दुनिया में आने से पहले ही खत्म करने की साजिश की जाती है। इस भ्रूण को गिरवा देने की सलाह बूढी दादी देती है, मगर यह स्त्री भ्रूण इस दुनिया में आना चाहता है। ये माँ के पेट के अंदर से ही कहता है,"आम्मा मुझे बचा लो मत मारो मुझे...मत मारो...। मैं जीना चाहती हूँ।"[2] दीपा बाप को बोझ लगती है परिणामतः उस पर अन्याय होता रहता है । दीपा का बडा भाई अंशुमन पिता का प्यार पाता है लेकिन दीपा को हमेंशा किसी न किसी कारनों से प्रताडित होकर मार खानी पडती है। अंशुमन के घर में कदम रखतें ही उसे दीपा पानी पीलाने से इन्कार करती है, तब इस ढीठाई के लिए उसे अपने भाई से थप्पड खाना पडता है। इतना ही नहीं तो पिताजी हाथ पकडकर घसीटते हुए ले जाकर कोठडी में बंद कर देते हैं। बेटे का बर्थ डे मनाया जाता है पर बेटियों को दवाई तक नसीब नहीं होती। दीपा हमेशा से यही सोचती है, "ऐसा क्यों होता है।क्यों आम्मा को मार पडती है,क्यों भैंया इंग्लिश मीडियम और हम बहनें हिंदी मीडियम में...? भैंया को दो-दो ट्यूशन फिर भी घिसट-घिसट के पास होता है। हम बिना ट्यूशन के स्कॉलरशिप लाते हैं। फिर भी क्यों नहीं प्यार करतें हमें....क्यों नहीं प्यार करतें सब लोग...?क्या बुराई है हममें, हमें भी प्यार चाहिए न?"[3] नारी की प्रताडना उसके परिवार से ही आरंभ होती हैं। उसे अबला माना जाता है। उसके प्रगति में अनेक रोडे डाले जाते है, लेकिन वह अपने बलबुते पर मंजील तक पहुँचती है।

वर्षा अपनी पीडा,व्यथा प्रस्तुत करती दिखाई देती है। स्त्रियों पर होने वाले अन्याय, अत्याचार से वह व्यथित है उसका प्रश्न है कि लडकियों को ही क्यों अपनी इच्छा, आकांक्षा तथा सपनों का गला घोंटना पडता है। वर्षा के बडे काका अमरिका जातें हैं। वहाँ जाकर दूसरी शादी करतें हैं। पंद्रह साल बाद अपने परिवार के साथ इंडिया आतें हैं, मगर अपनी पत्नी शोभा से मिलने घर तक नहीं आतें। उसका रो-रोकर बुरा हाल होता है। उसी रात वह अपने दोनों हातों की नसों को ब्लेड से काटकर आत्महत्या कर लेती है। नारी प्राचीन काल से प्रताडित एवं उपेक्षित रही है। पुरूष मनमानी करता है और स्त्री जीवन समाप्त कर देती है। आखिर अंत तो एक स्त्री का ही है।

वर्षा जिग्नेश नामक गुजराती लडके से प्यार करती है। लेकिन जब शादी की बात आती है तब वह मम्मी-पापा के Against जाकर Community के बाहर शादी करने की सोच भी नहीं सकता। जिग्नेश सिर्फ कहलाने को मॉडर्न है। वर्षा पुरूषी अहं का विरोध करती है। इसलिए उसका प्रश्न है, "किस चीज में मॉडर्न होते है यह लोग? विचारों से...जिंदगी की जो बुनियादी चीजें है, मान्यताएँ है उनमें? नहीं ... सिर्फ कपडों में, सिगरेट में, शराब में, फ्री सेक्स में...।"[4] आजका युवक स्त्री की ओर भोग की दृष्टी से देखता है और जिम्मेदारी लेने से कतराता है।

जब किसी स्त्री के विवाह की बात आती है, तब उसकी इच्छा-आकांक्षा का विचार तक परिवार के सदस्य नहीं करतें। नाटक का एक महिला पात्र सुल्ताना है, जिसका विवाह बारह-तेरह साल की उम्र में उससे उम्र में दस साल बडे अकिल के साथ कराया जाता है। वह चार बेटियों कों जन्म देती है,मगर बेटा पैदा कर नहीं पाती इसलिए घर से निकाल दिया जाता है। बेटियों को लेकर वह फुटपाथ पर झोपडी बनाकर रहती है। उसका भाई मुहल्ले के बूढे हकिम के साथ उसकी शादी करवा देता है। स्त्री को खिलौंना समझा जाता है, उसकी भावना की कोई कद्र नहीं होती। पुरूष अपनी जिम्मेदारी से छुटकारा पाने हेतु स्त्री पर अन्याय करता दिखाई देता है। स्त्री पुरूष के अत्याचार की शिकार बनती जाती है। मगर वही स्त्री अपनों के खातिर किसी को जान से मारने में भी बिल्कुल नहीं कतराती। हकीम सुल्ताना की बेटी पर अत्याचार करता है तो वह उसे जान से मारती है और जेल जाती है। यहाँ सुल्ताना का नारी शक्ति का रूप दिखाई देता है। आज स्त्री पढ-लिखकर अपनी पहचान बनाना चाहतीं है, मगर उसके ख्बाब पुरे करने में उसके

परिवारजनों का सहयोग महत्वपूर्ण है। सुल्ताना अपनी बेटियों को आत्मविश्वास के साथ आगे बढने के लिए प्रेरित करती है। वह स्वयं पढी-लिखी नहीं है, मगर बेटियों को पढाना चाहती है और इस दलदल से निकालना चाहती है।

नाटककार नादिरा जी ने Arrange Marriage करके अपना सबकुछ एक अनजान आदमी के हाथ सोंफ देने वाली बबली की पीडा को भी चित्रित किया है। पुरूष प्रधान संस्कृति में पुरूष की पसंद का विचार होता है, स्त्री की पसंद-नापसंद को कोई पूछता नहीं। उसकी नुमाईश की जाती है। बबली को लगता है जैसे मै शोरूम में रखी हुई साडी ही हूँ, "और मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं किसी Showroom में सजी हुई साडी हूँ, जिसे बेचने के लिए Salesman भरपूर तारीफें कर रहा हो। ओ मॅडम ले जाओ, लेटेस्ट है, एक ही पीस है Showroom में और आप पर बहुत ही सूट कर रहा है।"[5]

बबली की शादी M.B.A. पास अच्छी Company में बडी Post पर दिल्ली में काम करने वाले लडके के साथ हो जाती है। मगर नशे में धुत रात 3:30 बजे घर आने वाले पति से बबली को कैसे प्यार हो जाता। पति को खुश करने के लिए उसे नाटक करना पडता है। "पर मेरी खुशी...? मेरी भी तो कुछ इच्छाएँ है। सारा जीवन एक नाटक की तरह तो नहीं जीया जा सकता।"[6] फिर भी स्त्री अपने संस्कार नहीं भूलती पती के किसी अन्य स्त्री के साथ संबंध भी होंगे तो भी वो उसके साथ प्रेम का व्यवहार करती है। पति अमन के प्रेम संबंध बॉस की पत्नी अनीता से है ये पता चलने पर वह आग बबूला हो जाती है। उसे अमन से नफरत होने लगती है। "ये सब… क्यों ? क्या करूँ किससे कहूँ। .... क्या गलती थी मेरी, मैने क्या गलत किया, मन तो हो रहा है कि इस पूरे घर को मैं....अमन मुझे आपसे नफरत हो गई है। पर फिर बिदाई के time पर मम्मी की दी हुई नसीहत बबली पुत्तर अपने husband को हर हाल में खुश रखना ।"[7] बबली एक अच्छी wife बनना चाहती है, इसका मतलब ये नहीं कि वो अंधी, बहरी और गुँगी बन जाए। उसका प्रश्न है कि पति सेंकडों affair करें और हम उस पर सबकुछ न्यौछावर करें, आखिर ऐसा क्यों ? यहाँ बबली की छटपटाहट,पीडा दिखाई देती है।

"प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक अलग दुनिया होती है और उसी दुनिया में वह अपना अस्तित्त्व बनाएँ रखता है और खुश रहता है। लेकिन समाज ने पुरूष-स्त्री अस्तित्त्व के बीच में बहुत गहरी खाई खोदी है।....यह पुरूष प्रधान समाज की एक व्यवस्था है जिसके कारण समाज के दो पाटों के बीच नारी पिसती जाती है।"[8]

'जी जैसी आपकी मर्जी....' नाटक में इसी बात की ओर संकेत किया गया है कि इस पुरूष प्रधान समाज में पुरूषों की मर्जी महत्त्वपूर्ण है, जो वे चाहते है वही होना चाहिए। मगर नारी अब संघर्ष करती दिखाई देती है। ये नाटक बहुत से रूढिवादी मुद्दों के बदलाव हेतु लिखा गया है। स्वयं नाटककार नादिरा जी कहती है, "ये नाटक कोई सनसनी पैदा करने लिए नहीं बल्कि जो हमारे बहुत से सामाजिक और राजनीतिक मुद्दें इस स्थिति से जुडें है उन पर प्रकाश डालने की एक कोशिश है।"[9] नाटककार का दृढविश्वास है कि ये नाटक हमारे समाज की मानसिकता को बहुत सच्चाई से प्रतिबिंबित करता है। चाहे फिर वो धार्मिक मान्यताएँ हो जो स्त्री का दम घोंट देती है या फिर हमारी रूढिवादी परंपराएँ।

निष्कर्ष:

हम कह सकतें है कि पौराणिक जमाने से ही स्त्री को रौंदा जाता रहा है। उसके व्यवहार पर प्रश्नचिन्ह लगाए जाते हैं। उसे आलोचना का शिकार होना पडता है। पढने का हक, आर्थिक स्वतंत्रता, अपने फैसले खुद लेने का हक आदि आज भी ज्यादातर स्त्रियों के लिए एक दूर से दिखने वाला सपना मात्र ही है। पुरूष प्रधान समाज नारी को कमजोर और बुद्धिहीन मानता है। नारी को स्वयं से हीन और कमजोर मानता है, लेकिन समाज में नारी हर क्षेत्र में अपनी पहचान बना रही है, अपनी शक्ति का एहसास करा रही है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने नारी का आत्मविश्वास बढाने का प्रयास किया है।

संदर्भ:

1. (संपा.) फरहत परवीन, आजकल हिंदी मासिक-मार्च-2013, (सूचना भवन सी.जी.ओ. रोड, नई दिल्ली-110003) पृ.-24
2. बब्बर नादिरा जहिर, जी, जैसी आपकी मर्जी...,(वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,प्रथम संस्क.-2008) पृ.-12
3. वहीं—पृ.-18-19
4. वहीं—पृ.-24
5. वहीं—पृ.-35
6. वहीं—पृ.-38
7. वहीं—पृ.-40
8. (संपा.) डॉ.अग्रवाल गिरिराजशरण, डॉ.अग्रवाल मीना, शोध दिशा—अक्तूबर-दिसंबर 2021, पृ.-90
9. बब्बर नादिरा जहिर, 'जी, जैसी आपकी मर्जी... '(वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं.-2008) फ्लैप

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

श्री मैथिलीशरण गुप्तजी की कविता 'सैरंध्री' में नारी-विमर्श

सुश्री. रूपाली संभाजी पाटील
शोधछात्रा, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर।
ई मेल –vedika1166@gmail.com

भूमिका :

श्री मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के कवियों में गुप्तजी का उच्च स्थान है। उनका जन्म 3 नवंबर अगस्त 1886 को उत्तर प्रदेश के झांसी जिले के चिरगांव वैश्य परिवार में हुआ| गुप्त जी ने खड़ी बोली में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता, समाजसुधार, नारी का चित्रण हुआ है। उन्होंने नायकों का चित्रण अदभूत ढंग से किया है| उन्होंने नारी संबंध, विचारोंको व्यक्त किया है| वे नारी को सहनशील मानते है। नारी अत्याचार और शोषण का शिकार होती है। हिंदी संसार में उन्हें राष्ट्रकवि का सम्मान दीया। 'पद्मभूषण' और 'मंगला प्रसाद' पारितोषिक मिलें। 12 दिसंबर 1964 ई. को उनका स्वर्गवास हो गया|

'स्त्री-विमर्श' अवधारणा :

स्त्री-विमर्श का प्रारंभ पश्चिम से माना जाता है। वह भारतीय संदर्भ में महत्वपूर्ण है। 'नारी-विमर्श' यह शब्द पश्चिम में से Feminism (फेमिनिज्म) का हिंदी पर्याय है। 'स्त्री-विमर्श' एक प्रकार की चिंतन धारा है। मार्क्स के साथ नारी के प्रति दृष्टिकोण में बड़ा परिवर्तन दिखाई देता है। भारत में नारी विशेष चिंतन का इतिहास बहुत पुराना है। स्त्री के स्वभाव को समझना स्त्री-विमर्श का महत्वपूर्ण लक्ष्य है। वर्तमान समय में समाज साहित्य और संस्कृति के भीतर नारी अपनी तलाश लगातार। कर रही है वह मानवीय धरातल पर लगातार स्थिर होने की कोशिश कर रही है। उसकी इच्छा, प्रयत्न, संघर्ष उसे विमर्श के दायरे में केंद्रित कर रहे हैं| भारत देश में स्त्री को देवी का दर्जा प्राप्त है। उसने कभी अपने मानवीय रूप को प्राप्त नहीं करती। उसको में प्रतिभा, प्रतिदिन शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, हिंसा का शिकार बनना पड़ता है| कोई भी सिद्धांत शाश्वत नहीं है। स्त्री-विमर्श एक ऐसा ही चिंतन है, स्त्री-विमर्श एक नारीवाद सिद्धांत है। जो स्त्री केन्द्रित ज्ञान में चर्चा करती है| स्त्रियों की दशा दयनीय है। स्त्री-विमर्श में नारी मुक्ति की समस्या को उठाया गया है। आज की स्त्री दूसरों पर निर्भर नहीं रहना चाहती। नारी मुक्ति के आसपास घूमता हुआ। साहित्य को स्त्री-विमर्श माना जाता है| स्त्री-विमर्श का लेखन दो प्रकार से होता है। पहला पुरुषों के नजरिए से स्त्री की पहचान करना और दूसरा है स्त्री द्वारा रचित स्त्री-विमर्श का साहित्य आदि है|

सैरंध्री खंडकाव्य का कथानक:

श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने खंडकाव्य लिखें हैं । इनमें से 'सैरंध्री' यह महत्वपूर्ण खंडकाव्य है। 'सैरंध्री' यह खंडकाव्य की कथावस्तु महाभारत से संबंधित है। पांडवों को 12 और 1 साल कुल मिलाकर 13 साल वनवास हो गया था | इसी 13 साल में 1 वर्ष उन्हे अज्ञातवास मिला था। इस अज्ञातवास से संबंधित 1 साल के अंत में 10 महीने वनवास करते हैं और अगले 2 महीने में वह विराट नगरी जाते हैं। उसी समय विराट नगरी के राजा वहाँ आते है। द्रौपति और पांडव सभी एक साथ रहते थे। उसी समय वे अपने नाम बदलते हैं। पहला नाम द्रौपति बदलती है, जो सैरंध्री रखती है। उसके बाद युधिष्ठिर है, जो है कंक बनता है। भीमा रसोईया बनता है और अर्जुन पर्णल्ला बनता है। नकुल और सहदेव ने अपने नाम बदल लिए। नाम बदलते है। विराट राजा के यहाँ नौकरी माँगने जाते हैं। वहाँ युधिस्टर को कंक की नौकरी मिल जाती है। भीम को रसोईया की नौकरी मिलती है। अर्जुन को पेनल्ला की नौकरी मिलती है। नकुल द्वारपाल की नौकरी मिलती है। सहदेव को गोपालन की नौकरी मिलती है। सबको अलग-अलग प्रकार की नौकरियाँ मिल जाती है| बचती है सिर्फ विराट नगरी के राजा की पत्नी सुदेशना की दासी बनती है। रानी सुदेशना के भाई किचक घर में दाखिल हो जाती है। तो वह रानी सुदेशना से सैरंध्री के बारे में पूछ-ताछ करता है, तो सुदेशना सैरंध्री के बारे में जो पता है वह बताती है| किचक सैरंध्री से शादी करना चाहता है। सुदेशना उसे समझाती है कि, 'तुम एक सेनापति हो और दासी से शादी करना तुम्हें शोभा नहीं देता'। फिर भी किचक नहीं मानता। सैरंध्री से शादी करने की बात पर अड़ा रहता है| कुछ दिनों के बाद सेनापति किचक विराट नगरी में अपनी बहन के यहाँ घर में आता है, तो सामने सैरंध्री दिखाई देते है। उन दोनों की भेंट होने पर सैरंध्री का हाथ पकड़कर वह अपने प्रेम का प्रस्ताव रखता है। 'सेनापति हूँ मैं, तुम्हें रानी बनाकर रखूँगा' इस तरह का वादा सैरंध्री से करता है। लेकिन सैरंध्री उसे कहती है कि, 'मैं पतिव्रता हूँ, मेरे पास पति है, और वे अत्यंत बलशाली और शूरवीर है। मैं इस तरह से तुमसे बात नहीं कर सकती हूँ'। फिर भी किचक सेनापति इस बात को नहीं मानता और वह चाहता है कि किसी भी हाल में मैं तुमसे शादी करके रहूँगा इसलिए उसके सामने वह बार-बार आता है। एक दिन सैरंध्री उससे शादी करने से नकार देती है, तो गुस्से में आकर सेनापति किचक उसे सैरंध्री को लाथ मार देता है। सैरंध्री नीचे जमीन पर गिर जाती है। इस वजह से उठकर वो विराट नगरी की रानी सुदेशना के पास जाकर उनके भाई की सारी हकीकत बताती है| हकीकत सुनने के बाद सुदेशना सैरंध्री को समझाती है। सेनापति किचक बहुत ही अत्याचारी और अन्यायी है। सैरंध्री नहीं मानती है और वे रोते-रोते वहाँ से न्याय माँगने के लिए राजा विराट नगरी में राजा के दरबार में चली जाती है। राजा के सामने वहाँ अपनी पीड़ा को व्यक्त करती है| वह कहती है कि, 'मैं एक अबला हूँ, मुझे न्याय चाहिए'। यहाँ के सेनापति किचक है वह सब पर अन्याय करता है। वहाँ न्याय माँगती है लेकिन, राजा भी उसमें कुछ नहीं करता। युधिस्टर सैरंध्री को घर जाने के लिए कहता है। वहाँ से अपने घर वह जाती है फिर भीम के पास जाकर वह रोती है 'कीचक मुझ पर अन्याय कर रहा है ऐसा तुम सिर्फ पति हो कर देख रहे हो'। तब सैरंध्री को समझाया जाता है कि, 'तुम्हारे साथ न्याय होगा, हम सब मिलकर कीचड़ को सजा देंगे'। भीम और कीचक में विराट नगरी के उत्तरशाला में एक दिन युद्ध शुरू होता है। इस युद्ध के अंत में कीचक की मौत हो जाती है और विराट नगरी में हर्षोल्लास मनाया जाता है। इस प्रकार की कथावस्तु 'सैरंध्री' इस खंडकाव्य के अंतर्गत दिखाई देती है।

'सैरंध्री' खंडकाव्य के रूप में नारी विमर्श :

'सैरंध्री' इस खंडकाव्य के रूप में नारी पात्र 'सैरंध्री' पर प्रमुख रूप से प्रकाश डालने की कोशिश लेखक ने की है। 'सैरंध्री' जो नारी पात्र हैं, कल तक के नारी पात्रों को किस तरह से अन्याय और अत्याचार, अपमान का सामना करना पड़ता है। सैरंध्री ने किस तरह से अपना रास्ते का निर्माण किया है, यह इस खंडकाव्य के माध्यम से दिखाया है| आज की नारी जब नौकरी में, प्रशासनमें, व्यवसायमें काम करने समाज में आती है, वहाँ पर वे शोषण का सामना करती है। इस शोषण की पीड़ा, संघर्ष और उसकी अस्मिता है, वो नारी-विमर्श का प्रमुख मुद्दा बनती है| नारी का संघर्ष और विद्रोही रूप नारी-विमर्श में उभरा है। नारी -विमर्श यह मुद्दा बहस करने का मुद्दा नहीं है, बल्कि उस पर जागृति होने की आवश्यकता हैं। यहाँ आधुनिकता संतुलित है, नारी से जुड़ी कुंठा है, नारी से जुड़ी समस्या है, उसपर मार्ग स्पष्ट रूप से करना चाहिए यह नारी-विमर्श के अंतर्गत आता है|

संदर्भ ग्रंथ :

1. 'सैरंध्री', स्त्री मैथिलीशरण गुप्त साहित्य, साहित्य सदन- 2014|
2. 'हिंदी में नारी विमर्श', डॉ शंकर लाल पुरोहित, सेमेस्टर नं-3, पेपर नं-12, एम ए. हिंदी, डी डी सी ई टेक्निकल यूनिवर्सिटी।
3. 'अस्मिता मुल्क विमर्श और हिंदी साहित्य,' डॉ रजत रानी 'मीनू' वंदना, वाणी प्रकाशन।

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

'नरककुंड में बास' उपन्यास में दलित विमर्श

प्रा. डॉ. संदीप जोतिराम किर्दत
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, छत्रपति शिवाजी कॉलेज,सातारा
मेल- sandipjkirdat@gmail.com

सारांश:

गैर दलित लेखक जगदीशचंद्र कृत दलित जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति करनेवाला उपन्यास 'नरककुंड में बास' (1994) है। प्रस्तुत प्रपत्र में 'नरककुंड में बास' उपन्यास में प्राप्त तथ्यों के आधार पर दलित मजदूरों की स्थिति एवं गति का विवेचन किया है । उपन्यासकार ने चमार परिवार का युवक काली के माध्यम से खाल कारखाने में सडांध परिस्थिति में श्रम करनेवाले शहरी दलित मजदूरों के दयनीय जीवन की परते बखूबी से चित्रित की है। मालिक और मजदूर के बीच की आर्थिक विषमता, शोषित जीवन, रहन-सहन, अभावग्रस्त पारिवारिक जीवन, रूढिवादी एवं भाग्यवादी प्रवृत्ति, गंदगीभरे माहौल में जानवरनुमा श्रम करने की मजबूरी तथा दलित नेताओं की उदासीन भ्रष्ट प्रवृत्ति और दलित मजदूरों में एकता का अभाव आदि पहलू दलित मजदूरों के जीवन से रू-ब-रू करते हैं। भ्रष्ट अधिकारी और पूँजीपति वर्ग का मेल-जोल दलित वर्ग के विकास में बाधक दृष्टिगोचर होता है । अधिकतर दलित मजदूरों के जीवन पर अभावग्रस्तता एवं व्यसनाधिनता का प्रभाव नजर आता है। अनपढ़ दलितों का जीवन श्रम के बूते और मालिक-वर्ग की मर्जी पर चलता है। उपन्यासकार जगदीशचंद्र जी ने दलित मजदूरों के जीवन पर प्रकाश डाला है और समस्याओं के कारण तथा समाधान की ओर संकेत किया है | कहना सही होगा कि यह उपन्यास दलित मजदूरों की दयनीय दशा, दशा के कारण और समाधान का दस्तावेज है | भूख से बेहाल दलितों का नारकीय जीवन मानवता संबंधी और नागरिक के अधिकार संबंधी ही प्रश्न उपस्थित करता है |

कुंजी शब्द - विमर्श , दलित, मजदूर, श्रम, नरककुंड ।

प्रस्तावना:

बीसवीं शती के अंतिम दशक में हिंदी साहित्य और पत्र-पत्रिकाओं में विमर्श की चर्चा अधिक हुई | एक ओर मूल्यों के विघटन काल में समाज के स्वास्थ्य की दृष्टी से समस्याएँ एवं समाधान प्रस्तुत करनेवाली रचनाएँ लिखी गई; तो दूसरी ओर वर्षों से शोषित वर्ग एवं समूह की चर्चा भी बड़ी बेबाकी से शुरू हुई | हिंदी के कई साहित्यकारों ने दलित, स्त्री, आदिवासी, वृद्ध , किन्नर, घुमंतू, महानगरीय तथा अल्पसंख्यांक समाज की स्थिति एवं गति संबंधी गंभीरता से सोचकर उनकी दशा पर प्रकाश डालने का कार्य किया है | अर्थात लेखकीय सोच विचार की चर्चा पाठक तथा समाज में होना अपेक्षित होता है | संवेदनशील पाठक, शासक तथा समाज अपनी नीतियों में परिवर्तन करे यह अपेक्षा विमर्श केंद्रित साहित्य से होती है | कहना सही होगा कि विमर्श केंद्रित हिंदी साहित्य ने हाशिये पर के समाज एवं विशेष समूह के साथ मानवता केंद्रित व्यवहार करने का संदेश दिया है | इसमें कई विषयों की चर्चा साहित्य सृजनात्मक दृष्टि से कम हुई तो कई विषयों की अधिक | विमर्श के प्रारंभिक दौर से जिस पर अधिक लिखा उनमें दलित और नारी विमर्श प्रधान रहा है | आज वर्तमान काल में दलित साहित्य का बोलबाला है। यथार्थ चित्रण की अधिकता दलित साहित्य की खास विशेषता है। बरसों से मानव होकर भी मानव प्राणी से पीड़ित, शोषित एवं मानवीय अधिकारों से वंचित दलित वर्ग है। विभिन्न समाजसुधारकों ने दलित वर्ग को चेतित करने का प्रयास किया है। समाजसुधारकों के साथ चुनिंदा साहित्यकारों ने भी दलित वर्ग की दयनीय स्थिति का चित्रण पाठक के सामने रखा है, उनमें दलित वर्ग तथा गैर दलित लेखकों का अनन्यसाधारण योगदान है। प्रस्तुत प्रपत्र में 'नरककुंड में बास' उपन्यास में दलित विमर्श संबंधी जो तथ्य प्राप्त हुए हैं उसका विवेचन- विश्लेषण किया है |

'दलित' तथा 'विमर्श' शब्द का अर्थ एवं संक्षिप्त स्वरूप :

'दलित' शब्द का अर्थ है -''जिसका दमन किया हुआ हो, या जिसे पनपने नहीं दिया हो, ध्वस्त या नष्ट किया हो''[1] 'दलित' शब्द संबंधी मेरी विनम्र धारणा है कि समाज का शोषित, मानव अधिकारों से वंचित वर्ग, जिससे सेवा की अपेक्षा की जाती है पर उसे सम्मान नहीं दिया जाता। 'विमर्श' शब्द संबंधी डॉ. सपना वाईकर लिखती हैं - " 'विमर्श' का सीधा संबंध चिंतन-मनन, सोच-विचार से है | किसी बात पर गंभीर रूप से मनन - चिंतन करना ही विमर्श है" [2] अर्थात दलित विमर्श से तात्पर्य है सदियों से मनुष्य ने ही मानव के रूप में अस्वीकार किए तथा अछूत समझे समाज के सबंधी किया चिंतन | इस चिंतन में दलित वर्ग की दूर्दशा, दूर्दशा के कारण और मुक्ति का मार्ग भी दिखाया है | विद्रोह का स्वर दलित साहित्य की एक विशेषता है| दलित साहित्य संबंधी रितु गुप्ता लिखती हैं - " दलित साहित्य वह साहित्य है जो दलितों के जीवन ,उनके सुख -दुःख ,उनकी सामाजिक स्थितियों, उनकी आस्थाओं, उनका शोषण, उत्पीडन तथा इस उत्पीडन शोषण, से दलितों द्वारा प्रतिशोध की परिस्थितियों की व्यापकता तथा गहराई के साथ कलात्मकता से प्रस्तुत करता है |" [3] इससे विदित होता है कि दलित साहित्य में दलितों के जीवन के विभिन्न आयाम, समस्याएँ ,समाधान तथा विद्रोही स्वर नजर आता है |

'नरककुंड में बास' उपन्यास का संक्षिप्त परिचय :

गैर दलित लेखक जगदीश चंद्र कृत दलित जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति करनेवाला उपन्यास 'नरककुंड में बास' (1994)) है। उपन्यास का कथाधार गाँव की त्रासदी से चीत होकर शहर भाग आए दलित नौजवान की कहानी है, जो विवशतावश सडांधभरे, शोषित मजदूर-दुनिया का हिस्सा बनता है। इस संदर्भ में डॉ.दिलीप मेहरा का कथन दृष्टव्य है - ''इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने भूमिहीन और दलित व्यक्ति की समाज में क्या स्थिति होती है उसका विविध आयामों के माध्यम से चित्रण किया है।''[4] कहना सही होगा कि उपन्यास का उद्देश्य शहरी जीवन में कार्यरत दलित मजदूरों की नरकमयी जिंदगी का यर्थाथ चित्रण करना है।

'नरककुंड में बास' उपन्यास में दलित विमर्श:

प्रस्तुत प्रपत्र में 'नरककुंड में बास' उपन्यास में चित्रित दलित मजदूरों के जीवन के पहलुओं का तथ्यपरक विवेचन किया है, जो दलित विमर्श से संबंधित बिंदुओं पर प्रकाश डालता है -

रोजगारप्राप्ति के लिए संघर्ष :

आज का युवा उज्जवल भविष्य के सपने लेकर शहर में आता है; तो भी उसका जीवन संघर्ष कम नहीं होता । उसे रोजगारप्राप्ति के लिए संघर्ष करना पडता है। दलित वर्ग को तो रोजगारप्राप्ति प्राप्ति में अधिक दिक्कत आती है | विशेषत: जाति, विवशता, सिफारिश तथा गरीबी रोजगारप्राप्ति में बाधा बनती हुई परिलक्षित होती है | 'नरककुंड में बास' उपन्यास का नायक काली चमार जाति का है। वह मजबूरन घर छोड़कर रेल से शहर आता है। दलित वर्ग के लोगों को सहजता से कई आश्रय नहीं मिलता । काली शहर की भीड़ एवं पुलिस देखकर घबरा जाता है। रेल के मुसाफिरखाने में, बस अड्डे के बाहर दुकान की बेंच पर रात काटने में नाकामयाब रहा काली लुधियाना - नवाँशहर बस अड्डे के खाली बरामदे के कोने में रात गुजारता है। काली छोटा-मोटा काम मिलने की आशा से प्रात:काल अड्डा मजदूर बरकत के पास जाता है। बरकत काली को प्रश्रय तो देता है, पर मजदूर मंडी में जाकर भाग्य अजमाने की सलाह देता है। जगदीश चंद्र जी ने दलित लोगों की रोजगार की यथार्थ स्थिति का चित्रण मजदूर मंडी के द्वारा किया है। आधे घंटे में ही मंडी खत्म होती है। मंडी में जान-पहचानवाले को ही काम मिलता है। मिस्त्री कहता है -''काम उसी को मिलता है जिसका कोई अपना सरनामा हो, कोई अता-पता हो, कोई बाली वारिस हो।''5 स्पष्ट है कि शहर में रोजगारप्राप्त करना आसान नहीं है। संघर्षशील काली चिंतित होता है । काली मंडी फैंटनगंज पहुँचता है। उपन्यासकार ने भिखारीनुमा जीवन निर्वाह करनेवाले दलित मजदूरों की दयनीय दशा का चित्रण सट्टेबाजी में मुनाफा मिले सेठ रत्नचंद ने आयोजित किए हलवा-पुरी के भोजन समारोह द्वारा किया है । एक ओर भूख मिटाने के लिए प्रामाणिकता से श्रम करनेवाले मजदूर हैं जो दो टूक की रोटी को मोहताज हैं; तो दूसरी ओर पूँजीपतियों की दावतों का चित्रण मालिक - मजदूर के बीच का अंतर स्पष्ट करता है । दलित युवाओं को रोजगारप्राप्ति में आनेवाली दिक्कते दलित वर्ग की दयनीय स्थिति अधोरेखित करता है |

दलित मजदूरों का शोषित जीवन :

प्रस्तुत उपन्यास में जानवरनुमा श्रम करनेवाले दलित मजदूरों के शोषण एवं स्वास्थ्य का चित्रण मिलता है। दिनभर कार्य करने के बाद सवा रुपया मजदूरी देते समय भी मुनीमजी शोषण करते हैं। छिब्बू मजदूर मुनीमजी को पान खिलाकर और पैर पकड़कर अपना हिसाब माँगता है -''मुनीमजी हम तो आपके दास हैं।''[6] उक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि अनपढ़ दलितों का जीवन श्रम के बूते और मालिक-वर्ग की मर्जी पर चलता है। माँझा काली को अपने परिचित मित्र किशने की सहायता से बूटा मंडी के पासवाले चमड़े के कारखाने में काम दिलाता है। उपन्यासकार ने बूटा-मंडी के बदबूभरे माहौल में खुजली की बीमारी से त्रस्त दलित मजदूरों की दशा का चित्रण कर यातनामय नरक से परिचय कराया है। फोरमैन का कथन -''भाई देख लो। काम बहुत गंदा है। समझों गंदी बदबूदार नाली में कीड़ा बनकर रहना पड़ता है। खुजली-खारिश आम रहती है।''[7] इससे विदित होता है कि चमड़े के कारखाने में कार्य करना याने नरककुंड में ही काम करना है। काली देखता है कि नमक, चूने या कीकर की छीलन के कारण मजदूरों का शरीर-स्वास्थ्य जानवरनुमा बना है। काली बारह आने की मजदूरी पर बारह घंटे खाल का नमक धोने का कार्य करता है। जगदीश चंद्र जी ने दलित वर्ग की अन्याय सहने की प्रवृत्ति पर उंगली रखी हैं। काली चमड़ा मजदूरों के लिए सुविधाएँ माँगने का विचार करता है, तो भाग्यवादी मजदूर फोरमैन के आतंक के सामने चुप्पी साधते हैं। काली मजदूरों को चेतित करता है। पूँजीपति वर्ग मजदूरों के लिए सुविधा देने के बदले अधिकारियों से साँठ-गाँठ कर कागज पर ही सरकारी योजनाओं का निर्वाह करते हैं। भ्रष्ट अधिकारी और पूँजीपति वर्ग का मेल-जोल दलित वर्ग के विकास में बाधक दृष्टिगोचर होता है।

दलित मजदूरों का रूढ़िवादी एवं भाग्यवादी जीवन:

दलितों के पिछड़ेपन के विभिन्न कारणों में से एक कारण उनका रूढ़िवादी एवं भाग्यवादी व्यवहार है। दलित रूढ़ि-प्रथा-परंपराओं का निर्वाह करते हैं। किशने और काली बुजुर्गों के पैरों पर मत्था टेकने की प्रथा का निर्वाह करते हैं। काली, किशने, बरकत तथा उसके मित्रगण मानते हैं कि जो नक्षत्र एवं मुकंदर में लिखा है वही मिलेगा और उसी तरह घटित होगा। तथा उसके लिए अधिक परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। इस दृष्टि से वरियाम नामक मजदूर का कथन दृष्टव्य है - '' हर चीज का टैम बँधा हुआ है। हर बात अपने टैम पर ही होगी; न एक पल आगे, न एक साईत पीछे।''[8] विवश मजदूर संघर्ष की अपेक्षा भाग्य के भरोसे जिंदगी गुजारते हैं और भाग्य का लेखा-जोखा मानकर मालिक वर्ग का अन्याय सहते हैं। भाग्यवाद दलित जीवन के पिछड़ेपन का कारण है |

साधारण खान-पान एवं फटेहाल वेशभूषा :

विवेच्य उपन्यास में चित्रित दलित वर्ग का खान-पान साधारण है। दलित मजदूरों को अच्छे एवं स्वास्थ्यपूर्ण व्यंजन नहीं मिलते | दलित पिता अपने बच्चों को शरीरभर कपड़े भी खरीद नहीं सकते | आर्थिक विषमता के परिणाम दलित जीवन पर नजर आते हैं | उच्च वर्ग के लोग दलितों के साथ मानवताभरा व्यवहार नहीं करते | चमडे के कारखाने में कार्यरत मजदूर तथा मंडी बाजार में रेढ़ा खिंचनेवाले मजदूर रोटी, आचार, गुड़, फुल्के, दाल, प्याज तथा चटनी खाकर जीवन-निर्वाह करते हैं। भारतीय संस्कृति में प्यासे को पानी पिलाना महापूण्य का कार्य माना जाता है। किंतु होशियारपुर के उच्च-वर्ग के लोग दो टूक शब्द सुनाकर ही दलित मजदूरों को पानी पिलाते हैं - "डेढ़ बाल्टी पानी पी गए और यूँ हाथ झाड़ते चल दिए जैसे ताऊ का प्याऊ हो।''[9] उक्त कथन से उच्चवर्गीय लोगों की मानसिकता और दलितों का यथार्थ-जीवन सामने आता है। दलित परिवार के बच्चों को आम बच्चों की तरह हलवा, लड्डू जैसे व्यंजन खाने को नहीं मिलते। काली जब लड्डू लेकर किशने के घर जाता है तब किशने के बच्चे लड्डू के लिए झगड़ते हैं। दलित मजदूर मजबूरन शरीर एवं वस्त्र की स्थिति की ओर नजरअंदाज करता हैं। गाँव से भाग आया काली लँगोट या कछहरा न होने के कारण प्रात: काल के सन्नाटे में नहाता है । रेढ़ा खिंचनेवाला माँझा कुर्ता, बनियन एवं साफे से काम चलाता है। चमड़े के कारखाने के मजदूर कच्छा और साफा पहनते हैं। मजदूरों के बच्चों को अच्छे-खासे कपड़े नहीं मिलते। नंजू चाचा की बेटी छिंदो माँगी हुई चुनरी, जम्पर और तंग शलवार पहनती है। छिंदो की वेशभूषा देखकर काली हैरान होता है -''वह दीये की मैली-पीली रोशनी में प्रेत-सी मालूम हो रही थी और माँगे हुए छोटे-बड़े कपड़ों से अपने शरीर को

ढाँकने की कोशिश कर रही थी।''[10] उक्त उद्धरण से गरीब असहाय दलित मजदूरों के परिवार के बाल-बच्चों की दशा सामने आती है। इन बच्चों का दयनीय जीवन दूसरों की दया पर चलता है।

अभावग्रस्त तथा अशांत दांपत्य जीवन:

प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित अधिकतर दलित मजदूरों के दांपत्य जीवन पर अभावग्रस्तता एवं व्यसनाधिनता का प्रभाव नजर आता है। किशने बाल-बच्चों के साथ झोपड़ीनुमा कमरे में रहता है। पत्नी का बेहद चहेता किशने पत्नी रक्खी की गैरमौजुदगी में अधिक शराब पीता है। वह पत्नी से हँसी-मजाक करता है तथा बीच-बीच में चुटकियाँ लेता है। काली के साथ बात बिगड़ने पर किशने रक्खी पर शक करता है -"याराने पाल रही है। पराए मर्द के लड्डू खा रही है।''[11] रक्खी पति का अन्याय चुपचाप सहती है। नंजू का दांपत्य जीवन दर्द तथा धोखाधड़ी से भरा है। पाँच बच्चेवाली नंजू की पत्नी नंजू के दोस्त हरिराम के साथ भाग जाती है। नंजू की छोटी लड़कियाँ चौका-बर्तन कर नंजू की परवरिश करती हैं। इससे स्पष्ट है कि जिन दलित मजदूरों का दांपत्य जीवन अशांत है उसके परिवार की दूर्दशा हुई नजर आती है।

दूर्बल शरीर स्वास्थ्य :

'नरककुंड में बास' उपन्यास में चित्रित दलित मजदूरों का शरीर स्वास्थ्य दूर्बल परिलक्षित होता है। दलित मजदूरों का दूर्बल शरीर स्वास्थ्य का कारण अर्थाभाव है | रूपये न होने के कारण दलित मजदूर परंपरागत इलाज करते नजर आते हैं | दलित मजदूरों में बीड़ी, सुरती एवं शराबपान का व्यसन नजर आते हैं। अर्थाभाव के कारण खूनी पेचीश तथा बुखार से बेहाल माँझा डॉक्टरों की अपेक्षा हकीम के पास जाता है। उपन्यास में चित्रित खाल कारखाने में कार्यरत मजदूर- भीमा, बंसे, जिंदर, किशने, करपू तथा काली आवश्यक सुविधा न होने के कारण खुजली की बीमारी से त्रस्त हैं -''शरीर पर खुजाने के कारण जगह-जगह पर नाखूनों की खराशों और खरोंचों के निशाण बन गए थे और कहीं-कहीं चमड़ी छिल जाने से त्वचा में लाली उभर आई थी।... जब खुजली छिड़ती है तो जी चाहता है कि शरीर को नोंच लूँ।''[12] उक्त उद्धरण से विदित होता है कि खाल कारखाने के मजदूर खुजली की बीमारी की नारकीय यातना भोगते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में खुजली की पीड़ा भोगनेवाले नंजू की नासूर जिंदगी का चित्रण है। खुजली के कारण नंजू की पत्नी नंजू को छोड़कर चली जाती है। नंजू दवाई के लिए रुपए न होने के कारण मोहल्ले के देबू नाई से इलाज करवाता है।

दलित नेताओं की उदासीन एवं भ्रष्ट प्रवृत्ति :

दलितों के सुधार के लिए अनेक समाजसुधारकों ने प्रयास किया है | मात्र बदलते काल में कई दलित नेता की कार्यपद्धति में अंतर दिखाई देता है | नेतागण समाजसुधार की अपेक्षा अपनी स्वार्थपूर्ति करते हैं | दलित नेता अपने ही अनपढ़ बंधुओं का शोषण करने में हिचकिचाते नहीं है | उपन्यासकार जगदीश चंद्र जी ने बिरादरी के नाम पर जलसा निकालने की तैयारी करनेवाले नौजवान नेता सेठ रामप्रकाश के द्वारा दलित नेताओं की उदासीन एवं भ्रष्ट प्रवृत्ति की पोल खोली है। दलित नेता सेठ रामप्रकाश जलसे में मालिक से बात करने का वादा करते हैं ; पर प्रत्यक्ष रूप में बिरादरी के देवता रैदास का मंदिर बनवाने के लिए चंदा जमा करते हैं। फोरमैन मजदूरों की अनुमति लिए बिना हर महीने पाँच रुपए चंदा देने की घोषणा करता है। आज दलित वर्ग में एकता नहीं हैं । तिखड़मबाज नेता दलित वर्ग को आपस में लड़ाते हैं। अनुभवी फोरमैन काली को मुंशी का कार्य सौंपाकर मजदूरों को आपस में लड़ाता हैं। काली का मुंशी बनना किसी को पसंद नहीं आता। मित्र ही दुश्मन होते देख हतोत्साही काली कारखाने का हिसाब-किताब फोरमैन के हाथ सौंपकर नरककुंड से बाहर निकलता है। वह चाचा नंदसिह के साथ पुनश: अपना पुश्तैनी व्यवसाय करता है।

निष्कर्ष:

जगदीश चंद्र जी ने 'नरककुंड में बास' उपन्यास में दलित मजदूरों के जीवन का यथार्थ चित्रण सूक्ष्मता से किया है। दलितों को सहजता से कई आश्रय नहीं मिलता। प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित दलित मजदूरों की स्थिति दासनुमा है। दलितों को श्रम के मुताबिक ना मजदूरी मिलती है और ना कोई आवश्यक सुविधाएँ मिलती हैं। विवेच्य उपन्यास में चित्रित दलित मजदूरों का शरीर स्वास्थ्य दूर्बल है। दलित मजदूरों में बीड़ी, सुरती एवं शराबपान का व्यसन नजर आता हैं। अधिकत्तर दलितों के दांपत्य जीवन पर अभावग्रस्तता एवं व्यसनाधिनता का प्रभाव परिलक्षित होता है। दलितों के पिछड़ेपन के विभिन्न कारणों में से एक कारण उनका रूढ़िवादी एवं भाग्यवादी व्यवहार है। जगदीश चंद्र जी ने दलित वर्ग की अन्याय सहने की प्रवृत्ति पर उंगली रखी है। उपन्यासकार ने जाति के नाम पर राजनीति करनेवाले राजनेताओं की पोल खोली है। तिखड़मबाज नेता दलित वर्ग को आपस में लड़ाते हैं। भ्रष्ट अधिकारी और पूँजीपति वर्ग का मेल-जोल दलित वर्ग के विकास में बाधक दृष्टिगोचर होता है।

संदर्भ संकेत:

1. सं.रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, पृ. 35
2. सं. डॉ. नीता दौलतकर, नव विमर्श नव चिंतन , पृ.51
3. वही, पृ. 85
4. सं.डॉ.धनंजय चौहान/डॉ. धीरजभाई वणकर, भारतीय साहित्य एवं दलित चेतना, पृ.196
5. जगदीश चंद्र, नरककुंड में बास, पृ. 62
6. वही, पृ. 101
7. वही, पृ. 128
8. वही, पृ. 227
9. वही, पृ. 97
10. वही, पृ. 181
11. वही, पृ. 30
1. 12.वही, पृ. 154

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

नीरजा माधव के 'यमदीप' उपन्यास में किन्नर विमर्श

डॉ.संजय पिराजी चिंदगे
दे. आनंदराव ब. नाईक कॉलेज, चिखली. ता.:शिराला ,जि. :सांगली।
ईमेल: spchindage@gmail.com

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य में दलित नारी आदिवासी आदि विषयों पर विमर्श होता आया है। पर इनकी तुलना में किन्नर विमर्श अछूता रहा है। पर आधुनिक युग में और वर्तमान हिंदी साहित्य में, उपेक्षित एवं बहिष्कृत किन्नरों की चर्चा हो रही है।

नीरजा माधव एक बहु चर्चित लेखिका है उनके लेखन में हमेशा ही नए नए विषयों पर भाष्य किया है। नीरजा माधव जी ने कुल मिलाकर 12 उपन्यास लिखे हैं ।और हर उपन्यास का नया विषय है ।और उसमें अलग-अलग समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। यमदीप नीरजा माधव जी का पहला उपन्यास है, जो किन्नरों पर केंद्रित है । इस उपन्यास में समाज द्वारा प्रताड़ित उपेक्षित बहिष्कृत एवं दमित एक वर्ग, ठीक है किन्नरों का चित्रण किया है । उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से किन्नर समाज को सच्चा न्याय देने का प्रयास किया है ।

किन्नर जिसे हम थर्ड जेंडर, हिजड़ा, तृतीयपंथी, ख्वाजासारा, जैसे कई नामों से बुलाते हैं। जिसे अपनी खुशी में गाना बजाने के लिए पल भर के लिए अपना बनाते हैं, और बाद में उसे इस समाज का हिस्सा ही न मानकर एक अभिशप्त जीवन जीने के लिए छोड़ देते हैं। इनकी झोली में हमेशा हम दुख एवं यातना ही देते हैं। 2016 में केंद्रीय कैबिनेट ने ट्रांसजेंडर पर्सन बिल पारित कर किन्नरों के अधिकारों का तो संरक्षण किया है,। "केंद्रीय कैबिनेट ने ट्रांसजेंडर पर्सन बिल को 2016 को मंजूरी दे दी।"[1] लेकिन आज भी यह समाज अपनी पहचान बनाने के लिए लड़ता एवं संघर्ष करता दिखाई देता है ।किन्नर समाज पर लिखे हुए प्रमुख उपन्यासों में तीसरी ताल, किन्नर कथा, गुलाममंडी पोस्ट बॉक्स नंबर 203, नालासोपारा मैं भी औरत हूं, और यमदीप महत्वपूर्ण है।

प्रस्तुत उपन्यास लेखन की प्रेरणा के बारे में स्वयं लेखिका कहती है —"दरअसल इस उपन्यास का जन्म मेरी पुत्री कुहू के जन्म के साथ सन 1991 में ही हो गया था। जन्म का बधावा गाने आए हिजड़ो के समूह को प्रथम बार बहुत गहराई से देखा और महसूस किया। एक अव्यक्त मजाक को रोने और अभिशप्त जिंदगी जीने को मजबूर क्यों है यह लोग? अपने परिवार, गांव से बिछड़ कर एक सामान्य जीवन जीते हुए इन लोगों को क्या अपने माता-पिता भाई बहन याद नहीं आते होंगे? परिवार वाले भी इन से बिछड़ कर क्या सामान्य जीवन जी पाते होंगे?[2] और इन सभी प्रश्नों के उत्तर है यमदीप उपन्यास जो सन 2002 में प्रकाशित हुआ है।

उपन्यास के केंद्र में दो प्रमुख पात्र है एक नाजबीबी उर्फ नंदारानी जो किन्नरों का प्रतिनिधित्व करती है। और दूसरा पात्र है मानवी जो स्त्री विमर्श का प्रतिनिधित्व करती है ।इस उपन्यास की भूमि बनारस की वरुणा नदी के पार का इलाका है। जिस प्रकार वरुणा अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है उसी प्रकार वरुणा के पास की बस्ती में अपना जीवन यापन करने वाला किन्नर समुदाय अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्षरत है। मुख्यधारा से कटा हुआ, लोगों से दूर, असहाय पुलिस के डर से हमेशा भयभीत, हिजड़ा समुदाय अपने इष्ट देवता बेसरा माता की पूजा करता है। अपनी एक अलग भाषा बोलता है। अपने बेसुरे आवाज में गाकर लोगों की खुशियों में शामिल हो जाता है। और अपना जीवन जीने की कोशिश करता है। और हमेशा यह प्रार्थना करता है कि यह जीवन दोबारा ना मिले।

उपन्यास का प्रारंभ एक पगली की दर्द भरी चीख से होता है। पगली मटमैंली साड़ी में खून से लथपथ पड़ी है। उसकी चीख सुनकर गली के लड़के हंस रहे हैं, मोहल्ले के की सभी औरतें सिर्फ देख रही है। तभी नाजबीवी अपने साथियों के साथ एक विशिष्ट अंदाज में, कमर लचका कर आती है और इस पीड़ित पगली की मदद करती है। किन्नर है तो क्या हुआ इसमें मानवीयता दिखाई देती है। पगली एक बच्ची को जन्म देख कर मर जाती है ,उस नवजात बच्ची के प्रति वात्सल्य भाव के कारण नाजबीवी ऊसे अपने साथ रखने का निर्णय लेती है। और उसका नाम सोना रखा जाता है। सोना को एक अच्छी जिंदगी देने के लिए वह मार भी खाती है। तब महताब गुरु कहते हैं -"देखो नाज इंसानों को कोसते हैं कि इनको बहुत हवस है। पैसे रुपए के लिए, वो क्या-क्या कर डालते हैं ।पर एक नन्ही सी सोना के कारण तुझे क्या करना पड़ रहा है ।मैं फिर कहती हूं, सोना के मोह माया में मत फँस तू हिजड़ी है, हिजड़ी।"[3] फिर भी नाज सोना की पढ़ाई के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाती है।

हमारा समाज लिंग के आधार पर बना है। स्त्रि पुरुषों के व्यवहार को समाज में मान्यता मिलती है, लेकिन किन्नर समुदाय का व्यवहार समाज मान्य नहीं है। अगर कोई मां बाप किन्नर बेटे या बेटी को अपने साथ रखना चाहता है, तो उसे समाज मानता नहीं। घरवालों को मजबूर कर देता है कि वह किन्नर बस्ती में अपने बच्चे को छोड़ दे। और उससे सारे संबंध काट दे। मेहताब गुरु नाथ बीवी के पिता को कहते हैं कि - "आप इस बस्ती में रह नहीं सकते, बाबूजी और अपनी बेटी को अपने साथ रख भी नहीं सकते ....दुनिया में बदनामी और हंसी हंसारत के डर से हिजड़ी के बाप कहलाना न आप बर्दाश्त कर पाएंगे और आपके परिवार के लोग।"[4] मेहताब गुरु हिजड़ो के साथ किए जाने वाले व्यवहार का पर्दाफाश करते हैं। गुरुजी आगे कहते हैं कि "लूली लंगड़ी होती यह, कानी कोतर होती तो भी आप अपने साथ रख सकते थे। इसलिए इसे अब इसके हाल पर छोड़ दीजिए यही इसका भाग्य था, यही बढा था ....सोच लीजिए, मर गई सब्र कर लिया।"[5]

हमारे समाज में एक जानवर को पाल सकते हैं लेकिन एक किन्नर को घर में जगह नहीं दे सकते। उसे ठोकरें खाने के लिए घर से बाहर निकाल दिया जाता है। नाजबीवी की के मां-बाप उसे पढ़ा लिखा कर अपने पैरों पर खड़ा करना चाहते हैं, लेकिन समाज ऐसा होने नहीं देता। मेहताब गुरु यहां

सवाल उठाते हैं कि - "माताजी किसी स्कूल में आज तक किसी हिजड़ा को पढ़ते लिखते देखा है? किसी कुर्सी पर हिजड़ा बैठा है? पुलिस में, मास्टरी में,कलेक्ट्री में, किसी में भी? अरे इसकी दुनिया यही है, माताजी कोई आगे नहीं आएगा। की हिजड़ों को पढ़ाओ लिखाओ नौकरी दो, जैसे कुछ जातियों के लिए सरकार कर रही है।"[6] हिजड़ो के यथार्थ जीवन का चित्रण उपन्यास में किया है। हिजड़ो के प्रति यह समाज का व्यवहार गलत है।

इस उपन्यास का पात्र मानवी जो एक पत्रकार है, और आदि शक्ति नामक स्तंभ की संपा संपादिका है। वह मेहताब गुरु से मिलती है, तब उनके धर्म के संबंधी विचार देश के प्रति अपने समर्पण, किन्नरों के जीवन में गुरु का महत्व देखकर आश्चर्यचकित हो जाती है। और वह सोचती है कि इनके दिमाग में कहां से यह सारी बातें आ गई मानवी एक इस पर फीचर लिखती है - "हमसे सबक लें शिखंडी गुरु "इसकी बहुत चर्चा होती है। मानवी नाजबीवी के व्यक्तित्व से परिचित होने के बाद तय करती है कि, वह इसे राजनेता मन्ना बाबू के विरोध में खड़ा कर देगी। इस उपन्यास का अंत आदर्शवादी दिखाया गया है। उपन्यास के सभी पात्र उपन्यास को सजीवता प्रदान करते हैं। तारक आदर्श है, पांडेय धूर्त है, संत राव और मना बाबू राजनीति के सफेद और काले रंग है ।रीता देवी नारी उद्धार की संरक्षिका है, और लड़कियों को शोषण से रोकती है। लेखिका ने मानवी और नाज बीवी की कथा के साथ साथ अन्य पूरक कथाओं का लेखन उपन्यास में किया है इस उपन्यास में किन्नरों द्वारा प्रयुक्त शब्दावली का प्रयोग किया है। उपन्यास में किन्नरों के आंतरिक और बाह्य जीवन का सुंदर चित्रण किया है आज समाज में उनकी क्या स्थिति है? वह कैसे नरक यातना में जीवन जी रहे हैं? इसका सुंदर लेखा-जोखा इस उपन्यास में हुआ है।

निष्कर्ष:

वर्तमान समय में पुरुष प्रधान भारतीय संस्कृति में जैसे नारी को महत्व दिया जाता है पर, भारतीय संस्कृति में तीसरा वर्ग भी मौजूद है और वह है तृतीयपंथी लोग। मगर समाज उनकी ओर हींनता की दृष्टि से देखता है, वह गुलाम है, उनका शोषण करना, उन्हें नफरत की दृष्टि से देखना, समाज में उनका कोई वजूद नहीं ऐसा मानना इस मानसिकता को परिवर्तित करने का प्रयास प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से नीरजा माधव जी ने किया है। समाज को आज भी सुधर जाना चाहिए और जिन्हें हम हिजड़ा मानते हैं वह हम में से ही एक है ऐसा मानकर समाज में हर स्तर पर उन्हें समानता की दृष्टि से देखना जरूरी है यह इस उपन्यास का कथ्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. संविधान की नजर में इंसान है किन्नर - रिजऊ.
2. सं. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, "भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीय लिंगी विमर्श" पृष्ठ 25
3. नीरजा माधव - "यमदीप " सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली 2002, पृष्ठ क्र.47
4. वही, पृष्ठ क्रमांक 93
5. वही, पृष्ठ क्रमांक 93
6. वही, पृष्ठ क्रमांक 94

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr -2022

समकालीन हिंदी साहित्य में चित्रित किन्नर विमर्श

डॉ. संजय ना. पाटील
हिंदी विभागाध्यक्ष, र.भा.मा.महाविद्यालय,चंदगड
ई-मेल– snpatil25@gmail.com

वर्तमान हिंदी साहित्य में अलग-अलग विमर्श का बोलबाला रहा है I स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किसान विमर्श आदि में सामाजिक समुहों के अस्तित्व और अधिकारों को लेकर विस्तृत चर्चाएँ की गई हैंI इसी के साथ आज-कल एक ऐसे मानवी समूह को भी जगह दी गई है, जिसके मानवी अस्तित्व को ही प्राचीन काल से नकारा गया है I मनुष्य ने सदियों से अपनी सुविधा के लिए समाज के स्त्री और पुरुष इसी दो हिस्सो में बांटकर देखा गया है I पीछले कुछ सालों तक समाज में रहे किसी तीसरे हिस्से की कल्पना ही नहीं की गई थी I समाज का यही अनदेखा किया गया हिस्सा है- थर्ड जेंडर अर्थात् किन्नर I जिसे हिजडा, नपुसक, ख्वाजा, जोगता, शिवभक्त, छक्का, मावशी, अलिंगी, अपूर्णलिंगी, किन्नर सहित विविध प्रदेशों में विविध शाब्दिक संकेतो द्वारा संबोधित किया जाता है I समाज में अपने अस्तित्व की पहचान के लिए पिछले कुछ सालों से अनेक सामाजिक संस्थाएँ तथा संघटन किन्नर के माध्यम से प्रयत्न कर रहे हैं I समाज का एक हिस्सा धीरे-धीरे अपने अस्तित्व के प्रति सभी का ध्यान केंद्रीत करने में सफल हो रहा है I 15 एप्रैल, 2014 को माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में इस हिस्से को हिजडा, नपुसक किन्नर तथा अन्य तत्सम अपमानजनक शब्दों से संबोधित करने के बजाय थर्ड जेंडर घोषित किया है I दूसरी ओर अन्य प्रादेशिक भाषाओं के समान दिखाने में भी अनेक रचनाकारों ने आपनी रचनाओं में इस वर्ग की वास्तविक पहचान को प्रस्तुत करते हुए पाठकों को समाज के इस तीसरे वर्ग के संबंध में विचार करने के लिए, उनके बारे में सोचने के लिए मजबूर किया हुआ दिखाई देता है I

किन्न उदभव और अतीत:

किन्नरों के उदभव और अतीत के संबंध में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं I इनमें सर्वाधिक प्रचलित कथा भगवान राम के वनगमन से संबंधित है I कहते हैं कि जब पिता की आज्ञापालन करते हुए राम, सीता और लक्ष्मण चित्रकूट आ गए तो उन्हे मनाकर वापस अयोध्या लाने हेतु भरत अयोध्यावासियों के साथ चित्रकुट आये थे, लेकिन प्रभू राम ने भरत तथा अयोध्यावासियों का अनुनय-विनय अस्वीकार करते हुए सभी नर-नारियों को वापस जाने को कहा, परंतु उन्होने हिजाडों के लिए कुछ नहीं कहा, जबकि वे भी उन्हे मनाने वहाँ उपस्थित हुए थे, कहा जाता है कि उनके लिए प्रभू का कोई स्पष्ट आदेश न होने के कारण उन हिजडो ने 14 वर्षों तक वहीं रुककर प्रभू राम के वापस आने की प्रतीक्षा करने का निर्णय लिया I वनवास पूर्ण कर भगवान राम वापस अयोध्या जा रहे थे तो उन्होने इन हिजडों को चित्रकूट के मार्ग में अपनी प्रतीक्षा करते देखा I प्रभु द्वारा उनके वहाँ रुकने का कारण पूछने पर इन निर्मल किन्नरो ने बताया कि जब हम भरत के साथ आपको मनाने हेतु आए थे तो आपने कहा था-

"**जथा जोगु करि विनय प्रणामा, बिदा किये सब सानुज रामा** I
नारि पुरुष लघु मध्य बडेरे, सब सन्मानी कृपानिधि फेरे II"

प्रभू राम हिजडों की इस निश्चल और निस्वार्थ भावना से अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होने प्रसन्न होकर हिजडों को वरदान दिया कि तुम कलयुग में जिन्हे अपना आशीर्वाद दोगे, उनका कभी अनिष्ठ नहीं होगा I इसीलिए शुभ अवसरों पर गृहस्थ इनका स्वागत करते हैं और मुँह माँगा धान देते हैं I

महाभारत में भी शिखण्डी नामक किन्नर भीष्म पितामह की हत्या का कारण बनी और अपनी बरसो पहले की प्रतिज्ञा पूरी की I इसी प्रकार अर्जुन भी तेरह वर्ष के वनवास में से एक वर्ष के अज्ञातवास में किन्नर ही बनकर जीवन जीते हैं और अपनी पहचान छुपाते हैं I यही नहीं बल्कि प्राचीन राजाओं के दरबार में भी किन्नर अक्सर नाच-गान, शृंगार आदि कलाओं से जुडे रहे हैं I किंतु बडे ही आश्चर्य की बात है कि इनकी चर्चा हम फिर भी उस प्रकार समाज में नहीं कर पाते जिस प्रकार होनी आवश्यक है I

प्रश्न उठता है कि आखिर समाज में इनकी स्थिति इतनी खराब क्यों है और इस पर अब तक कोई विशेष विमर्श या वाद-विवाद करने की कोई खास पहल क्यों नहीं दिखती है I दरअसल शिक्षा तथा आर्थिक क्षेत्र में पिछडने के कारण इन लोगों की खुशियों में नाच- नाचकर तथा ट्रॅफिक सिग्नलों पर भीख मांगकर, तो कई वेश्या व्यवसाय करने को मजबूर हैं I शिक्षा का अभाव स्वयं किन्नरों में तो है ही साथ ही हमारे समाज में भी इनके प्रति कोई सकारात्मक दृष्टि नहीं है I कई परिवार तो अपने बच्चों को इनका डर दिखाकर जादा बाहर खेलने या इनके पास जाने से भी डरते हैं I अक्सर बच्चे किन्नरों से डरते हैं और माता-पिता भी यह कह देते हैं कि- तुझे अपने साथ उठा ले जायेंगे I किंतु क्या इनके प्रति हमारी यह दृष्टि ठीक है? क्या अब हमे यह नहीं सोचना चाहिए कि किन्नरों की हालात का जिम्मेदार जितना यह समाज है उतने हम भी है? आखिर क्या वजह है कि स्कूलो में इनका प्रवेश लगबग न के बराबर है? क्या इसका एक कारण यह नहीं कि स्कूल में प्रवेश के समय माता- पिता के नाम से लेकर पूरी प्रक्रिया इनके खिलाफ जाती है I आखिर ऐसा क्यों है कि कोई किन्नर अपने असली परिवार के साथ उसी आम तरिके से क्यों नहीं रह पता जैसे बाकी बच्चे रह पाते हैं? क्या इसके पीछे हमारा और स्वयं इनके अंदर हमारे द्वारा भरी हीन भावना जिम्मेदार नहीं है?

सन 1871 तक हिजडों को समाज में मान्यता प्राप्त थी I महाभारत काल से लेकर मुगल काल तक इनका राजमहलो में विशिष्ट स्थान हुआ करता था I सन 1871 में तत्कालीन अंग्रेज सरकार क्रिमिनल टाइब्स एक्ट या जयारामपेशा अपराध अधिनियम लेकर आयी, जिसमें इन पर कई प्रतिबंध लगाए गए I सन 1897 में इसमें संशोधन करते हुए इन्हे अपराधियों की कोटी में रखते हुए इनकी गतिविधियों पर नजर रखने हेतु एक अलग रजिस्टर तैयार किया गया I धारा 377 के अंतर्गत इनके कृत्यों को गैर जमानती अपराध घोषित किया I आजादी मिलने पर इन्हे जयारामपेशा जातियों की सूची से

हटा दिया गया किंतु धारा 377 की तलवार तब भी इनके ऊपर लटकती रही, नवंबर 2009 में भारत सरकार ने इनकी पुरुषों एवं महिलाओं से अलग पहचान को स्वीकृति प्रदान की तथा निर्वाचन सूची एवं मतदान पहचान पत्रों पर इनका 'अन्य' के तौर उल्लेख किया I 15 अप्रैल, 2015 को उच्चतम न्यायालय ने तृतीय लिंग के रूप में इनके अधिकारों को मान्यता दी और सभी आवेदनो में तृतीय लिंग का उल्लेख अनिवार्य कर दिया गया I इतना ही नहीं उच्चतम न्यायालय ने इन्हे बच्चा गोद लेने का अधिकार भी दिया, इन्हे चिकित्सा के माध्यम से पुरुष या स्त्री बनने का अधिकार दिया गया I

परिवर्तन का दौर:

तृतीय लिंग भगवान की वो रचना है, जिसको न तो हमारा धर्म समाज अपनाता है और न ही आज का पढा लिखा समाज I इनका सभी जगह बहिष्कार किया जाता है तो प्रश्न उठता है कि क्या इन्हे जीने का अधिकार नहीं? क्या इन्हे समाज में रहने का अधिकार नहीं है? इनको वह सब अधिकार है जो आम नागरिक को मिलते हैं और यह अधिकार कोई धर्म समाज छिन नहीं सकता I अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए किन्नरों ने उज्जैन के 2016 के महाकुंभ में किन्नर अखाडे की स्थापना की I ऐसा इतिहास में पहली बार हुआ जब करोडो रुपये खर्च करने वाले धर्मगुरूओं पर किन्नर आखाडा भारी पड गया I ये वही तृतीय लिंग है, जिसने महाभारत युद्ध का परिणाम बदल दिया था और अब देश को बदलने के लिए निकले हैं जो नि:संदेह बदल सकते हैं क्योंकि ये ब्राह्मण, यादव, जाट आदि जातियों में नहीं बँटे हैं, इनके लिए तो सभी जातियाँ समान है I आज किन्नर समाज के पास लोगों में अपनी पहचान बनाने का एक सुनहरा अवसर है I दरसल इस तृतीय लिंग से हमारे समाज को जो सबसे महत्वपूर्ण बात सीखनी चाहिए वह है मानवता I वर्तमान समाज में जहाँ हर कोई या तो हिंदू है या मुस्लिम, सिख, ईसाई धर्म का समर्थक है I ऐसे में ये किन्नर केवल किन्नर है, मानवता को छोडकर इनका कोई धर्म नहीं है I इन्हे न तो हिंदूओं से सम्मान मिलता है और न ही मुसलमानों से और न किसी अन्य संप्रदाय से I आज समाज में सांप्रदायिक दंगो, राजनीतिक दाँवपेचों या अन्य विमर्शों का दौर है I ऐसे में तृतीय लिंग एकदम तटस्थ है क्योंकि इन्हे किसी से भी संवेदना या सहानुभूती की कोई उम्मीद नहीं है I आज हमारे राजनीतिक नेता जहाँ स्त्रियों के लिए शराब बंदी या अन्य उपायों के दावे करते हैं तो वहीं पुरषों के लिए नौकरी आदि के I किंतु कोई भी इन किन्नरों के विषय में कुछ नहीं कहता I प्रश्न उठता है क्यों? शायद उनका वोट बँक नहीं है और शायद इनकी संख्या भी इतनी नहीं है, जितनी अन्य लोगों की I तो प्रश्न यह उठता है क्या केवल अल्पसंख्यंक होने मात्र से इनके अधिकारो तथा सुरक्षित जीवन को जाने दिया जाए? अवश्य ही नहीं क्योंकि भारतीय नागरिक होने के नाते इन्हे गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार है, यह बात हमारा सर्वोच्च न्यायालय बखूबी जानता है, जिस कारण इन्हे ओबीसी अनुसूचित जाती के दायरे में रखते हुए आरक्षण दिया है, जो इनकी स्थिती में बदलाव लाने की ओर एक सकारात्मक कदम है I किंतु प्रश्न उठता है कि इस ओर ये लोग स्वयं कितने जागरूक है और क्या हमारा समाज अब इतना परिपक्व है कि इन्हे भी अन्यों की तरह सम्मान दे सके?

आश्चर्य की बात है कि कई बुद्धिजीवी भी इनके प्रति असंवेदनशील है I आज जिस तरह हम प्रत्येक नागरिक की सुरक्षा की बात करते हैं, क्या उन नागरिको में यह किन्नर भी शामिल नहीं है I एक सकारात्मक बात यह भी है कि अब कई किन्नरों ने अपना आधार कार्ड व पहचान पत्र, वोटर आय डी बनवाना सुरू किया है, जो उनके सुरक्षित जीवन तथा अधिकारों की रक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक भी है I बस जरूरत है तो हमे अपनी सोच बदलने की और इन्हे भी एक खुला स्वतंत्र तथा समान जगह देने की I

साहित्य में किन्नर विमर्श और कानुनी अधिकार:

आधुनिक साहित्य में अब एक नये विमर्श की आवश्यकता है, वह है- 'तृतीय लिंग' विमर्श I समकालीन कथाकारों ने 'तृतीय लिंग' के जीवन की ओर गंभीरता से ध्यान दिया है I वैसे भी विगत दो दशकों में 'तृतीय लिंग' ने भी अपने सामाजिक अधिकारों की लडाई लडने की पहल की I जिसके परिणाम स्वरूप राजनीति, शिक्षा और फॅशन जगत में तृतीय लिंग को महत्वपूर्ण दायित्व सौंपे गए I शबनम मौसी, कमाल जान, आशा देवी, कमाल किन्नर, मधु किन्नर, ट्रान्सजेंडर लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी आदि वे नाम है जिन्होने चुनाव में बहुमत से विजय प्राप्त कर के विधायक और महापौर तक के पद संभाले I

देश की पहली तृतीय लिंग मानवी बंधोपाध्याय ने प्राचार्य बनकर सिद्ध कर दिया कि किन्नर अथवा तृतीय लिंग किसी भी विद्वत स्त्री-पुरुष की भांति शिक्षा जगत के उच्च पद तक पहुँच सकते हैं I इसके साथ ही यह भी स्वतः सिद्ध हो गया कि 'तृतीय लिंग' के प्रति समाज का दृष्टिकोन सकारात्मक होने लगा है I प्राचार्य बनने के पूर्व मानवी विवेकानंद महाविद्यालय में बंग्ला की असोसिएट प्रोफेसर रह चुकी थी I जितना सच है कि उसने साहस से काम लेते हुए अपना संघर्ष जारी रखा उतना ही सच यह भी है कि उसे कदम-कदम पर बाधाओं और उपेक्षाओं का सामाना करना पडा I किन्नर लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी ने अपनी आत्मकथा 'मी हिजडा मी लक्ष्मी' में अपने जीवन के संघर्ष का विस्तृत विवरण दिया है I किन्नर लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी संघर्ष के परिणाम स्वरूप एप्रिल 2015 में उच्चतम न्यायालय में किन्नरों को 'तृतीय लिंग' अर्थात थर्ड जेंडर की मान्यता प्रदान की

कुछ दिन पहले ब्रिटन में आवासीय स्कूलों के लिए आदेश जारी किए गये कि उन्हे 'ही' अथवा 'सी' के बजाय 'जी' संबोधन दिया जाए I तृतीय लिंग बच्चों की माँग थी I हिंदी साहित्य में 'तृतीय लिंग' विमर्श अभी अपनी आँखे खोल ही रहा है फिर भी यह मानना पडेगा कि 'यमदीप' 'तीसरी ताली', किन्नर कथा, गुलाम-मंडी और पोस्टर बॉक्स नं. 203, 'नाला सोपारा' उपन्यास थर्ड जेंडर जीवन के परिदृश्य को अच्छी प्रकार से समाज के सामने रखते हैंI ये प्रतिनिधी उपन्यास बताते हैं कि तृतीय लिंग किस प्रकार समाज का अभिन्न अंग है और उन्हे समाज में वही स्थान मिलना चाहिए जो किसी स्त्री अथवा पुरुष को मिलता है I समकालीन उपन्यासों में तृतीय लिंग के कथानकों का मिलना उनकी सामाजिक दृष्टि की संपन्नता एवं जागरूकता को रेखांकित करता है

15 एप्रिल, 2014 को भारत के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ती एस. राधाकृष्णन और ए. के. सीकरी ने 'तृतीय लिंग' को मान्यता देते हुए ऐतिहासिक फैसला दिया है- अदालत ने लंबे समय से किन्नर समाज की चली आ रही माँग को स्वीकार करने की पहल की है I अब इसको आगे ले जाने की जिम्मेदारी समाज की होगी, इस समुदाय में जन्म लेने वाले बच्चों के साथ भेदभाव न किया जाय I किन्नरों की इस स्थिती का ज्ञान लेना चाहिए I जब तक समाज जागृत नहीं होगा तब तक कोई भी कानून या सरकार इनको मुख्य धारा में नहीं ला सकती I संसद में पेश हुए विधेयक के जरिये

किन्नरों को भेदभाव से बचाने और उनके अधिकारों के संरक्षण के लिए केंद्रीय कॅबिनेट ने ट्रान्सजेंडर पर्सनल बिल 2016 को मंजुरी दे दी, वर्तमान में सरकार किन्नरों के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक सशक्तीकरण के लिये तंत्र विकसित कर रही है I

आधुनिक दौर में उपजे विमर्श और अस्मिता के आंदोलन का प्रभाव किन्नरों की स्थिति पर भी पडा है I मुख्य चुनाव आयुक्त टी. एन. सेशन ने 1994 में किन्नरों को मताधिकार दे दिया था I अगली कडी के रूप में सर्वोच्च न्यायालय का एक और फैसला आया कि उन्हे शिक्षा व रोजगार के अवसर दिए जाने चाहिए I लिंगानुगत समस्याओं का निराकरण करते हुए चिकित्सा सुविधा उपलब्ध दी जानी चाहिए, सार्वजनिक स्थानों पर शौचालय की भी व्यवस्था की जानी चाहिए I पर सवाल वही बाकी है कि किन्नरों को सुविधा देने के उपरांत क्या समाज की दृष्टि इनके प्रति सकारात्मक हुई है?

हमारे समाज मे लिंग के समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा स्त्री-पुरुष व्यवहार व स्वभाव को ही स्वीकृति दी जाती है I इस दृष्टिकोन से किन्नर समुदाय का व्यवहार समाज में स्वतः ही अव्यवहारिक मान लिया जाता है I लिंग निर्मिति में यौन व्यवहार की शिक्षा नहीं दी जाती, अपितु उनके व्यवहार को कानूनी अपराध माना जाता है, जोकि उन्हे स्वयं से नफरत और आत्महत्या के लिए मजबूर करता है-

लज्जा का विषय क्यों हूँ अम्मा मेरी I
अंधा, बहरा या मनोरोगी तो नहीं था मैं I
सारे स्वीकार है, परिवार समाज में सहज I
मैं ही बस ममतामय गोद से बिछडा हूँ II

किन्नरों की सामाजिक भूमिका की ओर नीरजा माधव ने 'यमदीप' उपन्यास में हमारा ध्यान केंद्रित किया है I मुंबई की एक कंपनी में बकाया धन की वसुली हेतु किन्नरों की नियुक्ती हुई और परिणामतः जिस ऋण की वसुली वर्षो से नहीं हो पा रही थी, उसे चुटकी बजाकर वसूल कर लिया गया I आर्थिक स्तर पर रोजगार उपलब्धता की बात निरजा जी ने की है कि किन्नर समाज अपने पारंपारिक भूमिका से बाहर निकल सके I इस उपन्यास में नाजबीबी का कहना है कि अगर सरकार हमें भी हथियार दे, मैं तो लडूँगी, लडते-लडते हिंदुस्तान के पीछे अपनी जान दे दूंगी I लोकतांत्रिक देश में किन्नरों के अधिकारों की असरदार पैरवी के लिए हमारे राजनीतिक संगठन मौन है, यही किन्नरों के जीवित यथार्थ है I

समाज ने मानवता के स्थान पर किन्नर समुदाय को मनुष्यता के सामाजिक पैगाम से बाहर किया I वही मनुष्यता किन्नर समुदाय में मुख्य धारा से अधिक प्रतिबिंबित होती है I सडक पर पडी गर्भवती पगली जन्मजात शिशु को मुख्य समाज द्वारा उपेक्षित की जाने पर 'यमदीप' उपन्यास की पात्र नाजबीबी द्वारा पालन-पोषण हो या महिला से बलात्कार के प्रयास को असफल कर उसकी रक्षा करना हो, नाजबीबी का यह व्यवहार किन्नर समाज का सत्य रेखांकित करता है I उपन्यास में मानवी द्वारा नारी सुधारग्रह के सफेद पोश चेहरे को बेनकाब करने के प्रयास में नेताओं का चरित्र भी सामने आने लगता है और यही जनता के रक्षक अपनी भक्षक भूमिका में दृष्टिगोचर होते हैं I प्रश्न उठता है कि जिस मनुष्यता व मानवता की बात मुख्य धारा का समाज करता है क्या वह यही मानवता है कि अपने से कमजोर का शोषण करे? नाजबीबी कहती है सोच रही हूँ, मेमसाब की भगवान ने मुझे हिजडा बनाकर ठीक ही किया I अगर यह न बनता तो जरूर मुझे औरत बनाता और तब ये सारे अत्याचार मुझे भी झेलने पडते I नाजबीबी के कथन से जीवीत यथार्थ सामने आता है I यह मुख्य धारा के लोगों को भी सोचने के लिए विवश कर देता है कि उनकी मानवता कितनी स्वार्थी है?

तृतीय लिंग की स्थिति में सुधार के कुछ उपाय:

किन्नर समुदाय में सशक्तिकरण का तंत्र विकसित करने की आवश्यकता हैI इसलिए समाज की जिम्मेदारी बनती है कि वह तृतीय लिंग की स्थिति में सुधार के लिए निम्नलिखित उपाय करें –

1. पासपोर्ट, राशन कार्ड, वोटर कार्ड, पॅन कार्ड, बँक खाता, क्रेडिट कार्ड, बिल लिखने का अधिकार
2. कानूनी तौर पर स्त्री प्रभाग में यात्रा करने का अधिकार
3. विवाह का अधिकार, बच्चा गोद लेने का अधिकार
4. तलाक लेने का अधिकार
5. साठ वर्ष से ऊपर के हिजडों के लिए पेन्शन की सुविधा
6. घर बनाने की सुविधा
7. व्यापार करने हेतु बँक लोन की सुविधा
8. स्कूल में प्रवेश हेतु फीस में कटौती तथा छात्रवृत्ति की सुविधा
9. न्यायिक सुविधा में अनुदान
10. अपना लिंग बदलवाने संबंधी मेडिकल सुविधा मुफ्त

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि समाज की सोच इन्हे स्वीकारने में हीचक रही है I आम आदमी ने कभी यह जानने की कोशिश नहीं की, किन्नरों के अंदर धडकने वाले दिल में क्या हलचल होती है I उनके मन की अतल गहराईयों में भावनाएँ हिलोरे लेती हैं I इन सभी प्रश्नों का जवाब नीरजा माधव के उपन्यास में दिया है समाज को किन्नरों के अधिकारों की असरदार पैरवी करनी चाहिए I मीडिया इस समाज को मुख्य धारा से जोडने में सहायक हो सकता है I शिक्षा और संवेदनशीलता इन दो औजारों से किन्नर समाज को विकास की मुख्य धारा से जोडने में साहाय्यता मिलेगी I किन्नर समाज के बच्चों को सामान्य बच्चों के समान वातावरण प्रदान करना समाज की जिम्मेदारी है I प्रतिदिन खुल रहे और विकसित हो रहे समाज ने अब इन्हे भी थोडा सा स्थान देना शुरू कर दिया है और शीघ्र ही हम वह दिन भी देखेंगे, जब ये भी समाज में सामान्य लोगों की भांति अपने मानवाधिकारों के साथ जीवनयापान कर सकेंगे I किन्नरों के प्रति हम सब को आदर और सम्मान का भाव जताना जरुरी है क्योंकि इन्हे भी आम मनुष्य की तरह बनकर स्वतंत्र जिने का अधिकार है I

संदर्भ:

1. रामचरित मानस, अयोध्या कांड - 398 / 4
2. यमदीप - नीरजा माधव (सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली २०२१)
3. किन्नर कथा – महेंद्र भीष्म (सामयिक बुक्स, नई दिल्ली २०११)
4. पोस्टबॉक्स नं.203 नालासोपारा – चित्र मुद्गल (सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली २०१७)
5. गुलाममंडी – निर्मला भुराडिया (सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली २०१६)
6. तीसरी ताली – प्रदीप सौरभ (वाणी प्रकाशन, प्र. सं.२०११)
7. मी हिझडा-मी लक्ष्मी – लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी (मनोविकास प्रकाशन : द्वी.सं- २०१३)

वेब सामग्री:

1. Gender Studies Wikipedia
2. Samwad24.com/p=1529
3. Sathsath..संविधान की नजर में इन्सान है किन्नर. html

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

भूमंडलीकरण का दलितों पर अधूरा प्रभाव

प्रा.राठोड संजय लिंबाजी
नूतन कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय तिकोटा

मानवीय समाज का चित्रण साहित्य में किया जाता है। प्राचीन काल से लेकर आज तक मानव को केंद्र मे रखकर बहुत ही साहित्य लिखा है। भारतीय समाज में स्थित विभिन्न मानवीय मूल्यों के प्रति सजग रहकर हिंदी साहित्यकारों ने अलग-अलग विधा में लेखन किया है ।इसमें उपन्यास संस्मरण निबंध कहानी नाटक आलोचना जीवनी रेखाचित्र एकांकी आत्मकथा आलोचना रिपोर्ताज कविता लघु कथा व्यंग्य आदि विधा आती है। इन सभी विधाओं में दुनिया के सबसे जटिल भारतीय समाजों का दर्शन होता है । पर भूमंडलीकरण के उदय के साथ दलित समाज ने प्रगति की जो आशा अपेक्षाएं रखी थी वह पूरी नहीं हो सकी। भूमंडलीकरण ने विकास के नाम पर दलितों को और भी ज्यादा आर्थिक दृष्टिकोण से पंगु बना दिया है । अल्पभूधारक कुछ जमीनों की टुकड़ों पर अपना जीवन यापन करने वालें दलितों ने पैसों की लालच में अपनी जमीन बेच कर खाली हाथ बैठ गए हैं। कुछ प्रतिशत दलितों को छोड़कर भूमंडलीकरण का दलित जीवन पर कोई प्रभाव नहीं दिखाई देता इसका वर्णन हमें संपूर्ण हिंदी साहित्य में अनेक प्रकार से दृष्टिगोचर होता है ।दलित समाज के जीवन से जुड़ी रचना भी हिंदी साहित्य में मिलती है उसका चिंतन निम्नांकित है ।

1) **हिंदी उपन्यासों में दलित समाज:**

दलित का सामान्य अर्थ रौंदा हुआ मसला हुआ कुचला हुआ नष्ट किया हुआ आदि है ।दलित समाज के अंतर्गत शोषित अपमानित भूमिहीन लोग पराश्रित निराश्रित विधवा दास गुलाम बंधुआ मजदूर दीन आदि आते हैं ।हिंदी साहित्य के उपन्यास इस विधा में अनेक उपन्यासकारों ने ऐसे दलित समाज का चित्रण किया है दलित साहित्य: अनुसंधान के आयाम मे लिखा है" दलित जीवन त्रासदियों पर लिखने का प्रथम प्रयास प्रेमचंद ने किया है ।प्रेमचंद ऐसे साहित्यकार है जो सवर्णों और अवर्णो के बीच रोटी बेटी का संबंध स्थापित करते हैं "1मतलब प्रेमचंद के उपन्यासों में दलित समाज के शोषण उत्पीड़न यातना का चित्रण हुआ है ।प्रेमाश्रय कायाकल्प रंगभूमि गोदान आदि उपन्यासों में आदिम दलित पहाड़ी किसान चमार हरिजन वर्ग नदियों की समस्या निम्न वर्ग का चित्रण है ।

खारे जल का गांव डॉ भगवती प्रसाद शुक्ल द्वारा लिखा उपन्यास है इसमें लिखा है" उपन्यास के पात्र विंध्याचल की माटी और पत्थर से बने हैं इसमें मेरा अपना कुछ नहीं है। "2याने निम्न जाति के लोगों का जीवन उपन्यासकार ने अनुभव करके उनके शोषण पीड़ा को सामने लाया है ।इसमें खटीक नाई सुतार कुरमी तेली कोल गोंड बसुहार जुलाहा जातियों के जीवन को आधार बनाकर अशिक्षित और पिछड़ी जाति के लोगों पर किए जाने वाले अन्याय अत्याचार का वर्णन किया है ।मधुकर सिन्हा के सहदेव राम का इस्तीफा में हरिजन संघर्ष का कथानक है। शिव शंकर शुक्ल के मोगरा चमारा चरणदास सरकारी कर्ज लेकर नया धंधा शुरू करता है इसकी चर्चा की है ।मधुकर सिंह का जंगली सूअर भगवती चरण वर्मा का भूले बिसरे चित्र अमृत रायका बीज रामकुमार वर्मा का मोतिया हरि सुमन का आसमान झुक रहा है आदि उपन्यासों में दलित समाज की समस्याओं को चित्रित किया है नरेंद्र वर्मा के सुबह की तलाश में अछूत लोगों का जनजीवन और उनके ऊपर होने वाले अत्याचारों का चिंतन है इसमें चमार सोमेश्वर अध्यापक बनकर दलितों में जागृति पैदा करता है ।

धरती धन न अपना इस उपन्यास में जगदीश चंद्र ने "हरिजन कमीन लोहार बाजीगर प्रजापत महाजन साहूकारा और चौधरियों के जीवन का चित्रण है ।"3इस उपन्यास में देश का विकास एक तरफ अवधेश के गांव का विकास कहीं और सिटी का दर्शन होता है। सामाजिक संबंधोंके खेत मजदूर पूंजीवादी जमींदार भुदासों सामंती जमींदारों के जीवन से जुड़ी यथार्थ को स्पष्ट करने में यह उपन्यास सफल रहा है ।अमृतलाल नागर के नाचो बहुत गोपाल में ब्राह्मणी का हरिजन बनने की क्रांतिकारी घटना है शिवप्रसाद सिंह के अलग-अलग वैतरणी में ठाकुरद्वारा चमारों का किया जाने वाला शोषण है ।जयप्रकाश कर्दम का छप्पर में दलितों के शिक्षा की समस्याएं रूढ़ि प्रियता सामाजिकता भयावहता आदि का विवेचन है ,वेदना नकार विद्रोह का मिलाप इनमें है। मोरी की इंट एकलव्य आग आकाश नदी यशस्वी है। आग पानी आकाश आदि उपन्यासों में दलितों का जीवन प्रस्तुत है ।अतः कहना होगा कि हिंदी उपन्यासकारों ने सामाजिक आंदोलन दलित संगठन दलित जीवन उनका शोषण उनकी समस्याएं नई व्यवस्था नई जातीयता धर्म परिवर्तन जाति धर्म वाद भ्रष्ट राजनीतिक संबंध नेताओं की मानसिकता आरक्षण का प्रश्न शिक्षा व्यवस्था आदि दलित समाज शोषण सुधार संबंधी चर्चा की है। दलितों से संबंधित रचनाओं में अगर हम विचार करते हैं तो कहीं भी दलितों का जीवन में सुधार आया हुआ दिखाई नहीं देता। भूमंडलीकरण के इस युग में भी दलितों पर हो रहा यह अन्याय है।

2) हिंदी कविता में दलित समाज:

काव्य मे भी दलित समाज का आक्रोश विद्रोह विक्षोप और संताप रहा है । हिंदी के कविता में धर्म जाति भाषा वर्ण वर्ण प्रांत उच्च निच्चाता की विशेषता मिलती है। हिंदी के दलित साहित्य का प्रेरणा स्त्रोत अंबेडकर विचार दर्शन है। अस्पृश्यता जाति प्रथा वर्ण व्यवस्था का विनाश नहीं होता तब तक मानवी जीवन सुंदर नहीं बन सकता रैदास और कबीर से हिंदी काव्य जगत में दलित समाज जीवन चित्रण का आरंभ हुआ है, इन्होंने वर्ण व्यवस्था सामाजिक विषमता जातीयता के जहर समाज विभाजन सामाजिक स्तर का काव्य में उद्धृत किया है। कबीर ने तो जाति की अपेक्षा ज्ञान कर्म की महिमा बताते दलित जीवन को न्याय देने की कोशिश की है ।संत घासीदास ने दलित चेतना संबंधी काव्यों का निर्माण किया है आधुनिक काल में सरस्वती में प्रकाशित श्री हीरा डोम की भोजपुरी कविता से माना जाता है हिंदी कविता में भी दलित जीवन को उजागर किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने बस बहुत हो चुका इस काव्य संग्रह के कविता में दलितों पर प्रकाश डाला है। डॉ मनोज सोनकर का शोषित नामा डॉक्टर प्रेम शंकर का नवी गंध

डॉक्टर सोहन पाल का अंधा समाज और बहरे लोग हरिकिशन संतोषी का कमलिनी लक्ष्मी नारायण का उत्पीड़न को या अन्य कई श्रेष्ठ काव्य कृतियों ने दलित वर्ग के चित्रण में अहम भूमिका निभाई है।

निराला नागार्जुन लीलाधर घड़ी चंद्रकांत देवताले ओमप्रकाश वाल्मीकि मोतीराम भासी नारायण सुधाकर सुशीला टाक भोरे देवेंद्र दीपक उमेश मेश्राम आदि ने भी आक्रोश अपमान के साथ सामाजिक परिवर्तन संबंधी विचार अपने काव्यों के माध्यम से बताये हैं देवेश कुमार चौधरी ने बुरे समय का आख्यान मेरे पुरखों मुझे क्षमा करना कविता में सुदेश तनवर ने चुप नहीं रहूंगा मे दिनेश कुशवाह ने सांप असंग घोष ने शैतान में दलित समाज के आशा आकांक्षाओं को दर्शाने की कोशिश की है। भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य इस किताब में लिए गए कुछ संकलित हिंदी साहित्यकारों जी कविताओं में से एक कविता धीमा विश में से कुछ पंक्तियां इस तरह है "गावों से, पलायन थके हुए अपमानित शोषित लोग"4 यहां स्पष्ट है हिंदी साहित्य के दलित काव्यों मे मनुष्य के खून पीड़ा दर्द प्यार चुभन भूख अपमान शोषण का यथार्थ वर्णन है आजादी के बाद सामाजिक परिवर्तन तेजी से हो रहा है जातीयता भेदा भेद छुआछूत के बंधन समाप्त हो रहे हैं फिर भी दलित समाज में अस्मिता जगाने वाली विद्रोहो को उसका ने वाले दलित समाज के अनेक समस्याओं को उजागर करने वाली दलितों का यथार्थ प्रस्तुत करने वाली दलित हिंदी कविता एक महत्वपूर्ण विधा है।"5

3) हिंदी निबंधो में दलित समाज:

हिंदी निबंध आधुनिक काल की देन है। हिंदी साहित्य में निबंध कारों ने भारतीय समाज पर नए पुराने जनसमूह पर जातियों पर निबंध लिखे हैं। भारतीय समाज में दलित वर्ग बड़ी मात्रा में है भारत जैसे विराट जन समुद्र में दलित समाज के लोगों के प्रश्न आज भी गंभीर है। शिक्षा व्यवस्था के कारण सदियों से उपेक्षित अपमानित समाज उभर रहा है ।वर्ण व्यवस्था जाती पाती के सुधार परिष्कार करने पंडित बालकृष्ण भट्ट निबंध लिखे हैं पंडित प्रताप नारायण मिश्र एक सलाह सिर्फ जैसा निबंध ब्राह्मण और दूसरी जातियों पर लिखा है। बालमुकुंद गुप्त ने एक ओर विलास वैभव दूसरी ओर दुख दरिद्रता नृत्य का वर्णन किया है समाज में गरीबों का खून चूस कर धन संचय करने वालों पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने एक निबंध में लिखा है" मोटे आदमियों तुम जरा सा दुर्बल हो जाते अपने अंदेशे से सही मैं जाने कितना ठठरियों पर मांस चढ़ जाता है।"5यानी शुक्ला जी ने यहां बड़े लोगों पर व्यंग्य करके गरीब लोगों की व्यथा को सामने लाया है ।रघुवीर सहाय शिमला यात्रा निबंध में पीड़िता दरिद्रता मे दलित जीवन की दयनीय अवस्था का सहज यथार्थ चित्रण किया है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी महादेवी वर्मा रामवृक्ष बेनीपुरी शिवदान सिंह चौहान विद्यानिवास मिश्र बाबू बालमुकुंद गुप्त के साथ अन्य कई निबंध कारो के निबंधों में पीड़ित दलित शोषित गरीब भूखे नारी समस्या संबंधित विचार मिलते हैं। अतः कहना होगा कि निबंधों में भी दलितों का चित्रण है। इसमें भी कहीं दलितों के जीवन में विकास रूपी परिवर्तन दिखाई नहीं देता।

4) हिंदी आत्मकथा में दलित समाज:

साहित्य में आत्मकथा लेखन एक महत्वपूर्ण विधा है ।हिंदी में अनेक आत्मकथाएं लिखी गई है। दलित समाज को प्रस्तुत करने वाले आत्मकथाका रोने सच्चे दलित जीवन को कथा या कहानी का विषय बनाया है। दलित आत्मकथा दलित लेखकों के जीवन संघर्ष के साथ आगे बढ़ने का संदेश देती है" क्योंकि दलित आत्मकथाकार बताना चाहते हैं कि जो नरकीय और दासता पूर्ण जीवन हमें मिला उसमें व्यक्ति विशेष का अपराध नहीं है दलित आत्मकथाएं व्यवस्था परिवर्तन की मांग भी करती है।"6 मतलब दलित आत्मकथाकारोने आत्मकथा के माध्यम से अमानवीय जीवन को अपनी लेखनी के जरिए चित्रित करने का प्रयास किया है। मोहनदास नैमिशराय कि अपने अपने पिंजरे आत्मकथा डीआर जाटव की मेरा सफर मंजिल ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन कौशल्या बसंती की दोहरा अभिशाप माता प्रसाद की झोपड़ी से राजभवन सूरज पाल सिंह चौहान की तिरस्कृत रमाशंकर आर्य की घुटन रूपनारायण सोनकर की नागफनी बेचैन की बेवक्त गुजर गया माली धर्मवीर की मेरी पत्नी और भेड़िया तुलसीराम की मुर्दहिया सुशीला टाक भोर की शिकंजे का दर्द आत्मकथा ओके अतिरिक्त जो मराठी की अनुदित आत्मकथा है वह दया पवार की अछूत और शरण कुमार लिंबाले की अकरम जी आदि आत्म कथाएं जो दलित समाज का काफी चित्रण करती है इन सभी आत्मकथाओं में लेखक दलित समाज के जीवन संघर्ष को पेश करते हैं। दलित आत्मकथा समाज परिवर्तन की मांग करती है यह आत्मकथाएं मन बहलाव या मनोरंजन के लिए लिखी रचनाएं नहीं है।

5) हिंदी कहानियों में दलित समाज:

नदियों की प्रताडता उपेक्षा सवर्णों द्वारा शोषण आदि का चित्रन दलित रचनाकारों ने अपने अनुभव की जमीन पर ही कहानियों का लेखन किया है। दलित जीवन की यातना पीड़ा आक्रोश प्रतिरोध और संघर्ष की संवेदना को सप्ष्ट करने वाली कहानियां दलित समाज के कई अंगों को सामने लाती है। जयप्रकाश कर्दम की मोहरे डॉ उमेश कुमार सिंह की माफी रत्न कुमार सांभरिया की डंक मोहनदास नैमिशराय की दर्द ओमप्रकाश वाल्मीकि की ब्रह्मास्त्र सूरजपाल चौहान की बस्ती के लोग विपिन बिहारी की बिवाईंया संजीव की जब नशा फटता है जितेंद्र कुमारी बिसरिया की दोहरी लड़ाई ओमप्रकाश वाल्मीकि की सलाम और घुसपैठिए कहानी संग्रह की कहानियों में मोहनदास नैमिशराय की अपना गांव वसुधा बात सिर्फ इतनी थी जयप्रकाश का प्रथम कहानी संग्रह के तलाश अजय देवरिया के पटकथा तथा अन्य कहानियां पांच कहानियां महिला कहानीकारों में सुशीला टाकभोर, कावेरी पूनम सरिता, रजत रानी, मीनू नीरा, परमार हेमलता ,महीश्वर् कुसुम वियोगी आदि दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के द्वारा दलित समाज की विविध मुद्दों यथार्थ को बड़े वास्तविकता के साथ प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद्र और महीप सिंह द्वारा आरंभिक दलित समाज के चित्रण करने वाली कहानियों से लेकर आज भी बहुत कहानीकार दलित समाज के विविध समस्याओं अपने कहानी का विषय बनाते हैं। रचनाकार अपने जीवन अनूभव अपने जीए सच को कहानी के माध्यम से पाठकों तक पहुंचाने का काम करते हैं। प्रेमचंद जी के सद्गति कहानी का दुखी चमार जब पंडित के घर जाता है तो पंडित उससे कड़ी धूप में जानवरों से भी कठिन काम करवाता है, दुखी चमार की मृत्यु के बाद भी उस पंडित को थोड़ी भी दया माया नहीं आती यह हमारे देश के दलितों के प्रति उच्च जातियों की मनमानी आज भी है। भूमंडली करण के युग में भी इसमें परिवर्तन नहीं हो रहा है।

6) हिंदी के अन्य विधाओं में दलित समाज:

उपन्यास कविता निबंध कहानी आत्मकथा के साथ हिंदी के अन्य विधा में भी दलित जन जीवन संबंधी विचार मिलते हैं ।दलित लेखक कौन है साहित्य के सभी विधा में लेखनी चलाना प्रारंभ कर दिया है इसी का परिणाम है कि आज दलित साहित्य बहुत आगे बढ़ा है ।दलित नाटकों की

विचारधारा को निर्मित करने के पीछे दलित लेखकों की दलित समुदाय का उद्धार करने की कोशिश रही है। दलितों पर होते आ रहे शोषण को अभिव्यक्त करने हेतु नाटक एक उपयुक्त विधा है माताप्रसाद ने प्रसिद्ध दलित नाटक धर्म परिवर्तन इस रचना में करोड़ों दलितों को गुलामी का एहसास हुआ इसका विवेचन है। माताप्रसाद का नाटक अछूत का बेटा में समाज में व्याप्त छुआछूत दहेज प्रथा सामाजिक दशा पुरानी परंपरा जाति धर्म संघर्ष का दर्शन होता है ।रास्ते चोर रास्ते यह दत्ता भगत का नाटक हिंदी अनुवाद है इसमें दलित संघर्ष है अतः कहना होगा कि" पिछले कुछ समय से हिंदी तथा भारतीय साहित्य में ही नहीं संपूर्ण विश्व साहित्य में भी गरम बहस का रहा दलित विमर्श।"7 मतलब दलित जीवन के यथार्थ विशेष साहित्य की प्रत्येक विधा के अंतर्गत है दलित लेखन 3 दशक पुराना है भारत में मराठी से शुरू होकर दलित लेखन अन्य भाषाओं में भी अन्य भाषाओं के विविध विधाओं में विस्तृत रूप में है इसमें संदेह नहीं महादेवी वर्मा संस्मरण लेखिका और रेखाचित्रकार है इनके ग्यारह रेखा चित्रों का संग्रह अतीत के चलचित्र है इसमें 8 रेखाचित्र दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है ।स्मृति की रेखाएं के सात रेखाचित्र दलित वर्ग को समर्पित है मतलब रेखा चित्र में भी किसी न किसी रूप में बहिष्कृत और उपेक्षित चरित्रों को पेश किया है। माटी के मूर्ति में रामवृक्ष बेनीपुरी रजिया जैसे चरित्र दलित जीवन का दर्शन करता है। भूमि दर्शन की भूमिका रिपोर्ताज में रेनू भूखे नंगे दलित वर्ग के लोगों के बीच हमें चुपचाप ले जाकर खड़ा करती है ।इसमें भूख से तड़प कर मरने वाले मनुष्य का दर्शन होता है ।हरिशंकर परसाई जिन्होंने व्यंग लेखन करके समाज को जितना हंसाया है उतना तीखे व्यंग्य से नंगा भी किया है जिसमें गरीब अल्पसंख्यक दलित शोषित वर्ग को न्याय देने की मांग की है। हिंदी में किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के जीवन पर उसके जीवन का विवरण क्रमबद्ध रूप में विभिन्न घटना द्वारा किसी लेखक द्वारा लिखा जाता है तो उसे जीवनी कहते हैं दलित समाज के ऐसे बहुत सारे व्यक्तित्व है जिनके जीवन में पीड़ा आक्रोश यातना गरीबी और वह हर वक्त समस्या रही है ।मतलब जीवनी के द्वारा भी दलित जीवन के कई अंग सामने आते हैं अतः कहना सही होगा कि हिंदी साहित्य के विविध विधा में भारतीय सामाजिक परिवेश की उभरने वाली अलग-अलग प्रवृत्तियों में दलित समाज की स्थिति विशेष स्थान रखती है वर्तमान काल में हिंदी के सभी विधाओं में दलित समाज का दलित समुदाय का विपुल चित्रण मिलता है।

उपर्युक्त विवेचन के बाद निष्कर्ष अता हम यह कह सकते हैं कि उपन्यास कविता कहानी आत्मकथा के साथ हिंदी साहित्य के अन्य विधाओं में भी दलित समाज का चित्रण बड़ी मात्रा में मिलता है ।दलित जीवन और उसकी समस्याओं पर लेखन करने वाले साहित्यिक बहुत सारे हो गए हैं और आज भी लिखने वालों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है । भूमंडलीकरण के युग में इस युग मेंन्याय शिक्षा समानता स्वतंत्रता आदि मौलिक अधिकारों से दलित समाज वंचित ना रहे धर्म जात पात अस्पृश्यता कम हो इसलिए दलित जातियों के तथा अन्य रचनाकारों ने दलित समाज की भावना पीड़ा दुख दर्द जनता तक पहुंचाने के लिए उपन्यास निबंध कविता व्यंग्य आत्मकथा का लेखन किया है ।इन्हीं अलग-अलग विधाओं के माध्यम से रचनाकारों ने दलित समाज को न्याय देने के लिए आवाज उठाई है ।अतः कहना सही होगा कि हिंदी साहित्य के सभी विधाओं के माध्यम से हिंदी रचनाकारों ने दलित समाज जीवन को पाठकों तक आम जनता तक सरकार तक पहुंचाने का काम किया है।

संदर्भ:

1. दलित साहित्य अनुसंधान के आयाम डॉ भरत सगरे दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर कानपुर प्र सं-2010 पृ-28
2. खारी जल का गांव डॉ भगवती प्रसाद शुक्ल स्मृति प्रकाशन इलाहाबाद प्र सं-1972 पृ-5
3. हिंदी उपन्यासों में दलित जीवन डॉ शंभूनाथ द्विवेदी पूजा पब्लिकेशन कानपुर प्र सं -2013 पृ -78
4. भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य संपादक. पुन्नी सिंह कमला प्रसाद राजेंद्र शर्मा वाणी प्रकाशन नई दिल्ली सं 2003 पृ 141
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल चिंतामणि पहला भाग पृ 77
6. भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य संपादक पुण्य है कमला प्रसाद राजेंद्र शर्मा वाणी प्रकाशन नई दिल्ली सं 2003 पृ 101
7. हिंदी दलित साहित्य का विकास संपादक डॉक्टर प्रमोद कोवप्रत वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र सं 2016 भूमिका पृ 9

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

शैलेश मटियानी की कहानियों में दलित जीवन

डॉ. संतोष बबनराव माने.
शिवराज महाविद्यालय, गडहिंग्लज ४१६५०२ जिल्हा – कोल्हापूर (महाराष्ट्र)

संपूर्ण विश्व में भारतीय समाज का इतिहास अनेक वर्षो का माना जाता है I यही कारण है कि अनेक नई –नई परंपराए, रिती-रिवाज, संस्कृती का निर्माण होता रहा I हर एक युग में समाज और व्यक्ती की सभ्यता के बदलाव होते रहे और इस हजारो साल के इतिहास ने भारतीय संस्कृती को जन्म दिया जो सारा विश्व भारत कि ओर आकर्षित होता रहा I भारतीय सत्ता, धन का लालच ओर व्यापार के कारण भी विदेशी संस्कृती का असर भारतीय संस्कृती पडा I लेकीन समाज के इस परिवर्तन में एक ओर समाज का विकास हुआ तो दुसरी ओर समाज में गलत परंपराए , धारणाओं का निर्माण भी होता रहा I एक दरम्यान विविध जाती – धर्म की जडे भारतीय समाज में बढती रही I समाज के इस भेदभाव की यह कुटनीती मानव जीवन को पीडित बनती रही I अपनी श्रेष्ठता को साबित करने के लिये एक व्यक्ती दुसरे व्यक्ती को, एक समाज दुसरे समाज को हीनता से देखने लगा I एक ओर देश को संस्कृती के कारण महानता मिली तो दुसरी ओर मनुष्य –मनुष्य में भेदभाव का निर्माण हुआ फलस्वरूप समाज में दरारे बढती गई और संस्कृती की नीव दगमगाने लगी I

समाज के इस दरार में समाज का एक वर्ग अपने आपको उच्च वर्ग मानने लगा तो दुसरा वर्ग निम्न में विभाजित हुआ I उच्च वर्ग के लोगों से निम्न वर्ग का शोषण होने लगा जो यह निम्न वर्ग को पिडीत, दलित मानने की प्रथा शुरू हुई I भारतीय समाज में दलित वर्ग का इतिहास भी मानव जाती को अपमानित करनेवाला है I इतिहास के हर युग में इन दलितों पर अन्याय, अत्याचार होता रहा I इन दलितों का उद्धार करने का प्रयास अनेक महान व्यक्तियों ने किया I साथ ही दलित विकास में साहित्य और साहित्याकारों का प्रयास भी काम महत्वपूर्ण नही माना जा सकता I बार-बार मानव जीवन का इतिहास लिखकर मनुष्य का निर्माण और उसके विकास को दिखाकर मानव-मानव में एकता लाने का प्रयास साहित्यकारों ने ही किया है I जयशंकर प्रसाद की रचना 'कामायणी' और विष्णुदत्त राकेश की रचना 'नभग' इसके खास उदाहरण है, लेकीन आज भी भारत के किसी कोने पर दलित अत्याचार की घटना होती है जो भारतीय समाज में , साहित्य में एक चिंता का विषय बन जाती है I 'दलित' यह शब्द दलितों का जीबन है I दलित वर्ग के लोगों के जीवन की समस्यांए जिसमें गलत रूढीया ,मान्यताएँ है जिससे यह वर्ग पीडित है I दलित का शाब्दिक अर्थ कुचला हुआ दलित वर्ग है लेकीन आज यह विशिष्ट जाती के ऊपर दमन हुआ है I आज भी किसी स्थान पर सुवर्ण वर्ग से दलित वर्ग पर अत्याचार होता रहा है I दलितो के लिये शुद्र, अछूत, हरिजन बाहरी जातियाँ ऐसा कहकर मानव जाती में भारतीय संस्कृती को अपमानित करने की घटना बनती है I

इक्कीसवी सदी में महात्मा गांधी , डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर , शाहू महाराज, महात्मा फुले इन महान व्यक्तियों ने दलित वर्ग के विकास में बडा योगदान दिया I साथ ही दलित वर्ग की आवाज बाहर लाने का प्रयास और उन्हे न्याय देने प्रयास हिंदी साहित्य में काव्य, उपन्यास, नाटक और कहानी के माध्यम से भी हुआ है I दलित वर्ग के जीवन को दिखाकार साहित्यकारों ने मानव-मानव में सभ्यता लाने का प्रयास किया है I शैलेश मटीयानी की कहानियाँ इसके खास उदाहरण हो सकते है I दलितों को मंदिर प्रवेश नही था I कुछ महान व्यक्ती दलितों को न्याय देने का प्रयास करते है तो कुछ लोग दलितों को अछूत मानकर उन्हें पीडित बनाते है I स्वातंत्र्य पूर्व काल में दलित वर्ग पर अधिक अत्याचार होता रहा I काशी के मंदिर में दलितो को प्रवेश निषेध था तब प्रेमचंद ने जागरण अंक १९३२ में संपादन करके दलितों का समर्थन किया I प्रेमचंदने ने लिखा कि,"जो आदमी इस तत्व को नही समजता वह वेदों और शास्त्रों का पंडित होने पर भी मूर्ख है, जो दुखियों के दुख से दुखी नहीं होता जो अन्याय देखकर उत्तेजित नही होता, जो समाज में ऊंच –नीच, पवित्र –अपवित्र के भेद को बढाता है, वह पंडित होकर भी मूर्ख है I" १. स्वातंत्र्य पूर्व काल में दलितों के प्रती जो घृणा थी उसका विरोध प्रेमचंदजी ने किया I ब्राह्मण वर्ग के इस अन्याय का विरोध उस समय प्रेमचंद ने किया I

स्वातंत्र्योत्तर काल के शैलेश मटियांनी ऐसे लेखक रहे है जिनकी कहानी संग्रहो में दलित चेतना मिलती है I 'बर्फ कि चट्टाने' और 'मेरी तैंतीस कहानियॉ' इन कहानी संग्रहो में एक तरफ पहाडी प्रदेश है तो दुसरी तरफ महानगरीय जीवन है I मटियानी जी के कहानियों में कुछ ऐसे पात्र है जिनमें कही बहुत भीतर, मनुष्य होने का एहसास नही है I भारतीय समाज ग्रामीण या शहरी हो दलितों पर अन्याय, अत्याचार वहाँ होता ही रहा है I

शैलेश मटियानी की कहानी का आरंभ सन १९५४ से आरंभ होता है I यह कहानी लेखन की यात्रा सन १९५४ से २००१ तक चलती रही जिससे स्वांतत्र्य पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर इस काल के दलित समाज का जीवन का चित्रण प्रस्तुत हुआ है I मटियानीजी के 'बर्फ की चट्टाने' इस कहानी संग्रह में दलित चेतना का चित्रण हुआ है I 'सतजुगीया आदमी' इस कहानी में कुमाऊँ प्रदेश के डोम – चामार जाती का वर्णन हुआ है I हरराम और परराम पिता-पुत्र की कहानी है जो हरराम परंपराओ से जुडा है जो जाती की मर्यादा में रहता है I परराम आधुनिक विचार का है जो जाती के बाहर जाकर जिना पसंद करता है I वह पिता से कहता है "हम डोम लोगो की आत्मा और बुद्धी को एक जहर तो जन्म-जन्मांतरो से लगा हुआ है, उँची जात के लोग हमे कुत्तो से भी ज्यादा अछूत मानते आये I" २. परराम अपने पिता से कहता है की हम मरें जानवर का मांस नही खायेंगे I ऐसा कोई काम नही करेंगे जो लोग हमे नीच कहें I पंडित केशवानंद की भैस मर जानेपर हरराम को भैंस खिंचने बुलाया जाता है I हरराम इस काम को करना नही चाहता I लेकीन पंडित जंत्र-मंत्र करेंगे इस बात से डरता है I इस तरह जातिभेद को बढाने का काम पंडितो ने किया है I भगवान या जादू, मंत्र दिखाकर लोगोंपर वे अत्याचार करते रहें I समाज में फुट डालकर उनका शोषण ही किया फिर भी दलितों पर अन्याय जो था वह परराम जैसे युवकों ने उसपर आवाज उठाई है I कहानी में हरराम को ही सतजुगीय कहाँ है जो उंची जातीवालो में काम करता है I इस सतजुगीय पर होनेवाला शोषण और उसका निधन यह दो बाते मानवता को जागृत करनेवाली है I

मटियानीजी की 'धधुतियॉ त्योहार' कहानी कुमाऊँ प्रदेश की है I गुजरात में शिल्पकार लोग ठाकूर, ब्राम्हण के आश्रित हैं I वहॉ श्राद्ध पक्ष के त्योहार में कौआ को खीर दी जाती है I देवरा, जो है वह ठाकूर कल्याणसिंह के यहॉ काम करता है I जमीन के विवाद मामले को लेकर जब पंचायत होती है तब ठाकूर के घर में सभी देवराम को पुकारते हैं I तब धधुतियॉ त्योहार की तरह वातावरण था और् इस समय कौआ देवराम था I देवराम पार चिल्लाते हुए ठाकूर कल्याणसिंह कहते हैं "कब से पुकारते –पुकारते परेशान हो गया यह नमक हराम अब इस समय अपनी सवारी लिए आ रहा I अरे ! आजकाल तो इन लोगों की नसें एकदम ऊपर चढी हुई I सुरज क्या आया , इन लोगों के बाप का ही राज आ गया I" ३. स्वाधीनता संग्राम के दौरान महात्मा गांधी तथा बाबासाहेब आंबेडकर के कारण दलितो में जो चेतना आयी है उसकी झलक इस कहानी में मिलती है I देवराम को ठाकूर के पंचायत में पंच होकर जाना था जिसकारण वह धधुतियॉ लोहार का कौआं बना था I अछुतोद्धार आंदोलन के कारण सुवर्ण नेताओं ने हरीजनों को उंचा उठाने की बात छेडी थी I इस पहाडों पर सहनेवाले देवराम जैसे शिल्पकार लोग सुवर्णो में चाकर थे जो उन्हें अछूत माना जाता था I अब इस रूढी में परिवर्तन आना शुरू हुआ था I अब ये शिल्पकार भैस का गोश्त खाना बंद कर रहे थे और सुवर्णो को 'सेवा मानियों' के स्थानपर 'जै हिन्द' कह रहे थे I अब देवराम ठाकूर भी अनेक बातों को रोकने का प्रयास करता I लेखक इस देवराम के संदर्भ में लिखते है – "देवराम की आँखो में आजकाल एक और सपना तैरना लग गया था I अगर उसका बेटा चेतराम हायस्कूल भी पास कर ले और कभी पटवारी-पेशकर बनकर इसी पट्टी में आ जाए , तो उसका सर औरों से हाथ भर उॅचा हो जायेगा I आज जो ठाकूर – ब्राम्हण उसे डुमडा - डुमडा कहते है I कल वहीं नमस्कार करने लग जाएंगे I" ४. प्रस्तुत कहानी का देवराम जागरूक और चेतना संपन्न दिखाई देता है I देवराम सिर्फ अपने पुत्र में यह परिवर्तन नही लाना चाहता बल्की अपनी जात- बिरादरी के साथ के लोगों में भी यह सुधार लाना चाहता है I देवराम के माता –पिता ठाकूर के यहॉ नौकर थे तब उन्हें गालीयॉ सुननी पडती लेकीन आज देवराम ऐसा नहीं है I इस बात से उसे नई चेतना और अपनी बदलती जीवन धारा से वह प्रसन्न दिखाई देता है I

मटीयानीजी कि 'नंगा' कहानी भी दलित जीवन कि त्रासदी को व्यक्त करती है I कहानी की नायिका रेवती शिल्पकारीन है I उसका पती हरिराम यह ठाकूर गुमान सिंह के यहॉ हलवाहा है I दोनों पती-पत्नी ठाकूर के यहॉ काम करते है I कुछ दिन बाद हरिराम का निधन होता है और रेवती विधवा बन जाती है I रेवती वापस अपने गॉव जाना चाहती है मगर ठाकूर जाने नहीं देता I ठाकूर अपनी खेती में झोपडी है वहॉ रहने के लिए उसे कहता है I ठाकूर अपनी बुरी नजर के साथ उससे संबंध रखता है I रेवती गर्भवती होनेपर ठाकूर का परिवार बच्चे को नदी में छोडने की बात करता है I तब रेवती कहती है I "गुंसाइनी तुम्हारे ठाकूर ने घर बहुत सोच समझकर लगवाया , मगर जिसे नौ महिने ढोया, उसे इतनी जल्दी नदी में बहा देने की ताकद मुझसे नही I " ५. मॉ की ममता क्या होती है यह रेवती में दिखाई देती है I रेवती पंचायत में न्याय मॉगती है I ठाकूर कुछ जमीन देने के लिए तयार होता है I लेकिंन रेवती का स्वाभिमान जाग उठता है I वह जमीन का त्याग करती है I रेवती की चचीया ससुर सगतराम नदी में मछली पकडते समय ठाकूर को वह दिखाई देता है I ठाकूर को वह सगतराम नंगा लगता है I लेखक यहॉ कहना चाहता हो कि वह नंगा सगतराम नंगा ठाकूर , नंगी पंचायत को दर्शाता है I स्वाधीनता के समय ठाकूर जैसे लोग दलित नारी का शोषण करते रहे I लेकीन फिर भी रेवती जैसी नारियों ने संघर्ष किया I

लाख गरिबी और दरिद्रता होकर भी अपना मान –सन्मान के लिए जुझनेवाली नारियॉ यहॉ दृष्टिगत होती है I उॅची और संपन्न जाती के खोखलापण इन कहानियों में स्पष्ट हुआ है I बीसवी सदी में समाज सुधारकों ने न्याय देणे का प्रयास किया है I आधुनिक युग के इस इक्कीसवी सदी में दलित समाज में काफी सुधार आया है I विश्व के हर क्षेत्र में उन्होने अनेक कठीनाईयों को पार करते उॅचा स्थान प्राप्त किया है I हिंदी साहित्य के अनेक लेखकोंने भी दलित जीवन का साहित्य लिखकर उन्हे न्याय देने का प्रयास किया है I प्रेमचंद , नागार्जुन, रज्जन, त्रिवेदी , राजेंद्र यादव, शैलेश मटीयानी जैसे लेखकों का साहित्य यहॉ महत्वपूर्ण है I

आधुनिक युग के समाज में बदलती इस जीवनधारा में जातीभेद खत्म होता दिखाई देता है I लेकीन फिर भी किसी कोने में दलित अत्याचार की घटना होती है जो मानवी सभ्यता , मानव व्यवहार को फिर अज्ञान की तरफ ले जाती है I

संदर्भ :

1. प्रेमचंद –जागरण नवंबर १९३२ संपादकीय
2. सतजुगीया आदमी – शैलेश मटीयानी पृ-१३२
3. धधुतीया त्यौहार - शैलेश मटीयानी पृ-५५५
4. धधुतीया त्यौहार - शैलेश मटीयानी पृ-५५८
5. नंगा - शैलेश मटीयानी पृ-१६१

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

हिंदी कविता में दलित चेतना

डॉ. संतोष मोटवानी
आर. के. तलरेजा कॉलेज, उल्हासनगर

भारत में लगभग ९० वर्षों से दलित शब्द का प्रयोग हो रहा है। और तभी से इस शब्द के संदर्भ में बहुत से मत आए हैं। इसकी व्युत्पति के संबंध में अभी तक विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इसलिए पहले हमें दलित शब्द की वास्तविक अर्थ को समझना पड़ेगा। संस्कृत यह शब्द दल धातु से बना अतः इस शब्द के संदर्भ में विभिन्न शब्दकोशों में विभिन्न अर्थ दिए गए हैं। जो निम्नलिखित हैं -

१) दल- विकासना, फटना, खंडित होना, दुविधा होना।
२) दल- चूर्ण करना, टुकड़े करना, बिदारना।
३) दल- सैन्य, लश्कर, पत्र, पत्ति। (पाइअसद्दमहण्णवो) (प्राकृत शब्दकोश)
४) (दलति, दलित)- टू बर्स्ट, ओपन, स्प्लिट,क्लेव,क्रेक। (स्टूडेंट संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी_ आप्टे व्ही. एस.)

संस्कृत शब्दकोश की तरह मराठी शब्दकोशों दलित शब्द का अर्थ 'विनष्ट किया हुआ।' ऐसा ही दिया गया है
जैसे - दल - नाश करणे (विनष्ट करना)
दलित -नाश पावलेला (विनष्ट हुआ)
दीन दलित- समानार्थी शब्द।
दलित - तुडविलेले, चुरडलेले, मोडलेले, अंग्रेजी डिप्रेस्ड़ क्लासेस या शब्दास प्रतिशब्द। (मराठी शब्द रत्नाकर संपादित वा. गो. आप्टे)

मराठी शब्द कोषों की तरह ही हिंदी में भी दलित शब्द का अर्थ विनष्ट किया हुआ। ऐसा ही मिलता है जैसे मसला हुआ, दबाया हुआ, रौंदा या कुचला हुआ। खंडित अर्थ मिलता है।

अतः स्पष्ट है कि दलित शब्द का अर्थ एवं व्याप्ति हमें विभिन्न शब्दकोशों में अलग-अलग मिलती है। दलित शब्द भारत में कब से प्रयुक्त हुआ इस बात की जानकारी हमें मिलनी चाहिए इस विषय में१९३३ के दरमियान उस समय की सरकार ने जो जातिय निर्णय ले लिया उसमें 'डिप्रस्ड़ क्लास' इस शब्द का प्रयोग किया है इसका अर्थ है पद दलित। वास्तव में पददलित यह शब्द दलित शब्द का आजकल हर क्षेत्र में दलित शब्द की दुंदुभी बज रही है। समाज एवं राजनीति में उसका बोलबाला बढ़ता ही जा रहा है। इसी शब्द से संबंधित 'मराठी में दलित साहित्य' संज्ञा चर्चा का ही नहीं बल्कि विवाद का विषय भी रहा है। दलित साहित्य सर्वश्रेष्ठ साहित्य है से लेकर दलित साहित्य साहित्य ही नहीं है तक कहने वाले आलोचक अपने अपने मत की पुष्टि करते जा रहे हैं। इतना ही नहीं अपितु दलित साहित्य का वास्तविक महत्व एवं पाठकों में उसकी बढ़ती हुई शोहरत को देखकर हम कह सकते हैं कि दलित साहित्य वास्तव में बहुत अच्छा है। लेकिन उसमें कुछ बातें ऐसी हैं जिनके कारण हैं उसे आलोचक साहित्य के क्षेत्र में लेना नहीं चाहते अर्थात दलित साहित्य में त्रुटि एवं कमजोरी को महसूस करने वाले उसके महत्व से तो अवगत हो चुके हैं फिर भी उसको कभी-कभी कला के मापदंडों से बाहर रखना पसंद करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि दलित साहित्य नवोन्मेष की प्रक्रिया से गुजर रहा है वह अभी अंकुरित हो रहा है। हिंदी दलित साहित्य भी धीरे-धीरे विकास की ओर अग्रसर हो रहा है। उसकी अभी बाल्य अवस्था चल रही है उसे किसी मापदंडों की जंजीरों से जकड़ने की कोशिश करना साहित्य का हनन ही नहीं बल्कि समस्त साहित्य के विकास का विरोध करना होगा। 'ब्लैक लिटरेचर' तथा 'समानांतर साहित्य' या 'दलित साहित्य' जैसे क्रांतिकारी नए-नए प्रयोग साहित्य के क्षेत्र में विकसित होने अनिवार्य हैं। वरना तीव्र गति से परिवर्तित होते जा रहे नए युग में साहित्य अपना वही पुराना चेहरा धारण करके अविकसित ही रहेगा। मराठी साहित्य में 'दलित साहित्य आंदोलन' मिलता है कभी-कभी यह विचार मन में उठता है कि क्या हिंदी में दलित साहित्य आंदोलन है? जिसका उत्तर बहुत जल्दी नहीं मिल जाता। क्योंकि अब तक यह बात सिद्ध नहीं हो पाई है, कि दलित साहित्य किसी को जो दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य है या फिर जहां एहसास की तीव्रता है। यह एक नया प्रश्न उपस्थित हुआ।कुछ लोग दलित के अंतर्गत अस्पृश्य एवं निचली जाति को ही समाविष्ट करते हैं। तो कुछ लोग उसकी व्याप्ति बढ़ाकर दलित शब्द के वास्तविक अर्थ शोषित, पीड़ित, रौंदा हुआ, विनष्ट किया हुआ विनाशक या हुआ कुचला हुआ आदि से उसका संबंध स्थापित करते हैं। दलित शब्द को जातिवाचक दायरे से बचाकर व्यापक पृष्ठभूमि पर ला खड़ा कर देते हैं। ऐसे विवादों में फंस कर निचली जाति के लोगों द्वारा लिखा गया साहित्य दलित साहित्य कहना अनुचित है। इसी मत से चिपके लोग ही नारायण सुर्वे जैसे श्रेष्ठ दलित कवि की रचनाकारों के दायरे से बाहर कर देते हैं। लेकिन प्रश्न यह है क्या दलित जाति की मुहर न लगने के कारण उनका साहित्य साहित्य न है? इसी प्रकार मल्लिका अमर शेख जैसे मुसलमान एवं शरदचंद्र मुक्तिबोध जैसे ब्राह्मण अथवा नारायण सुर्वे अनाथ कवियों की रचनाएं गहरी दलित प्रतीति से ही निकली हुई हैं। उनकी श्रेष्ठ रचनाएं ही साबित कर देती हैं कि वे दलित कवि हैं।यह उल्लेख इसलिए यहां किया क्योंकि हिंदी में यदि हम विशेष रूप से दलित कवियों और लेखकों को ढूंढ लेंगे तो मिलना मुश्किल है और दलितों द्वारा दलितों के लिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। यह परिभाषा अब तक हिंदी साहित्य पर पूरी तरह से लागू नहीं हो पाई। क्योंकि मराठी के क्षेत्र में बहुत अच्छे दलित कवि और साहित्यकार इसलिए हुए उनके लिए शिक्षा के दरवाजे बहुत पहले ही खुल चुके थे। इससे अधिक महत्वपूर्ण कारण महाराष्ट्र की शोषित पीड़ित मानवता को डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर एवं राजऋषि साहू जैसे क्रांतिकारी महापुरुषों की प्रेरणा मिली, वह हिंदी भाषी क्षेत्र में दलित वर्ग एवं दलित मानवता को किसी से प्रेरणा नहीं मिली। वास्तव में मराठी का दलित साहित्य आंदोलन फुले और अंबेडकर की प्रेरणा से निकली चिंगारी का ही भड़का हुआ विद्रोह रूपी अग्निकांड है। अतः हिंदी में दलित लेखक न होने का कारण स्पष्ट हो जाता है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि हिंदी साहित्य में दलितों का चित्रण ही नहीं हुआ? आधुनिक काल में नवजागरण के साथ साहित्य एवं समाज में नया एवं जोरदार मंथन शुरू हुआ। और उसी के कारण साहित्य ने नवीन मार्ग खोजें। हिंदी साहित्य में मानव को मानव के रूप में देखने की एक नई परंपरा शुरू हुई और उसमें स्वतंत्रता की भावना बल खाकर

अंकुरित हुई हिंदी साहित्य मानव के निकट साहित्य को लाने का प्रयास करने लगे इसके कारण राष्ट्रीय क्षितिज पीड़ित शोषित दलित वर्ग साहित्य में स्थान प्रदान करने लगे प्रेमचंद गद्य लेखक ने उपन्यास कहानियों के माध्यम से प्रकृति एवं एहसास के साथ दलितों की शब्द रूप देना प्रारंभ किया उसी रूप में आ रहा हूं कि कवियों ने भी दलित मानव को महत्व देकर उसकी योजनाओं को गहरी सहानुभूति के साथ काव्य काव्य रूप देना शुरू कर दिया। आधुनिक कविता का स्वर्ण काल छायावाद को कहने वाले लोगों ने पहले तो उसे पलायनवाद समझा और उसके बातों को धूमिल करने की कोशिश की गई इसमें दलित वर्ग की व्यथा वेदना को गहराई से अनुभूत किया गया है। अन्यथा प्रसाद, पंत, निराला के काव्य को आज महत्वहीन समझा जाता। प्रसाद की 'आंसू', 'झरना' और 'कामायनी' पंत की 'युगवाणी', 'युगान्त' एवं 'ग्राम्या', निराला की 'नए पत्ते', 'अपरा' एवं 'कुकुरमुत्ता' तथा डॉ. रामकुमार वर्मा की 'एकलव्य' जैसी रचनाएं इसके ठोस प्रमाण हैं। हिंदी साहित्य कबीर जैसे ऐसे महान रचनाकार हुए हैं जिन्होंने अपने साहित्य में दलितों को और उनकी भावनाओं को स्थान दिया वैसे भक्ति साहित्य को हिंदी साहित्य का स्वर्णकाल माना जाता है इसमें सगुण भक्ति साहित्यकारों ने भले ही कुछ कम दलितों को महत्व दिया है किंतु निर्गुण साहित्यकारों ने दलित भावनाओं को और तत्कालीन रूढ़ियों और क्यों का खुलकर विरोध किया जैसे कबीर कहते हैं यदि पत्थर की पूजा करने से ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है तो मैं पहाड़ को क्यों न पूजूं? उनके समय से ही दलितों को मंदिर में जाने के निषेध का विरोध होता था। उसके लिए आवाज उठी थी। और यहीं से हिंदी साहित्य में दलित साहित्य लेखन शुरू हुआ था वैसे कुछ साहित्यकारों का मानना है के वाल्मीकि भी दलित थे उन्होंने रामायण लिखी थी। किंतु यह नया विषय होगा। आधुनिक हिंदी साहित्य में कविता के क्षेत्र में विशेष रूप से राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता, भारतेंदु युगीन कविता, छायावादी कविता, प्रयोगवादी कविता, प्रगतिवादी कविता आदि सभी वादों में हमें दलित की पीड़ा का चित्रण मिलता है। यह चित्रण आधुनिक नई कविता में विशेष रूप से मिलता। नई कविता का समय लगभग १९५४ से माना जाता है नई कविता पूर्णतः स्वातंत्र्योत्तर युग की कविता है। स्वतंत्रता के बाद योजनाएं बनी और काल के गर्त में विलीन होती चली गई। लेकिन समाज में व्याप्त विषमता, जातिवाद, नगर, ग्राम में विभाजन आदि पर उसका कोई असर ना हुआ। सदियों से दम तोड़ रहा दलित वर्ग आशा लगाए था कि आजादी के बाद सही रूप में वह आजाद हो जाएगा और उसे मानव के रूप में देखा जाएगा। लेकिन आजादी के बाद ऐसा हुआ नहीं और उसकी आशाओं पर पानी फिर गया। उसकी दुर्दशा नई कविता में नए विचारों के साथ चित्रित हो गई नई कविता दलित वर्ग तक पहुंच कर उसकी हर व्यथा को अनुभव करती है। इस संदर्भ में जगदीश गुप्त लिखते हैं 'नई कविता अंतर्बाह्य है दोनों प्रकार की मानव जीवन की अंध गलियों में प्रवेश करके उसके उपेक्षित से उपेक्षित अंशों एवं पक्षों को भी सहानुभूति प्रदान करने के लिए तत्पर है। उसकी खीझ गुस्सा, झुंझलाहट, व्यंग्यात्मकता, उलझन, कठोरता यहां तक कि उसकी नीरसता भी सदाशयता के ही फलस्वरूप नई कविता अपने युग के दलित वर्ग को महत्व देकर उसकी उपेक्षा को अपना विषय बनाती है। नई कविता के अंतर्गत 'तीसरा सप्तक' एवं नई कविता के कवि आते हैं, जिनमें प्रमुख हैं - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विजयदेव नारायण साही कुंवर नारायण, केदारनाथ सिंह, दुष्यंत कुमार, अजीत कुमार, कैलाश वाजपेई, कीर्ति चौधरी, प्रयाग नारायण त्रिपाठी तथा मदन वात्सायन आदि इनकी कविताओं में दलित वर्ग के चित्रण को हम देख सकते हैं।

वर्ण व्यवस्था एवं अस्पृश्यता : नई कविता का कवि अस्पृश्यता एवं वर्ण व्यवस्था का सर्वत्र विरोध करता है सर्वेश्वर दयाल सक्सेना कहते हैं - 'व्यर्थ उनको बांधना है/ डूबना जो चाहते हैं खुद अंधेरे में/ कहां तक उनको संभालोगे/भला भागते जो रोढियों की तंग घेरे में।'

प्रीति चौधरी कहती हैं 'यह कैसी लाचारी है कि हमने अपनी सहजता ही एकदम बिसार दी है। इसके बिना जीवन कुछ इतना कठिन है कि फर्क जल्दी समझ नहीं आता यह दुर्दिन है या सुदिन दिन है।' स्वतंत्रता के पश्चात इस प्रश्नों एवं दलितों को संविधान में सुरक्षा एवं कानूनी सहायता प्रदान की गई लेकिन यह सुरक्षा एवं सहायता संविधान में ही छपी रही इस प्रश्न का बहिष्कार आज भी जारी है दुष्यंत कुमार लिखते हैं लुट गए हा मिट गए मेरी रोशनी कहां है तू ओ मेरी जिंदगी कहां है तू स्पष्ट है कि बहिष्कार एवं शोषण के कारण शिव के दलित वर्ग की जिंदगी लापता हो गई है।

अपमान एवं अत्याचार: नई कविता में दलितों पर हो रहे अत्याचार एवं उनका अपमान कर रहे लोगों पर प्रकाश डाला गया है। कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना कहते हैं - 'इस दुनिया में/जो जितनी ही यातना देने में समर्थ है/वह उतना ही समझदार है/और कैसी विडंबना है कि/मुझ नासमझ को इन समझदारों से प्यार है।

किसानों की सहायता का चित्र - नई कविता में किसानों की विपिन अवस्था का चित्रण मिलता है युग का कवि कृषकों का शोषण करने वालों ठाकुरों पर करारा व्यंग्य करते हुए कहता है -

'ठाकुर द्वारे की घंटी चुप हो जाती है
अंधियारी पेड़ों के तले फैल जाती है
कोई सिसकी का इंजन भर भर ठंडे
चूल्हा गरम आता है'

कवि कृषि मजदूर का चित्रण करते हुए कहता है कि वे दिन-रात तन तोड़कर मेहनत करें और उसके पसीने से प्राप्त अनाज पर कोई ठाकुर अधिकार जमाता है। यह बात इस युग के कवि को मंजूर नहीं। कीर्ति चौधरी की कविता 'दायित्व भार' कृषि मजदूर की दयनीय दशा को ही अंकित करती है।

मजदूरों का शोषण - इस युग का कवि जगह जगह पर मजदूरों के प्रति जो अन्याय हो रहा है उसके खिलाफ आवाज उठाता है और कैलाश बाजपेई एक जगह लिखते हैं -

'मुर्दा पोशाक पहनकर
मैं राजधानी की सीमेंट्री दूरियों पर
घूमता हूं सभी जगह
भीड़ है ठंडी अकर्मक खामोश'

कवि मदन वात्सायन एक जगह लिखते हैं -

'हम पूंजीपति महासेठ हैं
पड़े हुए निश्चल पहाड़ से
सब का खून चूसते देखो आयु चलाते हैं हम'
आशय स्पष्ट है कि इस युग का कवि शोषित पीड़ित मजदूर की असहाय स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

१) पाइअसद्दमहण्णवो (प्राकृत शब्दकोष) सं. न्यायव्याकरणतीर्थ पं. हर्गोविन्ददास टी शेठ
२) सं. आप्टे वी एस./ THE STUDENT SANSKRIT ENGLISH DICTIONARY
३) मराठी शब्द रत्नाकर / सं आप्टे कीर्ति चोव्धरी, आवाज , तीसरा सप्तक पृ. ३७
४) सर्वेश्वर दयाल सक्स्सेना, काठ की घंटियाँ, पृ. ३८-३९
५) दुष्यंत कुमार, सूर्य का स्वागत, पृ. ९

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

भूमंडलीकरण और 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास

डॉ. भगत सारिका आप्पा
हिंदी विभाग, श्री पद्ममनी जैन कॉलेज पाबल, तहशील – शिरूर , जिला- पुणे

''भूमंडलीकरण को किसी सर्वमान्य परिभाषा में बाँधा नहीं जा सकता सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रौद्योगिकी तकनीक, संचार क्रांति और आर्थिक उदारीकरण ने सारे विश्व को समेटकर एक गाँव में बदल दिया है।'' [1] हमारे प्राचीन भारत में 'वसुधैव कुटुम्बकम' के विचार में पूरे विश्व को अपना परिवार समझा जाता रहा है। लेकिन 21वीं सदी में भूमंडलीकरण पूरे विश्व को एक गाँव मानकर चलने वाली अर्थ ध्वनि ना होकर एक ऐसी पश्चिमी बयार है जिसका मूलाधार अर्थ है। जिसका मानवता और मानव कल्याण से कोई भी संबंध नहीं है। देखने में सारा बल एकरूपता पर है यानी संपूर्ण विश्व एक ही है संस्कृति एक है , एक ही जीवन शैली , एक ही चिंतन पद्धति लेकिन वास्तविक चित्र अलग दिखता हैं। "वैश्वीकरण पर सबसे बड़ा प्रश्न अमेरिकी जीवन शैली का अंधानुकरण लगता है । प्रश्न आदान-प्रदान के अनुपात का है। इधर से बहुत कम जा रहा है, जबकि अमेरिकन जीवन शैली हमारे ऊपर छा रही है। दूसरी ओर सर्वाधिक खतरा व्यक्ति की पहचान का है। मौलिकता के नष्ट होने का है। खान-पान , पहनावा, विचार , संतान का भरण पोषण, पारिवारिक रख रखाव -यानी संपूर्ण जीवन पद्धति। तीसरा प्रश्नचिन्ह वस्तु करण या कहें कि 'चीजीकरण' लगा रहा है। भूमंडलीकरण की अवधारणा अपधारणा तब बन जाती है , जब हम देखते हैं कि जब स्थिति यह हो जाए कि जो अमेरिका सोचता है, वही पूरा विश्व सोचे।"[2] भूमंडलीकरण से साहित्य कैसे अछूता रह सकता है क्योंकि साहित्य अपने समय को ही व्यक्त करता है। भूमंडलीकरण के परिणाम स्वरुप हिंदी उपन्यासों में स्त्री विमर्श पर ज्यादा मात्रा में लिखा जाने लगा। जिसमें चित्र मुद्गल का उपन्यास ' एक जमीन अपनी , प्रभा खेतान का 'आओ पेपे घर चले', मधु कांकरिया के 'सेज पर संस्कृत' आदि उपन्यास दिखाई देते है। यहाँ मुक्तिबोध का यह कथन उल्लेखनीय है। प्रत्येक युग में जीवन के कुछ ऐसे बुनियादी तथ्य होते हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है यही नहीं वह मूलभूत जीवन तथ्य न केवल हमारी निजी जिंदगी पर गहरा असर डालते हैं वरन देश का वर्तमान और भविष्य भी निर्माण करते हैं।

इस समय पूरे विश्व और देश को सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाला केंद्रीय विषय भूमंडलीकरण ही है। भारतीय समाज में भूमंडलीकरण के कारण बहुत बड़े परिवर्तन आए यह परिवर्तन की प्रक्रिया अंग्रेजों के शासन काल से हि प्रारंभ हो चुकी थी। आजादी के बाद कुछ समस्याऐं जस के तस बनी रही और कुछ परिवर्तीत हो गयी। भूमंडलीकरण के केंद्र में २१ वीं सदी के विविध आयामों को प्रस्तुत करते समय 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में स्त्री अस्मिता , बाजारवाद , संवेदनहीनता , अकेलापन, पाश्यात्य संस्कृति का प्रभाव, महानगरों में जनसंख्या वृद्धि, स्त्री शोषण आदि विभिन्न विषय भूमंडलीकरण के परिणाम स्वरूप उभरे हुए दिखाई देते है।

मधु कांकरिया के 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में वैश्वीकरण का प्रभाव दिखाई देता है तथा भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य संस्कृति का बड़ी मात्रा में प्रभाव दिखाई देता है। समाज में बाजार की वस्तुओं के प्रति आकर्षण इतना बढ़ा है कि आपसी संबंधों की व्याख्या ही धन और वस्तुओं के आदान-प्रदान से होने लगी है पहले तो शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित था लेकिन आजकल ग्रामीण क्षेत्रों में भी इसका प्रभाव काफी तेज गति से हो रहा है। उपन्यास की नायिका संघमित्रा के गाँव अजीमगंज में विदेशी वस्तुओं का महत्व इतना बढ़ गया है इसका वर्णन संघमित्रा उपन्यास में करती है। " हमारा कस्बा एक साथ प्रागैतिहासिक मिथकीय और आधुनिक था। औरते यहाँ घुंघट में थी और जींस टॉप में भी। दुकानों में जड़ी-बूटियों ईसबगोल की भूसी पुदीना हरा जायफल जलजीरा लवण भास्कर के साथ-साथ विदेशी परफ्यूम साबुन बरमूडा और साड़ी भी बिकती थी। आधुनिकता की तेज बहती हवाओं में महिलाओं के दुपट्टे उड़ने लगे थे।"[3] वैश्वीकरण केवल आंतरराष्ट्रीय व्यापार से संबंधित नहीं है इसका परिणाम आम जनता के जीवन पर और जीवन पद्धती पर होता हैं। अंग्रेजों ने भारतीय लोगों के जीवन पद्धती पर अमुलाग्र बदलाव किए हैं। इस संस्कृति में जो जो गलत है इसकी उन्होने बेझिजक चर्चा की है। व्यापार की वृद्धि से बेरोजगारी कम हो जाती है । इसी कारण पाश्च्यात्य देश लगभग चार पाचसौ वर्ष पूर्व से व्यापार वृद्धि करने में जुट गये है ।
वैश्वीकरण से पूर्ण विश्व एक कुटुंब की तरह पनप रहा है इसके बहुत से लाभ भी है और कुछ नुकसान भी भारत के गाँव को सहन करने पड़ रहे हैं। वैश्वीकरण के चलते एक जगह पर बन रही कोई वस्तु बनाने के लिए अलग-अलग देशों से प्रांतों से गाँव से उसके अलग-अलग हिस्सों को मंगाया जाता है और तब कहीं जाकर वह वस्तु किसी एक जगह पर बनती है किसी दूसरी जगह पर वह बेची जाती है। 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में यह चित्र दिखाई देता है कि वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण आज बाजार में तरह-तरह की वस्तुएँ मिल रही है इस वजह से गाँव के पारंपरिक व्यवसाय घटते हुए दिखाई देते हैं। भूमंडलीकरण के कुछ हद तक लाभ और नुकसान भी हुए है । भूमंडलीकरण के इस नए समाज में जी रहे मानव में मानवता का नाश होता दिखाई दे रहा है। भूमंडलीकरण प्रक्रिया के उदय के मूल में लाभ ही एकमात्र कारण रहा था परंतु इस लाभ के पीछे भागते हुए मनुष्य के कई प्रकार के नुकसान भी हो रहे हैं। उपन्यास में अजीमगंज के रामवृक्ष और रामपाल काका मिट्टी की देवी देवताओं की मूर्तियाँ बनाते थे मगर वह गाँव छोड़कर रोजगार ढूढने कोलकाता जा रहे हैं क्योंकि उनका धंधा बाजारवाद के चलते बंद होने की कगार पर है। रामपाल काका बड़े मनोयोग की मूर्तियाँ बनाते थे लेकिन अब गाँव में माटी के दिए ही नहीं जगमगाते उसकी जगह मोमबत्ती प्लास्टिक की बोतलें थर्माकोल के गिलास स्टील की थालीयाँ बाजार में आ गई है लेखिका ने रामपाल काका की मूर्तियां बनाने की क्रिया का वर्णन विस्तार से किया है। इस प्रकार गाँव में व्यवसाय के क्षेत्र में आधुनिक चीजों के आने के कारण समस्या आ गई है गाँव में बनाई गई माटी की चीज़े बिकती ही नहीं इस कारण शहरों में रोजगार के लिए लोग भाग रहे हैं।
भूमंडलीकरण का तात्पर्य सांस्कृतिक साम्राज्यवाद है बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा केवल उत्पाद की नहीं अपनी पूंजी के प्रचार स्वरूप हमारी संस्कृति के प्रति हीन भावना उत्पन्न करना है। व्यवसाय के क्षेत्र में बाजारवाद के चलते विभिन्न प्रकार की कंपनियों का आगमन हो गया था और इसका नुकसान गाँवों के छोटे व्यवसाय को रहा था इसका उदाहरण उपन्यास की नायिका संघमित्रा के पिताजी के साबुन के व्यवसाय पर दिखाई देता है। संघमित्रा की माँ पिताजी के घटते हुए व्यवसाय की अतीत की यादों को संघमित्रा के सामने व्यक्त करती है। "तुम्हारे पापा के जाने का दुख भी यह घटना हुआ कारोबार ही

था। लोग उन्हें समझाते थक जाते कि धन्धा बदल लो, अब आजकल के समय में कोई नहीं पूछेगा, तुम्हारे 'ब्राइट' साबुन की बट्टी को। अब मैदान में बड़े-बड़े राक्षस उतर आए हैं। पहले का जमाना और था… तब गाँव में ही साबुन बनता और यहीं खप जाता था। न बाहर से माल आता, न बाहर जाता, पर अब ठौर-ठौर पर बड़ी-बड़ी कंपनियों के साबुन बेचनेवालों के एजेंट पैदा हो गए हैं। इन्होंने हमारे बाजार में सेंध लगा ली है। और तुम निहत्थे हो… पहाड़ से अकेले लड़ने में सिवाय लहूलुहान होने से क्या हाथ लगना है।,"[4] वैश्वीकरण के परिणाम स्वरूप बाजारवाद के कारण गाँवों के बहुत से परंपरागत व्यवसाय बंद होने की कगार पर खड़े दिखाई देते हैं। लेकिन प्रामाणिक रूप से काम करने वाले यह व्यवसायिक चाहे कितना भी घाटा क्यों ना हो जाए वह अपने उत्पाद के प्रामाणिकता के भरोसे पर आज भी आगे बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं। चाहे कितनी भी पाश्चात्य कंपनियाँ देश में आ जाए उन्हें फिक्र नहीं क्योंकि इस व्यवसाय करने वाले व्यक्ति को अपनी प्रामाणिकता पर विश्वास था। उनके पिछली कई पीढ़ियों ने यह व्यवसाय किए हुए थे। संघमित्रा के पिताजी भी अपने व्यवसाय के प्रति एकनिष्ठ थे पीछे हटने के लिए कदापि तैयार नहीं थे। " कहते हैं जैसे इनका साबुन घरों के मैल काटता है। वैसे विकास बाबू आत्मा का मैल निकालते हैं…. तुम ही बताओ इसके बाद भी हार मान लूँ? अपनी पहचान मार दूँ? निर्माता से नौकर बन जाऊँ? फिर जब तीन पुश्तों से चला आ रहा धंधा ही नहीं चल पाया तो नए धंधे से मैं क्या तीर मार लूँगा?"[5] भूमंडलीकरण के जितने लाभ है उससे कई अधिक मात्रा में उसके नुकसान भी हो रहे है क्योंकि ऐसे कारगीरोंके ग्रामीण व्यवसाय नष्ट होते दिखाई देते हैं। विदेशी कंपनीयोंके आगमन ने तो भारतीय उदयोगोंके अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया हैं।

उपसंहार:

भूमंडलीकरण ने मनुष्य को सुनहरे सपने दिखाए हो पर शहरों के विकास की तुलना में गाँवों की वास्तविकता भी कुछ और ही दिखाई देती हैं। भूमंडलीकरण के दौर में विश्व परिवर्तन के साथ सामान्य मनुष्य को केंद्र में लाना एक महत्वपूर्ण भूमिका थी परंतु इसका वास्तविक लाभ उस व्यक्ती तक नहीं पहुँचा जिसे इसकी ज्यादा आवश्यकता थी। यदि भारत के शहरों की बात करे तो यहाँ का मनुष्य पाश्चात्य कंपनियों के अर्थ प्राप्ति के जाल में इस तरह फँस गया है कि वह खाने में पिझ्झा बर्गर खा रहे है और पानी पीने कि जगह पेप्सी पी रहे है। इसी प्रकार के पाश्चात्य अंधानुकरण के कारण उपन्यास में गाँवों के छोटे व्यवसाय धीरे धीरे नष्ट हो रहे है कयोंकि मनुष्य जीवन शैली पर यह कंपनी कल्चर धीरे धीरे दबाव डालता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. दसवें दशक के हिंदी – उपन्यास और भूमंडलीकरण - शिव शरण कौशिक ,पृष्ठ - 5
2. दसवें दशक के हिंदी – उपन्यास और भूमंडलीकरण - शिव शरण कौशिक, पृष्ठ – 8
3. सेज पर संस्कृत – मधु कांकरिया , राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ- 67
4. सेज पर संस्कृत – मधु कांकरिया , राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ- 10
5. सेज पर संस्कृत – मधु कांकरिया , राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ- 11

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

'यमदीप' में चित्रित किन्नरों का पारिवारिक संघर्ष

प्रा. डॉ. एस. बी. बिडकर
हिंदी विभाग प्रमुख, डॉ.घाळी कॉलेज, गडहिंग्लज
Email – saritabeedkar78@gmail.com

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में परिवार की भूमिका महत्वपूर्ण होती है I परिवार का अगर सहयोग नही मिला तो व्यक्ति बिखर जाती है I इसिलिये व्यक्ति के जीवन में परिवार का सौहार्दपूर्ण माहौल बहुत महत्वपूर्ण होता है I अगर यह माहौल ठिक नहीं होता है तब उसे अनेक पारिवारिक समस्याओं से जुझना पडता है I यही बात आम व्यक्ति की तऱ्ह किन्नरों के जीवन में भी लागू होती है I दुर्भाग्य से किन्नरों के अधुरे देह के चलते परिवार मानो उनका दुश्मन बन जाता है I इसी वजह से वे परिवार के प्रेम से वंचित हो जाते है I परिवार में उन्हें प्रेम से ज्यादा उपेक्षा का ही सामना करना पडता है I आखिर परिवार की यही उपेक्षा उन्हें परिवार त्यागने के लिए मजबूर कर देती है I और यही कारण है कि मजबुरन उन्हें किन्नर समुदाय में शामिल होना पडता है I इसके बाद किन्नर समुदाय ही उनका परिवार बन जाता है I यहाँ पर भी उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पडता है I अंतः परिवार हो या समाज दोनों जगह उन्हें संघर्ष करना पडता है I फिर भी जब हम परिवार के बारें में सोचते है, अंतः परिवार ही जब उपेक्षा करते है , नफरत करते है तब दिल को बहुत बडी ठेंस पहुँचती है I

'यमदीप' उपन्यास में पारिवारिक संबंधो में आनेवाली कटुता, बदलते पारिवारिक संबंध, किन्नरों के संदर्भ में परिवार प्रेम की समस्या, उनका अकेलापण, कामवासना के संदर्भ में किन्नरों में खुलेआम चर्चा, परिवार त्यागने के बाद किन्नरों का किया जानेवाला यौन शोषण, जीविका के लिए करना पडनेवाला देह-व्यापार, आर्थिक अभाव का सामना आदि विभिन्न समस्याओं का चित्रण मिलता है I जिंदगीभर उन्हें इन समस्याओं का सामना किसप्रकार करना पडता है इसका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है I

पारिवारिक संबंधों में कटुता :

किन्नर केंद्रित लगभग सभी उपन्यासों में पारिवारिक संबंधों में कटुता का चित्रण मिलता है I किन्नर होने के कारण परिवार मानो उनका दुश्मन बन जाता है I लोकलज्जा के डर से परिवार के सदस्यों को किन्नर बच्चों की उपस्थिती खलती है I अंतः इनके साथ प्रेम से व्यवहार नहीं किया जाता I जिन किन्नर बच्चों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार किया जाता है उनका जीवन सुकर बन जाता है I किंतु वास्तविकता यह है कि अधिक तर किन्नर बच्चों की उपेक्षा ही की जाती है , उन्हें कलंक समझा जाता है I परिणामस्वरूप परिवार के साथ कटुतापूर्ण रिश्ता बन जाता है I

'यमदीप' में पारिवारिक सबंधों में कटुता का चित्रण लेखिका नीरजा माधव ने नाजबीबी के माध्यम से किया है I प्रस्तुत उपन्यास की नाजबीबी किन्नर है, इसलिये उसे पारिवारिक संबंधों की कटुता का सामना करना पडता है I नाजबीबी किन्नर होने के कारण भाई नंदन और भाभी उसके साथ उपेक्षित व्यवहार करते है I इसी उपेक्षा के चलते नाजबीबी हमेशा के लिए घर छोडकर चली जाती है लेकीन फिर भी उनकी उपेक्षा कम नही होती I पारिवारिक संबंधो में कटुता इतनी बढ जाती है कि भाई और भाभी के डर से मा पिताजी नाजबीबी के साथ फोन पर खुलकर बात भी नही कर सकते I नाजबीबी जब अपनी बिमार माँ को देखने आती है तब भैय्या और भाभी उसे घुरकर देखते है इस संदर्भ में लेखिका लिखती है – "एका–एक दो जोडी आँखे उसके पुरे शरीर में बछी की तरह चुबने लगी थी .....ये आँखे भैय्या-भाभी कि थी जो कह रही थी की तू किससे पुछकर हमें बदनाम करने इस मुहल्ले में भी आ गयी .....मम्मी की आँखो में आंसू उमड रहे थे और वे विवशता में उसे लहुलहान होते देख रही थी I"[1] अंतः एक पिता छोड भाई-भाभी के साथ सगे-संबंधी भी उसकी नफरत करते है I प्रेम के दो शब्द तो दूर बल्कि उसे ज्यादा से ज्यादा दुःख हो ऐसी ही बाते कहते है I नाजबीबी अर्थात नंदरानी के कारण उसकी बडी बहन नंदिनी की शादी तय होने में दिक्कत आ जाती है I अंतः नंदन को इस बात का बहुत गुस्सा आता है I इसके लिए वह नाजबीबी को ही जिम्मेदार ठहराता है I उसकी घृणा करता है I वह कहता है, "लगता है नंदरानी के कारण घर में किसी की शादी तो नही हो पाएगी समाज में भी हम मुंह दिखाने के लायक नहीं रहेंगे I"[2] कुछ भी भला बुरा कहते समय वह नंदरानी के मन का विचार जरा भी नही करता I अपनी इस बातों का नंदरानी के मन पर क्या असर होगा वह जरा भी नही सोचता I परिणाम यही होता है कि नंदरानी घर छोडने के लिये मजबूर हो जाती है I उसके सामने और कोई रास्ता नही होता I नंदरानी घर छोडकर चली जाती है और किन्नर समुदाय में शामिल होती है I किंतु उसे घर की याद बहुत सताती है I दिल पर पत्थर रखती है और घर वापिस जाना उचित नही समजती I नाजबीबी माँ-पिताजी से बात करने के लिए घर पर फोन करती है , लेकीन नंदन को उसका घर पर फोन करना भी अच्छा नही लगता उसे गुस्सा आता है और कहता है, "देखो, तुम्हारा बार –बार टेलिफोन करना, या इस परिवार से संबंध रखना, हमारी इज्जत तो बढाता नही, उलटे तुम्हे भी दुःख होता है और मम्मी –पपा को भी I तुम परिवार में रह नही सकती, हम रख भी नही सकते I इसलिये यह समझ लो तुम की अनाथ हो I कोई नही तुम्हारा दुनिया में I"[3] एक तरफ माँ-बाप को मिलने को तडफ और दूसरी तरफ भाई का क्रोध इस संघर्ष का सामना करना नाजबीबी को काफी दुखद होता है I किन्नर परिवार तथा समाज के प्रेम के लिए ललचाते है लेकीन उन्हें प्रेम नही मिलता I हर जगह उन्हें संघर्ष करना पडता है, उपेक्षा सहनी पडती है I नाजबीबी को भी इसी संघर्ष का सामना करना पडता है I चाहते हुए भी नाजबीबी के मां-पिताजी उसे अपने साथ घर रख नही सकते I एक बात लोकलज्जा की और दूसरी बात बेटे का विरोध I अपनी पीडा को साझा करते हुए नाजबीबी पत्रकार मानवी से कहती है, "मेरे पापा अभी जिंदा है, मेम साहब I कई बार मिलाया, पर भैया उठा लेता है I वह नही चाहता कि मै उन लोगों से कोई संबध रखूं I इसलिये वह पापा से बात नही करता I"[4] घर में जब पता चलता है कि नंदरानी किन्नर है, तब से उसके प्रती देखने का दृष्टीकोन ही बदल जाता है I वह घर में सबके साथ होकर भी अकेलापन महसूस करती है I भाई की बातों से तंग आकर घर छोडकर किन्नर समुदाय में सामील होती है, लेकीन यहाँ पर भी वह अकेलापन ही महसूस करती है I वह बैचेन हो जाती है उसकी बैचेनी लेखिका ने इसतरह चित्रित की है, "भलेही

घर में अपमान हो , पर अब मम्मी से मिले बिना उसे चैन नही आएगा I" एकबार गले से लिपटकर रो लेती तो संतोष हो जाएगा I मम्मी की विदा होनेवाली आत्मा से वचन ले लेगी कि अगले जन्म में भी वही उसकी मां बने .....पर इसतरह उससे अलग रहने के लिए नहीं.....अपने साथ रखे मम्मी उसे .....अपने आंचल की छांह में बहुत धूप लगती है अलग रहकर ....." [5]. नाजबीबी का खुद से संघर्ष हो जाता है I एक ओर में मां-बाप एक ओर भाई और एक ओर अपना अधुरा देह I जिसे न समाज स्विकारता है न परिवार स्विकारता है I अधुरा देह होने के कारण अर्थात किन्नर होने के कारण हमेशा उन्हें परिवार और समाज से संघर्ष करना पडता है I परिवार से बहिष्कृत किन्नर अपने किन्नर समुदाय में शामिल होते है और वही उनका परिवार बन जाता है I जीवन में संघर्ष करते समय उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पडता है I उसमे आर्थिक समस्यां यह प्रमुख होती है I अशिक्षा, अज्ञान तथा उनकी किन्नर प्रकृती के कारण उन्हें कोई कामपर नही रखता I अंतः उन्हें तालिया पिटकर , कमर मटकाते, विचित्र हरकते करते हुए मिली नेग पर ही अपनी जीविका चलानी पडती है I अंतः किन्नरो को बहुत ही खस्ता हालत में जीवन बिताना पडता है I लेकीन आज की 'अपार्टमेंट' संस्कृती के कारण किसके घर में बच्चापैदा हुआ है यह पता भी नही चलता ..... अंतः नेग भी ठीक से नही मिलती I

अंतः निष्कर्ष रूप में यही कहना होना कि किन्नर विभिन्न समस्याओं से जुझते हुए , संघर्ष करते हुए अपनी जीविका चलाते है I अंतः इन समस्याओं की शुरवात परिवार से ही होती है I परिवार की उपेक्षा चलते किन्नारोंका परिवार में जिना मुश्किल हो जाता है I उनकी द्वंद्व, उनका संघर्ष, उनकी बैचेनी उन्हें शांती से जिने नही देती I इसी संघर्ष को, इसी समस्याओं को निरजा माधव ने 'यमदीप' के माध्यम से चित्रित किया है और हमे सोचने को मजबूर किया है I

संदर्भ:

1. यमदीप , - नीरजा माधव, पृ. 107
2. यमदीप , - नीरजा माधव, पृ .248
3. यमदीप , - नीरजा माधव, पृ.82
4. यमदीप , - नीरजा माधव, पृ.216
5. यमदीप , - नीरजा माधव, पृ.84

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

बारेला समाज में प्रचलित अनोखी एवं सर्वश्रेष्ठ परम्पराएं

डॉ. श्रीमती सेवन्ती डावर
सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय कन्या महाविद्यालय, खरगोन

आदिवासी ऐसे परिवारों का समूह है जिसका अपना एक विशेष नाम होता है। उसकी अपनी सामान्य भाषा या बोली होती है,जिसका एक निश्चित भौगोलिक क्षैत्राधिकार होता है, जो कि एक ही प्रकार की परम्पराओं, मान्यताओं, रीतिरिवाजों एवं संस्कृति, पहनावा, पूजा-पाठ का पालन करते है तथा यह समूह अपना सामाजिक व राजनैतिक, न्यायिक दृष्टि से स्वतंत्र स्वशासन का संचालन करते हैं। 'आदिवासी शब्द आदि और वासी इन दो शब्दो से मिलकर बना है। आदि शब्द का अर्थ प्रारम्भ से तथा वासी शब्द का अर्थ निवास करने वाले। अतः आदिवासी शब्द का अर्थ प्रारम्भ से निवास करने वाले। किसी देश प्रदेश तथा विदेश में प्रारम्भ से निवास करने वाले आदिवासी हैं। आदिवासी शब्द के अनेक समानार्थी शब्द है। उन प्रचलित समानार्थी शब्दों को सामने रखना आवश्यक है। आदिवासी इस शब्द के लिए अंग्रजी में टाईब शब्द अधिक प्रचलित है इसके अलावा इंडिजिनस (देशज) एबोर्जिनल (देशज), प्रिमिटिव (आदिम) नेटिव (मूलनिवासी) बैंठ (आदि समूह कबीला) आदि प्रमुख है।

प्राचीन काल से ही आदिवासी समाज की संस्कृति एवं सभ्यता गौरवशाली रही है, वहीं गैर आदिवासियों के लिए आकर्षण एवं कौतुहल का विषय भी रही है। प्रकृति प्रेम एवं प्रकृति के सानिध्य में जीवन यापन करने वाला यह समाज प्रकृति पोशक एवं संरक्षक रहा है। प्रकृति से उसने उतना ही ग्रहण किया जितना उसे आवश्यक था। बारेला समाज के रीति रिवाज, परंपराऐं, प्रथाऐं, तीज-त्यौहार दार्शनिक, भावनाओं को समेटे हुए है। अनोखी इस दृष्टि से है कि भारतीय समाज के किसी भी वर्ग से यह अनुपम एवं अद्वितीय परंपराऐं है, जो अन्य किसी भी समूह में भिन्न दृष्टिगोचर है कि इनका सामाजिक संविधान बहुत ही सरल, लचिला, दुर्दार्शिता और परोपकार की भावना से परिपूर्ण है। उनमें प्रमुख प्रचलित परंपराऐं निम्नानुसार है :- दुर्दार्शिता

01. बच्चे का नामकरण :

दिन, समय और परिस्थिति के अनुसार किया जाता है। अर्थात देश, काल, समय और परिस्थितियों के अनुरूप नाम रखे जाते है। जैसे सोमवार को पैदा होने पर सुमारिया, होली पर जन्म लेने पर हुलियु , ज्यादा रोते हुए जन्म लेने पर रडतिया आदि। बार-बार बच्चे मर जाने पर टोटका करते है जैसे कुटवाल , ढेटकू,कुतरियू आदि नाम रखे जाते है।

02.वैवाहिक रीति-रिवाज :

अन्य समाज की भांति बारेला समाज में भी सबसे पहले एक परिवार मध्यस्था (भांगडिया) करता है तथा लडका लडकी को देखने जाता है तो वह सामने नहीं आती (जैसे की अन्य समाज में चाय नाष्ता लेकर आती है) है बल्कि शरमा कर भाग जाती है। ऐसी स्थिति में लडकी की माता उसे रोटी बनाने के लिए मजबूर करती है और लडके को रसोई घर में भोजन कराया जाता है, ताकि वह उसे देख सके,तथा बिना खाना खाऐ नहीं जाने दिया जाता है। अर्थात भोजन करना अनिवार्य है, तथा उसे शगुन के तौर पर एक या दो रोटी खाना ही पडती है (आधी या डेढ रोटी नहीं) इस प्रकार मर्यादित व्यवहार करने की सीख दी जाती है।

बारेला आदिवासियों में विवाह की तीन पद्धतीयां है :

पहली हुगलाय लाडी, दूसरी जुडावनीन लाडी (लडकी की बारात) ,तीसरी रूठु लागाडिन (हल्दी विवाह)। लडकी की बारात लेकर जाने की प्रथा केवल बारेला समाज में ही पाई जाती है और वधू मूल्य लिया जाता है गैर आदिवासियों में नहीं। अर्थात व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार विवाह करने के लिए सवतंत्र है, बाध्य नहीं जैसा अन्य जन समुदाय में होता है। हमारे समाज ने विवाह करने के लिए विकल्प दिए है।

03. हमारे समाज की अनूठी और महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि अंतिम संस्कार :

समुदाय विशेष का सबसे बडा पुत्र या छोटा पुत्र करता है एवं मुर्खाग्न देता है,संबंधित के पूत्र को बाल देने और अग्नि देने की परम्परा नहीं है। साथ ही उत्तर कार्य या बारवा (दहाडू) बारह दिन में करने की बाध्यता नहीं है, इसलिए कुछ लोग एक वर्ष में या अपनी सुविधा अनुसार बारवां करते है। समाज की दुर्दार्शिता ता ने ऐसी व्यवस्था दी है कि कोई भी व्यक्ति अपनी सुविधा, जिसमें पैसों की व्यवस्था हो, खेत-खलिहान,घर-आंगना खुले हो तब ही उत्तर कार्य किया जाता है। जिससे कार्यक्रम के लिए पर्याप्त जगह मिल सके। अर्थात घर के आसपास जगह खाली हो, क्योंकि बारिश में चारो तरफ फसल होती है, जिससे आयोजन में असुविधा होती है। एक महत्वपूर्ण प्रथा यह भी है कि शोकाकुल परिवार की आर्थिक मदद के लिए रूपये भेंट किए जाते है, जिससे वह मृत्यु भोज का आयोजन कर सके, तथा उसे कर्ज के तले दबना न पडें।

व्यक्ति के अंतिम संस्कार के दिन शमशान घाट पर हर व्यक्ति एक-एक रूपये की भेंट करता है, जिससे उस दिन उपस्थित लोगों का नाश्ता (सेव परमल, नुक्ति, दाली) कराया जा सके, क्योंकि दो दिन तक चुल्हा नहीं जलता है। इस कारण अल्पाहार कराया जाना आवश्यक समझा जाता है।

नवाई और दिपावली मोहल्लों और गांववार अलग-अलग दिवस को मनाई जाती है,जिससे वे आपस में स्नेह से भोज कर सके हर्षोल्लास के साथ बारेला समाज के त्यौहार में नवाई और दिपावली मोहल्लों और गांववार अलग-अलग दिवस को मनाई जाती है,जिससे वे आपस में स्नेह से भोज कर सके हर्षोल्लास के साथ नाच-गान हो सके तथा अपने रिश्तेदारों को आमंत्रित कर खुशिया बाट सके। एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इन तीज-त्यौहारों की तिथि समाज में सुख,दुख और समय परिस्थितियों को भी ध्यान में रखकर तय की जाती है, यदि किसी की मृत्यु हो जाती है या कोई गंभीर बीमारी हो तो भी त्यौहार की तिथि बदल दी जाती है। सामान्यतः अन्य वर्ग में ऐसा नहीं होता है।

04. होली का पर्व विशेष धूमधाम से मनाया जाता है :

इस त्यौहार के दिन दो सप्ताह पूर्व गुलालिया हाट लगता है। जिसमें विशेषकर गुलाल की खरीदी होती है। इस सप्ताह के बाद त्यौहारिया हाट शुरू होते है, जिसमें परिवार के मुखिया होली की पूजन सामग्री (नारियल, हार कंगन, खजुर, दाली) खाद्य पदार्थ गुड - तेल और परिवार के लिए नए कपडे खरीदे जाते है। इसके बाद भंगोरिया हाट लगते है। जिसमें केवल बसंत की मदशोही में ढोल मांदल की थाप पर नाचते है और एक दूसरे को स्नेह से गुलाल लगाते है। भगोरिया हाट के बाद उजाडिया हाट लगते है, अर्थात इन्हे हाटों में बहुत कम लोग हाट जाते है, क्योंकि भगोरिया हाट में सब उजड चुका होता है। सारे पैसे खर्च कर चुके होते है

05. घींचरी कुल देवी की पुजा:

प्रत्येक पर्व पर घींचरी (कुलदेवी) और खत्रीस (पूर्वजो) की ही पूजा होती है। प्रत्येक त्यौहार पर दाल-चावल ही बनते है, होली पर्व को छोड कर, यद्यपि इस दिन चावल तो बनेते ही है, तथापि विशेष पकवान भी बनाए जाते है।

सामुहिकता की भावना आदिवासियों में अति प्राचीन काल से देखी जा सकती है। शिकार करने, मकान बनाने, कुऑ खोदने या फिर खेत में काम करना हो, बारेला समाज में ढास प्रथा है जिससे बडे और अधिक समय तक किए जाने वाले कार्य कम समय और कम खर्च में किए जा सकते है। यह परम्परा केवल आदिवासी समाज में ही पाई जाती है, जिससे समाज में सहयोग परोपकार और एकता की भावना का विकास होता है।

आदिवासी परिवारों में महिलाऐं मासिक धर्म के समय भी खाना बना सकती है, इस दौरान किसी प्रकार का कार्य करने से रोका नहीं जाता है। वे उस समय भी सारे काम कर सकती है क्योंकि यह एक नैसर्गिक शारीरिक प्रक्रिया है। अतः उसके साथ अछूत जैसा व्यवहार नहीं किया जाता। महाराष्ट्र में स्थिति शबरी धाम मंदिर एम मात्र ऐसा आदिवासियों का मंदिर है, जहां रजस्वला स्त्रीयां भी दर्शन के लिए जा सकती है।

6 बारेला लोकोक्ति में जीवन दर्शन :

बारेला समाज में अनेकानेक लोकोक्तियां प्रचलित है, जिसमें एक लोकोक्ति में जीवन दर्शन समाहित है। इस समाज के पूर्वजों की वाचिक परंपरा में यह लोकोक्ति प्रचलित थी, लोकोक्ति में भी गूढ़ रहस्य छिपा हुआ प्रतीत होता है, इसे प्रकृति की नियति व प्राकृतिक चक्र कहे तो अतिशयोक्ती नहीं होगी।

अनक्षर होकर भी प्रकृति की इस नियति को समझने की निपूर्णता पूर्वजों में समाहित थी, इसे प्रकृति का आशीर्वाद ही कहा जा सकता है। लोकोक्ति में वास्तविक जीवन दर्शन है, अंततः यही सत्य है, सत्य ही सुंदर है और सुंदर ही ईश्वर (शुन्य शक्ति) हैं जीवन को सरलता से समझला ही दर्शन है, ओर दर्शन है तो प्राकृतिक शक्तियां है। जीवन चक्र बारेली लोकोक्ति के जीवन चक्र के समान प्रतीत होती है।

वाड़े-वाड़ेउंदरू जाय, चू उंदरू कौसलु ? नौवी कांटे तौसलू, ची नौवी कौसली ? पुरिया फूंके तौसली, चै पुरिया कौसला ? धुळा मा खेले तौसला, चू धुळू कौसलु ? धान उगाड़े तौसलु, चो धान कौसलो, हाण्डा मा रांदै तोसलो, चे हाण्डा कौसला, मानसे घोडे तौसला, चे माण्से कौसला? चे मानसे कौसला ? माछा मारे तौसला चे माछा कौसला? आखटा मा भूंजे तौसला, चो आखठो कौसलो? खाणों रांदे तौसलो, चो खाणों कौसलो? माण्से खाय तौसलो, चे माणसे कौसला ? शिकार कोरे तौसला ? चो शिकार कौसलों ? बोयड़ा मा राहेय तोसलो, चू बोयडू कौसलू ? झाड़े रोहय तोसला, चे झाड़े कौसला ? दोवा दारू कोरे तोसला, ची दोवा कौसली ? रूगो मा पिये तोसली, चू रूग कौसलू ? मांदला माण्से रोहय तोसलु, चे मांदला कौसला?

प्रस्तुत लोकोक्ति में अनवरत प्रश्न - उत्तर चलता रहता है। प्रश्न-उत्तरी अर्थात जन्म-मरण का चक्र चलता है।

संदर्भ सूची :

01. पत्रिका टेसू- समाज से संवाद का सेंतू
02. आदिवासी- समाज, साहित्य और राजनीति
03. मध्यप्रदेश की जनजातियॉ- डॉ. शिवकुमार तिवारी

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

सागर लहरें और मनुष्य' उपन्यास में चित्रित दलित मछुओरों का यथार्थ जीवन

डॉ. शाहीन अजज जमादार
हिंदी विभाग प्रमुख, मिरज महाविद्यालय, मिरज, जिल्हा. सांगली
jamadarshaheen79yahoo.com

प्रस्तावना:

जहाँ तक मानव-जीवन की समस्याओं और उसके यथार्थ आकलन का प्रश्न है, उपन्यास उनके लिए सर्वथा उपयुक्त विधा है। आधुनिक काल के अन्तर्गत पूँजीवादी सभ्यता ने जो साहित्यिक भेंट दी उनमें उपन्यास सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। उपन्यास हमें जीवन के नजदीक लेकर जाता है। यानी उपन्यास में हमारा साक्षात्कार जीवन से, जीवन की समस्याओं से है, जीवन के प्राण प्रश्नों से तथा जीवन के बुनियादी सरोकारों से होता है। यदि कोई लेखक समाज की किसी रूढि, अंधविश्वास, विषमता, अन्याय इत्यादि पर कुठाराघात करना चाहता है तो उपन्यास उसके लिए सर्वथा समीचीन विधा रहेगी। हमारे समाज में उनके ऐसी जातियाँ है जो समाज के मुख्य धारा से वंचित हैं। ऐसी जातियों पर विचार करना यानी उनके जीवन पर प्रकाश डालना जरुरी है।

एक चीनी कहावत है- 'अगर आप एक साल की योजना बना रहे हैं तो मक्का उगांए, अगर आप तीस साल की योजना बना रहे हैं तो वृक्ष लगाइये, लेकिन अगर आप सौ साल की योजना बना रहे है तो इन्सान उगांए।' ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रेरणास्पद कहावत प्रबंधन के लिए जितनी प्रासंगिक है साहित्य के दायित्वों के लिए भी कम गंभीर नहीं है। जैसा कि, 'साहित्य की मूल चिंताओं और चिंतन में इसी 'इंसान' के नवनिर्माण की अवधारणा बसा करती है। प्रश्न यह नही है कि किस भाषा या वेशभूषा को संबोधित करे साहित्य, बल्कि प्रश्न यह है कि साहित्य का इंसान-निर्माण का यह देय किस प्रकार न केवल जीवित बल्कि गर्भस्थ इनसानों तक जाए। असल में तो तमाम इनसानी नसल के लिए ही उगाई जाती है, साहित्य की विशाल फसला'[१] 'सागर लहरें और मनुष्य' यह उदयशंकर भट्ट जी का एक आँचलिक उपन्यास है, जिसमें लेखक ने बम्बई के समीपवर्ती सागर तट पर स्थित बरसोवा नामक बस्ती के मछुआरों के जीवन को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्य में उदयशंकर भट्ट एक अच्छे कवि और नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने मछुआरों के समग्र जीवन पर उपन्यास लिख कर हिन्दी साहित्य में अपनी अलग पहचान बना दी। उनका यह उपन्यास एक अछुते विषय को लेकर है। जिस में उन्होंने बरसोवा के बस्ती के लोगों पर अपनी लेखनी उठाई है। जिससे उनके जीवन का यथार्थ दर्शन देखने मिलता है।

यह उपन्यास कोली जाति पर लिखा हुआ पहला उपन्यास है, लेखक कहते हैं कि, 'इस जाति को (मछुआरों की जाति को) कोळी कहा जाता है।'[२] इस उपन्यास में लेखक ने कोली जाति की अशिक्षा, गरीबी, और उनके शोषण का यथार्थ चित्र अंकित, किया है। वस्तुतः यह कोळी जाति समंदर के तट पर अधकच्चे घरों में रहते हैं। जहाँ कोई प्राथमिक सुविधांए नहीं होती बल्कि उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पडता है। सामन्य रूप से कोलियों को जीवन भयंकर, दरिद्रतापूर्ण होता है। इन सब पर प्रकाश डालने का काम उदयशंकर भट्ट ने इस उपन्यास में किया है। यह उपन्यास आँचलिक उपन्यास है इसलिए कोलियों का समग्र जीवन का लेखा जोखा चित्रित हुआ है।

इस उपन्यास में कोली जीवन जो दलित है उनका एक नया पक्ष उद्घाटित हुआ है। जो कोली मुंबई की सबसे पहले निवासी जाति है। फिर भी आज उन्हें अनेक संघर्षों का सामना करना पड रहा है। उपन्यास में कोली जाति की समग्र सभ्यता और संस्कृति को उसके जीवंत रूप से प्रस्तुत किया गया है तथा उनके सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और धार्मिक सरोकारों का एक विशेष दृष्टि से आकलन किया गया है। बरसोवा का मूल नाम विसावा है जो अन्धेरी से पश्चिम में लग-भग तीनचार मील की दूरी पर है। इस जाति की दो उपजातियाँ हैं। १. थलकर २. शिवकर दोनों जातियाँ दिखने में एक जैसी है। इन दोनों में रोटी का व्यवहार है लेकिन बेटी व्यवहार नही है।

उपन्यास में अनेक पात्र हैं। रत्ना इस उपन्यास की नायिका है। बाकी के सारे पात्र समयानुकूल अपना परिचय देते है।

१. बरसोवा जाति की स्त्रियाँ:

बरसोवा जाति की स्त्रियों अपने आप में समर्थ होती हैं। उनके घरों में पुरुषों पर स्त्रियों का वर्चस्व होता है। आर्थिक लेन-देन तथा संचालन भी स्त्रियों के हाथ में रहता है। स्त्री को घर की लक्ष्मी समझा जाता है। घर में हर काम का फैसला घर की स्त्री के हाथ में ही होता है। कोली पुरुषों का बहुत दिनों तक समंदर में रहने की वजह से पूरा घर स्त्रियाँ ही सभाँलती हैं। पुरुष मछली पकडते हैं और स्त्रियाँ उनको बेचती है।

२. वेशभूषा:

कोली पुरुष प्रायः बीनयाइन या कमीज पहने रहते हैं। नीचे घुटनों से उपर एक तिकोना रंगीन तौलिया लपेटे रहते हैं। तो स्त्रियाँ रंगीन लाँगदार साडी या धोती पहनती हैं। उपर के भाग में चोली रहती है। स्त्रियाँ बालों का जुडा बानती है और उसे गजरे से सजाती हैं। उनके कानों तथा गले के अभूषण समंदरी जीवों के समान होते हैं। तो पावों में कडे होते हैं।

३. व्यवसाय:

कोली समाज का मूल व्यवसाय मछली पकडना है। अतः कोलियों में नाव का विशेष महत्त्व होता है। जिस के पास नाव होती है वह सम्माननीय माना जाता है। इसलिए सम्पन्नता का परिणाम भी यहाँ नावों के हिसाब से देखा जाता है। ये लोग समंदर में जाने से पहले वह अपने नावों को पूजते है। फिर मछलियाँ पकडने जाते हैं। उनका पूरा व्यवसाय मछलियों पर ही होता है। उनके रोज मर्रा के भोजन में मछली चावल ही होता है।

४. विवाह:

बरसोवा समाज की एक खास विशेषता यह है कि पुरूषों पर स्त्रियों का वर्चस्व पाया जाता हैI विवाह के समय लडकी के बजाय लडकेवालों की खुब खुशामत करनी पडती हैI अपने व्यवसाय की वजह से इस समाज की कोई भी लडकी अविवाहित नही रहतीI संक्षेप में कहा जाये तो, 'विवाहित सम्बधों में पैसों की लेन-देन कोई स्वरूप परंपरा नहीं है, परंतु यदि तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाए तो उक्त प्रथा को सवर्ण समाज की प्रथा से बेहतर ही समझा जाएगा, क्योंकि इसके कारण स्त्रियों का शोषण और दमन नहीं होगाI'[३]

५. गरीबी, अशिक्षा और शोषण:

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने कोळी जाति की गरीबी, अशिक्षा एवं शोषण का यथार्थ चित्रण किया हैI इनके दारिद्रता का चित्रण इस प्रकार हुआ है, 'इट्ठा के घर चार दिन से दिया जलाने के लिए केरोसीन नहीं थाI उसकी माँ तीन दिन से भूखी थीI इट्ठा की इच्छा चिउडा खाने की हुई तो जागला कहता है, चिउडा क्या हम लोग कूँ खाने की चीज है? अमीर आदमी खाता है चिउडा भजियाI'[४] उसी प्रकार इस जाति में अशिक्षा और गरीबी के कारण उनका शोषण हर समय होता हैI गरीबी से बेजार उनकी स्त्रियाँ शरीर के व्यापार को श्रम की तरह स्विकार कर लेती हैI वैसे कोळी समाज में यौन पवित्रता या नैतिकता को महत्व नहीI इन के ज्यादा तर अवैध सम्बंध पाये जाते हैंI इस सम्बंध में स्वच्छंदता एवं स्वतंत्रता दृष्टिगत होती हैI उपन्यास में एक स्थान पर इस प्रकार वर्णन हुआ है, 'बंसी के घर आने से पहले विठ्ठल ने जवानी में कई खेल थें, कई औरतों से प्रेम किया थाI इट्ठा माहिम के एक मछुए के यहाँ रह चूकी हैI रत्ना के घर के नीचे की मंजिल में एक परिवार में एक कुमारी लडकी के गर्भ रह गया थाI'[५] इस प्रकार उनके अवैध सम्बंध का वर्णन हुआ हैI उसीप्रकार उनकी गरीबी का फायदा उठा कर कई इसाई पादरी उन लोगों का धर्म परिवर्तन करा देते हैI उस का वर्णन उपन्यास में लाखा की बेटी के धर्म परिवर्तन के चित्र से अंकित होता हैI

उपन्यास की नायिका रत्ना बरसोवा के बस्ती में पलकर बडी होती हैI लेकिन वह मुंबई की चकाचौध नागरीय जीवन से आकर्षित हैI अतः वह मुंबई जाकर नर्स बनती हैI वही किसी डॉक्टर के हृदय को जीत लेती हैI यहाँ रत्ना पढ-लिख कर सही रास्ता चुनती हैI उसी तरह सभी स्त्रीयों को शिक्षा ग्रहण करना चाहिएI जब ये स्त्रिया पढीगी तो आगे बढेगीI

आज मुंबई आधुनिकता का शिखर चूम रही हैI समंदर में बडे बडे ब्रिज बनाये जा रहे हैंI जिस की वजह से तट पर रहने वाले मछवारों के घरों पर आफत आन पडी हैI यह उनकी सब से बडी समस्या बनती जा रही हैI उसका उपाय होना जरुरी हैI

निष्कर्ष:

संक्षिप्त में कहा जाता है कि बरसोवा के मछुवारे मुंबई के सबसे पहले नागरिक हैI ये समुंदर के तट पर रह कर मछलियाँ पकडने और बेचने का व्यवसाय करते हैI ये जाति दलित जाति हैI इन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड रहा हैI सरकार को इन मछवारों पर ध्यान देकर इनकी समस्याओंका समाधान करना चाहिएI आज इनकी बस्तीको उजाडा जा रहा है तइसलिए इन लोगोंको ऐसी नई बस्ती देकर उन्हे फिरसे बसाना जरुरी हैI जहा उनका व्यवसाय फिरसे चल पडेI ऐसे समाज को मुख्य धारा से जोडना हम सब का कर्तव्य हैI इस का यथार्थ वर्णन हिन्दी साहित्य में उदयशंकर भट्ट ने किया हैI

संदर्भ सूची:

1. समकालीन साहित्य समाचार- अंक १०, अक्तुबर २०११, पृ. ४
2. सागर लहरें और मनुष्य- उदयशंकर भट्ट, पृ.१०
3. दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास- डॉ. एन. एच. परमार, पृ. १३२
4. सागर लहरें और मनुष्य- उदयशंकर भट्ट, पृ.८५
5. वही – पृ. क्र. १८७
6. Internet

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue. Mar - Apr 2022

हिन्दी साहित्य : दलित एवं आदिवासी विमर्श

डॉ.शिवकांता रामकिसन सुरकुटे
हिंदी विभाग, दयानंद कला महाविद्यालय, लातूर
ई-मेल : surkute05@gmail.com

दलित-विमर्श नया है, लेकिन आदिवासी विमर्श की परिपाटी काफी पुरानी है | इसकी सशक्त वाचिक परंपरा रही है और यह अब लेखन के धरातल पर उतर रही है | इसने कविता को अपना मुख्य हथियार बनाया है क्योंकि आज भी आदिवासी समाज का बडा हिस्सा अशिक्षित एवं अभावग्रस्त है तथा गरीबी एवं भुखमरी का शिकार है |

‘ दलित विमर्श ’ का सामान्य अर्थ पीडित शोषित दबाए गए लोगों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता एवं जाग्रति से है | दलितों के बारे में किया गया विचार ही दलित विमर्श कहलाता है | सदियों से सामन्ती परंपरा सामाजिक विसंगतियों की दीवार को ढहा कर स्वाभिमान के महल का निर्माण करना दलित विमर्श का ही परिणाम है |

दलित का तात्पर्य- “ समाज के उस पददलित वर्ग से है जिसे सदियों से ‘ अछुत ’ कहकर उपेक्षित किया गया, हर प्रकार से उसका शोषण किया गया, उसे कोई अधिकार नहीं दिए गए, शिक्षा से वह वंचित रही और उसकी इच्छा शक्ति को पनपने नहीं दिया गया | ”[1]

हिन्दी में ‘दलित विमर्श का प्रारंभ प्रसिध्द कहानी पत्रिका सारिका के दो ‘ दलित विशेषांकों ’ से माना जाता है जो क्रमश:अप्रैल 1975 एवं मई 1975 में निकले गए | हंस पत्रिका में भी इसके कर्ता-धर्ता राजेन्द्र यादव दलित विमर्श की चर्चा बराबर करते रहे हैं | हिन्दी के दलित कथाकारों में डॉ. एन.सिंह, ओम प्रकाश वाल्मीकि, रामशिरोमणि, जयप्रकाश कर्दम, माता-प्रसाद , अरविन्द राही, मलखन सिंह, मोहनदास, रघुवीर सिंह आदि के नाम लिए जा सकते है |

दलितों व्दारा लिखी गई ये कहानियां उनके स्वानुभूत अनुभवों पर आधृत होने के कारण उस सामाजिक अन्याय का घिनौना चेहरा यथार्ना में प्रस्तुत करती है जो समाज में ग्रामीण स्तर पर अब भी किसी न किसी रुप में विद्यमान है | यद्यपि रेणुजी ने अपनी कहनियों में इसे काफी पहले किसी न किसी रुम में अभिव्यक्ति देनी प्रारंभ कर दी थी | “ ‘उच्चाहन’ कहानी में ‘विलसिया’ (रामविलास) इसी दलित वर्ग का पात्र है जो धन कमाकर गांव में लौटा है तो साथ में शहर की चेतना भी लाया है जहां दलित का तिरस्कार नहीं होता | मिसर को जली-कटी सुनाकर जैसे उनका जहर दांत उसने उखाड दिया था | छुलाछूत का जो विष जाति व्यवस्था में गहराई तक व्याप्त है उसके दुष्परिणाम दलितों को भोगने पडे हैं, इसमें दो राय नहीं है | ”[2]

प्रेमचंद की ‘ सद्गति ’ कहानी में दुखी चमार की जो अधोगति दिखाई है उसे दलित चेतना का उत्स माना जा सकता है “ दुखी की जीवन पर्यंत की सेवा, भक्ति, श्रध्दा का कैसा फल उसे पुरोहित जी ने दिया है – इसे पढकर प्रत्येक सहदय की आंख डबडबा जाती है | ”[3]

‘ दूध का दाम ’ कहानी में प्रेमचंद जी ने गैर दलितों की धूर्तता एवं पाखण्ड के चक्र में फँसे दलित बालक के करुण यथार्थ का चित्रण किया है जो हर बार घोडा बनने से इसलिए इन्कार करता है, क्योंकि वह सवर्णो की चालाकी समझ चुका है | इस कहानी में गैर दलितों की अवसरवादिता अभिव्यक्त हुई है | जमीदार का बेटा मंगल की माँ का स्तनपान करके बडा हुआ है, पर बडा होने पर वही मंगल भंगी जाति का होने के कारण अस्पृश्य है | दुध का दाम उसे कुते की भाँति जूठन देकर चुकाया जाता है |

प्रेमचंद ने ‘ कर्मभूमि ’ नामक उपन्यास में दलितों के मंदिर-प्रवेश का समर्थन किया है | वे दलितों के प्रति भेद-भाव का दोषी समाज को मानते हुए दलितों में क्रांन्ति उत्पन्न करना चाहते थे | उन्होंने भरपूर प्रयत्न किया की दलित अपने अधिकारों के प्रति जागरुक हो | ‘ कर्मभूमि ’ में डॉ,. शान्ति कुमार कहते है- “ क्या तुम ईश्वर के घर से गुलामी का बीडा लेकर आये हो ? तुम तन-मन से दुसरों की सेवा करते हो, पर तुम गुलाम हो | तुम्हारा समाज में कोई स्थान नहीं | तुम बुनियाद हो | तुम्होर ही ऊपर समाज खडा है, पर तुम अछुत हो | तुम मंदिरों में नहीं जा सकते | ऐसी अनीति इस अभागे देश के सिवा और कहाँ हो सकती है ? क्या तुम सदैव इसी भाँति पतित और दलित बने रहना चाहते हो ? | ” [4]

अमृतलाल नागर ने ‘ नाच्चौ बहुत गोपाल ’ में सामाजिक विषमता के साथ संवाद करता एवं अस्तित्व के लिये संघर्षरत दलित मध्य वर्ग चित्रित है | उनका मानना है कि दलित (भंगी) समाज के शोषण और दमन का कारण समाज निर्मित व्यवस्था है |

समकालीन हिन्दी साहित्य में दलित सन्दर्भों की दृष्टि से शैलेश महियानी का नाम उल्लेखनीय है | अहिंसा, जुलूस, हारा हुआ, संगीन भरी संध्या, माँ तुम आओ, अलाप, लाटी आदि कहानियाँ दलित जीवन संदर्भों से सम्बन्धित है |

‘ हत्यारे ’ शैलेश महियानी के कहानी में दलितों की भावनाओं को भडकाकर राजनीति करनेवाले नेताओं की कुत्सित चेष्टाये अनावृत्त हुई हैं | इस कहानी में हरपल चन्द्र अपनी बिरादरी को क्रान्ति का आहवान करता चित्रित हुआ है, “ तो मैं आप लोगों से कह रहा था कि हम हरिजन भाइयों पर जोर जुल्म की हुकूमत चलाने के वे नादिरशाही जमाने गुजर चुके, जो हमारे बाप-दादाओं के पीठों पर अपने जालिम निशान छोड गये हैं | ..... अब वक्त आ गया है कि हम हरिजन दुनियाँ में अपने नामो निशान छोड जाये ” | [5]

आदिवासी विमर्श – प्रेमचंद भले ही आदिवासी रचनाकार न हो, पर उन्होंने अपनी रचनाओं के जरिये उस महाजनी सभ्यना के विरुध्द आवाज उठाई जिनका आदिवासी जीवन एवं समाज में हस्तक्षेप आज भी जारी है और जो आदिवासी दमन एवं शोषण के मूल में मौजूद है | इन महाजनों की जडे आदिवासी क्षेत्रों में न होकर सेमरी एवं बेलारी जैसे गाँवों में हैं और प्रेमचंद इनकी इन्हीं जडो पर प्रहार करते हैं | इसीलिए केदार प्रसाद मीना ने सही ही कहा है कि “ प्रेमचंद, रेणु, संजीव और रणेंद्र आदि का साहित्य आदिवासी साहित्य न सही, पर आदिवासियों की समस्याओं पर लिखा गया महत्त्वपूर्ण साहित्य है ”| [6]

वे इस निष्कर्ष के साथ उपस्थित होते हैं कि उनकी रचनाओं में आदिवासी जीवन की झलक उतकी ही है, जितनी उस जगह पर आदिवासी आबादी है | उनका यह भी प्रश्न है कि यदि आज की 'आदिवासी राजनीति छोटा नागपुर कारतकारी अधिनियम' में संशोधन के जरिये आदिवासियों की जमीन खरीद-बिक्री के मार्ग को प्रशस्त कर रही है, तो इसमें कोई प्रेमचंद क्या कर सकते है ? इसी प्रकार अगर आदिवासी विमर्श दलित-विमर्श का रास्ता अखियार करता है, तो किसी दिन फणीश्वरनाथ रेणु के बारे में भी कहा जा सकता है कि उन्होंने ' मैला आँचल ' में संथालों को पिटता दिखा कर आनंद प्राप्त किया या उन्हें अपमानित किया है, जो कि सत्य नहीं है |

सदगति कहानी आदिवासी संदर्भ में प्रेमचंद के लेखन में आशा की किरण की तरह देखी जा सकती है | इस कहानी में विद्रोही चेतना से लैस एकमात्र पात्र है चिखुरी गोड | वह दुखी को पंडित घासीराम के शोषण से बचाने की हर संभव कोशिश करता है, लेकिन घर्मसत्ता के आत्मसातीकरण से उपजे भय के कारण दुखी उससे निकल नहीं पाता और त्रासद मौन का शिकार होता है | उसकी मौत के बाद चमरौने में जाकर वही दलितों को इस अन्याय की खबर देता और आंदोलित करने की कोशिश करता है |

" खबरदार, मुर्दा उठाने मत जाना | अभी पुलिस की तहकीकात होगी | दिल्लगी है एक गरीब की जान लेली | पंडितजी होंगे, तो अपने घर के होंगे | " [7] इसके बाद पुलिस के भय से कोई भी दलित लाश उठाने नहीं जाता | इस तरह यह कहानी हिंदू धार्मिक संस्कारों से मुक्त एक गोंड के माध्यम से ब्राह्मणवाद के खिलाफ लडाई की कहानी है, जिसमें दलित और आदिवासी एकता की जरुरत की ओर संकेत भी है |

आदिवासी समस्याओं पर रणेंद्र और संजीव जैसे अच्छे लेखकों की रचनाओं के पात्रों की ऐसी डायरियों, जिनमें आदिवासी समाज का दर्द दर्ज है, को यह उनकी निजी डायरी कह कर इसके बहाने संपूर्ण रचना को खारिज कर रहे हैं | संजीव –रणेंद्र के आदिवासी इलाकों में काम करनेवाले पात्र सुदीप्त और किशन आदि सभी दिकू नहीं कहे जा सकते | इनकी डायरियाँ महज उनकी निजी डायरियाँ नहीं है | ये आदिवासी विस्थापन और उसके खिलाफ संघर्ष के दस्तावेज भी हैं, क्योंकि न तो सरकारे उन्हें दर्ज करती हैं और न विस्थापित करनेवाली कंपनियाँ | निरक्षर आदिवासी तो दर्ज कर ही नहीं सकते | ऐसे में इन लेखकों की रचना और इनके पात्रों की डायरियों का महत्व बढ जाता है | इसलिए इन लेखकों के साहित्य को ' दिकू ' साहित्य कहना आदिवासी विमर्श का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा | जनसत्ता में प्रकशित आलेख आदिवासी विमर्श के रोडे, के जरिये केदारप्रसाद मीणा आदिवासी विमर्श को सहानुभुती-समानुभूति, के उस विवाद में उलझने से बचने की सलाह देते है, जिसने दलित-वमिर्श को साहित्य की राजनीति में ले जाकर उलझा दिया |

पिछले दो दशकों में हिन्दी संसार में आदिवासी लेखकों, विशेषकर झारखंड क्षेत्र के लेखकों ने अपनी पैठ और पहचान बनाई है | आज आदिवासी कलम की धार आँचलिक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर तक असरदार बन चुकी है | हेराल्ड एस-टोप्पो और रामदयाल मुंडा ने पत्र-पत्रिकाओं में अपनी नियमित उपस्थिति के जरिये ' जंगल-गाथा ' से लेखक-पत्रकार के रुप में अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है | सामाजिक राजनीतिक विश्लेषण के लिहाज से एन.ई.होरो, निर्मल मिंज, रोज केरकेट्टा, प्रभाकर तिर्की, सूर्य सिंह बेसरा और महादेव टोप्पो आदि का योगदान अर्थपूर्ण और महत्वपुर्ण है |

आदिवासी साहित्य के उभार की प्रक्रिया को और अधिक स्पष्ट करणे हुए गंगा सहाय मीणाने कहा है कि – "1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियों से तेज हुई आदिवासी शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोधस्वरुप आदिवासी अस्मिता और अस्मित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी साहित्य है "| [8]

अंत में इतना ही कहा जा सकता है हिन्दी साहित्यकारों ने दलित और आदिवासी विमर्श की भावनाओं को अभिव्यक्त किया है और कही जगह पर वास्तविकता का चित्रण भी किया है तो कही पर जागरुकता लाने का प्रयास किया है |

संदर्भ :

1. डॉ. अशोक तिवारी-प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, पृ.136
2. वही, पृ.137
3. वही, पृ.137
4. कर्मभूमि –प्रेमचंद भाग-2-पृ.19
5. शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ-3,प्रकल्प प्रकाशन, पृ.168.
6. Sarthaksamwad.blogspot.com-पृ.9
7. वही, पृ.10
8. वही.पृ.9

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

हिंदी साहित्य : किसान विमर्श

प्रा.कोकाटे शोभा नानाभाऊ
सहयोगी प्राध्यापक, बी.जे.एस. महाविद्यालय वाघोली ,पुणे
Email- kokateshobha1@gmail.com

प्रस्तावना:

भारत एक कृषि प्रधान देश है| भारत देश में सत्तर प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है| इनका पूरा जीवन खेती पर ही निर्भर रहता है। हिंदी उपन्यासकारों ने विविध विषयों को लेकर विभिन्न प्रकार के उपन्यासों की रचना की| हिन्दी साहित्य के उपन्यासकारों ने सामाजिक और आँचलिक विषयों को लेकर उपन्यास लिखे| उन्होंने किसान जीवन को प्रमुखाता दी, तथा भारतीय किसान जीवन की परिस्थितियों का यथार्थ अंकन किया है।

हिन्दी उपन्यासों में किसान जीवन का सर्वप्रथम उपन्यास शिवपूजन सहाय का 'देहाती दुनिया' है| जिसमें भोजपुर प्रदेश के ग्रामीण अंचल का चित्रण किया है। इसके बाद निराला के 'बिल्लेसुर बकरिहा' में किसान जीवन का चित्रण मिलता है। निराला के बाद मुंशी प्रेमचन्द का 'गोदान' उपन्यास का नाम लिया जाता है, जो आज भी प्रासंगिक और कालजयी है। गोदान के बाद 'रंगभूमि' तथा 'कर्मभूमि' में भी किसान जीवन का चित्रण किया है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में भी जमींदारी प्रथा का चित्रण किया हैं| प्रेमचन्द के बाद किसान जीवन पर लेखन करने वाले अनेक उपन्यासकार हैं|

भारतीय किसान आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। जमींदार, साहूकार, महाजन तथा सरकारी आधिकारी सभी किसान को लूट रहे हैं। किसान दरिद्रता, शोषण तथा निरक्षरता आदि का शिकार हो गया है। हमारे समाज में आर्थिक असमानता किसानों की दरिद्रता का सबसे बड़ा कारण है। इसके फलस्वरूप जो जमींदार जमीनों के मालिक थे वो ओर अधिक जमीनें खरीद गए तथा छोटी जमीन के किसान अपनी जमीन को बेचने के लिए मजबूर है|

नागार्जुन के 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ' आदि, फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'सूखता हुआ तालाब', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी', हिमांशु श्रीवास्तव का 'नदी फिर बह चली', विवेकी राय के 'बबूल', 'लोकऋण' तथा 'सोनामाटी', भैरव प्रसाद गुप्त के 'गंगा मैया', संजीव के 'फाँस', राजकुमार राकेश के 'कंदील', सुनील चतुर्वेदी का 'कालीचाट' तथा पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' इत्यादि उपन्यासों में किसान विमर्श का वर्णन किया है।

किसान का जीवन अभावों की कड़ी के समान है। नागार्जुन के 'बलचनमा' उपन्यास में जमींदारों के शोषण का चित्रण किया गया हैं| नागार्जुन का बलचनमा दरिद्रता के कारण दास होकर जीवन व्यतीत करने को मजबूर होता है। विलासी जीवन व्यतीत करनेवाले जमीदारों का वह शिकार होता है| फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' उपन्यास में भी जातिवाद को देखने को मिलता हैं| में राजपूत, कायस्थ, ब्राम्हण इत्यादि जातियों के लोग है। गाँव की जनता विभिन्न टोलियों में बाटी हुई है, जिनमें आपसी भेदभाव भी है। किसानों का अंधविश्वासी होना भी किसान जीवन की प्रमुख समस्या हैं|

रामदरश मिश्र ने 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ' उपन्यासों में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के ग्रामीण जीवन के किसानों का यथार्थ चित्रण किया हैं| राही मासूम रजा द्वारा रचित 'आधा गाँव' में उत्तरप्रदेश के पूर्वाचल के गाँवों में रहने वाले मुसलमान जमींदारों और मध्यवर्गीय किसानों की जिंदगी का वर्णन किया है। गिरिराज किशोर के उपन्यास 'इंद्र सुने' जो १९७८ में प्रकाशित हुआ| इस उपन्यास में एक तरफ अमीर वर्ग सुख-सुविधाओं में जीवन यापन कर रहा है, तो दूसरी तरफ निम्नवर्ग में गरीब किसान और मजदूर अशिक्षा, गरीबी एवं अंधविश्वास में पड़कर अपनी दुःख भरी जिंदगी जी रहे हैं।

उपन्यासकार कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यासों' मित्रो मरजानी' और 'जिंदगीनामा' में पंजाब के किसानों का यथार्थ चित्रण किया है। जगदीशचंद्र का 'मुट्ठी भर कांकर' उपन्यास किसानों के विस्थापन का वर्णन किया है। किसान को कैसे एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए जबरदस्ती भेजा जाता है और वहाँ अजनबी के बीच अपने आपको स्थापित नहीं कर पाता है।

वीरेंद्र जैन कृत 'डूब और पार' उपन्यास में भारत के विभिन्न बिजली और बाँध परियोजना का लाभ उठाकर पहाड़ी क्षेत्रों में ठाकुरों और साहूकारों द्वारा गरीब कृषकों का शोषण किया गया है। यह भोले-भाले किसान जल्दी ही साहूकारों के चंगुल में फँस जाते हैं। वह इन चापलूसों की चालबाजी को नहीं समझ पाते। कमलाकांत के उपन्यास 'पाहीघर' और 'बेदखल' में जमींदारों द्वारा गरीब किसानों का शोषण तथा किसानों द्वारा संगठित होकर जमींदारों के खिलाफ लड़ाई लड़ने को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। विवेकीराय भी ग्रामीण परिवेश से जुड़े उपन्यासकार हैं। ये मुख्यतः एक आँचलिक उपन्यासकार हैं। इनके उपन्यासों में 'समरशेष' है, ' नमामि ग्रामम' जैसे उपन्यासों में गाँव की माटी की महक है, गाँव में किसान एवं मजदूरों के शोषण तथा उनके संघर्ष को प्रमुखता दी है और गाँव के पिछडेपन को उद्घाटित किया है|

शिवमूर्ति ने 'आखिरी छलांग' वर्ष २००८ (नया ज्ञानोदय अंक जनवरी) में प्रकाशित तीसरा महत्वपूर्ण उपन्यास है। जिसकी पृष्ठभूमि अवध का प्रदेश है। किसान जीवन और ग्रामीण समाज की कारूणिक यथार्थ पर केंद्रित यह उपन्यास गाँवों की वर्तमान वास्तविक दुर्दशा का जीवंत दस्तावेज है । उपन्यास में व्याप्त समस्या गाँव-शहर की ही नहीं बल्कि पूरे भारतीय समाज के साथ अंतर्राष्ट्रीय है। भारतीय गाँवों में मजदूरी, अशिक्षा, दहेज और जातिवाद के साथ खाद, बीज, पानी, नहर-रेट, कर्ज की समस्याएँ पूरे किसान बिरादरी के लिए यथार्थता के परिप्रेक्ष्य में नयी नहीं है। उपन्यास का यही केंद्रीय उदेश्य बना है।

पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में भी सूदखोरों की शोषण नीति का वर्णन किया है| पिताजी रामप्रसाद की जब मृत्यू हुई तब बैंक का, सोसायटी का, सूदखोरों का कर्ज भी पिछे परिवार पर छोड़ जाता हैं। सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में साहुकारों द्वारा किये जानेवाले शोषण का चित्रण किया हैं|

संजीव ने 'फाँस' उपन्यास में भी किसान जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। 'फाँस' उपन्यास आंध्रप्रदेश और महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में कर्ज में फँसे किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्याओं का जीवंत चित्रण है। 'फाँस' की एक महिला पात्र कहती है कि इस देश का किसान कर्ज में ही जन्म लेता है। कर्ज में ही जीता है और कर्ज में ही मर जाता है।

निष्कर्ष :- वर्तमान समय में किसान जीवन पर आधारित अनेक उपन्यास हैं| इन उपन्यासों में किसान जीवन की समस्याओं पर साहित्यकार लिख रहे हैं| हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त कृषाकों की सामाजिक,आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को दिखाया जा रहा हैं| | किसानों के उपर हो रहे अन्याय,अत्याचार,शोषण को उपन्यासों के द्वारा समाज के सामने लाया गया हैं| किसानों के संघर्ष को वाणी देने का सफल प्रयास हिंदी उपन्यासकारों ने किया हैं|

संदर्भ ग्रंथ:

1. हिंदी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन-डाँ. तरन्नुम
2. मुंशी प्रेमचंद कृत गोदान में ग्रामीण परिवेश- अशोक तिवारी
3. हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल
4. अपनी माटी, ई पत्रिका, किसान विशेषांक

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान विमर्श

डॉ. श्रीकांत पाटील
हिंदी विभाग, कला वाणिज्य आणि विज्ञान महाविद्यालय,कोवाड, ता. चंदगड, जि. कोल्हापुर- 416508
***ई मेल** : shripatil931@gmail.com*

किसान और धरती का अटूट नाता है। वह अपनी जमीन से गहरा लगाव रखता है। खेती किसान के लिए कोई व्यापार-व्यवसाय का साधन नहीं बल्कि रोजमार्रा की जिंदगी का एक अभिन्न हिस्सा है। इसीकारण वह किसी भी किंमत पर अपने खेती को खोना नहीं चाहता और किसान बनकर ही रहना अधिक पसंद करता है। किसान का जीवन हमेशा संघर्षमय रहा है। इसका जीवंत प्रमाण ब्रिटिशों के खिलाफ किए गए किसान आंदोलन है। यह किसान आंदोलन आज वर्तमान परिवेश में भी दिखाई देता है। 21 वीं सदी की हिंदी साहित्य के विविध विधाओं में भी किसान जीवन का मार्मिक अंकन हुआ है। वैसे देखा जाए तो हिंदी साहित्य में मुंशी प्रेमचंद जी के युग में किसान जीवन और उनकी समस्याओं का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है। प्रेमचंद के अलावा हिंदी साहित्य में नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, रामदरश मिश्र, विवेकी राय, यादवेंद्र शर्मा चंद, भैरवप्रसाद गुप्त, संजीव, पुन्नीसिंह, पंकज सुबीर, शिवमूर्ति, सुनील चतुर्वेदी, मिथिलेश्वर आदि अनेक साहित्यकारों ने भी किसान विमर्श का यथार्थ चित्रण किया है। 21 वीं सदी में विभिन्न चुनौतियों कारण किसानों के सामने अनेक प्रश्न उपस्थित हुए हैं। वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण के प्रभाव ने किसानों को आत्महत्या के लिए मजबूर कर दिया। पूँजीवादी के बढते प्रभाव ने किसान जीवन को नर्क बना दिया है। औद्योगिकरण के बढते प्रभाव ने किसानों को निगल रही है। इससे किसानों की दशा दयनीय हो गई है। गरीबी के कारण 21 वीं सदी में भी किसान संघर्षो से जूझ रहे हैं। संघर्ष का कोई समाधान न मिलने पर किसान आत्महत्या कर रहे हैं।

'नालंदा विशाल शब्द सागर' में 'किसान' शब्द का अर्थ इस प्रकार है- "खेतिहर ।कृषक"।[1] अत: 'बृहद हिंदी शब्दकोश' में 'विमर्श' शब्द का अर्थ दिया है – "समालोचना, परामर्श, परीक्षा, विचार।"[2] प्राचीन विचारों के बीच मेल न बैठ्ने पर विमर्श भावना का जन्म होता है। समता, स्वातंत्र्य और बंधुता मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार हैं। जब समता और स्वातंत्र्य पर कोई प्रतिबंध लगता है तो मनुष्य के मन में विमर्श की भावना जन्म होती है। वर्तमान परिवेश में व्यक्ति स्वातंत्र्य, आर्थिक स्वावलंबन तथा राजनीतिक जागरण में आमूलाग्र बदलाव हुए हैं।

भारत कृषि प्रधान देश है। गाँवो में रहनेवाली 70% प्रतिशत आबादी खेती पर आधारित है। इसलिए किसानों को देश की रीड की हड्डी कहा गया है। खेती से संबंधित गाँवो में दो वर्ग है एक जमींदार वर्ग और दूसरा किसान एवं मजदूर वर्ग।यह दूसरा वर्ग खेती में जी तोड मेहनता करता है। लेकिन उसके फायदे से पूरी तरह वंचित ही रह जाता है। गाँवो में जमींदार वर्ग उनके अधिकारों से वंचित रखने का कार्य करता है। जमींदार वर्ग की स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण समाज में किसान एवं मजदूर वर्ग का निर्माण हो गया है। इसके संदर्भ में डॉ. वी.पी. चौहान लिखते हैं, "कृषक और मजदूर वर्ग तो अपना खून-पसीना बहाकर भी भूख से बिलबिलाता रहा है तथा कई तरह के आर्थिक दबावों की यंत्रणा झेलता रहा है। जमींदारों और महाजनों की शोषणवृत्ति का शिकार ग्रामीण निम्नवर्ग सदैव अभावों और दरिद्रता की चक्की में पीसता रहा है।"[3]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गाँव का हर आम आदमी अपनी महत्ता को समझने लगा है और जब भी उसके समता स्वातंत्र्य और बंधूता पर चोट पहूँचती है तब वह तिलमिलाकर विमर्श कर उठता है। विमर्श का प्रमुख कारण अधिकार हनन है। "कृषि में लगे किसान और मजदूरों की मानसिकता में विद्रोहवृत्ति को जन्म देनेवाले दो कारण हैं एक है उनका परिश्रामिक और दूसरा उनके साथ व्यवहार।"[4] आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्ति का समाज में कहीं स्थान नहीं होता है। आज वैज्ञानिक युग में शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार के कारण व्यक्ति एवं समाज में परिवर्तन आया है। आज गाँवों एवं अंचलों के किसान अपने स्वातंत्र्य, अधिकार एवं कर्तव्य के प्रति सजग एवं सचेत होने लगे है। उनमें अब धीरे-धीरे जमींदार वर्ग और सरकारी अधिकारियों द्वारा किए जानेवाले शोषण के विरोध में विमर्श दिखाई देने लगी है। यह विमर्श गाँव के सामान्य एवं पिछडे वर्ग, अभावग्रस्त एवं गरीबी में जीवनयापन करनेवाले लोगों में दिखाई देने लगी है। अत: २१ वी सदी के हिंदी उपन्यासो में किसान विमर्श का चित्रण निम्नलिखित रूप में हुआ है -

'माटी कहे कुम्हार से' उपन्यास में अंकित बंजरंगपुर गाँव के किसानों में विमर्श पाई जाती है। उपन्यास में चित्रित जमींदार नंदकिशोर ने अपनी जमीन जगतराम को मनी के रूप में जोतने के लिए दी थी। वह हर साल उनमें मनी वसूल करता था। लेकिन बदलते समय को भाँपकर नंदकिशोर ने वह जमीन बेचना चाही तो जगतराम का बेटा अमरेश उसका विरोध करता है और कहता हैं, "तो यह जान लीजिए कि उस खेत को हम नहीं बेंचने देंगे। अब आपके जो जी में आए कीजिएगा।"[5] यहाँ नयी पीढी के अमरेश की चुनौती किसान वर्ग में उद्भूत शोषण विरोधी विमर्श को स्पष्ट करती है।

गाँवो में जमींदार और साहूकार लोग गरीब किसानों को अधिक ब्याज पर कर्ज देते हैं। परंतु वह कर्ज गरीब किसानों सूद समेत समय पर चुकता नहीं करते। परिणामत: सूद की रकम बढाते हैं इसका मार्मिक वर्णन 'अकाल उत्सव' उपन्यास में मिलता है। उपन्यास में चित्रित रामप्रसाद के पिता सूदखोरों से कर्ज लेता है। परंतु वह कर्ज चुकाने से पहले उसकी मृत्यु होती है। अब कर्ज चुकाने का जिम्मा उसके बेटे रामप्रसाद पर आता है। रामप्रसाद कर्ज चुकाने के उपरांत भी कर्ज जैसा है वैसा ही रह जाता है। तब सूदखोरों की शोषण का वर्णन करते हुए उपन्यासकार लिखते हैं, "रामप्रसाद का पिता जब मरा तो जमीन के साथ बँक का, सोसाइटी का, सूदखोरों का कर्ज भी छोड़ गया था। इलाके में सूदखोरों का सूद बडे विचित्र तरीके से चलता था, जैसे आपने यदि मुझसे अभी इस महीने की दस तारीख को हजार रुपये लिए हैं, तो आप अगले महीने की दस तारीख, मतलब ठीक एक महीने बाद दो हजार वापस करेंगे।"[6] गरीबी और अभावग्रस्ता के कारण कर्ज में फँसे किसान लोग जीवन भर रोते बिलखते रहते हैं। उनकी मुक्ति की कोई राह नजर नहीं आती।

'फाँस' उपन्यास में महाराष्ट्र राज्य के यवतमाल जिले के बनगांव किसानों की आत्महत्या और उनकी समस्याओं चित्रण हुआ है। संजीव ने इस उपन्यास में खाद, पानी, बिजली की समस्या, फसलों को उचित मूल्य न मिलना, कर्ज की समस्या, आत्महत्या आदि किसानों के अनेक समस्याओं को बेबाकी के साथ उजागर किया है। उपन्यास में पूँजीपति वर्ग द्वारा जी. एम. बीजों का इस्तेमाल करने के संदर्भ में किसानों को झूठी जानकारी दी और उन्हें कर्ज के जाल में फँसाया। उसी समय गाँव में सूखा और प्राकृतिक आपदाएँ आने से किसान त्रस्त हो गए। इसीमें कर्ज की समस्या ने उनके जीवन को

बेहाल कर दिया। कर्ज चुका न पाने से वे आत्महत्या जैसे घिनौने रस्ते का इस्तेमाल करते हैं और अपना जीवन समाप्त करते हैं। कर्ज से चिंतित सुनील काका कहते हैं, "जब तक कर्ज ना उतार लो....समझी। अरे तुम मियाँ बीवी, तुम्हें तपस्या करनी हैं शोक से करो मगर मुलगियों को तो बख्श दो।"[7] भारतीय किसान के जीवन की विडंबना यह है कि उनका जन्म कर्ज में होता है वे कर्ज में जीवनयापन करते है और कर्ज का बोझ लेकर ही मर जाते है।

'यह अंत नहीं' उपन्यास में वर्णित किसान वर्ग में विमर्श का उग्र रूप दिखाई देता है। उपन्यास में चित्रित हरिचरन गाँव के जमींदार के यहाँ जोतदार का काम करता था। जमींदार इंद्रासन श्रीवास्तव ने उसे मनी के रूप में खेत जोतने के लिए दिया था। हरिचरन ने घामी के साल कडी मेहनत करके फसल बोई थी। फसल अच्छी तरह न आने पर जमींदार इंद्रासन श्रीवास्तव को हरिचरन मनी नहीं दे पा रहा था। इसीकारण इंद्रासन श्रीवास्तव अपना खेत वापस लेना चाहा तो हरिचरन विरोध करता है और कहता हैं, "हम चाहे जैसे आपके खेतों में खेती खराएँ कराकर रहेंगे....। अब आप हम पर छोडकर निश्चित हो जाएँ। हम खुद लोगों से पूछ लेते हैं....। कोई भी जोतदार तैयार नहीं होगा, तो हम स्वयं उसमें खेती करेंगे...। भाडे पर जोताई कराकर बीज डाल देंगे...। आपके खेतों में परती रहने का सवाल ही पैदा नहीं होगा....।"[8] इससे स्पष्ट होता है कि किसान हरिचरन में शोषण विरोधी विमर्श का संचार हुआ है।

'आखिरी छलाँग' उपन्यास में किसानों की आत्महत्या के लिए उकसानेवाली जमीन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण हुआ है। इसका कथानक पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण परिवेश का है। उपन्यास का नायक किसान पहलवान है। उपन्यास में उसके सामने दो समस्याएँ उपस्थित हुए है – १.बेटे को इंजीनियर बनाने का खर्च २. बेटी की शादी के लिए दहेज के पैसे।साथ ही उन्होंने लगभग तीन सालों से गन्ने की खेती कि लेकिन उसमें कोई लाभ नहीं हुआ। इसके परिणामस्वरूप सोसायटी से खाद के लिए लिया कर्ज चुकता नहीं हो सका। इससे तंग आकर किसान पहलवान कहते है, "सरे हलत तो मर जाने के है। जिंदा कैसे रहा जाए।"[9] यहाँ लेखक ने किसान पहलवान की कर्ज की समस्या से होनेवाली दयनीय दशा का ह्दयस्पर्शी एवं कारुणिक चित्रण किया है, जो वर्तमान समाज की यथार्थता है।

गाँवों में जमींदार और साहूकार के हाथों में सामान्य किसान और मजदूरों के जीवन की डोर थमी रहती है। किसान और मजदूरों की प्रत्येक आर्थिक समस्या का समाधान साहूकारों के हाथ होता है। साहूकार किसान के अज्ञान और अशिक्षित होने का अनुचित लाभ उठाते हुए भ्रष्ट तरीके से उन्हें कर्ज में डुबोता है और उनका शोषण करता है इसका मार्मिक अंकन 'कालीचाट' उपन्यास में हुआ है। उपन्यास में वर्णित साहूकार भीमा बा शोषक के रूप में प्रस्तुत हुआ है। गाँव में किसान वर्ग भीमा बा से कर्ज लेने से डरते हैं क्योंकि वह दस रुपये कर्ज से अधिक मात्रा में ब्याज वसूलता है। साहूकार भीमा बा द्वारा किसानों का किए जाने वाले शोषण का चित्रण लेखक ने इस तरह किया हैं, "पर भीमा बा का नियम जरा कडक है वो दस रुपये सैंकडि का ब्याज वसूलते हैं और गिरवी रखे टुकडे की फसल भी खुद ही लेते हैं। अब कुल पाँच एकड में से दो एकड उनके पास गिरवी रख दूँ।"[10] यहाँ साहूकार किसानों की मजबूरी विवशता और लाचारी का अनुचित फायदा उठाकर क्रूरता से उनका शोषण करते हैं इसका चित्रण है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि 21 वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान आत्महत्या और उनकी समस्याओं यथार्थ चित्रण हुआ है। वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण के प्रभाव ने किसानों की दशा दयनीय हो गई है। पूँजीवादी और औद्योगिकरण के बढते प्रभाव से किसानों का जीवन नर्क बन गया है। उसीमें कुछ किसान अपने जीवनयापन हेतु संघर्षों से जूझ रहे हैं। उपन्यासों में कर्ज की समस्या, खाद की समस्या, पानी, समस्या, खेती की समस्या, आत्महत्या, शोषण आदि किसान जीवन से जुडी हुई विविध समस्याओं का मार्मिक अंकन हुआ है। इसके अलाव कुछ उपन्यासों में वर्णित पात्र अपने ऊपर हुए अन्याय अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करते हैं परंतु इस संघर्ष से वे किसी की हानि होने नहीं देते। 'माटी कहे कुम्हार से' के अमरेश जमींदार नंदकिशोर से लडकर अपना अधिकार सुरक्षित रखता है। 'यह अंत नहीं' के हरिचरन जमींदार इंद्रासन श्रीवास्तव से लडकर अपना अधिकार सुरक्षित रखने का प्रयास करता है। अत: इससे स्पष्ट होता है कि 21 वीं यदी सदी के हिंदी उपन्यासों में चित्रित किसान जमींदार और साहूकारों द्वारा किए जानेवाले आर्थिक शोषण के विरोध में संघर्षरत है।

संदर्भ संकेत

1) सं.श्री. नवलजी – नालंदा विशाल शब्दसागर, पृ. 238. 21008
2) (सं) रिजवी –बृहद हिंदी शब्दकोश, पृ. 484.
3) डॉ. वी. पी. चौहान – रामदरश मिश्र के कथासाहित्य में ग्राम्य जीवन, पृ. 138.
4) डॉ. ज्ञानचंद गुप्त – स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्रामचेतना, पृ. 85.
5) मिथिलेश्वर – माटी कहे कुम्हार से (2006), पृ. 268.
6) पंकज सुबीर – अकाल उत्सव (2016), पृ. 08.
7) संजीव – फाँस (2015), पृ. 62.
8) मिथिलेश्वर – यह अंत नहीं (२००१), पृ. 254.
9) शिवमूर्ति – आखिरी छलाँग (2008), पृ. 79.
10) सुनील चतुर्वेदी – कालीचाट (2015), पृ. 107.

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर विमर्श

प्रो.(डॉ.)सिद्धेश्वर विठ्ठल गायकवाड
प्रोफेसर व हिंदी विभाग प्रमुख, भारतीय जैन संघटना का कला,विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय,
वाघोली,ता.हवेली जि.पुणे.पिन.412207, email : sgaikwad78@gmail.com

भूमिका :

वर्तमान हिंदी साहित्य में विभिन्न विमर्शों की चर्चा अपने चरमोत्कर्ष पर है। जिसमें प्रमुख विमर्श हैं हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श, हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श, हिंदी साहित्य में दलित विमर्श, हिंदी साहित्य में किसान विमर्श, हिंदी साहित्य में बाल विमर्श, हिंदी साहित्य में वृद्ध विमर्श, हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श इ. उपर्युक्त विभिन्न विमर्शों की चर्चा हिंदी साहित्य में लगातार होती आ रही है। जिसमें से अपेक्षाकृत नया विमर्श है किन्नर विमर्श। प्रस्तुत आलेख में हम हिंदी उपन्यासों में किन्नर विमर्श की चर्चा करेंगे। हिंदी में 2014 के बाद किन्नर विमर्श की चर्चा ने जोर पकडा। यहाँ हम हिंदी में किन्नर विमर्श को लेकर लिखे गए उपन्यासों का उल्लेख करना जरुरी समझते हैं। प्राप्त सूचना के अनुसार किन्नर विमर्श की चर्चा करने वाले हिंदी के कुछ प्रमुख उपन्यास और उपन्यासकार निम्नानुसार हैं - यमदीप - नीरजा माधव, किन्नर कथा - महेंद्र भीष्म, मैं पायल- महेंद्र भीष्म, तीसरी ताली- प्रदीप सौरभ, पोस्ट बॉक्स नंबर 203 - चित्रा मुदगल, नाला सोपारा - चित्रा मुदगल, गुलाम मंडी- निर्मला भूराडिया, मै भी औरत हूँ - डॉ. अनुसूद्या त्यागी, प्रति संसार - मनोज रुपडा, अस्तित्व- गिरिजा भारती, दरमियाना- सुभाष अखिल इ.

किन्नर विमर्श जिसकी केंद्रीय वस्तु है ऐसे उपर्युक्त ग्यारह उपन्यासों की चर्चा एक ही शोधालेख में करना विस्तार भय के कारण संभव नहीं लगता है। आत: आगे हम प्रदीप सौरभ कृत तीसरी ताली उपन्यास में चित्रित किन्नर विमर्श की चर्चा करेंगे, हम अपने आलेख को तीसरी ताली उपन्यास तक ही सीमित रखेंगे।

1. प्रदीप सौरभ परिचय :

तीसरी ताली प्रदीप सौरभ का प्रसिद्ध उपन्यास है। प्रदीप सौरभ का जन्म कानपुर उत्तर प्रदेश में हुआ।अधिकांश समय इलहाबाद में गुजरा। वहीं विश्वविद्यालय में एम.ए.किया।कई जन आंदोलनों में भाग लिया परिणामस्वरूप कई बार जेल गए।कई नौकरियाँ की हैं। आप पत्रकार,फोटोग्राफर के रूप में परिचित है। गुजरात दंगों के दौरान रिपोर्टिंग के लिए गुजरात गए मुन्नी मोबाईल, तीसरी ताली और देश भीतर देश इ. उपन्यासों की रचना की तीसरी ताली के लिए आंतरराष्ट्रीय इंदु शर्मा सन्मान से ब्रिटिश संसद में सम्मानित हुए है। संपूर्ण मानव समाज दो स्तंभों पर स्थित है। वे दो स्तंभ हैं पुरुष और स्त्री। नर और नारी। पुलिंग और स्त्रीलिंग। इन्हीं स्तंभों के सहारे मानव प्रजाति आगे बढ रही है।मानव विधाता की अत्यंत सुंदर तथा सर्वांगपूर्ण निर्मिति है। कितना गर्व होता है हमें अपने पर, अपनी देह पर। कभी- कभी तो हमारा अहं हद से बढ जाता है और हम अपनी पूर्णता में भी अपूर्णता का अनुभव करने लगते हैं। हम अपने सपनों को पूर्ण करने के लिए हरदम भागते रहते हैं। हमारी असीम इच्छाएँ, अपेक्षाएँ,आशा-अपेक्षाएँ हमें रूकने नहीं देती और हम अपने जीवन का सही अर्थ तथा उद्देश समज नहीं पाते। पूर्ण पुरुष और पूर्ण स्त्री होते हुए भी हमें जीवन के छोटे-छोटे अभाव खलते हैं और हम बेचैन हो जाते हैं।

2. तीसरी ताली : किन्नरों की वेदना दस्तावेज :

प्रस्तुत उपन्यास में उन लोगों का चित्रण हैं जो न पूरे पुरुष हैं और न ही पूरी स्त्री। स्त्री और पुरुष के बीच अपनी लैंगिक अस्मिता को खोजता यह समाज आज भी संघर्षरत है। हाशिए पर धकेला यह समाज उपेक्षित एवं लांछित जीवन जीने के लिए विवश है, हिजडा शब्द जो अपने आप में गाली है। "हिजडा शब्द अपने-आप में गाली है, तमाचा है, मानसिक आघात है मनुष्य के रूप पर जो दयनीय जीवन जीने के लिए मजबूर है। विधाता की उस निर्मिति का उपहास है यह शब्द। प्रकृति द्वारा मनुष्य के साथ किया गया भद्दा मजाक है।"[1] जिसे हमारा समाज हिजडा,किन्नर,छक्का कहता है,उसे समाज से हमेशा उपेक्षा ही मिली है। बावजूद इस उपेक्षा,उपहास के इस तीसरी योनि का अस्तित्व हमारे समाज में है और हमेशा रहेगा।

3. तीसरी ताली उपन्यास में चित्रित किन्नर विमर्श :

तीसरी ताली प्रदीप सौरभ द्वारा रिपोर्ताज शैली में लिखा हुआ बहुचर्चित उपन्यास है, जिसमें उन्होंने तृतीय लिंग या थर्ड जेंडर के जीवन संघर्ष को मुखर अभिव्यक्ति प्रदान की है। हिजडों के जीवन से जुडे हर पहलू को इस उपन्यास में बडी इमानदारी के साथ चित्रित किया गया है। थर्डजेंडर, लोंढेबाज, गे, ट्रान्सजेंडर ,तृतीयलिंग, किन्नर, शिखंडी, हिजरा, हिजडा, नंगाई, अरूवन्नी, खुसरा, मामू, गांडू, नामर्द, मऊगा आदि नामों से जाना जाने वाला यह समुदाय भारतीय समाज के सबसे उपेक्षित तबकों में से एक है।

"वर्षों से दुत्कार, प्रताडना और अपमान झेलनेवाला यह वर्ग अब धीरे-धीरे अंगडाई लेने लगा है। मुद्दा शिक्षा का हो, संघटन बनाने सामाजिक काम करने का हो, या फिर राजनीति में सक्रिय भागीदारी का, हिजडा समुदाय की छटपटाहट खुलकर सामने आने लगी है।"[2] हिजडों के जीवन शैली और उनके संघर्ष पर आधारित प्रस्तुत उपन्यास को आंतरराष्ट्रीय इंदू शर्मा कथा सन्मान से पुरस्कृत किया गया है। लेखक ने इस दुनिया के उस तहखाने में झाँका है,जिसका अस्तित्व सब मानते तो हैं लेकिन जानते नहीं।

3-1 तीसरी ताली : अंतर्वस्तु के सामाजिक,सामाजिक संदर्भ

प्रस्तुत उपन्यास की कथा दिल्ली में स्थित एक हाउसिंग सोसायटी सिद्धार्थ एन्क्लेव से प्रारंभ होकर बहुआयामी मोड लेती हुई हिजडों का मक्का माने जाने वाले तमिळनाडु में स्थित पवित्र स्थल कुवागाम के मेले में जाकर समाप्त होती है। हिजडों की उपस्थिति भारतीय समाज में कोई आज की नहीं है बल्कि उपन्यासकारने विभिन्न घटनाओं के माध्यम से इनकी उपस्थिति रामायण-महाभारत काल में दिखाई है। प्रस्तुत उपन्यास में अनेक पात्र हैं जो भिन्न-भिन्न समस्याओं का सामना करते हुए अपना अस्तित्व तराशते नजर आते हैं। उनमें प्रमुख पात्र हैं- डिंपल, नीलम, रेखा,चितकबरी,गौतम सहाब,

बाबू श्याम सुंदर,आनंदी आंटी, मंजू,रानी उर्फ राजा, विमल भाई, अनिल, विनीता उर्फ विनीत, ज्योति, विजय इ.एक सौ पिच्यानबे पृष्ठों का संपूर्ण उपन्यास इन्हीं पात्रों से संबंधित विभिन्न पक्षों के माध्यम से भारतीय समाज की सच्चाई से पाठकों को परिचित करता है। सुंदर किशोरों,युवकों की पीडा का बयान करती हुई ज्योति कहती है -" माना मैं मर्द हूँ, लेकिन ये समाज मुझसे मर्द का काम लेने के लिए राजी नहीं है। मुझे इस समाज ने मादा की तरह भोग की चीज में तब्दील कर दिया है। मैं मर्द रहूँ या फिर हिजडा बन जाऊँ इससे किसी को कोई फर्क नहीं पडेगा।पेट की आग तो बडों-बडों को न जाने क्या से क्या बना देती है।"[3]

तीसरी ताली उपन्यास की कथा का प्रारंभ गौतम साहब के चरित्र से होता है, जिनके घर बेटा हुआ लेकिन वे हिजडों के लाख तीसरी ताली बजाने-गाने के बाद भी दरवाजा नहीं खोलते हैं क्योंकि गौतम साहब का बेटा हिजडा पैदा होता है।गौतम जी और आनंदी के चरित्रों के माध्यम से उन माँ-बाप का दर्द बयां किया गया है,जिन्हें बच्चा होने पर खुशी मनाने का हक बच्चे के लिंग पर निर्भर करता है। बच्चे का उभयलिंगी जन्मना एक महापाप है।और उपन्यास का आखिरी पन्ना खत्म होता है विजय की कहानी पर जो कि एक फोटोग्राफर है।मंजू उक्त उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र है। वैसे तो मंजू एक पूर्ण स्त्री है किंतु हिजडी का जीवन जीने के लिए मजबूर है। मंजू विजय से शादी करना चाहती है किंतु विजय विरोध करता है।मंजू विजय के सामने आत्मसमर्पण करती है और एक पूर्ण स्त्री होने की बात कहती है।यहाँ उपन्यासकारने विडंबना पूर्ण नाटकीयता प्रस्तुत की है। विजय कहता है-" मंजू मैं तुमसे शादी नहीं कर सकता।मैं जानता हूँ कि तुम एक मुकम्मल औरत हो।तुम्हारी खूबसूरती हासिल करना किसी की भी खुशकिस्मती हो सकती है, पर मैं खुशकिस्मत नहीं हूँ। मैं तुम्हारे निर्मल व पारदर्शी हृदय को स्वीकार कर ही नहीं सकता। तुम मुकम्मल औरत जरूर हो, पर मैं मुकम्मल पुरुष नहीं हूँ- मैं एक हिजडा हूँ! हिजडा, हिजडा।"[4] यहाँ लेखक ने किन्नरों की मनोदशा का बडा सूक्ष्म चित्रण किया है। मंजू डिंपल ज्योती जैसे अनेक अभिशप्त पात्रों के सहारे उपन्यासकार हमारे समाज में व्याप्त जाति प्रथा, अमीरी गरीबी, भूख, बेरोजगारी और सत्ता की करतूतों का वर्णन करते हैं। हमारे आपके लिए तीसरी योनि के लोग सिर्फ कुछ शुभ अवसर पर तालियाँ बजा कर नाचने, बधाई देने और रुपये ऐंठने के लिए आते हैं किंतु इसके अलावा भी इनका अपना समाज है, अपनी संस्कृत है, रीति-रिवाज है।इस उपन्यास में लेखक ने "समाज से बहिष्कृत एक समुदाय के रूप में हिजडों की कारुणिक व्यथा-कथा को परत-दर-परत खोला है।ये ऐसे लोग हैं जो हमारे बीच में बीच समाज में रह रहे है पर इनका कोई अस्तित्व नहीं, कोई पहचान नहीं। समाज में उपस्थित हैं फिर भी अनुपस्थिति का दंश झेल रहे हैं।"[5] प्रकृति ने तीसरी योनि के लोगों के साथ अन्याय किया है। इस अन्याय को वे जीवनभर ढोते रहते हैं। सामान्य जीवन जीनेवाले इस उपेक्षित समाज को लोग तिरस्कृत निगाह से देखते हैं। हमेशा अपने अस्तित्व की तलाश में रत किन्नरों के संघर्ष को कहीं भी दर्ज नहीं किया जाता। उपन्यास के अंत मे विजय का संवाद पूरे समाज पर प्रश्नचिह्न है। वह कहता है-" दुनिया के दंश से अपने - आप को बचाने के लिए मैने लगातार लडाई लडी और खुद को समर्पित किया।मैं नाचना- गाना नहीं,नाम कमाना चाहता था। भगवान राम के उस मिथक को झुठलाना चाहता था, जिसके कारण तीसरी योनि के लोग नाचने-गाने के लिए अभिशप्त हैं परिवार और समाज से बेदखल हैं।"[6]

निष्कर्ष:

अंत में कहा जा सकता है कि प्रदीप सौरभ जी ने उक्त उपन्यास में पूर्णत: उपेक्षित एवं बहिष्कृत हिजडा समुदाय की कारुणिक व्यथा को बडी मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। प्रकृति की छलनाओं के शिकार बने इन हिजडों के प्रति हमारा प्रतिष्ठित समाज अत्यंत संवेदनहीन है। उन्हें अपने माता-पिता तक नहीं अपनाते, ऐसे में दूसरों से अपेक्षा व्यक्त करना व्यर्थ है। वास्तव में निर्दोष होते हुए भी वे अभिशप्त जीवन जीते हुए नरकीय यातनाएँ भोगते हैं।इनकी पीडा को स्वयं अनुभव से ही जाना जा सकता है। इनके जीवन की सबसे बडी समस्या उनका अकेलापन है, जो इनकी जिंदगी का एक अत्यंत निर्णायक तत्व है।उक्त रचना हिजडों के जीवन के अनछुए पहलुओं से रू-ब-रू कराती है।अब धीरे-धीरे सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन हो रहा है। उनके अस्तित्व को स्वीकारा जा रहा है।यह उनके लिए थोडी सकारात्मक बात है। हमें भी उनसे मानवतापूर्ण व्यवहार कर मानवता की एक नई पहल शुरू करनी होगी। समाज उनको उनका हक जरुर देगा यह आशावाद यहाँ व्यक्त किया जा सकता है।

संदर्भ:

1. 'इतर' लैंगिकता की राजनीति, संपादक डॉ.महेश दवंगे,स्वराज प्रकाशन, दिल्ली,प्रथम संस्करण 2019,(पृ.सं.65)
2. हिंदी उपन्यासों के आईने में थर्ड जेंडर डॉ.विजेंद्र प्रताप सिंह,अमन प्रकाशन कानपुर,प्रथम संस्करण 2017,(पृ.सं.66)
3. तीसरी ताली,प्रदीप सौरभ,वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण 2014,(पृ. सं. 57)
4. वही (पृ. सं.194)
5. भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीय लिंगी विमर्श, संपादक विजेंद्र प्रताप सिंह, रवी कुमार गौड,अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2016,(पृ.सं. 32)
6. तीसरी ताली,प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,संस्करण 2014, (पृ.सं.195)

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

मालती जोशी की कहानी 'उत्सव' में स्त्री-विमर्श

डॉ. स्नेहल श्रीकांत गर्जे-पाटील
शिवकवच चौक, वखारभाग, सांगली
snehalgarjepatil@gmail.com

प्रस्तावना:

साहित्यकार अपनी परिस्थितियों, संघर्षों, परिवेशों से गहन अनुभूति प्राप्त करते हुए अपना एक जीवन दर्शन बनाता है। सच्चा साहित्यकार अपनी वैयक्तिकता को पिघलाकर उसे समाजिकृत रूप में प्रस्तुत करता है। वैयक्तिकता को निवैयक्तिकता में परिणित करना ही कला है, जो पाठक को मंत्रमुग्ध करती है। साथ ही उसे समय के सच को उजागर करने के साथ दिशा निर्देश भी देती है। हिंदी साहित्य जगत में सन् 1960 ई. के बाद 'विमर्श' की अवधारणा दृष्टिगत होती है। साहित्य के संदर्भ में स्त्री-विमर्श की अवधारणा आधुनिककाल काल की देन है।

स्त्री-विमर्श:

आजकल जब साहित्य पर चर्चा होती है तो 'विमर्श' शब्द स्वत: बहस के केंद्र में आ जाता है। शब्दप्रयोग की दृष्टि से विमर्श शब्द अत्यंत प्राचीन है। विमर्श शब्द अत्यंत व्यापक है जिसकी उत्पत्ति मृश धातु में वि-उपसर्ग तथा घञ् प्रत्यय लगाकर हुई है। अत: विमर्श का व्युत्पत्तिपरक अर्थ विचार-विमर्श, सोचना, समझना, आलोचना करना है। मानक हिंदी कोश में विमर्श का अर्थ है-"सोच विचार कर तथ्य या वास्तविकता का पता लगाना, किसी बात या विषय पर कुछ सोचना, समझना, विचार करना, गुण-दोष आदि की आलोचना या मीमांसा करना, जाँचना और परखना, किसी से परामर्श या सलाह करना।"[1] वास्तव में किसी विचार, विनिमय व सोच विचार करना यह विमर्श कहलाता है। विमर्शवादी अवधारणा के अंतर्गत स्त्री-विमर्श का विश्लेषण किया गया है।

स्त्री-विमर्श का शाब्दिक अर्थ होता है- स्त्री से संबंधित विचार या विवेचन, परामर्श, चर्चा। स्त्री-विमर्श अर्थात जीवन से जुडे महत्त्वपूर्ण पहलुओं की चर्चा तथा विचार विनिमय के माध्यम से स्त्री के जीवन संघर्ष एवं अस्तित्त्व पर मंथन करना ही स्त्री विमर्श है। प्रो. प्रकाश कृष्णदेव के मतानुसार, "स्त्री-विमर्श में स्त्री द्वारा स्त्री होने के नाते, सहे हुए आघातों से मुक्ति तथा मनुष्य के रूप में व्यवहार कर सकने और उसी प्रकार का व्यवहार पाने के लिए स्त्री की जददोजहद की प्रक्रिया है।"[2] शोषण व दमन के प्रति स्त्री-चेतना ने स्त्री-विमर्श को जन्म दिया। स्त्री-विमर्श वास्तव में आत्मचेतना, आत्मसम्मान, आत्मगौरव, समता व समानाधिकार की पहल का नाम है। स्त्री-विमर्श स्त्री की अस्मिता का आत्मचेतना का अन्याय के विरोध का, अस्तित्त्व बोध का उसकी अत्याचार के विरोध में खडा रहने की लडाकू वृत्ति का न केवल परिचय देता है। अपितु स्त्री चिंतन को बल प्रदान करता है।

मालती जोशी:

साठोत्तरी हिंदी कथाकारों में जो अनेक नाम प्रतिष्ठित हुए है उनमें एक नाम मराठी भाषी मालती जोशी का भी है। मालती जोशी अपनी पारिवारिक एवं नारी चेतना के संपूर्ण सामर्थ्य के साथ हिंदी कहानियों में अवतरीत हुई है। मालती जोशी के शब्दों में, "जीवन की छोटी-छोटी अनुभूतियों को स्मरणीय क्षणों को मैं अपनी कहानियों में पिरोती रही हूँ, ये अनुभूतियाँ कभी मेरी अपनी होती हैं कभी मेरे अपनों की।"[3] इन्होंने स्त्री की स्वतंत्रता, समानता और अधिकार के लिए दिन रात संघर्ष किया है। स्त्री की वास्तविक समस्याओं, वेदनाओं और मनोदशाओं को अपनी लेखनी के जरिए दर्ज किया है। मालती जोशी ने अपने साहित्य के माध्यम से नारी त्रासदी, शोषण, अस्मिता और समानता के संबंध में अत्यंत गहराई से चिंतन कर वास्तविकता को दर्शाया है। 'साहित्य अमृत' मासिक पत्रिका अक्तूबर, 2021 में प्रकाशित मालती जोशी की कहानी 'उत्सव' में चित्रित स्त्री-विमर्श को निम्नलिखित मुद्दों के आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया हैं-

1.अकेलापन एवं घूटन:

मनुष्य को जीने के लिए परिवारजनों की सहायता लेनी पडती है। लेकिन कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ निर्माण होती है कि मनुष्य परिवार में रहते हुए तथा अपने सगे संबंधियों के होते हुए भी मानसिक तनाव के कारण अकेलापन महसुस करता है। परिस्थितियों के दबाव के कारण उसे घूटन और अकेलेपन का सामना करना पडता है। डॉ. उषा यादव के शब्दों में, "पारिवारिक माहौल में कभी-कभी ऐसी घूटन बस जाती है जो आदमी का खुलकर सांस लेना भी मुश्किल कर देती है।"[4]'उत्सव' कहानी की प्रियंका उर्फ पिंकी महीने से जादा दिन हुए अपने मायके में ही है। पिंकी का भाई अपने परिवार के साथ पूरे पाँच साल बाद यू. एस.से अपने घर आया था। एक महीने बाद भाई का परिवार फिर से यू.एस. लौट गया। पिंकी का पति बेटे रजत की पढाई की चिंता में उसे अपने साथ घर ले गया था। तीन-चार दिन बाद पिंकी को बेटे की याद सताने लगी तो उसने ससुराल में फोन किया। फोन पर उसे पता चला की उसकी चचेरी ननद की सगाई हो गई है, और ससुरालवालों ने उसे इसकी खबर तक नहीं दी। इस बात का पता चलने पर पिंकी की मम्मी शोर मचाने लग गई। लेखिका के शब्दों में, "कायदे से तो हमें भी निमंत्रन मिलना चाहिए था। पर जब घर की बहू को ही नहीं बुलाया तो हम लोग क्या लगते हैं और अब तुम्हारी चाची सास पूरी बिरादरी में कहती फिरेगी की गौतम की बहू तो मायके में ही पडी रहती है। उसे ससुराल से कोई लेना-देना नहीं है। सोलह सोमवार वाली बात याद है न।"[5]मम्मी की बातें सुनकर पिंकी सोचने लगी ससुरालवालें उससे ऐसा बर्ताव क्यों करते हैं। उसके पति गौतम ने भी उससे बात करना छोड दिया है। उसका अपना बेटा भी उसे याद नहीं करता उसके बगैर आराम से अपनी दादी के साथ रहता है। सास-ससुर भी घर के किसी समारोह में उसे नहीं बुलाते। गौतम ऑफिस के काम से मद्रास जाता है। उसका कोई बडा प्रोजेक्ट मंजूर होता है। उसकी खुशी में वह पूरे स्टाफ को पार्टी देता है। गौतम फैमिली पिकनिक निकालता है पर अपनी पत्नी को साथ लेकर जाना तो दूर उसे पूछता भी नहीं। पिंकी पूरी दोपहर इन्हीं विचारों में खोई अपने कमरे में पडी रही। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि, जो कुछ हो रहा है उससे वह दुखी है या नाराज या दोनों। उसके बगैर उसका परिवार खुश था और वह एक तरह के अकेलापन और घूटन को महसुस कर रही थी।

2. अत्यधिक सजगता:

कुछ लोग ऐसे भी होते है जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरे लो ंगो को ऐसे जकड़ लेते है की, उन्हें अपने अस्तित्त्व की पहचान ही नहीं होती। पिंकी की मम्मी पिंकी के विवाह को छह साल होने पर भी कुछ न कुछ कारन निकालकर उसे बार-बार मायके बुलाती है। पिंकी के ससुरजी की षष्टिपूर्ति के दिन ही पिंकी की मम्मीने सोलह सोमवार का उद्यापन रखा था। उस दिन सुबह से पिंकी को उसकी मम्मी के घर बुलाने के लिए इतने फोन आ रहे थे। कि गौतम ने केक काटने के पहले ही टॅक्सी बुलावाकर पिंकी को मायके भेज दिया। ससुरजी की षष्टीपूर्ती के समारोह में घर की बहू नहीं थी। अब भी पिंकी की मम्मी ने बेटा और उसका परिवार यु.एस. से एक महिने के लिए आनेवाला है, इसलिए पिंकी को बुला लिया था। एक महिने बाद बेटे के चले जाने पर जब गौतम पिंकी और रजत को लेने आयातो पिंकी की मम्मी ने बहूत बड़ा कांड किया। जिसे देखकर गौतम ने कहा लेखिका के शब्दों में, ''रजत का बैग उठाकर बोले 'में इसले जाता हूँ। उसकी पढाई बरबाद हो रही है!तुम्हारी जब मरजी हो आ जाना''[6] तब से गौतम ने पिंकी से बात करना बंद किया था। पिंकी की मम्मी अपने स्वार्थ के लिए कभी पूजा का कभी बीमारी का कभी पार्टी का बहाना बनाकर हमेशा पिंकी को अपने घर बुलाती है। पिंकी भी अपनी मम्मी की चिंता में हमेशा मायके आकर रहती थी। धीरे-धीरे पिंकी को महसूस होने लगा की ससुरालमें एक बहू होने पर भी उसकी कोई किंमत नहीं है। ससुराल के लोग अब उसे घर के किसी समारोह खुशी, कामयाबी, पिकनिक आदि में उसका होना जरूरी नहीं समझते। पिंकी अपनी माँ की अत्याधिक सजगता के कारण अपने ही परिवार से टूट रही है।

जिम्मेदारी का एहसास:

जिंदगी में जब मनुष्य अनेक समस्याओं से धीर जाता है। आगे क्या किया जाए यह उसकी समझ में नहीं आता तो उसे ऐसे पथप्रदर्शक की आवश्यकता होती है। जो निपक्षभाव से उसे उसकी जिम्मेदारियों का एहसास करा दे। 'उत्सव कहानी की पिंकी भी ससुरालवालों के उपेक्षित व्यवहार के कारण चिंतित है। वह जब उसकी चिताएँ उसके पापा के सामने प्रस्तुत करती है, तो उसके पापा उसे उसकी जिम्मेदारियौं का एहसास कराते है। वह कहते है- "बेटा तुम उस घरमें अपनी क्या जगह बनाई है।"[7] तुम अपनी मम्मी के बुलाने पर कभी चार दिन कभी आठ दिन, कभी दस अब तो महिना हो गया। ऐसें हमेशा मायके में आकर रहती हो। इसका मतलब यही है कि तुम बहुत पहले से घर के लिए, उन लोगो के लिए गैरजरूरी हो गई हो। बस इसका पता तुम्हें अब हुआ है। उसके पापा आगे कहते है, लेखिका के शब्दोमें 'बेटा गृहणी वह होती है, जो अगर एक दिन भी घर में न रहें तो हाहाकार मच जाता है।' पापा पिंकी को समझाते है, अभीभी देर नहीं हुई अपनी जिम्मेदारियाँ समझो, रिश्तों को इतना भी ना खिंचो की वे तनाव ना झेल सके और टूट जाए। दूसरे दिन सुबह पिंकी के पापा उसकी मम्मी के विरोध को नजरअंदाज करके पिंकी को उसके ससुराल छोडने जाते है। घर में जाने से पहले वह पिंकी को समजाते है, 'बेटा कोई बहसबाजी नहीं, कोई शिकवा-शिकायत नहीं एकदम ठंडे मन से घर में प्रवेश करे।' पिंकी के ससुरालवालें उनका स्वागत करतें है। पापा केक हने पर पिंकी चाय बनाकर सबको देती है। पापा के जाने पर सास को रसोई में मद्द करती है। दोपहर को रजत जब स्कूल से घर आता है तो माँ को घर में देखकर उससे लिपट जाता है। जैसे उसके छोडने पर उसकी माँ फिर से उसे अकेला छोडकर चली जाएगी। चार बजे वह खुद उठाकर सास-ससुर के लिए चाय बनाती है।शाम को जब गौतम आता है तो सास खुद उन दोनो की चाय उपर भिजवाती है गौतम पिंकी को आँखे बंद करके उसे नई साडी का सप्राईज देता है। यह वहीं साडी थी, जो गौतम मद्रास सेउ सके लिए लाया था। पिंकी अपने सास-ससुर और पति का प्यार पाकर अपने आप पर ही शरमिंदा होती है। कैसे वह अपनी मम्मी की बजह से अपनी बहू की जिम्मेदारियों से दूर भाग रही थी!

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि साहित्य में स्त्री विमर्श की संकल्पना आधुनिक काल की देन है। विचार-विनिमय व सोच-विचार करना विमर्श कहलाता है। उत्सव कहानी की पिंकी अपनी माँ की अत्याधिक सजगता के कारण विवाह के छह साल बाद भी ससुराल में अपना एक विशिष्ट स्थान निर्माण करने में असमर्थ थी। इसलिए ससुरालवालों के लिए वह गैरजरूरी हो गई थी। इसी कारण वह अकेलेपण और घूटन भरी जिंदगी जी रही थी। जब उसके पापा ने उसे उसकी जिम्मेदारियों का एहसास कराया तो उसकी आँखे खुल गई।

संदर्भग्रंथ:

1. (संपा) रामचंद्र वर्मा, 'मानक हिंदी कोश' (प्रयाग हिंदी साहित्य सम्मेलन)पृ.सं. 77
2. प्रो. प्रकाशकृष्णदेव,'समकालीन कथा साहित्य में स्त्री विनर्श पृ. स. 104
3. मालती जोशी, 'एक सार्थक दिन'(साक्षीप्रकाशन, नईदिल्ली, प्र.सं(1995) अवरनपृष्ठ
4. डॉ. उषा यादव, हिंदी महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवदेना, (राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं.1999), पृ.सं. 159
5. (संपा.) डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, साहित्य अमृत, मासिक पत्रिका, (4/19 आसफ अल्ली रोड, नई दिल्ली 02) पृ.सं. – 9
6. वहीं, पृ. सं. 10
7. वहीं, पृ. सं. 13

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

मनोज सोनकर के काव्य मे : नारी विमर्श

प्रा.सोनाली रामदास हरदास
हिंदी विभाग प्रमुख, श्री साईबाबा महाविद्यालय, शिर्डी, तह- राहाता,जिला – अहमदनगर
ई-मैल – sonalirhardas@gmail.com

समय गतिमान प्रक्रिया है l समय के साथ साथ समाज बदलता है और बदलते समाज में सामाजिक मूल्यों में भी परिवर्तन आ जाता है l इसी परिवर्तन की प्रक्रिया में समाज का विकास होता है l आज हम सब मिलकर जिस स्त्री-विमर्श की चर्चा कर रहे हैं, यह भी बदलते समय एवं समाज की आवश्यकता की है l भारत भर में आज नारिया प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ रही है l अपने आपको बड़ी सुचारू ढंग से प्रस्तुत कर रही है तो दूसरी ओर नारियों पर अन्याय अत्याचार हो रहे हैं l

हिंदी साहित्य में स्त्री -विमर्श पर अनेक साहित्यकारों ने अपनी लेखनी चलाई है l जिनमें हिंदी के साठोत्तरी कवि मनोज सोनकर का नाम प्रमुख हैं lमनोज सोनकर हिंदी के साठोत्तरी काव्य परंपरा के बहुचर्चित एवं बहुआयामी कवि हैl मनोज सोनकर प्रमुख रूप से दलित साहित्यकार के रूप में अधिक पहचाने जाते हैं l सोनकर जी ने महाकाव्य ,खंडकाव्य ,मुक्तक काव्य आदि काव्य प्रकारों के साथ ओवी, अभंग जैसे मराठी छंदों में तथा गजल ,हाइकु, बैलेड - बजम, ताका - तरंग ,रुबाई- रंग आदि विदेशी छंदों में अपना काव्य संसार रचा है l उनके सभी काव्य संग्रह में शबरी संबोध स्त्री उत्पीड़न की अमर गाथा के स्वरूप में जाना जाता है l

शबरी संबोध के माध्यम से मनोज जी ने स्त्री जीवन के प्रति अपनी सहृदयता व्यक्त की है l भारतीय संस्कृति में स्त्री को देवी माना जाता है l उसे शक्ति मानकर उसकी पूजा की जाती है तो दूसरी ओर इसी देवी की अवहेलना भी होती है l पुरुष प्रधान संस्कृति ने हर समय,हर युग, और हर काल में स्त्री को निम्न स्थान ही दिया है l स्त्री केवल दुख , दर्द, अपमान, अवहेलना,भोग तथा शोषण की ही अधिकारीनी रही है l चूल्हा, बर्तन, बच्चे केवल इतना ही उसका संसार हैl पुरुष प्रधान संस्कृति में वह केवल कठपुतली बन गई है l वह अपने मन से खुली सांस भी नहीं ले सकती l इसी संस्कृति के विरोध में मनोज सोनकर जी ने शबरी संबोध के माध्यम से स्त्री स्वतंत्रता का बिगुल बजाया है l शबरी संबोध की हर एक नारी दलित, सर्वहारा, उपेक्षित, मजदूर वर्ग की नारी है l यह नारी अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्नरत है l अपने,अपमान, शोषण तथा उत्पीड़न का वह बदला लेना चाहती है l शबरी संबोध के पात्र छनगूरी कबरी, सुरतिया , मंगरी, बुधिया, फुलनी, मूरतिया आदि शोषित नारिया हैं जो अपने शोषण के विरोध में आक्रोश करती है l

इस खंडकाव्य के द्वारा कवि ने पौराणिकता के पट पर आधुनिकता को रखने का प्रयास किया है l शबरी संबोध का कथानक रामायण से संबंधित है l प्रभु रामचंद्र जब वनवास के लिए वन में चले गए थे तब वन भ्रमण करते हुए उनकी भेंट उनकी परम भक्त भिल्ल स्त्री शबरी से होती है l शबरी प्रभु राम जी आने का संदेश सुनकर उनके लिए बन से मीठे बेरो को चुनने के लिए उन्हें जूठा करती हैl राम जी उसकी निस्वार्थ भक्ति भावना से प्रसन्न होकर वह शूद्र जाति की होते हुए भी उसके झूठे बेरों को खाते हैं l शबरी की भक्ति से प्रसन्न होकर रामजी उसका उद्धार करते हैं l

कवि सोनकर जी ने इसी प्रसंग को आधार बनाकर पौराणिक संदर्भ को युगीन जीवन से जोड़ने का प्रयास किया है l शबरी संबोध की रचनाएं पददलित, उपेक्षित, सर्वहारा, मजदूर स्त्रियों के अभावग्रस्त जीवन, शोषण, उत्पीड़न एवं उनके कष्टों का यथार्थ अंकन करती है l आज की शबरी सदियों से हो रहे शोषण को आत्मकथ्य द्वारा संबोधित करती है l यथा-

"मैं सदियों से रोती आ रही हूं
न जाने
और कब तक रोना पड़ेगा?
मेरे आंसू
गड्डढे से नाला
नाला से नदी
और नदी से समुद्र होते जा रहे हैं
जिसमें
वेद, पुराण, उपनिषद
रामायण, दर्शन, चिंतन
परंपरा, इतिहास, सभ्यता
संस्कृति, समाज,व्यवस्था
डूब रहे हैं l"

कवि ने रूढ़ियों से चले आ रहे अपमान और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई है l इस खंडकाव्य की शबरी समस्त स्त्री जाति का प्रतिनिधित्व करती है l वह कहती है नारी सदियो से रोती आ रही है और न जाने कब तक उसे रोना ही पड़ेगा l उसके आंसू गड्डढे से नाला और नाला से नदी और अंत में समुद्र होते जा रहे हैं अर्थात उसके आंसुओं को रोकने वाला कोई भी नहीं है l उसके इन आंसुओं में वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, दर्शन, चिंतन, सभ्यता, संस्कृति और समाज सभी डूब रहे हैं अर्थात नारी का दुख अनंत है l आज हम आधुनिक युग में जीवन व्यतीत कर रहे हैं l सभी क्षेत्रों में हमने प्रगति की है l हम स्वयं को आधुनिक मानते हैं किंतु इस आधुनिकता में स्त्री जीवन इतिहास एवं पुराण का ही अनुकरण कर रहा है l आज

अनेक सीताओं को अग्नि परीक्षा देनी पड़ रही है, उन्हें जिंदा जलाया जा रहा है, पग पग पर उनका शोषण हो रहा है, और अंत में उन्हें ही दोषी ठहराया जाता है l

मंदिरों में आज भी दलितों एवं निम्न जातियों की नारियों को प्रवेश निषिद्ध है l उनका छूना आज भी अपवित्र माना जाता है l आजादी के बाद संविधान में दलितों के हित में कायदे कानून किए गए हैं फिर भी वे आज पारतंत्र के घोर अंधेरे में फंसे हुए हैं और उन्हें अधिक फसाया जा रहा है l शबरी संबोध की नायिका शबरी है जो समस्त भारतवर्ष की प्रताड़ित, शोषित, हिन नारी का प्रतिनिधित्व करती है l साठोत्तरी प्रबंध काव्य की विशेषताओं के अनुसार शबरी संबोध के नायक एवं नायिकाये मानवीय गुणों से संपन्न है l वे अपने अधिकारो के प्रति सजग हैं-

"अन्याय
अत्याचार
शोषण
अपमान
विशमता
जातीय दंभ
वंशाभिमान
ऊंच-नीच के खिलाफ
विशाल मोर्चा
गतिशील है
जिसमें अनेकों शामिल है l"

साठोत्तरी प्रबंध काव्य के महत्वपूर्ण तत्वों में सामाजिक तथा समकालीन समस्याओं का उद्घाटन एक महत्वपूर्ण तत्व है l इसके अनुसार शबरी संबोध में भी सामाजिक तथा समकालीन समस्याओं जिनमें नारियों का कष्टप्रद जीवन, आत्मकुंठा, शोषण, अत्याचार, उत्पीड़न आदि का उद्घाटन हुआ है l शबरी अपनी इस उत्पीड़न को समाज के सामने लाना चाहती है -

"सपने में नहीं
हकीकत में
युग चाहे कोई रहा हो
त्रेता रहा हो
द्वापर रहा हो
मेरे लिए
सभी युगो का
एक ही नाम रहा है-
दुख
केवल दुख l"

शबरी संबोध नारी जीवन की अमर गाथा है l उसका प्रमुख उद्देश्य अन्याय, अत्याचार, शोषण, वंशाभिमान, पारंपारिक दंभ और अमानवीयता का घोर विरोध करते हुए समतामूलक समाज की स्थापना करना l सोनकर जी ने शबरी के द्वारा हर नारी को अन्याय, अनास्था, विकृतियों ,विसंगतियों को चीरते हुए नए सिरे से सोचने के लिए विवश किया है l इसकी शैली मिथकीय है मिथकीय पात्रों के माध्यम से इस कृति में इतिहास के पट पर आधुनिकता को प्रभावशाली ढंग से उभारा गया है l आज की नारी संस्कृति सभ्यता धार्मिक कथा के नाम पर होने वाले अपने उत्पीड़न को करारा जवाब देना चाहती है धर्म की आड में होने वाला स्वयं का शोषण अब वह जान चुकी है इस धर्म ग्रंथों की क़ैद को तोड़कर वह भारतीय समाज के सामने मुखर होती है और उसकी मुखरता नाजायज नहीं है यथा-

"मैं
शबरी
धर्म ग्रंथों की कैद तोड़
बाहर
निकल आई हूं
और
अपनी संतानों की
खोज खबर की मंशा
साथ लाई हूं l"

कवि कहते हैं मनुष्य जीवन में नारी का स्थान अक्षुन्न है l नारी के विविध रूप है माता, बहन, तथा प्रेयसीl इन सभी रूपों को सोनकर जी अपने काव्य में दिखाते हैं l

यथा-

"नारी का हर रूप मोहक है-
मां, बहन, मित्र ,प्रेयसी l
उनकी दुश्मनी में भी नफासत है l"

समाज में नारी का स्थान महत्वपूर्ण है वह केवल उसके भोग और मनोरंजन का साधन नहीं है नारी पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर श्रम करती है l वह पुरुष के जीवन की अपूर्णता को दूर करती है l डॉ. एच. डी. सालुंखे नारी को साहित्य में स्थान देने का समर्थन करते हुए लिखते हैं- " मानव जीवन में जो स्थान नारी को है, वही स्थान उसे साहित्य में प्राप्त होना स्वाभाविक हैi

मनोज सोनकर मार्क्सवादी कवि हैं l शबरी संबोध में उनकी मार्क्सवादी विचार प्रणाली स्थान - स्थान पर दिखाई देती हैं l मार्क्सवादी विचार प्रणाली के अनुसार समाज में नारी का स्थान पुरुष के समान है l नारी भी पुरुषों की तरह श्रम करके धन कमाती है l मार्क्सवादी कवि नारी पर होने वाले अन्याय, अत्याचार एवं शोषण का यथार्थ चित्रण करके उसके व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए प्रयत्नशील है l मार्क्सवादी कवि निम्न वर्ग की नारी को श्रेष्ठ मानते हैं क्योंकि वह सभी कष्टों को झेलती हुई पुरुष के समान मेहनत करके अर्थ प्राप्ति करती है l मार्क्सवाद नारी को घिनौनी परंपराओं से मुक्ति देना चाहता है जिसका अनुकरण सोनकर जी देवदासियां काव्य में करते हैं -

यथा -

"मेरी बेटियां
कल भी कटी थी
आज भी कट रही हैं
लेकिन
कब तक....?
सिर - कटी येल्लम्मा
देवी हो गई
मेरी बिटिया
उसे भेट रूप चढ़ने लगी
हजारों चढ रही है
लाखों चढ़ रही है
चढ़ती ही जा रही है.....l"

सदियों से लेकर आज तक समाज स्त्री को केवल भोग की वस्तु ही मानता है l रामायण, महाभारत जैसे धार्मिक ग्रंथों में भी स्त्री को ही अवहेलना का पात्र बनना पड़ा l महाभारत की द्रोपदी का चीर हरण प्रसंग पुरुष वर्ग की मानसिकता का दयनीय उदाहरण है l उस समय द्रोपदी को वस्त्र पहुंचाने वाले भगवान श्री कृष्ण बंधु बनकर रक्षा करते हैं किंतु आज कोई भी भगवान नारी की रक्षा करने के लिए दौड़कर नहीं आते l आज दिन दहाड़े अनेक निर्भया पर अमानवीय अत्याचार हो रहे हैं आज का समाज नन्ही गुड़ियाओ को भी नहीं बक्षता l मनोज सोनकर ताका- तरंग में अत्याचार का वर्णन करते हैं जो दिल दहला देता है-

ईमानदारी
बलात्कार- शिकार
अबला नारी
बचे नहीं बचाए
साजिश खाती जाए l

सोनकर जी ने शहरी तथा ग्रामीण दोनों प्रकार की नारियों का चित्रण किया है l शहरों में काम करने वाली कामकाजी स्त्रीयो का काम के स्थान पर होने वाला शोषण, दमन कवि ने अत्यंत सूक्ष्मता से अंकित किया है l उतनी ही सूक्ष्मता से ग्रामीण स्त्री को कवि चित्रित करते हैं l गांव की बुधिया, छनगुरी,कबरी, फुलंनी,मंगरी, बधई आदि पात्रों के द्वारा ग्रामीण परंपराओं में पीसती , जाती पाती तथा वर्ग भेद की श्रृंखलाओं में जकड़ती नारियो के आक्रोश को कवि वाणी देते है-

"हर सड़क पर
मंगरी है
बच्चे हैं बाप है
मंगरिया है
बच्चों और बापो की कतार है
लेकिन
अनिश्चित मजदूरी
अनिश्चित कौर
अनिश्चित भविष्य

उन्हे
धकिया रहे हैं
धकियाते ही जा रहे हैं l"

गांव की इन परंपराओं में बाल विवाह, देवदासी, काली माई, देह व्यापार आदि नारी जीवन को पूरी तरह से तहस-नहस कर देता है l कच्ची उम्र में ही छोटी बच्चियों का देवताओं के साथ विवाह रचा जाता है और देह व्यापार जैसे घिनौने कृत्य में उन्हें ढकेला जाता है l यथा-

"नन्हीं नन्हीं मुनिया
देवी देव को समर्पित होती है
खून के आंसू रोती है.....l"

इन नारियों के कष्टप्रद जीवन से कवि मन सिहर जाता है l गाँव की ये स्त्रीया असंख्य कष्टो को ढोती हैं गोबर उठाना, बोझा ढोना, हल चलाना, रोपनी करना, ढेकुल चलाना, खेत गोडना, रोपनी करना, निराई करना, दवरी करना, घास काटना, खटिया बिनना, लकड़ी चीरना, गोरू चराना आदी जीतोड मेहनत करते हुये अपने अस्तीत की लडाई अकेले ही लड रही हैं l शबरी संबोधित द्वारा कवि नारी मुक्ति का बिगुल बजाते हैं वह नारी वर्क को वर्गो को एकजुट होने का और संघर्ष करने का संदेश देते हैं l जैसे-

"आओ!
एकजुट होकर
संघर्ष
और तगड़ा करें
नये समाज की नींव धरे l"

आज आज की नारी मुक्ति की मांग कर रही है व स्वतंत्र होकर जीना चाहती है पुरानी पौराणिक द्रोपदी का अनुकरण वह करना नहीं चाहती l जैसे -

"द्रोपदी हंसे
पांच जनों के बीच
वह न फसे
पसंद जो भी आए
संग उसके के जाए l

उपसंहार -

इस प्रकार मनोज सोनकर का समस्त काव्य नारी उत्पीड़न की अमर गाथा है l सदियों से नारी की होती अवहेलना, दुख, दर्द, शोषण, अन्याय, अत्याचार एवं आक्रोश को कवि समाज के सम्मुख लाना चाहते हैं l युग - युग से प्रताड़ित नारी को कवि मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना चाहते हैं l शबरी संबोध मे मिथकीय पात्रों द्वारा मनोज जी ने पौराणिकता के पट पर आधुनिकता को रखने का सफल प्रयास किया है l रामायण की शबरी इस खंड काव्य की प्रमुख नायिका है l शबरी पौराणिक ऐतिहासिक तथा आधुनिक हर वर्ग की नारी का प्रतिनिधित्व करती है l नारी संघर्ष की मशाल प्रज्वलित करते हुए समाज की कुरीतियों परंपराओं तथा सदियों से चली आ रही भ्रष्ट प्रथाओं का दहन करना चाहती हैl

अंतः मनोज सोनकर का शबरी- संबोध स्त्री मुक्ती की मांग करते हुए नारी को सतंत्र अस्तित्व प्रदान करना चाहता है l

संदर्भ ग्रंथ:

१. शबरी - संबोध - मनोज सोनकर
२. शोषितनामा - मनोज सोनकर
३. काव्यशास्त्र - डॉ.भगीरथ मिश्र
४. ताका तरंग - मनोज सोनकर
५. आर्ट गैल्लरी - मनोज सोनकर

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

रामकुमार वर्मा लिखित एकलव्य खंडकाव्य में दलित चेतना

डॉ.सौदागर सालुंखे
हिंदी विभाग प्रमुख, मा.ह.महाडीक कला और वाणिज्य महाविद्यालय, मोडनींब

डॉ रामकुमार वर्मा बहुआयामी लेखक है। उन्होंने काव्य एकांकिका आलोचना निबंध आदि विधाओं लेखन किया है। फिर भी उनकी पहचान एकांकी कार के रूप में अधिक हुई है। एकलव्य दलित संवेदना को जागृत करने वाला खंडकाव्य है। एकलव्य महाभारत से संबंधित भील पुत्र है। इसमें आर्य अनार्य स्वर्ण दलित संस्कृति के संघर्ष को दिखाकर अछूत वर्ग के प्रतिनिधि पात्र एकलव्य की प्रसिद्ध कथा को प्रस्तुत किया है। एकलव्य का संघर्ष दिखाते समय एकलव्य की मानसिकता का गहराई से चिंतन किया है। एकलव्य की उदात्ता ,अध्ययन शीलता, गुरु भक्ति , अतिथी प्रेम, धनुर्विद्या ,त्याग आदि की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति स्पष्ट हुई है। वीर एकलव्य द्वारा गुरु द्रोण के चरणों पर झुक कर अपना परिचय देना मन ही मन गुरु मानने का विवरण और धनुर्विद्या सीखने की इच्छा स्पष्ट होते हुए भी मात्र केवल भील पुत्र धनुर्विद्या के उत्तराधिकारी नहीं हो सकते इस कारण गुरु दक्षिणा में अंगूठा मांगने की प्रवृत्ति यह दर्शाती है।

गुरु द्रोण वैश्यो शुद्रो को धनुर्वेद की शिक्षा की उपयोगिता निरर्थक मानकर उसे धनुर्वेद से वंचित रखते हैं। एकलव्य अपनी भूमिका पर स्थित है वह जानता है कि गुरु द्रोण राजकुमारों के आचार्य है और वे मात्र उन्हीं को शिक्षा देते हैं। फिर भी अपनी राजकुमार उनके साथ तुलना करते हुए एकलव्य अपनी योग्यता सिद्ध करना चाहता है।एकलव्य आचार्य द्रोण द्वारा प्रताड़ित होने पर भी उन्हीं को गुरु मानकर धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय करता है ।एकलव्य की द्रोण के प्रति अटूट श्रद्धा अपने ज्ञान तथा साधना पर दृढ़ विश्वास दिखाती है ।आश्रम मे उनकी मूर्ति की स्थापना करके अपनी धनुर्वेद साधना में एकलव्य लीन रहता है।

उस समय उसके मन में वररामकुमार वर्मा लिखित एकलव्य खंडकाव्य में दलित चेतना"

डॉ रामकुमार वर्मा बहुआयामी लेखक है। उन्होंने काव्य एकांकिका आलोचना निबंध आदि विधाओं लेखन किया है। फिर भी उनकी पहचान एकांकी कार के रूप में अधिक हुई है। एकलव्य दलित संवेदना को जागृत करने वाला खंडकाव्य है। एकलव्य महाभारत से संबंधित भील पुत्र है। इसमें आर्य अनार्य स्वर्ण दलित संस्कृति के संघर्ष को दिखाकर अछूत वर्ग के प्रतिनिधि पात्र एकलव्य की प्रसिद्ध कथा को प्रस्तुत किया है। एकलव्य का संघर्ष दिखाते समय एकलव्य की मानसिकता का गहराई से चिंतन किया है। एकलव्य की उदात्ता ,अध्ययन शीलता, गुरु भक्ति , अतिथी प्रेम, धनुर्विद्या ,त्याग आदि की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति स्पष्ट हुई है। वीर एकलव्य द्वारा गुरु द्रोण के चरणों पर झुक कर अपना परिचय देना मन ही मन गुरु मानने का विवरण और धनुर्विद्या सीखने की इच्छा स्पष्ट होते हुए भी मात्र केवल भील पुत्र धनुर्विद्या के उत्तराधिकारी नहीं हो सकते इस कारण गुरु दक्षिणा में अंगूठा मांगने की प्रवृत्ति यह दर्शाती है।

गुरु द्रोण वैश्यो शुद्रो को धनुर्वेद की शिक्षा की उपयोगिता निरर्थक मानकर उसे धनुर्वेद से वंचित रखते हैं। एकलव्य अपनी भूमिका पर स्थित है वह जानता है कि गुरु द्रोण राजकुमारों के आचार्य है और वे मात्र उन्हीं को शिक्षा देते हैं। फिर भी अपनी राजकुमार उनके साथ तुलना करते हुए एकलव्य अपनी योग्यता सिद्ध करना चाहता है।एकलव्य आचार्य द्रोण द्वारा प्रताड़ित होने पर भी उन्हीं को गुरु मानकर धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय करता है ।एकलव्य की द्रोण के प्रति अटूट श्रद्धा अपने ज्ञान तथा साधना पर दृढ़ विश्वास दिखाती है ।आश्रम मे उनकी मूर्ति की स्थापना करके अपनी धनुर्वेद साधना में एकलव्य लीन रहता है।

उस समय उसके मन में वर्णाश्रम व्यवस्था के खिलाफ विद्रोही विचार उभर उठते हैं ।गुरु द्रोण एकलव्य के आश्रम मे अपनी ही मूर्ति देखकर और उससे पूर्ति कर एकलव्य की लक्ष्य संधान की लगन के कारण द्रोण बेचैन हो उठते हैं ।उन्हें लगता है कि एकलव्य के बानो की बराबरी राजकुमार नहीं कर सकते। उसकी श्रद्धा और लगन साधना राजकुमार उनको बहुत दूर धकेल देती है। तभी एकलव्य की धनुर्वेद कुशलता सुनने के बाद अर्जुन उनसे ना चाहता है। गुरु द्रोण
एकलव्य की कुशलता साधना देखकर सोचने लगता है
और उसे लगता है मुझसे कई गुना एकलव्य की धनुर्वेद साधना श्रद्धा बहुत बड़ी है। इस पृथ्वी पर एकमात्र धनुर्धारी एकलव्य ही है मतलब बुद्धिमत्ता वर्णाश्रम व्यवस्था का आधार नहीं हो सकती अर्जुन की गुरु द्रोण एकलव्य के आश्रम में अर्जुन समेत सभी पांडवों को लेकर पहुंच जाता है। गुरु आश्रम में पहुंचने के बाद उनके चरणों पर प्रसन्नता से बानो द्वारा उनके पैरों पर फूल अर्पण करना और सभी का स्वागत करना 7 बानो की सहायता से आचार्य द्रोण की परिक्रमा लगाना गुरु द्रोण की जय जयकार करके उनके चरण छूना तथा उसकी गुरु भक्ति देखकर प्रसन्न होते हुए भी उसे प्रताड़ित करना अर्जुन को बुरा लगता है और वह गुरु द्रोण की निंदा करता है। अपने गुरु पर आंच ना आए इस उद्देश्य से गुरु द्रोण के चरणों की कसम खाकर धनुष बाण नो उठाने की गुरु दक्षिणा में अपना अंगूठा काटकर समर्पित करने का महान योगदान निभाता है। एक भीड़ पुत्र की आकाश छूने की इच्छा शक्ति उसकी गुरु भक्ति और तपोबल एकलव्य को निश्चित ऊपर उठा सकती है किंतु उसके विचारों की प्रगल्भता पर भी प्रकाश डालती है। शिक्षा क्षेत्र में भेदा भेद की अनूप योग्यता पर प्रकाश डालना कवि का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

एकलव्य खंडकाव्य में दलित चेतना उबरी है।

एकलव्य की ड्रोन द्वारा हुई उपेक्षा प्रताड़ना के बाद एकलव्य में उभरे संघर्ष मूवी विचार संघर्ष दिखाई देते हैं। व्यवस्था के प्रति विद्रोही वृत्ति उसके आत्म संयम का परिचय कराती है । ध्यान धारणा तपस्वी ता गुरु भक्ति धनुर्विद्या के प्रति लगन देखकर द्रोण के मन में उभरा अंतर्द्वंद व उसके खंडित

व्यक्तित्व की पहचान है एकलव्य की दुखांतीका पाठकों को संवेदनशील बना कर वर्ण व्यवस्था की चिरफाड करती है का आदर्श प्रेरणादाई जरूर है कालबाह्य भी जाति का बार-बार उल्लेख होने पर भी अपनी मर्यादा को बंद करना सोचनीय है।

प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने की प्रेरणा हमें 1 लोगों से मिलती है । गुरु द्रोण का कठोर व्यवहार राजनीतिक परिवेश की उपज है तो गुरु द्रोण की आर्थिक मजबूरी गुरुकुल से राजकोट तक का आचार्य द्रोण सफर आर्थिक दुर्बलता का 5 है। अपने शिष्य एकलव्य को धोखा देने की प्रवृत्ति आधुनिक युग के गुरु की स्वार्थी प्रवृत्ति का द्योतक है। समाज में द्रोणाचार्य जैसे अनेक गुण मिलते हैं। जो शिष्य के खून को चूस कर अपना उल्लू सीधा करते हैं अतः गुरु द्रोण का व्यवहार आज के लिए कॉल सापेक्ष लगता है।

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

समाज में किन्नरों की मुख्य समस्याएं

सुभाष विष्णू बामणेकर
पीएचडी शोधार्थी, हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापूर-416 001

आदिकाल में मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए समूह में रहता था। उसके आपसी व्यवहार एवं संबंधो से समाज का निर्माण हुआ है। इसलिए वह एक सामाजिक प्राणी कहलाता है । इन्ही सामाजिक संबंधो के जाल को समाज कहा गया है । यह समाज दो लिंगो पर आधारित है । मनुष्य होने के नाते स्त्री और पुरुष के रूप को ही मान्यता मिली है । समाज में इन दो लिंग के अलावा और तिसरा लिंग भी है । जिसे थर्ड जेंडर, तृतीय लिंगी कहा जाता है । इनको अलग अलग भाषा में अलग अलग शब्दों का उपयोग किया जाता है । जैसे किन्नर, हिजड़ा, छक्का, मौसी, बुचरा, हंसा, मनसा, निलिमा आदि । किन्नर समाज भी समाज का एक अहम हिस्सा है। समाज यह भूल गया है कि, उन्होंने भी एक स्त्री की कोख से जन्म लिया है । परिवार और समाज में उसे सामान्य मनुष्य का दर्जा मिला नहीं । हमेशा उनको अलग नजरों से देखा गया। हक, अधिकार से वंचित समाज है । उपेक्षित, तिरस्कृत पीड़ा, वेदना की जिंदगी जीने लगा है। अनेक हिंदी उपन्यांसों में किन्नर समाज की अनेक समस्यांओं को समाज के सामने उजागर किया है । जैसे यमदीप-नीरजा माधव, किन्नर कथा -महेंद्र भीष्म, मैं भी औरत हूँ-अनुसया त्यागी, 'गुलाम मंडी' -निर्मला भुराडिया, 'पोस्ट बॉक्स नं 203 नाला सोपारा'-चित्रा मुदगल, 'मै पायल'-महेंद्र भीष्म, 'दरमियाना' -सुभाष अखिल आदि. इन उपन्यांसों मे किन्नरों के अनेक समस्या, पारिवारिक समस्या, मानता की समस्या, रोजगार की समस्या, धार्मिक समस्या, राजनितिक समस्या, समाज में व्यावहारिक समस्या, आर्थिक समस्या, शिक्षा की समस्या तथा इलाके से संबंधित समस्या है।

किन्नर समाज एक ऐसा समाज है जो अपना विशेष स्थान रखते है। यह समाज एक ऐसा अंग माना जाता है, जो स्त्री और पुरुषों से अलग होता है। शारीरिक कमी के कारण परिवार से बहिष्कृत किए गए तथा समाज से वंचित, उपेक्षित किन्नर। समाज इस समाज की मुख्य धारा में कोई स्थान स्थापित नहीं करने देता। कई सालों से उनके साथ भेदभाव होता चला आ रहा है । पौराणिक ग्रंथो के संदर्भ से मालूम होता है कि, इनका जीवन कितना खुशहाली का था और अब इन्हे कितनी समस्याएं, पीडाएं सहनी पड़ रही है। इनके संदर्भ में जानकारों का कहना है। "300 से 400 इ. पू. में संस्कृत में लिखे गए सूत्र में भी स्त्री और पुरुष के अलावा एक अन्य लिंग की बात कही गयी थी तथा ऐतिहासिक जानकारी से यह पहचान है कि, भारत में मुगलों के राज में किन्नरों की काफी इज्जत हुआ करती थी । इन्हे राजा का करीबी माना जाता था तथा कई इतिहासकारों का यहाँ तक दावा है कि, कई लोग अपने बच्चों को किन्नर बना दिया करते थे ताकि राजा के पास उन्हें नोकरी मिल जाए।"1

पारिवारीक समस्या:

इन्सान जब किसी परिवार से जन्म लेता है तो सबसे पहले परिवार उसका आधार होता है, अब परिवार ही अपने किन्नर बच्चे को ठुकरा दे, परिवार से बेदखल कर दे, उसके संग सामान्य लोगों की तरह व्यवहार ना करे तो वह उस परिवार से दूर जाता है। परिवार को भी मजबूरन किन्नर बच्चें को उसी समाज को सौंप दिया जाता है। ऐसे ही निर्माण होता है किन्नर समाज । अपना ही परिवार उनकी समस्या का कारण बन जाए तो बहुत ही बडा हृदयविदारक विषय बन जाता है। घर परिवार वाले सदस्य उसे पूर्ण रुप से स्विकार नहीं करते । सबसे बडी समस्या है। परिवार में दोयम व्यवहार के कारण, उसके मन में यह धारणा उत्पन्न होने लगती है कि, वह इस परिवार में रहने लायक नही है। उसे उसके जैसे ही समाज में चले जाना चाहिए जहाँ उसे महत्व दिया जाए तथा उसके व्यक्तित्त्व का मान-सम्मान हो । सभ्य कहे जाने वाले समाज में उसके लिए कोई स्थान नहीं है। उसके साथ अच्छा व्यवहार नही किया जाता । उसके कारण परिवार के सभी सदस्यों को अनेक परेशानियों का सामना करना पडता था । जब परिवार के लोग ही सदस्य का शोषण करने लगे तो ऐसे विशेष बच्चों अर्थात किन्नरों के पास अन्य कोई रास्ता नही बचता तथा वे किन्नर समाज में ही चले जाते है।

सामाजिक समस्या :

मानव समाजप्रिय प्राणी है। वह समाज में रहकर अपनी दिनचर्या को चलता है। बिना समाज में गए कोई भी व्यक्ति अपना ना तो विकास कर सकता है, और ना ही अपनी दिनचर्या। किन्नरों को भी समाज मे रहकर अपनी दिनचर्या पूरी करनी पडती है। परंतु उनको सामान्य मनुष्यों से अलग हटकर समाज में देखा जाता है। आज भी समाज में अपनी अस्मिता के लिए लडाई लडनी पडती है। समाज में रहकर हक, अधिकार, न्याय, समानता, भाईचारा, और शिक्षा एवं नौकरीयों के लिए उनको कोई समाज में स्थान नही दिया जाता। दक्षिण भारत मे किन्नरों को थिरू न नगाई नाम से वे वहा के समाज में पहचाने जाते है। सामाजिक समस्या का उदाहरण है, "महेंद्र भीष्म की रचना 'किन्नर कथा' तथा पारू मदन नाईक की 'मै क्यों नहीं' पर आधारित नाटक सादरीकरण हुआ उसमें एक बादशाह के घर में बेटी पैदा होती है। जब वह बडी होने लगती है तो पता चलता है की वह किन्नर है, बादशाह को इसकी जानकारी लगते ही वह अपने मंत्री से उसको मारने के लिए कहता है, और जंगल में फेंकने का आदेश देता है। लेकिन मंत्री उसे मारने की बजाय एक किन्नरों के डेरे पर देता है। जिसके के बाद वहाँ पर रहने लगती है, समय के साथ वह बडी होती है। बादशाह के वहाँ एक शादी का आयोजन होता है वहा खुश होकर बधाई के लिए किन्नर नाचने आते है, और उसमे बादशाह की बेटी भी आती है। तो उसके माँ बाप पहचान लेते है। और बादशाह गुस्से में उसे गोली मार देता है, लेकिन उस हादसे से वह बच जाती है। यहाँ कहानी मोड लेती है, और राजा के बेटे का दोस्त जो कि, मेडिकल की पढाई करके विदेश से वापस लौटता है, वह उस किन्नर से प्यार करने लगता है। और उसे सर्जरी कराने के लिए अपने साथ ले जाता है।"2 इस नाटक साधारीकरण कथा में किन्नरों की कुदरती एवं सामाजिक समस्या को प्रमुखता से दिखाया गया है।

आर्थिक समस्या:

परिवार से अलग समाज से उपेक्षित किन्नरों का स्थान एक अलग रुप में स्थापित हो तो उनको अपने पेट को पालने के लिए कई भारी समस्याओं का सामना करना पडता है। जिससे समाज में रहने वाले लोग उनका शोषण करते है। तथा उनके साथ बुरा व्यवहार और बर्ताव करते है। इन्सान ही समझा जाता उन्हें अपनों से अलग मानकर उनके साथ एक विचित्र रुप से पेश आते है। अब समाज में जब उनको स्थान ही नही दिया जाएगा तो उनके समक्ष आर्थिक समस्या होना साधारण रुप में लाजमी हो जाता है। इस समस्या की पुष्टि करते हुए एक तथ्य इस प्रकार है की, समाज में रहनेवाला एक किन्नर उनका नाम चाहे कुछ भी हो परंतु खुद के वह सीमा बताते है। यह कि "दिल्ली में निवास करते हुए 23 वर्ष आयु में अपने दो बच्चों का पालन पोषण करने के लिए शाम होते ही इनको स्त्रियों जैसा शृंगार करके तैयार होना पडता है, तथा अपने देह व्यापार करने के लिए समाज में इनको जाना पडता है। जिससे ये अपने परिवार का अच्छा पोषण कर सके। अपने परिवार का भरण पोषण करने के लिए इनको इस दलदल में उतरना पडा।"3 किन्नर समाज आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टीसे दु:खी है, व्यथित है, अपमानित है, मानसिक दृष्टि से कुंठीत है। इसलिए उनकी आर्थिक समस्या सामने आती है। इनके द्वारा कही गई कुछ पंक्तिया इसप्रकार है की, "मेरे लिए सेक्सवर्क जरुरी है क्योंकी मुझे अपने परिवार का खयाल रखना है। कोई अपनी खुशी से यह नहीं करता हमें यह करना पडता है, क्योंकि हमारे पास और कोई चारा नही है। दरअसल इनका असली नाम हरदीप है, ये पश्चिमी दिल्ली के एक मकान में दो बच्चों के साथ जिनकी उम्र छह साल, दुसरे की उम्र एक साल की है, उनके साथ ही रहते है। वह दिनभर बच्चों के के डॅडी रहते है और शाम होते ही अपने चेहरे को सजा कर सीमा बन जाते है। यह रोजरात में दो सौ कमा लेते है। सन 2009 की एक घटना में इनके साथ एक पुलिस कर्मी ने इनका बलात्कार किया जिसके कारण यह एच.आय.व्ही. से संक्रमित है।" इन पंक्तियों द्वारा यह स्पष्ट है कि, इनको आर्थिक रूप से किन किन समस्याओं का सामना करना पडता है तथा अन्य कई किन्नरो को भी ऐसी समस्याओं का सामना समाज में रहकर करता पडता है।

धार्मिक समस्या:

किन्नर समाज को धर्म से संबंधित भी कई समस्याओं का सामना करना पडता है। कई धार्मिक स्थलों पर किन्नरों का प्रवेश निषेध माना जा रहा है। धार्मिक कर्मकांडो में भी इनको एक सिमित रूप में स्थान प्रदान किया जा रहा है। जिसके कारण यह अपने इष्ट देव की पूजा करने में तथा बडे धार्मिक पूजापाठ का आयोजन करने में इनको कई समस्याओं का सामना करना पडता है। जिसके कारण उनकी भक्ति, पूजा, पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाती है। "दिल्लीस्थित कलंदर गार्डन में एक किन्नर चंदाजी से मिलकर उनसे बात करने पर पता चला कि, उनको एक नही कई धार्मिक समस्याओंका सामना करना पडता है। और कई पूजा के स्थलोंपर जाना भी वर्जित है। इस धार्मिक समस्या को देखते हुए मुंबई के ठाणे में एल.बी.एस. माल ग्राउंड में मुरारी बापू की राम कथा आयोजन 22 दिसंबर 2016 से हुआ. यह आयोजन किन्नर समुदाय के लिए पहली बार कराया गया था। जिसमें देश के कई राज्यों के किन्नरों ने अपना योगदान दिया तथा बहोत बडी संख्या में किन्नर इस कथा में शामिल हुए। क्योंकि ऐसी कथा का आयोजन किन्नरों के समुदाय के लिए पहली बार करवाया जा रहा था। बापूने पहली बार किसी किन्नर को अपने पास बिठाकर रामकथा में उनके गुण तथा अवगुण के बारें मे समझाया था। एवं किन्नर आखांडे की महामंडलेश्वर लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी ने कहा की, "किन्नरों को समाज से उपेक्षित रखा जाता है, इस तरह के आयोजन से हमें सतगुरू की सेवा का अवसर पहली बार प्राप्त हुआ है। और यह पहली बार हुआ है कि, जब से किन्नरों का हिंदू धर्म से पतन हुआ तब से किसी भी धर्म मे यह पहली बार है कि, कोई धर्मगुरू है तो वह 'मुरारी बापू' है। जिन्होंने किन्नर समुदाय को अपनाया तथा हम सबको रामकथा के बारें मे बताया।"4 इससे साफ जाहीर हो जाता है कि, किन्नरोंको धार्मिक समाज से उपेक्षित रखा जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में किन्नरों की समस्या:

किन्नर समाज में बहुत से लोग है, जिन्हें शिक्षा में रुचि है, वह चाहते कि, शिक्षा से उच्च स्थान प्राप्त कर मान, सम्मान से जीवन बिताए, किसी के उपर बोझ न बने। परंतु किन्नरों के समक्ष यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि, वह शिक्षा ग्रहण कहां से करे? क्योंकि शिक्षा की कई संस्थान ऐसे है जो कि, किन्नर समाज के लोगों को संस्थान में प्रवेश नही देते है। शिक्षा हर किसी के जीवन में महत्त्व रखती है। भारतीय संविधान ने उनको हक दिया है। किन्नर अगर प्रवेश लेते है तो उनके संस्थान की मान मर्यादा का क्या होगा? उनके शिक्षा संस्थान की समाज में कैसी पृष्ठभूमी तयार होगी? इस डर के कारण ऐसे कई संस्थानों ने किन्नर लोगों को प्रवेश देने से मना कर दिया । इससे इनका मनोबल कमजोर होता चला जाता है। जिसकी वजह वे उनकी शिक्षा ग्रहण करने की लालसा खत्म हो जाती है। फिर समाज में वही अन्य किन्नरों की तरह अपना जीवन यापन करने लगते है।

इलाके की समस्या:

किन्नर समाज की यह भी एक समस्या सामने आती है। कई जगह पर ऐसा होता है कि, किसी इलाके में किसी अन्य क्षेत्र के या इलाके के किन्नर आकर इन्हें डराते, धमकाते है। उनके रोजमर्रा के कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप करते है। और उनको परेशान करते है। तथा उनकी व्यावसायिक गतिविधीयोंमे बाधा उत्पन्न करते है। इसप्रकार की समस्या की पुष्टि करते हुए एक उदाहरण उत्तरप्रदेश का है, "उत्तरप्रदेश के किन्नरों ने उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री आदित्यनाथ जी से बाहरी किन्नरों की शिकायत की यह शिकायत देश की पहली मेयर किन्नर रही। आशादेवी उर्फ अमरनाथ यादव की शिक्षा बरखा किन्नर मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ जी के पास बाहरी किन्नरों की शिकायत लेकर पहुंची। उन्होंने आरोप लगाया कि, बाहर से आए कुछ उत्पाती किन्नर स्थानिय किन्नरों केसाथ में खलल डालते है। एवं कई बार यह किन्नर उससे मारपीट पर उतारु भी हो जाते है। यही नहीं पकडे जाने पर आखों में मिर्ची डालकर भाग जाते है। मुख्यमंत्री जी ने आवश्यक कार्यवाही का आश्वासन दिया है।"5 इसी प्रकार किन्नरों की इलाके की समस्या भी गंभीर समस्या है।

उपर्युक्त विवेचन के द्वारा हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि, किन्नरों को समाज में कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पडता है। चाहे वह सामाजिक रूप से हो या आर्थिक रुप से हो । दिनचर्या प्रतिदिन समस्याओं में रहकरही व्यतीत है। किन्नर बच्चों के परिवार के सदस्योने लाड प्यार से उसका भरण पोषण करके उसको अपनाना चाहिए। समाज में हर किसी ने किन्नरों के साथ अच्छा व्यवहार करना जरुरी है। सरकार को उनकी समस्याओं का समाधान करने के लिए कुछ नए कानुनों का निर्माण करना जरुरी है। प्रत्येक क्षेत्र में सामान्य व्यक्ती वर्ग का व्यक्ती स्थान प्राप्त करता है। ठिक उसी प्रकार इन्हे भी समाज में स्थान प्रदान किया जाना चाहिए। क्योंकि ये भी संविधान में सामान्य लोगों की तरह समानता का अधिकार प्राप्त किये

हुए है। हर क्षेत्र मे इनका भी अपना एकस्थान होना चाहिए। ताकि इनको ऐसा ना प्रतीत हो कि, यह समाज से रहने वाले लोगों से अलग है। अपना मानसम्मान तथा अपनी प्रतिष्ठा स्थापित कर समाज की मुख्य धारा में प्रवाहित हो।

संदर्भ:

1. किन्नर नही, हिजडा समुदाय (कुछ तथ्य-कुच्छ सत्य) नीरजा माधव
2. किन्नर विमर्श साहित्य और समाज स. मिलन बिरनोई.
3. साहित्य एवं समाज में किन्नर जीवन सं, राडगे गंगाधर पिराजी
4. वही पृष्ठ 148
5. वही पृष्ठ 149
6. वही पृष्ठ 149
7. वही पृष्ठ 152

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जयकाली बहू

डॉ. सुचिता संतोष भोसले
कला, वाणिज्य व विज्ञान महिला महाविद्यालय, कसबा बीड,
तहसिल - करवीर, जिला – कोल्हापुर, E-mail: sbhosalesuchita@gmail.com

हिंदी साहित्य के प्रमुख साहिताकार के रूप में जिनका नाम लिया जाताहै,वे हैं दिल्ली के प्रताप सहगल। उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। 'जयकाली बहू' यह इनका नाटक हैं, जो तेरह पात्रों में विभाजित और तीन दृश्यों में लिखा हुआ नाटक है।

'जयकाली बहू ' नाटक की प्रमुख नायिका हैं,' जयकाली"। पुरा नाटक इन्हीं के इर्द-गिर्द घूमता है। जयकाली यह माधवचंद्र की पत्नी हैं। माधवचंद्र को गुजरे हुए दस दिन हो गए हैं। नाटक के शुरुआत में ही जनार्दन और रामदास दो पात्र बातचीत कर रहे हैं। माधवचंद्र ने जो उनसे पैसे लिए थे, उन्हें वह लेने आए हैं। दोनों की चर्चा से यह हल निकलता हैं, जनार्दन ठाकुरबाड़ी में जाने के लिए थोड़ाहिचकीचारहारहा है। तो रामदास उसे कहता है की, जयकाली बहू के बारे में अब क्या सोचना ? हजारो लोग मरते हैं। मतलब इस प्रकार वह अपनी निर्दयता दिखाकर केवल पैसों को महत्त्वदेताहुआप्रतित होता है। -

जयकाली बहू के घर में दीवान जीसे मिलते है तथा बहू के कहने अनुसार उन दोनों की पाई-पाई चुका दी जाती है। बातों-बातों से यह भी पता चलता है कि, मृत्यु के पश्चात कुछ दिन बहू ने खाना भी ठीक से नहीं खाया अब थोड़ा संभल गई है सबका हिसाब किताब कर रही है फिर भी रामदास कहता है सो तो है दीवान जी "लेकिन औरत चाहे कुछ भी कर ले मर्द की जगह नहीं ले सकती।"[1]

रामदास ऐसे पुरुष प्रधान संस्कृति का प्रतीक है जो नारी को केवल गुड़िया या कठपुतली ही समझते हैं एक विधवा स्त्री पति के पश्चात जायदाद को किस प्रकार संभालेगी इसकी चर्चा करते हैं इस पर उत्तर देते हुए दीवान जी कहते है "कहते तो आप ठीक हो रामदास पर औरतों पर सारी जिम्मेदारी एकदम से आ जाए ना फिर वह कोई भी कदम उठाने से पीछे नहीं हटती। इसी को लीजिए... यह ठाकुरबाडी कितनी टूटी-फूटी लग रही है, कल से इसके चारो ओर दिवार खडी होगी ओर वह जो मंदिर देख रहे हैं न! वह भी नये रूप में ढाला जायेगा....माधवचंद्र पर जितने कर्ज़ थे, वह बहुजीं के आदेश से चुकता कर दिये है....आगे देखिये क्या होता है!"[2]

दीवान जी के माध्यम से एक नारी भी सारी जिम्मेदारियाँ आने पर किस प्रकार क्षमता के साथ उसका निर्वाह करती है। परिस्थिति से जुझकर आगे बढ़ सकती है, आत्मनिर्भर होकर समस्या से निपटकर बाहर निकलती है, यह प्रस्तुत नायक के माध्यम सेनाटककार प्रताप सहगल् ने दिखाया है।

दृश्य दो मे पार्वती नामक कामवाली बर्तन माँज् रही है और जयकाली बहू से बातें कर रही है। यहाँ जयकाली बहू के विचार एक आदर्श पत्नी के रूप में दिखाई देते हैं। पार्वती समझाती है कि अब उदास कब तक रहेगी, बाबूजी का साथ आपके जीवन में यहि तक था, ऐसे सोच लो। जयकाली मन पर पत्थर रखकर आनेवाली परेशानियों का सामना अकेली करने के लिए तैयार होती है। फिर भी पति के साथ गुजारे हुये सुख दुःख पल भुलाये नहीं जा सकते।

पार्वती जब घोषजी और श्रीवास्तव की पत्नी जयकाली के बारे में क्या कहती है वह सुनाने लगती है तब उसकी बात काटते तेज आवाज मे कहती है, मुझे लोग मेरे बारे मैं क्या कहते हैं यह सुनना पसंद नहीं। और उसे फटकारते हुए कहती है, कि आगे इसतरह की बाते मुझसे मत करना । यहा पर जसकाली की यह चरित्रिक विषेशता परिलक्षित होती है कि वह फलाने - फलाने विषयों पर चर्चा करना नहीं चाहती। उसके नजरिये में ऐसी बातोंसे कुछ हासिल नहीं होगा। साथ ही वह मूल उद्देश्य से दूर हट जाएगी। इस प्रकार की चर्चा भी नहीं करना और सुनना भी नहीं चाहती है।

जयकाली को जब पता चलता है कि उसके नौकर की पत्नी बीमार है तो वह तुरंत दीवान जी को लेकर उसे देखने चली जाती है। रामुआ की पत्नी की हालत देखकर उसे वैद्यजी को दिखाने के लिए कहती है। पर रमुआ पैसे की बात करता है तब वह दीवान जी को उसे पैसे देने के लिए कहती है। यहाँ जयकाली का हदय दया से भरा हुआ दिखाती देता है। एक नारी दूसरी नारी की पीड़ा को समझकर उसे बाहर निकलने का प्रयास करती हुई दिखाई देती है।

वल्लभ नामक माधवचंद्र का मित्र जयकाली बहु के पास अपनी लड़की का रिश्ता लेकर आता है तो वह स्पष्ट रूप से कहती है की, "नहीं वल्लभजी..यह सब पहले की बाते थी...जब तक नलिन अपने पैरों पर खडा न हो जाय तब तक मैं उसके विवाह के बारें में सोच भी नहीं सकती।"[3]

जयकाली का कहना है की भले ही उनकी जायदाद है परन्तु व्यक्ति को स्वयंमनिर्भर होना जरूरी होता है। तब वह शादी करने योग्य बन सकता है। इसप्रकार जयकाली आधुनिक विचारों को लेकर चलनेवाली नारी है।

जयकाली मंदिर की सफाई, मरम्मत तथा पवित्रता पर भी ध्यान देते हुए पुजारी को डाटतीं है कि, दिखावे की सफाई मत करो, मन से काम करना चाहिए। इतना हि नहि उनके मंदिर में आनेवाले लोगों ने जो कुछ चढया है उसे मंदिर कि पवित्रता तथा मंदिर के कामो में खर्च करना चाहिए। इस प्रकार संदेश देती है। भतीजै ने गलती की तो उसे सजा भी देती है लेकिन ममतामयि हृदय होने के कारण फिर उन्हें पास भी लेती है। एक बार एक सूअर का बच्चा ठाकुरबाड़ी के मंदिर के पिछे छुपा था, जब जयकाली उस बच्चे को और उसकी माँ जो बच्चे के लिए तेजीसे दोड़कर आते देखकर उसका मन परिवर्तन होता है। बाहर से आवाज आती है सूअर का बच्चा आया है क्या ? हम उसे बली चढ़ाने ले जा रहे थे। तब जयकाली कहती है कि मेरी शरण में आया है, उस सुअर के बच्च्चे को नहीं दे सकती।

निष्कर्षत:

जयकाली में भूतदया के दर्शन होते है। उसमें इतना परिवर्तन होता है की वह अपने भतीजै को फूफी माँ से अब केवल माँ कहने के लिए कहती है। नाटककार प्रताप सहगल ने जयकाला बहू के माध्यम से एक विधवा नारी की व्यथा, संभलकर आपने कर्तव्य के समर्थता के साथ निभाने वाली नारी, कठिनाईयों से न घबराते हुए आगे बढ़नेवाली नारी, दूसरी नारियों के प्रति निरपेक्ष भाव से सेवा करने वाली जयकाली, मंदिर की पवित्रता को बरकरार रखनेवाली देवी, आधुनिक विचारों की स्वयंनिर्भरता पर विश्वास रखनेवाली, जानवर के प्रति जीवदया, भूतदया दिखानेवाली, ममतामयी, ऐसे अनेक रूपों मे जयकाली को नारी के प्रतिक के रूप मे दिखाया गया की। एक स्त्री की मनोव्यथा का यथार्थ वर्णन किया है। साथ हि उसमे एक आशा दिखाई है की अगर भतीजे को अपने बच्चे की तरह माने तो उसका अकेलापन कम होकर जीने की आशा पल्लवित हो सकती है।

संदर्भ:

1. सहगल, प्रतप, दस बाल नाटक, किताबघर प्रकाशन, 4855-56/ 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली -110002, 2011,45 पृष्ठ 56
2. ओझा दशरथ, हिंदी नाटक उद्‌भव और विकास, राजपाल एन्ड संस, 1590 मदरसा रोड, कश्मीरी गेट दिल्ली - 110006 2014

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

आज का भारतीय किसान:एक विमर्श

डॉ.सुनील अभिमन्यु गायकवाड
देशभक्त आनंदराव बलवंतराव नाईक कॉलेज, चिखली, तह.शिराला, जि.सांगली.
ईमेल - surekhasunil75@gmail.com

प्रस्तावना:

भारत देश एक कृषि प्रधान देश हैI इस देश में प्राचीन समय से लेकर अब तक खेती की परंपरा चलती आ रही हैI यह ग्राम जीवन का एक मुख्य अंग हैI वैसे देखा जाए तो भारत ग्रामों से बना हुआ एक देश हैI यहां रहनेवाले अधिकतर लोग कृषि से ही संबंध रखते हैंI कृषि के माध्यम से ही उनके जीवन की दिनचर्या शुरू होती हैंI इस देश का भारतीय किसान हमेशा से ही दरिद्रता, शोषणऔर निरक्षरता का शिकार होता रहा हैI इसी कारण वह दिन-ब-दिन गरीब होता जाने लगा हैI इसी कारण आज आर्थिक असमानता देसी-विदेशी ठेकेदारों का बोलबाला, जमींदारों, सेठ, साहूकारों, व्यापारियों, और उद्योगपतियों आदि के कारण किसानों की दयनीय अवस्था हो चुकी हैI इस के संदर्भ में डॉ.मोहम्मद जमील कहते हैं, कि "आजकल ऋण बैंक सहकारिता बैंक, लेसैंड बैंक और गैर लेसैंड बैंक भी देने लगे हैंI ऋण का अर्थ है, लोनI वर्तमान ग्रामीण समाज में बैंकों से ऋण ले लेना एक फैशन बन गया हैI जब किसान अकाल के कारण या फसल ठीक न होने के कारण जब ऋण चुका कर वह कष्टों के बवंडर में गिर जाता हैI तब सहायता करने वाले बैंक भी किसानों को सताते हैंI ऋण वसूल करने के लिए वह इंसान को सताते हैंI और अपमान करते हैंI घर के दरवाजे भी खींच ले जाते हैंI कोई इज्जतदार अपना सर्चस्व बेच कर ऋण चुकाता हैंI जब ऋण नहीं चुका सकता तब वह बेइज्जती का या आत्महत्या का भागी बन जाता हैI"[1] जैसे-जैसे मानव के अंदर संग्रह की प्रवृत्ति बढ़ती गई I वैसे- वैसे मानव अधिक लालची बनता चला गयाI उसमें द्वेष और दंभ की भावना बढ़ती चली गईI सभ्यता और विज्ञान के विकास ने मनुष्य के अंदर श्रम के प्रति घृणा का भाव भर दिया हैंI इसी कारण मेहनत करने वाले किसान के प्रति भी वही भावना लोगों के मन में दिखाई देने लगी हैंI

मौसम के उतार-चढ़ाव के कारण खेती पर संकट आता हैंI मौसम का परिवर्तन इस तेजी से होता हैंI किसान को संभलने का अवसर ही नहीं मिलता हैंI अतिवृष्टि सूखा बाढ़ आजादी के कारण किसान की खेती घाटे में आती हैंI इसके अलावा पशु, पक्षी, वन्य जीव, चोर, लुटेरे आदि भी है I इन सब से बचता- बचता यदि सारा अनाज घर पहुंचता हैंI तो वह ऋण चुकाने भर को तो होता ही हैंI यदि कुछ बचता हैं, तो दो महीने में समाप्त हो जाता हैंI लगान हैं, भोजन हैं, बीज हैं,बीमारियां हैं, शादी- ब्याह आदि अनेक प्रकार के रिती- रिवाज आदि के कारण वह कर्ज में डूबता ही चला जाता हैंI इस के संदर्भ में डॉ. मोहम्मद जलील कहते हैं, "उसे पुनः ऋण लेना पड़ता हैंI यदि ऐसी बात की वह जितना लेता हूं उतना ही देना पड़े तब भी खैरियत होती ऋण प्रगतिशील होता हैंI उसकी गतिशीलता के आगे किसान का श्रम गति शून्य हो जाता हैंI यह ऋण कभी-कभी तो दूना, चौगुना यहां तक कि बीस गुना, तीस गुना हो जाता है I सारे जीवन को ऋण के बादल अच्छादित करके एकदम धुआंधार कर देते हैंI इस प्रकार वह ऋण चक्र अनवरत गति से चलता रहता है I यदि बैंक का हैं, सरकार का है, तब और आफतI"[2]

1977 के दशक में हरित क्रांति आई जिसमें खेती के क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़े पंचवर्षीय योजनाओं के तहत नई आर्थिक नीति को बढ़ावा मिला I कृषि के उत्पादों में वृद्धि आई I इसका फायदा कमोबेश हर श्रेणी को प्राप्त हुआ I इंदिरा गांधी ने बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया I भू विकास बैंकों का निर्माण हुआ I इसी प्रकार सरकार की ओर से भी किसानों के लिए कुछ न कुछ प्रयास किए गए I लेकिन किसानों के सामने अनेक चुनौतियां बरकरार रही I वह हमेशा से ही अभावग्रस्त रहा है I वह समस्याओं से जूझता रहा है I लेकिन इसके बावजूद भी वह अपनी मेहनत और कर्तव्य के प्रति ईमानदार है I किसान को आज भी राजनेता, साहूकार, पटवारी व प्रशासनिक अधिकारी खिलौना देकर बजाते आए हैं I कभी भी किसानों की समस्याओं को समाप्त करने का संकल्प कोई नहीं लेता हैंI इस के संदर्भ में देविंदर शर्मा लिखते हैं, "हमारी सरकार का मानना हैं, कि रिटेल में एफ.डी.आई. के आने से कृषि व्यवस्था व कृषक जीवन में सुधार होगाI किसानों की आमदनी बढ़ेगी I बिचौलिए खत्म होंगेI उपभोक्ताओं को कम कीमत में सामान मिलेगाI साथ ही कृषि उपज की आपूर्ति में होने वाली बर्बादी पर अंकुश लगेगाI"[3]

खपतवार नाशक, कीटनाशक और खाद का खर्चा प्रति एकड़ बहुत आता हैंI उस में सिंचाई बिजली तथा डीजल पर भी बहुत खर्च होता हैंI फसल की कटाई और मेहनत मजदूरी आदि अन्य खर्च मिलाकर इस प्रकार बहुत मोटा हिसाब हो जाता हैंI प्रति एकड़ जोवे होता हैंI किसान के पास इतना भी नहीं बचता हैंI जिससे कि वह ऋण का भुगतान कर सके I परिवार का पालन पोषण कर सकें I छोटे किसान का पूरा परिवार खेतों में मजदूर की तरह लगा रहता हैंI इसके बाद भी आसमानी, सुल्तानी कई संकट आ जाते हैंI इसी कारण किसान उम्र भर ऋण नहीं चुका पाता हैंI और आत्महत्या का एकमात्र पर्याय वह चून लेता हैंI आज फर्क यही हैं, कि जहां आजादी की लड़ाई के दौरान एकजुट होकर सारे किसान संघर्ष के लिए आगे आए थेI वही आज घोर हताशा के शिकार हो अपनी जान दे रहे हैंI अगर हम कतिपय तथ्यों को देखे तो स्पष्ट हो जाएगा, कि इन आत्महत्याओं के लिए देश की बहुराष्ट्रीय कंपनियां तथा साहूकार, सरकारी नीतियां, कारखानदार आदि सब जिम्मेवार हैंI

1990 के बाद आई नई आर्थिक नीति के कारण भूमंडलीकरण का दौर शुरू हो गयाI इस दौंर में कृषि पर आधुनिक तकनीकी के माध्यम से परिवर्तन किए गएI कृषि योग्य भूमि का अधिग्रहण किया जाने लगाI बढ़ती जनसंख्या के कारण कृषि उत्पादन की भूमि खत्म होने लगीI संपन्न राष्ट्रों ने विकासशील देशों में कई कारखानों का निर्माण कियाI वहां के जल और वायु के प्रदूषण को बढ़ायाI बहू राष्ट्रीय कंपनियों ने औद्योगिक विकास की आड़ में देश के प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करना शुरू कियाI विकास के नाम पर किसान, आदिवासी, देहाती तथा गरीब लोगों को विस्थापित किया जाने लगाI इस के संदर्भ में रविकांत जी कहते हैं, "वैश्वीकरण और बाजारवाद का प्रभाव विशेषकर भारतीय संदर्भ में किसान मजदूर आदिवासी स्त्री अल्पसंख्याक और दलित वर्ग पर संक्षेप में कहें तो दलित और शोषित वर्गों पर व्यापक रुप से दिखाई दे रहा हैंI"[4]

2016 में प्रकाशित पंकज सुबीर के उपन्यास 'अकाल में उत्सव' के माध्यम से मध्य प्रदेश के किसानों की समस्या भी सामने आई हैंI यह उपन्यास सरकार व उसकी व्यवस्था तथा मीडिया के काले कारनामों की पोल खोलने में सक्षम जान पड़ता हैंI आज स्थिति यह हैं, कि प्रत्येक राज्य में किसान सरकार का विरोध जताने के नए-नए तरीके अपना रहे हैंI कहीं किसान आत्महत्या के माध्यम से, तो कहीं नरमुंडो की माला पहन कर नंगे होकर, मल-मूत्र पीकर तो, कहीं सड़कों पर सब्जियां, अनाज और दूध फेककर किसान विरोध जता रहे हैं, पर सरकार के कानों पर जूं नहीं रेंग रही हैंI इन्हें उपद्रवी घोषित किया जा रहा हैंI हमारे देश में सरकार की ओर से बहुत सी योजनाएं चलाई जाती हैंI जिसमें प्रमुख हैं, बीमा योजना, कृषि सिंचाई योजना, मुद्रा बैंक योजना, मनरेगा, प्रधानमंत्री आवास योजना, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना आदि अनेक प्रकार की योजनाएं चलती हैंI I किंतु इसका लाभ आज भी किसानों को नहीं मिल रहा हैंI यह लाभ बिचौलिए ही ले जाते हैं I इस के संदर्भ में शिवमूर्ति जी कहते हैं, "जमीदार के जमाने में किसानों का शोषण किया जाता था I उसको जेठ की धूप में मुर्गा बनाया जाता थाI कोड़े से पिटवा आया जाता थाI वह जमीदारों का जमाना थाI किंतु आज इतने दिनों बाद भी किसान की जिंदगी में बहुत कुछ नहीं बदला उसका शोषण हो रहा हैंI पैसे वसूलने के लिए कानून का सिर्फ किसानों मजदूरों के लिए इस्तेमाल हो रहा हैंI किसानों के नए सिरे से होनेवाले शोषण को अब तो पहचानना भी मुश्किल हैI"[5] इन परिस्थितियों के कारण किसानों के मन में घिरा अंधेरा बाहर के अंधेरे से भी ज्यादा घना हो रहा हैंI इससे तंग आकर किसान पहलवान कहता हैं, "की किसान के घर में जन्म लेकर न पहले कोई सुख ही रहा हैं आगे कोई रहेगा इन्हीं परिस्थितियों में जिंदगी की नाव खेलना हैंI"[6]

निष्कर्ष:

अंत में कह सकते हैं, कि किसान आत्महत्या का जो रूप दिखाई पड़ता हैंI वह वास्तव में उसका एक प्रतिरूप मात्र हैंI आज खेती की समस्या कर्ज, दहेज, बाजारवाद, सरकारी नीतियां, महंगाई, शोषण आदि किसान जीवन से जुड़ी समस्याओं का समाधान होता हुआ दिखाई नहीं देता हैंI किसान जीवन को सुधारने के लिए अनेक अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ दिए गए हैं, किंतु किसानों के ऊपर मंडराते खतरे, खतरे की आहट भी साहित्य में मिलती हैंI कुल मिलाकर भारतीय किसानों की आज की दशा और आत्महत्या किसानों की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार तत्व नई सदी के साहित्य में दिखाई देती हैंI भूमंडलीकरण के कारण किसानों की समस्या अंतरराष्ट्रीय समस्या बन गई हैंI सरकार की तरफ से यह दावा किया जा रहा हैं, कि किसान आत्महत्या ना करें, इसके लिए कदम उठाए जा रहे हैं, किंतु इसमें कोई परिवर्तन होता हुआ दिखाई नहीं दे रहा हैंI इन समस्याओं को यदि खत्म करना हैं, तो सरकार को किसानों के उत्पाद को उचित मूल्य देना होगाI उसी तरह की कानून व्यवस्था करनी होगीI आधुनिक यंत्र सामग्री अत्यल्प मूल्यों पर सरकार की ओर से उपलब्ध होनी चाहिएI बीज, किटकनाशक एवं खाद आदि की सुविधाएं उपलब्ध होनी आवश्यक हैंI इसी तरह किसान को अगर सुविधाएं मिलती हैं, तो आनेवाले समय में किसान की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकेगाI

संदर्भ:

1) डॉ.मोहम्मद जमील अहमद-अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण- अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर- पृष्ठ सं.-164
2) डॉ.मोहम्मद जमील अहमद- अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण- अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर- पृष्ठ सं.-138
3) देविंदर शर्मा- 'वॉलमार्ट' खुद एक बड़ा बिचौलिया है-अस्सी चौराहा-ई-पत्रिका-04/10 /2012
4) रविकांत जी वागर्थ मासिक पत्रिका अंक 224 मार्च 2014 पृष्ठ सं.-66
5) शिवमूर्ति-'आखिरी छलांग' उपन्यास-पृष्ठ सं.-79
6) शिवमूर्ति-'आखिरी छलांग' उपन्यास-पृष्ठ सं.-79

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

हिंदी उपन्यास: किसान विमर्श

सुनील चांगदेव काकडे
हिंदी विभागाध्यक्ष, श्री सद्गुरु गंगागीर महाराज सायन्स,गौतम आर्ट्स अँड संजीवनी कॉमर्स कॉलेज, कोपरगांव, जिला-अहमदनगर-423603.
ईमेल आई डी – sunilkakade0187@gmail.com

हिंदी साहित्य में किसान को लेकर बहुत सारी विधाओं में चर्चा हुई है। हिंदी की अलग-अलग विधाओं में उपन्यास विधा प्रसिद्ध है। हिंदी उपन्यासों में भारतेंदु युग से लेकर आज वर्तमान युग तक किसान विमर्श की चर्चा हुई है। भारतेंदु युग में किसान को लेकर कम उपन्यासों में चर्चा हुई है। द्विवेदी युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी 'संपत्तिशास्त्र' नामक पुस्तक में किसानों की तबाही और खुशी की बर्बादी को लेकर पहली बार निबंध लिखा। जिसमें अंग्रेजी सरकार किस प्रकार किसानों से लगान वसूल करती हैं इसका दर्दनाक चित्रण किया है।

रामविलास शर्मा द्विवेदी युग में कहते हैं -"यदि कृषकों से लगान मिलना बंद हो जाए तो बड़े-बड़े राजा महाराजाओं और तालुकेदारों की दुर्गति का ठिकाना ना रहे सरकार के शासन चक्र का चलना बंद हो जाए वकीलों और बैरिस्टर ओके गाड़ी घोड़े बिक जाए तथा व्यापारियों और महाजनों को शीघ्र ही टाट उलट ना पड़े।"1 यहां रामविलास शर्मा किसान का महत्व बताते है।

प्रेमचंद युग में स्वयं प्रेमचंद उपन्यास को कल्पना जगत से उठाकर यथार्थता प्रदान की थी। प्रेमचंद के उपन्यास में किसान का दर्द झलकता है। 'प्रेमाश्रम' (1922) प्रकाशित हुआ। इसी समय भारत के कुछ प्रांत में किसान आंदोलन चल रहे थे। इसका जिक्र 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में किया गया है। किसानों के शोषण का चित्रण प्रेमचंद ने 'प्रेमाश्रम' में प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में किसानों की दुर्दशा, जमींदारों के अत्याचार, पुलिस के हथकंड, वकीलों की चालबाजी, न्याय व्यवस्था का चित्र बड़ी सजगता के साथ किया है। *डॉ रामविलास शर्मा इस उपन्यास के संदर्भ में कहते हैं -"यह उपन्यास असहयोग आंदोलन के बाद छपा या हमारा दुर्भाग्य था फिर भी उसने स्वाधीनता आंदोलन को दूर करने के लिए उसे एक नई गति देने में किसान समस्या को आजादी की मूल समस्या के रूप में स्वीकार करने में बहुत बड़ा काम किया है।"2*

'गोदान' (1936) प्रेमचंद का यथार्थवादी उपन्यास है। गोदान का नायक होरी किसान है। गोदान का होरी अंत तक निराश नहीं हुआ, लेकिन प्रेमचंद अपने यथार्थ अनुभव के कारण निराश हो गए थे। इस कारण प्रेमचंद में गोदान को दुखांत बनाया। हिंदी साहित्य का सबसे उत्कृष्ट उपन्यास गोदान माना जाता है। कर्ज की समस्या को लेकर यह उपन्यास आवाज उठाता है। *होरी कहता है -"कर्ज वह मेहमान है जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता।"3* आज भी हम गोदान की होरी को भारतीय किसान का प्रतिनिधि मान सकते हैं। क्योंकि अंततः होरी वह किसान है जिसका मरना निश्चित है रांगेय राघव के विषाद मठ 1946 उपन्यास में भी किसानों का चित्रण हुआ है, जमींदार किस प्रकार शोषण करते थे तो दूसरी तरफ महाजन सूद पर पैसा देकर गरीब किसानों को मजदूर बना रहे थे और फिर किसान मजदूर से भिकारी बन जा रहे थे। इस उपन्यास में किसानों का दर्दनाक चित्र दिखाई देता है।

अमृतलाल नागर 'महाकाल' (1947) उपन्यास में किसान किस प्रकार अपना जीवन बिताता है, इसका चित्रण हुआ है। जब धान का भाव कम होता है, तो किसान अपने पेट के लिए घर द्वार, खेत-खलिहान, बर्तन, कपड़े, यहां तक कि अपनी बहू बेटियों को बेचा। जिसका वास्तविक चित्र इस उपन्यास में दिखाई देता है।

आजादी के बाद बहुत साहित्यकारों में किसानों पर लिखा है। आजादी के बाद किसान जीवन में बहुत से परिवर्तन हुए है। इन परिवर्तनों को केंद्र में रखकर किसान जीवन को उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। लक्ष्मीनारायण लाल का 'धरती की आंखें' (1951), नागार्जुन का 'बलचनमा' (1952), फणीश्वर नाथ रेणु का 'मैला आंचल' (1954), रामदरश मिश्र का 'पानी के प्राचीर' (1961), विवेक राय का 'लोक ऋण' (1977) आदि उपन्यासों में किसान विमर्श की चर्चा हुई है। रामदरश मिश्र ने अपने 'पानी के प्राचीर' उपन्यास में बाढ़ और ऋण की समस्या को किसानों की बर्बादी का कारण बताया था। किसानों की फसल, बाढ़ और सूखा किस प्रकार बर्बादी करते हैं इसका भी चित्रण किया गया है।

शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी' (1967) इस उपन्यास में उत्तर प्रदेश के ग्रामीण जीवन को चित्रित किया गया है। बड़े जमींदार किस प्रकार किसानों को लूटते हैं, इसका भी चित्रण किया गया है।

किसान केंद्रित हिंदी उपन्यासों में 1990 के बाद बहुत बदलाव दिखाई देता है। जिस प्रकार भूमंडलीकरण का कृषि अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ा है, उसी तरह उपन्यास में आज जमीनदारी, बाढ, गरीबी, आंदोलन की समस्या को लेकर कम चर्चा हुई है। आज भूमि अधिग्रहण, किसानों का विस्थापन, सेज, आदिवासियों की जल, जंगल, जमीन आदि को विषय बना कर आदि साहित्य लिखा जा रहा है। वीरेंद्र जैन द्वारा लिखित 'डूब' (1991), श्याम बिहारी श्यामल का 'धपेल' (1993), नीलकांत द्वारा लिखित 'एक बीघा खेत' (1995), राजू शर्मा का 'हलफनामे'(2006), सूर्य दिन यादव का 'जमीन'(2006), सुनील चतुर्वेदी का 'काली चाट' (2015), आदि उपन्यासों में किसान समस्या को लेकर चर्चा हुई है।

संजीव का 'फांस' यह उपन्यास विदर्भ के किसानों की आत्महत्या इस समस्याओं को उजागर करता है। पानी की समस्या, महिला किसान समस्या, कीटनाशक पीकर आत्महत्या करता किसान, खेतों में पेड़ पर फांसी लगाकर आत्महत्या करता हुआ किसान आदि अनेक समस्याओं का चित्रण संजीव ने अपने उपन्यास में किया है।

किसान देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने का कार्य करता रहा है। आज किसान की अवस्था किस प्रकार है, यह साहित्य के माध्यम से वास्तविक चित्रण करने का साहित्यकारों ने प्रयास किया है। हिंदी उपन्यासों में किसान विमर्श की बहुत चर्चा हुई है। प्रेमचंद से लेकर आज संजीव तक किसान को लेकर लेखन किया गया है । जगदीश गुप्त, विवेकी राय, कमलाकांत त्रिपाठी, काशीनाथ सिंह, शिवप्रसाद सिंह, राही मासूम रजा, श्री लाल शुक्ला, फणीश्वर नाथ रेणु, संजीव, पंकज सुबीर तक उपन्यासकारों ने किसान पर लेखन किया है। उपन्यासकार जमीदारी प्रथा, भूमिहीन होना, बाढ़,

सूखा, अकाल, आत्महत्या, आर्थिक नीति, भूमि अधिग्रहण, सरकारी बैंक की नीति आदि सभी समस्याओं को उपन्यास के माध्यम से चित्रित करने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं, कि हिंदी उपन्यास में किसान विमर्श की सफल चर्चा हुई है। प्रेमचंद से लेकर पंकज सुबीर तक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास के माध्यम से किसान समस्याओं का चित्रण किया है। जब-जब किसान विमर्श की बातें होती है, तब तक इन हिंदी उपन्यासकारों के बिना यह विषय अधूरा है। साहित्यकारों ने किसान की आत्महत्या, भूमिहीन किसान, बेघर किसान, सूखा, अकाल, बाढ़, जमीदारी प्रथा, किसान के खिलाफ राजनीति आदि विषयों को अपने उपन्यास में रेखांकित किया है। किसान के प्रति सिर्फ आदर्श बातें करके समस्या खत्म नहीं होगी। किसान को सिर्फ बड़ी-बड़ी बातों से सुकून नहीं मिलेगा उनके लिए भी सभी को कार्य करना होगा। किसान इस देश का आत्मसम्मान है। किसान के सम्मान को ठेस पहुंचाने का किसी को अधिकार नहीं है। किसान के लिए सिर्फ आदर्श घोषणाओं की जरूरत नहीं है उनके लिए भी सरकार को अच्छा कार्य करना होगा। सरकार को किसानों के प्रति सोच बदलनी होगी। हिंदी उपन्यास के माध्यम से किसान के प्रति अनेक उपन्यास कारों ने चिंता व्यक्त की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण (भूमिका)- रामविलास शर्मा -राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ- 31
2. प्रेमचंद और उनका युग- रामविलास शर्मा, पृष्ठ -55
3. गोदान- प्रेमचंद, पृष्ठ -138

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

मिले सुर मेरा तुम्हारा: किसान समस्या

डॉ. सुनिता हुन्नरगी (Lecturer)
के. एल. ई. जी. आय. बागेवाडी, कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय,निपाणी
ई-मेल- soniya2kamate@gmail.com

प्रस्तावना:

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि और किसान है। किसानों के परिश्रम से ही देश की उन्नति संभव है। अन्नदाता ही देश का आधारस्तंभ है। भारत देश के अधिकतर गाँव कृषि पर ही निर्भर है। किसान हमारे भारतवर्ष के सिरताज है। परंतु आज 21 वी सदी के किसान की स्थिति दयनीय है, क्योंकि किसान कर्ज की समस्या में धँसे जा रहा है। उसे अपनी फसल के लिए उचित मूल्य नहीं मिल रहा है। आज किसान अनेक समस्याओं से घिरा हुआ है। जैसे कि खाद, बिजली, पानी, ऋण अनेक संकटो का सामना करके भी उसकी फसल को उचित मूल्य नहीं मिला तो वह आत्महत्या के लिए विवश हो जाता है। कृषि पर ही अवलंबित रहनेवाला किसान अपनी पावन धरती को हरा-भरा देखना चाहता है।

आज साहित्य में किसान संबंधित बहुत कुछ लेखन कार्य जारी है। भारत का विकास कार्य किसानों पर निर्भर है। आज किसानों की सुरक्षा, बीज और खाद के पूरे मूल्य नहीं मिले या फसल अच्छी होती है तो खरीददार कम दाम में माँग करते हैं, इस तरह से उपज की हानि ही होती है। आज मोदी सरकार किसानों की आयु बढाने के लिए, अनेक प्रकार की योजनाओं और सेवाओं को शुरू कर रही है। जिसके माध्यम से किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सके। किसानों की आमदनी को बढ़ाया जा सके। जिसके लिए मोदी सरकार व्दारा एक नया बिल लाया गया। जिसमें किसानों की फसल बाजार फसल के मूल्य से जुडा हुआ था।

किसान विमर्श इस विषय पर हिंदी साहित्य में प्रेमचंद, रेणु, श्रीलाल शुक्ल आदि लेखकों ने अपनी लेखनी चलायी है। प्रेमचंद के समकालीन लेखक डॉ. मनमोहन सहगल जी का "मिले सुर मेरा तुम्हारा" उपन्यास में पंजाब के समकालीन विविध आयामों का चित्रण किया है। उपन्यास की पृष्ठभूमि पंजाब चण्डीगढ़ के समीप बनूड-मोहाली सड़क पर स्थित गाँव भागोमाजरा है जो उपन्यास में पंजाब के कृषक-जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास के व्दारा डॉ. सहगल जी ने यह व्यक्त किया है कि पंजाब के किसानों में आलस्य ने ऐसा घर किया है कि नशे की लत और झुठी शान ने उन्हें कहीं का नहीं रहने दिया। पंजाब के अधिकतर किसान खेती करते है परंतु मुख्य रूप से प्रवासी मजदूरों पर निर्भर है। उपन्यास में यह दृष्टिगोचर होता है कि पंजाब की हरितक्रांती अब पंजाब को पतन की पराकाष्ठा की तरफ ले जाने में कोई कसर शेष नहीं छोडी। पंजाब की समस्याएँ है, प्रवासी मजदूर, अपसंस्कृति, विदेशीमोह, आतंकवाद, युवाओं में व्याप्त नशाखोरी और आलस्य के अतिरिक्त कन्याभ्रूणहत्या तथा दहेजप्रथा सहित नारी सशक्तिकरण, निठल्लापन जिसके कारण कृषक वर्ग के आर्थिक तथा सामाजिक पतन के कारण बने। कृषक वर्ग ऋण के बोझ से दबता गया। इन दुर्गुणों के कारण पंजाब का समृद्ध किसान अपनी भूमी को बेचने और आत्महत्याओं के लिए विवश होता गया पंजाब के हरितक्रांती के विनाश का कारण आतंकवाद भी बना।

हाँ सामाजिक परिवर्तन जरूर देखने में आये। यू. पी. और बिहार से आए हुए मजदूर कैसे मालिक बन गए, इसका चित्रण डॉ. सहगल जी ने पाठकों के समक्ष रखा है।

प्रवासी मजदूर बने मालिक:

खेती में काम करनेवाले मजदूर खेती के मालिक बन गये हैं। इसका वर्णन 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' इस उपन्यास में आया हैं।

प्रवासी मजदूर अर्थात् यू. पी. बिहार सहित अन्य राज्यों से अपनी रोजी रोटी कमाने के लिए आए हुए मजदूरों को प्रवासी मजदूर कहा गया है। डॉ. मनमोहन सहगल जी ने मजदूरों के जीवन को देखा है, और उनकी समस्याओं को चित्रित किया है।

डॉ. सुधा जितेन्द्र के अनुसार, ''यह उपन्यास एक तरफ पंजाब में आए प्रवासी मजदूरों की व्यथा-कथा-समस्या का आइना पेश करता है तो दूसरी तरफ अधिक धनलोलुपता के कारण अपने उद्देश्य से च्युत पंजाबी युवकों की विदेश जाने की चाह के साथ-साथ पश्चिमी चकाचौंध में पंजाबी मुटियारों की दूल्हों की माँग ने पंजाब ग्रामीण कृषक जीवन को तहस-नहस कर देने का कच्चा चिट्ठा भी है। पंजाबी युवक-युवतियाँ विदेश जाने का मोह रखती है जिससे प्रवासी मजदूर मालिक बन गए हैं।[1]

भागोमाजरा गाँव के किसान सुरजनसिंह के परिवार को केंद्र में रखकर कथा का विस्तार हुआ है।

पंजाब में प्रवासी मजदूरों का पंजाबी जाटों के साथ एक गहरा रिश्ता बन गया हैं। आलस्य जीवन का सबसे बड़ा शत्रु है। अधिकतर पंजाब के किसान आलस्य के वशीभूत हो चुके हैं। क्योंकि खेतों में होनेवाली समृद्धि से वे आलसी बन गए है। किसानों में अहंकार बढ़ गया।

पंजाब के किसान अपने अतिरिक्त कार्यों के लिए किराए के मजदूर नियुक्त कर रहे हैं। उन्हें 'सांझी' या सीरी कहा जाता था। पहले पंजाब के किसान आलसी नहीं थे। पूर्व में मुसलमानों की निम्न श्रेणियों और हिन्दु दलित समाज के लोगों से कार्य लिया जाता था। दिनों-दिन पंजाब के मजदूर सस्ते में कार्य करना कम करतें हैं तब प्रवासी मजदूरों की संख्या बढ़ती चली गई और सुरजनसिंह जैसे जमींदार उत्तर-प्रदेश और बिहार से आनेवाले श्रमिकों का सहारा लेने लगे। अधिकांश मजदूर स्थायी रूप से पंजाब में बस गए है।

पंजाब के जमींदारों में सुरजनसिंह है, उसके जवान बेटे पम्मी ने विदेश जाने की ललक में मॉ-बाप को खेती बेचने के लिए मजबूर किया है। गॉव के युवा पढ़-लिखकर नौकरियाँ करते हैं और शेष युवापीढ़ी नशे में धुत रहने से कामों से जी चुराती है। अत: पंजाब के किसानों को खेतीबाड़ी के

[1]. संपा. हेतु भारद्वाज - पंचशील शोध समीक्षा, जुलाई-सितम्बर, 2009.

लिए प्रवासी मजदूरों पर निर्भर रहना पड़ता था। धीरे-धीरे एक सामाजिक परिवर्तन होता गया। पहले पंजाब में किराए की मजदुरी दलित वर्ग से होती थी, अब जाति-विहिन वर्ग से हो रही है।

पंजाब में अब यू. पी. और बिहार से आर्थिक स्थिति से टूटे हुए सभी प्रकार के मजदूर पंजाब में आने-लगे है। पंजाब में मजदूरों को भैया कहकर पुकारा जाता हैं। पंजाबी, ''जट्टों का विचार था कि, अगर हम मजदूरों का दैनिक भत्ता नहीं देंगे तो वे झक मारते आएगें। लेकिन भैय्यों की वर्तमान पीढ़ी तो पहले से ही शहरों में जाकर काम करने लगी थी। राज मिस्त्री, प्लम्बर, रिक्शा चालक, मण्डी में ढुलाईदार, दलाल रेढ़ी-विक्रेता और अन्य कार्यों के इलावा जिन्हें कुछ न आता था, वह भी ईंट-गारा ढोकर संध्या तक भरपेट दैनिक मजदूरी प्राप्त कर लेता था। उनकी स्त्रियाँ भी श्रमिक कार्य करती थीं।''[2]

भैय्या परिवारों की विशेषता यह थी कि, वे जट्टो के समुख कभी भी कार्य पाने की कोई बिनती नहीं करते थे, जब कि उनकी जरूरत जट्टो को ही पड़ती है। एक विचित्र बात यह है, पंजाब के युवक लंडन, कनाडा आदि देशों में जाकर बस जाते है। अपने उद्देश्यों की पूर्ती करते है। उसी प्रकार बिहार और उत्तर प्रदेश से आए हुए प्रवासी मजदूर पंजाब में आकर उन्नति की ओर बढ़ रहे है और वे आर्थिकता से भी संपन्न हो गए है।

सुरजनसिंह के पास आया बाबू मूलत: उत्तर प्रदेश के मुजफ्फराबाद के भीतरी प्रदेश का रहनेवाला है। वह गरीब और भूखमरी से पीड़ित था, सुरजनसिंह ने उसे सहारा दिया है। आर्थिक स्थिति तंग होने के कारण वह पंजाब की शरण लेता है। बाबू अपनी पत्नी लक्ष्मी के साथ खेतों में कोठरी बॉधकर रहता है। सुरजनसिंह बाबू को पुत्रवत् मानता है। बाबू तो सुरजनसिंह के परिवार से परिचित है, उसे पता है कि, सत्ता कामचोर पम्मी विदेश गया है। परंतु पम्मी तो केनडा के नाम पर आतंकवादी बन गया है। बाबू से रात के समय मिला तो वह सोच रहा था कि पम्मी देश छोड़कर क्यों भाग गया था।

उसे घर में कमीं नहीं थी, घर में सब कुछ था। पत्नी, बेटा, घर सबकुछ है। बाबू तडपकर सोचता है, ''अपना देस छोड़कर विदेश में कमाने की यह बढ़ती ललक मेरी समझ में, एक ओर इस गरीब देश को और गरीब कर रही है; दुसरी ओर, विदेश में कमाई के सपने देखनेवाले मात्र दस प्रतिशत ही कामियाब होते हैं। बाकी तो जैसे यहाँ धक्के खाते हैं, वैसे वहाँ धक्के पड़ते हैं। इज्जत जाती है, सो अलग।''[3]

पंजाब में प्रवासी मजदूरों की वृद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। स्वयं बाबू ही थोडी सुरजन की धरती और कुछ जमींदार करनैल की धरती से खुद धरती का मालिक बन चुका है। वह सुरजन से अपने हिस्से की जमीन पर उपजी फसल का पूरा दाम लेता है और करनैल की धरती को सब्जियों की काश्त करके कमाई करके रकम से कमाता पैसे कमाता है। इसी कमाई से बाबू पक्का मकान बनवाता है।

बाबू के समान उत्तर प्रदेश और बिहार के अन्य पड़ोसी प्रवासी मजदूरों ने जिनके पास धन की सुविधा थी, वे भी अपने गाँव में पक्की छत और कोठरी आवास के निर्माण का सपना देखने लगे थे। उनका उद्देश्य था कि गर्मी, बरसात, सर्दी के मौसम से बचना था। परंतु पंजाब के सरदारों के काके यह नहीं चाहते थे कि, प्रवासी मजदूरों का स्थायी आवास बने। इससे पंजाबियों के विशेषाधिकार का पतन होने लगा था। पंचायत ने उनके हाथों जमीन बेचने पर प्रतिबिंब लगाया, और इलाके के विधायक के माध्यम से भी दबाव डाल दिया गया परंतु पंचायत और विधायक दोनों अपने स्वार्थों के कारण ऐसे प्रतिबन्ध को आकार देने में असमर्थ रहे।

''भारत का संविधान भारतीय नागरिकों को यह मूल अधिकार देता है कि वे देश के किसी भी कोने में सम्पत्ति बनाकर रह सकते हैं। अत: कानून की दृष्टि से प्रवासी मजदूरों पर सम्पत्ति प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सका।''[4] इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत के नागरिक को कहीं भी रहने का अधिकार है। गाँवों में कई वर्षों से रह रहे प्रवासी मजदूरों की वोट प्राप्ति ही सबका लक्ष्या था, सभी नेता, प्रशासक सत्ताधारी प्रतिनिधि प्रवासी-मजदूरों की वोट प्राप्त करते है, उन्हें कभी नाराज़ नहीं करते है।

विधायक मलविंदर अनुभवी राजनीतिज्ञ था। वह भैय्या बस्तीवालों से ही अधिक वोट प्राप्त करता था। वह कहता है कि, ''गाँववाले अपने खेतों में मदद के लिए उत्तर प्रदेश और बिहार से रोजगार की तलाश में आनेवाले मजदूरों को नियुक्त करते हैं। मदद की दरकार इसलिए है कि ज्यादातर नौजवान विदेश जाने की ललक पालते हैं, कुछ दूसरे पढ़-लिखकर मिट्टी-सने काम से जी चुराने लगे हैं। प्रवासी मज़दूरों का पछौकड़ हमें मालूम नहीं होता-वे अपराधी, जेल से भागे हुए या दृष्टवृत्ति के हो सकते हैं। गॉववालो की मजबूरी का फायदा उठाकर वे धीरे-धीरे यही धॅसते चले जाते हैं और अपनी सम्पत्तियाँ खड़ी करके यहाँ के स्तायी वसनीक बन जाते हैं। नतीजतन पंजाब का मजदूर शिल्पी, दिहाड़ीदार, छोटे मिस्त्री आदि का काम करनेवाले को प्रतिंद्वद्वी मिलते हैं और उनके कम पैसे पर काम करने की रज़ामंदी के कारण यहाँ का व्यक्ति भूखा मरता है।''[5] इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रवासी मजदूर ने अपना वास स्थायी रूप से पंजाब में ही बना लिया है।

एक विचित्र बात यह थी कि पंजाब के जमींदारों के परिवारों में एकता नहीं थी, बल्कि प्रवासी मजदूर आपस में प्रेम-भाव तथा एकता से रहते थे। अनेक लोगों को प्रवासी मजदूरों का आयात पसंद न था क्योंकि वे पूरे पंजाब में स्थायी आवास बना रहे थे, वे फैलते जा रहे थे। लोग इस समस्या का समाधान चाहते थे। परंतु पंजाबियों का काम इन प्रवासी-मजदूरों के सिवाय न हो सकता था और न तो इन्हें संवैधानिक रूप से स्थापित होने से रोक नहीं लगा सकते है।

मलविंदर सिंह इस समस्या का हल बताते हुए कहते हैं, ''कोई देशवासी देश के किसी भी प्रदेश में रह सकता है, रोजगार कर सकता है और अपनी योग्यतानुसार कमा सकता है। हमारा संविधान इसकी इजाजत देता है। उत्तर प्रदेश और बिहार के मजदूर भी अपनी मेहनत से यहाँ जगह बनाते

[2] डॉ. मनमोहन सहगल - 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' - पृ. क्र. 135
[3] डॉ. मनमोहन सहगल - 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' - पृ. क्र. 16
[4] डॉ. मनमोहन सहगल - 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' - पृ. क्र. 138
[5] डॉ. मनमोहन सहगल - 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' - पृ. क्र. 138

और पेट पालते हैं।''[6] संविधान के नियमानुसार देशवासी परिश्रम करके कहीं भी जीवन बसा सकते हैं। प्रवासी मजदूर, मेहनती, ईमानदार विनम्र, संघर्षशील और आपस में घूल-मिलकर रहते हैं।

पंजाब के किसान पूरी तरह से प्रवासी मजदूरों पर निर्भर है। वे हैं तो उनका काम ठीक ढंग से होता हैं, नहीं तो पंजाबी जाटों की युवा पीढ़ी विदेश जाने की मायाजाल में फँसती ही जा रहीं है। इसलिए जो बुजुर्ग वह अपनी पारंपरिक खेती को लेकर प्रवासी मजदूरों के द्वारा कार्य करवा रहें हैं। लड़कियों को एनआरआय दुल्हा, या बेटे को विदेश भेजना हो खेतों की टुकड़ी बेचकर वे स्वयं निर्भर होते जा रहें हैं। इनमें आपसी प्रेम, एकता प्रवासी मजदूरों से कम हैं।

निष्कर्षत: प्रवासी मजदूर काम के बल पर खेती एवं आवास के मालिक बने हैं। राजनीति, संविधान ने उनका साथ दिया है। किसानों की ऐय्याशी, युवकों का विदेश आकर्षण इसका कारण रहा है।

संदर्भ ग्रंथ:

1) संपादक. हेतु भारव्दाज, पंचशील शोध, समीक्षा, जुलाई-सितम्बर, 2009.
2) डॉ. मनमोहन सहगल, ''मिले सूर मेरा तुम्हारा'', पृ. क्र. 13.
3) वहीं, पृ. 16.
4) वहीं, पृ. 138.
5) वहीं, पृ. 138.
6) वहीं, पृ. 139.

[6] डॉ. मनमोहन सहगल - 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' - पृ. क्र. 139

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

हिंदी साहित्य में किसान विमर्श

प्रा. डॉ. सुरेखा प्रे. मंत्री
श्रीमती नानकीबाई वाधावानी कला महा. यवतमाल- ४४५००१
ई-मेल : surekhamantri11@gmail.com

भारत देश में किसान विमर्श एक महत्वपूर्ण विषय है। किसानों की समस्याएँ पहले भी विद्यमान थी और वर्तमान में भी वैसी की वैसी है। हिंदी साहित्य में किसानों से जुड़े विषयों को अनेक विद्वानों ने अपने साहित्य में उठाया है। किसान, खेत और मजदूर को लेकर यह विमर्श साहित्य में आधुनिक काल से चला आ रहा है। भारतीय किसान का जीवन बहुत ही दरिद्रता, ऋणग्रसता एवं कष्टों से भरा पडा है। हिंदी साहित्य में लेखकों ने किसानोंके जीवन के प्रत्येक पक्ष को छूने का प्रयत्न किया है। किसानों की स्थिति इतनी दयनीय है कि वह अपने बच्चों को अच्छा भविष्य देने की कल्पना भी नही कर सकते। किसानों की दयनीय स्थिति का वर्णन हिंदी साहित्य में हुआ है।

जब से इस धरती पर जीवन की उत्पत्ति हुई है, तब से ही किसान खेती-किसानी करके खाद्य-सामग्री उत्पादित कर रहे हैं। इन धरती पुत्र किसानों को 'अन्नदाता' भी कहा जाता है। लेकिन मैं इन्हें "दूसरा जीवनदाता" कहती हूँ। यदि किसान खेती –किसानी नही करेंगे तो खाद्यान्नों का उत्पादन नही होगा और जब खाद्यान्नों का उत्पादन नही होगा तो हमारे भोजन की भी व्यवस्था नही होंगी। बिना भोजन के हमारा जीवित रहना असंभव ही नही नामुमकिन है। यदि हम भोजन नही करेंगे तो भखों मर जाएँगे और कुछ भी नही पाएँगे....

आज हमारे भारत में ही नही सारी दुनिया में सभी से ज्यादा दुर्दशा किसानों की ही है। किसान सभी के लिए तो अन्न उगा रहे है और खुद भूखें मरने के लिए विवश है। किसान अपनी फसलों से इतना कमा नही पाते कि वो अपने परिवार के लिए ठीक से कपड़ों और शिक्षा का प्रबंध कर सके।किसान दिन –रात एक करके अन्न उपजाता है। वह न तो जेठमास की तमतमाती छूप देखता है और न ही पूस की कडाके ठंड। किसान जितना परिश्रमी और धैर्यवान कोई नही है, फिर भी किसान सखी नही है। कभी वो भयानक अकाल की मार से मारा जाता और कभी प्रलयकारी बाढ से। इन आपदाओं से ज्यादा तो किसान कर्ज के बोझ से आत्महत्या करने मजबूर होते है। अधिकतर सरकार किसान विरोधी रही है, तभी तो देश पीछे है। सरकारी ओर प्रशासनिक व्यवस्था किसान को ही हमेशा हर प्रकार से लूटती रही है लेकिन अब ऐसा नही होना चाहिए। किसानों के बेटे जागरूक हो गए है और एकजूट हो गए है। अपने अधिकारों की लडाई लडने के लिए तैयार है। बाजारवाद के इस दौर में किसान अपनी फसलों में परिवर्तन करने के लिए आंदोलन कररहे है। इन किसानों की विचारधारा परिवर्तनवाद का नारा है – "दुनिया के किसान एक हो।"

किसान को अभी से समाज, साहित्य, राजनीति और सिनेमा में अलग से सम्मान का दर्जा दिया जाए। उन्हें हर स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में किसान –साहित्य और किसान विमर्श को अनिवार्यता के साथ शामिल किया जाए। मेरे अनुसार किसान-साहित्य की परिभाषा इस प्रकार होगी –"किसान के जीवन पर लिखा गया अनुभूतिपरक एवं स्वानुभूतिपरक साहित्य ही किसान –साहित्य है। ऐसा विमर्श जिसमें किसानों हर मनोदशा, भावना और अधिकारों की अभिव्यक्ति हुई हो, वही किसान विमर्श है।" महाराष्ट्र में सन २०१५ से २०१८ बीच करीबन १२ हजार किसानों ने आत्महत्याएँ की। सारी दुनिया की भूख मिटानेवाला धरतीपुत्र को दो वक्त का खाना नशीब नही होता। उनके बच्चों को अच्छी शिक्षा नही मिल पाती क्योंकि उनके बच्चे सरकारी स्कूल, कॉलेजों ओर विश्वविद्यालयों पढते है। उन्हें रोजगार और नौकरी के लिए दर-दर भटकना पडता। तभी तो भारत में बरोजगार युवाओं की भरमार हो गई है। सन २०१० के बाद भारत के लिए आरक्षण घातक सिद्ध हो रहा है। आरक्षित लोग ही नौकरी में सफल हो रहे है, लेकिन आज भी गरीब किसान-मजदूर और आदिवासियों के बच्चे आरक्षण नही पा रहे क्योंकि देश में जागरूकता का अभाव है। अब भारत के हालात ठीक हो चुके है, अब समय आ गया है – 'आरक्षण को खत्म करने का।' आरक्षण देना अब भारत के लिए अच्छा नही है क्योंकि विश्वगुरु भारत के निवासी प्रतिभाशाली होते है और आज के युवा बहुत ज्यादा प्रतिभाशाली है।

हमारा देश प्रमुख कृषिप्रधान देश है, यहॉ पर लगभग ६० प्रतिशत आबादी कृषि कार्य पर निर्भर है। इसलिए मैं अपने देश को 'किसानों का देश' कहती हूँ। आजकल देश में किसानों की हालात बहुत बदतर है। प्रकृति की मार, अतिवृष्टि ने किसानों की फसलों को चौपट कर दिया है। तेज वर्षा के साथ ओलों के गिरने से फसलें सर्वनाश हो गई है। किसानों को खुद का पेट भरने के लिए अन्न उत्पादन करना मुश्कील पड रहा है। इससे किसान आत्महत्या कर रहा है। सरकार ने पीडितों को आर्थिक सहायता के रूप में फसल–सर्वेक्षण के आधार पर अधिक से अधिक मुआवजा देना चाहिए। सरकार ने बिजली बील और बैंक का ऋण माफ करना चाहिए क्योंकि किसान देश की शान है। किसान ही खाद्यान्न, फल, सब्जियॉ आदि पदार्थो का उत्पादन करता है और सरकार इन वस्तुओं का विदेशों को निर्यात करता है, इस से काफी विदेशी मुद्रा कमाती है।

किसान ही देश की जनता की भूख मिटाते हैं इसलिए सरकार को किसानों के विकास की अनेक कल्याणकारी योजनाएँ बनानी चाहिए। जैसे- मुफत सिंचाई योजना, मुफत खाद योजना आदि। सरकार को देश में अनेक कृषि विद्यालय और विश्वविद्यालय खुलवाने चाहिए और किसानों को वैज्ञानिक तकनीकी से कृषि कराने में मद्द करनी चाहिए। सरकार को केंद्रीय किसान आयोग और राज्य किसान आयोग का गठन करना चाहिएँ। जैसे – सरकार पार्क बनाने में, बडे-बडे राजनेता की मूर्तिया बनवाने में, शादी, जन्मोत्सव, महोत्सव में अरबों रूपए खर्च कर देते है। उन्हें ऐसा करने से रोके वही रुपया किसानों के विकास में खर्च करना चाहिए। सरकार ने महँगाई कम करनी चाहिए।

इस तरह अगर किसान आत्महत्या करते रहे तो हमे अन्न कौन देंगा? और देश की अर्थव्यवस्था कैसे मजबूत होगी? भारत कैसे विकसित देश बनेगा? ऐसे हजारों प्रश्न उठते है। ऐसे प्रश्नों का जवाब सिर्फ किसानों का विकास करना है और उन्हें किसी भी हालात में दुखी नही होने देना है।

इसलिए तो मैं कहती हूँ कि- 'किसान बचाओं-देश बचाओं।' किसान रहेगा तो कृषि होगी और कृषि होगी तो अन्न होगा तो हम होंगे। किसानों के लिए कुछ पंक्तियाँ साझा कर रही हूँ- बारहों महिने जो खेतों में करता हे काम –

"सच्चा किसान है उसका नाम।।
खेत को जोतता, बीज बोता,
बीज उगकर जब तैयार हो जाता।
वह फसल को सिंचित करता,
खाद देता, द्वाईयाँ देता।
आदि करता है काम। सच्चा किसान है उसका नाम।।"

हिंदी साहित्य में गद्य की विभिन्न विधाओं के साथ ही उपन्यास विधा का भी आरंभ भारतेंदु काल से है। समाज की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों का चित्रण उपन्यास में करते है। किसानों की दयनीय स्थिति, कर्ज की समस्या, शोषण की अभिव्यक्ति का प्रश्न है तो मुंशी प्रेमचंद का नाम लिया जाता। इन्हों ने अपने उपन्यास 'गोदान', 'प्रेमाश्रम' में सामंती और महाजनी व्यवस्था का शिकार किसानों का चित्रण किया है। कबीरदासजी ओर तुलसीदासजी जैसे भक्तिकालीन कवियों में अपनी कविता में किसानों की स्थिति को बयां किया है। साहित्य समाज को देखने का एक अच्छा जरिया है। प्रेमचंदजी गोदान, प्रेमाश्रम उपन्यास लिख रहे थे जब भारत में स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था। किसान सामंती और जमींदारी तथा महाजनी जैसी कुव्यवस्थाओं से जूडा रहा था। समाज में घटित होनेवाली घटनाओं का प्रभाव लेखक पर पडा। गोदान भारतीय किसानों के जीवन का महाकाव्य है। सामाजिक व्यवस्था, सभ्यता और संस्कृति के संवर्धन और विकास के लिए रुपया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समय की मांग के अनुसार कृषि के उत्पादन में परिवर्तन होना लाजमी है। इग्लैंड से भारत तक का औद्योगिक क्रांती का सैर और भारत में हरितक्रांती होने से कृषि उत्पादन में काफी बदलाव आया परंतु किसान किसी–न-किसी रूप से शोषित ओर प्रताडित रहा है। जिसकी अभिव्यक्ति उपन्यासकारों ने की है। किसानों के संघर्षमय जीवन को केंद्रीय बिंदू बनाकर प्रेमचंद से कथाकार संजीव और पंकज सुबीर तक एक परंपरा रही है।

'गोदान' महाकाव्य का नायक 'होरी' है, जो खेतों में जी तोड मेहनत करने के बाद भी अपने परिवार वालों का भरण-पोषण बडी मुश्कील से कर पाता है। भारतीय समाज में व्याप्त सामंती और सूदखोरी जैसी कुव्यवस्थाओं का शिकार 'होरी' होता है। फिर भी सामाजिक परंपरा में बंधा होरी उसकी एक नही मानती। अंतत: होरी अपने खेतों में काम करते-करते प्राण त्याग देता है। ऐसी स्थिति केवल एक होरी की ही नही है बल्कि कई होरी इस समाज में कर्ज भरा जीवन जी रहे हैं। गोदान उपन्यास किसान जीवन के अंदरुनी तह को परत-दर-परत खोलता है। किसानों से लगानइतना अधिक लिया जाता था कि इन पंक्तियों से समझा जा सकता है –

"अहा विचारे दुख के मरे निसिदिन पच –पच मरे किसान।
जब अनाज उत्पन्न होय तब सब उठवा ले जाय लगाना।।" बालमुकुंद गुप्त

बहरहाल यह कहना अतिशयोक्ति नही होंगा कि कथाकार संजीव का यह उपन्यास भारतीय कृषक समस्या की दारूण दशा पर केंद्रीत है। 'फॉस' उपन्यास के माध्यम से संजीव ने उन सभी पहलुओं को दिखाने की कोशिश करते है जिन पहलुओं से केवल विदर्भ का किसान ही नही बल्कि संपूर्ण भारतीय किसानों को गुजरना पड रहा है। हमारे सामने सभी से बडा प्रश्न यह है कि किसान लगातार आत्महत्या कर रहा है पिछले कुछ वर्षो से सांप्रदायिक हिंसा की घटनाओं में जितने लोग मारे गए हैं। उनकी तुलना में आत्महत्या जैसी भीषण समस्या को समूल खत्म करने के बजाय सिर्फ आर्थिक पैकेज के दिखावटी टोटकों के सहारे आत्महत्या जैसी समस्या को जीवित रखते हुए कृषि व्यवसाय को लगातार हाशिएँ पर ढकेला जा रहा है। 'फॉस' उपन्यास में किसान आर्थिक समस्याओं का सामना करते-करते अंत में हताश और निराश होकर आत्महत्या कर लेता है। संजीव का यह उपन्यास सामाजिक संरचना के तमाम जटिलताओं के बीच खेती किसान की त्रासदी के हकीकतों को परत-दर-परत भेदते हुए समस्या और विकास के नाम पर जारी उपक्रमों की समीक्षा करता है। यह किसान जो कभी 'भारत की आत्मा' के नाम से जाना जाता रहा है। वही आज अपनी गरीबी भरी जिंदगी से टूटकर आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। यह आत्महत्या एक किसान की आत्महत्या नही है बल्कि यह किसान संस्कृति की हत्या है। उपन्यास में एक पात्र 'शिबू' जब समस्याओं का सामना नही कर पाता और आत्महत्या कर लेता है, तब उसके आत्महत्या को पात्र ठहराने के लिए घरवाले को काफी मशक्कत करनी पडती है। यदि सरकारी, कर्मचारी, बिचौलियॉ, द्लालों को कुछ नही मिलता तो आत्महत्या नही ठहराते। अंत में घरवालों को मुआवजा भी नही मिलता है।

विदेशी बीजो के प्रयोग से कर्ज तो बढता ही जा रहा, साथ जमीन की उर्वरा शक्ति भी नष्ट होती रही। बी.टी. कॉटन और सोयाबीन की खेती करने वाले किसान त्रासदी के शिकार हुए। कापूस की खेती से परेशान होकर किसान इस प्रकार फसलों को बदलने की बात करते है- "कापूस में क्या है? आत्महत्या। हमने तो कपास छोडकर उस की खेती करने का निर्णय लिया है। आप बताओं सभी का भला जाए सिर्फ बताया ही नही, उत्साह में उसे सरपंच के घर तक लाकर ही दम लिया। सरपंच के यहॉ तीन धोतीधारी, दो पैंट वाले चाय-पानी कर रहें थे। बीस –एक किसान पहले से हाजिर थे।" यह माना जाता है कि चीन दुनिया का सबसे ज्यादा कपास उत्पादन करनेवाले देश है। पूरे विश्व में होनेवाले कपास उत्पादन का एक चौथाई भाग भारत के हिस्से में आता है। विश्व पटल पर खासकर चीन की तुलना में कपास उत्पादन और किसानों की बदहाली से संबंधित भारतीय आंकडे चिंतनीय है। आखिर क्या कारण है कि इसी कपास की खेती करनेवाला चीन लगातार समृद्ध होता जाता है और भारतीय किसान लगातार आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। संजीवजी के उपन्यास में कही बिखराव नही दिखाई देता है। यह केवल किसान समस्या की विडंबना की बात नही करते बल्कि उसके समाधान का विकल्प भी प्रस्तुत करते है। किसान जीवन की अभिव्यक्ति की अगली कडी में पंकज सुबीर का 'अकाल में उतसव' उपन्यास है, जो गांव और किसानी संस्कृति का एक बहुत ही बेतरीन उपन्यास है। किस प्रकार किसान को पढते समय प्रेमचंद के उपन्यास गोदान, गबन की याद दिलाती है।

देखा जाए तो उस समय में किसान के समक्ष जो समस्याएँ थी चाहे वह ऋण संबंधी हो या किसानों की बदहाली संबंधी अन्य समस्याएँ हो उसी कडी या परंपरा आग बढाने का काम किया है।

'अकाल में उत्सव' उपन्यास की कथावस्तु 'सूखापनी' नामक गांव से शुरू होती है, जो मध्यप्रदेश का आदिवासी गांव है। उसकी कहानी दो एकड जमीन के जोत वाले छोटे किसान के इर्द-गिर्द घूमती है। किसान खेतों में रात-दिन जी तोड मेहनत करता है तभी तो फसलें भी अच्छी होती हैं, परंतु महाजन खलिहान पर ही फसल को उठवा लेता है। अंत में किसान बैंक द्वारा लिया कर्ज के शिकार होता है। ऊपर से प्रकृति की मार से उसकी सारी फसल बर्बाद हो जाती है। "कमला की तोडी बिक गई, बिकनी ही थी, किसान की पत्नी के शरीर पर जेवर क्रमश: घटने के लिए ही होते है और एस घटाव का एक भौतिक अंत शून्य से होता है, घटाव का प्रक्रिया शून्य होने तक जारी रहती है।" कहने का तात्पर्य यह है कि इस अपार दुख में दापंत्य का विरल प्रसंग भी है, जो बेहद बडी उपलब्धि है।

अकाल में उत्सव उपन्यास की कथावस्तु दो खंडो में चलती है। एक तरफ मुख्यमंत्री के आदेशानुसार भव्य उत्सव के आयोजन की चर्चा हो रही है, तो दूसरी तरफ वर्षा, तूफान और ओले पडने से किसानों के नष्ट हुई फसल का दृश्य दिखाई दे रहा है। प्रशासनिक अधिकारियों को मंच की सजावट की चिंता ज्यादा रहती है। भारत का अन्नदाता किसान की कोई चिंता नही रहती है। वास्तव में यह उपन्यास किसानों के शोषण का रेशे-रेशे को उधड़ने वाला उपन्यास है, जो यह जाहिर करता है कि किसानों की आत्महत्या के पीछे केवल ओला, वृष्टी, सूखा और प्रशासनिक निष्ठुरता ही जबाबदार है। इसके पीछे और भी कई कारण है, जो साफ-साफ दिखाई नही देते। भारतीय किसानों का ह्दय इतना सरल और निष्कपट होता है कि वह मनुष्य तथा प्राणियों से भी भावनात्मक लगाव रखता है। 'तोडी' नामक आभूषण जिसे स्त्रियॉ पैरों में पहनती है। उसका क्या आधार बनाकर लेखक ने किसानों का जो गहनों के प्रति परंपरागत लगाव होता है, उसे बडे ही ह्दयविदारक लहजे में अभिव्यक्त किया है। रामप्रसाद जब तोडी बेचने महाजन के पास जाता है वहॉ का दृश्य उसे अपने पुरखों की बनी बनाई ईमारत को ढहते दिखाई देता है। तोडी पिघल रही है, ऐसा लग रहा है कि पदार्थ नही बल्कि रामप्रसाद का ह्दय पिघल रहा है।

निष्कर्ष :

गोदान, फॉस और अकाल में उत्सव इन तीनों उपन्यास में किसानों की संघर्ष की कारुणिक कहानी है किसी में किसान महातनों या जमींदारी व्यवस्था का शिकार है तो किसी में सरकारी बैंकों से लिया गया कर्ज का। कर्ज की अदायगी न होने के कारण किसान आत्महत्या कर रहा है इन त्रासदियों की घटनाचक्र की संपूर्ण सामाजिक विडंबनाओं के साथ शब्दबद्ध किया गया है। वह सिर्फ हमारी संवेदना को झकझोरता ही नही बल्कि उपन्यास को एक कलात्मक ऊँचाई भी प्रदान करता है। देखा जाए तो आज भी सामंती और पूंजीवादी संस्कृति की टकराहट में किसानी संस्कृति पिस रही है। इसका इतना बडा दुष्परिणाम है यही है कि वर्तमान समय में किसान लाखों में आत्महत्या कर रहे है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि :

१) फॉस – संजीव पृ. संख्या – ९.
२) फॉस – संजीव पृ. संख्या – १५३.
३) अकाल में उत्सव – पंकज सुबीर – पृ. संख्या – १०७.
4) कुशराज झॉसी – हंस विजन –दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर विचारधारा से प्रेरीत नारी दलित समाज कि कहानियॉ : रत्नकुमार साम्भरिया के विशेष संदर्भ में

प्रा. डॉ . सुवर्णा नरसू कांबळे
हिंदी विभागाध्यक्षा कला व वाणिज्य महाविद्यालय,सातारा

भारतीय समाज में सदियों से प्रचलित उच्चवर्ण व्यवस्था ने शुद्र और स्त्री को पशुवत जीवन प्रदान किया l उसके लिये भगवान, भाग्य, पुनर्जन्म का भय दिखाकर उनके विचारों को कुंठीत कर दिया गया था l जिसका आधुनिक युग का इन्सान आज भी प्रमाण नही दे पाया है। परंतु, विगत ५००० वर्षो से अंधविश्वास को स्वीकार कर यहॉ का शुद्र और स्त्री वर्ग वैष्यमभाव, अमानवीय अन्याय-अत्याचार, धर्मांधता,सामाजिक अन्याय, अर्थहीनता, अशिक्षाहीन रहकर गुलामी का जीवन जी रहा था l भारत में इस अमानवीय व्यवस्था का चक्र घुमने का प्रथम प्रयास म. बुद्ध ने किया I म. बुद्ध ने धर्म में स्त्री और शूद्रो को स्थान देकार मानवतावाद कि नींव डाल दी l बुद्ध धर्म को नष्ट करने के लिये यहॉ के धर्म पाखंडियों ने फिर से 'मनुस्मृती' के माध्यम से हिंदू धर्म में प्रचलित वर्णव्यवस्था को मजबूत किया l 'रामायण', 'भगवद्गीता', जैसे ग्रंथो के माध्यम से वर्णव्यवस्था को बढावा दिया। साथ हि अहिल्या, सीता, द्रौपदी, कुंती जैसे नारियों का यातना से भरा जीवन चित्रित करते हुए, उसे धर्म को स्वीकारते दर्शाया l और स्त्री बंधनो को कठोर किया l जन्म-मृत्यू का फेरा पाप-पुण्य, भाग्य से जोडकर वर्णव्यवस्था निरंतर रखी गई।

"माही पार्थ व्यापि श्रित्य ते s पिस्यु पाप योनय:
स्त्रियो वैश्य स्थता शुद्र स्ते s पी यान्ति परांगतिम" १

अर्थात – " है अर्जुन ! स्त्री, वैश्य और शुद्र जो पाययोनि के अन्तर्गत आती है l मेरी शरण में आकर पापमुक्त हो जाते है।" इस तरह जन्म को पाप – पुण्य से जोड रखा था l मध्यकाल में निर्गुण संत, वारकरी संतो ने वर्णव्यवस्था पर प्रहार किया। परंतु, उसमें स्त्री मुक्ति कि बात नही उठाई १६ वीं शती के बाद अंग्रेजो के आगमन से 'शिक्षा' का प्रचार – प्रसार, शुद्र और स्त्री मुक्ति का कारण बना l सदियों से चली सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार करना सहज बात नही थी ; इसलिए कोई विरला हि चाहिये था l १८ वीं शती में म. फुले इस महामानव ने अपनी पत्नी सावित्री बाई को साथ लेकर शुद्र और स्त्रियों के लिए शिक्षा के द्वार खोलकर ,उन्हे मुक्ति पथपर लाकर खडा कर दिया l आगे डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर जी ने स्त्री और शूद्रों को मुक्ति पथ पर चलने के लिये अपने विचारों से बल प्रदान किया।परिणाम स्वरूप ;पद –दलित और नारी जाति ने विद्रोह का स्वर बुलंद किया एवं प्रतिबिंब, विचार साहित्य में "डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर विचारधारा" नाम से प्रवाहित है l डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर जी ने अपने लेखनी से वर्णव्यवस्था के दल - दल में फसा परिवर्तन का चक्र इतने तेजी से घुमाया कि पुरे भारत वर्ष के हि नही, विश्व के लोग उन्हें शोषित, श्रमिक, दलित और स्त्री के मुक्तिदाता मानते है l

भारतीय स्त्री पर सदियों से लादे धार्मिक बंधानो से मुक्त करते हुए पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में पुरुष के बराबर समान अधिकार देने के बाद हि भारत देश प्रगती पथ पर चल सकता है l इस अनिवार्यता के बरे में उन्होनें कहा था – "सामाजिक क्रांती में नारी को भी पुरुष कि सहयोगी बनना होगा समाज के आधे अंग को जागृत किये बिना ,साथ लिये बिना सामाजिक क्रांती संभाव नही है l " २ डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकरजी के विचारों से 'शिक्षा, संघटन, और संघर्ष' इस मंत्र को जीवनमंत्र मानकर शिक्षा के पथ पर चालनेवाले दलित समाजो को संघर्षभरा जीवन जिना पडा l अपने उसी संघर्ष को उन्होने साहित्य में 'चित्रित' किया जो महाराष्ट्र के दलित साहित्य में १९६० के बाद चित्रित होने लगा l उसीसे प्रेरणा लेकर १९८० में हिंदी साहित्य में भी दलित जीवन चित्रित होना प्रारंभ हुआ l समकालीन राजस्थान के लेखक 'रत्नकुमार साम्भारीया' जी ने भी अपने साहित्य के माध्यम से दलितो में चेतना निर्माण करणे का काम किया है l उनके साहित्य में डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकरजी के विचारों से प्रेरित दलित नायिकाओं का संघर्षशील जीवन चित्रण आज की नारी का प्रेरणा स्थली है l

'दलित समाज कि कहानियाँ' २०११, में प्रकाशित 'रत्नकुमार साम्भारीयाँ' जी का कहानी संग्रह दलित नारी का यथार्थ अंकान करता है। 'बात' कहानी के 'सुरती' का पती मरते समय उसे कह देता है- "गरीब के लिए पढाई हि उसकी पुंजी होती है l बेटा पढाई में अव्वल है l अफसर बनेगा l कितने किसट उठ लेना l " ३ डॉ. आम्बेडकरजी ने शिक्षा को 'शेरणी का दुध' कहा था , जो उसे ग्रहण करता है ;उसमें प्रतिकार करने कि शक्ती आ ही जाती है l इस विचारों से प्रेरित दलित समाज अपने बच्चों के शिक्षा के लिये अत्यंत कष्ट उठ रहा है l परंतु, वर्णव्यवस्था के ठेकेदार आज के द्रोणाचार्य दलितों को शिक्षा से दूर हि राखना चाहते है l तीन महिने कि तीन सौ रुपये फी प्राप्त न होने पर सुरती अपने बेटे राधू को क्लास के बाहर हाथ उपर खडा देखकर सिहर जाती है l गुस्से में मास्टर को कहती है - "कल पैसे देकर हि स्कूल भेजूंगी अपने राधू को l " ४ परंतु, जहां दो वक्त ककी रोटी नसीब नहीं वहॉ तीन सौ रुपये जुटान मुश्कील था l किसी से उधार भी नही मिल सकते है। अंत मी सुरती, 'धीगी' सावकार के पास जाती है l 'धींगी बद्सुरती के कारण अविवाहित जीवन जी रहा था, सुरती के पती के मृत्यू के बाद उसे लेकर स्वप्नों के महल खड़ा कर रहा था l आज अचानक 'सुरती' को द्वार पर देखकर उसके मन में ख़ुशी के लड्डू फुटने लगे l बच्चे के लिये तीनसौ रुपये कि बात सुनकर 'धीगी' को कहता है-"में 'रक्कम राखे, रक्कत लेता हुँ l सुरती के पास देने के लिये कुछ नाही था l और इज्जत से बडी रक्कम नही होती है , इस पथ पर चेलनेवाली सुरती धीगी के पास एक महिने में तीनसौ रुपये लौटाने की बात गिरवी रखकर आती है। वचन की पक्की सुरती तीनसौ रुपये कामाने के पीछे पड जाती है l अंत में रात दिन एक कर गाव से एक मैल दूर उनके फैक्टरी से उन लाकर उसकी पुनिया बनाने का काम करती है। एक महिने बाद तीनसौ पचास कमाई पाकर काम से लौटन पर 'धींगी' के पैसे वापस करने की सोचती हुई, तीन सौ रुपये गांठ में बंधकार रख देती है। घर लौटते पैसे कि गांठमें न पाकर सारा घर खोद लेती है l पागल सी घर मे ,आंगन मे आते उसे मोठे चप्पल के निशान दिखाई देते है l सुरती 'धींगी'के हवेली कि ओर भागती है और 'धींगी' पर शेरनी सी टूट पडती है l 'सुरती' के माध्यम से अपने बच्चो के शिक्षा के लिये श्रम करनेवाली सुरती अभिमानी भी है l अप्रैल १९२९ में अछुतो के सभा में डॉ. आम्बेडकरजी ने कहा था – "आत्मसम्मान के बिना जीना लज्जा जनक है l आत्मसम्मान सहित योग्यता से जिने से हि हमारी समस्याओं का समाधान

होगा l केवल कठीण और निरंतर परिश्रम शक्ति से हि हम अपनी पहचान बना सकते है। मनुष्यों कि श्रेणी प्राप्त करने के लिये हमें युद्ध करना पडेगा l हम किसी से नीचा और गुलाम बनकर जिना नही चाहते l यदि हम हिंदू शास्त्रों, देवी-देवताओं को मानेंगे और हिंदुओं के नीचे दाबकर रहेंगे तो किसी समय दलितों का अस्तित्व समाप्त हो सकता है l सबसे पहले हमें विधायिक, कार्यपालिका और न्यायपालिका पर बहुसंख्यक समाज को कब्जा करना होगा l " ५

अन्याय, अत्याचार, कष्ट क्यों न झेलने पडे हमें उच्चपदों को हासिल करना हि होगा l इस विचार का प्रतिबिंब 'फुलवा' कहानी में दिखाई देता है l 'फुलवा' रामेश्वर के घर में काम करती है. रामेश्वर के बैल ने पेट में सिंग डालने से 'फुलवा' के पती के मृत्यू हो गई थी l विधवा 'फुलवा' को देखकर उसे हथियाने कि बाते रामेश्वर के मन को अशांत राखती है l एक दिन 'रामेश्वर' के कुएँ पर 'फुलवा' दो मटके पानी भीक माँगती है, उसे गांव जाना है। वह बार - बार रामेश्वर को नाम से पुकारती है l उसका जातिय अहंम् जागृत होकार वह उसके मटके पार थुक देता है l अछूत 'फुलवा' अपमान सहते हुए मटके वही फोडकर घर लौटती है l 'फुलवा' अपने बेटे राधामोहन को लेकर शहर जाकर खूब पढाकर एस.पी. बना देती है l समय का मारा रामेश्वर घर के बटवारें के बाद हाथ से चली गयी जमींदारी और बेटे कि नौकरी के आशा से 'फुलवा' के घर आता है l 'फुलवा' कि हवेली और पढ़ी लिखी मेम साहब जैसी सुंदर बहुरानी देखकर उसे जलन होती है और चाय पिये बिना अपने गांव के पंडिताईन के घर आकार कहता है – "दादी, फुलवा सोने की हो जाए रहेगी उसी जात की मैने तो उसके घर का पानी तक नही पिया l धर्म भ्रष्ट होने से मर जाना अच्छा समझता है l रामेश्वर सिंह। " ६ समय के साथ परिवर्तित होनेवाली पंडीताईन उसे समझा देती है – "तु कुए का मेंढक ही रहा रामेसरिया। अब तो पद और पैसे का जमाना है, जात-पांत का नहीं फुलवंती का राधा मोहन कोई छोटा-मोटा अफसर नहीं एस.पी. है, एस.पी. l एक बात बताऊँ तुझे l जाकर मेमसाब के पांव पकडले और तब तक मत छोड वह हां न कह दे l " ७ समाज का एक वर्ग जाति-पाति को छोड रहां है l तो सामंतावादी सनातनी धर्म के ठेकेदार आज भी जाति-पाति को श्रेष्ठ मानते है। रामेश्वर को पंडिताईन जब कुत्ते, बकरी के पास गैरज में सुलाती है l तब परेशानी से बेहाल रामेश्वर अंत में 'फुलवा' के घर निकाल पडता है l

'शिक्षा' से मनुष्य अपने आचार-विचार रहन-सहन में परिवर्तन ला सकता है l अछूत सभ्य समाज कि जिंदगी जी सकता है l इसलिए डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकरजी ने अपना जीवन 'समिधा' बनाकर उच्चवर्णयों के धधकते यज्ञ में डालकर अछूत और स्त्रियों का उद्धार किया l उन्होने श्रममंत्री बनणने पर २३ अगस्त १९४२ को सरकारी समारोह में कहा था – "अस्पृश्य समाज को बराबरी का दर्जा दिलवाना हि मेरी उपलब्धि है l आप लोग दुसरों के गुलाम न रहें, इसके लिए शासन कि बागडोर अपने हाथ में लेनी होगी l यदि समाज का हित करने में तनिक भी पीछे रहा तो म अधिकार पद तुरंत त्याग दुँगा। " जिस समाज को सरकारी नोकरयॉ नही है, जो समाज अधिकारों
के पदों पर नहीं, उस समाज का कभी विकास नहीं होगा l " ८ उनकें इन्ही विचारों प्रेरणा लेकर दलित समाज के माँ-बाप अपने बच्चों के उच्चशिक्षा के लिए आज भी संघर्षरत जीवन को झेल रहे है।

भारतीय समाज में नारी को अतिशूद्र माना अगर वह नारी दलित समाज कि हो तो वह उच्चवर्णियों के लिए एक भोग का साधन मात्र होती है l उसे दोहरा अभिशाप भुगतना पडता है l सामंतवादी, जमींदार, साहुकार, महाजनों या आज के उच्चवर्णिय उच्चपदस्थ अधिकारी शिक्षा को ग्रहण करणे के बाद भी जातिय मानसिकता से बाहर नही आ पाते है। दलित स्त्री को उपभोग कि वस्तू के रूप में हि देखते है l 'चपडासन' रत्नकुमार सांभारीया कि प्रसिद्ध कहानी है, जिसे 'सहारा समय' कथा चलन प्रतियोगिता २००६ में पुरस्कृत किया गया है और उपराष्ट्रपती कि और से सम्मानित किया गया l 'चापडासन' कहानी कि नायिका 'मीता' का पति 'मुनींद्र' के मर जाने के बाद उसी कार्यालय में 'चपडासन' का काम स्वीकारती है l आज तक अपने अफसर कि पत्नी के रूप में 'मीता' का आदर करनेवाला धनपाल 'मीता' को हासिल करना चाहता है l एक दिन पानी पिलाने के बहाने मीता का हाथ पकडता है और कहता है – "मीता, तुम्हारे कारन अनिंद्रा कि बिमारी हो गई है मुझे l न्याय कि खुर्ची पर बैठकर वह मीता के साथ अन्याय कर रहा था l मीता ने झटके से अपना हाथ छोड लिया l उसके रोम-रोम आग उठने लगी थी l इस हादसे की खबर सारे दफ्तर में हो गई थी l सन्नाटा छा गया था l एक - एक कर्मचारी को जैसे साँप सा सुँघ गया था l मीता पुलिस स्टेशन जाकर एफ.आय.आर. दर्ज करती है l " ९ 'चपडासन' कि 'मीता', 'आखेट' कहानी कि रेवती' नायिका अपने अत्याचार का प्रतिकार करती नजर आती है l 'संविधान' ने प्रदान किये अधिकार का उपयोग करते हुए अपने उपर होनेवाली अन्याय के प्रति आज स्त्री जागृत हुई दिखाई देती है l अन्याय के प्रति निडरता से खडे रहना डॉ. आम्बेडकरजी कि देन है l उन्होने कहा था – "अपने चहरे पार का घुंघट हटकर निडरता से जीना सिखो l अछूत महिलाओं के सर्वांगीण सुधार के बिना अछूत समाज का विकास होनेवाला नहीं है l " १०

डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकरजी ने भारतीय स्त्री जाती के उन्नती के लिए 'संविधान' में हि पुरुष समान अधिकार प्रदान करके उनके मुक्ति का पाठ प्रशस्त किया है l प्रस्तुति अवकाश, बच्चों के लिए श्रमस्थ्लपर शिशुगृह, विधवा पुनर्विवाह, बालविवाह प्रतिबंध, विशेष विवाह अधिनियम, हिंदू विवाह अधिनियम, माता-पिता और पती के संपत्ती मे समानाधिकार, राजकीय सत्ता में आरक्षण, दहेज प्रतिबंध, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, हिंदू दत्तक ग्रहण निर्वाह अधिनियम आदि अधिनियम पारित करते हुए स्त्री कि कानूनी रक्षा करते हुये, सुरक्षित जीवन जीने के लिए आश्वासित किया है l परंतु' आज भारत देश के स्वतंत्र होकर ७० साल के बाद भी 'स्त्री' पुरुष सत्ता मानसिकता और धर्म के सांकल से मुक्त होने के बजाय वह साकल अधिक मजबूती से कसते जा रहे है l इस बारे में महाराष्ट्र कि 'नारी मुक्ति संघटना कि प्रवक्ता विद्या बालजी कहती है- "आज के शासन के नीती में हिंदुत्व का मुद्दा महत्वपूर्ण है l जो सनातनी विचार है ,वही शासन अप्रत्यक्ष रूप से स्त्रियों तक पहूँचा रहा है। एक ओर म. जोतिबा फुले जी ने स्त्री के शिक्षा का द्वार खोले वही बंद करके हमें घर में बिठाने वाले हो तो उससे लज्जास्पद और कोई बात नही हो सकती l आज के शासन के साथ काम करनेवाली समविचारी संघटनायें नारी संबंधी जो विचार व्यक्त कर रहे है, जिससे आनेवाले समय में नारी समस्याएँ बढ जायेगी l इसलिये स्त्री को फिर एक-बार आपने मुक्ति के लिए लढने के लिए तैयार होना चाहिए, मैं इस बारे में आशावादी हूँ " ११ विद्या बाल के इस विचारों से स्पष्ट है कि बाबासाहेब आम्बेडकरजी ने

संविधान के द्वार दलित, नारी को मुक्ति करते हुए मानवाधिकार प्रदान किया था l उन्हें फिर से बंदी बनाने कि साजीश को हमे खत्म करना हो तो जात-पात-धर्म के बंधनों को नकार कर स्त्री जाती को एक होकर 'मानवतावादी समाज' निर्माण के क्रांतीपथ में आगे रहना होगा l

निष्कर्ष :

डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकरजी के विचारों से प्रेरित होकार वर्णव्यवस्था को नकार कर यहॉ के दलित और नारी ने 'शिक्षा' का अस्त्र लेकर अपने मुक्ति के पथ पर मार्गक्रमण किया l परंतु, आज के स्थिती में फिर एक बार दलित और स्त्री को उनके अधिकार से दूर रखने कि साजीश को खत्म करना है , तो भारतीय स्त्री को जात- पात-धर्म के भेद को मिटाकर'मानवतावादी' समाज निर्मिती के लिए क्रांती के पथ पर सबसे आगे होना चाहिए।

संदर्भसूची:

1. 'गीता' के नौवे अध्याय में ३२ वे श्लोक l
2. 'अंगुत्तर' त्रिमासिक – १९९५, पृ.३३ l
3. दलित समाज कि कहानियॉ – रत्नकुमार सांभारिया 'बात' कहानी, अनामिका पब्लिशर्स नई दिल्ली, प्र.सं.२०११ ,पृ.१५० l
4. दलित समाज कि कहानियॉ - रत्नकुमार सांभारिया 'बात' कहानी, अनामिका पब्लिशर्स नई दिल्ली, प्र.सं.२०११, पृ.१५१ l
5. 'अंगुत्तर' त्रीमासिक – १९९५, पृ. ४२ l
6. दलित समाज कि कहानियॉ - रत्नकुमार सांभारिया 'फुलवा' कहानी, अनामिका पब्लिशर्स नई दिल्ली, प्र.सं.२०११ ,पृ.२७ l
7. दलित समाज कि कहानियॉ - रत्नकुमार सांभारिया 'फुलवा' कहानी, अनामिका पब्लिशर्स नई दिल्ली, प्र.सं.२०११ ,पृ.२७ l
8. 'अंगुत्तर' त्रिमासिक – १९९५, पृ. ७ l
9. दलित समाज कि कहानियॉ - रत्नकुमार सांभारिया 'फुलवा' कहानी, अनामिका पब्लिशर्स नई दिल्ली, प्र.सं.२०११पृ.२७ l
10. 'डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर यांची बुद्ध धर्मावरील व्याख्याने', संकलन – सुधीर गवळी, सुधीर प्रकाशन, प्र. सं.२००१, पृ. ४५ l
11. 'महाराष्ट्र टाईम्स' समाचार पत्र 'टॉकटाईम्स' से १८ जनवरी २०१७, संवाददाता – आदित्य तानवडे l

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

सुशीला टाकभौरे के 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में चित्रित दलित नारी जीवन

तब्बसुम शकील पठाण
छात्रा,हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

दलित स्त्री विमर्श की ख्यातनाम रचनाकर सुश्री. सुशीला टाकभौरे द्वारा रचित 'शिकंजे का दर्द' बहुचर्चित आत्मकथा है। दलित साहित्य क्षितिज पर दलित चेतना को मुखरित करनेवाली एकमात्र दलित लेखिका है- सुश्री. सुशीला टाकभौरे। वास्तव में हिंदी दलित लेखन का आरंभ प्रायः आत्मकथा विधा से शुरू होता है और यही बात मराठी साहित्य में भी पाई जाती है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि दलित आत्मकथा लेखन की शुरुआत पहले मराठी में हुई बाद में हिंदी में। हिंदी दलित लेखन में आत्मकथा लेखन की बाढ़-सी आ गई किन्तु उसमें पाठकों का ध्यान आकर्षित किया 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा ने।

'शिकंजे का दर्द' हिंदी की पहली दलित स्त्री आत्मकथा है। शिकंजा यानि पंजा, जिसकी जकड़न में रहकर कुछ कर पाना असंभव तथा कठिन है। शिकंजा यानी एक ऐसा साधन जिसमें धुनकने के पहले रुई को कसा जाता है। दलित समाज हमेशा से अपनी मुक्ति के लिए संघर्षरत है। स्त्री को दलितों में दलित माना जाता है। जिस प्रकार शिकंजे में फंसा हुआ जानवर मुक्ति के लिए छटपटाहट करता है उसी प्रकार दलित स्त्री मनुवादी समाज व्यवस्था के शिकंजे से मुक्ति के लिए छटपटाती रही है। वह लाचार, अपमानित, शोषित जीवन जीती दिखाई देती है। प्रस्तुत आत्मकथा में लेखिका ने स्वयं के साथ हुये शोषण, यातना, संघर्ष, पीड़ा, संत्रास आदि का वर्णन किया है। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में संताप है,आक्रोश है दलित होने का, स्त्री होने का। प्रस्तुत आत्मकथा में दलित नारी की शोषित, पीड़ित, अपमानित, अभावग्रस्त तथा संघर्षशील दलित जीवन की व्यथा-कथा है। मानो स्त्री होना ही अभिशाप है, व्यथा की बात है।

भारतीय समाज व्यवस्था वर्णव्यवस्था पर आधारित है। चार वर्णों की व्यवस्था में ब्राम्हन, क्षत्रिय एवं वैश्य को श्रेष्ठ एवं उच्च माना गया और शूद्र को हीन तथा निम्न माना गया। वर्णधारित जातिवाद एवं उच्च-नीचता के कारण निम्न वर्ग हमेशा से उपेक्षित रहा है। उच्च वर्ग ने जातीय अहंभाव एवं श्रेष्ठता के कारण स्वयं को उच्च एवं श्रेष्ठ बनाए रखा और निम्न वर्ग को नीचा बना दिया। सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक सभी तरह के सुविधाओं पर अपना एकाधिकार स्थापित कर समाज के बीच बड़ी खाई निर्माण कर दी। 'शिकंजे का दर्द' में लेखिका के जातीयता के दर्द की लंबी दास्तान है। स्कूलों में अध्यापकों से यह अपेक्षा थी की वे सभी वर्गों के छात्र-छात्राओं के साथ एक समान व्यवहार करेंगे क्योंकि छात्रों को उन्ही के द्वारा ज्ञान तथा संस्कार प्राप्त होते है। लेखिका ने प्रस्तुत आत्मकथा में ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख किया है, जिससे अध्यापकों कि जातिवादी मानसिकता प्रकट होती है – " सुशीला तुम आगे क्यों बैठी हो? तुम्हें सबसे पीछे बैठना चाहिए .....जिसकों जिस जगह पर बैठने के लिए कहा गया है। वह अपनी जगह पर बैठेगा। कोई भी अपनी जगह नहीं बदलेगा। गुरुजी के भय से कांपते हुए मैं अपना बस्ता लेकर बैठ गई थी।"[1] वास्तव में किसी भी छात्र के लिए अध्यापक उसके प्रेरणास्त्रोत होते है परंतु दलित छात्र ऐसे अध्यापकों से क्या प्रेरणा लें, जो शिक्षा देने से ज्यादा जातिभेद का बर्ताव कर रहे है।

लेखिका के जीवन में कॉलेज का अनुभव भी कड़वा ही रहा है। घर से निकलते ही दलित होने का ऐहसास कराया जाता था। तांगेवाले सवर्ण सवारी के साथ बैठने नहीं देते थे। अधिकतर समय कॉलेज पैदल ही जाना पड़ता था। कॉलेज में भी दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ता। गरीब दलित अछूत लड़की होने साथ साथ लड़की होने का दोहरा संताप को सहना पड़ता था।

प्रस्तुत आत्मकथा में लेखिका ने दाम्पत्य जीवन के पहलुओं को उजागर किया है। 6 मार्च, 1974 को नागपूर में सुंदरलाल टाकभौरे जी से विवाह हुआ। बीस साल का दोनों में अंतर होने से यह अनमेल विवाह था। नया सपना लेकर ससुराल आई सुशीला जी को शिकंजे का दर्द सहना पड़ा। पति का मारना, पीटना पुरुष वर्चस्ववादी सत्ता का प्रदर्शन था। कितनी भी पढ़ी-लिखी स्त्री क्यों न हो पुरुषों के अत्याचार का शिकार होना ही पड़ता है क्योंकि लड़कियों को यही सिखाया जाता है कि पति परमेश्वर होता है। स्त्रियों के बारे में महादेवी वर्मा जी ने लिखा है- " मुझे बड़ा ही दुख होता है जब मैं आजादी मिलने के तीन दशक सात वर्ष बिताए समाज को देखती हूँ आज कि नारी को कुछ भी नहीं मिला है, जो कुछ मिला हुआ था, वह भी छिन गया।"[2] वर्तमान में नारी को व्यक्ति नहीं वस्तु माना जाता है। सब उसका उपयोग और उपभोग करना चाहते है। पुरुषों को अपने जीवनयापन के लिए धन चाहिए और धन संपदा के साथ नारी चाहिए। पितृसत्ता प्रधान भारतीय समाज में स्त्रियों को बराबरी का दर्जा नहीं दिया जाता। लेखिका के पति का माँ, बहन के सामने बात बात पर डांटना, चिल्लाना, मारना, अहंभाव से व्यवहार करना आदि बाते सुशीला टाकभोरे जी के दिल और दिमाग पर आघात करते है। उनके आत्मसम्मान के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। सुशीला जी आर्थिक शोषण तथा घरेलू हिंसा कि शिकार थी। इसको व्यक्त करते हुए लेखिका कहती है कि- "स्कूल या बाहर से आने के बाद कभी-कभी टाकभौरे जी मेरे सामने पैर लंबे कर देते। मेरा ध्यान न रहने पर हाथों से इशारा करके जूते उतारने के लिए कहते। मैं चुपचाप उनके पैरों के पास बैठकर जूते के फीते खोलती, जूते उतारती, मौजे उतारती। यह बात मुझे अजीब सी लगती थी।"[3] यही पति द्वारा स्त्री को गुलाम रखने कि मानसिकता रही है। सुशीला कॉलेज कि अध्यापिका होने के बावजूद पति सब पैसे निकाल लेते थे। कभी कभी लेखिका का पैसे न होने के कारण कॉलेज पैदल ही जाना पड़ता था। इस हालत हो देखकर उनकी सह-अध्यापिका लेखिका से कहती है – "तू पागल है,भैताड़ है, इतनी पढ़ी-लिखी महिला है, कॉलेज में पढ़ाती है, अपने आदमी से इतना डरती क्यों है। क्यों बताती है पूरे रुपये?"[4] इस प्रकार लेखिका आर्थिक रूप से सक्षम थी फिर भी अपने प्रति हो रहे अन्याय को क्यों सहती है , विद्रोह क्यों नहीं करती आदि प्रश्नों कि पड़ताल स्वयं लेखिका नेकी है- "पीएच.डी. प्राप्त कॉलेज की अध्यापिका होने के बाद भी मैं तरह हिंसा, अन्याय, उत्पीड़न सहती रही। मेरे साथ लगातार यह सब होता रहा। मैं गुस्से में कभी अलग रहने का विचार करती थी। नौकरी के रहते मुझे किसी के सहारे की जरूरत नहीं थी। कई बार निर्णय लिया। मैं उनके साथ नहीं रहूँगी। ....जाने दो आगे ऐसा नहीं होगा। परिवार टूटने से बच्चों के साथ अन्याय होगा।"[5] यह एक स्त्री की व्यथा-कथा नहीं समाज के अनेक स्त्रियों की कथा है।

शिक्षा ही दलितों के उन्नति एवं विकास का आधार है। डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर जी ने 'शिक्षा, संगठन और संघर्ष' का मूलमंत्र दिया। इसी संदेश को आत्मसात किया और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी शिक्षा हासिल की। लेखिका की नानी और माँ की शिक्षा के अवसर प्राप्त नहीं हो सके परंतु उन्हें शिक्षा का महत्व पता था। इसीलिए उन्होंने अपने सभी बच्चों को स्कूल में दाखिल कराया था। परंतु उस समय स्कूल में अछूतों के बच्चों के लिए अनुकूल वातावरण नहीं था। वे शिक्षा केंद्र या स्कूल से ज्यादा बाहर ही रहते थे। इसी वजह से सुशीला टाकभौरे के भाइयों को स्कूल छोड़ना पड़ा परंतु सुशीला टाकभौर जी ऐसे वातावरण कैसे पढ़ी और बढ़ी इस बारे में लिखती है- "मैंने ऐसी परेशानी से अलग तरीके से छुटकारा प लिया था। पढ़ाई और पढ़ाई मेरी मंजिल का रास्ता बन गया। पढ़ाई में ध्यान रहने से दूसरी बातों में ध्यान नहीं रहता था।"[6] वास्तव में लेखिका की यहाँ शिक्षा के प्रति अदम्य लालसा, रुचि, लगन तथा निष्ठा का पता चलता है। प्रस्तुत आत्मकथा में ऐसे अनेक प्रसंग है जो आज दलित समाज तथा स्त्री के लिए प्रेरणादायी है।

प्रस्तुत आत्मकथा में लेखिका का एक ओर समाज सुधार का उद्देश्य है और दूसरी ओर स्त्रियों में उनके अधिकार के प्रति चेतना जगानी है। शिक्षा और आत्मनिर्भरता से ही उनमें यह चेतना उत्पन्न की जा सकती है। यह आत्मकथा पुरुषवादी मानसिकता से आहत दलित स्त्री की कहानी है। यह ऐसे व्यक्तित्व की निर्माण की कहानी है, जो दबी, सहमी, लाचार बेबस स्त्री अपने अधिकारों के प्रति सजग, जागृत,ही नही है बल्कि उसे वह हासिल करती है। वास्तव में यह आत्मकथा दलित स्त्री की यातना, संघर्ष और जीत की कहानी है।

संदर्भ:

1. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, पृ.22
2. डॉ. देशराज वर्मा, स्त्री विमर्श के प्रश्न और महादेवी वर्मा, पृ.127
3. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, पृ.143
4. —वही--,पृ.199
5. –वही--,पृ.198
6. –वही--,पृ.191

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

हिंदी साहित्य: नारी विमर्श

डॉ.वैशाली प्रशांत सामंत
B /3 ,आय.जी.एम.हॉस्पिटल, नर्सेस क्वाटर्स,इचलकरंजी, महाराष्ट्र

प्रस्तावना:

किसी भी समाज और उसके समय की वास्तविक स्थिति जाननी हो तो उस में स्त्री की स्थिति पर विचार करना अनिवार्य होगा।

नारी विमर्श स्वरुप:

नारी का अंतरंग और बहिरंग स्वरूप अत्यंत उलझा हुआ है आधुनिक युग के नारी के व्यक्तित्व की पहचान करना बहुत ही दुष्कर काम है घर और बाहर के बोझ को उठाते उठाते वह मानो दो पाटों के बीच पीस रही हैं।

"ख्वाब पलते रहे आखो मे, हसरते जिती रही दिल मे मगर होंठ बंद कर दिये इस जमाने कातिल ने।"

नारी विमर्श पर विद्वजनों और साहित्यकारो ने खूब लिखा है, इस पर प्रकाश डाला हे ,परंतु आज भी उसे अपने व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए संघर्ष करना पडता हैं।

विविध यूगो में नारी की स्थिति:

प्रागैतिहासिक काल से आधुनिक काल तक नारी स्थिति में निरंतर कुछ न कुछ परिवर्तन होता आया है|

प्रागैतिहासिक युग की नारी नर से श्रेष्ठ थी, वैदिक युग में वह पूज्यनीय एवं सन्माननीय थी। परंतु महाकाव्य काल में नारी के अधिकार सीमित हो गए| उसकी स्वतंत्र सत्ता का लोप हो गया। मध्ययुग में मुसलमानों के आक्रमणों और मुगलों के राज्य के बाद नारी की स्थिति में गिरावट आ गई। आधुनिक युग की नारी स्व विकास की ओर उन्मुख हो गई|उत्तर आधुनिक युग में नारी शिक्षा,नारी जागरण, वैज्ञानिक आविष्कार, संविधान प्राप्त अधिकार, पाश्चात्य विचारधाराए, पाश्चात्य संस्कृति आदि के कारण नारी जीवन मे बहुत परिवर्तन होने लगा है|

यद्यपि नारी चेतना का उन्मेष अतीत में गार्गी, मैत्रयी,अनसुया, मध्ययुग में मीरा ,रत्नावली ,रानी दुर्गावती ,अहिल्याबाई आदि के द्वारा आरंभ हो चुका था। साहित्यिक संदर्भ में इसी चेतना का उत्कर्ष बीसवीं सदी के उत्तरार्ध से देखा जा सकता हैं। 'यशोधरा' के बहाने गुप्त जी ने कह दिया कि पत्नी पति की प्रगति में बाधक नहीं है।उन्होंने साकेत के माध्यम से कैकेयी और उर्मिला की पीड़ा को भी मुखरित किया हैं।

निराला जी ने भी स्त्री की प्रेरक शक्ति को पहचाना| महाकवि प्रसाद जी ने उसे पुरुष की कामांध कारा से बाहर निकालकर मुक्त कर दिया ।प्रेमचंद जी ने स्त्री की परिवारिक एवं सामाजिक सीमाओं के बावजूद धनिया,सुमन और मालती जैसे कुछ विद्रोही पात्र खड़े कर दिए। स्त्री विमर्श की दृष्टि से जैनेद्र जी के स्त्री पात्र साहसी हैं। महादेवी वर्मा तो लिखती हैं –"हमे न किसी पर जय चाहिए, न किसी पर प्रभुता|केवल अपना वह स्थान ,वे स्वत्व चाहिए, जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नही हैं ,परंतु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग नही बन सकेंगी." ('श्रृंखला की कड़ियाँ' अपनी बात से-महादेवी वर्मा)

हिंदीं उपन्यासों में स्त्री विमर्श:

आज स्त्री को अपनी समग्रता में सभी स्तरो और् आयामो मैं व्यापकता और गहनता के दोनों क्षेत्रों में अभिव्यक्त करने के लिए उपन्यास से अधिक समर्थ माध्यम दूसरा नहीं है। उपन्यास में स्त्री व्यक्तित्व की सूक्ष्म से सूक्ष्म छटा प्राप्त् होती है।

हिंदी मे अधिकांश उपन्यास मनोविज्ञान की धरातल पर ही लिखे गये है क्योकि मनोविज्ञान का मूलाधार प्रेम और यौन का है| भावना है|जैनेन्द्र कुमार का अनाम स्वामि' ,भगवतीचरण वर्मा का 'रेखा',म्रुदुला गर्ग का ' चित्त कोबरा, कृष्णा सोबती का मित्रो मरजानी आदि उपन्यासों में प्रेम और यौन मनोविज्ञान का चित्रण प्राप्त होता हैं|

नारी मुक्ति के विचारों पर प्रकाश डालनेवाले कई उपन्यास हिंदी में लिखे गए|जैसे अमृतलाल नागर का 'अग्नि गर्भा,'नाचो बहुत गोपाल',राजकमल चौधरी का 'नदी बहती थी ',शैलेश मटियानी का 'दो बूंद जल ' निर्मल वर्मा का 'वे दिन',राजेंद्र यादव का 'अनदेखे अनजान पुल' चित्रा मुद्गल का 'एक जमीन अपनी', आवा आदि उल्लेखनीय उपन्यास हैं|

आज हमारे देश में नारियों के जीवन में जो असंगतिया दिखाई देती हैं, उसमें पाश्चात्य शिक्षा, पाश्चात्य विचार धारा का प्रभाव परिलक्षित होता है ।हिंदी उपन्यासों में ऐसी नारियों का चित्रण प्राप्त होता है जो पारिवारिक परिवेश,सामाजिक परिवेश के कारण असंगत आचरण की शिकार बनी हैं।नारी जीवन की असंगतियो का बोध निम्नलिखित कुछ उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है-राजेंद्र यादव और मन्नू भंडारी का 'एक् इंच मुस्कान, 'रमेश बक्षी का 'बैसाखियों वाली इमारत ',देवेश ठाकुर का'भ्रमभंग' आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं।

हिंदी काव्य में स्त्री विमर्श:

काव्य जगत में भी अनेक ऐसी रचनाएँ आ रही है, जो स्त्री स्वतंत्र के पक्ष में बिलकुल नया पर आक्रमक रुख अपना रही है। इसमे प्रमुख है – काव्यायनि की रचना 'सात् भाइयों के बीच् चंपा' ,समस्त वैदिक ओर पौराणिक मिथकों को तोडते हुए आगे बढ़ती है| अनामिका का काव्यसंग्रह 'कहती हैं औरतें' तथा जया जाद्वानी की ' जादू नहीं कविता' 'सामाजिक एवं पारंपारिक संदर्भों के दायरों को तोड़कर स्त्रियो के राजनैतिक पक्ष को भी अभिव्यक्ती देती हैं।

नारी स्वातंत्र्य एव आधिकारों के लिए उठी सर्वाधिक आक्रमक आवाज उर्दू लेखिकाओं की कलम से उठी है।

उसने इतिहास की हर दरारों से औरत का शोषण,अत्याचार,धार्मिक ज़्यादती और कुरान पाक का सहारा लेकर औरत पर हुए जुल्मों सितम की तस्वीर दुनिया को दिखा दी है।"दर असल देखा जाए तो जो आग उर्दू लेखिकाओ में है वह हिंदी लेखिकाओं में नहीं जबकि दोनों तरफ आग बराबर

लगी हुई है…हिन्दि की लेखिका ने जब कलम थामी तो अपने को समेटकर अपने खोल मैं सुरक्षित रखते हुए,खुलकर लिखने से परहेज करते हुए…जबकि उर्दू लेखिका बगावत पर उतर आई।उनका लेखन मर्द,मौलवी और मजहब से टकराने वाला खूंखार लेखन बन गया।जितनी उन पर बंदिशें लगाई गई,उनके अंदर की चिंगारी उतनी ही तेज शोला बनकर भड़क उठी।वे पर्दानशीन लेखिकाए चाहे पाकिस्तान की फहमीदा रियाज,जाहिदा हीना हो या बांग्ला देश की तसलीमा नसरीन….बगावत की आग को लेखन मैं उतार्,परदे को परे कर सिगरेट की छल्ले उगलती कठमुल्लाओ ओर मौलवियो के नाक मे दम किए है|"

यदयपि हिंदीं लेखिकाओं में लीक से हटकर अपने जीवन के परदे उठाने का साहस किया है प्रभा खेतान ओर मैत्रेयी पुष्पा ने।जब तसलीमा नसरीन ने अपनी आत्मकथा प्रकाशित की थी तो प्रश्न उठाया गया था…हिन्दि की तसलीमाए क्या कर रही है? वो क्यों नहीं लेखक्,मठाधीशो का पर्दाफाश करती?इसी विषय पर मैत्रेयी पुष्पा लिखती है-"मास् ,जीवित मास का उपयोग ही स्त्री की कीमत है, यह जीवित मास पुरुष के इशारे पर हरकत मैं आता है और बेहरकत होता है।तब माना जाता है की वह अपना नैतिक चरित्र निभा रही है। समाज के तथाकथित इज्जतदार वर्ग को मैत्रेयी पुष्पा ने बड़ी ही निर्भिकता से अपनी लेखनी की तलवार चलाकर सरे आम चुनौती दी है। सच उकेरने का साहस और आक्रमकता चित्रा मुदगल की कलम में भी है। उन्होंने झोपड़पट्टी से लेकर वृद्धावस्था के दर्द पीड़ा को बखूबी व्यक्त किया है।मेहरून्निसा परवेज ने औरत की पीड़ा को उजागर कर उसे कभी मर्द के सामने झुकने नहीं दिया।

आज स्त्री विमर्श समाज के बडे स्त्री समाज की चिंताओं से नही जुड़ सका है, क्योंकि जो स्त्रीया इसका नेतृत्व कर रही है, वे अपनी हैसियत बनाने मे इसका इस्तेमाल कर रही है। मृदुला गर्ग,प्रभा खेतान,राजी सेठ जैसी विदुषी महिलाओं ने स्त्री विमर्श के नाम पर जो लिखा वह विदेशी साहित्य से प्रभावित हैं।ये अमीर महिलाएँ यह नहीं जानती कि समाज का बड़ा हिस्सा बिस्तर से नीचे उतरकर जमीन पर भी चलता है, हाथ से काम करता है।

स्त्रीवादी साहित्य का भविष्य महिला लेखन के समृद्ध होने पर ही निर्भर करता है।वह तभी समृद्ध होगा जब महिला लेखन देहवाद से मुक्त होगा।देहवाद का यह नजरिया स्त्री -मुक्ति का द्वार नही खोल सकता, क्योंकि इन विमर्शों से स्त्री का वही भोग्या रूप संपुष्ट होता हुआ नजर आता है।स्त्री विमर्श कि उपलब्धियां हमारे सामने हैं |अधिकतर लोग स्त्री -पुरुष को समान मानने लगे है, किन्तु महिला लेखन के आगे बढ़ने में लेखिकाओं का आत्मनकार आड़े आता है।उन विमर्शों को चुनौती देनी होगी जो इन आत्मनकार को मजबूत बनाती है।पुरुषों द्वारा बनाई गई मुक्त स्त्री की छबी को मिटाना होगा ओर कहना होगा की,एकदम मुक्त जैसी कोई स्त्री नही होती। स्त्री जानती है की ज्यों -ज्यों उसके श्रम को स्पेस मिलेगा तथा ज्यों -ज्यों वह स्वयं को अभिव्यक्त करेगी,त्यों -त्यों पुरुषों के बनाए इतिहास को बिखेर जाना है।

कृष्णा सोबती,मन्नू भंडारी,चित्रा मुदगल, ममता कालिया,मृदुला गर्ग,प्रभा खेतान, मंजुल भगत,मैत्रेयी पुष्पा,राजी सेठ,म्रिणाल पांडे,अलका सरावगी ,नासीरा शर्मा आदि की रचनाएं नारी जीवन की विसंगतियो और विडंबनाओ को कतरा दर-कतरा निछोडती हुई उनकी जिंदगी के अंधेरे कोने में रोशनी फैलाने का काम कर रही हैं।

स्त्री किसी भी समाज के परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।आजादी के 75 वर्षों बाद भी सैकड़ों गांव अपना दशा जर्जर है ,पर स्त्रियों की जागरूकता निश्चित रूप से बढ़ी हैं| ग्रामीण स्त्री अब खुदको भी देख रही हैं और दुनिया को भी।

समाज मे आज जो नारी की स्थिति दिखाई देती है वह 50 वर्ष पूर्व् नही थी फित् भी नारी- पुरुष के बीच की विभाजक रेखा आज भी बनी हुई हैं। इन रेखाओं को तोड़ने की जरूरत है। 21वी सदी में प्रवेश कर चुके भारत मै ओरतो ने अपनी दृढ इच्छाशक्ति ओर कठोर श्रम से उन मुकामों को भी छू लिया,जहां पर पहुंचने के लिए आदिकाल से उसके पैरों में बेडिया डाली गई हैं । इन बेड़ियों को तोड़ने का साहस उसमें आ गया है।समाज के तथाकथित इज्जतदार वर्ग को निर्भीकता से सरे आम चुनौति दी है ।आज के चरित्रहिन् समाज ,भ्रष्ट राजनीति,लालच की अर्थनीतियो,हिंसा की विकृतियों के विरुद्ध पूरी मानवजाति के पक्ष में खड़ी स्त्री जो लड़ाई लड़ना चाहती है, उसकी कीमत चुकाने का उस में साहस हैं।

निष्कर्ष यही है की वर्तमान स्त्री समाज,जाति,वर्ग,राष्ट्र आदि की संकुचित सीमाओं को पाटती हुई दमन,आतंक,संताप् ओूर शोषण के विरुद्ध अपनी मुठ्ठियां तान कर खड़ी हैं। नरि स्वयम शक्ति है,शक्ति का संचारण करते हुए पुरुष प्रधान समाज् मे अपना दर्जा ,अपनी बराबरी स्वयं हासिल करनी होगी|वह किसी की मोहताज नही,न ही असहाय हैं।

आज हमारा साक्षात्कार ऐसी स्त्री पात्रों से होता है, जो अपने सामने उपस्थित चुनौतीयों को ड्ढढ़ता के साथ स्वीकार करती है और अपने किसी निर्णय के लिए पुरुष का मुँह नहीं जोहती।

संदर्भ ग्रंथ:

1. साठोत्तरि महिला उपन्यासकारो मैं नारी चिंतन
2. श्रृंखला की कडिया ॉ- महादेवी वर्मा

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

कितने प्रश्न करूँ' खंडकाव्य के माध्यम से अभिव्यक्त नारी विमर्श

डॉ. वंदना पाटील
अध्यक्ष हिंदी विभाग, श्रीपतराव चौगुले आर्टस अण्ड सायंस कॉलेज,मालवाडी- कोतोली,तह. पन्हाला, जि.कोल्हापुर
ईमेल – patilvandanap@gmail.com

सारांश :

ममता कलिया जी ने सीता के माध्यम से आज के स्त्री पर होनेवाले अन्याय के कारण होनेवाली उनकी मानसिक द्वंद्वावस्था को अभिव्यक्त करती है। समाज में स्त्री को केवल घरेलू औरत माना जाता है। उसे किसी भी प्रकार के निर्णय लेने में सम्मिलित नहीं किया जाता है। उसे कडे बंधनों में बंधकर जीना पडता है। आज हर स्त्री सिर्फ अपने अधिकार तथा हक्क मांगती है । आज की स्त्री किसी भी क्षेत्र में पिछे नहीं है। वह पुरुषों के साथ-साथ कार्यरत है परंतु फिर भी समाज उसे एक स्त्री होने के नाते दुय्यम स्थान देता है। स्त्री इतने सालों से अन्याय सहती आयी है उसकी एक दिन मन में दबोचकर रही सभी विद्रोही भावनाएं उमडकर बाहर आती है और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाती है।

आजकल समाज में सभी ओर विमर्श की चर्चा हो रही है। इसमें स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि हैं। हमें पहले विमर्श के बारे में जान लेना आवश्यक है। 'विमर्श' का मतलब किसी वस्तु के बारे में लोगों के बात-चीत करने के तरिके या सोचने की पद्धति से है। ये तरिके मिलजुलकर लोगों की सामान्य धारणा को बनाते हैं। 'विमर्श' का अर्थ किसी एक निश्चित फ्रेमवर्क में किसी विषय के बारे में सोचना है, धारणा है और धारणाधारी व्यक्ति विशेष की नहीं होती सामान्य लोगों की होती है। जैसे स्त्रियों के बारे में लोगों की होती है। जैसे स्त्रियों के बारे में लोग क्या सोचते हैं? उनके बारे में क्या विचार रखते हैं? उन्हें समाज में कौनसा स्थान है? यह सब विमर्श है। "स्त्री-विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से हैं। स्त्री की स्थिति की पडताल उसके संघर्ष एवं पीडा की अभिव्यक्ति के साथ-साथ बदलत सामाजिक संदर्भों में उसी भूमिका तलाशे गये रास्तों के कारणों जन्में नए प्रश्नों के टकराने के साथ-साथ आज की स्त्री की मुक्ति का मूल प्रश्न उसके मनुष्य के रुप में अस्वीकारें जाने का प्रश्न ही है।[1]

वर्तमानकाल में स्त्रियों के अधिकार तथा हक्क के बारें में सभी ओर बोलबाला है। प्रत्येक स्त्री को अपने अधिकार तथा हक्क प्राप्त होने चाहिए। स्वतंत्र भारत की वह भी एक नागरिक है। परंतु स्त्री को समाज में निम्न स्थान ही दिया जाता है। प्राचीनकाल से वर्तमानकाल तक समाज में पुरुष प्रधान संस्कृति रही है। परिणामत: स्त्री को दुय्यम स्थान दिया गया है। उसे उसके अधिकार, कर्तव्य, इच्छा, अपेक्षा से दूर रखा गया है। वह स्त्री अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकती । उसके आचार- विचार तथा स्वातंत्र पर कडे निर्बंध लाए गये हैं। किसी भी काल की स्त्री पुरुष वर्ग के विरोध में नहीं बल्कि समाज में अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए आवाज उठाती है। आज की स्त्री सभी क्षेत्रों में पुरुषों के बराबर काम करने लगी है। अत: वह अपनी पहचान बनाना चाहती है। "स्त्री विमर्श स्त्री की सभी स्थितियों सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक का प्राचीन समय से लेकर अब तक के इतिहास का मूल्यांकन और विवेचन कर इन सभी व्यवस्थाओं के खिलाफ संघर्ष है न कि पुरुष वर्ग के साथ संघर्ष है। स्त्री बस अपनी पहचान बनाना चाहती है। वह भी पुरुष के समकक्ष है यह बताना चाहती है।"[2]

प्राचीनकाल में अनेक स्त्रियों पर अन्याय होता हुआ दिखाई देता है। स्त्री घर से बाहर जा नहीं सकती थी, बालविवाह की पद्धती, विधवा विवाह का विरोध, विधवा को समाज में किसी भी प्रकार का स्थान न देना, घर के समारोह में सम्मिलित न करना आदि बातों के कारण स्त्री को समाज द्वारा दिया हुआ निम्न स्थान स्पष्ट होता है। इतिहास में कुंती, द्रौपदी, अहिल्या, सीता आदि स्त्रियों को अपने अधिकार से वंचित रखा गया है। देखा जाए तो इन स्त्रियों को इतिहास में मृत्यु के बाद उच्च स्थान दिया गया परंतु जब तक वह जीवित थी तब उन्हें अनेक अन्याय को सहना पडा था। कुंती को समाज के डर से अपने पुत्र कर्ण को छोडना पडता है, द्रौपदी को पॉच पतियों के साथ रहना पडता है उसीप्रकार एक वस्तु की तरह पट पर लगाया जाता है, अहिल्या को अपवित्र मानकर शिक्षा दी गयी थी, सीता को केवल समाज के डर से तथा कहने से राम एक नहीं दो बार अग्निपरिक्षा लेने को मजबूर करते हैं। इससे कह सकते हैं कि इन उच्च कुल की स्त्रियों को इतना भुगतना पडता था तो सामान्य स्त्रियों की अवस्था क्या होगी?

इतिहास में सीता एक ऐसी स्त्री है जिसे इतिहास में उच्च स्थान प्राप्त हो गया है। उसे आदर्श कन्या, आदर्श पत्नी, आदर्श माता माना जाता है। परंतु उसे आदर्श कहते हैं समय उसके आदर्श के पीछे छिपी हूई दुख, वेदना, विरह आदि भावनाओं को नहीं देखता है। सीता को जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक प्रश्नों से मन को घिरा हुआ होता है। उन्हें अनेक अन्याय सहने पडे थे। उन्हीं बातों को ममता कालिया ने 'कितने प्रश्न करुं' इस खंडकाव्य में उपस्थित करने का प्रयास किया है।

जब राम-रावण युद्ध समाप्त होता है तब सीता इतने दिन पति से दूर किसी पराये स्थान पर अनेक अन्याय सहते हुए अपनी पवित्रता को रखते हुए जीवित रही थी वह जैसी है वैसी ही राम से मिलना चाहती थी। परंतु राम सीता का स्विकार जैसी है वैसी करते नही है बल्कि उसे सोलह शृंगार करके मिलने आने को कहते हैं। सीता सज-धजकर राम को मिलने जाती है। तब सीता को राम अग्निपरिक्षा देने की आज्ञा करते हैं और सीता को अपनी पवित्रता सिध्द करनी पड्ती है। उस समय सीता का मन दुखी हो उठता है वह राम से पूछना चाहती है कि

फिर हुए कुपित क्यों स्वामी
अपमान किया क्यों बोलो?
क्यों बन बैठे अभिमानी
स्वीकार न करके बोलो।[3]

सीता अपने पति के सीवा दूसरे पुरुष के बारे में विचार भी नहीं करती है ऐसी सीता पर राम संदेह व्यक्त करते हैं तब सीता का मन वेदना से भर जाता है और वह राम से प्रश्न पूछना चाहती है कि मेरा अपमान क्यों किया? तुम्हें पुरुष होने का इतना अभिमान कैसे जिसके कारण तुमने मेरा स्वीकार नहीं किया? तुम्हें लोकापवाद का भय था या तुम्हारे ही मन की कमजोरी थी मतलब तुम्हारे ही मन में मेरे पवित्रता के बारे में संदेह था? इन प्रश्नों से सीता के मन में दबी हूई वेदनाएं व्यक्त करना चाहती है। इससे स्पष्ट होता है कि सीता एक स्त्री होने के कारण उसकी पवित्रता पर संदेह लिया जाता है। उसे अपनी पवित्रता सिध्द करने के लिए अग्निपरिक्षा देनी पडती है।

राम-सीता को लेकर अयोध्या आ जाते हैं। राज्याभिषेक हो जाता हैं। परंतु एक दिन सामान्य व्यक्ति के कहने से राम फिर से सीता को त्याग देते हैं तब सीता गर्भावस्था में थी। ऐसी अवस्था में एक स्त्री को घर से निकालना इतना बडा अन्याय किसी भी स्त्री को असह्य हैं । उस समय सीता के मन को वेदना भरी ठेंच पहूंच जाती है। एक पवित्र स्त्री को अपवित्र मानकर निराधार बना दिया जाता है। सीता के दुख की कल्पना कोई नहीं कर सकता। सीता राम से प्रश्न करना चाहती है कि तुम लोकहितवादी है, जनकल्याण ही तुम्हारा कर्तव्य है फिर तुमने मुझपर अन्याय कैसे किया मैं तुम्हारी प्रजा नहीं थी क्या?

सच कहती हूं मन में तब

भीषण आक्रोश उठा था
अर्पित हो जाती जल को
ममता का मोह उठा था| [4]

सीता राम से कहना चाहती है कि जब तुमने मुझपर अविश्वास दिखाया उस समय ही मेरे मन में आक्रोश हो उठा था। जिसपर विश्वास रखकर रावण के यहॉ अनेक प्रसंगों का सामना करके भी पवित्र रही परंतु तुमने बिना सोचे समझे मेरा धिक्कार किया। तब मेरे मन में स्वंय का जीवन नष्ट करने का विचार आया परंतु गर्भ में होनेवाले बच्चे के प्रति ममता उमडकर आने के कारण मैं रूक गयी। आज की सामाजिक परिस्थिति कुछ अलग नहीं है। इसी प्रकार के प्रसंगों को स्त्री को मुंह देना पडता है।

सीता वन में रहती है। सीता के बेटे लव-कुश बडे हो जाते हैं और राम सीता को वापस आने का संदेशा भेजते हैं। सीता ऋषिमुनि के कहने पर अयोध्या जाने को तैयार होती है। परंतु सीता के जीवन की पीडा खत्म नहीं हुई है ।सीता के जाने के बाद उसे अपनी पवित्रता सिद्ध करने के लिए राम फिर अग्निपरिक्षा देने के लिए कहते है। तब सीता का मन वेदना से भरकर आक्रोश करता है और युगों युगों से होते आये स्त्रीयों के अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाती है।

अपवित्र सिर्फ नारी ही
होती है क्या जीवन में।
क्या पुरुष पान कर आता
पावनता का घुटी में।
नारी ही शोधित होती
आई है युगों युगों से।
क्या निष्कलंक रहता नर
चाहे गुजरे खतरों में। [5]

सीता की पवित्रता पर फिर से अविश्वास दिखाने पर सीता का मन जो आक्रोश से भरा था वह मन अब विद्रोह करने के लिए तैयार हो उठता है। सीता पूछना चाहती है कि प्रत्येक समय में केवल नारी ही अपवित्र होती है क्या ? पुरुषों को पवित्र माना जाता है क्या वे बचपन में घुटी से ही पवित्रता पीकर आए हैं ? मतलब स्त्री को जन्म से अपवित्र और पुरुषों को जन्म से पवित्र माना जाता है। सीता अपने पर हुए अन्याय को स्वीकार नहीं करना चाहती | सीता के मन में अनेक प्रश्न खडे होते हैं परंतु उसके उत्तर उसे नहीं मिलते हैं

कुछ प्रश्न मेरे मानस में
भी, रह रह कर उठते थे
उत्तर की अनुपस्थिति में
दाबे न कहीं दबते थे। [6]

सीता पर किए गए अन्याय के विरुद्ध सीता के मन में अनेक प्रश्न उपस्थित रहते हैं। सीता राम से प्रश्न पूछना चाहती है। परंतु पूछ नहीं सकती है क्योंकि राम से उसके उत्तर नहीं मिलते हैं। वह प्रश्न जैसे हैं वैसे ही रहते हैं और बार-बार उमडकर आते हैं। सीता उन प्रश्नों को दबोचकर रखना चाहती है लेकिन वे प्रश्न दबकर नहीं रहते हैं। इसके माध्यम से कवि समाज की स्त्रियों की परिस्थिति व्यक्त करना चाहते हैं।सीता जैसे अनेक प्रश्न आज की स्त्रियों के मन में आते हैं और वे प्रश्न वह किसी के सामने व्यक्त भी नहीं कर सकती उन्हें दबोचकर रखने पडते हैं।

निष्कर्ष :

ममता कालिया जी सीता के माध्यम से स्त्री पर होनेवाले अन्याय के विरुध्द आवाज उठाना चाहती है। समाज में स्त्री को केवल घरेलू औरत माना जाता है। उसे किसी भी प्रकार के निर्णय लेने में सम्मिलित नहीं किया जाता है। उसे कडे बंधनों में बंधकर जीना पडता है। आज की हर स्त्री सिर्फ अपने अधिकार तथा हक्क मांगती है। वह पुरुषों के साथ-साथ कार्यरत है परंतु फिर भी समाज उसे एक स्त्री होने के नाते दुय्यम स्थान देता है। स्त्री इतने सालों से अन्याय सहती आयी है वह एक दिन मन में दबोचकर रही सभी विद्रोही भावनाएं उमडकर बाहर आती है और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाती है।

संदर्भ ग्रंथ:

1. रेखा कस्तवार, स्त्री चिंतन की चुनौतियॉं
2. डॉ. आराधना मिश्रा, स्त्री विमर्श विविध संदर्भ
3. ममता कालिया : कितने प्रश्न करुं – वाणी प्रकाशन,दरियागंज दिल्ली, आवृति 2016 पृ. 27, 36, 54, 62
4. ममता कालिया : कितने प्रश्न करुं – वाणी प्रकाशन,दरियागंज दिल्ली, आवृति 2016 पृ. 36
5. ममता कालिया : कितने प्रश्न करुं – वाणी प्रकाशन,दरियागंज दिल्ली, आवृति 2016 पृ. 54
6. ममता कालिया : कितने प्रश्न करुं – वाणी प्रकाशन,दरियागंज दिल्ली, आवृति 2016 पृ. 62

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

महिला कहानीकारों की कहानियों में महानगरीय विमर्श

डॉ विठ्ठलसिंह रूपसिंह घुनावत
हिंदी विभाग, महिला कला महाविद्यालय, औरंगाबाद
Email – vitthalghunawat@gmail.com

साहित्य की किसी भी नयी विधा या प्रवृत्ति के आरंभ के पीछे अपने समय एवं समाज का सच एवं उसकी बदली हुई परिस्थितियां होती है जो उस नयी विधा या प्रवृत्ति की सृजनात्मकता के लिए भूमि एवं भूमिका का निर्माण करती है। यह लेखक के द्वारा सिर्फ नए या कुछ अलग करने की ललक से पैदा नहीं होती बल्कि बदली हुई सामाजिक , सांस्कृतिक , राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के वे दबाव होते हैं जो उस नयी साहित्यिक विद्या या प्रवृत्ति को आकार देने में मददगार होते हैं। यहां यह प्रश्न निर्माण होता है कि रामायण या महाभारत जैसे महाकाव्य नहीं लिखे जाते इस पर हम कह सकते हैं कि ऐसे महाकाव्य जिन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों की उपज थे है वैसी स्थिति एवं परिस्थिति आज के समय में रह ही नहीं गई है। इस संदर्भ में आलोचक एवं चिंतन मैनेजर पांडेय ने सही कहा है कि आज रामायण या महाभारत जैसे महाकाव्यों का टीवी सीरियल बनाकर सिर्फ उसका व्यापार किया जा सकता है। यह व्यापार आज इतना बढ़ गया है कि हर सीरियल के अनेक रूप हमारे सामने आते हैं , जैसे कुछ दिन पहले मैंने अखबार में पड़ा कि एक सीरियल आ रही है जिसका नाम है स्वर्ण घर जब मैं इस सीरियल के बारे में लिखा हुआ लेख पढ़ रहा था तो मुझे आज के इस महानगरीय जीवन की हर एक कहानी सामने आ रही थी कि कैसा यह विमर्श है जहां मां बाप अपने बच्चों के लिए सब कुछ कुर्बान कर देते हैं , बच्चे जब बड़े हो जाते हैं , अपने पैरों पर खड़े हो जाते हैं , तो वह अपने माता-पिता से अलग हो जाते हैं उनको माता-पिता को बात करने के लिए भी समय नहीं मिलता स्वर्ण घर में कमलजीत और सोना बेदी अपने परिवार के लिए खुद का जीवन समर्पित करते हैं हालांकि अपने बच्चों के लिए सर्वोत्तम चीजें उपलब्ध कराने के लिए संघर्ष करते हैं परंतु उनको बच्चों द्वारा अकेला छोड़ दिया गया है वह किस प्रकार अकेले ही जिंदगी जीने का साहस जुटा पाते वहीं इस कहानी का सार है।

महानगरीय विमर्श की बात को लेकर यहां मैं अपने विचार रख रहा हूं जो मैंने अखबार में सीरियल के संदर्भ में पढ़ा उससे एक बात याद आई की कोरोना काल में कुछ दिन पहले औरंगाबाद महानगर में एक ऐसी घटना सामने आई कि उसको सुनकर पढ़कर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं यह घटना कुछ दिन पहले हर समाचार पत्र में छपी थी। औरंगाबाद महानगर का एक प्रतिष्ठित इलाका है जिसको बंसीलाल नगर नाम से जाना जाता है उस इलाके में बहुत ही बड़े बड़े अपारमेंट है उसमें प्रतिष्ठित अपारमेंट मैं एक बुजुर्ग पति पत्नी रहते हैं और उनके जो बच्चे हैं वह नौकरी कारण विदेश में रहते हैं , यह पति पत्नी एक दूसरे का सहारा है क्योंकि कुछ बीमारी की वजह से यह जो पत्नी है उसकी हमेशा तबीयत खराब रहती है वह एक ही जगह पर रहती है उसका सब काम उनके पति करते हैं लेकिन इस कोरोना महामारी में हुआ ऐसा कि वह बुजुर्ग बीमार हो जाते हैं , इस वातावरण में उनकी मौत हो जाती है। पत्नी तो पहले से ही एक जगह पड़ी हुई है इसलिए उनकी कोई सहायता नहीं कर पाती इनकी मौत होने पर उस पत्नी को भी खाना पीना नहीं मिला तो उनके भी प्राण चले जाते वह चित्र हमारी आज की समाज व्यवस्था का ऐसा चित्र देता है कि हमारे होश उड़ जाते हैं।जैसे होना यह है इन दोनों की मृत्यु होने के बाद जब इनके शरीर से बदबू आने लगती और वह बदबू आजू बाजू वाले को सताने लगती तब वह इस बात की खबर पुलिस स्टेशन को देते जब पुलिस वाले आकर दरवाजा तोड़ कर देखते और जो देखा गया वह चित्र बहुत ही भयानक है, दोनों पति पत्नी की मौत हो जाती है यहाँ सवाल यह निर्माण होता है कि अगर इनकी मौत चार-पांच दिन पहले होती है तो, यह माता-पिता अपने बच्चों के संपर्क में नहीं थे? अगर संपर्क में है तो फिर क्या, चार-पांच दिन में उनकी बच्चों से बात नहीं हुई ऐसे अनेक सवाल निर्माण होते हैं, किंतु महानगरीय जीवन का यथार्थ चित्र हमारे सामने आता है, यह चित्र हर महानगर का है, यह विमर्श हर महानगर में चल रहा है यहां तक तो चित्र ठीक है किंतु सही चित्र तो इसके बाद सामने जो आता है , वह आज की महानगरीय विवशता का एक यथार्थ रूप हमारे सामने आता है। महानगरीय इस परिस्थिति को जब हम सुनते पढ़ते हैं तो हमारे दिल से अनेक बातें आती है यह परिस्थिति को देखकर जब पुलिस वाले उनके बच्चों से बात करते हैं जो विदेश में है वह कहते कि आपके माता पिता की मौत हो चुकी है और उनका अंत्यविधि करना है , आपको आना पड़ेगा तो बच्चे कहते कि हम आ नहीं पाएंगे क्योंकि यहां लॉकडाउन लगा है हमारा आना मुश्किल है आप ही उनका अंत्यविधि कर लो यह सुनकर हमें ऐसा लगता है कि हमने हमारे ही हाथों से हमारे ही मुंह पर तमाचा मारने के समान है, यह कैसी विवशता है कि अपने बच्चों को अपने माता पिता की मौत पर भी आने को समय नहीं है। यह कैसा चित्र हैं, हम कैसी सदी में जी रहे हैं यह बहुत ही भयानक स्थिति है। यह हर महानगर में दिखती है कई सामने आती है कहीं नहीं लेकिन हर महानगर में यह हर जगह हमें देखने को मिलता है। यह सब कहानी को सुनने देखने के बाद मुझे यहां मन्नू भंडारी जी की सजा कहानी याद आती है, इन माता-पिता को किस बात की सजा है। माता-पिता को बच्चों को लाड प्यार करने की या उनको अच्छा पढ़ा लिखा कर बड़ा बनाने की सजा है। सजा कहानी का चित्र है कि एक बेगुनाह को सजा मिलती है और वह बेगुनाह साबित होने तक उनकी जो परिस्थिति होती उसका यथार्थ चित्र आज भी हमारे सामने आता है इस कहानी का एक वाक्य है, "भगवान तेरे राज में इतना अंधेर मेरे निर्दोष बेटे को दो साल की सजा।[1]" इस वाक्य में सिर्फ दो साल की सजा है परंतु जैसे पहले जिस माता-पिता की बात हुई और जो आज ऐसे अनेक महानगरों में माता-पिता हैं जिनको आजन्म सजा मिल रही है। स्वर्ण घर में जो दिखाने जा रहे हैं कि आज के माता-पिता अपने बच्चों से तलाक लेना चाहते हैं ऐसे बहुत सारे माता-पिता तलाक लेना चाहते परंतु उनमें अभी इतनी हिम्मत नहीं है लेकिन ऐसा ही समाज का माहौल रहा तो वह हिम्मत भी जल्द ही आ जायेगी ऐसा मुझे लग रहा है।

सजा इस कहानी समझते हुए एक बात सामने आती है कि चाची गुस्से में कहती, "ऑफिस के बीस हजार गायब करके गाड दिए और हमारा खून चूस रहे हैं! यह हमारे बड़े हैं लानत है ऐसे बड़प्पन पर इस बड़प्पन के वाक्य पर।[2]" इस बड़प्पन के वाक्य पर महानगरीय बड़े घरों की एक बात

बताता हूं कि जो एक दिन बैंक की कतार में खड़ा था तब सत्तर पचाहत्तर साल के बुजुर्ग उस कतार में खड़े थे, उनको खड़े रहने में तकलीफ हो रही है फिर खड़े हैं जब मैंने उन्हें वहां सोफे पर बैठने के लिए कहा तो खुशी से बैठ गए परंतु उन्होंने उस कम समय में बड़े घर के बड़प्पन की बात मेरे सामने रख दी वह महानगरीय जीवन व्यथा है। उनका कहना था घर में बेटे बहू उनके बच्चे सभी हैं सभी अपने-अपने काम में लगे रहते हैं उनको अपने काम के लिए समय है परंतु उस पिता के लिए समय नहीं यहां तक कि वह नौकर के साथ आए थे परंतु बेटा साथ नहीं आया घर में भी सभी अपने मोबाइल में व्यस्त रहते परंतु माता-पिता को कोई जल्दी बात तक नहीं करता यह बात मुझे बहुत बुरी लगी कि क्या आज ऐसे कितने परिवार होंगे जहां ऐसा वातावरण होगा यह एक बहुत शर्मनाक सजा है।

सूर्यबाला की कहानी दादी और रिमोट में दादी को महानगर में लाने के बाद चार दीवारों में ही रखा गया परिवार का हर सदस्य अपने अपने कामों में व्यस्त था बड़े लोग ऑफिस में चले जाते थे बच्चे स्कूल में निकल जाते थे। दिन भर दादी अकेली ही रहती थी उसे पूरी निगरानी में रखा गया था गांव में इसके विपरीत दृश्य था वहा कोई बाहर वाला आता तो उसको पूरी तरह आदर सत्कार किया जाता था लोगों की आवभगत की जाती थी परंतु इस महानगर में हालात बिल्कुल उल्टे थे। यहां दादी को सख्त हिदायत दी गई थी कि किसी भी हालत में घर का दरवाजा नहीं खोलना किसी भी अनजान इंसान को घर में प्रवेश करने नहीं देना। सदैव घर का दरवाजा बंद ही रखना।[3] यह आज का वास्तविक जीवन है जो हर महानगर में दिखाई देता है ऐसी कितनी दादिया है, जो बंदी बनी हुई है, बनती रहेगी यह ऐसी कहानियों से हमारे सामने आएगा।

आज की ताजा घटना है कि बीड महानगर में एक शादीशुदा औरत का तीसरी मंजिल से ढकेल कर कत्ल किया जाता है, जबकि उसने अपने पिता को दो दिन पहले फोन पर कहा था कि मेरा यहां से छूटकारा किया जाए परंतु उसे समझा-बुझाकर वहीं पर रहने के लिए कहा गया, दो दिन बाद उसका तीसरी मंजिल से ढकेल कर कत्ल किया जाता है। क्या यह महानगरीय सत्य है जो हमें कुछ नई चेतावनी दे रहा है, ऐसी अनेक घटनाएं हर रोज के जीवन में हमें देखने या पढ़ने मिलती है, क्या यही महानगरीय जीवन है , जो हर दिन किसी की मौत होती है, किसी को जलाया जाता है, किसी का कत्ल कर दिया जाता है। नाशिक महानगर की एक घटना है कि एक चिकित्सा अधिकारी महिला का जली हुई कार में शव मिलता है, तलाश करने पर पता चलता है कि उच्च चिकित्सा अधिकारी महिला को जलाने के पीछे मुख्य रूप में उसके पति का ही हाथ रहता है, क्यों ऐसी घटनाएं घट रही है जो कि किसी में पत्नी की मृत्यु के पीछे पति का हाथ या पति की मृत्यु के पीछे पत्नी का हाथ है। यह सब आज की आधुनिकता का कारण है जिसके तहत रिश्तो का प्रेम कम होता जा रहा है ऐसी घटनाएं समाज में बढ़ रही है कि जो न होने वाला है वह आज हो रहा है, सुनकर हम परेशान हो जाते हैं, तो जब घटना को कोई मुख्य रूप देता है तो कहा वह अपना कलेजा रखता होगा और कैसे इस बात को अंजाम देता होगा यह विचार करने जैसी बात है। औरंगाबाद महानगर में कुछ दिन पहले एक हादसा हुआ था जिसमें बेटे ने पिता का कत्ल किया था और वह पिता एक नामवंत अध्यापक थे उनका कत्ल हो ना यह तो बहुत ही गंभीर बात है वह भी बेटे ने करना यह उतने ही चिंताजनक बात है यहां संदर्भ दैनिक दिव्य मराठी का 8 नवंबर 2021 का देता हूं एक सेवानिवृत्त सेना अधिकारी की हत्या उनके बेटे के हाथो से होती है और उसका कारण पुराने झगड़े को बताया जाता है क्या यह हमें सही लगता है बिल्कुल नहीं हमें ऐसा लगता है कि हम अपनी विनाशता की ओर जा रहे हैं जैसे अध्यापक का कत्ल अपने बेटे के हाथसे होना वैसे ही एक सेवानिवृत्त अधिकारी का कत्ल बेटे के हादसे होना ऐसे बहुत सारे किस्से सामने आते हैं। इससे पहले बीड का भी किस्सा मैंने सुना था उसमें भी एक उद्योगपति का बेटा उसकी हत्या कर देता है ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलेंगे तो क्या ए महानगरीय जीवन है या यहां का वातावरण है। महानगरीय वातावरण में आजकल बुजुर्ग पति पत्नी साथ साथ रहते हैं और उनके साथ काम करने वाले नौकर रहते हैं बेटा विदेश बेटी की शादी हो जाती है यह पति पत्नी दोनों ही रहते और नौकर उनके घर का एक जिम्मेदार हिस्सा बन जाता है। एक हादसा जालना महानगर का है जहां मालिक की डांट पर नौकर उनकी मालकिन का कत्ल कर देता है क्या यह दृश्य है समाज का की कैसे-कैसे लोग इन महानगर में बसे हैं मारपीट , गाली गलौज, कत्ल आज बहुत आम बात बन चुकी है यह हर दिन के जीवन में नजर आ रहा है। क्यों इतना यह हादसा हो रहा है क्या इसके पीछे राज हैं, क्यों हम इस और जा रहे हैं। किस बात का हम पर असर हो रहा है इसको हमें एक अलग तरीके से अध्ययन करना पड़ेगा और इसे अध्ययन करके हमें इसके ऊपर कुछ अलग निकालना पड़ेगा कि यह घटनाएं कैसे कम होती जाए। अंततः हम कह सकते हैं कि महिला कहानीकारों कि, कहानीयो और समाचार पत्रों के संदर्भों को देकर यहां आज के महानगरीय विमर्श की बात को रख सकते हैं। यह बात बहुत दिनों दिन बहुत ही भयानक होती जा रही है इसमें कहीं ना कहीं कुछ तो बदलाव जरूर आना चाहिए। महानगरीय वातावरण में बदलाव हो जाए यह बदलाव ऐसा हो की यह घटनाएं घटने से रुक जाए। इन घटनाओं को अगर कम करना है तो हमें अच्छे संस्कारों की बहुत जरूरत है जब हम हमारे घर से बदलाव शुरू करेंगे, बच्चों को अच्छे विचार अच्छे संस्कार देंगे तो यह हादसे कम हो सकते हैं। इस शोध आलेख के आधार पर मैंने महानगरीय विमर्श की एक छोटी सी कहानी आपके समक्ष रखी है ऐसी बहुत सारी कहानियां समाज में आज भी जीवित है।

संदर्भ:

1) महिला : कहानी और कविता संपादक प्रो. जयमोहन एम. एस . पृ. 23
2) महिला : कहानी और कविता संपादक प्रो. जयमोहन एम. एस . पृ. 29
3) अंतर विद्याशाखीय बहुभाषिक शोध पत्रिका विद्यावार्ता पृ .92
4) दैनिक दिव्य मराठी माझा मराठवाडा पृ.3 - (25 मार्च 2022)
5) दैनिक दिव्य मराठी माझा महाराष्ट्र पृ. 2 - (18 जनवरी 2022)
6) दैनिक दिव्य मराठी माझा मराठवाडा पृ.3 - (8 नवंबर 2021)
7) दैनिक दिव्य मराठी पृ.1 - (15 दिसंबर 2021)

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी स्त्री-संघर्ष

डॉ.विट्ठल शंकर नाईक
अध्यक्ष,हिंदी विभाग, श्रीमती आक्काताई रामगोंडा पाटिल कन्या महाविद्यालय, इचलकरंजी
ईमेल – hindnaik@gmail.com

प्रस्तावना :

भारत एक विशाल राष्ट्र है जहाँ अनेक समुदाय निवास करते है। भारत की सामाजिक संस्कृति में आदिवासी समाज का अपना महत्त्व है। सामान्यत: आदिवासी शब्द से तात्पर्य है यहाँ के मूल निवासीI आदिवासी का एक अर्थ आदिम युग में रहनेवाली जातियाँ भी है Iमूलतः यह ओ जातियां है जो 5000 वर्ष पूर्व से आदि सभ्यता को संभाले हुए है Iकभी आदिवासियों की स्वतंत्र सत्ता थी I उनका जंगल और जंगल के साधनों पर अधिकार था I किंतु जैसे जैसे साम्राज्यवादी शक्तियां पनपती गई,वैसे वैसे उनके साधनोपर आक्रमण होने लगा Iउनका शोषण होने लगा I इसलिए आज आदिवासी विमर्श अस्तित्व का विमर्श बनगया है I

किसी एक भूप्रदेश में निवास करनेवाले ,सामान बोली का प्रयोग करने वाले निरक्षर जनजाति आदिवासी है I आदिवासियों को जनजाति,वनवासी,गिरिजन,मूलनिवासी आदि नामों से अभिहित किया जाता है I आदिवासी साहित्य सन्दर्भ में डॉ.विनायक लिखते है कि "आदिवासी साहित्य वन संस्कृति से संबंधित साहित्य है I आदिवासी साहित्य उन वन-जंगल में रहनेवाले वंचितों का साहित्य है जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर नहीं दिया गयाI यह यैसे दुर्लक्षित का साहित्य है जिनके आक्रोश पर मुख्य धारा के समाज व्यवस्था ने कभी ध्यान ही नहीं दियाI जारी क्रूर और कठोर न्याय व्यवस्था ने जिनकी सेंकडो पीढियों को आजीवन वनवास दियाI उस आदिम समूह की मुक्ति का साहित्य है I" 1

आदिवासी समाज मेहनत और संघर्षशीलता के लिए जाना जाता है। उसमें स्त्री-पुरुष संबंध बराबरी पर आधारित होता है। परिवार और समाज में उसका वही महत्त्व होता है जो पुरुषों का। इसीलिए वह निर्णय से लेकर संघर्ष तक में पुरुषों का घर से बाहर तक पूरा साथ देती है। युद्ध में भी आदिवासी स्त्रियां शत्रु से लोहा लेने में कभी पीछे नहीं हटीं, अपने समुदाय के पुरुषों के साथ ये स्त्रियां बराबर की सहभागी रहीं। आदिवासियों को केन्द्र में रखकर जिन लेखकों ने उपन्यासों की रचना की है, उनमें स्त्री स्वर मुखर रूप से दिखाया गया है।

योद्धा :

आदिवासी संघर्ष की श्रृंखला अत्यंत लम्बी है, उसमें जिस प्रकार आदिवासी नायकों का नाम आता है उसी प्रकार स्त्रियों का योगदान भी देखने को मिलता है। इससे पता चलता है कि जब भी आदिवासी पुरुषों ने बाहरी शक्ति से संघर्ष किया तब आदिवासी स्त्रियों ने भी उन पुरुषों का पूर्ण सहयोग कर बराबरी का परिचय दिया।

भारतीय इतिहास में अग्रेजी राज एक ऐसा समय था जिसने भारतीय ढांचे को तहस-नहस करके रख दिया था। आदिवासी प्रान्तों में अंग्रेजों ने उसी तरह नरसंहार किया जैसे देश के दूसरी जगहों पर हुआ। बंदूक से विहीन आदिवासी तीरों से अपना विरोध दर्ज कर रहे थे। अंग्रेजों की गोलियों का जवाब वे तीरों की बौछार से दे रहे थे। इन वीर योद्धाओं में बिरसा मुण्डा, सिदू, कानू, चाँद, भैरव आदि नायकों का साथ उनकी बहनों, बेटियों, पत्नी एवं सम्पूर्ण आदिवासी स्त्रियों ने दिया था। संकट के समय समाज की रक्षा और दुश्मन को परास्त करना प्रत्येक आदिवासी अपना धर्म समझता है। क्योंकि युद्ध की विभीषिका का दर्द पूरे समाज को झेलना पड़ता है इसलिए संकट की घड़ी में स्त्री-पुरुष सब मिलकर उस विपत्ति से निपटने का प्रयास करते हैं। वासवी लिखती हैं-''अंग्रेजों से लोहा लेने और कई इलाकों में तो उन्हें घुटने टेकने के लिए मजबूर करने में सशस्त्र स्त्रियों के दल ने भूमिका निभायी।''[2] अपने समुदाय के पुरुषों को लड़ाई करते हुए ये स्त्रियाँ देखती थीं कि वे किस तरह अपनी जान की परवाह किये बगैर अंग्रेजों से लड़ रहे हैं। ऐसे में आदिवासी स्त्रियाँ कैसे खामोश और हाथ पर हाथ रखकर बैठी रह सकती थीं, इसलिए उन्होंने भी पुरुषों के साथ अपनी भागीदारी का ऐलान किया और युद्ध क्षेत्र में उतर गयीं।

'बाजत अनहद ढोल' उपन्यास में मधुकर सिंह ने 1855 के 'संथाल विद्रोह' का वर्णन किया है। अंग्रजों के आने के बाद संथालों की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई थी। जीवन भर कर्ज चुकाना और गुलामी करना मानो उनके जीवन का अहम् हिस्सा बन चुका हो। महाजन एवं व्यापारियों से उधार लेकर जीवन भर वे इस दुष्चक्र में फंसे रहते थे। कोर्ट-कचहरी के चक्कर में ये संथाल और भी दरिद्रता की स्थिति में पहुंच रहे थे। धोखे से इनके इकरारनामे में कर्जदार से यह वादा करवा लिया जाता था कि वह महाजन के घर बेगार करेगा और ब्याज भी अलग से चुकायेगा जिसके चलते आदिवासी साहूकार का बंधुआ मजदूर बनकर जिंदगी भर लाचारी की जिंदगी बिताने को मजबूर रहता था। कर्ज में दबे होने से उन्हें भरपेट खाने को भी नहीं मिलता था। ऐसी ही कुछ वजहें थीं जिसने संथालों को युद्ध के लिए मजबूर किया था इसके लिए 1832-33 में कुछ निश्चित जिलों के साथ दामिन-ई-कोह का गठन किया गया था।

अस्तित्व हेतु बलिदान :

'जो इतिहास में नहीं है' राकेश कुमार सिंह के उपन्यास में सिविल सर्विस के जॉन पेट्टिवुड ने सर्वेयर की भूमिका में कैप्टन टैनर की सहायता से सीमाओं का निरीक्षण किया था। यह इलाका भागलपुर, मुर्शिदाबाद एवं वीरभूम जिलों में बंटा था जिसका क्षेत्रफल 1366.1 वर्ग मील था। इन्हीं जिलों के आदिवासियों ने मिलकर युद्ध का ऐलान किया था। जगह-जगह विद्रोह हो रहे थे कहीं तीव्र तो कहीं मन्द जिसमें स्त्रियाँ हमेशा साथ रहती थीं। अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत करने के कारण आदिवासी दण्डित होते थे। अंग्रेज ही सरकार का पर्याय थे और सरकार का विरोध करने पर व्यक्ति को दण्डित किया जाना तय था। आदिवासियों से परेशान होकर 10 नवम्बर 1855 ई. को मार्शल लॉ की घोषणा की गई थी जिसमें बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर को 1804 ई. के विनियम 10 द्वारा यह कार्य करने का दायित्व सौंपा गया इसके तहत भागलपुर ,मुर्शिदाबाद,वीरभूम जिला शामिल थे चूँकि अंग्रेज सरकार

के कार्यक्षेत्र में आने वाले सभी जिलों के अंदर जो भी व्यक्ति सरकार का (अंग्रेजों का)विरोध करेगा उसे गिरफ़्तार कर लिया जाएगा और अदालत भी कोई कार्यवाही नहीं करेगी ऐसे में 1804 के विनियम 10 के खंड के तहत मृत्युदंड का प्रावधान था। जिसके बाद घोषणा की गई कि अंग्रेज सरकार के कार्यक्षेत्र में आने वाले सभी जिलों के अंदर जो भी व्यक्ति सरकार का (अंग्रेजों का) विरोध करेगा उसे गिरफ्तार कर लिया जाएगा और अदालत भी कोई कार्यवाही नहीं करेगी। ऐसे में भोगनाडीह के रहने वाले संताली नेताओं सिदू , कानू, चाँद, भैरव आदि ने घोषणा की थी कि वे सूदखोर, महाजनों, दिकुओं को संतालों को क्षेत्र से बाहर निकाल अपना संताल देश कायम करेंगे। 30 जून 1855 को इन चारों भाइयों ने भोगनाडीह में हजारों संतालों को एकत्र किया और 'शोषण से मुक्ति कैसे संभव हो' इस पर विचार व्यक्त किया । अंग्रेजों और साहूकारों के शोषण से मुक्ति कि लिए सिद्दो, कानू, चाँद, भैरव ने युद्ध किया और वे निर्मम हत्या के शिकार हुए। इस युद्ध के बारे में कहा जाता है कि उसमें एक तरफ पुरुष थे तो दूसरी ओर स्त्रियां अंग्रेजों को चुनौती दे रही थीं। उपन्यास में दिखाया गया है कि किस तरह जोबा, बुधिया, सुमो, तुरिया, लुकी, कामी जैसी स्त्रियां पुरुषों के दल में शामिल हो चुकी थीं और एक सहयोगी की भूमिका में अपने दायित्वों का निर्वाह कर रही थीं। अपने देश के लिए मर मिटना इन स्त्रियों ने अपना कर्तव्य समझा था। इसलिए पुरुषों के साथ वे बराबर की सहभागिता का परिचय दे रही थीं। इन स्त्रियों के बारे में मधुकर सिंह का यह कथन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि ''जहां शिक्षा, गरीबी, अस्मिता, रोटी की चिंता सर्वोपरि हो वहां की दो लड़कियां और एक मुट्ठी औरतें आजादी के लिए मर मिटने को तैयार हैं। आजादी क्या होती है इसके रूप गंध का एहसास भी नहीं है इन्हें, बस इतनी ही भर की कल्पना है इन्हे कि आजादी का मतलब जुल्म का खात्मा होता है।''[3] इसी जुल्म के खात्मे के लिए आदिवासियों ने अंग्रेजों से युद्ध किया। वासवी ने सिदू ,कानू की बहनों के बारे में लिखा है-''संथाल हूल के नाम के सिदू, कानू, चाँद,भैरव के साथ उनकी दो बहनों फूलो और झानो ने योद्धा की भांति अंग्रेज शत्रुओं से मुकाबला किया। रात को तलवार लेकर निकली फूलो और झानो ने अंग्रेजों के शिविर जाकर 21 सिपाहियों की हत्या की।''[4] निर्भीक और साहसी दोनों बहनों ने अपने भाइयों का हर स्तर पर साथ दिया था। जंगलों में जाकर भोजन पकाने से लेकर गाँव-गाँव जाकर लोगों को इस लड़ाई के लिए तैयार करने तक हर स्तर पर दोनों बहनों ने सोये हुए मन में जागरूकता की नयी ज्योति जलायी थी। अंग्रेजों के समय में स्थितियां इतनी बुरी हो चुकी थीं कि आदिवासी अपने ही घर में बंधक हो गये थे। ऐसी स्थिति में जंगल को बचाने के लिए, अपनी भूमि पर अपना राज कायम करने के लिए अंग्रेजों की सेना से जा टकराई थीं ये आदिवासी बालाएं। गाँव-गाँव में लोंगों को हूल के लिए तैयार करने का बीढ़ा उठाया था इन दोनों आदिवासी किशारियों ने। राकेश कुमार सिंह ने उपन्यास 'जो इतिहास में नहीं है' में इनका वर्णन करते हुए लिखा है-''जिस सुघड़ता से मांस-भात रांधती थी फूलो और झानो उतनी ही कलात्मकता से तीर-तलवार भी चला लेती थीं। सुलतानाबाद के बाद भगदड़ भरे जीवन में फूलो, झानो और सुमि की उपयोगिता साथ रहने में कम रह गई थी। वे तीनों स्त्रियां गाँव-गाँव घूमकर हूल जगाने का दायित्व निभा रहीं थीं लोगों से कहती कि-''जंगल पर विपदा आयी है रे। ललमुहों से लड़ना है दीकू लोगों को भगाना है।''[5] यह कार्य इतना आसान नहीं था इसलिए वे कहती हैं कि ''जंगल के सारे गाँव-गोत्र मिलकर गाय-बकरी चराओ साथ-साथ।''[6] वे स्त्रियां जानती थीं कि अब संगठित होकर ही इस विपत्ति से पार पाया जा सकता है, इसलिए उन्होंने सबको संगठित होने का पाठ पढ़ाना शुरू किया। विपत्ति में ये स्त्रियां कितने साहस से काम लेती हैं और अपने वर्ग के पुरुषों का साथ देती हैं, इस घटना से यह सहज ही पता चल जाता है। विपरीत समय में संथाल युवतियां अपने जमीन एवं जंगल की रक्षा के लिए लड़ी न कि हताश हुई। उनकी निर्भीकता ही जीवन का मूल आधार था क्योंकि वे बिना किसी भय के अपने समाज में रहना चाहती थीं, यही वजह है कि वे लोगों को जाग्रत कर रही थीं। उन्हें अपने भाइयों की साहसी प्रवृत्ति पर भरोसा था। वे जंगल में जाकर बसे गाँवों में संदेश देतीं। राकेश कुमार सिंह लिखते हैं-''हूल में अंजुरी भर खून दो रे'- फूलो प्रेरित करती थी....बदले में भाई देगा महाजन से छुट्टी। कर्जे से छुटकारा अपने मन से जीने मरने की छूट। गाँव-गाँव में हूल जगाती फूलो-झानो और सुमि सखुए की डाली लिए घूम रही थी।''[7] यह सखुए की डाली उनके संघर्ष और सहयोग की निशानी है जो उन्हें एक होने का संदेश देती है। यह वह समय था जब एक ओर अंग्रेजों की दासता से छुटकारा पाने के लिए संघर्ष चल रहा था तो दूसरी ओर हमारे भारतीय महाजन, जमींदार, सेठ, साहूकार अंग्रेजों का साथ देकर आदिवासी इलाकों में घुसकर उन्हें परेशान कर रहे थे। भारत में मुख्यधारा के लोग जब अंग्रेजों को भगाने का कार्य कर रहे थे उसी समय एक और वर्ग जो सदियों से हाशिये पर जंगलों में निवास कर रहा था, वह अंग्रेजों के साथ-साथ अपने देश के दिकुओं से भी लड़ रहा था। यह सर्वविदित है कि जिस वक्त पूरा देश अंग्रेजों को भगाने के लिए प्रयासरत था उसी समय ये महाजन अंग्रेजों की चाटुकारिता कर अपने ही देश और लोगों को प्रताड़ित और शोषित कर अंग्रेजों का भरपूर साथ दे रहे थे। इस स्थिति में आदिवासीयों को दोहरे संघर्ष का सामना करना पड़ रहा था जिसमें आदिवासी स्त्रियों की भूमिका और पुरुषों को दिया गया उनका सहयोग अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जब-जब आदिवासी क्षेत्र में उनकी अर्थव्यवस्था, संसाधनों एवं उनकी समाज व्यवस्था पर कुठाराघात किया गया, उन पर शोषण और दमनकारी नीति अख़्तियार की गई तब-तब उसका प्रतिकार विद्रोह के रूप में उभर कर सामने आया। जिसमें स्त्रियों की भूमिका सदैव महत्त्वपूर्ण रही। आदिवासी युवतियां सचमुच बहादुरी की मिसाल थीं। उन्होंने हूल के दौरान बाहरी शक्तियों के खिलाफ जनता को जागरुक किया। भाइयों का साथ दिया। संथालों को आजादी का संदेश दिया और उन्हें गुलाम होने की पीड़ा को समझाया। इस प्रकार संताली स्त्री-पुरुष की सामूहिक शक्ति 'हूल' की ताकत थी क्योंकि हूल का अर्थ ही है 'मुक्ति के लिए आंदोलन'।

कर्मठ और शक्तिशाली :

'जंगल के फूल' उपन्यास में महान क्रांतिकारी नायक गुंडाधूर जिसने बस्तर प्रांत के लिए 1910 ई. में अंग्रेजों से बगावत की थी, उसे भूमकाल का नाम दिया गया था। यह शुरुआत धुरवा इलाके से शुरु हुई थी जिसमें शक्तिशाली शासकों के विरुद्ध साधन सम्पन्न लोगों के विरुद्ध सीधे-साधे आदिवासी जमात ने प्रतिरोध करने की ठानी थी। शासन के अन्याय के विरुद्ध आदिवासीयों द्वारा किये गये संघर्ष एक तरफ संस्कृति तो दूसरी तरफ स्व की रक्षा के लिए किये गये विद्रोह थे। इस विद्रोह में बस्तर प्रांत की आदिवासी स्त्रियों ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई लड़ी थी। धुरवा इलाके से गुंडाधूर ने जिस आंदोलन की शुरुआत की थी, उसमें आदिवासी स्त्रियों की भूमिका को राजेन्द्र अवस्थी ने अपने उपन्यास 'जंगल के फूल' में दिखाया है। इस उपन्यास का पात्र रायपुर में डी.एस.पी. रह चुका अंग्रेज ग्रेयर था। लेखक लिखता है "ग्रेयर ने एक बार कैदियों की ओर फिर देखा। उनमें औरतें भी थीं औरतों को देखकर उसने दांत पीसे, जंगली चुड़ैल। यह भी लड़ता है। उसने एक औरत को सामने बुलाया। प्रत्येक को वह ध्यान से देखता और

ताकतभर एक-एक हंटर उन्हें मारता और जेल में बंद करने का हुक्म दे देता।"[8] स्पष्ट है कि उस दौर में आदिवासी स्त्री के साहस को देखकर ग्रेयर अचंभित था।पीड़ा के बावजूद स्वतंत्र राज के लिए ये स्त्रियां जेल में कैद भुगतने को तैयार थीं। पेड़ पौधों, लताओं, पहाड़, झरना, नदी आदि से गहरा लगाव रखने के कारण इन्हें विनाश के कगार पर पहुंचाने वाले अंग्रेजों को ये कैसे बख्श सकते थे। प्रकृति पर आश्रित जीवन जीने और उसके साथ मित्रवत व्यवहार करने वाले आदिवासी उसे नष्ट होते कैसे देख सकते थे ? इसके साथ ही कर वसूली से आदिवासी परेशान हो चुके थे। उनके पूर्वजों ने कभी किसी को कर नहीं दिया था अब बिना किसी वजह के कर भरना पड़ रहा था इसलिए वे शोषण के विरुद्ध खड़े हुए। इसमें गुण्डाधूर का साथ सुलकसाए की प्रेमिका महुआ भी देती है। प्रारम्भ में तो वह अपने प्रेमी को लेकर चिंतित रहती है किंतु जल्दी ही वह प्रेमी की चिंता छोड़ अपने जंगल भूमि की रक्षा की चिंता करने लगती है। मुहआ का प्रेम विषम परिस्थिति में और भी मजबूत होता दिखाई देता है जो प्रेम की एक नई परिभाषा गढ़ता है। यह प्रेम सिर्फ एक प्रेमी के लिए उसके शरीर और संसर्ग से ऊपर उठने की प्रेरणा देता है। उनका प्रेम आगे चलकर किसी एक के लिए न रहकर सम्पूर्ण आदिवासी वर्ग के लिए समर्पित हो जाता है। 'जंगल के फूल' उपन्यास में राजेन्द्र अवस्थी लिखते हैं "गुण्डा का साथ महुआ ने भी दिया। महुआ को अभी तक सुलकसाए की चिंता थी। सुलक के वियोग में वह स्वयं को भूल गई थी .....उसका प्यारा सुलक अपने देश और अपनी जाति की रक्षा के काम में लगा है तो उसे भी उसका साथ देना चाहिए।उसने कमर कस ली उसने गुण्डाधूर का हाथ गह और कहा- चल बीर जंगलों से ये झाढ़ पेड़ और पौधे हमारी ओर ललचाई आँखों से देख रहे हैं, हम इन्हें बचाएं।"[9] इसी तरह बिरसा मुण्डा के उलगुलान 1900 ई. में चम्पी और साली नाम की दो विद्रोही स्त्रियां हमेशा बिरसा की मदद के लिए उनके साथ रहीं। ये स्त्रियां अपार शक्ति सम्पन्न थीं जो अपने में उस जज्बे को रखती थीं जो किसी बाहरी शक्ति से टक्कर ले सके, इन्हें मृत्यु का भी कोई भय नहीं था। ऐसी कर्मठ और शक्तिशाली स्त्रियाँ इन वन प्रांतों में शांत तरीके से रह रही थीं, जिसकी शक्ति का अंदाजा लगाना अत्यंत कठिन कार्य था।

नेतृत्व सम्पन्ता :

आदिवासी स्त्रियाँ अपने पूरे समूह का संचालन करती उन्हें प्रशिक्षण देती। यह प्रशिक्षण कुछ और नहीं बल्कि तीर धनुष से निशाना साधना था, जिसमें सबको महारत हासिल करना था, ताकि युद्ध के समय दुश्मन को मृत्यु के घाट उतारा जा सके। 'जंगल के फूल' उपन्यास की पात्र महुआ भी यही कार्य कर रही थी। राजेन्द्र अवस्थी ने महुआ का वर्णन करते हुए लिखा है कि- "महुआ ने औरतों की एक फौज गठित करना शुरु कर दी, औरतों को उसने निशाना साधना और लड़ाई के दूसरे तरीके सिखाए। यह काम उसने गढ़ बंगाल से ही शुरु किया था। धीरे-धीरे कई गाँवों तक वह फैल गया।"[10] और इस तरह जागरुकता और प्रतिरोध की लहर लोगों तक पहुंच रही थी।

आदिवासी स्त्रियों की पुरुषों के साथ हर कार्य में बराबर की सहभागिता होती है। वह एक तरफ यदि शांत और संवेदनशील हैं तो दूसरी ओर अपने संकल्पों के प्रति दृढ़। प्रेम में वह सर्वस्व लुटाने को तैयार हैं तो युद्ध में सब कुछ छीन लेने को तत्पर दिखाई देती हैं। अंग्रेजों के समय प्रत्येक आदिवासी लड़ने के लिए अपना घर द्वार छोड़कर प्रतिदिन नई योजनाएं बनाते। उन योजनाओं में स्त्रियां भी अपनी सक्रिय भागीदारी निभाती। एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाकर लोगों को एकत्र करते तो वे अपनी बुद्धि चातुर्य का प्रयोग कर अपनी अपेक्षित भूमिका निभाती। 'जंगल के फूल' उपन्यास में महुआ का चरित्र कुछ ऐसा ही है जिसमें वह योजनाओं का वर्णन सुलक से करती है। उपन्यासकार लिखता है कि "महुआ रात को सुलक से मिलती तो अपनी पूरी योजना पर चर्चा करती उसमें अपार शक्ति और लगन थी। सुलक देखकर चकित था। जो एक दिन प्यार में पागल थी, वह आज जैसे सारा प्रेम भूल गई थी। सुलक यदि प्रेम की कभी कोई बात करना भी चाहता तो महुआ उसे जोर का धक्का देकर कहती कैसा सिरदार है रे, लड़ाई के मैदान में कोई ऐसी बातें करता है। खबरदार ऐसा कहा तो मैं तेरी बराबर की सिरदार हूँ।"[11] स्पष्ट है कि युद्ध क्षेत्र में आदिवासी स्त्री पुरुष के बराबर मानी जाती थी। अगर पुरुष सरदार है तो वह भी सरदार है। घोटुल में सुलक सरदार की हैसियत से वहां के नियमों का पालन करता है तो सरदार की प्रेमिका होने के कारण महुआ भी उसके बराबर की हकदार रह चुकी होती है। इसलिए युद्ध भूमि में निर्णय लेने के समय भी वह बराबर की ही हकदार मानती है। यह आदिवासी समुदाय में स्त्री-पुरुष संबंधों के बराबरी द्योतक है।

आदिवासीयों का विस्थापन :

भारत से अंग्रेजों के चले जाने के पश्चात यहां औद्योगीकरण की नीति को बढ़ावा मिला। अंग्रेजों ने इसका बीज बोया जिसे भारतीयों ने पुष्पित पल्लवित किया। विकास का नया नाम देकर यूरोप की तरह यहां भी नये-नये कारखाने स्थापित किये जाने लगे। ये कारखाने वहाँ स्थापित किये जाने गए जहाँ आदिवासी रह रहे थे। वर्तमान में कई तरह की परियोजनाएं भी आदिवासी क्षेत्रों में अपना पैर फैला रही हैं। सरकार का कहना है कि इन कारखानों और परियोजनाओं के द्वारा आदिवासियों का पिछड़ापन दूर होगा और उन्हें आसान जिंदगी जीने का अवसर मिलेगा। बिजली, पानी आदि की सुविधा पाकर आदिवासी खुशहाल होंगे लेकिन इन कंपनियों के स्थापित होने से आदिवासियों को सौगात के रूप में विस्थापन मिला। जैसे-जैसे विकास में तेजी आयी आदिवासी बड़ी संख्या में विस्थापित होने लगे। आदिवासियों की जिंदगी में फिर से वैसा ही भूचाल आया जैसा अंग्रेजों के समय में था जिसके कारण यहां नये सिरे से आंदोलनों की शुरुआत हुई जिसमें आदिवासी पुरुषों के साथ स्त्रियां भी सामने आयीं।

देश की सुरक्षा के नाम पर पलामू, गुमला में सन्1994 ई. में 245 गाँवों को उजाड़कर वहाँ फायरिंग रेंज बनाने की योजना बनाई जा रही थी। ऐसे में वहां के स्त्री-पुरुषों ने देवमनी (बंधनी) के नेतृत्व में आंदोलन की राह पकड़ी देवमनी टाना आंदोलन के योद्धा जतरा भगत की पत्नी थी। जिसे 1914 में डेढ़ साल की कैद इसलिए हुई थी क्योंकि उसने अंग्रेजों और जमीदारों के खिलाफ सत्याग्रह किया था। यह आंदोलन इसलिए हुआ क्यों कि दिन रात खेतों में काम करने के बाद जमींदार उनके ही खेतों से जबरदस्ती फसल कटवा लेते थे। जतरा भगत ने आंदोलन किया और जेल गया तो उसकी पत्नी ने आंदोलन का नेतृत्व संभाला। उस आंदोलन की अगुआ बन बंधनी ने मिसाल कायम की थी।

आजादी के बाद उत्तर औपनिवेशिक पृष्ठभूमि को केन्द्र में रखकर जिन उपन्यसकारों ने लेखन कार्य किया है, उसमें स्त्रियों की क्रांतिकारी चेतना को बखूबी से दिखाया गया है। पुरुषों के साथ उनकी भी संघर्षशीलता, बराबर की सहभागिता आदि को प्रस्तुत कर आदिवासी स्त्रियों का सजीव वर्णन किया है।

खदान और आदिवासी संगर्ष :

'ग्लोबल गाँव के देवता' में रणेन्द्र ने जिस असुर समुदाय की त्रासद गाथा का वर्णन किया है उससे आज आदिवासियों के सम्मुख उपस्थित समस्याओं का पता चलता है। असुर जिस जगह रह रहे हैं वहां अवैध खनन जारी है लेकिन सरकार अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाती जिससे लोकल नेता और पुलिस के साथ मिलकर पूंजीपति इस कार्य को निर्भीक भाव से करते हैं जिससे आदिवासी दु:खी और पेरशान हैं क्योंकि जहां से यह अवैध खनन होता है वहाँ खाली गड्डे हो जाते हैं जिसके कारण वहाँ बीमारियां फैलती हैं। यह कार्य आजादी के बाद आज से पूर्व लगभग 30 वर्षों से हो रहा है।

आदिवासियों को खनन से होने वाली समस्याओं से खनन माफियाओं का कोई सरोकार नहीं है । खाली गड्ढों में गंदा पानी भरे रहने से वहां मलेरिया और तरह-तरह की बीमारियां फैलती हैं जिससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वैसे तो आदिवासी समाज में शिक्षा का स्तर अभी ज्यादा नहीं है किन्तु जो लोग शिक्षित हैं भी उन्हें भी बेहतर रोजगार नहीं मिल पाता। उपन्यास में जब असुर जिला मुख्यालय जाते हैं तो उनके साथ स्त्रियाँ भी जाती हैं। रणेन्द्र लिखते हैं- "बहुत बड़ी भीड़ जिला मुख्यालय पहुँची। बिरसा मैदान से जब रैली निकली तो हरे झण्डे से पूरा शहर पट गया। ग्रामीणों आदिवासियों मजदूरों का इतना बड़ा जुलूस इस शहर में आज तक नहीं देखा था। सबसे आगे बुधनी दी और ऐतवारी संघर्ष समिति का बड़ा बैनर लिए बढ़ रहीं थीं। मुझे (राजकुमार मास्टर) रैली में तो शामिल नहीं किया गया था, हाँ जेम्स की मोटर साइकिल से आगे-पीछे सब पर नजर रखने की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी। कलेक्टर को मांगपत्र सौंपने के बाद बात साफ कर दी गई कि इस बार केवल किसी जाँच-वांच से लोग चुप नहीं बैठने वाले। जब तक कोई कार्यवाई नहीं होगी, खदानों में और प्रखंड अंचल में काम ठप्प।"[12] इस प्रकार अपने समुदाय के लिए पुरुष के साथ कन्धे से कंधा मिलाकर ये स्त्रियां विद्रोह के लिए तत्पर हैं। बुधनी और ऐतवारी पुरुषों से आगे चलती हैं।

आदिवासी शांत तरीके से अपना आंदोलन करते हैं किंतु मांगों पर कोई असर नहीं होते देख और हिंसा से उसे दबाने के कारण वे बंदूक का सहारा लेते हैं। रणेन्द्र लिखते हैं- "तब तक गंदूर एतवा के ट्रक पर चढ़ चुका था ललिता, बुधनी दी सब पहले से थीं। ऐतवारी भी ट्क खुलने के पहले दौड़कर पहुंची और साथ चल दी।.....बातचीत के लिए जाते ललिता, बुधनी दी, गन्दूर, ऐतवारी, लालचन दा के बाबा और पन्द्रह लोग की धज्जियां उड़ गई थीं। लेकिन बिखरी हुई देह की जगह पिघलता हुआ लोहा वहां बहने लगा।"[13] यह आन्दोलन शांत तरीके से ही अपनी बात मनवाने का था जिसमें निर्दोश आदिवासी स्त्री पुरुषों की धाज्जियां उड़ादी गई थीं। इसमें स्त्री-पुरुष दोनों मारे जाते हैं। ये स्त्रियाँ साथ-साथ जीवन निभाने के साथ मानो मृत्यु में उनका साथ निभाने का वादा पूर्ण कर रही थीं।

आदिवासी क्षेत्रों में जहाँ-जहाँ खनिज सम्पदा है वहां सब जगह की कहानी एक जैसी है। आदिवासी जीवन में इतनी उथल-पुथल है कि उसे प्रतिरोध के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं सूझता है, जो स्त्री-पुरुष साथ मिलकर कर रहे हैं। जैसे वे गृहस्थी साथ मिलकर चलाते हैं।

आधुनिकीकरण के नामपर आदिवासीयों का संहार :-

'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में महुआ माजी मरंग गोड़ा में रहने वाले आदिवासियों की समस्याओं के संबंध में बताती हैं कि आधुनिकीकरण के कारण वहाँ आदिवासी जीवन किस तरह खत्म होने के कगार पर है। माचीकोटा गाँव में जब एक नया टेलिंग डैम बनने की बात सामने आयी तो सगेन ने पुरुष युवाओं के साथ स्त्रियों को भी समझाने की कोशिश की इससे प्रतिक्रिया सामने आयी, महुआ माजी उसका उल्लेख इस प्रकार करती हैं- "पुलिसिया अत्याचार की परवाह न करते हुए पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर औरतें भी धरना प्रदर्शन करने लगीं। पुनर्वास तथा रोजगार की मांग करते हुए नये टेलिंग डैम के निर्माण का विरोध करते हुए कंपनी के मुख्य गेट को घेरकर लुरमडीह, काटिन तरवा सतजनता आदि खदानों से कच्चा माल लेकर आने वाली गाड़ियों को मिल में घुसने से रोका जाने लगा।"[14] आगे वे लिखती हैं- "कंपनी तीसरे डैम को बनवाने की तैयारी में थी तब गाड़ियों की आवाजाही बंद करने के लिए पाँच-पाँच स्त्रियाँ सड़क पर लेट जातीं जैसे पुलिस उन्हें गिरफ्तार करती पाँच और महिला-पुरुष आकर उनकी जगह ले लेते।"[15] इस प्रकार स्पष्ट है कि आदिवासी स्त्री, पुरुष से कहीं अधिक जीवट और संघर्षशील है। वह शांतिपूर्ण जीवन में जैसे पुरुषों के साथ मिलकर खेती और शिकार करती है वैसे ही विपत्ति के समय उसका साथ देती है। बाह्य शक्तियों के द्वारा जब उन्हें परेशान किया जाता है अथवा क्षेत्र से बाहर करने का प्रयास किया जाता है तो पुरुषों के साथ मिलकर युद्ध भी करती हैं। अत: आदिवासी स्त्री का जीवन पुरुषों के साथ प्रत्येक स्तर पर सामंजस्यपूर्ण और सहयोगात्मक है जो मुख्यधारा के समाज में कम देखने को मिलता है।

निष्कर्ष :

आदिवासी साहित्य वन संस्कृति से संबंधित साहित्य है, वह वंचितों का साहित्य है जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर नहीं दिया गया I यह यैसे दुर्लक्षित का साहित्य है जिनके आक्रोश पर मुख्य धारा के समाज व्यवस्था ने कभी ध्यान ही नहीं दिया I जारी क्रूर और कठोर न्याय व्यवस्था ने जिनकी सेंकडो पीढियों को आजीवन वनवास दियाI उस आदिम समूह के मुक्ति का साहित्य माना जा सकता है I

संघर्षशीलता के लिए कठिबध इस समाज में स्त्री-पुरुष संबंध बराबरी पर आधारित होते है। शिक्षा व्यवस्था से कोसो दूर रही आदिवासी स्त्री निर्णय से लेकर संघर्ष तक में पुरुषों का घर से बाहर तक पूरा साथ देती है, संगर्ष समय समूह का नेत्तृत्व भी करती है I आदिवासी स्त्री में अपार उर्जा का भंडार नजर आता हैI आजादी के बाद उत्तर औपनिवेशिक पृष्ठभूमि को केन्द्र में रखकर जिन उपन्यसकारों ने लेखन कार्य किया है, उसमें स्त्रियों की क्रांतिकारी चेतना को बखूबी से दिखाया गया है। आदिवासी जीवन में इतनी उथल-पुथल है कि उसे प्रतिरोध के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं सूझता है, जो स्त्री-पुरुष साथ मिलकर कर रहे हैं। जैसे वे गृहस्थी साथ मिलकर चलाते हैं। समकालीन उपन्यास आदिवासी समुदाय के शोषण-दमन का ही वर्णन करती अपितु भारतीय संस्कृति और भौगोलिक स्थिति को संरक्षित करने हेतु संगर्षरथ समाज का दस्तावेज भी है I अत: आदिवासी स्त्री का जीवन पुरुषों के साथ प्रत्येक स्तर पर सामंजस्यपूर्ण और सहयोगात्मक है जो मुख्यधारा के समाज में कम देखने को मिलता हैI वर्तमान में उच्च शिक्षा प्राप्त नारी भी जहाँ अपने अस्तित्व और अधिकार की प्राप्ति में असफल नजर आती है वंहा आदिवाशी नारी का संघर्ष पुरे नारी समाज के लिए मार्गदर्शक है I अशिक्षित,गंवार आदिवासी समाज में स्त्री-पुरुष समानता ऊच्च विद्या- विभुषित समाज के गालों पर करारी चोंट है I

संदर्भ सूची :

1. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी :- सं.रमणिका गुप्ता पृष्ठ -49
2. वासवी'.(उलगुलान की औरतें) :- मीणा, केदार प्रसाद. क्रांतिकारी आदिवासी. दिल्ली:साहित्य उपक्रम. (सं.2012) पृ.116
3. 'बाजात अनहद ढोल':- सिंह, मधुकर:- दिल्ली:वाणी प्रकाशन. (2005) पृ. 65
4. '.वासवी'(उलगुलान की औरतें):- मीणा, केदार प्रसाद:- क्रांतिकारी आदिवासी जयपुर साहित्य उपक्रम. (सं.2012) पृ.119
5. जो इतिहास में नहीं है' :- सिंह राकेश कुमार दिल्ली:भारतीय ज्ञानपीठ (2005) पृ. 292
6. 'जो इतिहास में नहीं है':- सिंह राकेश कुमार दिल्ली:भारतीय ज्ञानपीठ (2005) पृ. 292
7. 'जो इतिहास में नहीं है':-सिंह राकेश कुमार दिल्ली:भारतीय ज्ञानपीठ (2005) पृ. 292
8. जंगल के फूल:- अवस्थी, राजेन्द्र.:- दिल्ली:राजकमल प्रकाशन. (1996). पृ. 206
9. जंगल के फूल :- अवस्थी, राजेन्द्र. :- दिल्ली:राजकमल प्रकाशन. (1996). पृ.157
10. जंगल के फूल:- अवस्थी, राजेन्द्र. :- दिल्ली:राजकमल प्रकाशन. (1996). पृ. 157
11. जंगल के फूल :-अवस्थी, राजेन्द्र. :- दिल्ली:राजकमल प्रकाशन. (1996). पृ.196
12. ग्लोबल गाँव के देवता :- रणेन्द्र. :- दिल्ली .भारतीय ज्ञानपीठ (2009) पृ. 52
13. ग्लोबल गाँव के देवता :- रणेन्द्र. :- दिल्ली .भारतीय ज्ञानपीठ (2009) पृ. 99-100
14. 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' :- माजी, महुआ :- दिल्ली:राजकमल प्रकाशन (2012) पृ.169
15. 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ'.:- माजी, महुआ :- दिल्ली:राजकमल प्रकाशन (2012) पृ.172

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जगदंबा प्रसाद दीक्षित के उपन्यासों में महानगरीय जीवन की त्रासदी

सौ. वृषाली महादेव माळी
मु.पो.कापुसखेड़ ता.वाळवा जि.सांगली
Email-vrushalimmali@gmail.com

प्रस्तावना:

महानगर का अर्थ बडी-बडी ऊंची इमारते अनेक कारखाने, उद्योग, दूकाने तेजी से दौडती गाडियाँ आदि से पूरित धनी आबादीवाला शहर। हमारे भारतवर्ष में मुंबई, कोलकता,दिल्ली तथा चेन्नई को हममहानगर के नामों से जानते है। आम आदमी केलिए महानगरीय जीवन अनेक पहलूओंसे वरदान है तो दूसरी तरफ एक त्रासदी अथवा अभिशाप भी है। ग्रामीण अंचलो से अनेक लोग महानगरों की ओर आते रहते है। महानगरों का तेजी से विकास उनका गतिशील जीवन, भौतिक सुख और अनेक सुविधाओं से वह आकृष्ट होते है।

महानगरीय जीवन एवं परिवेश –

मनुष्य जीवन महानगरीय परिवेश में मशिनी यंत्र बन चुका है। गाँवो, कस्बों मे जो प्यार, अपनापन, स्नेह, आत्मीयता है वो शहरो में आते-आते खत्म हो रहा है। इसी कारण महानगरों में मनुष्य का अमानवीकरण हो रहा है। दूर से दिखनेवाली महानगरीय झगमगाहट हर एक मानव प्राणी को आकृष्ट करती है। लेकिन इस आकर्षण के पीछे बहुत बढा अंधकार छिपा है। डॉ.सीमा गुप्ता महानगर की परिभाषा कुछ इस प्रकार प्रस्तुत करती है- "वे नगर जो अपने विकास के द्वारा राष्ट्रीय-आंतरराष्ट्रीय स्तर पर पूर्ण रुप से प्रभाव स्थापित कर लेते है वे महानगर की संज्ञा से अभिहित किए जाते है।"(१) यह महानगरीय जीवन का विस्तृत अर्थ है।

हिंदी साहित्यकारोंने अपने साहित्य में इसी महानगरीय परिवेश का विविध पहलूओंसे अपने साहित्य में यथार्थता के साथ चित्रण किया है। स्वाधीन भारत के प्रमुख उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर, शैलेश मटियानी, मधुकर सिंह, भीमसेन त्यागी, नरेंद्र कोहली, यशपाल, कमलेश्वर, उषा प्रियवंदा,विधालंकार जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मोहन राकेश आदि जैसे उपन्यासकारों ने वास्तविक स्थिती को साहित्य में साकार करने का प्रयास किया है।

निम्न वर्ग की जीवन त्रासदी:

जगदंबा प्रसाद दीक्षित जी ने अपने उपन्यास मुरदाघर और कटा हुआ आसमान में महानगर के निम्न पिछडे वर्ग की अवस्था का जो चित्रण किया हैं वह बहुत ही यथार्थरूप लगता है। मुंबई बडा बंदरगाह होने के कारण उसका विकास तेजी से हुआ है। रोजगार की तलाशमें हजारो लोग गांवोसे आकर वहाँ बस गए। इसमें अनेक मील मजदूर, फेरीवाले, ड्रायवर,घरेलू नौकर, भंगार बेचनेवाले, अवैध शराब का धंदा करनेवाले, सब्जी, फल बेचनेवाले, धोबी,नाई ऐसे छोटे छोटे उद्योगों के कारण मुंबई की जनसंख्या भी बढती गयी उसी तरह यहाँ रहने के लिए जगह ही कमी एवं आवास की कमी,खाने की ऐसी समस्याएँ बढती गई। इन समस्यायोंका सामना इन लोगों को करना पडा।

"कचरे का पुराना ढेर और एक पागल आदमी घूम–घूमकर ढूँढता रहता है कुछ --- भी नहीं मिलता। डूबती हुई शाम निकल गई दूर। कतार --- बरतनों की --- बहुत लंबी। नल --- भीड में खोए बच्चे की तरह रोता हुआ ---।'' (२) महानगरों में एक ओर बडी-बडी इमारतों में जीवन व्यतीत करनेवाले उच्चवर्गीय लोग है तो दूसरी ओर गरीबी, बेरोजगारी, अज्ञान के कारण फुटपाथों पर रहनेवाले लाखों लोग है जिसे महानगर का सभ्य समाज जूठन और गंदगी के सिवाय कुछ नही मानता। लेकिन इन झुग्गी-झोपडियों में रहने वाले अपाहिज,भिखारी, पागल आदमी कचरे के ढेर पर खाना ढूँढता रहता है। इधर- उधर घूमता पर उसे खाने के लिए कुछ नही मिलता। झोपडपट्टीयों मे पीने के पानी के लिए तो दर-दर की ठोकरे खानी पडती है। नल होता ही नहीं लेकिन किस पाईप की लिकेज से पानी गिरता है वह मिलने के लिए बरतनों की बडी लाइन लगती है।

औद्योगिकरण का प्रसार हो, उद्योगों की स्थापना, उच्चस्तरीय शिक्षा, व्यापार,राजनिती,चिकित्सा साहित्य आदि कारणों से महानगर का विकास दिन-ब-दिन बढता जा रहा है। परंतु छोटे छोटे कस्बों से,गाँवो से महानगरों की ओर काम की तलाश में आनेवाले लोगों की अनेक समस्याऐं दीक्षित जी ने मुरदाघर में चित्रित की है।

" मालूम नहीं कहाँ ---किस जगह --- तोड दिए गए झोपडे। मालूम है सिर्फ इतना कि पीली सुबह --- जब सोने वालों ने आँखे खोली--- गंदी बस्ती को घेर लिया नीली वर्दी ने चारो तरफ से। लंबे बेंत और डंडे। नीली गाडियाँ। खाकी वर्दिया और अफसर। सुना दिया गया हुक्म। तोड दिए गए झोपडे। पीली रोशनी में नंगी हो गई एक दुनिया। कालिख लगे बरतन---- मैली पतीलियाँ --- गुदडियाँ—- रोते हुए बच्चे।'' (३) मुंबई महानगर की और एक समस्या जगह कि रहने की क्योंकि गाँवो से आए अनेक लोगों को रोजगार की अपेक्षा होती है और वह लोग वहीं चाहे गंदी बस्तीयों में छोटे-छोटे झोपडे बनाकर अपने परिवार सहित वहीं रहते है। लेकिन पुलीस या खाकी वर्दिया आकर वहीं झोपडे तोड देती है तो सारे लोगों की दुनिया उजड जाती है उनका गरीब संसार बिखैर जाता है। फिर फूटपाथ का सहारा लेते है या दूसरी झोपडपट्टीयो में जाकर रहने लगते है। इस तरह से महानगरों में अनेक समस्याएँ रहती है

महानगरों में अनेक हजारों लोगों के साथ रहते हुए भी आदमी अकेलापण ही महसूस करता है। यहाँ का हर एक आदमी मानसिक और शारीरिक रूपसे अकेला होता है।साथ ही यहाँ जनसंख्या बढने के कारणनिवास की समस्या भी है। दीक्षित जी ने 'कटा हुआ आसमान' उपन्यास में चैरियन जैसे पात्रों के माध्यम से दर्शाया वह इस मुंबई में छह साल से लॉज में ही रहा है। क्योंकि "बम्बईमें फैमिली रखना – बहुत मुश्किल। चैरियन को छह साल हो गये। --- होटल का परमनेंट लॉजर।''(४)

इन बडे महानगरों में पैसे हो तो रहने के लिए होटलों, लॉज की व्यवस्था हो सकती है। लेकिन पैसों की कमी के कारण कोई भी घर नहीं ले सकता। रहने के लिए घर नही या कोई जगह नही उसके लिए मैरेज इज क्राइम। रहने का इंतजाम जिसके पास है वहीं शादी कर सकता है। चैरियन आगे यह भी कहता है कि ''शादी करना है तो किसी सुशील और सुंदर से मत करना। ऑफिसमें काम करनेवाली से करना। जिसके पास सिर छिपाने के लिए जगह है उससे करना।'' (५) यहीं रहने का इंतजाम शादी करके अगरनिपटता है तो ठीक, लेकिन घर की रहने की समस्यां महानगरों में ज्यादा तर दिखाई देती है।

निष्कर्ष:

जगदंबा प्रसाद दीक्षित जी ने अपने 'मुरदाघर', और 'कटा हुआ आसमान' उपन्यास में महानगरीय परिवेश में जी रहें लोगों की पीडा एवं उनके संघर्षपूर्ण जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। साथ ही किस तरह से जो गरीब, असहाय निम्न वर्ग के लोग है उन्हें भूख की समस्या साथ ही यहाँ रहने के लिए जगह नहींमिलती।निम्न वर्ग के लोगों को किस तरह फूटपाथों पर अपने परिवार सहित जीवन संघर्ष व्यतित करना पडता है इसका यथार्थपूर्ण चित्रण जगदंबा प्रसाद दीक्षित जी ने अपने 'मुरदाघर' और 'कटा हुआ आसमान' उपन्यास में किया है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. समकालीनहिंदी उपन्यास ' महानगरीय बोध- डॉ. सीमा गुप्ता – पृष्ठ ०७
2. 'मुरदाघर' - जगदंबा प्रसाद दीक्षित– पृष्ठ ०७
3. 'मुरदाघर' - जगदंबा प्रसाद दीक्षित– पृष्ठ ०७
4. 'कटा हुआ आसमान' - जगदंबा प्रसाद दीक्षित– पृष्ठ ११
5. 'कटा हुआ आसमान' - जगदंबा प्रसाद दीक्षित– पृष्ठ १२

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

नारी की व्यथा, पीडा और समर्पन का चित्रण उपन्यास 'अगनपाखी'

डॉ. सुधीर गणेशराव वाघ
प्राध्यापक, हिंदी विभागाध्यक्ष, शिवाजी महाविद्यालय, हिंगोली, जि. हिंगोली. - 431513
Email: wagh.sudhir001@gmail.com

शोध सार:

साहित्य मानवीय संवेदना के चिंतन की उत्तम अभिव्यक्ति है। स्त्री तो संवदना का मूर्त रूप है अर्थात कोई भी साहित्य स्त्री बिना पूर्ण नहीं है। इसलिए स्त्री और साहित्य का संबंध अखंड है। स्त्री ने सामाजिक, नैतिक एंव सांस्कृतिक रूप में भी साहित्य को अपूर्ण योगदान प्रदान किया है। इक्कीसवीं सदी की बदलती राष्ट्रीय, सामाजिक व आर्थिक स्थितियों तथा शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने स्त्री जीवन को अत्याधिक प्रभावित किया है। इसलिए स्त्री-विमर्श चिंतन ने साहत्य में विशेष स्थान प्राप्त किया है।

मुख्य शब्द: मानवीय संवेदना, व्यथा, पीडा और समर्पन, स्वार्थ, स्त्री की असहायता और अत्याचार।

साहित्य मानवीय संवेदना के चिंतन की उत्तम अभिव्यक्ति है। स्त्री तो संवदना का मूर्त रूप है अर्थात कोई भी साहित्य स्त्री बिना पूर्ण नहीं है। इसलिए स्त्री और साहित्य का संबंध अखंड है। स्त्री ने सामाजिक, नैतिक एंव सांस्कृतिक रूप में भी साहित्य को अपूर्ण योगदान प्रदान किया है। आधुनिक कालीन साहित्य में स्त्री को लेकर इतना कुछ सृजन किया गया कि स्त्री- विमर्श का दौर ही प्रारंभ हो गया। जहाँ अन्य श्रोत्रांओं की तरह साहित्य में भी पुरूषों का वर्चस्व था, वहाँ महिलाओं ने बडी तेजी से साहित्य में इस तरह से कदम रखा कि वह छा ही गयी। इन महिला साहित्यकारों ने स्त्री जीवन के विविध पहलुओं, परिस्थितिओं को पूरी जिम्मेदारी के साथ उकेरा।

स्वातंत्र्योत्तर काल से वर्तमान युग तक बहुत बडी संख्या में महिलाओं का आगमन हुआ। इस युग में नारी की सामाजिक और आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो गई है। अन्तरजातीय विवाह और विधवा विवाह को वैधानिक किए जाने से नारी की मानसिक स्थिती दृढ हो गई। अनेक महिला कथाकारों का उदय इस युग में हुआ। नितांत अछुते और नए विषयों को लेकर कहानियाँ और उपन्यास लिखे। विषय वस्तु कार्य शैली और शिल्प की दृष्टि से इस युग की लेखिकाओं का योगदान उल्लेखनिय है। इक्कीसवीं सदी की बदलती राष्ट्रीय, सामाजिक व आर्थिक स्थितियों तथा शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने स्त्री जीवन को अत्याधिक प्रभावित किया है। इसलिए स्त्री-विमर्श चिंतन ने साहत्य में विशेष स्थान प्राप्त किया है।

समाज में जाहाँ भी दमन है, शोषण है, अत्याचार है स्त्री साहित्य उसके विरोध में खडा हुआ। अब दो प्रकार से स्त्रीवादी साहित्य सजून किया जा रहा है- एक सामाजिक शोषण के विरुध्द और दुसरा देह-भोग के विरुध्द । "आज का सृजन नारीवादी सृजन नही, नारी केंद्रित सवालों को बडे आशयों में लानेवाला नारी की मुक्ति को साधारण जन की सार्वदेशिक मुक्ति से जोडनेवाला, पर बेहतर मानवीय और तर्कसंगत सामाजिक संरचना में नारी को उसकी सही हैसयित के साथ प्रतिष्ठा देने की कोशिश में लगा नारी अस्मिता का प्रामाणिक सृजन है"। इतना निश्चित है कि इक्कीसवीं सदी के महिला साहित्यकारों ने अपने समय और सामाज की नब्ज को गहरी संदवेदना के साथ पकडा है।

वर्तमान युग में अनेक उत्कृष्ट और प्रतिभा संपन्न महिला उपन्यासकारों का आगमन हुआ। इन महिला उपन्यासकारों में सबसे प्रभावित नाम मैत्रयी पुष्पा का है। मैत्रयी पुष्पा का उपन्यास 'अगनपाखी' रचना की नायिका भुवनमोहिनी को असहाय होने के कारण विनम्र दिखाया है, किंतु भीतर से किस ताकत का सामना करती है यह दिखलाया है। भुवनमोहिनी, पत्नी स्वर्गीय विजयसिंह वल्द स्वर्गीय दुरजयसिंह, निवासी ग्राम विरारा, जिला झाँसी यह दावा करती है कि उसके पति के हिस्से की चल-अचल संपत्ति की हकदार है। उसके पति के साथ उसे मृतक दिखाया और उसके जेठ कुँवर अजयसिंह ने संपत्तीपर उसके अकेले का हक बरकरार रखा है। क्योंकि स्वयं विजयसिंह को कोई संतान नहीं। भुनमोहिनी की कचहरी से अर्ज है कि अपने पति की जायदाद का हक उसे सौंपा जाये। वह कुँवर अजयसिंह की हकदारी पर सक्त ऐतराज करती है। वैसे देखा जाय तो इस अन्याय में भुवनमोहिनी को अपने हक के लिए लड़ना पड़ा। वह किसी भी प्रकार से स्वतंत्रपूर्वक जीवन व्यतीत नहीं कर पाती है। भुवनमोहिनी की माँ एक साहसी और कर्मठ स्त्री है। पति की मृत्यु के बाद घर की सारी जिम्मेदारी संभालती है। मुन्नी अर्थात् भुवनमोहिनी की बडी बहन सहृदय एवं संवेदनशील नहीं। जब उसे पता चला की भुवन के विवाह के रुप में उसके साथ छल किया गया तो वह दुखी और क्रोधित हुई। भुवन की जेठानी अर्थात् अजयसिंह की पत्नी अपने पति के हर काम में सहयोगिनी है। काम अच्छा हो या बुरा, अपने पति का साथ देती है। देवर विजयसिंह की मौत के बाद भुवन को सती करा कर पूरी जायदाद हडपने की योजना का समर्थन करती है। ऐसी सारी परिस्थितीयाँ भुवन के सामने आती है किंतु अत्याधिक साहसी बनकर संघर्ष कर प्रस्तुत उपन्यास में दिखाई गयी है। वह एक ओर क्रांति का संदेश देती है तो दूसरी ओर व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना को भी जगाती है।

सामाजिक चेतना की दृष्टि से मैत्रयी पुष्पा ने अपने इस उपन्यास में यह कहा है कि खुद को भुवन के रुप में रखकर अपने आप में लड रही थी और परिवर्तन के लिए विद्रोह तक जाने में कभी चार कदम बढती तो कभी दो कदम पीछे हटती। परंपरा एवं रुढी के प्रति नारी का विद्रोह पुरुष प्रताडना से नारी में उभरी अकेलेपन की भावना, गॉवों में दारिद्रता आपसी बैर, आर्थिक दुर्बलता के कारण स्त्रियों का शोषन आदि अनेक विषय इस उपन्यास में आये है। आज की स्त्री परम्पारिक संस्कारों में जकडी है, परावलम्बी है आश्रित है ग्रामीण क्षेत्रों में अब शिक्षा व जानकारी आने से स्त्रियों में अन्याय के प्रति जागृति आयी है। स्त्री को प्राचिन काल से समाज की सामाजिक मान्यताएँ, रुढियों, रीति रिवाजों ने शोषित किया गया है। लेकिन 'अगनपाखी' में लेखिकाने भुवन के माध्यम से अपने लक्ष्य का हासिल करके ही छोडा है।

मैत्रयी पुष्पा का 'अगनपाखी' उपन्यास लघु उपन्यास स्मृति दंश का नया सस्कंरण है। इसमें पुरुष समाज द्वारा स्त्री पर किये गये अत्याचार का अंकन है। कथा की मार्मिकता पाठकों को -हदय को स्पर्श करती है। 'अगनपाखी' में नारी की व्यथा पीडा और समर्पन का चित्रण है। स्वार्थ परक पुरुष स्त्री की असहायता का लाभ उठाकर अत्याचार करता है। इसका उदाहरण नायिका भुवन और जीजा बरजारसिंह है। पुत्र चन्दर की नौकरी के लिए

जीजी भुवन की शादी विराटा के पागल पुत्र विजयसिंह से करती है। सम्पति के लिए परिवार में झगडे पत्नियों और विधवाओं की हत्या होती है। इस उपन्यास में मानवीय सम्बन्धों की जटिलता का प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत उपन्यास के बारे में स्वयं लेखिका कहती है कि "अब यह एक नया उपन्यास है। हो सकता है पात्रों के नाम और स्थान वही हो मगर अब वहाँ का इसमें कुछ भी नहीं। अगर मैं पात्रों के स्थानों के नाम बदल देती तो भी कोई अन्तर नहीं पडता। 'अगनपाखी' उतना ही नया होता है।"[1] 'स्मृतिदंश' की भुवन भावुकता के कारण मर जाती है, पर 'अगनपाखी' की भुवन अन्याय के प्रति विद्रोह करती है।

'अगनपाखी' उपन्यास शीतलगढी,

सामाजिक चेतना के विरूध्द ग्रामांचल कीये जा रहे षडयंत्र को लेखिका जानती है। बरुआसागर, विराटा ग्रामांचल के परिवेश को बहुत सजीवता के साथ प्रस्तुत करती है। यह कथा भुवन और उसकी बहन के बेटे चन्दर के इर्द -गिर्द घूमती है नाना की मृत्यू के बाद चन्दर अक्सर अपने ननिहाल शीतलगढी में आता रहता है। जो अपनी मौसी भुवन के हम उम्र है, इसलिये दोनों का अधिक समय साथ गुजरता है, साथ-साथ खेलते है गाते एक दिन जवानी की दहलीज पर आकर खडे हो जाते है। दोनों का एक साथ अधिक समय तक साथ रहने से एक दूसरे के प्रति शारीरिक आकर्षन भी बढ जाता है। जो एक दिन शारीरिक सम्बन्ध तक पहुँच जाता है, मगर नानी उन्हें पकड लेती है और स्वंय आत्महत्या करने लगती है, इस पर चन्दर उन्हें किसी तरह शेक लेना है और अपने कुकर्म का अहसास करता है, और अपराध बोध से भरा यह सोचता है - "सुनता आया हूँ कि मौसी माँ समान होती है। नाते भूल गया कि जवानी में अन्धा हो गया"[2] मौसी बहन के बेटे चन्दर के साथ शारीरिक सम्बन्ध करीबियो का वृतान्त है। 'अगनपाखी' उपन्यास की भुवन एक ऐसी नारी है जिसका विवाह एक अर्ध विक्षिप्त व्यक्ति कुंवर विजय सिंह से कर दिया जाता है। भुवन न चाहते हुए भी अपने पति के साथ रहती है। वह कहती है- "जिज्जी, वह कुठिया की तरह भी सुख आन्द कहाँ जानता है कि मैं उसे सुख आनंद जुराऊँ। खुद को दुख ही देता रहता है। सर्दी की राज पुरी की पुरी हाथ पाँच धोते निकाल देता है। कहता है हर जगह किडे है, हर जगह खुन है"[3] ऐसे अनमेल विवाह को निभाने को प्रयास करने के बाद जब वह सुख की कोई किरण नहीं पाती है तो वह अपनी माँ से ससूराल न जाने की जिद्द करती हैं।

भुवन अपने जीवन से समझौता करने का तैयार नहीं है अर्ध्द विक्षिप्त पति कुंवर विजयसिंह के साथ रहने के बजाय अपने मायके में रहना चाहती है। क्योंकि गुलामी का सुख चेतना संपन्न भुवन को नहीं भाता है। उसके इस संघर्ष में उसकी माँ उसका साथ नहीं देती है क्योकि हमारे समाज में यह मान्यता है कि एक बार लडकी की शादी हो जाती है तो उसकी अर्थी भी ससुराल से ही उठनी चाहिए। भुवन की माँ इस विचारधारा को मानती है और वह कहती है - "ते कुंवारेपन को सपने देख रही है बेटा गया समय अपनी देह से लिपटा है क्या? बिटिया की जात बाप के ऑगन में तितली बनकर खेलती है, गाय की तरह विदा होती है व्याह पीछे कुत्ता की जौन निभानी पडती है, भौको, चीखो तो सासरे पच्छदारी में ही "[4] इस प्रकार स्त्री संघर्ष में उसे अपने मायके में आसरा नहीं मिलता है क्योकि उसके मायके वाले लोग घर में लडकी बैठाने की बदनामी नहीं लेना चाहते है। मैत्रयी पुष्पाने अपने इस उपन्यास कें द्वारा रीतिरिवाज व धर्म के नाम पर विधवा स्त्री को किस प्रकार शोषित किया जाता है इसे दर्शाया हे। यह प्रथा सती प्रथा इस प्रथा के अनुसार एक स्त्री अपने पति के मरने पर स्वंय अपने शरीर को संहर्ष त्याग देती है इस प्रकार सती होना हिन्दू समाज में गौरव की बात मानी जाती है, सती एक ऐसी प्रथा थी जिसमें विधवा स्त्री को अपने पति की चिता में जिन्दा मार दिया जाता था। कहा जाता था कि यह आत्मदाह उसकी स्वेच्छा से हे, पर जिस समाज में स्त्री के अपने जीवन में घर से बापहर जाने अपनी मर्जी से प्रेम या विवाह करने और घर के किसी महत्वपुर्ण फैसले का निर्णय लेने को अधिकार नहीं दिया गया था, फिर सजी होने का निर्णय कैसे उसका था।

इस उपन्यास में स्त्री को घर के अन्दर किस तरह नियन्त्रित किया जाता है और बचपन से ही उसे एक ही साचें में डाला जाता है भुवन के माध्यम से प्रकाश डाला गया है। भुवन के पिता न होने के कारण और बचपन के साथ लडकों के खेल खेलती है जो नानी यानी भुवन की माँ को अच्छा नहीं लगता है चन्दन कहता है - "भुवन का पतंग उडाना नानी को फूटी ऑखों नहीं आया। साइकिल मिली, उसने चलाई गिरने से जादा सीख नहीं पाई कि नारी भगवानदास से लडने पहूँच गयी।"[5] नानी ने उसे पढने से भी बैठा दिया क्योकि भुवन ने मास्टर से बहस कर ली थी और वह भुवन को घर में रखना चाहती थी। उसकी मदद चाहती थी साथ ही भुवन के खुले व्यवहार की नियान्त्रित भी करना चाहती थी। तभी तो चन्दर कहता है - "नानी ने उसे इस बात के लिए पिटा, गालियों दी। भट्टी छोत, बाप भइया नहीं तो तू ऐसी मर्दनमार भई जा रही है"[6] नानी भुवन को साँचो में ढाल रही है जैसे वह स्वंय ढल चुकी है क्यो कि आदर्श स्त्री वही जो पितृसत्ताक नैतिक प्रतिनामी को पूरी निष्टा से आत्मसात करती हुई पीढी दर पीढी उसे आगे बढाती है। उपन्यास में लेखिका ने जिलाझासी के विराट गाँव और उसके इर्द- गिर्द के प्रदेश का ग्रामांचल का यथार्थ चित्रण किया है। गाँव में अन्य समस्याओं के साथ - साथ जाति व्यवस्था और वर्गगत झगडे भी मुख्य है। गाँवों में जितने स्नेहभाव में अधिकता होती है उससे बढकर आपसी वैर में तीवृता विधमान होती है। घायल आदमी पीढियों तक अपना दर्द भूला नहीं पाता। आपसी बैर के मूल में जर, जमीन और जोरु ही कारण ने अजयसिंह के साथ बैर का कारण इस प्रकार बताया है - "इसने (छोटे कुंवर विजयसिंह ने) हमारी मजूरनी खेत में गिरा ली। देखा नहीं कि मजूरनी के संग मजुर भी है, हमारे पिता जी ने इशारा दिया सो अच्छी तरह कुचला। ठौर - कठौर मारा, मर्दानगी खत्म कर दी। बस तभी से बैर चला आ रहा है"[7] इस प्रकार स्पष्ट है कि बदलते हुए युग में व्यक्ति की सहनशीलता खत्म होती चली आई है। आज व्यक्ति आदर्श, समय के खोखलेपन की परतो को खोलकर सिर्फ निजीपन की खोज में अपने अस्तित्व को स्थिर बनाने की कोशिश में है यही इक्वीसवी शदी की निशानी है।

अत: कहना होगा कि नारी चेतना के विभिन्न रूपों की दृष्टि से मैत्रेयी जी की उपलब्धियां महत्वपूर्ण और उल्लेखनिय है। मैत्रेयी पुषा ने अपने रचनाओं में स्त्री के कुछ तीखे, ज्वलंत प्रश्नों, अंतविरोधों और विरोधाभासों को प्रस्तुत किया है। जिससे स्त्री-सृजन की एक अलग पहचान बनने लगी है। इनकी रचनाओं में स्त्री के अधिकारों के प्रति सजगता के साथ-साथ समाज की अन्य समस्याएँ भी उद्घाटीत हुई दिखाई देती है। इनकी सृजनात्मक आक्रमकता, तीखा और पितृक समाज की कडी आलोचना से परिपूर्ण है। यह परिवर्तन इक्कीसवी सदी में सर्वाधिक दृष्टित हुआ। जो स्त्री-लेखन सिर्फ घर, परिवार, बच्चे, स्त्री-पुरूष बिखराव तक सीमित था उस स्त्री-लेखन की आंतरिक और बाहरी दुनिया में इस सदी में काफी बदलाव आया है। सामान्य व्यक्ति के जीवन की दैनिक समस्याओं का आत्याधिक सहज और स्वाभाविक रूप से उदघाट्न उनके इस उपन्यासों में हुआ है।

संदर्भ :

1. मैत्रयी पुष्पा - अगनपाखी,वाणी प्रकाशन, दिल्ली,प्रथम संस्करण-2002,- पृ.5-6
2. वही - पृ. 17
3. वही - पृ. 72
4. वही - पृ. 73
5. वही - पृ. 35
6. वही - पृ. 36
7. वही - पृ. 140

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री विमर्श

प्रा.व्ही.एच्. वाघमारे
हिंदी विभागाध्यक्ष, सी.बी. खेडगीज् महाविद्यालय, अक्कलकोट

भारतीय संस्कृति में स्त्री को लक्ष्मी, दुर्गा, अन्नपूर्णा आदि विभूषणों से विभूषित किया गया है। वह पूज्या तथा आराध्या मानी गयी। तथापि इन्हीं कारणों से स्त्री को श्री:शक्ति कहा गया। लेकिन स्त्री सम्मान का स्वर्णिम काल मुख्य रुप से वैदिक काल ही माना जा सकता है। मध्यकाल में नारी पर तरह-तरह के अन्याय तथा अत्याचार हुए। उसे मनुष्य और पशु के बीच की एक मध्यवर्ती इकाई माना जाने लगा। स्त्री को घर की चहार दीवारों में बंद कर दिया गया। स्त्री-पुरुष इनमें भेदभाव बढ़ गया। स्त्री को हिन दृष्टि से देखा जाने लगा।

स्वातंत्र्योत्तर काल में अगर हम स्त्री विमर्श के स्वरुप का अध्यन करते समय सृष्टि के आरंभ का विचार करने पर यह पता चलता है कि, सृष्टि की रचना में स्त्री की भुमिका काफी महत्वपूर्ण रही है। मानव जाती का जो विकास हुआ है उसका मूल आधार स्त्री को ही माना जाता है। पुरुष और स्त्री के सहयोग से ही सृष्टि की रचना हुई है। सृष्टि की रचना में स्त्री का योगदान पुरुष की तुलना में अधिक है। स्त्री ने हमारी संस्कृति, धर्म एवं सभ्यता के निर्माण में महत्वपूर्ण भुमिका निभाई है। स्त्री आदिम संस्कृति का उगम स्थल है। स्त्री महान तथा श्रेष्ठ है। स्त्री की यही महानश्ता, श्रेष्ठता सृष्टि के आरंभ से लेकर आज तक चली आ रही है। लेकिन भारत जैसे पुरुष प्रधान संस्कृति में स्त्री को पुरुष के बराबर का दर्जा अभी भी नहीं दिया जाता है। यह बहुत बढ़ी शोकांतिका भारत देश की है।

स्वातंत्र्योत्तर काल की लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा की एक अलग छवि महसुस होती है। मैत्रेयी पुष्पा अपने समग्र साहित्य ेके माध्यम से एक सुविख्यात लेखिका के रुप में पाठकों के सम्मुख आती है। वे स्वातंत्र्योत्तर काल की एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है। मैत्रेयी पुष्पा अपने साहित्य के माध्यम से अपने समय के रिति-रिवाजों, रुढियों एवं लोककथाओं का यथार्थ चित्रण किया है। मैत्रेयी पुष्पा का समग्र साहित्य उनके अनुभव की उपज है। वे जन्म को नहीं कर्म को श्रेष्ठ मानती है। इसलिए समाज में फैले अंधविश्वासों, रुढियों का भंडाफोड करके प्रगतिशील विचारों का प्रचार-प्रसार कर समाज को सही दिशा देना उनके साहित्य का मुख्य उद्देश्य रहा है। भारतीय गांवों की स्थिति, गांव की समाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्थितियाँ तथा उसमें स्त्री की जिंदगी को मैत्रेयी पुष्पा ने अपने आँखो से देखा ही नहीं बल्की उसका अनुभव भी लिया है। इसलिए उनके स्त्रीवादी साहित्य में स्त्री चित्रण को महत्व पूर्ण स्थान मिला है। मैत्रेयी पुष्पा अपने स्त्रीवादी साहित्य में ग्रामीण, आधुनिक, मध्यमवर्गीय स्त्री की व्यथा, पीडा, दु:ख, दर्द आदि को व्यक्त किया है।

21 वीं सदी में सामाजिक जीवन के विविध घटनाओं में एक क्रांतिकारी परिवर्तन दिखाई देता है। विज्ञान एवं तकनीक से लेकर सभी सामाजिक विज्ञान में इस सदी ने बौध्दिक रुप से अपनी उपलब्धियों को उजागर किया है। 21 वीं सदी में आम जनता के सामने अनेक समस्याएँ आ जाते है। आज किसान-मजदुर, दलित, आदिवासी, स्त्री विमर्श काफी रुप से साहित्य के अहम विषय बन गए है। इनमें स्त्री विमर्श की भुमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है। आज स्त्री सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष के कंधे को कंधा मिलाकर आगे बढ़ रही है। 21 वीं सदी के साहित्य में स्त्री रचनाकारों का सृजन महत्वपूर्ण माना जाता है। आज स्त्री विमर्श साहित्य के केंद्र में आ गया है। परंपरा से पुरुषों के कब्जे में जीवन व्यतित करनेवाली स्त्री आज जहां सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष के अधिकार को चुनौती दे रही है, वहीं वह अपने आपको भोग्य वस्तु के रुप में भी नहीं स्वीकारती एवं देह के स्तर पर स्त्री-पुरुष देह के भेद को खारीज करती है। जैसे मैत्रेयी पुष्पा का बहुचर्चित उपन्यास 'चाक' के सभी स्त्री पात्र पुरुषों को चुनौती ही नहीं देते बल्की उन पर भारी पडते है। बुध्दि तथा देह ताप दोनों में अपनी पहल के द्वारा वे नारी को अबला नही सबला सिध्द करते है।

मैत्रेयी पुष्पा का प्रथम उपन्यास 'बेतवा बहती रही' की नायिका उर्वशी का जीवन बेतवा के समान शोषण में डूबे समाज में निरंतर बहता जा रहा है। जिस प्रकार बेतवा के किनारे झाड झंकार उग आते है। किचड हो जाता है, बीच-बीच में खरपतवार निकल आते है, किनारे मलिन बस्तियां बना ली जाती है, फिर भी बेतवा अपने सतत प्रवाह से निरंतर बहती है उसी प्रकार उर्वशी भी इस गंदे मैले, कीचडयुक्त मानसिकता वाले समाज में निरंतर रहने के लिए मजबूर है। उर्वशी के घर में बडी विपन्नता थी। दरिद्रता का घोर साम्राज्य था। घर की दीवार के उस पार रोज ही रोटीयों के लाले पडते थे। उस घर के निवासियों को हर समय पेट भरने की समस्या आ जाती थी। उर्वशी के पिता के पास नाम-मात्र की जमीन थी। उसके बल पर अपने बाल-बच्चों का भरण-पोषण सम्भव नही था। दूसरों की खेती जोत कर लेते, बटिया पर उठाते। साल भर काफी मेहनत करते। हिम्मत करके बोते उगाते, काटते और ईमानदारी से मौरुसीदार की पाई-पाई चुका देते। बाल-बच्चों के लिए चार दाने घर में आ जाते। ज्वार-बेझरे की रोटी मिल जाये तो समझो छत्तसों भोग। ऐसी ही दरिद्रता तथा विपन्नता में पलकर बढी हुयी थी उर्वशी।

मैत्रेयी पुष्पा के 'विजन'उपन्यास की आभा दी विवाह-बंधन को परंपरावादी मानते हुए नेहा को समझाती है। अपनी उस माँ जिसने काफी अभाव, दु:ख, दर्द झेलकर अनेक समस्याओं का सामना करके, कई विरोधों को पार करके पढ़ाया-लिखाया, उस मां को तीन नाम रसोईदारिन, धोबिन, मोचिन देकर अपने राजमहल को लौट जाओ। वह भी तुम जैसे अहसान-फरामोश लडकी से मुक्ति पाए। इस तरह नेहा अपनी परिस्थितियों से समझौता तो कर लेती है लेकीन उसका संघर्ष जारी रहता है। 'हदन्नमम' मैत्रेयी पुष्पा का प्रसिध्द उपन्यास है। इसमें तीन पीढियों की कहानी को मैत्रेयी पुष्पा चित्रित करना चाहती है। बऊ,प्रेम और मंदा। प्रस्तुत रचना में बऊ और मंदा ही प्रमुख हैं। यह बेहद सहज कहानी तीनों को समानांतर भी रखती है और एक दूसरे के विरुध्द भी। इसमें अनेकानेक पात्र हैं और सबका अपना महत्व भी है। लेकिन मंदाकिनी एक ऐसा पात्र है जिसके इर्द-गिर्द सारी कहानी घूमती है। वह मुख्य पात्र के रुप में सामने आती है। वह साधारण होते हुए भी असाधारण है। बहुत कुछ 'कस्तूरी कुंडल बसै' की मैत्रेयी के समान। मानो मैत्रेयी जी का अपना व्यक्तित्व भी मंदा में समा गया है। इस उपन्यास के चरित्र इतने स्वाभाविक हैं कि ऐसा लगता है कि मानों वे हमारे आस-पास ही घुम रहे हैं और हमसे कुछ कह रहे हों अपनी भाषा में, अपने लहजे में। मंदा का चरित्र सर्वाधिक दृढ चरित्र है, जो उसे प्रमुखता प्रधान करता है।

मैत्रेयी पुष्पा का लघु तथा रोचक उपन्यास 'झूलानट' है। इसकी नायिका 'शीलो' तथा नायक 'बालकिशन' है। गांव की साधारण सी औरत शीला न बहुत सुंदर है और न बहुत सुघड। वह अनपढ़ है। न उसने मनोविज्ञान पढ़ा है, न समाजशास्त्र जानती है। राजनीति तथा स्त्री-विमर्श की भाषा का भी उसे पता नहीं है। पति उसकी छाया से भागता है। लेकिन तिरस्कार, अपमान, उपेक्षा की यह मार न शीलो को कुएं-बावडी की ओर धकेलती है, और न आग लगाकर छुटकारा पाने की ओर। वशीकरण के सारे तीर-तरकश टूट जाने के बाद उसके पास रह जाता है जीने का निशब्द संकल्प और श्रम की ताकत। एक अडिग धैर्य और स्त्री होने की जिजीविषा से उसे लगता है कि उसके हाथ की छठी अंगुली ही उसका भाग्य लिख रही है और उसे ही बदलना होगा। झूलानट उपन्यास की शीलो बेहद सशक्त रुप में उभरकर पाठकों के सामने आती है।

इस तरह मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री विमर्श को चित्रित किया जाता है।

निष्कर्ष:

भारतीय संस्कृति में स्त्री को लक्ष्मी, दुर्गा, अन्नपूर्णा आदि विभूषणों से विभूषित किया गया है। स्त्री सम्मान का स्वर्णिय काल वैदिक काल को माना जाता है। सृष्टी की रचना में स्त्री की भुमिका महत्वपूर्ण रही है। स्वातंत्र्योत्तर काल की लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा की अलग छवि महसुस होती है। इनका समग्र साहित्य उनके अनुभव की उपज है। 21 वीं सदी में सामाजिक जीवन के विविध घटनाओं में एक क्रांतिकारी परिवर्तन दिखाई देता है। इस सदी के साहित्य में स्त्री रचनाकारों का सृजन महत्वपूर्ण माना जाता है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'बेतवा बहती रही' 'विजन' 'इदन्नमम', आत्मकथात्मक उपन्यास 'कस्तुरी कुंडल बसै' 'झूलानट', 'चाक' आदि उपन्यासों में स्त्री विमर्श स्पष्ट रुप से दिखाई देता है। इस तरह स्त्री की एक ओर अवहेलना की जाती है तो दूसरी ओर उसे पूज्या तथा आराध्या माना जाता है।

संदर्भ:

1. नारी चेतना और सामाजिक विधान-डॉ. मीनाक्षी व्यास
2. इदन्नमम-मैत्रेयी पुष्पा
3. बेतवा बहती रही - मैत्रेयी पुष्पा
4. विजन - मैत्रेयी पुष्पा
5. कस्तुरी कुंडली बसै-मैत्रेयी पुष्पा
6. झूलानट-मैत्रेयी पुष्पा
7. चाक-मैत्रेयी पुष्पा

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

किन्नरों के सामाजिक अस्तित्व को व्यक्त करता उपन्यास 'यमदिप'

डॉ. रामेश्वर वरशिळ
हिंदी विभाग, मिलिंद विज्ञान महाविद्यालय, नागसेनवन, औरंगाबाद
ई-मेल- rewarshil100@gmail.com

"अधूरी देह क्यों मुझको बनाया।
बता ईश्वर तुझे ये क्या सुहाया।
न किसी का प्यार हूँ न वास्ता हूँ।
न तो मंजिल हूँ, मैं न रास्ता हूँ।
अनुभव पूर्णता का हो न पाया।
अजब खेल यह रह-रह धूप-छाया।"

'मैं पायल' इस उपन्यास का यह गीत किन्नरों के सामाजिक अस्तित्व को व्यक्त करता है। लैंगिक आधार पर मानवी समाज को दो वर्गों में विभाजित किया है, स्त्री और पुरूष किन्तु प्रकृति ने एक तीसरे लिंग की भी उपस्थिती दर्ज किई है, जिसे शिखण्डी, हिजड़ा, छक्का, कीव, खोजा, नपुंसक, तृतीय पंथी, किन्नर, ट्रांसजेंडर, थर्ड जेन्डर आदि नामों से जाना और पहचाना जाता है। डॉ रमाकांत राय ने तृतीय लिंगी बनने की वैज्ञानिक प्रक्रिया के संदर्भ में कहा है कि, "हिजड़ा होना प्राकृतिक है। शरीर विज्ञान के दृष्टिकोन से देखें तो यह गुणसूत्रों के संतुलन से आयी एक विशिष्टता है। लेकिन सामाजिक दृष्टिकोन से इस गुणसूत्रीय विशिष्टता को कभी सम्मान की नजर से नहीं देखा गया। इसे हीन दृष्टिकोन से देखे जाने के तमाम सामाजिक, ऐतिहासिक उदाहरण भरे पड़े हैं।"[1]

किन्नरों का सामाजिक अस्तित्व प्राचीन काल से रहा है। जैसे रामायण काल में किन्नरों की प्रत्यक्ष उपस्थिती के प्रमाण वाल्मीकि कृत 'रामायण' एवं तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में मिलते हैं। वाल्मीकि कृत रामायण 'उत्तरकांड' में वणित राज प्रजापति कर्दम के पुत्र हल की कथा के माध्यम से किन्नरों की उत्पत्ति के मिथकी प्रमाण मिलते हैं। 'रामचरितमानस' में भी किन्नरों का उल्लेख मिलता है। जब श्रीराम वनवास को जाते हैं तब सभी आयोध्यावासी उन्हें छोड़ने आते हैं तब श्रीराम सभी स्त्री-पुरूषों को वापस लौट जाने को कहते है। वनवास से वापस लौटते समय श्रीराम किन्नरों को वहाँ रूकने का कारण पूछते हैं तो किन्नरों ने स्पष्ट किया कि प्रभु आपने नर और नारी को वापस जाने की अनुमति दी थी किन्तु हमारे संबंध में कोई आदेश नहीं दिया था।

"जथा जोगु करिविनय प्रणामा, बिदा किए सब सानुज रामा
नारि पुरूष लघु मध्य बड़ेरे, सब सनमानि पोनिधि फेरो।"[2]

महाभारत में किन्नर के रूप में शिखंडी तथा हन्नला (अर्जुन) का उल्लेख मिलता है। अर्जुन ने शिखंड को ढाल बनाकर ही भीष्म पितामह का वध करने में सफलता पाई थी। शिखंडी को सामने देखकर भीष्म पितामह ने कहा कि वह एक नपुंसक से युद्ध नहीं कर सकते और अपने शस्त्र नीचे डाल दिए थे।

"शिखंडिनं तमासा । भारतानां पितामह:।
अवर्थतज्ज संग्राम स्त्रीत्वं तस्यात्रुसंस्मरन।"[3]

मध्यकाल में मुगल शासन काल में भी हिजड़ों का विशेष महत्व था। राजा लोग युद्धों की निरंतरता के कारण राज्य से बाहर ही रहते थे ऐसे में रानियाँ किसी और के साथ संबंध न बना ले इसके लिए हरम की व्यवस्था की गई थी। किन्नर अर्थात हिजड़ों को इनके पहरेदार के रूप में नियुक्त किया जाता था। अल्लाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में एक शक्तिशाली किन्नर हुआ जिसका नाम मलिक गफूर था। इसने खिलजी के शासन में अपनी विशेष पकड़ बना ली थी।

वर्तमान युग अस्मिता का युग है, अपनी पहचान का युग है। इस युग में स्त्री, दलित, आदिवासी, किसान, वृद्ध आदि विमर्श अपनी पहचान और अपने अस्तित्व को स्थापित करने में लगे हुए है और लगभग सफल भी हुए हैं। उसी तरह किन्नर विमर्श भी अपनी पहचान निर्माण कर रहा है। जिसे अब कानून अधिकार भी मिले है। "15 अप्रैल 2014 को न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्ण और न्यायमूर्ति ए.के सीकरी की पीठ ने 'नालसा बनाम भारत संघ' के बाद में एक युगांतकारी निर्णय दिया, जिसमें ट्रांसजेंडर समुदाय को तृतीय लिंग के रूप में स्वीकृती दी गयी और उनके मौलिक अधिकारों को पुष्ट करते हुए चार प्रमुख बातों पर बल दिया गया -

1) हिजड़ो के प्रति समाज में मानवीय दृष्टिकोन को विकसित होना जरूरी है।
2) हिजड़ो के प्रति मानसिकता बदलने की जरूरत है।
3) तृतीय लिंगियों की सुरक्षा के लिए उन्हें अधिकार दिए जाने जरुरी है।
4) सुविधानुसार स्त्री या पुरूष के रूप में पहचान बनाने की स्वतंत्रता दी जाए।"[4]

इस ऐतिहासिक निर्णय के बाद तृतीय लिंगी समुदाय से संबंधित साहित्य की पड़ताल प्रारंभ हुई और विभिन्न विधाओं में नई रचनाएँ तृतीय लिंग को केंद्र में रखकर की जाने लगी।

हिंदी साहित्य में यह काम सबसे पहले नीरजा माधव जी ने किया है। हिंदी साहित्य में सबसे पहला किन्नर के जीवन पर केंन्द्रीत उपन्यास 'यमदिप' का प्रकाशन 2002 में सामयिक प्रकाशन द्वारा किया गया था और उसके बाद 2009 में सुनील साहित्य सदन से प्रकाशन हुआ। इस उपन्यास से हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श आया और उसके बाद बहुत सारे उपन्यास, कहानी, कविता और अब तो खुद किन्नर अपने जीवन अनुभव को आत्मकथाओं के माध्यम से व्यक्त करने लगे हैं।

'यमदिप' यह नामकरण प्रतीकात्मक रखा गया है। जिस प्रकार दीपावली की पूर्व संध्या पर घर से बाहर घूर पर एक दिया जलाकर उसे वही छोड़ दिया जाता है और जलाने वाला उसे पलटकर नहीं देखता भले ही वह प्रकाश देता है किन्तु उसे नाम यमदीप दिया जाता है। यह दीप यम के लिए जलाया जाता है। दीप होते हुए भी यह अभिशप्त है। कैसी त्रासदी है यह कि घर का ही एक दीप जो कि दीपावली की पूर्व संध्या को जलाये जाने के उपरांत भी न तो पटाखे और न ही फुलझड़ियाँ और न ही उसकी पूजा अर्चना की जाती है। वह जलते-जलते कब बुझ गया कोई नहीं जानता या कोई जानना भी नहीं चाहता। ठीक ऐसे ही तृतीयलिंगी में जन्मे मनुष्य को घर के सदस्यों के द्वारा ही घर से निर्वासित होने के लिए विवश किया जाता है और अंतत: वह मजबूर हो जाता है। एक नरकीय जीवन जीने के लिए। नीरजा माधव अपने इस उपन्यास के तृतीय लिंगी पात्रों के माध्यम से समाज में रह रहे लोगों की इंसानियत पर एक तमाचा मारा है।

इस लिंगोपासक समाज में किन्नरों को घोर अभिशप्त माना जाता रहा है। इस समुदाय को समाज ने हमेशा से ही प्रताड़ित ही किया है। शारीरिक कमी के कारण इस समाज को हमेशा से ही हीन दृष्टि से देखा गया है। समाज इस वर्ग विशेष को अपनाने के लिए कभी तैयार नहीं रहा है। यह समाज इस समुदाय को इन्सान ही नहीं मानते है "देखों तुम्हारा बार-बार टेलीफोन करना या इस परिवार से संबंध रखना, हमारी इज्जत तो बढ़ती नहीं, उलटे तुम्हें भी दु:ख होता है और मम्मी-पापा को भी। तुम परिवार में रह नहीं सकती, हम रख भी नहीं सकते। इसलिए यह समझ लो कि तुम अनाथ हो। कोई नहीं तुम्हारा इस दुनिया में।"[5]

जनानांग दोष के साथ पैदा हुए बच्चे को समाज तो क्या परिवार भी स्वीकार नहीं करता। वह भी अपनी इज्जत को बचाने के लिए अपने ही बच्चे को अपनी जिंदगी से बाहर निकाल देते हैं। उपन्यास का किन्नर पात्र नंदरानी उर्फ नाजबीबी को अपने परिवार की याद आती है तो वह अपने घर पर फोन करती है, किंतु बदले में उसे पीडा ही मिलती है। उसका तिरस्कार किया जाता है। नाजबीबी के परिवार के लोग उसकी शारीरिक कमी के कारण उसे अपने जीवन से निकाल देते हैं उसे अनाथ कहने लगते हैं। "हिजड़े का बाप कहलाना न आप बर्दाश्त कर पाएंगे और न आपके परिवार के लोग। लुली-लगड़ी होती या, कानी-कोतर होती, तो भी आप इसे अपने साथ रख सकते थे.... इसलिए इसे अब उसके हाल पर छोड़ दीजिए। यही उसका भाग्य था, सोच लीजिए, मर गई, सब्र कर लीजिए।"[6]

इस समाज में एक किन्नर के रूप में जी पाना कितना मुश्किल है इसका अंदाजा हम इस कथन के माध्यम से लगा सकते हैं नंदरानी उर्फ नाजबीबी की माँ अपने बच्चे को पढ़ाना-लिखाना चाहती है उसे लायक बनाना चाहती है लेकिन पढ़ने में तेज होने पर भी वह अपनी लायक और होनहार बेटी की मदद नहीं कर पाती। नंदरानी की मां से कहा जाता है - "माता किसी स्कूल में आज तक हिजड़े को पढ़ते-लिखते देखा है? किसी कुर्सी पर हिजड़ा बैठा है? मास्टरी में, पुलिस में, कलेक्ट्री में किसी में भी अरे। इसकी दुनिया यही है, माताजी कोई आगे नहीं आएगा कि हिजड़ो को पढ़ाओं, लिखाओं नौकरी दो जैसे कुछ जातियों के लिए सरकार कर रही है।"[7] आठवीं कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते उसमें स्त्री योजित शरीरांग के साथ दाढ़ी, मुछे भी आ जाते हैं। बाद में वह समाज के डर से हिजड़ो की बस्ती में चली जाती है और नंदरानी से नाजबीबी बन जाती है। लेखिकाने इस उपन्यास में किन्नरों की ज्ञात-अज्ञात सभी अनछूए पहलुओं को बड़ी बेबाकी के साथ पाठकों के सामने रखा है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि, आज कानून के द्वारा किन्नरों के अधिकार मिले है किन्तु उससे पहले उनको समाज के साथ-साथ परिवार की समस्याओं का सामना करना पड़ता था। जिसे नीरजा माधव जी ने इस उपन्यास में किन्नरों का दर्द, आक्रोश और संघर्ष को बखूबी से चित्रित किया है गया है। जिससे समाज में वे अपना अस्तित्व निर्माण कर सकते हैं।

संदर्भ सूची :

1. अपनी माटी (साहित्य और समाज का दस्तवेजीकरण) संपा. माणिक व जितेन्द्र यादव, फरवरी, 2018 से।
2. रामचरितमानस (अयोध्याकांड) - तुलसीदास, पृ. 04/398
3. शोध-धार, संपा. डॉ. नीलम मुकेश, भारतीय साहित्य के संदर्भ में किन्नरों का इतिहास एवं मिथक की अवधारणा - कपिल कुमार गौतम, पृ 8
4. जनकृति जून - 2014 से हिंदी उपन्यास और किन्नर समुदाय का संघर्ष शिवांक त्रिपाठी,
5. यमदीप - नीरजा माधव, सुनील साहित्य सदन, दिल्ली, पृ. 82
6. यमदीप - नीरजा माधव, सुनील साहित्य सदन, दिल्ली, पृ. 31
7. यमदीप - नीरजा माधव, सुनील साहित्य सदन, दिल्ली, पृ. 13

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

धर्म की आड में स्त्री का शोषण

सफिया कासम मुल्ला
विवेकानंद ज्युनियर कॉलेज ,कोल्हापूर
Email ID - safiya.cet@gmail.com

समाज विविधता से परिपूर्ण है, समाज में हर एक क्षेत्र में शोषण चला आ रहा है।अमीर- गरीब,छोटा-बडा,किसान-मजदूर, मालिक- मजदूर अपने अपने तरीके से शोषण करते नजर आ रहे है किसी का मानसिक ,आर्थिक ,आरोग्य, शारीरिक प्रकार से शोषण होता आ रहा है। समाज का अभिन्न अंग कहलाने वाली औरत का मानसिक, आर्थिक तो कभी शारीरिक शोषण होता है लेकिन धर्म की आड में स्त्री शोषण एक समस्या मुस्लिम धर्म में देखी जाती है। जिस समाज में बहु विवाह की समस्या प्रचलित है, उस समाज में स्त्री का मानसिकता के साथ शारीरिक शोषण हो रहा है। स्त्री शोषण को लेकर भगवानदास मोरवाल ने 'हलाला' नामक उपन्यास की रचना की है। धर्म के नाम पर स्त्री का शोषण उसके अधिकारों का हनन तो आम बात हो गई है।चाहे वह किसी भी धर्म में हो। मुस्लिम धर्म के महिलाओं की स्थिति कुछ ज्यादा ही चिंताजनक हास्यास्पद है। वो चाहें तलाक के रूप में हो या फिर हलाला जैसी घोर निंदनिया प्रथा अनेक रूढी मुस्लिम महिला वर्षो से निभाती आ रही है।

भगवानदास मोरवाल का 'हलाला'उपन्यास मुस्लिम स्त्रियों का मुस्लिम समाज द्वारा हुए शोषण को उन तमाम बारीकियों को उजागर करते है। जिससे स्वयं मुस्लिम स्त्रिया भी परिचित है। भगवानदास मोरवाल ने हलाला उपन्यास में मुस्लिम स्त्रियों के शोषण का चित्रण किया हुआ है। हलाला उपन्यास में किए गए स्त्री शोषण के बारे में जानने से पहले हमें हलाला इस शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है हलाला यांनी तलाक शुदा औरत किसी दुसरे मर्द से निकाह करे और फिर से उससे तलाक या उसकी मौत के बाद ही वह पहले शौहर के लिए हलाल होती है इसी का नाम हलाल है। हलाला मुस्लिम समाज की एक ऐसी प्रथा है ,जिसमें एक तलाकशुदा पत्नी को अपने पति से दोबारा निकाह करने के लिए उसे पहले किसी दुसरे मर्द से निकाह करना पडता है। यही नहीं उसके साथ हमबिस्तर भी जरूरी है|"दरसल धर्म के नाम पर स्त्री को भोग्या बनाने का काम किया है। यह उपन्यास धर्म के नाम पर पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर होने वाले शोषण को केंद्र में रखकर लिखा गया है। हलाला मुस्लिम औरत के लिए क्यों आवश्यक है? क्या सिर्फ पुरुष ही तलाक दे सकता है ,औरत नहीं? यह सवाल मौलवीयों के सामने उपस्थित किया जा सकता है।

भगवानदास मोरवाल के 'हलाला 'उपन्यास संयुक्त परिवार जमाल, कमाल, नवाब और साथ में इनकी पत्नियां भी है जिनका नाम नसीबन, फातिमा और आमना है। इन तीन भाईयों और इनकी पत्नि में एक और परिवार का सदस्य है डमरू। इन लोगों में हमेशा मतभेद लढाई झगडे होते रहते है। डमरू और भावज आमना का एक दुसरे से कभी मेल नहीं होता हमेशा आमना डमरू को बडी उमर का अविवाहित कहकर उसे कलसंडा कहकर टोकती रहती है। पारिवारिक मतभेद होने के कारण डमरू का भी मन नहीं लगता है। वह शांति के लिए साथी लपरलेडीं के सुझाव में जमात पर चला जाना चाहता है। डमरू के उपर भावज आमना का शक रहता है कि उसका और नियाज की तलाकशुदा औरत नजराना का कुछ चक्कर है।

"तिरिया और तुमडी, सब विष की सी बेल|
बैरी मारे दाव सू तिरिया मारे हस खेल||"...

डमरू एक अविवाहित, दिल का सीधा साधा व्यक्ति है, डमरू के सीधेपण का फायदा हर एक व्यक्ती उठाता है। घर में अगर कोई उसे प्यार करता है तो वह है जमाल की पत्नि नजराना भावज अपने बेटे की तरह उसकी देखभाल करती है। लेकिन आमना भावज से डमरु के आए दिन लढाई होती रहती है। आमना से डमरू की लढाई की बातचीत लपरलेंडी के यहा हमेशा रहती है। लपरलेंडी आमना को उलटी सीधी बातचीत करता है। घरवालों से परेशान होने के कारण डमरू जमात में चला जाता है। नियाज और नजराना इन दोनों में तलाक हुआ है। नियाज फिर से नजराना को अपने साथ घर में लाना चाहता है। लेकिन नजराना राजी नहीं
हो रही है।

"नियाज ने खूब माफी तलाफी मांग ली और टटलू ने बहु के आगे अपनी पाग तलक पटक ली पर नजराना ही राजी ना होरी है... हा एक ही सरत पे राजी है के अगर नियाज भरी पंचायत में माफी मांग लेए तो उल्टी आ जायेगी|". 88

यहां पुरुष अपने मन के अनुसार स्त्री का इस्तमाल करता है नियाज नजराना को लढाई झगडे में तलाक देता है और अपना क्रोध शांत होने पर फिर से उसे अपनाना चाहता है, लेकिन पंचायत में रसखान बताता है कि नजराना को हलाला होना जरुरी है।

" भई वा, तम भला मुसलमान हुआ जो इतनों भी पतो ना है के तलाक दिये पिछे अगर कोई फिर सु वाही घर में आणो चाहवे, तो वाकू हलाला जरुरी है|" 93

इस बात को सुनकर नियाज के माता पिता हाजी खुदाबक्ष और कल्लो आश्चर्य चकित हो गए वह अपने बहु शादी करना चाहते है रिश्ते देखने के बाद जमाल खा के घर पहुंच जाती है। नसीबन से नजराना का रिश्ता डमरू से करने की मांग रखती है। जमात से लौट आने के बाद नसीबन अपने बेटे समान देवर के सामने नजराना से शादी की बात करती है, नसीबन के बहुत मिन्नतों के बाद डमरू तैयार हो जाता है। डमरू को समझाने में नसीबन के साथ साथ लपरलेंडी का भी साथ है। जो हमेशा डमरू की टांग की खिचता रहता था वहा उसे समझाता है की यही मौका आमना को अपनी श्रेष्ठता दिखाने का है, क्योंकी आमना डमरू को हमेशा कलसंडा पुकारती थी। डमरू आखिर नजराना से शादी के लिए मान जाता है नजराना और डमरू की शादी हो जाती है|इस बात से सबसे जादा खुश नियाज की मां कल्लो काकी है। कल्लो को हर हाल में नजराना और उसके तीन बच्चों को वापस घर ले आना चाहती है। कुछ दिनों के बाद डमरू नजराना को तलाक देना चाहता है लेकिन जब नजराना से डमरू के तलाक की बात हुई तो और एक भवंडर

सामने आया की दोनों का हमबिस्तर होना जरुरी है इस इमाम साहब की बात से कल्लो की खुशी पर पानी फिर जाता है कल्लो ऐसी बहु को अब घर लाना नहीं चाह रही है। वह कहती है....

"बहोत सोच समझ के करी हूं.... ऐसी बहु को लाके अब हम कहा करेंगा जो दूनिया के नीचे सोती डोले|" 134

कल्लो के मुंह से झाग गिरने लगे। एक स्त्री ही एक स्त्री का शोषण कर की नजर आती है जो कल्लो नजराना और तीन बच्चों को वापस घर लाने के लिए जिंदगी भर के लिए नसीबन और जमाल खा का ताबेदार होने की दुहाई दे रही थी और क्या यह वही कल्लो है जिसने डमरू को मनाने के लिए उसके पाव में सिर से दुपट्टा तक उतारकर डाल दिया था। आज वही कल्लो नजराना को फिर् से बहू के रूप में इसलिए स्वीकार नहीं कर रही है कि वापस अपने घर लाने के लिए नजराना का हलाला होना जरुरी है।दरसल हलाला धर्म के नाम पर बनाया गया एक ऐसा कानून है जिसने स्त्री को भोग्या बनाने का काम किया है सत्य तो यह है की हलाला मर्द के सजा देने के नाम पर गढा गया षडयंत्र है। जिसका खमियाजा अंततः औरत को ही भुगतना पडता है|अपने पहले शौहर द्वारा तलाक दी गई नजराना उसके पडोसी व दुसरे मर्द डमरू याने कलसंडा से निकाह और इस निकाल के बाद फिर से तलाक देने की कोशिश के बावजूद नजराना को क्या उस का पहला शौहर नियाज और उसका परिवार उसे अपनाने के लिए तैय्यार हो जाएगा? या सवाल रहा उपस्थित हो जाता है|

डमरू और नजराना के सामने यह प्रश्न है कि तलाक के लिए दोनों को एक होना जरूरी है। लेकिन दोनों में किसी भी प्रकार का रिश्ता नहीं है। जब तलाक के समय इमाम साहब डमरू से पुछते है कि हमबिस्तरी के बारे में तो डमरू इस्लामी शरीयत और कानून कि परवाह न करते हुए झुठ बोलता है लेकिन नजराना सारी सच्चाई उगल देती है। यहाँ यह बात चिंतनीय है की हम हमेशा यह सोचते है की स्त्री शोषण में पुरुष का और ज्यादा दर उसके शौहर का हाथ होता है लेकिन यहा डमरु इस बात को अपवाद साबित होता है। डमरू तो नजराना का फायदा उठा सकता है लेकिन डमरु वैसा नहीं करता है। वह एक सीधा साधा और नेक दिल इन्सान देखने को मिलता है। डमरू असली मर्द साबित होता है उपन्यास में एक जगह नजराना कहती है ....

" हूं,मरद माणस सू गल्ती हो जावे है...एक यहीं मरद है |अरे, इ भी तो मरद है |जो चाहता तो मेरी आबरू ए लूटना में मिनट ना लगातो, पर मजाल है या भला आदमी ने आबरू ए लूटना में मिनट ना लगातो,पर मजाल है या भला आदमी ने आबरू लूटनी तो दूर रही याने आंख मिनट ना लगातो,पर हजार है या भला आदमी ने आबरू लूटनी तो दूर रही,याने आंख उठा के भी ना देखी....अडला ने आपणा हदीस और सरीअत जीबी की भी परवाह नाम कारी। ईई तो एक मौलवी चलोगो नहीं वाहे बताती के ईमान कहा होवे है|दादा, ऐसी होवे है आदमी को असली ईमान, असली मरद|रही बात मेरी सास यांनी कल्लो काकी की वाहे दुनियाभर की सत्यवती बहू मिल जाएगी|...178

उपन्यास हलाला में नजराना अपनी जिंदगी का फैसला खुद करती नजर आती है अपने पति नियाज को ठुकरा देती है और डमरू के साथ रहना पसंद करती है। तरह इसी तरह हर मुस्लिम स्त्री को अपने जीवन के फैसले लेने की सीख नजराना देती है। मुस्लिम स्त्रियों को परंपरा से चले आ रहे प्रथा-परंपरा को तोडकर आजादी की उडान भरणे की आवश्यकता है। नजराना की इन्हीं बातों से स्पष्ट हो जाता है कि डमरू सीधा साधा शरीफ इन्सान है। लेकिन नियाज नजराना का पति छोटे- छोटे बातों पर झगडे कर क्रोध में आकर तलाक दे देता है अब उससे दुबारा निकाह कर लेना चाहता है मर्द ही औरत को जब चाहा अपना लेता है और जब चाहा छोड देता है,ऐसी प्रवृती को नजराना करारा जवाब देती है|

इस प्रकार भगवानदास मोरवाल का हलाला उपन्यास नजराना सीधे साधे पुरुषवादी धार्मिक सत्ता और पारिवारिक सामाजिक समस्या को धार्मिकता का आवरण ओढा स्त्री के दैनिक शोषण के खिलाफ बिगुल बजाने और स्त्री शुचिता को बचाये रखने का आख्यान है |

इसी प्रकार की कहानियों को लेकर कहीं सारी फिल्म में बनी 'निकाह ' नामक फिल्म भी काफी मशहूर हुई आज 21वी सदीं में जहां औरत पुरुष से खंदे से खंदा मिलाकर चल रही है, वहा हर हर छोटी मोठी बात कर पर स्त्री का शोषण यह अपराध आज भी मुस्लिम स्त्री भोगती नजर आ रही है |आज कानून न तीन तलाक को नामंजूर किया है आगे मुस्लिम संप्रदाय में हलाला नाम की रस्म को नकारा जायेगा। धर्म के नाम पर आज भी 21वी सदीं के स्त्री को मासिक धर्म में उसका धार्मिक कामों में नकारा जाना, मंदिर मस्जिद में प्रवेश बंदी, समशान भूमी में प्रवेशबंदी, धार्मिक पूजा में दुय्यम स्थान , परदा प्रथा ,हिजाब पहनना बुरखा प्रथा इस तरह के प्रथाओं को निभाने के लिए औरतों पर पाबंदी लगाई जाती है |

संदर्भ:

मोरवाल भगवानदास कृत हलाला(उपन्यास), वाणी प्रकाशन, 2016
1.वही पृष्ठ क्रमांक -88
2. वही पुष्ठ क्रमांक-93
3. वही पुष्ठ क्रमांक-134
4. वही पुष्ठ क्रमांक-178

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

आना इस देश ' : एक स्त्री की असफल प्रेमकथा

डॉ.युवराज माने
श्री.आर आर.पाटील कॉलेज,सावलज.

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य में पुरुष लेखकों ने जिसप्रकार अपना अस्तित्व निर्माण किया है ,उसीप्रकार स्त्री लेखिकाओं ने भी अपना अस्तित्व निर्माण किया हैं। वर्तमानयुग के महिला साहित्यकारों में कृष्णा अग्निहोत्री जी का नाम अग्रगण्य साहित्यकारों में आता हैं ।उनका साहित्य नारी की अंतरात्मा के पटल-दर-पटल को खोलता है। प्रस्तुत उपन्यास 'आना इस देश ' लघु उपन्यास है। उपन्यास में सांप्रदायिकता, आतंकवाद ,भारत-पाक विभाजन की त्रासदी, मानवीय मूल्यों का विघटन आदि का वर्णन हैं। साथ ही सुरैय्या और अबीर की असफल प्रेमकथा को बया किया है। 'आना इस देश ' उपन्यास का प्रथम प्रकाशन सन 2014 ई. में अमन प्रकाशन कानपुर से हुआ है। कृष्णा अग्निहोत्री जी के साहित्य में विद्रोही भाव दिखाई देता है | उसका प्रमुख कारण उनकी माताजी है। जो भारतीय रणसंग्राम की हिस्सा थी। कृष्णाजी ब्राह्मण परिवार से थी। उन्होंने अंग्रेजी में एम.ए. और 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी' विषय पर हिंदी में पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की। कृष्णाजी के दो विवाह हुए, पर उनका वैवाहिक जीवन असफल रहा | कृष्णाजी को विविध पुरस्कारों से नवाजा गया हैं। कृष्णाजी अपने विचारों को स्पष्टता से प्रस्तुत करनेवाली साहित्यकार है। अपने इस रवैए से कोई नाराज हो जाएगा इसकी परवाह वह नहीं करती। इसका सुंदर उदाहरण उनकी आत्मकथा है।

मूल शब्द :सुरैय्या,अबीर,प्रेम,तरुन्नम,डॉ.गीत,अर्जुन, स्त्री,धर्म,भारत,पाकिस्तान आदि.
प्रविधियाँ : व्याख्यात्मक,सैद्धातिंक आदि |

'आना इस देश' : एक स्त्री की असफल प्रेमकथा

कृष्णा अग्निहोत्री जी हिंदी महिला साहित्यकारों में अपना एक अलग स्थान रखती है। उनके साहित्य की बात करेंगे तो उनमें 'स्त्री मन की दास्तान ' के साथ मानवतावादी विचारों को केंद्र में रखकर लिखा है । उपन्यास के साथ कहानी, आत्मकथा ,रिपोर्ताज, समीक्षा, बालसाहित्य आदि विधाओं में उनका विशेष योगदान रहा हैं । स्त्री अपने मन की इच्छाओं को समाज के कारण, पुरुषप्रधान संस्कृति तथा धर्म के कारण अपने दिल में ही दबाके रखती है। इसका सशक्त उदाहरण 'आना इस देश' उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास नायिका प्रधान है। उपन्यास की नायिका सुरैय्या है, जो पाकिस्तान की जानी-मानी गजल गायिका है। उसके पिता मेजर नदीम जो भारतीय फौज के महत्वपूर्ण दस्तावेज और खुफिया राज चुराकर पाकिस्तान भाग गए थे। सुरैया की दादा-दादी, नाना-नानी भारत से तालुक तरखते हैं, पर विभाजन के बाद उन्हें भी अपने दिल पर पत्थर रखकर नदीम के साथ पाकिस्तान जाकर बसना पड़ा।

प्रस्तुत उपन्यास फ्लैशबैक शैली में लिखा गया है। उपन्यास की नायिका सुरैया इंदौर के किसी क्लब में बैठी रेड- वाइन और कबाब का लुफ्त उठाते हुए "बात निकली तो बहुत दूर तलक जाएगी " यह जगजीतसिंह की दर्द और मिठासभरी आवाज में गजल सुनते-सुनते अपने बीते जीवन को याद कर रही है। धीरे-धीरे जीवन की यादें उसे उस जमाने में ले जाती है। यादों को रोकने से कहाँ रुकती है। सुरैय्या की अम्मी तरुन्नाम अपने मायके रामपुर की चर्चा बड़ी आत्मीयता के साथ करती थी । वह सुरैया से हमेशा कहती थी जब भी तुम भारत जाओगे, तब अपने नाना-नानी से मिलने रामपुर जरूर जाना। अम्मी और दादी की बातों ने सुरैय्या के मन में भारत के प्रति एक अलगसा लगाव हुआ था। कराची में भारत से आए मेहमान महमूद से जब सुरैय्या की बातचीत होती है, तो उसे पता चलता है कि भारतीय मुस्लिम मुसलमान खुशहाल जिंदगी जीते हैं। सुरैया का विवाह उससे दुगनी उम्रवाले व्यक्ति परवेज के साथ होता है | जिसकी पहली पत्नी की मृत्यु हो चुकी है| उसकी राक्षशी प्रवृत्ति के कारण यह विवाह असफल बनता है। सुरैय्या के अब्बाजान उसे दुबई भेजते हैं। वहीं पर भी उसके जीजाजी उसपर जान छिड़कते हैं। सुरैया से शादी की बात करते हैं। लेकिन सुरैया अपने बहन का घर उजाड़ना नहीं चाहती। वह डॉक्टर गीत के गेस्ट हाउस में रहती है| डॉक्टर गीत और उसके पति अर्जुन उसका घर के सदस्य की तरह खयाल रखते हैं। डॉक्टर गीत इंदौर शहर भारत कीर हनेवाली होने के कारण सुरैय्या का उनके प्रति अलग लगाव दिखाई देता है। सुरैय्या डॉक्टर गीत के साथ भारत आती है। डॉक्टर गीत को लेने एयरपोर्ट पर उसके भाई अवधेश और उनका अजीज दोस्त अबीर आते हैं। यहीं पर अबीर और सुरैय्या की पहली मुलाकात होती है। डॉगीत ने अबीर पर सुरैय्या को जयपुर,रामपुर घुमाने की जिम्मेदारी सौंपी है । सुरैय्या की सुंदरता देखकर उसके प्रति अबीर आकर्षित होता है। अबीर सुरैय्या को लेकर उसके नाना-नानी के घर रामपुर चला जाता है। वहाँ उनका स्वागत गर्मजोशी के साथ किया जाता हैं ।रामपुर में अबीर की मेहमान नवाजी बड़े जोर-शोर से होती है। सुरैय्या और अबीर अजनबी होकर भी अपने में एक बेहद अपनापन महसूस करते हैं। सुरैय्या एक नेक दिल और सहृदय व्यक्ति है। जिससे अबीर उसकी ओर खींचता है। अबीर अपनी मन में उठनेवाली प्रेमभावना की लहरें सुरैय्या के सामने प्रस्तुत करना चाहता है। सुरैय्या की इच्छा अनुसार अजमेर के ख्वाजा की दरगाह पर चादर चढ़ाकर ,आगरा चले जाते हैं। आगरा का ताजमहल जो प्रेम की निशानी है उसकी सुंदरता को देखकर सुरैय्या कहती है- "हाय अल्ला यह हम जन्नत में कैसे आ पहुंचे"[1] । बादशाह शाहजहां और मुमताज के प्रेम की निशानी देखकर सुरैय्या मन ही मन अपने नसीब कोसती रही की उसे जीवन में सच्चा प्यार कभी नहीं मिला। अबीर सुरैय्या का हाथ अपने हाथ में ले अपने प्यार की दस्तक देने का प्रयास करता है। सुरैया अबीर के हाथ से अपना हाथ छुड़ाने का प्रयास नहीं करती| उसे उसके हाथ में ही रहने देती है। ताजमहल देखते-देखते अबीर और सुरैय्या के बीच की दूरियाँ कम हो जाती है। एक दूसरे के प्यार के जज्बातों, भावनाओं को वह दोनों समझ रहे थें। दोनों के बीच प्यार के बीज बोए गए। लेकिन दोनों जानते थे कि वह कभी एक नहीं हो सकते, क्योंकि अबीर की शादी मनु के साथ तय हुई है| धर्म, फतवे, पंडित, मौलवी उन्हें एक होने नहीं देंगे, पर पंछी, नदियाँ, पवन के झोंके को कोई सरहद नहीं रोक सकती| उसीप्रकार प्रेम के लिए कोई सरहदें, सीमा, धर्म नहीं होता। प्रेम तो ईश्वर की देन है, जो रोकने से नहीं रुकता और चाहने से भी नहीं मिल सकता।

सुरैय्या अबीर के साथ नर्मदा नदी ,सातपुड़ा, विंध्याचल की पहाड़ियों का प्राकृतिक सौंदर्य देखते साथ ही अबीर की प्यारभरी बातें सुनते-सुनते घने जंगल से गुजरती है। पूरा माहौल उसके शरीर में एक ज्वालासी निर्माण करता है। उसकी आँखें अबीर को मुख स्वीकृति भरा निमंत्रण देती है। प्रेम दबाने से नहीं दबाता। नर्मदा के किनारे रेस्टहाउस में रेडवाइन पीने के बाद पूरा माहौल बदल जाता है| वे एक दूसरे में समाजाते हैं। दोनों को इस बात का कोई पछतावा या गम नहीं। सुरैया को यह एहसास बहुत ही खूबसूरत लगा। सुरैय्या कहती है-

"जो हुआ ओ कम नहीं
ना होता तो गम न था
किसी की जुस्त जूभी नहीं
जो मिला कम मिला,
पर एक आरजू पूरी हुई।
भविष्य में क्या होगा पता नहीं
वर्तमान में जो है वही जिंदगी है"।[2]

दोनों समझ दार थे|उन्हें पता था,धर्म के ठेकेदार उन्हें एक होने नहीं देंगे।पागल प्रेमी की अपेक्षा दोनों एक दूसरे को समझकर अपने प्यार की हिफाजत करना बेहतर समझते हैं।अबीर और सुरैय्या के बीच पनप रहे मीठे रिश्ते का अनुमान डॉक्टर गीत को हो जाता है। धार्मिकता, सांप्रदायिकता और भारत-पाकिस्तान के रिश्ते दोनों को एक होने नहीं देंगें |यह गीत जानती है। डॉक्टर गीत कहती है-"पाकिस्तानी और हिंदुस्तानी लड़के लड़कियाँ एक दूसरे से मोहब्बत करने लगे तो मजहब गायब हो जाएगा।क्यों कि मोहब्बत की नजर से देखो तो सब अच्छा लगता है"।[3]सुरैय्या को पता है उसे भारत में कोई सेटल नहीं होने देगा क्यों कि उसके अब्बा मेजर नदीम कारिकॉर्ड उसके आडे आएगा। डॉक्टर गीता और अर्जुन सुरैय्या के साथ दुबई वापस जा रहे हैं।गीत सुरैय्या से कहती है कल हम वापस जा रहे हैं कुछ खरीद ना चाहते हो तो अबीर के साथ बाजार जाओ।अबीर इसी मौकेका इंतजार कर रहा था| वह सुरैय्या को सिमरेल के डाक बंगले मे परले जाता है। वहाँ अबीर सुरैय्या को बड़े व्याकुलता से अपनी बाहों में जकड़ता है। दोनों एक दूसरे से बिछड़ने के कल्पना की विरह वेदना से व्याकुल हो जाते हैं। सुरैय्या के जाने से अबीर के जीवन में एक खाली पन सा आ जाता है।उस का पागल मन भटकने लगता है। वह अपनी विरह वेदना किसी को बता नहीं सकता था। दुबई के हालात अच्छे न होने के कारण सुरैय्या पाकिस्तान चली जाती है| अबीर अंसारी की मदद से कराची पहुंचता है। अबीर को पाकिस्तान में देखकर सुरैय्या हक्की-बक्की हो जाती है। सुरैय्या अबीर कोमनु से शादी करने के लिए अपने प्यार से मुक्त करती है। अबीर को समझाते हुए सुरैय्या कहती है- "मैं भी अबीर हाड-मास से बनी एक आम औरत हूँ | जो अपना प्यार खोना नहीं चाहती। यदि मुझे नहीं मिले तो मैं लाश सी जाऊंगी| हमारें बीच की मोहब्बत वजज्बात कभी बदल नहीं सकते, मैंने तुम्हें पूरा पाया है और तुम मुझ में जिंदा रहोगे"[4] पाकिस्तान अम्मी बहुत बीमार है उस की अंतिम इच्छा य ही थी कि उसे भारत में दफना जाए। अबीर तरन्नुम को भारत आने में मदद करता है। अम्मीत रन्नुम के साथ सुरैय्या भी भारत आ जाती है। तरन्नुम का अंतकाल हो जाता है और उसे रामपुर में दफन किया जाता है| जो उसकी अंतिम इच्छा थी।

सुरैय्या भारत से कल फ्लाइट से पाकिस्तान जाने वाली है| पर दंगा-फसाद के कारण फ्लाइट रद्द हो जाती है| अगले चार दिनों तक कोई फ्लाइट नहीं है।अर्जुन इन चार दिनों में गोवा जाने का आयोजन करता है।अर्जुन,गीत,अबीर और सुरैया ट्रेन से गोवा चले जाते हैं।पर गीत दूसरे ही दिन इंदौर चलने को कहती है।सुरैय्या का वीजा खत्म हो चुका है।जिस के कारण सुरैया को जल्द से जल्द भारत छोड़ना पड़ेगा।फ्लाइट न होने के कारण सुरैया ट्रेन से पाकिस्तान जाने का सोचती है। अबीर का दोस्त अंकित सुरैय्या के साथ जोधपुर ट्रेन पकड़ने के लिए चलता है।सुरैय्या जोधपुर से ढाका और वहाँ से कराची का सफर करने वाली थी| पाकिस्तान गेस्टहाउस में वह ट्रेन का इंतजार कर रही थी। बैठे-बैठे आँखें बंद करती तो उसके सामने अबीर की तस्वीर आ जाती थी। सुरैया बंद आंखोंसे अपने प्यार की कहानी पढ़ रही थी| तभी उस पर छ: सात हाथ अचानक से हमला कर देते हैं।उसके सारे कपड़े तार-तार करते हैं।उसे गेस्टहाउस से एक विरानी जगहले जाते हैं। वहीं उसप रसामूहिक बलात्कार होता हैं ।उस के शरीरके साथ-साथ उसकी आत्मा को भी घायल कर देते हैं। इस आघात से वह बेसुध हो जाती है।पागल हो जाती है।सुरैया कुशवाह पाकिस्तान नहीं पहुंचती तो अबीर बेचैन होता है। इसी बीच में अबीर और मनुकी शादी हो जाती है। अबीर मनु कोहनी मून के लिए जोध पुर ले जाता है और उसे होटल में छोड़कर अपने मित्र अंकित के साथ जोधपुर आकर पाकिस्तानी चेक पोस्ट पर सुरैय्याकी फोटो दिखाकर उसकी पूछताछ करता है।पर सुरैय्याका कोई आता-पता नहीं चलता ।वहाँ का एक सिपाही अबीर को कहता है एक पागल औरत हररोज भारत आने की कोशिश करती है और कहती है क्या तुम मेरे अबीर को जान ते हो? अबीर के मन में एक घबराहट से महसूस होती है।तभी आठ-साढ़े आठ बजे एक धुंधली सी औरत की आकृति आती है और कहने लगी मैं सुरैय्या क्या तुम मेरे अबीर को जानते हो? अबीर धुंदले-धुंदले प्रकाश में भी उस औरत यानी सुरैय्याको पहचान लेता है।सुरैय्या बेहोश हो जाती है |उसका एक हाथ भारतके सीमापर तो दूसराहाथ पाकिस्तान की सीमापर था।अंकित और अबीर उसे अस्पताल ले जाते हैं| डॉक्टर उसे मृत घोषित करते हैं।अबीर और अंकित सुरैय्या को मुस्लिम रीति-रिवाजों के अनुसार दफन करते हैं। हमेशा के लिए अलविदा करने वाले सुरैय्याको जब अबीर देखता है,तो उसे महसूस होता है कि सुरैय्या कह रही है- "देखो मैं तुम्हारे दिल में तो हूँ ही पर सदाके लिए तुम्हारे साथ नहीं रह रही हूँ। पर अब तो हमें मिलने से कोई रोक नहीं सकता"[5]।

निष्कर्ष :

'आना इस देश' उपन्यास एक असफल प्रेम कहानी है|यह उपन्यास आकार की दृष्टि से लघु है,पर आशय की दृष्टि से विशाल है।अबीर और सुरैय्या की प्रेम कहानी का विस्तार कर ते समय लेखिकाने भारत-पाकिस्तान के राजनीतिक,सामाजिक,धार्मिक,संस्कृतिक परिस्थितियों पर नजर डाली है।साथ ही पाकिस्तान का आतंकवाद,धर्मांधता,पंडित,मौलवीके फतवे आदि बातों पर अपने विचार स्पष्टता से चित्रित किए हैं।'आना इस देश'में सुरैय्या और अबीर के समर्पित प्रेम कहानी को बहुत सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है।इस का अंत बहुत ही करुण दिखाई देता है।दो धर्मों के लड़का- लड़की में कभी प्रेम नहीं हो सकता और वह लड़का- लड़की भारत-पाकिस्तान के होतो यह असंभव है।क्या इस संसार में या इस समाज में फैलीन फरत का कोई इलाज

नहीं है?यह धर्मांधता हमारे समाज को दीमक की तरह खोकला कर रही है।आज विश्व में शांति चाहते हो तो नफरत की बजाएँ प्रेम के बीज बोना आवश्यक है।

संदर्भग्रंथ :

'आना इस देश',अग्नि होत्री कृष्णा,अमन प्रकाशन कानपुर,प्रथम संस्करण सन 2014,पृ- 35, 41,46,70-71,91

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

हिंदी महिला कहानीकारों में नारी विमर्श

प्रा. वाय. पी.पाटील
तुकाराम कृष्णाजी कोलेकर कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, नेसरी

यत्र नायस्तु पूज्यन्ते रमन्ते देवत:।
यतैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा क्रिया:।

अर्थात, जाहा नारी की पूजा होती है वहां साक्षात परमात्मा का निवास होता है किन्तु जहा नारी की पूजा नहीं होती वहां सारे कर्म अस्तमात होते है।

नारी जीवन की व्यथा-कथा को रचनात्मक धरातल पर मुखरित करने का प्रयास कई पुरूष एवं महिला रचनाकारों ने किया है। इस नारी विमर्श में स्त्री का जीवन संघर्ष स्त्री स्वतंत्रता तथा अधिकार की चेतना स्वावलंबन एवं आत्मनिर्भरता अनुभूतियों का इसमें निरूपन होता है। स्त्री विमर्श के अंतर्गत नारी जीवन की समस्याओं का समावेश हैं। नारी विमर्श का अर्थ है, स्त्री पुरूष समानता। नारी अर्थाजन के लिए बाहर निकली तब वह शोषण का शिकार हुई। बालविवाह, कुपोषण, स्त्रीभ्रुणहत्या, बलात्कार, अशि़क्षा, बालिका मजदुरी आदि समस्याओं का सामना बच्ची, युवा, स्त्री करती है।

महिला कहानिकारो के केंद्र में स्त्री होती है। वे अपनी कहानी में स्त्री के सुख दुख, निराशा, समस्याए अन्याय, शोषण को अभिव्यक्त करती है। पारिवारिक रिश्तों के खोखलेपण से उपजी नारी व्यथा वे व्यक्त करती है। नारी को शिक्षा का सबल आधार मिला है। वह किसी भी समस्या का सामना कर सकती है। अर्थिक, सामाजिक, पारंपारिक मुद्दे पर वह चुप नहीं बैठती,वह जवाब देती है। स्त्री रिति-रिवाज, परंपरा के दायरे से मुक्त होना चाहती है।

समाज में स्त्रियों के अनेक रूप दिखाई देते है। इनमें मां, बेटी, बहन, बुआ, पत्नी, दादी, और इनके साथ जो रिश्ते आ जाते है वह भी है। स्त्रियों की विविधता, उनकी समस्याओं, उनके स्वभाव तथा बदलती परिस्थिती, बदलाव को कहानियों के व्दारा दर्शाया गया है।

ममता कालिया:

ममता कालिया नारी यौन अतृप्ति और कामवासना के यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत करनेवाली हिंदी कहानी की प्रमुख हस्तक्षर है। ममता कलिया ने अपनी कहानियों में पारिवारिक जीवन में नारी की निराशाओं, कुंठाओ, अंतर्विरोधी तथा विसंगतियों का सजीव चित्रण किया है। इनकी कहानियों में 'काली साडी' कहानी की कल्पना, 'वसंत -सिर्फ एक तारीख' की प्राचार्या 'मंदिरा' कहानी की मंदिरा आदी नारी पात्र किसी न किसी वजह से शोषित है। ममता कालिया जी की कहानियों में उसी नारी का अंकन हुआ है जो सामाजिक रूढिया या पुरूषों की वर्चस्व वृत्ती से आहत है।'

कृष्णा सोबती:

कृष्णा सोबती ने स्वातंत्र्य प्राप्त करनेवाली स्त्री को लेकर कहानिया लिखी है। उनकी 'कुछ नही कोई नही' की नायिका प्रेमी के लिए पति को छोड देती हैं। दस साल बाद प्रेमी की मृत्यु हो जाने पर वह अकेली हो जाती है। कृष्णा सोबती की ' बदली बरस गयी' की कल्याणी स्वतंत्र्या विचारों की है। कल्याणी अपनी मा के साथ आश्रम में रहती है लेकिन वह आश्रम में घुटनभरे माहौल से ऊब जाती है। आश्रम के स्वामी से सहानुभूति मागकर स्वतंत्र हो जाती है। कृष्णा सोबती के विचारों के प्रति मधुरेश के विचार है- "कृष्णा सोबती की प्रेम सबंधोवाली कहानिया अपने सारे रोमानी और भावूक मिजाज के बावजूद इस तथ्य को उध्दाटित करने पर बल देती है कि कथन का धर्म मन के धर्म से अलग नही होता।"

मृदुला गर्ग:

नारी के काममुलक अनुभवों, काम और प्रेम विषयक आधुनिक जीवन दृष्टि को अपनी रचनाओं में पुर्ण रूप से चित्रित करने की साहस पुर्ण प्रवृत्ती मृदुला गर्ग के कहानियों में देखी जाती है। उनकी ' कितनी कैदे ' कहानी में पति- पत्नी के काम जीवन के मध्य कही कोई दुरावा या छिपाव नही है। लेखिका ने इस कहानी में ' मिना ' के मन की मनोवैज्ञानिक गुत्थी को पूर्ण उन्मुक्तता और स्वच्छदता से व्यक्त किया है। ' एक और विवाह ' 'दुनिया का कायदा ' इन कहानियों मे वह नारी है जो व्यक्ति स्वतंत्र्य के लिए संघर्ष करती हुई नजर आती है। ' हरी बिंदी ' कहानी में विवाहित नारी की मानसिक दशा का चित्रण किया है। उसमें चित्रित नारी का पुरूषो से सबंध आधुनिक नारी की स्वाच्छाचारी मनोवृत्ती का दयोतक हैं।

नासिरा शर्मा:

इस्लामी संस्कृती, इस्लामी रीति-रिवाजों को आधार बनाकर साहित्य लिखने वाली नासिरा शर्मा समकालिन हिंदी कथा साहित्य की प्रमुख लेखिका हैं। पत्थरवाली सबीना के चालीस चोर, शामी कागज, संगसार, खुदा की वापसी, इंसानी नस्ल, दुसरा ताजमहल, बुतखाना तथा गूगा आसमान इनके कहानी संग्रह है।

नासिरा शर्मा की ' दूसरा ताजमहाल ' की नयना दिल्ली की रहनेवाली शादी शुदा प्रौढ स्त्री है। उनके पति नरेंद्र डाक्टर है, जो व्यस्त रहते है। दो बच्चे अमेरिका में शिक्षा प्राप्त कर रहे है। नयना उपेक्षित रह जाती है। नरेंद्र और नयना में दुरिया आ जाती है। नयना एकाकीपण महसुस करती है। उसका संपर्क रवी भुषण से हो जाता है। पति के साथ रिश्ता समाप्त करके रवि को मिलने चली जाती है, लेकिन रवि भी उसे धोखा देता है। उसे न घर न बाहर दोनो ओर प्रेम नहीं मिलता है। इसी निराशा के कारण नयना की तबीयत खराब हो जाती है। वही उसकी मृत्यू हो जाती है। घुटन के माहैल से मुक्त होने का सपना देखनेवाली नयना सपनो के ताजमहल में दफन हो जाती हैं।

मणिका मोहिनी:

समकालिन महिला कहानीकारों में मानिका मोहिनी का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। स्वप्न होने के बाद, स्वप्नदंश, अपना-अपना सच, ढाई आखर प्रेम का, अन्वेषी तथा अभी तलाश जारी है आदी कहानी संग्रह उनका साहित्यिक सृजन है। उनकी कहानीयों में स्त्री-पुरूष सबंधो का नविन

आयामों से विश्लेषित किया है। इसमें भावुकता की अपेक्षा वैचारिक तथा बौद्धिक पक्ष की प्रधानता है। उनकी अधिकांश कहानियों का स्वर नारी का असंतोष है। इसके मूल में काम भाव है।

'दुश्मन' कहानी में प्रेम के विकृत स्वरूप के मूल में संशय का भाव है। जो पति-पत्नि के बीच दूरी का कारण बनता है। इनकी कहानीयो में एक ओर आधुनिक नारी के मुक्त जीवन दर्शन को उद्धारित किया है तो दूसरी ओर अनचाहे काम-संबंधो में उत्पन्न यौन-ग्रथियों का चित्रण किया है।

मंजूल भगत:

मंजूल भगत की ' बानो ' कहानी की बानो अपने पति की दूसरी बीवी है। पहली पत्नी झगडालू थी। छ साल बाद उन्होंने तलाक ले लिया था। तब बानो की शादी हुई थी। शादी के पाॅंच साल बाद बानो के पति की मृत्यू हो जाती है। पहली पत्नी अपना हक माॅंगने आ जाती है। उसके भाईने कागजातांे का बक्सा , किमती सामान का संदूक चोरी करवा लिया था। दोंनो मिलकर बानो को घर से निकाल देते है। गुलशेर से दुसरी शादी करने के बाद वह पहले पती के घर नही गयी जबकी बेटे पोते उसे घर बुलाते थे। बानो अपनी हक की लढाई कोर्ट में लडती है। अपने कागजात बनवाने टाईपिंग सेंटर आती हैै। वह सिलाई, कसिदा करके अपना पेट भरती है। तलाक लेने वाली पहली पत्नी पति की सारी जायदाद कौसे हडप लेगी। वह स्वाभिमानी है, पिछले परिवाार में वापस नही गई। बानो सशक्त ,सबल नारी पात्र है।

सुधा आरोडा:

सुधा आरोडा ने नारी सुलभ दायरों से आगे बढ़कर व्यापक जीवन के यथार्थ से जुडी अपनी रचनाओं के माध्यमसे हिंदी कहानी साहित्य को समृद्ध किया । उनके ' बगैर तराशे हुए, कमजोर, युद्ध विराम आदि कहानी संग्रह प्रसिद्ध है। इनकी कहानियों में प्रमुख रूप से युवती को कंद्र में माना गया है। सुधा जी ने युवा मन की मानसिक उलझने, तनाव, आंतरिक द्वद्व को आग, खलनायक एक सेंटिमेंटल, डायरी की मैत, और इस्पात आदि कहानियों में चित्रित किया है। इस्पात कहानी में एक किशोर का भावुकता पर विजय पाने का प्रयास और उसमें असफलता को चित्रित किया है। आधुनिक परिवेश और जीवनमूल्यों के प्रेम की परिभाषा ही बदल डाली है। आज प्रेम एक सहज प्रकिया है। जिसे कभी भी जोडा या तोडा जा सकता है। इस अस्थायी प्रेम में असफल युवती की विवशता चित्रित की है।

दिप्ती खंडेलवाल:

दीप्ति खंडेलवाल ने ' वह तिसरा कडवे सच, धूप के अहसासी आदि कहानी संग्रहों का सृजन किया है। दिप्ति जी की कहानियों में चित्रित नारी अपने अस्तित्व की रक्ष के लिए एक शस्त्रविहिन योद्धा के रूप में दर्शित होती है, जिसमें वह पूर्णतः आहत है। नारी की इस पिडा की अनुभूति कडवे सच , शेष-अशेष, देह की सिता, ये कोई गीत है इन कहानियों में अभिव्यक्त हुई है। ' बिखराव कहानी में अविवाहिता, प्रिसिंपल मिस कुमुदिनी मेहता के एकाकीपन की कटु अनुभुति की संपूर्ण सच्चाई के साथ अभिव्यक्त हुई है। डा पुष्पालाल सिंह के शब्दो में -" दिप्ति की सभी कहानियों में एक असंतुष्ट दांपत्य है। जिसमें पानी में रहकर भी तडपने वाली मछली के समान नारी स्थिती में है। समस्तता भौतिक -सुविधाओं, ऐश्वर्य से परिपूर्ण जीवन जीनेवाले और ऊपर-ऊपर से पूर्ण संतुष्ट दिचाखनेवाले व्यक्ति, दंपति, भीतर से टूटे हूए है, यह दिप्ति की कहानियों को पढकर ही जाना जा सकता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बीसवीं सदी की कहानियों में नारी विषयक चित्रण अत्यंत यथार्थ दृष्टिकोण से प्रस्तुत हुआ है। जीवन में अनेक विषमताओं से मेलजोल करके जीनव जीना नारी की नियत बन गई है। आज नारी अपमान, निराशा, तिरस्कार की खाई में गिरने के बाद भी उससे उठकर फिनिक्स पंछी की तरह अपने अस्तित्व के लिए वह फिर से पूरे आत्मविश्वास के दृढ संकल्प के साथ आत्मनिर्भर होना चाहती है। स्त्री देवी या दासी नहीं है वह एक समाज का, परिवार का अभिन्न अंग है।

संदर्भ:

1. नई सदी की पहचान- श्रेष्ठ महिला कथाकार, संपा. ममता कलिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद सं.2002
2. नई कहानी: पुनर्विचार: मधुरेश

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

आठवें और नवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में चित्रित नारी-जीवन पर आर्थिक एवं सामाजिक वैषम्यों का प्रभाव

डॉ. सुमित्रा कोत्तापल्ली
हिंदी सहाय्यक प्राध्यापक, सर सी. आर. रेड्डी कॉलेज, एलुरु-2001
e-mail : drsumitra1526@gmail.com

आठवें और नवें दशकों में भारतीय समाज में नारी की स्थिति में बदलाव की मांग को लेकर कई आंदोलन हुए और हिन्दी उपन्यासकारों ने इन आंदोलनों का खूब समर्थन किया है। नारी की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में परिवर्तन लाना,पुरुष शासित समाज में शोषण से नारी को मुक्ति दिलाना,समाज की बुराइयों का सामना करने में नारी का साथ देना, कामकाजी नारी की समस्याओं के हल ढूँढना,सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में नारी की सक्रियता की प्रंशसा करना, देह-बोध से मुक्त होकर नारी के स्वतंत्र अस्तित्व को पहचानने में असमर्थ समाज में नारी को सुरक्षा देने की दिशा में अपेक्षित कदम उठाते हुए नारी के व्यक्तित्व की गरिमा को रेखांकित करना, परंपराओं की जकड़बंदी अशिक्षित नारी के प्रति सहानुभूति को प्रकट करना, नारी के शिक्षार्जन को महत्व देना और संबंध निर्वाह-क्षमता की कसौटी पर नारी के चरित्र की विशेषताओं पर प्रकाश डालना आदि मुद्दों को लेकर आठवें और नवें दशक में कई नारी-चेतना प्रधान हिन्दी उपन्यास लिखे गए हैं। इन उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों में वैविध्य परिलक्षित होता है। इन उपन्यासों में माता , पत्नी, बेटी, बहन, प्रेमिका, भाभी, ननद, साली, चाची, ताई आदि रूपों में नारी का चित्रण करते हुए हिन्दी उपन्यासकारों ने नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टि निर्मित करने की सफल चेष्टा की है।

आठवें और नवें दशक के नारी-चेतना प्रधान हिन्दी उपन्यासों में आधुनिक नारी की कई समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। इन दो दशकों में निष्कृति, 'अभिषेक', 'निलोफर', 'बात एक औरत की' **(कृष्णा अग्निहोत्री);** 'बेघर' **(ममता कालिया),** 'छिन्नमस्ता' , 'आओ पेपे घर चलें' , 'ताला बंदी' **(प्रभा खेतान),** 'चित्तकोबरा' , 'उसके हिस्से का धूप', 'अनित्य', 'मैं और मैं',**(मृदुला गर्ग) ,** 'पचपन खंबे लाला दिवारे', 'रूकोगी नहीं राधिका', 'शेषयात्रा', **(उषा प्रियंवदा),** 'स्वामी', 'आपका बंटी', **(मन्नू भंडारी)** 'एक जमीन अपनी', **(चित्रा मुदगल)** , 'ठीकरें की मंगनी', 'शाल्मली', 'जिन्दा मुहावरें', **(नासिरा शर्मा)** 'यामिनी कथा', 'अग्नी पंखी', 'दिक्षांत'**(सूर्यबाला)** 'ए लड़की', 'दिलो-दानिश', 'सुरजमुखी अंधेरे के', **(कृष्णा सोबती)** आदि उपन्यासों में प्रमुख रूप से नारी समस्याओं का यथार्थ चित्रण पाया जाता है। इन उपन्यासों में आर्थिक पराधीनता, बाल-विवाह, बांझपन, बेरोजगारी,तलाक,प्रेम-विवाह, बराबरी आदि समस्याओं पर विचार-विमर्श हुआ और अपने प्रतिनिधि नारी पात्रों के माध्यम से इन उपन्यासकारों में इन समस्याओं से जुड़े कई पक्षों पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है। पारिवरिक, सामाजिक,आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में इन उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ आलोच्य दशकों में चित्रित नारी-समाज की यथार्थ स्थिति को स्पष्टतः व्यक्त करते हैं।

पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए संघर्षरत नारी 'वेणु' का चित्रण कृष्णा अग्निहोत्री ने किया है। वह अपने पति की मृत्यु के बाद नौकरी करती है तो उस समय उसे साम-ससुर के कहने के अनुसार चलना पड़ता है। एकाध पुरुष के साथ बोलना भी उसके लिए मना है। शादी के बाद तो हर लड़की पराधीन बन जाती है। ससुराल में इतने कष्ट उठाने के बाद भी उसे मायके में ज्यादा दिन रखा नहीं जाता। वह कहती है **"मुझे मायके में रहने की आदत ही कहा रही, हर हाल में वहाँ से यहाँ लायी जो गयी हूँ और पापा मेरे कहने के बारे में भी मैं कब और क्या तय कर पायी हूँ।"**[1] उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यास 'रूकोगी नहीं राधिका' में नारी की स्वतंत्रता और अपने अस्तित्व की खोज करने वाली राधिका का चित्रण किया है। पराधीनता का विरोध कर अपने अस्तित्व तथा स्वतंत्रता की खोज में भटकती हुई राधिका का चित्रण उषा प्रियंवदा ने किया है। स्वाधीनता के बारे में वह पिताजी से कहती है – **"जो आप चाहते हैं वही हमेशा क्यों हो ? क्या मेरी इच्छा कुछ भी नहीं ? मैं आपकी बेटी हूँ, यह ठीक है, पर अब मैं बड़ी हो चुकी हूँ और अब मैं जो चाहूँगी वही करूँगी।"**[2] इन दो दशकों के उपन्यासों में आधुनिक नारी के जीवन पर आर्थिक एवं सामाजिक वैषम्यों का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। आधुनिक नारी को अपने अस्तित्व को प्रामाणित करने के लिए अनेक संघर्षपूर्ण स्थितियों का सामना करना पड़ता है।सामाजिक समस्या का सामना करने वाली **'अंकिता'** का चरित्र-चित्रण चित्रा मुदगल ने **'एक जमीन अपनी'** उपन्यास में प्रस्तुत किया है। 'अंकिता' एक तलाकशुदा नौकरीपेशा नारी है। समाज में औरत को अकेले ही जीवन-यापन करना कष्ट साध्य है। अंकिता कहती है **"शाम होती और वह आया होता तो हाथ जोड़-जोड़ कर मुसीबते रोने लगता, पाँव पकड़कर कसमें खाता और अपनी मांग पुरी न होने पर रौद्र रूप धर कर उसे देख लेने की धमकी देने से भी न हिचकिचाता है।"**[3] विवेच्य उपन्यासों में चित्रित नारी आर्थिक समस्या से भी त्रस्त है। आर्थिक अभाव के कारण नारी का जीवन कष्टमय बन गया है। कृष्णा अग्निहोत्री कृत **'अभिषेक'** उपन्यास में **'सपना'** आर्थिक समस्या से ग्रस्त है। वह अर्थ-प्राप्ति के लिए जिस दुमंजिली मिल में काम करती थी, वहाँ बायलर फटने से पुरी इमारत मलबा बन जाती है, इसी में सपना का पैर कट जाता है। तब वह चिंतित होकर कहती है **"वैसे ये तो नियति का प्रकोप है, सड़क पर भी कुछ हो जाता है, पर अब चिंता है पेट कैसे पालेगा।"**[4] इन दो दशकों के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में बिगड़ते दांपत्य संबंधों की समस्या पर प्रकाश डाला है। **'नासिरा शर्मा' ने 'ठीकरें की मँगनी'** उपन्यास की नायिका **'अमृता'** का दापत्य जीवन भी बिगड़ा हुआ है, जिसके के माध्यम पति के मन में जो प्रेम था वह सब घृणा में बदल जाता है। वह अकेली रहने

[1] कृष्णा अग्नीहोत्री, निलोफर-पृ.सं-107
[2] उषा प्रियंवदा, रूकोगी नहीं राधिका – पृ.सं-43
[3] चित्रा मुदगल, एक जमीन अपनी – पृं, सं-36
[4] कृष्णा अग्नीहोत्री, अभिषेक -पृ.सं-91

का निश्चय करती है तो समाज उसकी ओर चरित्रहीन दृष्टि से देखता है। इसी कारण वह आत्महत्या करने का प्रयास करती है, लेकिन मौत भी उन्हें स्वीकार नहीं करती है। वह अपनी व्यथा स्पष्ट करते हुए कहती है-**"दीदी मैं अलग रहकर जी नहीं सकती, समाज के लाँछन मुझे तोड़ देंगे और उनके साथ रहना भी असंभव-सा होता जा रहा है। कल रात वह दों बच्चों के ले गए। मैं क्या कर सकी ?।**[5] " आर्थिक वैषम्यों के व्यापक प्रभाव को आलोच्य उपन्यासों में चित्रित नारी-जीवन पर दर्शाया गया है।

विवेच्य उपन्यासों के अंतर्गत नारी के बेकारी का चित्रण पर्याप्त मात्रा में नहीं दिखायी देता। परिवार से ऊबकर अमीर घर की नारियाँ भी नौकरी करने लगती हैं। बेकारी प्रायः निम्न जाति की नारियाँ में ही दिखाई देती है और ऐसी हालत में स्त्री अपने को बेच देती है। आर्थिक प्राप्ति के लिए स्त्री को वेश्या बनाया जाता है या बेचा जाता है। परंतु ये घटनाएँ विवेच्य उपन्यासों में ज्यादा मात्रा में गरीब परिवार या निम्न-जाति के परवार में ही घटित हुयी दिखायी देती हैं। **'नीलोफर'** उपन्यास की जुग्गी आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण स्वयं को बेचना चाहती है। वह तो आदिवासी क्षेत्र है। इसमें बहुत से ऐसे पात्र हैं कि बेकारी से बचने के लिए अपने आपको बेच देते हैं। जुग्गी कहती है – "**रूपया मैंने तो कब से एक टकसाली रूपया देखा भी नहीं।"**[6] उसे पहनने को कपड़े नहीं मिलते और खाने को भी पेट भर नहीं मिलता पानी पीकर ही वह रहती है। मजबूरी के कारण वह अपना शरीर बेचना चाहती है परंतु उसे अपने पति से बहुत ही लगाव है, प्रेम है। बेकारी में नारी की स्थिति को बहुत ही खराब हो जाती है। विवेच्य उपन्यासों में चित्रित स्त्री पति के द्वारा तिरस्कृत है परंतु अपने नौकरी में वह सुखी रहती है। कुछ ऐसे भी उपन्यास हैं कि जिनमें स्त्री को बेकार होकर जिंदगी गुजारनी पड़ती है या तो परिस्थिति के कारण मजबूर होकर स्त्री स्वंय को बेच देती है या बेची जाती है। कहीं पर अनु जैसी नारियाँ भी हैं कि जिन्हे बेकारी में ही घूटनभरी जिंदगी जीनी पडती है।

विवेच्य उपन्यासों के अध्ययन के आधार पर एक बात स्पष्ट है कि आर्थिक अभाव के कारण हो या अपनी उलझन के कारण, नारी की जिंदगी घुटनभरी बन गयी है। **'छिन्नमस्ता'** उपन्यास में प्रिया का जिंदगी घुटनभरी बन गयी है। इसी अवस्था में वह कभी-कभी विद्रोह बनती है परंतु दाई माँ के परंपरावादी विचार के कारण उसे चुप रहना पड़ता है। घर में बड़े भाई उसे बेइज्जत करतें हैं। उसका कौमार्य भंग हो जाता है। माँ की दृष्टि से तो उपेक्षिता बेटी है। पिताजी उससे प्रेम करते है परंतु उनके मरने के बाद उसकी घुटन बढ़ती है। माँ पारिवारिक भेदभाव के कारण कनु अकेलापन महसूस करती है। वह कहती है - **"मैं चुपचाप घंटों उनके कमरे के दरवाजे पर खड़ी रहती। शायद अम्मा मुझे भीतर बुला लें। शायद..... हाँ। शायद अपनी रजाई में सुलालें।"**[7] परंतु उसे कभी भी माँ का प्रेम नहीं मिलता। इसी में उसकी घुटन बढ़ती है।

आर्थिक अभाव के कारण **'अनित्य'** उपन्यास में **'श्यामा'** की जिंदगी घुटनभरी है। इससे उसकी बीमारी बढ़ती है। इसी में वह कहती है- **"यह घर टूट रहा है। टूट चुका है। छत गिर चुकी है, फर्श फट कर-रहेगा। कोई नहीं बचेगा यहाँ, कोई नहीं तुम देख लेना अनित्य। यहाँ इतने जलजले आयेंगे कि टूट कर यह घर गिरेगा नहीं, भाप बनकर उड़ जायेगा।हस्ती मिट जायेगी इसकी।"**[8] अतः पूरा जीवन वह घुटन में रहती है। आर्थिक अभाव के कारण भी परिवार में नारी का जीवन घुठन भरा दिखायी देता है। यहाँ तक कि वह अपने प्रेम को भी ठुकराती और घर का बोझ सँभालने में व्यस्त रहती है। सबसे महत्वपूर्ण जो घुटन है वह है रखैल नारी की। पति बिना रहते हुए भी वह समाज से तिरस्कृत बनती है। जाति-बिरादरी में इन्हें आने नहीं दिया जाता। जिसके कारण वह विद्रोह भी नहीं करती और अन्याय सहते-सहते घुटन में जीती रहती है। विवेच्य उपन्यासों के अध्ययन के आधार पर नारी की घुटनभरा जीवन और विद्रोह का जीवन देखने से स्पष्ट होता है कि ज्यादातर नारी पारिवारिक जीवन में घुटती दिखायी देती है। अति अन्याय-अत्याचार सहने के बाद कभी-कभी वह विद्रोह भी बनती है।

---

[5] नासिरा शर्मा – ठीकरे की मंगनी – पृ सं-25

[6] कृष्णा अग्निहोत्री – नीलोफर – पृ.सं - 59

[7] प्रभा खेतान –छिन्नमस्ता – पृ.सं - 35

[8] मृदुला गर्ग – अनित्या – पृ. सं. 224

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

आधुनिक मराठी साहित्यातील धनगर समाजातील अंधश्रध्दा

डॉ.संदीप वाकडे
एस.एम.जोशी कॉलेज हडपसर,पुणे.

प्रास्ताविक:

अंधश्रद्धेचा पगडा आजही समाजाच्या सर्व स्तरांमध्ये आपल्याला असलेला दिसतो. अंधश्रद्धा ही भीतीपोटी निर्माण होते. शिक्षणाच्या अभावामुळे, अज्ञानामुळे आजही अंधश्रद्धेचे वर्चस्व आपल्याला पहावयास मिळते. आपण केलेल्या पापाचा पश्चाताप होऊ द्यायचा नसेल तर अंधश्रद्धेला जवळ करून पुण्य पदरात पाडत असल्याचे समाधान अनेकजण करून घेतात. यामध्ये बुद्धिजीवी म्हणवून घेणारेही बळी पडताना दिसतात. तर मग दऱ्याखोऱ्यामध्ये, डोंगर-माळरानांवर भटकणाऱ्या मेंढपाळांच्या जीवनात तर अंधश्रद्धा ही सावलीप्रमाणे चिकटलेली आहे. पावलोपावली नवस करणाऱ्या या धनगर समाजामध्ये अनेक देव-देवता असल्याचे नजरेस पडते. स्वतःची मेंढराची खांडच्या-खांड असल्याने या खांडातील केलेल्या नवसाला फेडण्यासाठी दोन-तीन मेंढरं देवाच्या नावाने बळी दिल्याने त्याला काहीच वाटत नाही. यामुळे होणारे नुकसानही सहजासहजी भरुन येणारे नसते. पण याकडे तो गांभीर्याने पाहत नाही. त्यामुळे तो स्वतः बरोबर कुटुंबाचीही आर्थिक ओढाताण करून घेतो. पोटच्या लेकराप्रमाणे जपणाऱ्या मेंढीला आपली 'लक्ष्मी' समजणारा हा मेंढका अंधश्रध्देपायी मेंढरावरून सुरी फिरवताना देखील मागेपुढे बघत नाही. इतका अंधश्रद्धेचा प्रभाव या मेंढपाळ समाजावर असल्याचा आपल्याला दिसतो. बिरोबा, खंडोबा या धनगर समाजाच्या प्रमुख देवता असून अशा कितीतरी त्यांच्या देव-देवता रानोमाळ, दऱ्याखोऱ्यांतून पसरलेल्या आहेत. वर्षातील काही महिने भटकंतीवर असताना या देवदेवतांचा मानपान या समाजाकडुन न चुकता होताना दिसतो. अशा या अंधश्रद्धेचे धनगर समाजामध्ये असलेले स्थान आपण 'आधुनिक मराठी साहित्यातील धनगर समाजातील अंधश्रध्दा' या लेखामध्ये पाहणार आहोत.

अ)लक्ष्मीवरच सुरा:

धनगर समाजाचा प्रमुख व्यवसाय हा मेंढीपालनाचा आहे. या मेंढी पालनासाठी तो दिवस रात्र दक्ष असतो. दुष्काळी भागात मेंढी पालनाचा व्यवसाय करणे म्हणजे तारेवरची कसरत असते. कारण अशा दुष्काळी भागामध्ये पर्जन्यमान कमी असल्याकारणाने या भागातील मेंढके ही आपली मेंढरे जगविण्यासाठी बाहेरगावच्या कुरणावर अवलंबून राहतात. त्यामुळे त्याला ही कुरणे मिळवण्यासाठी संघर्ष करावा लागतो. ती सहजासहजी मिळत नाहीत. मूळ गावापासून त्यांना शेकडो कोस दऱ्या-खोऱ्यातून, डोंगर-माळातून मेंढरे जगविण्यासाठी भटकंती करावी लागते. या भटकंतीत त्याला आपल्या मेंढरांपायी स्वाभिमानशून्य जीवनही जगावे लागते. भटकंती करत असताना त्याला परमुलखातील मोठ-मोठ्या बागायतदारांचीही ओळख करुन घ्यावी लागते. भटकंतीवर असताना मेंढरे शेतातील पिकांमध्ये जातात तर कुणी मेंढके मेंढरांसाठी एखाद्याच्या बांधावरील बाभळ सवळतात. यावेळी त्याला त्या शेतमालकाच्या शिव्यांचाही प्रसाद मिळतो. तर प्रसंगी हाणमारही होते. पण तो आपल्या मेंढ्यांसाठी त्या शेतमालकांना दादा, काका, मामा, भाऊ म्हणून मुकाट्याने सहन करतो. अशावेळी सहन केल्याशिवाय त्याला दुसरे गत्यंतरच नसते. याचे कारण तो आपली 'लक्ष्मी' म्हणजेच मेंढरे जगविण्यासाठी परमुलखावर अवलंबून असतो. त्याला आपली मेंढरे जगविण्याचे पडलेले असते. एकूणच तो या भटकंतीवर स्वाभिमानशून्य जीवन जगत असतो. एवढेच नव्हे तर दिवसभर भटकंती करुन दमल्यानंतरही त्याला विश्रांती घेता येत नाही. त्याला तळावर मेंढरं एकाजागी वागरमध्ये असतानाही दक्ष राहावे लागते. याचे कारण रात्री- अपरात्री लांडग्यांसारखी श्वापदे त्यांना झोपू देत नाहीत. इतकेच काय तर काही विकृत प्रवृत्तीची माणसेही त्यांच्या मेंढ्या चोरून नेण्यासाठी रात्रीची दबा धरून बसलेली असतात. ही देखील लांडग्यांप्रमाणे श्वापदेच आहेत. फरक इतकाच की ही दोन पायाची श्वापदे होत. मग असे भटकंतीवर मेंढरांना पोटच्या लेकराप्रमाणे जपणारा हा मेंढका मात्र वेगवेगळे नवस फेडण्यासाठी विविध देवदेवतांच्या जत्रांमधून याच मेंढरांवर, आपल्या सोन्यासारख्या लक्ष्मीवर सुरा फिरवताना दिसतो. यासंदर्भात प्रा.डॉ. सुभाषकुमार बोबडे 'डोंगरापल्याड : स्वरूप आणि समीक्षा' या ग्रंथातून येणाऱ्या या मेंढ्यांच्या हत्येविषयी म्हणतात की, "हा समाज एका बाजूला मेंढीला 'मेंढी आय' म्हणतो आणि दुसऱ्या बाजूला बगाडरुपी गाड्याच्या चाकाखाली त्याच मेंढीआयला बळी देतो. एका बाजूला देवाकड स्वतःबरोबर मिंढीआईला देखील सुख मागतो आणि दुसऱ्या बाजूला काळुआई, मांढरदेवीसमोर हाच समाज मेंढरांच्या रक्ताचे पाट वाहीपर्यंत मेंढरांची हत्या करतो."[१] अशाप्रकारे हा धनगर समाज नवस फेडण्यासाठी आपापल्या कुलदैवतांच्या जत्रांमध्ये आपल्या चरितार्थाचे साधन असलेल्या मेंढरांवरच सुरा फिरवताना दिसतो. ही एक अंधश्रद्धेमुळे निर्माण झालेली धनगर समाजातील शोकांतिकाच म्हणावी लागेल.

ब)विशिष्ट रीतिरिवाजातून डोकावणारी अंधश्रद्धा:

धनगर समाजामध्ये लग्नविधीवेळी कुणाला यीर काढावा लागतो, तर कुणाला जळ काढावा लागतो, तर कुणाला लिंब नेसावा लागतो. असाच लग्नरितीरीवाजावेळचा आटकूर मेंढी (गाभण) कापून तिचे बाळ नवरा-नवरीच्या बोहल्याखाली पुरले जाते व त्या मेंढीचे मटण शिजवून खाल्ले जाते. या प्रसंगाचे वर्णन करताना डॉ. शिवाजी ठोंबरे आपल्या 'डोंगरापल्याड' या कादंबरीतून करतात की, "आटकूर मेंढी म्हणजे गाभण असलेली मेंढी आणल्यानंतर सदू-मालूच्या नावानं चांगभलं.. असं म्हणत तायाप्पानं तिच्यावर भंडारा टाकला आणि नवरा-नवरी त्या मिंढीजवळ आली. दोघांनी मिळून तिला पाणी पाजले आणि चार पाच जणांनी तिला घट्ट धरून तिचं प्वाट फाडलं. त्यातून तीन महिन्यांच अर्धवट कोकरु बाहेर काढलं. त्यावर लगीच पांढरं कापड गुंडाळलं. पुन्हा एकदा नवरा-नवरीन त्यावर भंडारा उधळला. दुईबाजूच्या भावकीतल्या माणसांनी त्ये कुकरू भोवल्याच्या खाली पुरलं आणि मगच नवरानवरी बोहल्यावर बसली." [२] अशाप्रकारे कितीतरी प्रसंगी या धनगर समाजामध्ये मेंढीचा जीव घेतला जातो. याचे कारण विविध प्रसंगी समाजात असलेली अंधश्रद्धा हे आहे. अंधश्रद्धेमध्ये हा समाज पुरता गुरफटलेला दिसतो. आज एकविसाव्या शतकात देखील याचे प्रमाण फारसे

कमी झाल्याचे दिसत नाही. विविध नवसाप्रसंगी मेंढ्यांची जीवघेणी प्रथा या समाजामध्ये आजही आढळून येते, ही बाब समाजहिताच्या दृष्टीने गंभीर अशीच म्हणावी लागेल.

क)धनगर समाजामध्ये असलेले भंडाऱ्याचे महत्त्व:

'बिरोबाच्या नावानं चांगभलं', 'येळकोट येळकोट जय मल्हार', 'सदानंदाचा येळकोट', 'खंडोबाच्या नावानं चांगभलं', असा देवदेवतांचा जयघोषाबरोबरच भंडाऱ्यांची मोठ्या प्रमाणामध्ये उधळण होत असते. अवघ्या महाराष्ट्राचे कुलदैवत असलेल्या खंडोबाच्या जेजुरी गडावरही संपूर्ण भंडाऱ्याची उधळण होत असते. म्हणूनच या तीर्थक्षेत्राला 'देवा तुझी सोन्याची जेजुरी' असे म्हटले जाते. खंडोबा, बिरोबा या धनगर जमातीतील प्रमुख देवता होय. त्यामुळे भंडाऱ्याला या जमातीत फार महत्त्व आहे. लहानांपासून मोठ्यांपर्यंत कपाळ भरून भंडारा ते लावताना दिसतात. तसेच आपली लक्ष्मी समजल्या जाणाऱ्या मेंढ्यांनाही ते भंडारा लावतात. कुटुंबातील कोणी आजारी पडले असेल तर त्या व्यक्तीलाही भंडारा लावल्याने गुण येतो, ती बरी होते. अशी त्यांची समजूत आहे.एकूणच 'भंडारा'हे या समाजातील स्व-संरक्षणाचे, आरोग्याचे, मानसिक समाधानाचे, श्रद्धेचे 'प्रतिक' आहे.असे म्हणता येईल.

ड)धनगर समाजातील जत्रेला असलेले महत्त्व:

धनगर समाजाला मेंढरांमागच्या भटकंतीवेळी दऱ्या-खोऱ्यातून, डोंगर-माळातून वाट तुडवताना अनेक नैसर्गिक संकटांनाही तोंड द्यावे लागते. याव्यतिरिक्त इतरही अनेक संकटे त्यांच्यासमोर 'आ'वासून उभी राहिलेली असतात. अशावेळी तो आपले या सर्व संकटातून संरक्षण व्हावे, म्हणून श्रद्धाळू मनाने अशा या डोंगर-माळ, दऱ्याखोऱ्यामध्ये आपल्या कुलदैवतांचा मान राखण्यासाठी तेथील दगडांच्या माध्यमातून देव निर्माण करून, त्यालाच देव मानून आपले दुःख व्यक्त करतो व त्याचा कोप होऊ नये म्हणून त्याची दरवर्षी जत्रा, पूजा, नवस, उपास करायला लागतो. यावेळी तो नवस फेडण्यासाठी आपल्या पाळीव बकऱ्यांचा नैवद्य त्याला दाखवतो व कोपापासून सुटका करून घेतो. यातून दरवर्षी त्या देवाची जत्रा चालू होते व जत्रा चालू झाली की नवस फेडण्यासाठी, कोप टाळण्याण्यासाठी आपल्या सोन्यासारख्या बकऱ्यांचा फडशा पाडतो. यातूनच पिढ्यानपिढ्या त्या देवाचा उद्धार होत जातो. आणि पुढे या निर्माण केलेल्या देवदेवता त्याच्या पिढ्यानपिढ्याना चिकटून बसतात. धनंजय धुरगुडे आपल्या 'माझा धनगरवाडा' या आत्मकथनातून वडिलांनी केलेल्या नवसाच्या प्रसंगाविषयी सांगता की, वडिलांनी मुलांना शिकून नोकरी लागावी यासाठी भटकंतीवर असताना एकसरच्या भैरीनाथाला 'पाच बकऱ्यांची दावण कापतो' असा नवस केला होता. पण पुढे मुले शिकविण्यापायी वडिलांचा धनगरवाडा मोडकळीस येतो. यावेळी एक मेंढरूही त्यांच्याजवळ नसते. पण धनगरवाडा मोडताना ही नवसाची पाच बकरी मात्र दुसऱ्याच्या खंडामध्ये सोडून दिलेली असतात. पुढे मुलांची शिक्षण पूर्ण होत असताना या दिवसांमध्ये रोजंदारीवर सर्व कुटुंब काम करत असते. लेखकही शिक्षणासाठी चार पैसे जवळ असावेत म्हणून कष्ट करत असतो. पण त्याला जेव्हा आईकडून वडिलांच्या या नवसाबद्दल समजते. तेव्हा तो हवालदिल होतो. तो म्हणतो "आईने हे नवसाच सांगितलं तेव्हा माझ्या अंगावर तर काटाच उभा राहिला. काय ही दादाची अचाट करणी! एवढी मोठी झालेली पाच बकरी जर लोणंदाच्या बाजारात नेऊन विकली असती तर आमच्या तिघांच्या शाळेसाठी लागणारा एक-दोन वर्षांचा खर्च नक्की भागला असता."[3] अशी खंत ते व्यक्त करतात. हे केवळ आई-वडिलांच्या अज्ञानापायी, चिकटून बसलेल्या अंधश्रद्धेपायी लेखकाला या संघर्षाला सामोरे जावे लागते. उलट वडिलांना समजवायला गेलेला लेखकाचा मोठा भाऊ शंकरला वडिलांकडून मिळालेल्या उत्तरातून अंधश्रध्दा ही किती नसानसात भिनलेली आहे हे समजते.ते म्हणतात की, "आम्हाला शिकवायच्या भानगडीत पडू नका! साळा शिकून आलं मोठं बाबाशेट आम्हाला शिकवायला. जसं काय आम्हाला काय कळतच न्हाय? आन ह्यांनाच काय ते कळतं. आरं तुम्हाला नसलं करायचं तर करू नका की, पर आमच्या ह्या आसल्या देवा-धरमाच्या कामात कशाला आडव पडताय?"[४] अशा पद्धतीने ते आपल्या या नवस फेडण्याच्या कृतीवर ठाम राहतात. एकूणच आईवडिलांच्या या भोळ्या समजुतीपुढे त्या लेखकाला फक्त आणि फक्त शांतपणे पाहण्याशिवाय कोणतेही गत्यंतर राहत नाही.

त्याचप्रमाणे 'डोंगरापल्याड' या कादंबरीमधून एका प्रसंगी धावडी या गावच्या जत्रेविषयी लेखक तेथील अघोरी प्रथेचे वर्णन करताना म्हणतात की, "आमच्या धावडीची जत्रा तीन सालातन एकदाच भरती, आण ईशेष म्हंजी, हितल्या देवाला बालिंगा बळी द्यावा लागतो. बळी द्यायचं काम काय दुसऱ्यावाणी सलपं नसतं हां? आवं, सुरीच्या एकाच ठोक्यात बालिंग्याच मुंडकं सोडवावं लागतं. हातपाय खुडून बालिंगा जवा परान सुडतू, तवा लगीच त्ये बालंग्याच धड उचलून तथच जाळ केलेल्या होमात टाकतात. त्याच समद आंग होरपळून जाहल्यावर मग होमातन त्ये बाहीर काढत्यात. बालंग्याच्या अंगावरल जळकं क्यास चुळून मुळून काढून टाकल्यावर मग त्याचा निवद, नारळ देवाला दाखवत्यात. परत समदी मिळून ह्योच देवाचा परसाद वाटून घेतात आन आपल्या धंद्यातल्या जितराबाची देवाम्होर गा-हाण गात शितळाय मागत्यात."[५] या वरील सर्व जत्रेच्या प्रसंगांतून हा समाज अंधश्रद्धेमुळे किती पोखरलेला आहे, हे समजते.

इ)धनगर समाजातील 'स्त्री' जीवनावर असलेला अंधश्रद्धेचा पगडा:

भटकंतीवर असणाऱ्या मेंढक्याची 'स्त्री' ही त्याच्या पाठीमागे बि-हाडावरती थांबून सर्व काही ऊन, वारा, पाऊस यांच्याशी दोन हात करून संसार सांभाळत असते. त्याची ही 'स्त्री' अंधश्रद्धाळू असते. ती देव-देवतांच्या आहारी जाऊन आलेला दिवस पुढे ढकलत असते. 'मेंढवाडा' या आत्मकथनात बिभीषण सातपुते यांनी आपली आई कोणत्याही कारणावरून अगदी छोट्यातल्या छोट्या कारणावरून देखील कशी विविध देवदेवताना कशी नवस करते. या नवसावरून, नवस फेडण्यावरून त्यांच्या घरातील वातावरण कसे विद्रूप होताना दिसते. याविषयी लेखक म्हणतो की, "आई नवसा बिगर जगूच शकत नव्हती. नवस बोलल्याबिगर आईचा यकबी दिवस जात नव्हता. सादी मला शिंक आली तरी आई यकांद्या देवाला लगीच नवस बोलायची, आईला नवस बोलायचा कवाच कंटाळा येत नव्हता. तसंच नवस फेडायला बी आई ईसरत नव्हती. आई कवा गपचिप नवस फेडायची. नवसाला खर्च लई लागत आसल तर नवस फेडायचाच म्हणून आई अण्णाला सांगायची. आईन बोलल्यालं नवस आण्णा कवाच फेडीत नव्हता. मग आई अण्णासंग भांडायची. तरीबी अण्णा नवस फेडायला राजी व्हायचा न्हाई. मग आई घरात सगळ्यासंग भांडण करायची. कवा कवा दुसऱ्याकडन उसन पैसं घेऊन आई नवस फेडायची. नवस फेडल्यावर आई आण्णाला नवसासाठी कुणाकडण उसन पैसं घेतलं म्हणून सांगायची. आन

त्ये पैसं आण्णाला मागायची. मग आण्णा झक मारीत लोकांच पैसं द्यायचा. हे नेहमी चाललेलं.” [६] अशा पद्धतीने लेखकाची आई उठता-बसता, पावलोपावली नवस करताना नजरेस पडते. एकूणचयातून स्री जीवनावर असलेला अंधश्रद्धेचा पगडा आपल्याला समजतो.

समारोप:

मेंढी जगविण्यासाठी हरत-हेची धडपड करणा-या,त्यांच्यामागे वणवण फिरणा-या या मेंढपाळाच्या आयुष्यामध्ये अंधश्रद्धेला फार महत्त्व असल्याचे दिसते. याचे कारण त्यांना परमुलुखामध्ये आपला सर्व गोतावळा कुटंबकबिला, मेंढरे,कोकरे,घोडे,कुत्री,कोंबड्या,या सर्वांचे कोणत्याही अस्मानी-सुलतानी संकटापासून संरक्षण व्हावे,यासाठी देवदेवतांना जवळ करून त्यांची जत्रा करतो.यातूनच तो अंधश्रद्धेकडे नकळत ओढला जातो व संपूर्ण आयुष्य त्यातच गुरफटून जातो.

निष्कर्ष:

१) धनगर समाजातील पुरुष व स्रिया या अंधश्रद्धेशिवाय जगूच शकत नाहीत, इतका त्यांच्यावर अंधश्रद्धेचा प्रभाव असल्याचे दिसते.

२) धनगर समाजातील शिक्षित वर्गाकडून या पिढ्यानपिढ्या चालत आलेल्या अंधश्रद्धेला फाटा मिळताना दिसतो. ही समाजहिताच्या दृष्टीने चांगली बाब म्हणावी लागेल.

३) धनगर समाजामध्ये अनेक देव-देवता असून, त्यांना या समाजामध्ये प्रमुख स्थान असल्याचे दिसते.

संदर्भसूची:

१. घोंगडे बाळासाहेब (संपा.), “डोंगरापल्याड : स्वरूप आणि समीक्षा’’ अक्षर वाडमय प्रकाशन, पुणे, प्रथमावृत्ती ६ डिसेंबर २०१४, पृ.३५.

२. ठोंबरे शिवाजीराव, “डोंगरापल्याड”, अनुबंध प्रकाशन, पुणे, प्रथमावृत्ती २००८, पृ. ३८

3. धुरगुडे धनंजय, “माझा धनगरवाडा”,द्वितीय आवृत्ती, नोव्हें.,२०१८,पृ.३२९.

४. तत्रैव, पृ.३२९.

५. ठोंबरे शिवाजीराव, “डोंगरापल्याड”, अनुबंध प्रकाशन, पुणे, प्रथमावृत्ती २००८, पृ. २०७.

६. सातपुते बिभीषण, “मेंढवाडा”, पुष्प प्रकाशन , पुणे,प्रथमावृत्ती, २ एप्रिल २००३,पृ. ९३.

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जयंत नारळीकर यांच्या 'प्रेषित' व 'अंतराळातील स्फोट' या कादंब-यांतील कल्पित

प्रविणसिंह बहादूरसिंह शिलेदार
सहा. प्राध्यापक, मराठी विभाग, देवचंद कॉलेज, अर्जुननगर

उद्दिष्टे:

१. विज्ञानसाहित्य म्हणजे काय हे समजावून घेणे.
२. आज प्रत्यक्षात अनुभवसृष्टीत अस्तित्वात नसते किंवा विज्ञानाच्या ज्ञानसृष्टीत सिध्द झालेले नसते असे कल्पित तपासणे.
३. विज्ञान कादंबरीतील विज्ञान-तंत्रज्ञानाचा मानवावर होणारा परिणाम तपासणे.

संशोधनाच्या पध्दती:

प्रस्तुत शोधनिबंधासाठी 'जागतिकिकरण आणि विज्ञान कादंबरी' याचा मागोवा घेत असताना वैज्ञानिक संशोधन पध्दती, समाजशास्त्रीय संशोधन पध्दती व मानसशास्त्रीय संशोधन पध्दती यांचा आधार घेतला आहे. तसेच कादंबरीमध्ये मांडलेल्या वैज्ञानिक कल्पिताचा विचार करण्यासाठी तौलनिक संशोधन पध्दतीचा अवलंब करण्यात आला आहे.

प्रास्ताविक:

विज्ञानसाहित्यात वर्तमानकाळाशिवाय भविष्यातील मानवी जीवनाचे चित्रण येते. आज वास्तवात असणा-या विज्ञानाच्या आधारावर भविष्यात विज्ञान-तंत्रज्ञानात कोणती प्रगती होणार आहे. त्यावेळचे मानवी जीवन कसे असणार आहे. याचे कल्पित विज्ञान साहित्यिक रंगवताना दिसतात. थोडक्यात आज सिध्द विज्ञानाच्या पायावर भविष्यातील विज्ञान कोणत्या अवस्थेत जाणार आहे आणि त्या विज्ञानाचा त्या काळातील मानवावर कोणता परिणाम होणार आहे याचे चित्रण ज्या साहित्यात केले जाते त्याला विज्ञान साहित्य असे म्हणतात.

जयंत नारळीकर यांचा जन्म १९ जुलै १९७८ साली झाला. नारळीकर हे भारताचे प्रसिध्द शास्त्रज्ञ आहेत. मुळात वैज्ञानिक असणारे जयंत नारळीकर यांनी मराठी विज्ञान साहित्याला खरी प्रतिष्ठा प्राप्त करून दिली. एक महान शास्त्रज्ञ हा वाङ् मय प्रकार हाताळतो हे पाहून वाचक समीक्षक या वाङ् मय प्रकाराकडे गांभिर्याने पाहू लागले. त्यांची यक्षाची देणगी (१९८९), अंतराळातील भस्मासूर (१९८५), टाईम मशीनची किमया (१९९४) इत्यादी विज्ञान कथासंग्रह प्रसिध्द झाले आहेत तर प्रेषित (१९८३), वामन परत न आला (१९८६), अंतराळातील स्फोट (१९९२), व्हायरस (१९९६), अभयारण्य (२००२) इत्यादी विज्ञान कादंब-यांचे लेखन केले आहे. त्यांच्या 'प्रेषित' व 'अंतराळातील स्फोट' या कादंब-यांतील कल्पित प्रतुत शोधप्रबंधात मांडला आहे.

प्रेषित:

प्रेषित या कादंबरीमध्ये सायक्लॉप्स या महाकाय दुर्बिणीची कल्पना मांडलेली आहे. ही दुर्बिण अमेरिकेमध्ये बांधली होती. त्याचा उद्देश शास्त्रज्ञाना आपल्या अंतराळात असणा-या अनेक ग्रहांचे संशोधन करणे आणि कोणत्या ग्रहावर जीवसृष्टी आहे का ? हे पाहणे हा होता. सायक्लॉप्स हा एक सहस्त्र रेडिओ दुर्बिणींचा बनलेला होता. त्याचा प्रत्येक व्यास शंभर मीटर होता. लेखकाने या दुर्बिणीच्या अजस्त्र रूपाचे वर्णन केले आहे. एखादे संशोधन करण्यासाठी किती मोठ्या प्रयोगाची आवश्यकता असते हे वरील कल्पितातून लक्षात येते.

सायक्लॉप्सवर काम करणा-या जॉन प्रिंगलने सायक्लॉप्सची दिशा अरिस्टार्कस या ता-याकडे वळवली आणि त्यांच्या अंदाजाप्रमाने त्या ता-याच्या कोणत्यातरी एखाद्या ग्रहाकडून त्याला संदेश येऊ लागले. अरिस्टार्कस या ता-याच्या ग्रहाकडून गणित, भौतिक, रसायन, जीवशास्त्र अशा वेगवेगळ्या पध्दतीचे संदेश येत होते. जॉनने या येणा-या संदेशाला डॉट व डॅश वापरून आपला संदेश तयार करून उत्तर पाटविले. नारळीकरांनी परग्रहावरील लोक वेगवेगळ्या भाषेत संदेश पाठवत असतात हे कल्पित मांडले आहे. याचे कारण आपण ज्या ग्रहावर संदेश पाठवत आहोत त्या ग्रहावरील लोकांना त्यातील एक तरी भाषा नक्की अवगत असणार हा अंदाज व्यक्त केला आहे.

कथानकाच्या दुसरा भागात एका बेवारस अर्भकाचा सांभाळ सुधाकर आणि मालिनी करतात ते त्याचे नाव आलोक असे ठेवतात. त्याला वेळोवेळी डॉक्टर साळुंखें त्याला दाखवत असतात. डॉक्टर साळुंखेंना आलोक हा इतर मुलांपेक्षा खूप वेगळा आणि प्रचंड बुध्दीमत्तेचा मुलगा आहे याची जाणीव होते. आलोक ऑनलाईन शिक्षण घेत असतो. लेखकाने आधुनिक शिक्षण पध्दतीचा वापर या कादंबरीत केला आहे. विद्यार्थी वर्गात न शिकता आपल्या घरी बसून टी. व्ही. समोर शिकत होते ही कल्पना मांडली आहे. जगावर कोरोना महामारीचे संकट आले तेव्हा सर्व शिक्षण ऑनलाईन पध्दतीनेच सुरू होते. लेखकाने मांडलेली कल्पना वास्तवात आली आहे असे म्हणायला हरकत नाही. आलोकची बुध्दीमत्ता थक्क करणारी होती. आलोक wts च्या परीक्षेत जगात प्रथम आला. त्याचे बक्षीस म्हणून चंद्राच्या सफरीवर त्याला जायला मिळाले. लेखकाने वरील कल्पितातून आधुनिक शिक्षण पद्धतीत सुरूवातीपासूनच विद्याथ्र्यांना वैज्ञानिक शिक्षण दिले जाते हे यातून मांडले आहे.

नारळीकरांनी अंतराळ स्थानकांची कल्पना या कादंबरीत मांडलेली आहे. आलोकच्या चंद्रप्रवासात अशा चार अंतराळ स्थानकांचा उल्लेख येतो. तसेच पृथ्वी पासून त्यांच्याकडे स्पेस शटलची ये-जा चालू होती. कथानकातील कोणत्याही सामान्य मानसाला अंतराळात झेप घेणे सहज शक्य होते. तसेच नारळीकरांनी एअरकारची कल्पनाही मांडलेली आहे. एअरकार म्हणजे विमान आणि हेलिकॉप्टर या दोन्हीचे मिश्रण असलेले वाहण होते. हेलिकॉप्टर सारखे ते सरळ वर जाई आणि ठराविक उंचीवर गेल्यावर जेट विमानाप्रमाणे प्रचंड वेगमर्यादा गाठून प्रवास करू शके. जयंत नारळीकरांनी मांडलेल्या एअर कार व स्पेस स्टेशन या दोन्ही कल्पना आज वास्तवात उतरलेल्या आहेत. अमेरिका, रशिया, चीनसारखे देश आज स्पेस स्टेशन बांधण्याच्या तयारीत आहेत. तर कार बनवणा-या नामांकीत कंपन्या एअर कार बनवलेल्या आहेत.

आलोक एका कार्यक्रमात बेशुध्द पडला तेव्हा तो कहीतरी बडबडत होता हे दिसले. सॅड्राने त्याच्या ओठांसमोर कान नेले पण त्याची भाषा तिला कळत नव्हती. तो तारू, मारू, पंचक व टालमान अशी शब्द उच्यारत होता. तिने हा आपला अनुभव चेंगला सांगितले. त्या दोघांनी मिळून आलोकला न कळत डॉ. साळुंखेशी संपर्क साधला. डॉ. साळुंखेनी विचार करून चेंग आणि सॅड्राला आलोकवर प्रयोग करण्यास सांगितले.

चेंग आणि सॅड्रांने आलोकवर केलेल्या प्रयोगाची माहिती कंप्युटरवरून डॉ. साळुंखेना पाटवली. त्याचा अभ्यास करून डॉ. साळुंखे या निर्नयाप्रत आले की, आलोक हा परग्रहवासी आहे. नारळीकरांनी एक अद्वितीय कल्पना या कादंबरीत मांडली आहे. ती कल्पना आहे मानवी मेंदूत माहिती भरणे. आपण कंप्यूटरमध्ये माहिती भरतो तशी मानवी मेंदूतपण माहिती भरता यायला हवी ते तंत्रज्ञान आपल्याला अजून अवगत नाही, पण आलोकच्या लोकांना आहे असे साळुंखेंना वाटते. आलोक सोबत काहीतरी संदेश देऊन त्याला इकडे पाठवला आहे. जे काम त्या दुदैवी अंतराळयानातल्या लोकांनी पृथ्वीवर येऊन करायच होतं ते आता एकट्या आलोकवर सोपवण्यात आलं आहे. काय असेल तो संदेश ? तो आठवल्यावर आलोक कसा वागेल ? तो आपल्याकडे म्हणजेच पृथ्वीवासियांकडे मित्रत्वाच्या भावनेने पाहिल का शत्रुत्वाच्या ? हे सर्व प्रश्न आपल्याला पुढे सोडवायचे आहेत. (पृ. ८३) असा युक्तीवाद डॉ. साळुंखें आलोकच्या मेंदूवर केलेल्या प्रयोगावरून करतात. आज मेंदूवर अनेक प्रयोग सुरू आहेत. जयंत नारळीकरांनी मांडलेले कल्पित खूप दूर राहिलेले नाही. मेंदूमध्ये मांहिती भरण्याचे तंत्रज्ञान मानवाला लवकरच अवगत होईल असे वाटते. हेच डॉ. अनिल सपकाळ वेगळ्या शब्दांत व्यक्त करतात; ते म्हणतात, " कादंबरीच्या विकसनामध्ये नैसर्गिकता येत असल्यामुळे ही कादंबरी रहस्यकथा, गूढकथा होत नाही. ती विज्ञानाच्या संकेतांचे परिशीलन करणारी सांस्कृतिकता अभिव्यक्त करते.'' (मराठी विज्ञान कादंबरी संपा. प्राचार्य डॉ. म. सु. पगारे, पृ. १२५)

आलोकला स्पेस अॅकॅडमीत सुवर्ण पदक मिळाले. त्याचा फायदा घेऊन आलोक सायक्लॉप्सवर प्रयोग करण्यासाठी राष्ट्राध्यक्षांना वशिला लावून सायक्लॉप्सवर केवळ साठ दिवसांसाठी प्रयोग करण्याची परवाणगी मिळवितो. आतापर्यंत नारळीकरांनी सर्व काही सस्पेन्स ठेवले होते. आलोक जेव्हा सायक्लॉप्सवर बसतो आणि आपल्या ग्रहाला संदेश पाठवू लागतो तेव्हा तो पृथ्वीवासी नसून परग्रहावरील मानव आहे हे सिध्द होते. तो सायक्लॉप्सवर येण्याचे कारणच असे होते की त्याला आपल्या ग्रहाला संदेश पाठवायचे होते. लेखकाने याचा उलघडा कथानकाच्या शेवटी केला आहे.

आलोक हा पंचक ग्रहावरील होता. या ग्रहाचा तारा अरिस्टार्कस फुगत चालला होता. तो तारा थोड्याच वर्षांमध्ये पंचकला गिळेल म्हणून पंचकने आपले संदेश सर्वत्र पाटविले होते. पृथ्वीवरून त्या रात्री त्यांना संदेश मिळाला. त्याची पाहणी करणा-यांसाठी एक टीम पृथ्वीवर पाटविली होती पण मीटिओराइट, अॅस्टेरॉइड या पैकी कशालातरी थडकून त्या यानाला इजा झाली आणि यानातील ऑक्सीजनची टाकी फुटली. त्यामुळे यान सुखरूप पृथ्वीवर पाहचू शकणार नाही. म्हणून एका कॅप्सूलमध्ये नुक्ताच जन्मलेले बाळ म्हणजे आलोकला ठेवून त्याच्या मेंदूत सर्व माहिती भरून एका फुग्याच्या सहाय्याने खाली सोडले. आलोक परग्रहवासी आहे हे कोणाला माहीत नव्हते, पण डॉ. साळुंखेंनी त्याचा छडा लावला. रत्नाकर मंचरकर म्हणतात, "प्रेषित मधील स्थल व काल यांचा अवकाश पृथ्वी व पंचक या दोन ग्रहांना जोडणारा आहे. त्यामुळे आपली जाणीव आपोआप विश्वात्मक होते. येथे एक भविष्यकालीन नसृष्टी उभी केली आहे. तिला खगोलशास्त्र, भौतिकी, गणित, संगणक, मनोविज्ञान या शास्त्रांमधील आतापर्यंतच्या ज्ञानाचा आणि संभाव्य प्रगतीचा शास्त्रीय आधार आहे. '' (अक्षरगाथा, वर्ष दुसरे, अंक पहिला - दुसरा (कादंबरी विशेषांक) १० जुलै २०११, पृ. २०) मंचरकरांनी म्हंटल्याप्रमाणे ही कांदबरी विज्ञानातील अनेक विषयांना हात घालते. हे करत असताना कथानकात कोणत्याही प्रकारची वैज्ञानिक दुर्बोधता न येऊ देता विज्ञान कथेचा एक अंगभूत भाग होते. हे कौशल्य खरोखरच वाखानण्याजोगे आहे.

अंतराळातील स्फोट:

जयंत नारळीकरांची ही कादंबरी तारकास्फोट या संकल्पनेवर आधारलेली आहे. अवकाशाच्या अनंत ब्रम्हांडात कोठयवधी तारे आहेत. त्यातील एखाद्या ता-याचा जर स्फोट झाला तर त्याचा परिणाम पृथ्वीवर व्हायला किती वेळ लागतो याचे कल्पित या कादंबरीमध्ये मांडले आहे. नारळीकरांनी ही कादंबरी 'वामन परत न आला' या कादंबरी प्रमाणे तीन भागात मांडली आहे. यातील पहिला भाग सातव्या शतकाचा आहे. यात सन ६३२ मध्ये सम्राट हर्षवर्धन राज्य करत होता. या राजाच्या राज्यवैद्यांचा मुलगा रोहित हा बौध्द भिक्कू सारिपुत्तांकडे शिक्षण घेत असताना त्याला एका पहाटे शशांक नक्षत्रातील तारकापुंजात एक देदीप्यमान प्रकाशस्त्रोत दिसला. त्याची तेजस्विता वाढत होती आणि पुंजातील इतर तारे त्याच्यापुढे निष्प्रभ पडत चालले होते. हे दृष्य त्याने आपले गुरू सारिपुत्तांना दाखविले. आचार्यांच्या अभ्यासाने आणि सारिपुत्तांच्या नोंदीत जे तारकास्फोटाचे वर्णन रंगविले होते. त्याच स्वरूपाचे दृश्य त्यांना पाहायला मिळत होते. लेखकाने प्राचीन भारतातील ऋषी, मुनींचे खगोल शास्त्रातील ज्ञान सांगितले आहे. केवळ उघड्या डोळ्यांनी अवकाशातील अतिमहत्त्वाच्या घटनांचे निरिक्षण करणे आणि अचूक अंदाज बांधणे हे अद्वितीय काम केले आहे याचा पुरावा देतात.

या घटनेची माहिती आचार्य सारिपुत्तांनी सम्राट हर्षवर्धनाच्या कानावर घातली. आणि त्याचे गाभिर्यही विषद केले की, निकट भविष्यात या तारकास्फोटाचे परिणाम जाणवणार नाहीत पण दुरच्या भविष्यात त्याचा परिणाम पृथ्वीवर होण्याची शक्यता आहे. हे ऐकून राजा हर्षवर्धन भविषातील संकट भविष्यातील लोकांना समजावे यासाठी आचार्यांच्या सल्ल्याने रोहितने केलेल्या नोंदींचे सारांश ताम्रपटावर कोरून कन्याकुब्ज साम्राजाच्या विभिन्न भागात त्याच्या अनेक प्रती पुरून ठेवल्या जातात. लेखकाने या पहिल्या विभागात तारकास्फोटाची कल्पना मांडलेली आहे. असे ताराकास्फोट अवकाशाच्या अनंत पोकळीत सतत घडत असतात. आज पर्यंत पृथ्वीवर त्याचा परिणाम झालेला आहे याचा पुरावा सापडत नाही. नारळीकरांनी एखाद्या अशा घटनेचा परिणाम अतिदूरच्या भविष्यात पृथ्वीला कशा स्वरूपाने भोगायला लागू शकतो. हे मांडत असताना पहिल्या भागातील कल्पित हे सांगते की, निसर्गाने भविष्यातील संकट भविष्याच्या उदरात ठेवत असताना त्या संकटाची चाहूल भविष्यातील मानवाला व्हावी याची योजना या भागात केलेली आहे. डॉ. अनिल सपकाळ म्हणतात, "विज्ञानाच्या विकासाचा आलेख हा संशोधनाच्या परंपरेवर आधारित असून, ती परंपरा जतन करण्याचा मानस या कादंबरीमध्ये व्यक्त केला आहे.'' (मराठी विज्ञानसाहित्य संपा. प्राचार्य डॉ. म. सु. पगारे, पृ. १२९) सपकाळांनी मांडलेले मत बरोबर आहे कारण वैज्ञानिक परंपरा जपणे तितकेच महत्त्वाचे आहे.

दुसरा भाग विसाव्या शतकातला आहे. सन १९९६ मध्ये खगोल शास्त्रज्ञ प्रोफेसर अविनाश नेने आणि प्राच्याविद्या संशोधक तात्यासाहेब भागवत हे दोघे मिळून त्या तारकास्फोटाचा छडा लावतात. ताम्रपटावरील माहितीचा अर्थ लावण्यासाठी ते आयुका मधल्या नारायणगाव दुर्बिणीचा व कावलूरच्या वेणूबाप्पा दुर्बिणीचा उपयोग करतात. ताम्रपटावरील तारखेप्रमाणे त्या दिवसाचे अवकाश पाहतात.

त्या स्फोटानंतर काही प्रकाशकण बाहेर फेकले गेलेत का ? जर फेकले गेले असतील तर ते आता कुठ पर्यंत पोहचले आहेत सारिपुत्त म्हणतो त्या प्रमाणे त्या प्रकाश कणांचा पृथ्वीला काही धोका आहे का ? हे पहायचे होते. लेखक आयुका व कावलूरच्या दुर्बिणींचा उल्लेख करतो. यावरून भारतीय खगोलशास्त्रातील ज्ञान किती पुढे गेले आहे हे त्यांना मांडायचे आहे. तसेच भारतीय शास्त्रज्ञही एखाद्या घटनेबद्दल किती संवेदनशील व कार्यतत्पर आहेत हे सांगितले आहे.

जगातील सर्व तज्ज्ञ शास्त्रज्ञांनी आधुनिक तंत्रज्ञानाच्या आधारे तारकास्फोटाच्या अवशेषाचे अंतर जवळपास १००० प्रकाशवर्षे इतके निश्चित केले. स्फोट प्रचंड होता. अविनाशच्या अंदाजाप्रमाणे त्या तिर्वतेचा धोका पृथ्वीवरील जीवसृष्टीला नक्कीच होणार होता. जगातील सर्व शास्त्रज्ञ एकत्र येऊन याचा मुकाबला करण्याचे ठरवतात. नारळीकरांनी पृथ्वीवरील संकटाचा मुकाबला करण्यासाठी आपापसातील मतभेद विसरून जग कसे एकत्र येते हे वरील उदाहरणातून मांडले आहे.

त्याच्या मतानुसार पृथ्वी व त्या ता-याचे अंतर हजार प्रकाश वर्ष होते. याचा अर्थ स्फोटातून पृथ्वीवर प्रकाशाला यायला हजार वर्ष लागतात. ती विश्वकिरणे पृथ्वीच्या जवळ आली असतील असे सर्व शास्त्रज्ञांना वाटते. ताबडतोब यावर काहीतरी उपाययोजना करण्यासाठी स्फोटाच्या दिशेने दहा स्पेस प्रोब पाठवतात. हे स्पेस प्रोब विश्वकिरणांना वाटेत गाठून त्यांची तिव्रता आणि मोजमाप घेऊन पृथ्वीकडे पाटविणार होती. त्यावरून पृथ्वीवासियांना स्पेस प्रोबच्या पूर्वसुचनेनूसार उपाययोजना करता येणे शक्य होणार होते. दुस-या भागात नारळीकरांनी मानवांच्या वैज्ञानक प्रगतीचे जीवन दाखविले आहे. त्यात विविध शास्त्रांच्या प्रगतीचा आलेख येतो. तसेच तंत्रज्ञानाची उंच भरारीही लक्षात येते. यावरून नारळीकरांनी भविष्यातील अशी एखादी तारकास्फोटाची घटना अवकाशात घडली तर विज्ञान-तंत्रज्ञान त्याला कसे सामोरे जाऊ शकते याचे कल्पित मांडले आहे.

तिसरा भाग अठ्ठाविसावे शतक आहे. सन २७१० मध्ये विश्वकिरणांच्या मा-याने पृथ्वीवरील मानवी जीवन नष्ट झाले आहे. जे गुहेत राहणारे मानव होते ते तेवढे जीवंत राहिले होते. ते आता गुहेतून बाहेर पडले आहेत. त्यांना विज्ञानाचा स्पर्श झालेला नाही. नारळीकरांनी याही कादंबरीत 'सस्पेन्स' हा प्रकार खूप सुंदरपध्दतीने हाताळला आहे व पृथ्वीचा विनाश कसा झाला हे शेवटी सांगितले आहे.

स्पेस प्रोब विश्वकिणांसंदर्भात विशेष माहिती पाटवत नव्हते. त्यामुळे ती माहिती पाहण्यात टाळाटाळ होऊ लागली. हळूहळू लोक विसरून गेले, पण स्पेस प्रोब आपले काम अहर्निश बजावत होते. त्यांची मोजमापे घेऊन येणारे संदेश पृथ्वीवर पाच ठिकाणी पोचवायची व्यवस्था करण्यात आली होती. नव्या टेक्नॉलॉजीमुळे हे संदेश आपोआप रेकॉर्ड व्हायचे. त्याकडे काही कालांतराने दुर्लक्ष झाले.

जपानच्या केंद्रात काही विधार्थांना प्रशिक्षण दिले जात असताना याबुशिता नावाच्या विधार्थीने संदेश विश्लेषनासाठी हे संदेश निवडले. आणि ते पाहून त्याला आश्चर्यच वाटले. संदेशांचा जोर गोंगाटापेक्षा पुष्कळच वर चढला होता. ही बाब त्याने शास्त्रज्ञांच्या निदर्शनास आणून दिली. त्यांना धक्काच बसला. जगातल्या इतर केंद्रावरतीही तशीच परिस्थिती होती. सगळीकडेच विश्वकिरणांचा मारा वाढल्याचे दिसून आले. तातडीने जागतिक शास्त्रज्ञांची बैठक झाली. ओझोनच्या थराची मोजमापे घेण्यात आली. ओझोनचा थर वेगाने घटत असल्याची जाणीव झाली. विश्वकिरणांचा मारा प्रखर होत चाललेला आहे. याची जाणीव स्पेस प्रोब करून देत होते.

ओझोनचा थर वाचवण्याचे उपाय सुरू झाले. ध्वनीच्या वेगाने जाणा-या विमानावर बंदी घालण्यात आली. एक वर्ष उलटून गेले होते. विश्वकिरणांचा मारा थंडावत होता पण त्याला उशीर झाला होता. पृथ्वीवरील जवळ जवळ आर्धी जीवसृष्टी खलास झाली होती. उरलेली त्वचेच्या कॅन्सरने मरण्याच्या मार्गावर होती. शेवटी प्रगत मानवाने आपले विज्ञान लोखंडी भिंत्तींच्यामध्ये जमीनीत पुरून ठेवले. आणि संकटाला सामोरे गेले.

मानवाला पुन्हा पहिल्या पायरी पासून प्रगती करण्याची गरज भासून नये आणि त्यासाठी हजारो वर्ष त्यांची वाया जावू नये असे जयंत नारळीकरांना वाटते. रत्नाकर मंचरकर म्हणतात, " 'अंतराळातील स्फोट' ही साहित्यिक डौल अधिक असलेली आणि तरीही विज्ञानाचे सूत्र सांभाळणारी विज्ञानकादंबरी आहे.'' (अक्षरगाथा वर्ष दुसरे अंक पहिला - दुसरा, (कादंबरी विशेषांक) १० जुलै २०११ पृ. २३) मंचरकरांनी मांडलेल्या मताप्रमाणे नारळीकरांनी या कादंबरीत विज्ञानाचा वापर अत्यंत कौशल्याने केला आहे त्याची बाधा कथानकाला झालेली नाही. साहित्यरसात विज्ञानरस असे मिसळले आहे की त्याला त्याचे स्वतंत्र अस्तित्व राहिलेले नाही.

निष्कर्ष:

१. विज्ञान कादंबरी हा लेखन प्रकार नामांकीत लेखकांनी, शास्त्रज्ञांनी हाताळला आहे.
२. जयंत नारळीकरांच्यामुळे विज्ञान साहित्याला प्रतिष्ठा मिळाली. वाचक, समीक्षक आदराने या वाङ् मय प्रकाराकडे पाहू लागले.
३. अवकाशाच्या प्रचंड मोठ्या बह्मांडात कोणत्यातरी ग्रहावर जीवसृष्टी अस्तित्वात आहे त्याचा अजून पृथ्वीशी संपर्क झालेला नाही हे खरे आहे. भविष्यात तो संपर्क होऊ शकतो.
४. नैसर्गिक किवा मानवनिर्मित कोणत्याही कारणाने पृथ्वीवरील मानवाचा विनाश ठरलेला आहे. तसेच त्याची पुनर्रनिर्मितीही होणार आहे.

समारोप:

जयंत नारळीकर हे मराठी विज्ञानसाहित्य लिहिणारे आघाडीचे लेखक आहेत. मुळात ते एक महान शास्त्रज्ञ असल्यामुळे त्यांना दुरच्या, अति दुरच्या भविष्यात विज्ञान कोणत्या अवस्थेत जाऊ शकते याचा विश्वासदर्शक अंदाज आहे. त्यामुळे त्यांच्या 'प्रेषित' आणि 'अंतराळातील स्फोट' या

कादंब-यांत आलेल्या विज्ञानाला वास्तवातील विज्ञान प्रगतीचा आधार आहे. त्यांच्या विज्ञान कादंब-यातील वैज्ञानिक सूत्र ते अत्यंत सोप्या भाषेत मांडतात. थोडक्यात ते विज्ञान वाचकांना समजावून सांगत आहेत असे वाटते.

संदर्भ ग्रंथ:

१. सपकाळ, अनिल: 'जयंत नारळीकर यांचे विज्ञान साहित्य', संपा. प्राचार्य डॉ. म. सु. पगारे , २००४ पृ. १२५
२. मंचरकर, रत्नाकर: अक्षरगाथा, वर्ष दुसरे, अंक पहिला - दुसरा (कादंबरी विशेषांक) १० जुलै ,२०११, पृ. २०
३. सपकाळ, अनिल: 'जयंत नारळीकर यांचे विज्ञान साहित्य', संपा. प्राचार्य डॉ. म. सु. पगारे, २००४ पृ. १२९
४. मंचरकर, रत्नाकर: अक्षरगाथा, वर्ष दुसरे, अंक पहिला - दुसरा (कादंबरी विशेषांक) १० जुलै ,२०११, पृ. २३

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि आवानओल मधील ग्रामीण स्त्री जीवन

प्रा. डॉ. शीला धम्मपाल रत्नाकर
प्रमुख, मराठी विभाग, मालती वसंतदादा पाटील कन्या महाविद्यालय, इस्लामपूर.
मेल आयडी – sheelaratnakar2002@gmail.com

१९९१ नंतर नवे आर्थिक धोरण आमलात आल्यानंतर उदारीकरण, खाजगीकरण आणि जागतिकीकरण या संकल्पना प्रचलित झाल्या. जगभारत त्याआधी प्रत्यक्षात आल्या होत्या. मराठी साहित्यात, माध्यमात आणि समीक्षेत त्याचे पडसाद उमटणे स्वाभाविकच होते. पूर्वीची खेडी आता शहरात येऊ लागली आहेत. जुनी व्यवस्था नवे रूप धारण करते तेव्हा अनेक गोष्टी हळूहळू कालबाह्य ठरू लागतात आणि दिसेणाशा होतात. जागतिकीकारणाचे खूप मोठे राजकीय आणि आर्थिक दुष्परिणाम कित्येक शतके मानवाने भोगलेले आहेत. स्वातंत्र्यानंतर आर्थिक धोरण अंतर्मुख राहिल असे वाटत होते. पण वाढत्या आर्थिक विषमतेची समस्या पुरातन आहे. ज्या काळात भारतात सोन्याचा धूर निघत होता त्या काळात स्त्रीया आणि शुद्र यांचा आर्थिक किंवा सामाजिक स्तर कसा होता याविषयी कोणी फारसे बोलत नाही. पारतंत्र्याच्या काळात विषमता अधिक प्रकर्षाने जाणू लागली हे खरेच आहे. परंतु स्वातंत्र्य मिळाल्यानंतर परिस्थिती हळूहळू बदलू लागली. हेही तितकेच खरे आहे. असे असले तरी जागतिकीकरणामुळे झपाट्याने प्रस्थापित मुल्यांची उलथापालथ होत आहे. महानगरापासून दूर असलेल्या कोकणासारख्या भागात राहून लक्षणीय साहित्य निर्मिती करणाऱ्या काही मोजक्या कवींमध्ये अजय कांडर यांचे नाव घ्यावे लागते. कृषी केंद्रित जीवन जगणाऱ्या तरीही बदलत्या ग्राम वास्तवातील सामान्य माणसांच्या सुखदुःखाचे चित्र रेखाटताना दुष्काळ, दारिद्र्य, विस्कळीत होत जाणारी कुटुंब व्यवस्था, स्त्रीयांची संसारिक फरफट, राजकीय प्रवृत्तीचा ग्रामीण वास्तवात सुरु झालेला शिरकाव आणि उपजीविकेसाठी नव्या भूमीच्या शोधात नसणारे आयुष्याभर कष्ट सहन करणाऱ्या स्त्रियांचे भावविश्व अजय कांडर यांनी 'आवानओल' मधून चित्रित केले आहे.

शतकानुशतके पुरूषप्रधान संस्कृतीत असलेल्या या देशात स्त्रीला नगण्या मानले गेले आहे. तिलाही मन असतं भावना असतात. याचा विचार कधी केलाच गेला नाही. शहरी वातावरणातून अतिदूर असलेल्या ग्रामीण भागातील स्त्रीचं स्थान याहून वेगळे नाही. आखून दिलेला परीघ आणि त्यात डोळे मिटून घाणा ओढणाऱ्या बैलासारखं आयुष्य! झापडे बांधलेल्या डोळ्यांनी चाकोरीत आपलं भौतिक सुख शोधणारी ग्रामीण स्त्री कवी अजय कांडर यांनी 'आवानओल' मध्ये संवेदनशीलतेने आणि अतिशय समर्थपणे चित्रित केली आहे. मुखपृष्ठावरूनच त्यातील आशयाची आपल्याला पूर्वकल्पना येते. खूप पाऊस पडणाऱ्या डोंगरातील कष्टकरी लोकांचे जीवन चित्रणाची जाणीव मुखपृष्ठ करून देते. कौलारूची घरे असणारा पर्वतराजीचा हा तांबड्यामातीचा प्रदेश म्हणजेच कोकण. 'आवानओल' हा काव्यसंग्रह अप्रत्यक्षपणे, सामाजिक, राजकीय, शैक्षणिक आणि प्रशासकीय कुरूपतेवर बोट ठेवतो. तसेच आजच्या समाजातील 'आधुनिक लैंगिक विषमतेवर प्रहार करतो. पारंपारिक पुरूषसत्ताक मानसिकतेचे वाभाडे काढण्याचे कवी विसरत नाही. १९६० च्या नंतर प्रकर्षाने आलेल्या स्त्रीवादी चळवळीला बळ देणारा हा काव्यसंग्रह कुठेही आकस्ताळेपणा किंवा टोकाची भूमिका घेत नाही. स्त्रीच्या भावभावनांना व्यक्त करणारा पुरूष आणि स्त्रीच्या सहजीवनातून विकसित होतो. अशी भूमिका घेताना कवी भविष्यातील खडतर आव्हानांना सामोरे जाण्यास मानसिकता तयार करतो. स्त्रीच्या अंतरमनात हळूवारपणे डोकावणारा कवी स्त्रीविश्वाचं दर्शन आपल्याला घडवतो.

आजय कांडर हे कणकवली तालुक्यातील बावशी (बेळणे) सारख्या खेड्यात राहून शेती, पत्रकारिता आणि काव्यलेखन या तिन्ही गोष्टी मोठ्या निष्ठेने करतात. अभिधानंतर, मौज, अनुष्टुभ, साक्षात युगांतर शब्दालय, आंदोलन आदि अनेक नियतकालिकामध्ये त्यांचे लेखन प्रसिद्ध झाले आहे. 'बिल्वदल' या कार्यक्रमांत त्यांच्या कवितांचा अंतर्भाव आहे या कवितांची ध्वनीफित आहे. २००५ मध्ये श्रीरामपूरचा शब्दालय प्रकाशनाने त्यांचा 'आवानओल' हा संग्रह प्रकाशित केला. या संग्रहाला अनेक पुरस्कार प्राप्त झाले आहेत. १९९० नंतरच्या मराठी कवितेत 'आवानओल' संग्रहातील कवितेची वेगळी ओळख आहे. शीर्षकच ओळखीचा एक विशेष भाग आहे. आपली भूमिका स्पष्ट करताना "एकूण माणूस केंद्रस्थानी ठेवून जात आणि धर्माच्या पलीकडे नेहमी विचार करणे आणि त्या अनुषंगाने कुठल्याही जाती-धर्मासाठी चालविणाऱ्या जाणाऱ्या व्यासपीठावर कोणत्याही परिस्थितीत न जाणे एवढेच काव्य लेखनाविषयीची आणि एकूण जगण्याविषयीची माझी भूमिका आहे." अशी ठाम भूमिका ठेवून काव्यलेखन करणारे अजय कांडर परंपरेच्या प्रभावाखाली मुक्त आणि अस्सल काव्याचा अविस्कार साधून त्यांनी आश्वासक निर्मिती केली आहे 'आवानओल' याचा अर्थ रगड चिखल आणि भरगच्च पाणी असलेल्या शेतात भाताची रोपं लावतात. भरपूर पाण्याशिवाय भाताची रोपं वाढत नाहीत. समजा पाऊसच पडला नाही आणि जमिनीत चिखल व पाणी यांची कमतरता भासली तर भाताची रोपं धड जगतही नाही आणि धड मरतही नाहीत अशा विचित्र अवस्थेत राहतात याच अवस्थेला कोकणात 'आवानओल' असे म्हणतात. स्त्रियांची अवस्था आवानओल सारखीच असते. याचे चित्रण पुढील प्रमाणे -

किशोरवयीन मुलींचे चित्रण

परकर पोलक्यातल्या पोरीपासून ते थेट उतरणीला वय लागलेल्या स्त्रीचे भावविश्व "आवानओल' मधील कवितेत प्रतिबिंबित झाले आहे. किशोरवयीन मुलींना स्वत:च्या देहाबद्दल वाटणारे कुतुहल वाढत जाणाऱ्या वयाला अनुसरून त्याचं उत्तेजित होणे. त्यांच्या उभार शरिराचं निरीक्षण करीत अभिलाषा बाळगीत त्यांच्या अवतीभोवतीच्या वावरणाऱ्या त्यांच्यावर रोखलेल्या पुरूषी नजरा, त्या नजरेतील वासना या भाबड्या मुलींना ओळखूही येत नाहीत. कल्पनेतील सुखाच्या आधीन होऊ पाहणाऱ्या या पोरींना प्रतिष्ठेची संस्कृतीची आठवण राहत नाही. "पोरी ओल्या होऊ पाहतात" या कवितेत किशोरवयीन मुलींचे चित्र रेखाटताना कवी अजय कांडर म्हणतात.

"पोरींच्या
अंगोपाशी वाढत जाणाऱ्या वयाला हवंहवंय वाटतंय पाणी…..

आणि राखणे सोडून नजर पात्रात
फिरवायत काठाकाठाने वाहत्या पाण्याचा अंदार घेत''

पोरवयीन मुलींचे विवाह

पोरवयातच पोरींचे विवाह लावून दिले जातात, आणि मानेवर टाकतात तिच्या अनेक 'जाबबदाऱ्याचं जोखड' ती बनत जाते प्रौढ नि गाडून टाकते आपले पोरवय स्त्रीला निसर्गाने दिलेले शरीर, या शरीराचे नियम, पुरूषाने घेतलेल्या भोगाला तिचा होकार कायमस्वरूपी गृहीत धरलेला असतो. तिच्या रूपाचे चित्रण 'पोरवयात' या कवितेत येते

''आता तिचा केविलवाणा चेहरा मोजतो
त्याचे राबराब राबलेले काष्टाचे क्षण न क्षण
तिच्या नकळत तिच्या कुशित मोकळं व्हायला.
आधार शोधतो तेव्हा
तिही सामावते त्यांच्या शरीरावर…….
फक्त त्यांच्या इच्छेसाठी''

तिच्या दु:खाची दखल माहेराहून घेतली जात नाही 'दिली तेथे मेली' याप्रमाणे शिशिरातल्या पानगळी सारखी तिची स्वप्न गळत राहतात एकेक करून निष्पर्ण वृक्षाकड पाखरांनी पाठ फिरवावी तशा कित्येक जणांनी तिच्याकडं पाठ फिरवलेली तिची घुसमट कुणाला कळत नाही. तिची आर्त साद कुणाला ऐकू येत नाही. भरून जातं मन निराशेच्या गडद काळोखानं ती बावरी होते तेव्हा तिच्या मनावर पुन:पुन्हा बिंबवले जाते याचे चित्रण 'अंधार पडला तर' या कवितेत येते. ते पुढीलप्रमाणे

''अंधार पडलाच तर समजुतीची पेटवावी एखादी सांजवात
आतल्या आत होते कोंडी तरी ही बोलता येत नाही''

समदु:खी मैत्रिणींचे दु:ख

समदु:खी मैत्रिणी बोलतात उरापोट गदगदणारे दु:ख काळजात कोंडत खेडूत स्त्री राबतच रहाते. कधी स्वत:च्या तर कधी दुसऱ्याच्या शेतात कायमचा ग्रीष्म डोक्यावर तोलत ओढत राहतात. संसाराचा गाडा, काबाडकष्ट करताना निबर होत जातं मन, आटत जाते डोळ्यावाटे पाणी, तेव्हा आपल्या सोबतीनीला सांगू पाहतात पण तिही आपल्या सारखी राबत राबत एकेका दिवसाला मागे टाकणारी जाणवते तेव्हा शब्द मुके होतात. कधी कापरासारखे उडून जातात वाऱ्यावर याचे शब्दचित्र 'दोघी' या कवितेत येते.

''खुप दिवसांनी भेटलेल्या त्या दोघी
खूप वेळ बोलत राहतात…..
त्या नेमक्या काय बोलत असाव्यात याचा अंदाज''

कवितेतील शब्दकळा आणि प्रतिमा सहज स्वाभविक गुंफण कविच्या अनुभवाचा सच्चापणा सांगणारी आहे. 'आवानओल' मधील बहुतांशी कवितामध्ये स्त्रीजीवनाचे खोलवरचे स्पंदन प्रकट करण्याचा, प्रमाणिक प्रयत्न दिसून येतो.

बायांचा पाण्याशी संवाद

''बाया पाण्यासाठीच बोलतात'' या कवितेत रखरखत्या उन्हात घोटभर पाण्यासाठी चढउतार सोसत बापा डुंगळतल्या झऱ्यापाशी एकात्म होतात आटत चाललेल्या झऱ्याच्या धारेसारखं तुटकतुटक बोलत राहतात. घागरीच्या रांगाच रांगा वाढत जातात. एकही घागर न भरता आटत जाणाऱ्या झऱ्याची धार बायांचे तहानलेले प्राण कासावीस होतात चढणीचा घाट चढून उतरून त्यांच्या पायात गोळे आलेले असले तरीही पाण्याच्या आशेने सोसतात थेंबथेंब पाणी साठवायचा त्यांचा आटापिटा वाढतच राहतो क्षणाक्षणाने आणि लांबणाऱ्या सावलीसारखा उन्हाळा वाढतच राहतो आणि बायांचा छळवादही अशाश्वत काळापर्यंत राहतो यांचे हदयस्पर्शी चित्रण अजय कांडर करतात

''किती वाढत जातो उन्हाळा झऱ्यावरच पहारा ठेवताना
दिवसरात्र बाया पाण्याशीच बोलतात झरा मुका होत जातात''

तर 'मोहराचा वास' या कवितेत बायांनाही हवा असतो एखादा तरी सुगंधी क्षण ज्या क्षणावरून त्या आपलं आयुष्य ओवाळून टाकतील किंवा त्यासाठीच तोडून टाकतील परंपरेच्या बेड्या किंवा मोडीत काढतील चाकोरी. त्या वाट पाहतात डोळ्याखाली काळी वर्तुळे येईपर्यंत अंगावरची नितळ कातडी सुरकुते पडेपर्यंत ...पण तो क्षण येत नाही त्यांच्या आयुष्यात मग स्वीकारतात निमूटपणे आपलं भंगार आयुष्य स्त्रीच्या दु:खाचे भावस्पर्शी चित्रण पुढीप्रमाणे येते.

''...त्यांना हवा असतो फक्त
फांद्याफांद्यातून फुटणारा मोहराचा वास
ज्यासाठी खुलावून सोडून दिलेली असते
पाण्याखालची वाट...
त्यांच्या नशिबातच असते
अवसकाळी अशी रात्र प्रत्येक हंगामातच"

कवीने स्त्रीच्या एका नाजूक लपलेल्या दुःखाला फुंकर घातलेली आहे. कवी कोकणातील असल्यामुळे तेथील पारंपरिक चौकटीत राहून शरीर भावभावनांचे दबले गेलेले स्त्रीचे दुःख 'बायांना पाऊस नकोसा झालाय' या कवितेत बायांचे रटाळ आयुष्य सरकतच रहाते पुढे पुढे मनातला मोहोर कधीच गळून गेलेला सगळी स्वप्नं चोळामोळा होऊन भूतकाळात जमा झालेली कवितेतून व्यक्त केली आहेत.

'बायांना पाऊस नकोसा झालाय' या कवितेत बापांचे रटाळ आयुष्य सरकतच रहाते पुढे पुढे मनातला मोहोर कधीच गळून गेलेला सगळी स्वप्नं चोळामोळा होऊन भूतकाळात जमा झालेली पूर्वी अगदी हवाहवासा वाटणारा पाऊस या उतारवयात नकोसा होऊन जातो. पूर्वीसारखचं त्याचं नियमित कोसळणं त्या सहनही करू शकत नाहीत आणि पिढ्यान् पिढ्या तिच्यात रूजलेले संस्कार त्यांना सोडूनही देत नाहीत. ती निमूट भिजून घेत रहाते. कित्येक पावसाळे सकाळ, संध्याकाळ हक्क गाजवत तो कुठेही कोसळते तेव्हा शेता-भातात वाकतांना बाया स्वतःला सावरत रहातात आपल्या सजणी गडणीशी स्वतःला व्यक्त करू पाहतात अगदी जीवापलीकडचं गुपीत मात्र बोलताना बोलतात. आपल्यालाच ऐकू येईल अशी त्यांची सुखदःखे असतात याचे चित्रण पुढीलप्रमाणे येते.

"निघतात एकाच्या आडोशाला
थांबतात तो येईपर्यंत विसावा
आणि
ओल्याचिंब अंगानेच वेचतात आठवणी
ठेवून अंतर एकमेकीत..."

माती आणि माणसांवर अपार निष्ठा प्रकट करताना कवी भावनांचा संकोच न होऊ देता, आपलं जगणं आणि अंधार पडलाच तर समजुतीचा देहात पेटवणारी ही माणसं यांच्या जगण्याचे संदर्भ अंधार पडलाच तर या कवितेतून पुढीलप्रमाणे सुचित होतात.

"निथळत जावं पाणी, तसं पेरणीच्या कल्पनेनच
विरून जातं उरातील दुःख
हा गाव ही मुकी माणसं, सारं आपल्या
जगण्याचच एक संचित असतं"

कवी वर्तमानातील घुसमट यावर प्रकाश टाकतो याचा प्रत्यय 'डोईवर अख्ख ऊन' या कवितेत येतो.

"सांभाळतात डोईवर आख्ख ऊन
अशी.... संसाराची कहाणी
श्रमातून आटत गेलेले, कधी सांडतही नाही
डोळ्यातील पाणी"

भाषाशैली :

आवानओल मधील कवितेची शैली मुक्त आहे मुक्तछंदात्म नव्हे तर मुक्तपणे कवी कवितेतून बोलत रहातो. तरल भावकवितांचा प्रत्यय येतो. उदा. कळीचे फूल होताना दळण यासारख्या कवितेतून येतो.

"निघाल्या शोधण्या पाणी
मुली न्हात्या-धुत्या ओल्या
जिथे जाती तिथे होतो
तयांना पाणियाचा भास"
दळण दळत राहतात,
आयुष्यभर कष्टाचं
खेड्यातल्या पोरी"

मानवाचं निसर्गाशी एकरूप होणेच या असंतुलणाला संतुलित करेल असं कवीला वाटते. ज्ञानेश्वरांच्या पसायदानरूपी कवी म्हणतो-

"नभाने दाटुनी यावे/ फुटावे स्नान घालावे
भुईला हर्ष होताना/ पुन्हा यावा फुलांना वास..."

असे कवी निसर्गाला प्रार्थना करतो कवितेची भाषाशैली प्रमाण असली तरी कुडाळी-मालवणी बोलीतील अनेक शब्दरूपे मौखिक परंपरेतील संदर्भ घेऊन येतात.कवितेत कलाकुसर नाही.मोहक शब्दकळा नाही, कारागीर नाही,भरजरी निसर्गवर्णने नाही अतिशय तल्लीन होऊन स्त्रीच्या मनाचा एकेक पदर त्यांची कमालीची गुंतागुंत उलघडत जातात. तेव्हा साध्या साध्या प्रतिमा साधे साधे शब्द अतिशय ताकदीने आशय पेलताना दिसतात. हेच अजय कांडर यांच्या कवितांचे वैशिष्य आहे.

समारोप :

ग्रामीण स्त्रीजीवन हा अजय कांडर यांच्या कवितांचा केंद्रबिंदू आहे. बाया पाण्याशी बोलतात, मोहराचा वास, दोघी, दळण, अंधार पडलाच तर, डोईवर आख्ख ऊन, पेरा या सारख्या कवितेतून सामाजिक चिंतनशीलता जाणवते. स्त्री जीवनातील विविध रुपे अतिशय समर्पकपणे प्रकट करतात श्रमजीवी स्त्रीयांचे मन कवितेमध्ये इतक्या विविध भावना व्यक्त करते की, आपण स्तब्ध होतो. सर्व कविता वाचल्यावर मनावर खोलवर कारुण्य भावाचा ठसा उमटतो. अजय कांडर यांच्या कवितेमध्ये एक सतत ठसठसणारी वेदना आहे. स्त्रीयांचे कष्ट, परिस्थितीने पोखरलेले तिचं मन, तिच्या दबलेल्या संवेदना आणि आपल्या डोळ्यांच्या काठावर पाणी जमत रहावे. तसा अनुभव येतो. काबाड कष्ट करताना आपलं बाईपण, आपल्या संवेदना

आणि एकूणच जगण्यांच भानच त्या विसरलेल्या आहेत बधिर करणारे काबाडकष्ट त्यांना दडपून टाकते कवितेतील वेदना आपल्या अंगभर ठसठसत राहते कवितेत जो निसर्ग आहे. तो मानवी संवेदनाशी एकरुप झाला आहे. स्त्री जीवनाचे दु:खाचे पदर उघडत तिच्या वार्धक्याजवळ येऊन पोहचतात. ''ती श्वास घुसमटणाऱ्या शहराला कंटाळून आली आणि कोकणच्या मातीत श्वास मोकळा करीत राहिली कायमची'' अशा प्रकारे ग्रामीण स्त्रीचे चित्रण अजय कांडर यांनी केले आहे.

संदर्भ :

1. कांडर अजय : आवानओल, शब्दालय प्रकाशन, श्रीरामपूर पहिली आ. २००५
2. नंदापुरे ईश्वर (संपा.) : साहित्य ग्रामीण दलित, विजय प्रकाशन, नागपूर पहिली आ. २००२
3. शोभणे रविंद्र (संपा.) : मराठी कविता परंपरा आणि दर्शन, विजय प्रकाशन, नागपूर पहिली आ. २००२
4. डांगळे अर्जुन : दलित साहित्य : एक अभ्यास सुगावा प्रकाशन पुणे. दुसरी आ. १९९८

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि इंद्रजित भालेरावांची कविता

प्रा.डॉ.महेश रणदिवे
मराठी विभाग,राजर्षी छत्रपती शाहू कॉलेज,कोल्हापूर.

प्रास्ताविक :

जागतिकीकरण ही खूप मोठी आणि व्यापक संकल्पना आहे. भारताने व्यापार, व्यवसायाला चालना मिळावी म्हणून १९९१ साली गॅट करारावर स्वाक्षरी केली आणि खुल्या अर्थव्यवस्थेचे वारे सर्वत्र गतिमान बनले. देश विकसनशील अवस्थेतून विकासित व्हावा यासाठी जागतिक व्यापार संघटनेच्या धोरणांना भारताने पाठिंबा दिला. गुणवत्तेच्या दृष्टीने या जागतिकीकरणाच्या धोरणांना महत्वही आहे. कारण राष्ट्रीय पातळीवरील मोठ-मोठे उद्योग, व्यापार, शिक्षण इत्यादी क्षेत्रे यामुळे झपाट्याने विकसित होत आहेत. शेती क्षेत्रालाही वरदान ठरावे अशी राष्ट्रीय स्तरावर अपेक्षित कामगिरी होते आहे. दळणवळण माहिती तंत्रज्ञान क्षेत्राचाही झपाट्याने विस्तार होतो आहे. फोन, संगणक इंटरनेट, दूरदर्शनचे नवे चॅनल यामुळे माहितीचा ओघ वाढला आहे. या नव्या माहिती तंत्राचा वापर करून आर्थिकदृष्ट्या प्रबळ असणारे लोक स्वतःचा उद्योग व्यवसाय विस्तारू लागले आहेत. पण जे गरीब आहेत ते गरीबच राहिले ते अधिक पिचले गेले आणि भांडवलदारांची मक्तेदारी निर्माण झाली. भारत हा लोकसंख्येने मोठा असलेला देश आहे. तो एक मोठी बाजारपेठ म्हणून जगासमोर आला. विदेशी कंपन्यांनी आपला मोर्चा भारताकडे वळवला आणि जाहिरातीच्या नव्या तंत्राचा वापर करून, विविध कोशल्य वापरून परकिय वस्तू भारतीयांच्या माथी मारल्या जाऊ लागल्या आणि परकीय वस्तूंचे आकर्षण येथील लोकांच्या मनात निर्माण केले. स्वदेशी वस्तू भारतीय जनतेला निकृष्ट वाटू लागल्या. विदेशी वस्तू घेणे लोक पसंत करू लागले. त्यामुळे अनेक भारतीय उद्योग बंद पडले.

जागतिकीकरणाच्या झंजावतात ग्रामीण भागही होरपळून निघाला. गावचा विकास झाला पण गावात अनेक बदल झाले. एकेकाळी आनंदाने नांदणारा गाव, गावची संस्कृती प्रचंड बदलली. पूर्वीचा गाव हा गाव राहिला नाही. गावचे गावपण नाहीशी झाले आणि गावाला अवकळा प्राप्त झाली. मानवाच्या कामाची जागा यंत्राने घेतल्यामुळे बेभरवशाचा पाऊस आणि वरून नोकऱ्या नाहीत म्हणून गावातील पोरं ऊनाड फिरू लागली. आज आपल्या मुलाला शिकवले म्हणजे उद्या तो नोकरी मिळवून स्वतःच्या पायावर उभे राहून आपला सांभाळ करेल अशी अपेक्षा ठेवणाऱ्या आई-वडिलांचा भ्रमनिरास झाला. पाऊस नाही, पाणी नाही म्हणून अनेक लोक गाव सोडून नोकरीच्या शोधात स्थलांतर करू लागले. शेणा-मातीच्या चुली बंद होऊन त्याची जागा गॅसने घेतली. छपराची घरे जाऊन सिमेंटची बांधकामे उभी राहिली. शहरी संस्कृतीतील नव्या जगण्याने आणि नव्या जीवनशैलीच्या प्रभावाने ग्रामसंस्कृतीतील लोकांचे जगणे बदलले. गावची माणसं एकेकाळी जवळून गेली तर मन भरून बोलायची, आपुलकीने एकमेकांशी चौकशी करायची पण आज त्यांची मने संकुचित झाली आहेत. नात्या- नात्यांमध्ये दुरावा निर्माण झाला आहे. जागतिकीकरण गावात घुसले आणि गावाला शहराचे स्वरूप प्राप्त झाले. एकेकाळी झाडेझुडपे, पशुपक्षी, निसर्ग यांनी समृद्ध असलेला गाव मोडकळीस आला आणि संपन्न ग्रामसंस्कृतीला तडे गेले. जागतिकीकरणाच्या प्रक्रियेमुळे बदललेल्या या समाजजीवनाची चित्रे अनेक कवींनी सजगतेने आपल्या कवितेतून चित्रित केलेली आहेत. यामध्ये कवी इंद्रजित भालेराव यांचा उल्लेख विशेषत्वाने करावा लागेल. यासंदर्भाने इथे त्यांच्या 'टाहो' कवितासंग्रहातील कवितांचा विचार केलेला आहे. कवी इंद्रजित भालेराव हे १९६० नंतरच्या ग्रामीण कवितेतील कवितालेखन करणारे एक महत्वाचे ग्रामीण कवी आहेत. त्यांचे अनेक कवितासंग्रह प्रकाशित आहेत. त्यापैकीच 'टाहो' हा २००४ साली प्रकाशित झालेला त्यांचा एक आगळा-वेगळा असा कवितासंग्रह आहे. जागतिकीकरणाच्या प्रभावामुळे उध्वस्त झालेल्या समाजवास्तवाचा वेध घेण्यामध्ये कवी इंद्रजीत भालेराव हे कमालीचे यशस्वी झालेले आहेत. जागतिकीकरणाचे प्रस्त वाढल्याचे स्पष्ट करताना कवी भालेराव लिहितात,

"महाराष्ट्रातील कोणतेही गाव
त्या गावचं काहीही नाव
त्या गावची पडकी वेस
इतिहासाला लावते ठेच
गावच्या हनुमंताचा पार
अजून तिथे धजे न नार
त्या गावच्या गडीची माती
मालक कोरुंन कोरुंन खाती "[१]

अशाप्रकारे वाढत्या जागतिकीकरणामुळे गावगाड्यांनी बद्ध असलेला, एकमेकांच्या सलोख्याने, आदराने राहणारा गाव बदलला. गावात प्रवेश करताच गावची वेस इतिहासाची नोंद द्यायची. हनुमंताच्या पारावर गावचे लोक गावच्या विकासाची चर्चा करत बसायचे पण आज गावाला सरपंचाच्या रूपाने मालक निर्माण झाले. गावात हनुमंताच्या पारावर अनेकजण डाव खेळू लागले. गावात राजकारण करून आपापसात लोक भांडणतंटा, धंगे निर्माण करू लागले.गावची वेस, पार, शिवार यांची माती विकून गावातील गुंडलोक चैनीचे जीवन जगू लागले. गरिबाला कोणी वाली नाही अशी अवस्था निर्माण झाली आहे. गावचे हे सूक्ष्म निरीक्षण कवी भालेराव यांनी टिपले आहे. असे गावातील नव्या बेताल बदलाचे चित्रण त्यांच्या कवितेतून येताना दिसते.

जागतिकीकरणामुळे अनेकांचे व्यवसाय देशोधडीला लागले. समृद्ध समजल्या जाणाऱ्या खेड्यांनी बकाल रूप धारण केले आहे. गावातील सोनार, लोहार, चांभार, कुंभार, सुतार, वाणी, वारीक या व यांसारख्या अनेकांचे व्यवसाय बुडाले त्यामुळे उदरनिर्वाह कसा करायचा हा प्रश्न उभा

राहिला. त्यामुळे रोजगाराच्या, व्यवसायाच्या शोधात शहराकडे अनेक लोक स्थलांतरित झाले परिणामी ग्रामसंस्कृती ओस पडते की काय अशी भीती निर्माण झाली याचे चित्रण करताना कवी लिहतात,

"भोंदू बाबांनं झाडल्या लाथा,
वारकऱ्यांनी गुंडाळला गाथा
गोसावी बाबांची चिलीम छापी
मानभाव विसरले सकाळ लिपी
मुसलमानाने ठोकली बोंब
दुबईला जाऊन बसली झोंब" [२]

गावातच स्वतःचा व्यवसाय करून समाधान मानणारे लोक व्यवसायाच्या शोधात हळूहळू शहराच्या ठिकाणी स्थलांतरित होऊ लागले यामुळे शहरे फुगली आणि गुण्यागोविंदाने राहणारी ग्रामसंस्कृती ओस पडू लागली. बदललेल्या गावची ही खंत कवीने व्यक्त केली आहे. जागतिकीकरणाने खेड्याचे झालेले परिवर्तन खेड्यास हानीकारक ठरू लागले.शहरात गर्दी होऊ लागली म्हणून मोठमोठे प्रकल्प ग्रामीण भागात स्थलांतरित केले जाऊ लागले त्यामुळे शहराबरोबरच ग्रामीण भागातील वातावरणही बदलले. पर्यावरणाचे संतुलन बिघडले. नेहमी पडणारा पाऊस दूषित वातावरणामुळे गायब झाला.याचे ग्रामजीवनवर विदारक परिणाम होऊ लागले. गावची ही वस्तुस्थिती पाहून कवीचे संवेदनशील मन हळहळ व्यक्त करते.

"रानावनात पाऊस नाही
बहिणीचा मूळ भाऊस नाही
भुईच्या पोटात कोरडी धग
दुष्काळाचे जमले ढग"[३]

गाव पातळीवर कंपन्यांची संख्या वाढली. कारखाने वाढले. लोकांनी उद्योग, व्यवसाय यांसाठी झाडे तोडून टाकली त्यामुळे पर्यावरणाचा समतोल बिघडला. वेळेवर येणारा पाऊस कधी पडतो तर कधी पडतच नाही त्यामुळे जमिनीच्या पोटात पाण्याविना धग निर्माण झाली. पाणी नाही म्हणून पिके करपून गेली. पिकांवर अवलंबून असणारा शेतकरी मेटाकुटीस आला. दुष्काळामुळे रोजगारासाठी लोकांची वण-वण निर्माण झाली. हे ग्रामवास्तव कवीने अचूकतेने टिपले आहे. गावची प्रगती होण्याऐवजी जागतिकीकरणाने मोठ्या प्रमाणात पडझड झाली. हे नाकारता येणार नाही. कवी हे स्पष्ट करताना एका कवितेत लिहितात,

"आयत्या बिळावर पायतं सरण
गावचं झालं जागतिकीकरण"[४]

गावात रस्ते, रेल्वे, बस, विज सर्वकाही सेवा सुविधा मिळू लागल्या पण गावात माणसामाणसात स्पर्धेचे वातावरण निर्माण झाले. शेतीचे यांत्रिकीकरण झाले. शेतीत रासायनिक खतांचा अतिरिक्त वापर करू लागले. कमी वेळात आणि कमी खर्चात येणारी पिके घेऊन शेतकरी तो स्वतः विषमुक्त नव्हे तर विषयुक्त अन्न खाऊ लागला त्यामुळे आरोग्याच्या समस्या निर्माण झाल्या. एकेकाळी दिवसभर पारावर बसून राहणारा माणूस दिवसभर स्वतःच्याच विचारात मग्न झाला आहे. दिवसभर बालसवंगड्यांसोबत, निसर्गाच्या सहवासात खेळणारी मुले पहाटेपासूनच शहरातल्या मुलांप्रमाणे शिक्षणासाठी मग्न आहेत. जागतिकीकरणाने खेड्याचे झालेले हे परिवर्तन खेड्यास, खेड्यातील माणसास हानिकारक ठरू लागले आहे.

कवी इंद्रजीत भालेराव यांची कविता जागतिकीकरणामुळे खेड्यावर, खेड्यातील माणसांवर केवळ होणारे परिणामच चित्रित करते असे नाही तर ती जागतिकीकरणाच्या या अवस्थेमुळे आपण दक्ष राहिले पाहिजे याचे मार्गदर्शनही करते. कवी म्हणतात,

"आपले सुटतील लोंढे
गाफील राहिलो आपण
तर सगळच नेतील कापून"[५]

खेड्यांची जागतिकीकरणाने बदललेली ही परिस्थिती सुधारण्यासाठी लयास चाललेल्या खेड्यांना वाचवायला पाहिजे. त्यासाठी जागतिकीकरण समजून घेतले पाहिजे. मोबाईल, इंटरनेट, व्हिडिओ गेम, शेतीचे यांत्रिकीकरण यांचा अतिरेकी वापर रासायनिक खतांचा अतिरिक्त वापर न करता आवश्यक तेवढा वापर करायला हवा. हे प्रत्येकाने जाणीवपूर्वक ठरवायला हवे. जागतिकीकरणाच्या संदर्भात आपण गाफील राहिल्यास त्याचे विदारक परिणाम भोगावे लागतील. हे कवी प्रतिमा-प्रतीकांच्या रूपाने स्पष्ट पणाने सांगतात,

"त्यांचे येतील उंट
आपणाला करती खुरटं
त्यांच्या येतील मेंढ्या
आपल्या बांधतील पेंढ्या"[६]

त्यासाठी सर्वांनी सावध होणे आवश्यक आहे. बाहेरून उंट, मेंढ्या येऊन आपल्याला खुरटे करण्याआधी त्यांचा बंदोबस्त आपण केला पाहिजे. जागतिकीकरणाच्या संदर्भात जागृती निर्माण झाली पाहिजे. अन्यथा 'आयत्या बिळावर पायतं सरण' असे चित्र निर्माण होईल. त्यासाठी हे सर्व होण्याअगोदर बदलत्या परिस्थितीला समजून उमजून घेऊन वरील परिस्थितीला समर्थपणे सामोरे गेले पाहिजे.

संदर्भ:

1. भालेराव इंद्रजित, 'टाहो', ' प्रतिभास प्रकाशन, परभणी, प्रथमावृत्ती:२००४, पृ. २२.

2. तत्रैव, पृ. २६.
3. तत्रैव, पृ. २८.
4. तत्रैव, पृ. ३६ 5. तत्रैव, पृ. ३८. 6. तत्रैव, पृ. ४०.

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि ग्रामीण कादंबरी :'चैत'

प्रा. पद्मावती प्रभाकर पाटील
सहाय्यक प्राध्यापक, मराठी विभाग वालचंद कला व शास्त्र महाविद्यालय (स्वायत्त), सोलापूर.

प्रस्तावना :

जागतिकीकरण ही सध्या खूप तीव्र समस्या आहे ,म्हटलं तर वरदान नाही म्हटलं तर वरदान. जागतिकीकरण ही ग्रामीण जीवनातील खूप मोठी वावटळ आहे.जागतिकीकरणाचा परिणाम समाजातील सर्व लहान थोर जनतेवर होताना दिसतो .जागतिकीकरणामुळे खूप मोठ्या प्रमाणावर बदल एकुणच मराठी साहित्यावर झालेला दिसतो .आपल्याला समृध्द असा मराठी साहित्याचा ठेवा मिळाला आहे पण हा होणारा बदल स्वीकारताना भरडला जातोय तो आपल्या कृषिसंस्कृतीचा आधार, आपला अनमोल ठेवा ,आपला शेतकरी ,आपला ग्रामीण समाज, आपलं ग्रामीण साहित्य.जागतिकीकरणाचा एकूणच जो परिणाम झाला आहे तो हा समृद्ध मराठी साहित्यावर.

जागतिकीकरण झाल्यामुळे आपला भारत देश सुखी ,समृद्ध होईल असा प्रत्येक भारतीय समाजाचा गोड गैरसमज आहे .ग्रामीण समाजातील लोकांना एक स्थानिक बाजारपेठ मिळेल ,तसेच त्यांच्या उत्पन्नाला चांगली किंमत मिळेल त्यांचा राहणीमानाचा दर्जा सुधारेल.पण असं कोणतही चित्र आपल्याला दिसत नाही .१९६० नंतर आधुनिक मराठी साहित्यामध्ये जे साहित्यप्रवाह उदयाला आले त्यामध्ये ग्रामीण साहित्य ,आदिवासी साहित्य ,दलित साहित्य असे खूप चांगले साहित्यप्रवाह मराठी साहित्यात निर्माण झालेले आहेत. आपण या शोधनिबंधाच्या माध्यमातून द.तु.पाटील लिखित 'चैत' या ग्रामीण कादंबरीचा विचार करणार आहोत.

जागतिकीकरण संकल्पना :

१९८० च्या दशकापासून ''जागतिकीकरण'' हा शब्द आपल्याला परिचयाचा आहे.जागतिकीकरण म्हणजे देशाच्या अर्थव्यवस्थेचे जगाच्या अर्थव्यवस्थेबरोबर एकत्रीकरण करणे. भारतात १९९० च्या सुमारास जागतिकीकरणाला सुरुवात झाली.

जागतिकीकरण म्हणजे जगभर पसरणे, एकाच वेळी संपूर्ण जगाचा विचार करणे. जागतिकीकरणाद्वारे वस्तू, सेवा, विचार, ज्ञान या सर्वांचा प्रसार जागतिक स्तरावर आपण मांडू शकतो .आपल्याला जास्तीत जास्त नफा मिळू शकतो .जागतिकीकरण ही फार व्यापक प्रक्रिया आहे.

जागतिकीकरण व्याख्या :

१. जागतिकीकरण म्हणजे जागतिक अर्थव्यवस्था निर्माण करणारी प्रक्रिया.- जागतिक बँक

२. जगाच्या विविध भौगोलिक क्षेत्रात राहणाऱ्या लोकांमध्ये वाढते सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक, व्यापारी, सांस्कृतिक संबंध दर्शवणारी व्यापक प्रक्रिया. --बायलीस आणि स्मिथ

३. जागतिकीकरण म्हणजे अशी प्रक्रिया की ज्याच्या सहाय्याने आपला भारत देशाची सामाजिक, सांस्कृतिक, राजकीय, शैक्षणिक आणि आर्थिक पार्श्वभूमी लक्षात घेऊन समाज्याच्या स्थित्यंतरात मौलिक विचार जाणून घेऊन प्रगती करेल.

द.तु.पाटील :-ग्रामीण लेखक

जागतिकीकरणाचा शेतकऱ्यांच्या आयुष्यावर होणारा परिणाम लेखकाने 'चैत' कादंबरीतून मांडला आहे. ग्रामीणता हा आपल्या कृषीसंस्कृतीचा दागिना आहे. पण शेतकरी खूप मोठ्या आर्थिक कोंडीत सापडला आहे .सध्याच्या गतिमान जीवनात शेतकरी आर्थिक विवंचनेत आहे. ग्रामीण माणसाचे जीवन कसे दिशाहीन, कळाहीन होत चाले आहे, याची वास्तवपूर्ण मांडणी करून भयावह स्थिती अधोरेखित केली आहे. जागतिकीकरणामुळे सध्या गावं ओस पडू लागली असल्यामुळे शेतकऱ्यांच्या आयुष्याची होणारी फरपट त्यांनी मांडली आहे.

चैत:-ग्रामीण कादंबरी

'चैत 'ही लेखक द.तु.पाटील यांची .मे २०१८ मध्ये प्रकाशित झालेली पहिलीच कादंबरी आहे. 'चैत'ही ग्रामीण कादंबरी आपल्या अल्पभूधारक शेतकऱ्यांच्या आयुष्यावर प्रकाश टाकणारी आहे. सध्याच्या व्यवस्थेला प्रतिकार न करता माणसे या व्यवस्थेला कशी बळी पडतात. हा या कादंबरीचा प्रातिनिधिक हेतू वाटतो. ग्रामजीवनावर होणारे बदलत्या समाजाचे प्रतिबिंब, बदलत्या संस्कृतीचे वर्णन अतिशय साध्या, सोप्या बोलीभाषेत त्यांनी अभिव्यक्त केले आहे .लेखकाची ग्रंथरूपाने प्रसिद्ध होणारी ग्रामीण कादंबरी .ग्रामीण समाज ,समाजातील विविध स्तरातील माणसांच्या स्वभावाचे त्यांच्या आयुष्यात येणारी आर्थिक ओढाताण याचे यथोचित असे बोलके चित्रण केलेले आढळते.

बाळूबाबा हे गावाचे दैवत, याच ग्रामदेवतेची यात्रा चैत म्हणून ओळखली जाते. ही यात्रा चैत्र या मराठी महिन्यात येते म्हणून' चैत'. 'चैत्र'महिन्यातील ग्रामदेवतेची यात्रा हा विषय प्रमुखाने मांडला आहे. त्यानिमित्ताने तेथील ग्रामीण समाज आर्थिक कोंडीत कसा भरडला जातो याचे विदारक चित्रण या कादंबरीत आले आहे. या कादंबरीत कृषीनिष्ठ शेतकरी कशा पद्धतीने आपल्या जुन्या रूढी, परंपरा यांचा स्वीकार करून प्राप्त परिस्थितीवर कशा प्रकारे मात करतो याचे वास्तव चित्रण आले आहे. या कादंबरीचे शीर्षक आणि कथानक थोडसं विसंगत वाटते, कारण शीर्षकाच्या रूपाने उत्साह, आनंद निर्माण केला आहे हेच चैत मध्ये दर्शनी दिसते. परंतु कथानक मध्ये मांडण्यात आलेला विषय माणसाच्या वाट्याला आलेले दुख हेच प्रामुख्याने अधोरेखित झालेले दिसते. कादंबरीतील व्यक्तिचित्रण अतिशय दुखी, शोषित असलेले आढळते. साहित्य हे समाजाचे प्रतिबिंब आहे त्याच समाजाशी असलेलं नातं यांच्यातील परस्पर संबंध जर बघितला तर आजच्या बदलत्या युगात जागतिकीकरणाने माणसाची जी अवस्था केली आहे हे कितीतरी प्रसंगाच्या सहाय्याने मांडले आहे.

रामुनाना हे चैत कादंबरीचे मुख्य पात्र आहे, तर हौसाकाकू ही रामुनानाची पत्नी आहे, त्यांचा मुलगा तानाजी, त्यांच्या लग्न झालेल्या तीन मुली, दौलुआबा. शंकर माने, गंगू माळीन, जमीनदार, त्यांच्या शेजारी राहणारे लोक, जनक, रघु भाट, शिवा जमीनदार अशा व्यक्तिरेखा या कादंबरीमध्ये येतात. रामुनाना शेती बरोबर दुग्धव्यवसाय करून आपल्या कुटुंबाचा चरितार्थ चालवतात, प्रसंगी दुसऱ्या शेतकऱ्याचा शेतात मिळेल त्या रोजाने शेतमजूर म्हणून काम सुद्धा करतात. त्यांचा मुलगा तानाजी ऊसतोडपी म्हणून काम करतो. रामुनाना आणि हौसाकाकू यांची परिस्थितीच्या विरोधातील अयशस्वी धडपड हा कादंबरीचा मुख्य विषय आहे. आयुष्यात येणाऱ्या अनेक अडचणीच्या प्रसंगात खंबीर साथ देणारी हौसाकाकू खूपच सोशिक वाटते. सहनशीलता कष्ट, प्रामाणिकपणा, निर्णयक्षमता अशा कितीतरी गोष्टी कादंबरीतील पात्रामध्ये दिसून येतात.

चैताची तयारी गुढीपाडव्यानंतर सुरु होते. सगळा गाव गुढीपाडव्या दिवशी विठोबाच्या देवळात जमतो. चैत रविवारी करण्याचे ठरवण्यात येते. चैत जवळ येऊ लागल्यावर उत्साहाबरोबर आर्थिक चिंता सर्वांना लागून राहिलेली असते. यात्रेसाठी येणारा खर्च ,मुलीबळीना कपडेलत्ते, यात्रेसाठीकापले जाणारे बकरे यासाठी पैसा कुठून आणायचा हा महत्वाचा प्रश्न सगळ्यांना भेडसावतो. परंतु आजचा दिवस उद्या येत नाही म्हणून सेवा सोसायट्या ,दुध डेअऱ्या,खासगी सावकार, यांच्याकडून कर्जाऊ रक्कम, रोजंदारीतील आगाऊ रक्कम, अशा एक ना अनेक प्रकारे पैसा गोळा करण्याच्या तयारीला प्रत्येक गावकरी लागलेला असतो. यात्रा साजरी करत असताना किती खर्च येतो त्यापेक्षा आपल्या मुलीबाळी दोन दिवस सुखाने दोन घास खातील ही भावनाच किती सुखाऊन जाते. चैत साजरा कारणासाठी होणारे कर्ज ही त्यांना सुखावह वाटते हे पाहून मन भारावून जाते.

जागतिकीकरण झाल्यामुळे चैत साजरा करण्याच्या स्वरुपात बदल झालेला दिसतो असे चित्रण कादंबरीत आलेले आहे. काही शिक्षित लोक यात्रेसाठी विनाकारण खर्च करायला विरोध करतात. मुलींची लग्ने झाल्यामुळे चैताच्या पाहुण्याची वर्दळ वाढलेली आहे. सगळ्यांकडे मोटारसायकली, गाड्या आल्यामुळे यात्रेला येणाऱ्यांच काम सोप झाल होतं. यात्रेला जेवायला येणाऱ्यांची संख्या वाढलेली दिसते. आपली घरी यात्रेच्या निमित्ताने चार लोक जेवायला येतात तर आपलं किती नुकसान होणार आहे ही त्यांची भावना दातृत्व पूर्ण वाटते. रामुनाना एक साधे शेतकरी, त्यांच्या घराची आर्थिक परिस्थिती बेताची असूनसुद्धा चैत साजरा करण्याचा त्यांचा उत्साह ओसंडून वाहताना दिसतो.सध्याची महागाईची परिस्थिती, पावसाचा हाहाकार, कोणतेही आर्थिक पाठबळ नसताना देखील चैत साजरा करण्याची त्यांची तयारी प्रसंगी वर्षाकाठी बेगमी म्हणून ठेवलेले भात विकून पैशाची जोडणी त्यांची चाललेली असते.

'चैत' जवळ येईल तशी प्रत्येक शेतकऱ्याची होणारी धावपळ अधोरेखित करावी अशीच आहे. शेतातील सर्व कामं, घरातील सर्व कामं उरकून घेण्याची घाई प्रत्येकाला असते. घराची स्वच्छता, कामाची आवाराआवर जोमात चाललेली असते. चैत कादंबरीतील स्त्रीचित्रण एक स्वतंत्र विषय होऊ शकेल त्यांच्या आयुष्यामध्ये येणारी प्रत्येक अडचण धीराने सोडवणारी हौसाकाकू असेल, केळीचा व्यवसाय करणारी गंगू माळीन आणि रामुनानाच्या तीन मुली यांना पाहिल्यावर असं दिसतं, जगामध्ये सगळीकडे असणारी स्त्री कितीही सुधारलेली असली तरी तिची सोशिकता आजही कमी झालेली नाही. आनंदी, शोभा, केराबाई सारख्या स्त्रिया आजही असह्य जगणं स्वीकारून आयुष्याचा गाडा चालवताना दिसतात. उद्याची कोणतीही भ्रांत त्यांना नाही. आपला मुलगा तानाजी दारूच्या विळख्यात सापडल्यामुळे अस्वस्थ होणारी हौसाकाकू मोठ्या श्रद्धेने देवाला नतमस्तक होते. आपल्या मुलाच्या काळजीपोटी देवाला नवस करताना दिसते. आज विज्ञान–तंत्रज्ञान किती पुढे गेलय पण आजचा ग्रामीण भागातील माणूस कुक्कुडकोंबडा पाडव्याच्या दिवशी पाहणे शुभ आहे असे मानतो. शोभाच्या नवऱ्याला कुणीतरी विठलाई घातलीय ही अंधश्रद्धा आजही ग्रामीण भागातील माणसांच्या मनावर राज्य करताना दिसते. चैताच्या दिवशी देवाला बकरे कापून गावची प्रथा, परंपरा पाळताना दिसतात. आधुनिक काळात माणूस आपले नातेवाईक विसरतोय. परंतु कादंबरीत नात्याची वीण घट्ट होताना आढळते. यात्रा म्हणजे आनंद अशी मानणारी ही लोकं आजही आपुलकी, प्रेम आणि जिव्हाळा जपतात.आपल्या माणसात सुख मानतात. जागतिकीकरणामुळे सर्व सोयीसुविधा आपल्याला मिळाल्या, परंतु आजही ग्रामीण समाज मात्र कर्जाच्या विळख्यात सापडलाय. जागतिकीकरणाने माणसाची जी काही निष्ठुर दशा केली आहे त्याचं दृश्य चित्र कादंबरीतील प्रसंगातून दिसते .

आज शेतकऱ्याच्या मालाला जागतिक बाजारपेठ उपलब्ध होऊनही मिळत नाही, ही खूप मोठी शोकांतिका वाटते. शेतकऱ्याच शोषण लेखकाने इथे मांडण्याचा प्रयत्न केला आहे. याची विविध रूपे कादंबरीत दिसतात. जागतिकीकरण, उदारीकरण आणि खाजगीकरण आपल्या देशात झाले असले तरीही आपला शेतकरी मात्र अजूनही गोंधळात सापडलेला दिसतो. जागतिकीकरणाचा परिणाम शेतकऱ्याच्या परिणामी आपल्या देशाच्या प्रगतीवर झालेला आहे. जगातील कोणतही शेतकरी असला तरी सुद्धा जागतिकीकरणाच्या विळख्यात अडकलेला आहे. परंतु तरीही शेतीवर प्रचंड निष्ठा असलेली माणसे कादंबरीत पाहायला मिळतात.

कादंबरीतील वातावरण उत्साही ,नवचैतन्यपूर्ण वाटते. वसंत ऋतू पूर्वी होणारी पानगळ अनुभवून आयुष्याचं रितेपण जपणारा निसर्ग भर उन्हात नव्या जगण्याची वाट पाहतोय, अगदी तशीच कादंबरीतील पात्र वाटतात. कादंबरीची सुरुवात गुढीपाडव्याच्या सणाने होताना आढळते. चैत्र म्हणजे आनंद, उत्साह आणि प्रसन्नता. निसर्ग आणि माणूस आता फक्त मतलबी झालेले दिसते. चिवा म्हणजे गुढी उभी करण्यासाठी वापरण्यात येणारी काठी (बांबू), परंतु चिवा मिळत नसल्याने गुढी उभे करणे बंद करावे, हा विचार भविष्यातील होणारी पडझड दाखवताना दिसतो . चैत कादंबरीतील पात्रे, घटना, प्रसंग, निवेदन, प्रसंग, संवाद हे साधे, सोपे, सहज, असले तरी त्या मागे एक भयाण वास्तव आढळते. कादंबरीतील भाषा यातील शब्द मनाला स्पर्श करून जातात.गुढीपाडव्याच्या दिवशी लिंब -गुळ खाणे, यात्रेची तयारी,माहेरला येणाऱ्या लेकीना कपडालत्ता, त्यांची शिदोरी, मळकट कपड्यातील दुकानदार, बैलगाड्याची मिरवणूक, आईसक्रीम विक्रेते, कुल्फी विकणारे, जेवणावळी, या सर्वांचे अतिशय सुंदर चित्रण येथे आले आहे. लेखकाने ग्रामीण समाजजीवनातील नेमक्या भाषेचा वापर केल्याने त्यातले सौंदर्य अधिक प्रकट झाल्याचे जाणवते. भाषेचा सुगंध हाच कादंबरीचा कणा वाटतो. कादंबरीतील प्रत्येक प्रसंग ,कादंबरीतील ग्रामीण बोलीभाषा, त्यांच्या जीवनातील अडचणीचे प्रसंग, प्रत्येक प्रसंगाला धैर्याने तोंड देणारा शेतकरी हा कादंबरीचा विशेष वाटतो.

समारोप :

शेती हाच भारतीय अर्थव्यवस्थेचा कणा आहे. 'चैत' कादंबरीमध्ये अतिशय साध्या, सोप्या पद्धतीने लेखकाने मांडले आहे. शेती, शेतकरी यांच्याकडे लक्ष वेधण्याचे कार्य लेखकाने केले आहे.

संदर्भ ग्रंथ :

1. चैत :-द.तु.पाटील
2. htpps//iyemarathichiyenagari.com
3. एकनाथ आळवेकर लेख
4. Google.com वरून उपलब्ध साहित्य

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि ग्रामीण कादंबरी

डॉ. मनीषा आझाद नायकवडी
न्यू कॉलेज, कोल्हापूर

सारांश:

जागतिकीकरणाने आपल्या जगण्याला नवा आयामच दिला नाही तर आपले जगणेच बदलून टाकले. मानवी जीवन अर्थकेंद्री होत इतर क्षेत्रे जागतिकीकरणामुळे बाधित झाली. व्यक्तीला ग्राहकांची भूमिका अपरिहार्यपणे प्राप्त झाली. जास्तीत जास्त पैसे मिळवून त्यातून सुखाची साधने मिळविणे हे जीवनध्येय बनले. आपली पारंपरिक धारणा, नीती यांना जबरदस्त धक्के बसू लागले. जागतिकीकरणाने सगळ्यांचा विकास होईल असे सांगितले गेले होते मात्र प्रत्यक्षात तसे झाले नाही. मुक्त बाजारपेठ, ग्लोबल व्हिलेज अशा गोंडस नावाखाली जीवनात मूलभूत प्रश्न निर्माण झाले, कृषिअर्थव्यवस्था पार कोलमडून गेली, नव तंत्रज्ञानामुळे मजूर बेकार झाले. रोजगाराच्या संधी शेती उद्योगातून सेवा माहिती क्षेत्राकडे वळल्या गेल्या. बहुराष्ट्रीय कंपन्यांनी उद्योगाऐवजी बँकिंग, इन्शुरन्स, मोबाइल, वीज, वित्त बझार अशा क्षेत्रात भांडवली गुंतवणूक केली. 'सेवा' या शब्दाचा अर्थच बदलला. संगणकक्रांती ही या काळातील महत्त्वपूर्ण बाब ठरली. प्रसारमाध्यमांवरील जाहिराती हा जीवनाचा अविभाज्य भाग बनला. खाजगी उद्योगधंद्यांनी बँका बुडविल्या, घोटाळ्यांचे आकडे वाढले. खते आणि बी-बियाणे यांच्या भावात भयंकर वाढ झाली. सर्वच क्षेत्रांतील अनुदान संपुष्टात आल्यामुळे सर्वसामान्य माणसांचा आधार गेला. नगदी पिकाचेही भाव आंतरराष्ट्रीय बाजारामुळे पडू लागले. या सगळ्या बदलांचे आणि त्याच्या वेगाचे ज्ञान आकलनाच्या कक्षेत येईनासे झाले. यामुळे सर्वत्रच संभ्रमाचे वातावरण निर्माण झाले. जागतिकीकरणाच्या आधी मराठी साहित्य विश्वात आलेला देशीवाद हाही नव्वदनंतरच प्रभावी झालेला दिसतो. या पार्श्वभूमीतून नव्वदनंतरच्या मराठी कादंबरीकडे पहावे लागते. या काळात देशीवाद आणि प्रयोगशील असे दोन प्रवाह अधिक जोरकसपणे प्रवाहित झालेले दिसतात; मात्र मराठी कादंबरीचा विस्तार आणि खोली या कालखंडात वाढली हे प्रकर्षाने जाणवते. साठच्या दशकात प्रादेशिक साहित्य मागे पडून ग्रामीण साहित्य पुढे आले. जागतिकीकरणानंतर शेती व्यवसायाच्या समस्या अधिक गुंतागुंतीच्या झाल्या, विकासाच्या नावाखाली आलेल्या प्रकल्पांनी गाव समूहाचे अस्तित्व पणाला लागले. ग्रामीण राजकारणाचे व्यावसायिक रुप हाही सतत आलेला विषय आहे. भाषा आणि संस्कृतीचा ऱ्हास हा चर्चेतील कळीचा मुद्दा बनला.

महत्त्वपूर्ण संज्ञा: जागतिकीकरण, ग्रामीण साहित्य, कादंबरी, खाजगीकरण, उदारीकरण.

प्रस्तावना:

1990 साली एकूणच भारतीय समाजात जागतिकीकरणाची लाट अशी आपटली की अर्थव्यवस्थेबरोबरच समाज, भाषा, संस्कृती, साहित्य, चालीरिती, रूढी-परंपरा, मानवी जीवनविषयक दृष्टिकोन या साऱ्यामध्ये या काळात आमूलाग्र बदल झाला. फ्रेंच समीक्षक हिप्पोलेन तेन म्हणतात, त्याप्रमाणे कोणतेही साहित्य हे देश, काल आणि परिस्थिती यांचे अपत्य असते. म्हणजेच लेखक ज्या समाजाचा घटक असतो त्या समाजाचे बरे-वाईट संस्कार त्याच्यावर व पर्यायाने साहित्यकृतीवर होत असतात. मराठी साहित्याचा इतिहास पाहता त्यात कालसापेक्षता जाणवते. या पार्श्वभूमीवर मराठी साहित्याचे विभाजन करावयाचे झाल्यास ढोबळ मानाने प्राचीन, मध्ययुगीन व आधुनिक असे होते आणि ज्या साहित्याला आपण आधुनिक असे संबोधतो त्यास उपरोक्त विशिष्ट प्रवृत्ती व प्रवाह यांचा समावेश होतो. उदा. नव साहित्य, साठोत्तरी साहित्य, दलित साहित्य, स्त्रीवादी साहित्य, ग्रामीण साहित्य, प्रादेशिक साहित्य, 21 व्या शतकातील साहित्य इ.

प्रस्तुत शोधनिबंधात जागतिकीकरण आणि ग्रामीण कादंबरी या विषयानुशंगिक अभ्यास केला जाणार आहे. 1990 नंतर ग्रामीण समाजजीवनात अनेक बदल घडून आले. खाजगीकरण, उदारीकरण व जागतिकीकरण याचा परिणाम समाजजीवनावर झाला.

जागतिकीकरणाचा विचार प्रामुख्याने आर्थिक क्षेत्राच्या संदर्भात केला जात असला तरी मानवी जीवन, त्याची भाषा, संस्कृती, राहणीमान ही सर्वच क्षेत्रे जागतिकीकरणामुळे प्रभावित झालेली आहेत. आधुनिकीकरणामुळे ग्रामीण भागात रस्ते, वीज, आरोग्य केंद्रे, शाळा, महाविद्यालये, टी. व्ही. संगणक, मोबाइल, आंतरजालाचे आगमन झाले. यामुळे खेड्याचा चेहरामोहराच बदलला. या आधुनिकतेमुळे कृषी संस्कृतीत जपल्या जाणाऱ्या नात्यागोत्यात अंतर पडत गेले. याचे चित्रण जागतिकीकरणाच्या म्हणजेच 1990 नंतरच्या ग्रामीण कादंबरीत येऊ लागले. महात्मा गांधीजींनी 'खेड्याकडे चला' असा संदेश दिला होता, त्याचे अध:पतन होताना दिसू लागले. 1960 नंतरच्या काळातील कादंबरी आशय आणि विषय बऱ्याच प्रमाणात सारखेच असल्याचे दिसत असले तरी 1990 नंतर मात्र मराठी कादंबरीचा विस्तार आणि खोली प्रकर्षाने या कालखंडात वाढलेली जाणवते. कृषी संस्कृतीशी असलेले नाते, निसर्गाशी असलेला ऋणानुबंध, कष्टमयता, दारिद्र्य, रूढी-परंपरा, श्रद्धा, शिक्षणाची ओढ यातही दिसत असली तरी शासनसंस्था, लोकशाही यांकडे या कादंबरीने संशयाने पाहिले आहे. गावगाडा नष्ट झाल्याचे दुःख, शेती व्यवसायाची झालेली पडझड, नोकरशाही, व्यापाऱ्यांनी केलेली लूट, प्रतिकूल निसर्ग, दुष्काळ, औद्योगिकीकरणाचा शेती व्यवसायावर झालेला परिणाम ग्रामीण कादंबऱ्यांमधून व्यक्त झाला आहे. ग्रामीण राजकारणाचे, जातीयवादाचे चित्रण, भाषा आणि संस्कृतीचा ऱ्हास या कालखंडातील कादंबऱ्यांमधून अधोरेखित होतो.

जागतिकीकरणानंतर आलेल्या काही निवडक ग्रामीण कादंबऱ्यांचा थोडक्यात आढावा घेता येईल.

१) आनंद विंगकर: 'अवकाळी पावसाच्या दरम्यानची गोष्ट':

या कादंबरीमध्ये शेतक-यांच्या दुरवस्थेची गोष्ट रेखाटली आहे. दुबारपेरणीचे संकट, कर्जबाजारीपणा, उराशी बाळगलेल्या छोट्या-छोट्या स्वप्नांचा होणारा चुराडा आणि कमालीची असहाय्यता या कादंबरीमधून व्यक्त होते. अवकाळी पाऊस, बोकडाचा बळी यामुळे हतबल झालेला

यशानाना अगतिक होऊन पत्नीला सोबत घेऊन आत्महत्या करतो, अशा स्थितीत पुढे येणारी समजूतदार व कणखर असणारी उषा ही मुलगी वाचकांच्या मनात घर करून राहते.

२) सदानंद देशमुख: 'तहान':

सदानंद देशमुख यांच्या 'तहान' आणि रवींद्र शोभणे यांच्या 'पांढर' या कादंबऱ्यांतून पाण्याची भीषण टंचाई व त्यामुळे निर्माण झालेले प्रश्न प्रकट झाले आहेत. मानवी जीवनाप्रमाणे दुष्काळाच्या झळा शेती, गुरेढोरे, पशुपक्षी, प्राणी यांनादेखील पोहोचते याचे प्रत्यंतर येते.

३) सदानंद देशमुख : 'बारोमास':

'बारोमास' ही शेतकऱ्यांच्या जीवनावर भाष्य करणारी कादंबरी आहे, या कादंबरीचा नायक एकनाथ हा सुशिक्षित असूनही त्याला नोकरी मिळत नाही तर त्याचा भाऊ मधू हाही सुशिक्षित असून त्यालाही नोकरी मिळत नाही. ग्रामसेवकाच्या नोकरीसाठी तो आपला मळा गहाण ठेवून कर्ज घेतो ते पैसे तो नोकरीसाठी आमदाराच्या पीएला देतो पण तेथे त्याची फसवणूक होते. नोकरीही मिळत नाही आणि शेतीही त्याच्या हातून जाते. त्यामुळे तो आत्महत्येचा प्रयत्न करतो. एकनाथची बायको ही शहरात वाढलेली असल्यामुळे ती एकनाथसोबत खेड्यात रमत नाही. शेतीमुळे सुधारणा होणार नाही हे लक्षात येताच ती एकनाथला कायमचे सोडून जाते. कर्जबाजारीपणा, बेरोजगारी, तरुणांची दिशाहीनता याचा वेध 'बारोमास' मधून घेतला आहे.

४) नामदेव माळी: छावणी:

'छावणी' या कादंबरीमधून लेखकाने चाराछावणीच्या निमित्ताने मानवी वर्तनाचा वेध घेतला आहे.

५) कृष्णात खोत: 'झडझिंबड':

'झडझिंबड' या कादंबरीमधून कृष्णात खोत यांनी पावसाचे रौद्र रूप प्रकट केले आहे. भय निर्माण करणारा पाऊस आता गावाला संकट होताना दिसतो. तर त्यांच्या 'रौंदाळा' या राजकीय कादंबरीतून सामान्य व्यक्तीला राजकारणाशी कशी सलगी करावी लागते, गावाला त्याचा विळखा कसा पडतो याचे प्रत्यंतर येते. 'ताम्रपट', 'तणकट', 'आमदार सौभाग्यवती', 'भिरूड' 'रौंदाळा' या राजकीय कादंबऱ्यांमधून राजकारणातील खुनशी डावपेचांचे वास्तववादी चित्रण नजरेस येते.

६) विश्वास पाटील : 'झाडाझडती', 'पांगिरा', डोंगरवाडी':

'झाडाझडती' कादबरीमधून विश्वास पाटील यांनी धरणग्रस्तांच्या गावहीन होण्याचा प्रवास उलगडला आहे. जो वाचकाला अस्वस्थ करतो. गेल्या काही वर्षात झपाट्याने बदलत गेलेल्या अनेक खेड्यांची 'पांगिरा' ही प्रतिनिधिक कहाणी आहे. 'पांगिरा' व 'डोंगरवाडी' या दोन खेड्यांची आणि त्यांचे महत्व नाहीसे करण्याच्या राजकीय व आर्थिक बदलाची ही कादंबरी आहे.

७) शंकर सखाराम 'एसइझेड':

'एसइझेड' मधून रायगडमध्ये आलेल्या एसइझेड सेझ विरुद्ध उभ्या राहिलेल्या लढ्याचे, संघर्षाचे चित्रण पुढे येते.

८) रमेश इंगळे उत्रादकर : 'निशाणी डावा अंगठा':

शिक्षणक्षेत्र हे मराठी कादंबरीला नवीन नाही. 'निशाणी डावा अंगठा' या कादंबरीमधून शिक्षण क्षेत्रातील वृत्ती-प्रवृत्ती, भ्रष्टाचार, अनागोंदी कारभार यांवर निशाणा साधला आहे.

९) राजन खान: 'रस-अनौरस':

निम्नस्तरावरील जीवनाबरोबरच चौकटीबाहेरील नव्या विषयाचा शोध घेत लेखकाने कादंबरी लेखन केले आहे. माणसाचे जगणे, मानवी नातेसंबंधांचा वेध घेणे हे त्यांच्या कादंबरीत येते. पोटाची आणि कामभावनेची भूकही त्यात आहे. धर्म आणि समाज व्यवस्थेपुढे हतबल झालेल्या स्त्रीचे दुःखही राजन खान कादंबरीत रेखाटले आहे.

१०) महादेव मोरे 'झोंबड':

या कादंबरीत लेखकाने विडी-कामगारांच्या जीवनावर प्रकाश टाकला आहे.

११) अशोक पवार:

गाव आणि घर नसलेल्या भटक्या समाजावर होणारा अन्याय, पोलिसी अत्याचार याबरोबरच जातपंचायती, व्यसनाधीनता यांचे वास्तव चित्रण कादंबरीतून चित्रित होते.

१२) अनिल सपकाळ : 'भडास':

या कादंबरीमधून रगतपितीच्या वेदना मांडत असताना मृत्युपेक्षाही एकटेपणाचे दु:ख भयंकर असते हे प्रकट केले आहे.

१३) कविता महाजन:

यांच्या कादंबऱ्यांतून दलित, आदिवासी, ग्रामीण पट प्राप्त होतो, समाजकारण, राजकारण आणि कुटुंबातील स्त्रीच्या आत्मसन्मानाचा शोध त्या घेतात.

१४) भालचंद्र नेमाडे : 'हिंदू: जगण्याची समृध्द अडगळ':

'हिंदू: जगण्याची समृध्द अडगळ' ही कादंबरी काळाचे अनेक तुकडे वाचकांपुढे ठेवते. काळाचा व्यापक पट या कादंबरीत आला आहे. या कादंबरीत परिवर्तन आणि परंपरा या दोन ध्रुवांना स्पर्श केला आहे. 'हिंदू' मध्ये खंडेरावच्या वास्तवातील अनुभवाबरोबरच जाणिवेच्या पातळीवरील चिंतनही आले आहे. स्वतः खंडेराव, त्यांचे कुटुंब, गाव, प्रदेश, विविध समाज घटक, स्त्रियांचे जीवन, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, राजकारण या संदर्भातील व्यापक पट कादंबरीमध्ये उभा केला आहे.

१५) सरदार जाधव : 'कोयता':

या कादंबरीतून ऊसतोड कामगारांच्या व्यथा आल्या आहेत. या व्यथा वाचून वाचकाचे मन हेलावते.

१६) शेषराव मोहिते: 'असं जगणं तोलाचं':

या कादंबरीमधून शेतकऱ्याच्या तीन पिढ्यांचा इतिहास आला आहे. पहिल्या पिढीतील हरिबा मुलांच्या लग्नासाठी सावकाराकडून कर्ज घेतो. पण सावकाराचे कर्ज त्याच्याकडून फिटत नाही दुसऱ्या पिढीतील गोपाळ कुटुंबासाठी जमीन घेऊन त्यात ऊस लावतो, गूळ काढतो पण भाव न मिळाल्यामुळे त्यातून फक्त पिकासाठी घेतलेले कर्जच फिटते, कुटुंबासाठी काहीच उरत नाही. तरीही तो न डगमगता स्वतःचे मन शेतीत गुंतवून घेतो. अत्यंत हलाखीची परिस्थिती असतानाही शेतीवरचे त्याचे प्रेम कमी होत नाही.

१७) मोहन पाटील: 'बस्तान':

या कादंबरीमधून शेती पूर्वीसारखी फायद्याची राहिली नसून शेती करून काही फायदा होत नसल्यामुळे तो शेतीचे प्लॉटिंग करून घेतो हा विषय मांडला आहे. कृषियोग्य जमीन अकृषी करून होणारे शहरीकरण आणि या शहरीकरणामुळे शेती व्यवसायावर आलेली गदा कादंबरीचा नायक रोखू पाहतो आहे.

१८) राजन गवस 'तणकट', ब-बळीचा':

'तणकट' या कादंबरीमधून दलितांवर होणाऱ्या अत्याचाराचे चित्रण आले आहे. राजकारणापुढे दलित समाज व सवर्ण समाज यांच्यातील संघर्ष कादंबरीतून अधोरेखित होतो. निखळ स्वार्थाच्या एकलक्षी पूर्तीसाठी लागणारी अविचारी आक्रमकता आणि मूल्यविवेकाच्या जोपासणीतून जन्मणारी असहायता यांतील चिरंतन चिंतन द्वंद्व 'बाळासाहेब शेडबाळे' आणि 'कबीर' या व्यक्तिरेखा 'तणकट' या कादंबरीत जिवंतपणे साकारतात.

'ब-बळीचा' या कादंबरीतून राजन गवस यांनी अनेकपदरी आशय व्यक्त केला आहे. या कादंबरीतील कल्लाप्पा कोणकेरी, आडव्याप्पा, तायबा अशा पात्रांच्या माध्यमातून वर्तमान ग्रामजीवन तपशीलवार आणि परिणामकारकपणे व्यक्त केले आहे. कादंबरीतील आशय डायरी, पत्रे, नोंदी, चित्रपटाची पटकथा अशा माध्यमांच्या आधारे व्यक्त केला आहे. आजच्या समाज व्यवस्थेत शेतकरी किंवा नोकरदार कोणीही असला तरी संवेदनशील मूल्यनिष्ठतेने माणसाला प्रस्थापित व्यवस्थेत कसे बळी जावे लागते याचे प्रातिनिधिक चित्रण 'ब-बळीचा' कादंबरीत केले आहे.

१९) भारत काळे ; 'ऐसे कुणबी भूपाळ':

या कादंबरीमधून एकत्र कुटुंब पद्धतीच्या ऱ्हासाचे चित्रण आले आहे.

२०) नामदेव कांबळे: 'सेलसाडा':

या कादंबरीमधून यंत्रयुगामुळे बलुतेदारांच्या जीवनावर झालेला परिणाम चित्रित केला आहे.

२१) महेंद्र कदम: 'धूळपावलं':

या कादंबरीत गावातील सरपंचपद मिळविण्यासाठी आबासाहेब देशमुख, रामभाऊ देशमुख व पंडितराव देशमुख कोणकोणते डावपेच खेळतात याचे प्रत्ययकारी चित्रण येते. राजकारणाच्या गुंतागुंतीमुळे गावात निर्माण झालेल्या समस्यांचा सर्वसामान्य लोकांच्या जीवनावर होणारा परिणाम, त्यातून निर्माण होणारी हतबलता, अगतिकता, अस्वस्थता अंतर्मुख करणारी आहे. राजकारणात घराणेशाहीची परंपरा चालविण्याच्या राजकीय महत्वाकांक्षामुळे गावाची स्थिती किती भयावह आणि विदारक होते याचे प्रतिबिंब या कादंबरीतून समर्थपणे उभे राहते.

२२) विजय शिरसाट: 'काळगर्भ':

ही ग्रामीण राजकीय जीवनदर्शन घडविणारी कादंबरी आहे. ग्रामीण भागातील पुढारी प्रस्थापित लोक गावात आपले वर्चस्व कायम रहावे म्हणून सवर्ण व बहुजन यांमध्ये सतत संघर्ष कसा धुमसत राहील याची जाणीवपूर्वक खबरदारी घेतात. बीड जिल्ह्यातील चांदणी या छोट्याशा खेडेगावातील राजकीय भावजीवनाशी संबंधित ही कादंबरी सत्ताधारी सवर्ण आणि दलित भिवा व जीवा यांच्यातील सत्तासंघर्षाची कहाणी मांडण्याचा साहसी प्रयत्न करते.

२३) रा. रं. बोराडे : 'इथं एक गाव होतं':

ज्येष्ठ ग्रामीण साहित्यिक रा. रं. बोराडे यांची प्रस्तुत कादंबरी उल्लेखनीय ठरते. जागतिकीकरणानंतर ग्रामीण जीवनाची, खेड्यापाड्याची झालेली वाताहत रा. शं. बोराडे यांनी चित्रित केली आहे.

२४) प्रवीण बांदेकर: 'चाळेगत':

गेल्या वीस-पंचवीस वर्षांतील सिंधुदुर्ग जिल्ह्यातील सामाजिक-राजकीय बदलाचा आडवा-उभा छेद देणारी प्रवीण बांदेकर यांची 'चाळेगत' ही कादंबरी कोकणातील सद्यस्थितीचा उदगार ठरली आहे. लेखकाने स्वतःशीच बोलावे किंवा दशावतारातील शंकासुराने कथा सांगावी असा कादंबरीचा फॉर्म आणि हा फॉर्म कोकणातल्या मातीतूनच त्यांच्यात रुजलेला आहे. कारण बांदा-सावंतवाडीचं तळकोकण हीच बांदेकरांची जन्मभूमी, कर्मभूमी आणि स्वप्नभूमी! त्यामुळेच या कादंबरीमधून तळ कोकणात पर्यटनाच्या नावाने आलेल्या हॉटेल्स, मासेमारीवरील ट्रॉलरचे संकट, राजकारणाचे होणारे व्यावसायिकरण यामुळे तळकोकणाचे अस्तित्व कसे धोक्यात आले आहे याचा या कादंबरी वेध घेतला आहे.

याबरोबर अशोक कौतिकराव कोळी (कुंधा), रवींद्र शोभणे (पडघम), आशा बगे, सानिया, शांता गोखले, आनंद जातेगावकर, बालाजी इंगळे, गणेश आवटे, कैलास दौडे, सुरेंद्र पाटील, वासुदेव मुलाटे, (विषवृक्षाच्या मुळ्या), प्रकाश केजकर (बारदान), शेषराव मोहिते (गणगोत), बाबू बिरादार (अंत:पुरुष), सीताराम सावत (देशोधडी), नागनाथ पाटील (लंबाडी), राजेश कुमार, विश्वनाथ कांबळे (गायरान), भीमराव वालचौरे (रानखळगी), (गराडा), माधव कोंडविलकर (डाक), मधु सावंत (राहू केतू), (जिनगानी), रमेश अंधारे (पागोरा), डॉ. मिलिद कांबळे (बांडगुळ), सुशील हसकटे (जोहार) या कादंबरीकारांच्या कादंबऱ्यांमधून जागतिकीकरणानंतर उद्ध्वस्त होत चाललेल्या ग्रामीण जीवनाचे चित्र रेखाटले आहे.

जागतिकीकरणानंतरची कादंबरी आधीच्या कादंबरीच्या तुलनेत अधिक व्यापक आणि चिकित्सक असल्याचे जाणवते. तंत्रज्ञानाचा समाजजीवनावर झालेला परिणाम या कादंबऱ्यांनी स्वीकारला असून बदलत जाणारे राजकारण, संस्कृती, शासनाच्या धोरणातील उदासीनता या कादंबरीने व्यापली आहे. वाढलेला औद्योगिकरणाचा ग्रामीण कृषी संस्कृतीवर झालेला विपरीत परिणाम या कादंबऱ्यांतून अधिक व्यापकपणे टिपला

आहे. आधुनिक तंत्रज्ञानाने माणसाची जागा घेतल्यामुळे ग्रामीण कौशल्य नसलेला माणूस कोलमडून पडलेला जाणवतो. याबरोबरच भाषा आणि संस्कृतीचा होत चाललेला ऱ्हास या कादंबऱ्यांमधून अभिव्यक्त झालेला आहे.

डॉ. भालचंद्र नेमाडे म्हणतात त्याप्रमाणे गेल्या दोनतीन दशकांतल्या सामाजिक स्थित्यंतरामुळे झपाट्याने कोलमडू लागलेली समग्र जीवनव्यवस्था सगळ्या समाजाच्या अंत:स्तरावरच्या सगळ्या जाणिवांनिशी कवेत घेणारी बृहद कादंबरी निर्माण होणे ही काळाची गरज आहे. त्यासाठी समकालीन राहून डोळसपणे केलेल्या सामाजिक व राजकीय निरीक्षणाबरोबरच समाजशास्त्र, इतिहास, मानववंशशास्त्र, अर्थशास्त्र, विज्ञान व तंत्रज्ञान इ. पूरक विद्याशाखांचा चिकित्सक अभ्यासही आवश्यक आहे.

निष्कर्ष:

जागतिकीकरण आणि ग्रामीण कादंबरी हा विषय अभ्यासताना पुढील मुद्दे ठळकपणे दिसून येतात.

१) यापूर्वीच्या कालखंडातील कादंबऱ्यांमध्ये विशिष्ट पात्र केंद्रस्थानी असल्याचे दिसते ज्याला सामान्यपणे नायक नायिका असे संबोधतो परंतु अलीकडच्या काळात हे चित्र बदलल्याचे दिसते.

२) या कादंबऱ्यांमध्ये विशिष्ट पात्र नायक नायिकेच्या स्वरूपात आढळत नाहीत तर या कादंबरीच्या केंद्रस्थानी मोठ्या आकाराचा समूह येऊ लागला आहे.

3) कादंबऱ्यांमध्ये येणारे पात्र विशिष्ट समाजाचे प्रतिनिधी म्हणून समोर येतात.

४) संबंधित काळातील कादंबऱ्यांमध्ये एक विशिष्ट प्रकारची विकेंद्रीकरणाची प्रवृत्ती मोठ्या प्रमाणात दिसते.

५) समूहाच्या इच्छा आकांक्षा, स्वप्नांचे दर्शन आजची कादंबरी घडवते.

६) विशिष्ट व्यवसाय, समस्या, क्षेत्र, समूह, पोटसमूह निवडून त्याचे कथात्म सादरीकरण या कादंबऱ्यांतून केले जाते.

७) खपविक्री कादंबरी हे विषयकेंद्री कादंबरीचे महत्त्वाचे प्रारूप या काळात विशेष लोकप्रिय होऊ लागल्याचे दिसते.

८) एकूणच कथा, निवेदन आणि भाषा या तीनही पातळ्या व त्यांच्या परस्पर संबंधांतून कादंबरी आकाराला येत असते. या काळातील कादंबरीने पहिल्या दोन पातळ्यांवर महत्वाचे असे प्रयोग केले आहेत. मात्र भाषेच्या पातळीवर काही अपवाद वगळता फारसे प्रयोग केल्याचे आढळत नाही.

९) अगदी ग्रामीण राजकारणापासून ते धरणग्रस्तांपर्यंत विविधांगी कंपन्यांमधील नोकरीपासून ते जाहिरात उद्योगांपर्यंत विविधांगी चित्रणे या कादंबऱ्यांमधून चित्रित होतात.

संदर्भ:

1. कोतापल्ले नागनाथ (संपा.), 'जागतिकीकरणाचे मराठी साहित्य', प्रा. लुलेकर गौरव ग्रंथ.
2. ठाकूर रवींद्र, 'मराठी ग्रामीण कादंबरी', स्नेहवर्धन प्रकाशन, पुणे द्वितीयावृत्ती, २००१.
3. नेमाडे भालचंद्र, साहित्य, संस्कृती आणि जागतिकीकरण', लोकवाङ्मय गृह, मुंबई, 2001.
4. मुलाटे वासुदेव, 'ग्रामीण साहित्य: चिंतन आणि चर्चा' स्वरूप प्रकाशन, औरंगाबाद द्वितीयावृत्ती, २०१०.
5. शोभणे रवींद्र, 'जागतिकीकरण समान आणि मराठी साहित्य, विजय प्रकाशन, नागपूर.
6. साळुंखे रामचंद्र, ग्रामीण कादंबरी: आकलन आणि विश्लेषक, कैलास पालिकेशन, औरंगाबाद, प्रथमावृत्ती-२०१३.

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि ग्रामीण साहित्य प्रवाह

डॉ.निर्मला वसंतराव मोरे
मराठी विभाग, राजे रामराव महाविद्यालय जत, जि. सांगली

गोषवारा :

मागच्या अडीच-तीन दशकात जागतिकीकरण हा विषय सर्वार्थाने आपल्या चर्चेच्या केंद्रस्थानी आहे. आजच्या घडीला हा विषय महत्त्वाचा आहे. तो बघून आपल्याला मराठी साहित्याच्या स्थित्यंतराचा विचार करता येणार नाही. कारण जागतिकीकरण आंतरराष्ट्रीय स्तरावरील शास्त्रीय संकल्पना आहे. जागतिकीकरणाने आपल्या समग्र अ शा आकृती बंध आला. नवा आकार दिल्यामुळे एका नव्या संस्कृतीचा उदय झाला आहे. ही संस्कृती तंत्रज्ञानाने व्यापलेली असल्यामुळे आपले संस्कृती वैविध्य आणि भाषाशैली तसेच साहित्यावर खूप मोठ्या प्रमाणात परिणाम झाला. साहित्याच्या क्षेत्रात तर ही चर्चा विविध स्वरूपाची आहे. यावेळी जागतिकीकरण म्हणजे काय? तर जागतिकीकरण म्हणजे मक्तेदारी भांडवलशाही आक्रमक नवउदारमतवादी पवित्र होय.

ग्रामीण साहित्याचा प्रवाह 1960 नंतर अस्तित्वात आला. भारत देश हा खेड्यांचा देश आहे. या खेडेगाव हा शब्द रूढ कसा झाला, खेडे म्हणजे खेडणे म्हणजे कसणे. शेती कसणे. या कृषी संस्कृतीचे प्रतिबिंब मराठी ग्रामीण साहित्यात दिसून येते. म्हणून या साहित्याला "ग्रामीण वास्तवातून फूलून येणारे साहित्य" ग्रामीण साहित्याचा चेहरा आहे. तसेच या साहित्याने खेड्यातील माणसाच्या मनाचा शोध घेतला आहे. ग्रामीण विविध अवस्थांचे वर्णन केलेले पहावयास मिळते. मराठी ग्रामीण साहित्यातील कविता कथा कादंबरी या साहित्य प्रकारावर जागतिकीकरणाचा कसा परिणाम झाला याचा विचार प्रस्तुत शोधनिबंधामध्ये करावयाचा आहे.

प्रस्तावना :

अलीकडच्या काळात जागतिकीकरण हा परवलीचा शब्द बोलला जात आहे. जागतिकरणाविषयी बोलणे ती तेवढी सोपी गोष्ट नाही याविषयी बरेच काही बोलले व लिहिले जाते. त्याबद्दल आपण नेमकी कोणती भूमिका घ्यावी,असा प्रश्न सतावत असतो. कारण प्रत्येक गोष्टीला एक चांगली आणि दुसरी वाईट. तसेच जागतिकीकरणाच्या बाबतीतही घडत आहे काही लोक जागतिकीकरणाच्या बाजूने आग्रही आहेत. तर काही लोक जागतिकीकरणाला कडकडून विरोध करणारे आहेत. नवे विचार नव्या जाणिवा या लोकांच्या पचनी पडत नाही पण त्या कालांतराने त्या गोष्टीची सवय होते तसेच जागतिकीकरणाच्या बाबतीत झाले.

जागतिकीकरण ही संकल्पना आंतरराष्ट्रीय पातळीवरील आहे. या संकल्पनेत माणसापेक्षा वस्तू मोठी झाली म्हणजे ते भांडवल धार्जीणी आहे. ही संकल्पना अर्थशास्त्रीय आहे. याचा भारतीय अर्थव्यवस्थेवर कसा परिणाम झाला. तसा तो मराठी साहित्यावरही जागतिकीकरणाचा परिणाम झाल्याशिवाय राहिला नाही. मराठी साहित्यात 1960 नंतर वाङमयीन प्रवाह निर्माण झाले. त्यात दलित, स्त्रीवादी, आदिवासी, ग्रामीण या प्रवाहांनी त्याच्या साहित्यात त्या त्या समाजाच्या समस्यांचे विवेचन केले. त्यावेळी जागतिकीकरणाचा ग्रामीण साहित्यावर काय परिणाम झाला? त्याचे स्वरूप कसे होते या प्रश्नांची उत्तरे ही वाचकांनी शोधली पाहिजेत. तसेच साहित्यिकांनीही जागतिकरणाचे स्वागत करून आपल्या साहित्यकृतीत बदल केले आहेत काय होते याचा विचार प्रस्तुत शोधनिबंधात करावयाचा आहे.

उद्दिष्टे:

1. जागतिकीकरणामुळे बदलेल्या मानवी वृत्ती-प्रवृत्ती यांचा ग्रामीण साहित्यकृती आलेल्या प्रतिबिंबाचा शोध घेणे.
2. जागतिकीकरणात निर्माण झालेल्या ग्रामीण सामाजिक समस्यांचा शोध घेणे.
3. जागतिकीकरणामुळे ग्रामीण साहित्यातील कविता कथा कादंबरी यांच्याशी अभिव्यक्तीत झालेल्या बदलांचा शोध घेणे.
4. जागतिकीकरणामुळे ग्रामीण साहित्याच्या साहित्यिकांचा समोर कोणती आव्हाने उभी ठाकली आहेत. याचा शोध घेणे.

संशोधन पद्धती- या शोधनिबंधासाठी वर्णनात्मक संशोधन पद्धतीचा उपयोग केला आहे त्याच आधारे जागतिकीकरणाचा ग्रामीण साहित्यावर काय परिणाम झाला यासाठी विश्लेषण पद्धती ही वापरली जाणार आहे.

वरील उद्दिष्टांच्या अनुषंगाने ग्रामीण साहित्यामध्ये जागतिकीकरणाच्या समस्याला ग्रामीण समाज कसा सामोरा जात आहे याचे प्रतिबिंब पहावयास मिळते. ग्रामीण साहित्याचा मुख्य आधार घटक म्हणजे गाव, मग या गावातील समाज जीवन निसर्ग शेती माती आणि प्राणी जीवन चित्रीत झालेली असते. या साहित्याचे गाव गाड्याशी नाळ जोडलेली असते. त्यामुळे या साहित्याला मराठी साहित्यात एक वेगळे स्थान प्राप्त झालेले आहे. एक गोष्ट या ठिकाणी स्पष्ट होते. गेल्या दोन दशकात ग्रामीण साहित्याच्या प्रांतात नव्याने संवेदनशील लेखकांची एक पिढी उदयाला आली. त्यांनी जागतिकीकरणाचा विपरीत परिस्थितीला सामोरे जात आपल्या भाषा, साहित्य, संस्कृती यांचा विचार करून ग्रामीण साहित्यातील एका नव्या पर्वाचा शोध घेतला. व त्यानुसार आपल्या लेखन शैलीत परिवर्तन केले. जागतिकीकरणाच्या भांडवलशाही दुनियेत ग्रामीण आणि नागरी असे दोन भेट झाले. पण नागरी लोक भागातील लोक असे सर्व सुविधांचे लाभार्थी झाले. पण ग्रामीण भागाच्या समस्या मात्र कायम राहिल्या. त्याचे प्रतिबिंब ग्रामीण साहित्यात पहावयास मिळते. माणसाचे मूल्य संपवणारी यंत्रणा व व्यवस्था यामुळे माणसांमध्ये कोरडेपणा आला. 1990 नंतरच्या दशकात अविष्कृत होताना दिसतो.

ग्रामीण कविता:

जागतिकीकरणाचा ग्रामीण कवितेवर कसा परिणाम झाला. याचा विचार करताना या काळातली कविता खूपच समृद्ध झालेली दिसते. जागतिकीकरणाचा ग्रामीण समाजावर झालेल्या परिणामांचे वास्तव चित्रण कवितेचा होताना दिसते. या काळात इंद्रजीत भालेराव,बाबुराव

उपाध्ये,जगदीश कदम,साहेबराव पाटील, युवराज पवार, महेश मोरे, कैलास दौंड शिवाजी मरग ळ, शशिकांत शिंदे, चंद्रशेखर मलम मट्टे,भरत दौंडकर, प्रमोद माने यासारख्या नव्या दमाच्या कवींच्या कवितेमधून ग्रामीण जीवनाची पडझड व परिवर्तन आणि समस्या यांचे भीषण समाज वास्तव चित्रण करताना दिसते. या काळातील इंद्रजित भालेराव हे एक समर्थ नाव लोकप्रिय होताना दिसते. त्यांचे पीक पाणी (1989), आम्ही काबाडाचे धनी(1991), दूर राहिला गाव (1994), पेरा,टाहो (2004) हे काव्यसंग्रह प्रकाशित झाले. त्यांच्या 'पीकपाणी' या काव्यसंग्रहातून शेतीशी इमान राखून कसे जगावे याचे वास्तव चित्रण करणाऱ्या कविता समाविष्ट झाल्या आहेत. ते एका कवितेत म्हणतात की,

" लाजरेपणा बुजरेपणा बाजारात ईक
घेऊ नको फाशी बाबा खाऊ नको ईख
मागं मागं नको पुढ सरकायला शिक
आत्महत्या नको हत्या करायला शिक"

अशा ग्रामीण समाजाला दिलासा देणाऱ्या अनेक कविता त्यांनी लिहिल्या आहेत. याशिवाय विठ्ठल वाघ, लक्ष्मण महाडिक, विजय सोसे, श्रीकांत देशमुख, नारायण सुमंत अशा अनेक कवींनी जीवनाचे वास्तव आपल्या कवितेतून रेखाटले आहे. पण एवढे मात्र खरे की, जागतिकीकरणाच्या नावाखाली कृषि जीवन उद्ध्वस्त होत आहे. नवनवीन कंपन्या त्यांची धोरणे यामुळे शेतकरी हताश होऊन मृत्यू सत्राकडे वळताना दिसतो आहे. ग्रामीण जीवनातील आनंदाचे, माणुसकीचे, सहकार्याचे संबंध नाहीसे झालेले दिसतात. आजच्या कवितेचे शोषण भ्रष्टाचार वेदनेची चित्र कवी रेखाटू लागले आहेत. पण त्याच बरोबर शोषणाविरुद्ध बंडखोर आणि प्रतिकाराच्या भाषेत व्यक्त होऊ लागले आहेत. एकूणच काय ग्रामीण कवितेतून शोषणाविरुद्धची प्रखर जाणीव, बंडखोरीची तीव्र भावना प्रकट होऊ लागली आहे. ग्रामीण समाजाच्या वेदनेचे कुळ, दारिद्र्याची कारणे आजची कविता शोधताना दिसते.

ग्रामीण कथा:

मौखिक परंपरेने चालत आलेली ग्रामीण कथा ही लिखित स्वरूपात उदयास आली. त्यानंतर तिच्यात अनेक स्थित्यंतरे घडली. जागतिकीकरणाच्या काळात ग्रामीण कथा ही आधुनिक बनली. एका बाजुनी ग्रामीण समाजाचे वास्तव भीषण आहे. याचे भान ठेवून ग्रामीण कथा कसदार बनते. 1990 नंतरच्या काळात ग्रामीण कथेच्या रूपात कायापालट झाला. या काळात आसाराम लोमटे,राजन गवस, अशोक कौतिक कोळी, विलास सिंदगीकर, प्रतिमा इंगोले, लक्ष्मीकांत देशमुख, सदानंद देशमुख, अशी नवी पिढी कथा लेखन करीत आहे. त्यांच्या तथा लेखनातून त्यांनी ग्रामीण समस्यांचा वेध घेतला आहे. या लेखकांच्या लेखनाचा आवाका मोठा आहे. एखाद्या समस्येचा वेध घेताना तो एक पदरी न घेता ते व्यापक पातळीवर जाऊन बहुअंगी पद्धतीने घेताना दिसतात. त्यावेळी त्यांच्या लेखनात व्यक्तिचित्रण, वातावरणातील बदल, राजकीय, सामाजिक बदल याचे आकलन त्यांच्या लेखनात येते म्हणून " कोणताही वास्तववादी संवेदनशील लेखक आपल्या काळातील वातावरणात समाजात जीवन जगत असतो. तो अनुभव घेत असतो, त्याचे प्रतिबिंब त्याच्या साहित्यात उमटणे साहजिक असते " अशा अनेक कथाकारांच्या लेखनात त्यांचा अनुभव आपल्याला दिसून येतो.

लक्ष्मीकांत देशमुख यांच्या पाणी! पाणी!! कथासंग्रहात पाणी समस्या अनेक अंगाने अनेक कथा लिहिल्या आहेत. घोटभर पाण्यासाठी लोकांना आपला कधी कधी जीव गमवावा लागतो. तर कधी स्त्रियांना आपले चारित्र्य पणाला लावावे लागते. याचे चित्रण या कथासंग्रहात केले आहे. देशाला स्वातंत्र्य मिळून इतकी वर्षे झाली तरी ग्रामीण लोकांना पिण्याच्या पाण्यासाठी यातायात करावी लागते. लोकांना पिण्याचे पाणी सर्वांनाच उपलब्ध होत नाही. त्यासाठी त्यांना भटकंती करावी लागते. यासारख्या अनेक समस्या ग्रामीण भागातील लोकांना आजही भेडसावत आहे.

आजची ग्रामीण कथाही ग्रामीण जीवनातील प्रश्नाकडे किती गंभीर व जागरूकपणे पाहते.याचे प्रत्यंतर येते. याशिवाय मथु सावंत यांचा (पाणबळी), रेखा बैजल(शिवार), मंजुषा सावरकर(डांगोरा), अशा ग्रामीण कथा ग्रामीण लेखिकांनी आपल्या लेखणीच्या साहाय्याने शिक्षण, शोषण, स्त्रीजीवन, राजकारण या सर्व विषयांना स्पर्श केला आहे.

या कालखंडातील ग्रामीण कथेचा विचार करता बदलत चाललेल्या ग्रामीण समाजजीवनाचे प्रश्न संपत नाही. तर ते वाढतच आहे. त्याचे स्वरूपही बदलत आहे. ग्रामीण भागातील बळीराजा समोर नवनवीन समस्या आ वासून उभी आहेत. या सर्व समस्यांना कथारूप देण्याचा प्रयत्न केलेला आहे. या काळातील कथा या कल्पना, अद्भुतता यापेक्षा वास्तवता आणि स्वानुभवाचे निगडित आहे. जागतिकीकरणाचे व्यामिश्र रूप काळाच्या ओघात येणाऱ्या संक्रमणाचे आव्हान पेलून ग्रामीण कथा स्वागत करीत आहे.

ग्रामीण कादंबरी :

1990 नंतरच्या कालखंडात सगळीकडे जागतिकीकरणाचे वारे वाहू लागले. व 'खाऊजा' संस्कृतीचा उदय झाला. त्याच बरोबर जागतिकीकरणाचा प्रवाह हा ग्रामीण आणि शहरी या दोन्ही पातळीवर होता. याचे महानगरात लोक लोण बसले होते. पण ते आता खेड्यापाड्यापर्यंत पोहोचले. व आर्थिक मूल्य व्यवस्थेला व पारंपारिक व्यवस्थेला तडे गेले. एवढेच नाही तर ग्रामीण वास्तवही बदलले. शेतकऱ्याची शेती करण्याची मानसिकता राहिलेली नाही. तो शेतीतून बाहेर पडून नोकरी-व्यवसायाच्या मागे धावू लागला. खेडी ओस पडू लागली. गावाकडच्या माणसाची ही सुखासाठी धावपळ सुरू झाली. आणि प्राचीन ग्रामसंस्कृती लयाला गेली. त्याचे प्रतिबिंब ग्रामीण कादंबरी दिसू लागले.या काळात रा. रं.बोराडे (पाचोळा), रंगनाथ पठारे(ताम्रपट), सदानंद देशमुख(तहान, बारोमास), विश्वास पाटील(झाडा-झडती), शेषराव मोहिते(धूळ पेरणी), कृष्णात खोत(रौंदाळा, (झडझिंबड), आनंद विंगकर(अवकाळी पावसाच्या दरम्यानची गोष्ट) अशा अनेक कादंबऱ्यांतून शिक्षणव्यवस्था, शेती, ग्रामसंस्कृती,सहकार जाती संस्था,प्रशासन राजकारण,समाजकारण इ. समाज व्यवस्थांशी शोषक घटकांच्या डावपेच यामुळे मेटाकुटीला आलेला ग्रामीण समाज यांचे चित्रण आले आहे. सर्वसामान्य लोकांच्या दैनंदिन जगतानाच्या समस्या भयानक आहेत. मनोरंजनात रमणारी कादंबरीही सामाजिक वास्तवाचे भान घेऊन पुढे आल्याचे दिसते.

राजन गवस यांची ब-बळीचा ही ग्रामीण कादंबरी पारंपारिक कादंबरी पेक्षा एक नवा प्रयोग जन्माला आलेला दिसतो.एकोणिसाव्या शतकातील शेतकऱ्यांच्या व गावकऱ्यांच्या तसेच गावगाड्याच्या -हासाची कहाणी आहे. या कादंबरीचा नवा प्रयोग म्हणजे या कादंबरीतील कथानक हे तीन पेढी आहे. म्हणजेच म्हणजे तीन कथानकांचा समावेश आहे. दुसरे असे की या कादंबरीला अनेक आरंभ आहे पण शेवट नाही. या कथांतर्गत कथा हा तिचा विशेष आहे. त्यामुळे या कादंबरीला तीन नायक आहे. दिपू शेठ, कल्लाप्पा कोणकेरी, आडव्याप्पा हे तीनही पात्रे आपापल्या भोवतालचा गुंता सोडवण्याचा प्रयत्न करतात. या कादंबरीत संवादा बरोबर दैनंदिनी,डायरी, पत्र यांचा समावेश आहे. त्यामुळे पारंपारिक कादंबरी पेक्षा ब - बळीचा ही कादंबरी एक नवे वेगळे घेऊ वळण घेऊन साकारते. या कादंबरीत हजारो शेतकऱ्यांच्या जीवन व्यथा, घालमेल, मरणप्राय जगणं याचा जिताजागता अनुभव या कादंबरीत आहे या कादंबरीचे आणखी एक वैशिष्ट्य म्हणजे ही कादंबरी वाचकाला गुंतवून ठेवते.

जागतिकीकरणाच्या विळख्यात अडकलेल्या ग्रामीण भागातील अनेक समस्यांचे चित्रण करणारे ग्रामीण कादंबरीकार हे ग्रामीण भागात वाढलेले व स्वानुभवातून लेखन करणारे आहेत. जागतिकीकरणाच्या शोषणातून ग्रामीण समाज मुक्त झाला पाहिजे असे वाटते. कारण भांडवलशाही अर्थव्यवस्थेमुळे ग्रामीण भागात असंख्य प्रश्न निर्माण झालेले आहेत. या सर्व प्रश्नांनी व्यापलेल्या आजच्या वास्तवाला सामोरे जाण्याचा प्रयत्न आजच्या काळातील कादंबरीकार करीत आहेत.

निष्कर्ष :

1) जागतिकीकरणामुळे माणसाचे मूल्य कमी झाली आणि वस्तूचे मूल्य वाढले.
2) जागतिकीकरणाचा ग्रामीण जीवनावर इतका परिणाम झाला आहे की, ग्रामीण लोकांच्या समोर सामाजिक कौटुंबिक अनेक समस्या निर्माण झाल्या आहेत
3) जागतिकीकरणामुळे शासनाच्या चुकीच्या धोरणामुळे शेतकरी हताश हतबल होऊन मृत्यू सत्राकडे वळलेला दिसतो.
4) 1990 नंतरच्या काळात ग्रामीण कविता समाजाच्या नवनवीन समस्यांचे चित्रण करताना दिसतात.
5) मराठी ग्रामीण कथेचा विचार करता जागतिकीकरणामुळे ग्रामीण त्याचे स्वरूपही बदलले आहे. मनोरंजनात रमणारी कथा ही समाज वास्तवाचा भान घेऊ पाहत आहे.
6) जागतिकी करणाच्या भांडवलशाही व्यवस्थेत ग्रामीण समाज मात्र भरडला जात आहे. याचे प्रतिबिंब ग्रामीण कादंबरी चित्रि त झालेले पहावयास मिळते.

संदर्भ ग्रंथ :

1) जागतिकीकरण आणि मराठी साहित्य, नागनाथ कोत्तापल्ले / दत्ता भगत, सायन पब्लिकेशन लिमिटेड, पुणे
2) ग्रामीण साहित्य: स्वरूप आणि समस्या, आनंद यादव, मेहता पब्लिशिंग हाऊस पुणे,
3) पीक पाणी, इंद्रजीत भालेराव, मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे
4) ग्रामीण कथा स्वरूप आणि विकास, वासुदेव मुलाटे स्वरूप प्रकाशन औरंगाबाद
5) मराठवाड्याची कथा, वासुदेव मुलाटे, साहित्यसेवा प्रकाशन, औरंगाबाद
6) ग्रामीण मराठी कादंबरी, रवींद्र ठाकूर, मेहता पब्लिकेशन हाऊस कोल्हापूर

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि ग्रामीण साहित्य प्रवाह

प्रा.आल्हाट श्रीकांत गोपीनाथ[1], प्रा.कोठावळे लक्ष्मण भिकाजी[2]
[1]मराठी विभाग प्रमुख, श्रीढोकेश्वर कॉलेज, टाकळी ढोकेश्वर, ता.पारनेर, जि.अ.नगर.
ईमेल-shrialhat@gmail.com
[2]सहायक प्राध्यापक,श्रीढोकेश्वर कॉलेज, टाकळी ढोकेश्वर, ता.पारनेर, जि.अ.नगर.
ई मेल- laxmankothawale01@gmail.com

जागतिकीकरण म्हणजे काय:

स्थानिक वस्तूंची किंवा घडामोडींची जागतिक स्तरावर स्थानांतरणाची प्रक्रिया. ह्या संज्ञेचा उपयोग बहुधा आर्थिक जागतिकीकरणाच्या संदर्भात केला जातो. जागतिकीकरण म्हणजे देशाच्या अर्थव्यवस्थेचे जगाच्या अर्थव्यवस्थेबरोबर एकत्रीकरण करणे.

जागतिकीकरण म्हणजे.

१) ज्या ठिकाणी स्वस्त आणि रास्त कच्चा माल आणि इतर स्रोत उपलब्ध असतील , अशा जगातील कोणत्याही ठिकाणी उत्पादन घेणे .

२) जगातील कोणत्याही कोपऱ्यापर्यंत वस्तू आणि सेवा पुरविणे , संपूर्ण जग हीच बाजारपेठ असणे .

३)देशाच्या बृहतलक्षी घटकांपैकी 'परकीय क्षेत्र हे सर्वात महत्त्वाचे क्षेत्र असणे .

जागतिकीकरणाच्या व्याख्या:

१. हेराड, टाथेल आणि रॉबर्ट: "जागतिकीकरण ही आंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्थेचे एका काल्पनिक विश्व अर्थ व्यवस्थेकडे होणारे संक्रमण दर्शवणारी संकल्पना आहे."

२. एडवर्ड हार्मन: "जागतिकीकरण ही सीमापार उत्पादने, भांडवल सेवा आणि आर्थिक क्रिया प्रक्रियांच्या वाढत्या प्रवाहाला लक्ष करणारी प्रक्रिया आहे".

३. बायलिस आणि स्मिथ: - "जगाच्या विविध भौगोलिक क्षेत्रात राहणा-या लोकांमध्य वाढते सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक व्यापारी, सांस्कृतिक संबंध दर्शविणारी व्यापक प्रक्रिया म्हणजे जागतिकीकरण होय."

४. कॉक्स आणि कॉटन: "जागतिक भांडवलशाही मधुन निर्माण झालेल्या बहुराष्ट्रीय कंपन्या, संस्था यांचा प्रभाव असणारी, आंतरराष्ट्रीय आणि आर्थिक व्यवस्थेत राष्ट्राची भूमिका मर्यादित करणारी प्रक्रिया म्हणजे जागतिकीकरण होय.'

५. स्मिथ: "आंतरराष्ट्रीय आणि सर्वांसाठी स्वातंत्र्य या मूल्यांचा समावेश असणारी आणि मुक्त व्यापार आणि अर्थव्यवस्थेचे फायदे सर्वांना मिळून देणारी सर्वसमावेशक प्रक्रिया आहे."[३]

६. जागतिक बँक: जागतिकीकरण म्हणजे जागतिक अर्थव्यवस्था निर्माण करण्याची प्रक्रिया होय.

जागतिकीकरणाची संकल्पना समजून घेतल्यानंतर आपणाला जागतिकीकरण आणि मराठी साहित्यामधील ग्रामीण साहित्य यांचा परस्परांवर झालेला परिणाम समजून घेता येईल. तत्पूर्वी अगोदर ग्रामीण साहित्य ही संकल्पना समजून घ्यावी लागेल.

ग्रामीण साहित्य संकल्पना व स्वरूप: १९६० नंतर मराठी साहित्यात जे अनेक प्रवाह(दलित, स्त्रीवादी, आदिवासी वगैरे) निर्माण झाले त्यात ग्रामीण साहित्य हा एक महत्त्वाचा प्रवाह मानला जातो. ग्रामीण साहित्याने जीवनाचे नवे क्षेत्र आणि नवा आशय मराठी साहित्यातील वाचकांसाठी खुला करून दिलेला दिसतो. एका अर्थी मराठी साहित्याला समृद्ध करण्याचा प्रयत्न ग्रामीण साहित्याने केलेला दिसतो.

ग्रामीण साहित्य ही संकल्पना समजून घेताना प्रथम ग्रामीण ही संकल्पना समजून घेणे महत्त्वाचे वाटते ग्रामीण या शब्दातून ग्राम- गाव खेडे इत्यादी गोष्टी लक्षात येतात. पूर्वी गाव हे गावगाड्यावर आधारलेले होते गावगाड्यांमध्ये अलुतेदार, बलुतेदार, दलित, फिरस्ते इ.चा समावेश होता. हे सर्वजण गावपातळीवर एकमेकांशी निगडित व परस्परांवर अवलंबून होते. शेती हा खेड्यातील मुख्य व्यवसाय होता. शेती हेच शेतकऱ्यांचे उत्पन्नाचे मुख्य साधन होते .शेती करणारा शेतकरी तर त्याला शेतीसाठी लागणारे औजारे आणि गृहोपयोगीयोगी वस्तू तयार करून देणारे सुतार, लोहार, चांभार, मांग, कुंभार, सोनार इ. जाती किंवा व्यावसायिक, सेवा पुरवणारे न्हावी, रामोशी, धोबी, कोळी, मनोरंजन करणारे जोशी, पिंगळा, वासुदेव इ. या सर्वांना ग्रामीण जीवनामध्ये महत्त्वाचे स्थान होते. शेतकऱ्याकडे शेतीतून उत्पन्न आल्यावर तो त्यातून विशिष्ट हिस्सा किंवा वाटा या सर्व घटकांना देत असायचा, त्यालाच "बलुते" असे म्हटले जात. कामाचा किंवा श्रमाचा मोबदला म्हणून बलुते दिले जात होते. या बलुत्यावर या जाती आणि व्यावसायिकांचा उदरनिर्वाह चालायचा. अशाप्रकारे ग्रामीण म्हणजे गावामधील आणि ग्रामीण जीवन म्हणजे या लोकांचे खेड्यातील रूढी-परंपरा लोकश्रद्धा यातून सण, उत्सव, जत्रा, नवस-सायास, लग्नसमारंभ इत्यादींचा समावेश होत होता, तसेच ग्रामीण संकल्पनेमध्ये नद्या- नाले, विहिरी, झाडे-झुडपे, विविध पिके, माणूस, माणसांचे स्वभाव, गुरं-ढोरं, बकऱ्या, कोंबड्या, गाढव, कुत्रे ,किडे, मुंग्या, पशु,पक्षी, साप, गांडूळ या सर्वांनाच महत्त्वाचे स्थान आहे. ग्रामीण जीवनामधील वरील सर्वच घटक साहित्यामध्ये म्हणजे कथा, कादंबरी, कविता यांच्या रूपाने प्रतिबिंबित झालेले दिसतात.

कालांतराने ग्रामीण जीवनामध्ये बदलत्या काळानुसार विविध परिवर्तने घडून आली. स्वातंत्र्योत्तर काळात बलुतेदारी व्यवस्था मागे पडली लोकशाही व्यवस्थेचा स्वीकार, शिक्षणाचा प्रसार, यंत्र युगाचे आगमन आणि औद्योगिकीकरण यामुळे गावपातळीवरील व्यवसायिक बलुतेदारांचे धंदे डबघाईला आले, बेरोजगारी आली, दुष्काळामुळे शेतीत पिकेनासे झाले. शेतकऱ्यांमध्ये दारिद्र्य, कर्जबाजारीपणा वाढला, खेड्यातून शहराकडे स्थलांतर होऊ लागले ,पुढे जागतिकीकरणानंतर शेतकऱ्यांचे दुःख वाढत गेले, शेतकऱ्यांच्या आत्महत्या सुरू झाल्या, त्या वाढू लागल्या ,खेड्यातल्या

लोकांना शोषणाची जाणीव व्हायला लागली. याला जबाबदार घटकांचा ते शोध घेऊ लागले ,शेतकऱ्यांच्या मनात संघर्षाची, विद्रोहाची भावना निर्माण होऊ लागली आणि मग ही संघर्षाची आणि विद्रोहाची भावना ग्रामीण साहित्या मधून उमटू लागलेली दिसते.

अशा प्रकारे ग्रामीण साहित्याचा एकूण विचार केल्यावर आपल्याला ग्रामीण साहित्यामधील कथा, कादंबरी, कविता आणि नाटक या विविध साहित्य प्रकारांच्या अनुषंगाने ग्रामीण साहित्याचा प्रकर्षाने विचार करता येईल.

ग्रामीण कथा साहित्य प्रवाह:- मराठी कथेचा विचार करत असताना जागतिकीकरणाने निर्माण केलेल्या जटील, भयावह समस्यांना दुर्लक्षून चालत नाही. जागतिकीकरणामुळे भारतीय समाज-सांस्कृतिक प्रारुपात मूलगामी बदल झाले. बाजार आणि वस्तूकरणाला महत्त्व प्राप्त झाले. शोषणाच्या नव्या शृंखला तयार झाल्या. जागतिकीकरणातून आकाराला आलेल्या नवभांडवलदार रचनेचे ध्रुवीकरण झाले. शोषित, कष्टकरी, शेतकरी वर्ग यामध्ये भरडला गेला. ग्रामीण आणि नागर जीवनाच्या सीमारेषा धूसर झाल्या. नवे पेच निर्माण झाले. महानगरातील कष्टकरी सामान्य माणसाचा या आक्रमणासमोर निभाव लागला नाही.

१९६०नंतरच्या काळात वास्तवचित्रण मराठी कथेच्या केंद्रस्थानी आले. मात्र वास्तवाच्या एकरेषीय आकलनामुळे व्यामिश्रतेकडे तिचे दुर्लक्ष झाले. केवळ भरगच्च वास्तव तपशील देऊन कथानकाची लांबण लावल्याने कथेच्या रूपबंधाकडे कमालीचे दुर्लक्ष झाले. या काळामध्ये कथा या वाङ्मयप्रकारात ज्यांनी मूलभूत भर घातली त्यामध्ये व्यंकटेश माडगूळकर, बाबुराव बागुल, चारुता सागर, जी. ए. कुलकर्णी, भाऊ पाध्ये, दिलीप चित्रे, विलास सारंग, भास्कर चंदनशिव, श्याम मनोहर, रंगनाथ पठारे, भारत सासणे, राजन गवस, कमल देसाई, गौरी देशपांडे आणि सानिया यांचा समावेश होतो. या लेखकांनी कथेच्या रुपघडणीत महत्वाची भूमिका बजावली. यातील काही लेखकांनी १९९०नंतरही सकस अशी कथा लिहिली आहे.

१९९० नंतरच्या मराठी कथेत जागतिकीकरणाने निर्माण केलेल्या जटील, भयावह समस्यांना दुर्लक्षून चालत नाही. जागतिकीकरणामुळे भारतीय समाज-सांस्कृतिक प्रारुपात मूलगामी बदल झाले. बाजार आणि वस्तूकरणाला महत्त्व प्राप्त झाले. शोषणाच्या नव्या शृंखला तयार झाल्या. जागतिकीकरणातून आकाराला आलेल्या नवभांडवलदार रचनेचे ध्रुवीकरण झाले. शोषित, कष्टकरी, शेतकरी वर्ग यामध्ये भरडला गेला. ग्रामीण आणि नागर जीवनाच्या सीमारेषा धूसर झाल्या. नवे पेच निर्माण झाले. महानगरातील कष्टकरी सामान्य माणसाचा या आक्रमणासमोर आजची कथा जीवनानुभवाची विविध क्षेत्रे धुंडाळत आहे. जयंत पवार, समर खडस, नीरजा, आसाराम लोमटे, सतीश तांबे, किरण गुरव, किरण येले, बालाजी सुतार, प्रणव सखदेव, विवेक कुडू, प्रज्ञा दया पवार, मनस्विनी लता रवींद्र या कथाकारांनी मराठी कथेला नवे परिमाण प्राप्त करून दिले आहे. सर्वसामान्य माणसाचे जगणे केंद्रवर्ती ठेवत त्याच्या जगण्यातील विविध परिमितीचे, सूक्ष्म कंगोऱ्यांचे अनेकपदरी दर्शन त्यांनी घडविलेले आहे. या लेखकांनी कथेविषयीच्या पूर्वसमजुतींना ओलांडत नवी जाण प्रस्तुत केली आहे. त्यांचे कथालेखनही अधिकतर दीर्घत्वाकडे झुकणारे आहे. दीर्घकथेचा रुपबंध स्वीकारल्याने त्यांना वर्तमानातील गुंतागुंत, जटिलता कवेत घेता आली आहे. एकापेक्षा अधिक पात्रे केंद्रस्थानी ठेवत वेगवेगळे आवाज पृष्ठस्तरावर आणणे शक्य झालेले आहे.

अशा अनेक आवाजीपणामुळे दीर्घकथेचा स्वतंत्र बाज, आविष्कारणाची निराळी रीत विकसित झाली आहे. अपेक्षित परिणामासाठी रूपाची ही घडण फायदेशीर ठरली आहे. नेमाडे यांची कथेविषयीची विधाने सकारात्मक अर्थाने आजच्या मराठी कथेला बळ पुरवणारी ठरली आहेत. चिंचोळा, एकसुरी, गौण म्हणून स्थिरावलेल्या या वाङ्मप्रकारात नजीकच्या काळात फार मोठे बदल झाले. या काळातील कथालेखक बहुविध आशयसूत्रे, त्यातील अंतर्विरोध नेमकेपणाने मांडत कथालेखनाचे एक नवे रचित साकारत आहेत. वरवरचे पृष्ठस्तरीय वास्तव मांडण्यापेक्षा खोलवरचे गर्भित सूचन करण्याकडे त्यांचा कल आहे. धर्म, जात, लिंग, प्रदेश अशा अस्मितांकेंद्री गोष्टींची दाट छाया पसरलेल्या आजच्या काळाची वस्तुनिष्ठ चिकित्सा करण्याचे काम या लेखकांनी केलेले आहे. शोषित, वंचित, कष्टकरी वर्ग सातत्याने त्यांच्या कथेतून अवतीर्ण झालेला आहे. स्त्री-पुरुष नातेसंबंधाकडेही बदलत्या कालभानाच्या आणि मूल्यभानाच्या परिप्रेक्षातून त्यांनी लिहिले आहे.

या काळाचे समर्थ कथाकार म्हणून जयंत पवार यांचे नाव अग्रक्रमाने घ्यावे लागते. मराठी कथेच्या कक्षा रुंदावण्यामध्ये त्यांचे योगदान महत्त्वाचे आहे. महानगरातील पालटलेल्या स्थितीगतीचा, सामान्य माणसाच्या विस्थापनाचा, कष्टकरी कामगारांच्या समूह मानसिकतेचा तळठाव त्यांची कथा घेते. वास्तव आणि कल्पिताचा खेळ उभा करत पृष्ठस्तरीय अनुभवद्रव्याचे अनेक कंगोरे त्यांनी उजागर केलेले आहेत. रहस्यकथेच्या रुपबंधाचा अभिनव वापर त्यांनी केला. इतिहासाचे, पुराणांचे पुनर्वाचन केले. अनेकांच्या दृष्टीतून कथा रचली. कोणत्या पात्राच्या कथनातून आपण विधानापर्यंत पोहोचू यासंबंधीच्या शक्यता तपासल्या. कथनाचे सातत्याने प्रयोग केले. यामुळे त्यांना एकापेक्षा जास्त पात्रांचे जीवनानुभव कथेच्या संरचनेत मुरवता आले. या वैविध्यामुळे त्यांची कथा बहुपदरी झाली. समर खडस यांची कथा ही महानगरीय अवकाशासंदर्भात असली तरी ती धार्मिकता, स्त्री-पुरुष संबंध, राजकारण, हिंसा, क्रौर्याचे विदारक दर्शन घडविते. आपल्या कथांच्या शेवटी ज्या सत्याकडे ते नेतात, ते क्रौर्याने भारलेले असते. त्यांच्या कथेतील मानवी हिंस्र दर्शनाने रूढ वाचकाला असांकेतिकतेचे धक्के बसतात. अतिशय प्रवाही, उत्कंठावर्धक आणि बेधडक शब्दबंधातून त्यांनी समकालीन समाजवास्तवाची केलेली चिकित्सा ही समाजचिकित्सेचा नमुनादर्श आहे.

आसाराम लोमटे आणि किरण गुरव यांसारखे कथाकार गावपरिसरातील बदलाची चित्रे वेगळ्या संवेदनदृष्टीतून चित्रित करत आहेत. भाबडा रोमॅटिकपणा, रजंकता, प्रादेशिकता अशा सापळ्यात अडकलेल्या ग्रामीण कथेला समष्टीच्या, जीवनदर्शनाच्या पातळीवर नेण्याचे काम या कथाकारांनी केले. आसाराम लोमटे यांच्या कथासृष्टीत काळबदलाचे मूल्यात्म भान आहे. दोन पिढ्यांमधील अंतर, गतिमान विकास आणि मूल्यऱ्हास यामधील ताणाचे पडसाद त्यांच्या कथेत आहेत. शेतकरी आंदोलने, शेतीसमोरील आव्हाने, गावगाड्यातील प्रभुत्वसंबंध, अवर्षणग्रस्तता, स्त्रीशोषण, राजकारण अशा अनेक प्रश्नांना पृष्ठस्तरावर आणत त्यामागील कार्यरत व्यवस्थांची चिकित्सा करण्याचे काम त्यांची कथा करते. ग्रामीण बोलीतील ओघवत्या कथनशैलीतून सजीव असे कथाशिल्प त्यांनी घडविले आहे. मुख्य कथानकास समांतर उपकथानकांच्या सांधणीमुळे त्यांच्या कथेला अनेक आवाजीपण प्राप्त झाले.

किरण गुरव यांनी आपल्या कथेत बाईपणाच्या दुःखाच्या अनेकमीती साकारल्या आहेत. गावगाड्यातील बाईच्या मनोव्यापाराची सूक्ष्म निरीक्षणे नोंदवली आहेत. तसेच नवशिक्षित तरुणांच्या धडपडीचे, बेकारीचे प्रभावी चित्रण त्यांच्या कथेत आहे. नोकरी अभावी छोटे व्यवसाय सुरू करणाऱ्या तरुणांच्या स्वप्नाकांक्षा नवभांडवली जगाच्या आक्रमणात धुळीस मिळतात. या तरुणांच्या शिकण्याच्या, संघर्षाच्या, स्थित्यंतराच्या अनेक कहाण्या गुरव यांनी साकारल्या आहेत. भौतिक अवकाशाच्या शिरकावामुळे ग्राम अवकाशाचा बदललेला चेहराही त्यांनी ताण्याबाण्यासह साकारलेला आहे. अलंकृत भाषेचा वापर करूनही त्यांच्या भाषेतील नैसर्गिक सहजता कुठेही उसवत नाही. किरण येले यांनी 'मोराची बायको आणि तिसरा डुळा' या संग्रहातून स्त्री-पुरुष नातेसंबंधाच्या विविध परी शोधण्याचा प्रयत्न केला आहे. स्त्री-पुरुष संबंधातील कुतूहलजन्य, नाजूक प्रश्नांना त्यांनी कथारचनेच्या केंद्रस्थानी आणले आहे. महानगरीय जगण्यातील गुंते, ताणेबाणे, अस्वस्थता, तगमग आणि या सर्वाला वेढून येणाऱ्या लिंगभावाचे वेगळे असे विश्व येले यांच्या कथेत आहे. त्यांची कथा पिचलेल्या, दबलेल्या लोकांच्या वेदनेलाही मुखर करते. अतिशय काव्यात्म, संवादी शैलीतून त्यांनी अनुभवद्रव्याला सुसंघटित आकार दिला आहे.

नीरजा, प्रज्ञा दया पवार, मनस्विनी लता रवींद्र या समकाळातील महत्वाच्या कथालेखिकांनी स्त्री-पुरुष नातेसंबंधातील विविध आयामांचा धांडोळा घेतला. एकाकीपण, तुटलेपण, हतबलता, प्रेम, वासना, भय, मृत्यू, कोंडमारा, लिंगभेद याविषयीचे प्रखर भान त्यांच्या कथांमधून अभिव्यक्त झाले आहे. लिंगभावाची केलेली मांडणी पारंपरिकतेपेक्षा वेगळी आहे. अनुभवद्रव्याला तितक्याच ताकदीने पेलणारी काहीशी असांकेतिक भाषा या लेखिकांनी योजलेली आहे. याशिवाय आजच्या काळात प्रणव सखदेव, बालाजी सुतार, विवेक कुडू यांनीही महत्त्वाची अशी कथा लिहिली आहे. आधुनिकोत्तर जाणिवांची संवेदनचित्रे त्यांच्या कथेत आहेत.

एकंदरीत जागतिकीकरणातील आजची मराठी कथा अनेक सर्जक शक्यता आजमावत आहे. या काळातील कथालेखकांनी प्रचलित संकेतव्यूह झुगारत कथेची संरचना अधिक प्रसरणशील केली आहे. आधीच्या कथेपेक्षा आशय आविष्काराची धाटणी निराळी आहे. या कथाकारांनी मानवी जगण्यातील अंधाऱ्या कोपऱ्यांना उजागर केले. कल्पिताचा सजगपणे वापर केला. वास्तवाचे बहुमुखीपण अधोरेखित करण्यासाठी कथनाच्या विविध पद्धती अवलंबल्या. या काळातील कथेची भाषा चिंतनशीलतेकडे, वैचारिकतेकडे झुकत असली तरी तिच्यातील दृश्यात्मकताही तितकीच प्रभावी आहे. आशय आणि भाषेचे अनोन्य नाते या कथांमध्ये पाहायला मिळते. कथा हा दुय्यम नाही तर महत्त्वाचा वाङ्यप्रकार आहे, एवढी आश्वासकता या काळातील कथेने नक्कीच निर्माण केली आहे. कथा या साहित्यप्रकाराकडे सांस्कृतिक राजकारण तसेच कथाकारांच्या आक्रसदृष्टीमुळे प्राप्त झालेल्या मर्यादांना उल्लंघून नवी कथा हे कथाकार घडवीत आहेत, हे मराठी कथेचे सुचिन्हच म्हणावे लागेल.

ग्रामीण कादंबरी साहित्य प्रवाह:

सर्वसाधारणपणे १९६० नंतर खुल्या अर्थव्यवस्थेला चालना मिळाली त्याचा प्रतिकूल परिणाम भारतीय अर्थव्यवस्थेवर झाला. जागतिकीकरणाच्या जीवघेण्या स्पर्धेत सर्वसामान्य माणूस मागे पडला, बेकारी वाढली, त्यामुळे श्रीमंत अधिक श्रीमंत होत गेला आणि गरीब आणखीनच गरीब झाला. जागतिकीकरणातील वाढत्या स्पर्धेमुळे ग्रामीण भागातील माणूस अधिकाधिक उघडा नागडा होत गेला त्याची ससेहोलपट होऊ लागली या सर्वांचे चित्रण मराठी कादंबरीत केले गेले आहे. भांडवलदार वर्गाने खानउद्योग, अणुप्रकल्प, रासायनिक प्रकल्प ग्रामीण भागात सुरू केल्यामुळे आणि सेझ सारखे कायदे लागू झाल्यामुळे जंगले तोडली जाऊ लागली. प्रकल्प निर्मितीमुळे खेड्यातील भूमिपुत्रांवर विस्थापित होण्याचे संकट ओढवले गेले. अनेक शेतकऱ्यांच्या शेत जमिनी, राहती घरे धरणाच्या पाण्याखाली गडब झाली, त्यामुळे लोकांचे स्थलांतर होऊ लागले. श्रीराम कामत यांच्या "भिश्माचा डोंगर" या कादंबरी मधून भांडवलदारांनी कोकणातील डोंगरचे डोंगर विकत घेऊन खान उद्योग उभारले त्याला दाजींना नाबर कसा विरोध करतो याची कथा या कादंबरीत आली आहे. या कादंबरीत भांडवलदारांच्या पुढे तो अयशस्वी झाल्याचे पहावयास मिळते. शंकर सखाराम यांच्या "एस.ई.झेड" या कादंबरी मधून सेझवर भाष्य आले आहे. या कादंबरीत शेतीचे दुष्परिणाम वाचायला मिळतात. बा. सी. मर्ढेकर यांनी "पाणी" या कादंबरी मधून आपली जमीन, आपले गाव उद्ध्वस्त करून उभे राहणारे सर्व सोयींनीयुक्त विजेचे काम आपले नाही असे वाटणाऱ्या समूह मनाचे चित्रण केले आहे. अनंत मनोहर यांनी "पैलतीर" कादंबरी मधून धरणामुळे उठलेल्या आनंदवली गावाची कथा मांडली आहे. "झाडाझडती" या कादंबरीमुळे प्रकाशझोतात आलेले कादंबरीकार विश्वास पाटील यांनी धरणग्रस्तांच्या वेदना, व्यथा, संघर्ष यावर एका वेगळ्या दृष्टिकोनातून प्रकाश टाकण्याचा प्रयत्न केलेला आहे. जागतिकीकरणाचा समग्र जीवनावर प्रभाव पडत असतानाच शेतकऱ्यांचे पुढारी श्री शरद जोशी भारत आणि इंडिया चा फरक समजावून सांगू लागले. त्याचप्रमाणे ग्रामीण साहित्य लिहिणाऱ्या लेखकांनाही त्यांनी ग्रामीण वास्तव लिखाण करण्याचे आवाहन केले. त्यांच्या या आवाहनाला मराठी लेखकांनी ही चांगलीच दाद दिली आणि खऱ्या अर्थाने ग्रामीण वास्तव जीवन चित्रण साहित्यात येऊ लागलं. सदानंद देशमुख यांची "बारोमास" कादंबरी शेतकऱ्यांच्या आत्महत्येचा प्रश्न मांडू लागली. बाबाराव मुसळे यांची "हाल्या हाल्या दुधू दे" ही कादंबरी कर्जबाजारीपणामुळे ज्ञानबा च्या जीवनाची झालेली शोकांतिका मांडू लागली. प्रतिमा इंगोले यांच्या "बुढाई" या कादंबरीमध्ये गाव सोडून स्थलांतरित होणाऱ्या शेतकऱ्यांचा विषय मांडू लागली. सुरेंद्र पाटील यांनी त्यांच्या "चिखलवाटा" या कादंबरी मधून एका शेतकरी कुटुंबाचे कथानक वर्णन केले आहे. एकूणच जागतिकीकरणामुळे खेडेगावच्या जीवनापर्यंत झपाट्याने राजकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक बदल घडून आलेले आहेत. शेत, जीवन जगण्याची पद्धत, समाजकारणातून राजकारण, आधुनिकता या सर्व बाबी जागतिकीकरणाच्या माध्यमातून बदलल्या याचाच प्रत्येय मराठी साहित्यातील ग्रामीण कादंबऱ्यांमधून प्रकर्षाने येतो.

ग्रामीण कविता साहित्य प्रवाह:

जागतिकीकरणामुळे समाज जीवनात प्रचंड बदल घडून आले आज जागतिकीकरणाची संकल्पना रुजून चार दशके उलटून गेली आहेत. या प्रक्रियेचे परिणाम ग्रामीण कवितांमधून स्पष्टपणे उमटलेले दिसतात. बाजारु संस्कृती, व्यक्तीला आलेले ग्राहकाचे, स्वरूप वाढता चंगळवाद, भोगवाद,आत्मकेंद्रितता व्यक्तीची हरवलेली सांस्कृतिक ओळख, माध्यम क्रांती, माहितीचा विस्फोट, नव भांडवलशाहीतून आलेली असुरक्षितता,

जाती-धर्माचे राजकारणातील प्राबल्य, दहशतवाद, सामान्य माणसांचे मुळापासून तुटून जाणे, जीवनमूल्यांची पडझड इत्यादींचे प्रतिबिंब कवितांमधून उमटलेले दिसते.

माणूस स्वतःला, आपल्या माणसांना त्याच्या भावनांना, दुसऱ्याप्रती आपणजे देणे लागतो त्या सामाजिकतेला विसरत कसा चालला आहे याचे सुंदर वर्णन अजय खांडेकर यांनी आपल्या कवितेमधून केले आहे -काजे साधा शब्दही बोलत नाहीत, गरिबांची ते ई-मेल धाडतात, मित्रांना का एक निरोपही देऊ शकत नाहीत शेतकऱ्यांना. असे दुःख अजय कांडकर आपल्या कवितांमधून मांडतात. तुकाराम धांडे यांनी- दहा हजार एकर जमीन, तिथला माळ-टेकडी डोंगर-ओढा या सगळयां सहित ती जमीन,एका माणसाने विकत घेतली,आता तिठ भक्कम सिमेंटच्या कंपाउंडच बांधकाम चालू आहे. या कवितेच्या ओळी मधून ग्रामीण माणसांच्या हतबलतेचा फायदा घेऊन अनेक खेड्यांमध्ये भांडवलदारांनी आपले वर्चस्व प्रस्थापित करायला सुरुवात कशी केली आहे याचे वर्णन केलेले दिसते. त्याप्रमाणे कवी एकनाथ पाटील आपल्या कवितेतून- अरे जागतिकीकरणाच्या लाटेत सगळयांचंच, वैश्वीकरण होणार आहे, तुझा तुकाराम जागतिक बाजारात पोचणार आहे, तुझ्या शेताचं सेझमध्ये रूपांतर होणार आहे. जागतिकीकरण ग्रामीण भागापर्यंत पोहोचल्यामुळे त्याचा परिणाम शेती माती वर होत आहे असे कवितेतून सांगतात. जागतिकीकरणाच्या कराराविषयी ग्रामीण लेखक सदानंद देशमुख आपल्या कवितेतून म्हणतात की- हा गॅट करार म्हणजे काय असते बाबा?, अन जागतिकीकरणाचं वार कसं आस्त?, कसा वास येतो त्या वाऱ्याला बलडाखालच्या पादीसारखा, का कणग्यात बुडी लागल्या आंबूस गव्हा सारखा. एकूणच वरील सर्वच कवींनी आणि मराठी साहित्यामधील इतरही बऱ्याच ग्रामीण कवींनी जागतिकीकरणाचे परिणाम आपल्या कवितांमधून रेखाटलेले दिसतात.

ग्रामीण नाटक साहित्य प्रवाह:

जागतिकीकरणात साहित्य लेखनामध्ये इतर साहित्य प्रकारांमध्ये बदल होत गेलेला दिसतो त्याप्रमाणे नाटक या साहित्य प्रकारातील लेखनामध्ये ही बदल किंवा परिवर्तन झालेली दिसते नाटककारांची एक नवी पिढी रंगभूमीला उपलब्ध झाली या पिढीतील नाटककारांनी रंगभूमीच्या भविष्यकाळाला मोलाचे स्थान प्राप्त करून दिले १९६० ते १९८० च्या दोन दशकांच्या कालखंडात नाटक आणि रंगभूमीच्या संदर्भात बरीच घडामोड झालेली आहे. संख्यात्मक आणि गुणात्मक अशा दोन्ही स्तरावरचा आलेख सर्वलक्षि बनला. भिन्नभिन्न नाटककारांच्या नवनवीन नाट्य कृतींनी अनेक प्रश्न मांडले. जसा नाटककारांचा नवा वर्ग निर्माण झाला तसाच प्रयोगकर्त्याचाही नवा वर्ग निर्माण झाला. नवनवीन नाट्यसंस्था कार्यमग्न झाल्या. नवा जाणता प्रेक्षकवर्ग निर्माण होऊ लागला. रंगभूमीचे वातावरण चैतन्यदायी बनले.परंतु असे असले तरीही ग्रामीण नाट्य निर्मितीचा विचार केला तर ग्रामीण तेवर आधारित आणि ग्रामीण भागातील समस्यांची मांडणी करणारी नाटके मात्र फार कमी प्रमाणात लिहिले गेली असे वाटते. व्यंकटेश माडगूळकर यांनी "तू वेडा कुंभार" या नाटकामधून ग्रामीण समाजातील जुन्या नव्या मूल्यांचा संघर्ष मांडलेला आहे. त्याप्रमाणे गो. नी. दांडेकर "शितू"," पवनाकाठचा धोंडी". ग. ल. ठोकळ यांचे "कशासाठी पोटासाठी", श्री. ना. पेंडसे यांचे "गारंबीचा बापू", मधु मंगेश कर्णिक यांचे "देवकी", चंद्रकांत शेटे यांचे "अंगार", रा. रं. बोराडे यांचे "पिकलं पान", "विहीर", "आमदार सौभाग्यवती" या नाटकांची निर्मिती झालेली दिसते. या सोबतच ग्रामीण नाटकांची निर्मिती जरी कमी असली तरी नाटकाच्या इतर प्रकारांच्या माध्यमातून मात्र जागतिकीकरणानंतर चे मानवी जीवन फारच प्रभावीपणे जिवंतपणे मांडले आहे हे आपणास विसरून चालणार नाही.

संदर्भ ग्रंथ:

१. जागतिकीकरण समाज आणि मराठी साहित्य (संपादक रविंद्र शोभणे)
२. जागतिकीकरणाचा मराठी भाषा व साहित्यावरील प्रभाव (डॉ. वासुदेव वळे)
३. जागतिकीकरणानंतरचे मराठी साहित्य (डॉ. प्रल्हाद लुलेकर गौरव ग्रंथ, संपादक नागनाथ कोतापल्ले, दत्ता भगत
४. साहित्य संस्कृती आणि जागतिकीकरण (डॉ .भालचंद्र नेमाडे)
५. महाराष्ट्रातील विस्थापित आणि मराठी कादंबरी (संजय नगरकर)
६. जागतिकीकरण आणि मराठी साहित्य (शरद गायकवाड)

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि दलित कविता

डॉ.सुनील चंदनशिवे
चंद्राबाई शांतापा शेंडूरे कॉलेज हुपरी, जि. कोल्हापूर.

1.जागतिककीकरण आणि प्राचीन साहित्य:

जागतिकीकरण ही भिन्न भिन्न आर्थिक, राजकीय आणि सांस्कृतिक प्रवाहांना सामाजवून घेणारी संज्ञा आहे. जागतिकीकरण ही अवस्था आहे आणि सिध्दांतही आहे. परंतु सध्याच्या काळात जागतिकीकरण या शब्दाचा अर्थ म्हणजे उदारमतवाद, मुक्त बाजारपेठ, इंटरनेट क्रांती 'जागतिक एकात्मता' हे प्रतिशब्द वापरले जातात. जागतिकीकरण ही अर्थशास्त्राशी संबंधित संकल्पना आहे. या संकल्पनेने मराठी वाङ्मयावर विविध ज्ञान शाखावर परिणाम घडवून आणला आहे. याला दलित साहित्य ही अपवाद नाही. दलित साहित्यावरील जागतिकीकरणाचा परिणाम, भारतासारख्या विकसनशील देशाच्या तुलनेत याचे प्राचीन आणि आधुनिक असे दोन भाग करुन पहाता येतील.

आर्य भारतात आले आणि त्यांनी भूमिपुत्रांना हाकलून देवून त्यांना आपले दास, गुलाम केले. 'मनुस्मृती' सारखी आचारसंहिता निर्माण केली आणि भूमिपुत्रांना कायमचे गुलाम केले. स्त्री, शूद्रातिशूद्रांना शिक्षणाची बंदी घातली. धनसंपत्ती करण्यास बंदी घालून त्यांना आर्थिकदृष्ट्या कायमचे दलित ठेवले. प्राचीन काळात धम्मज्ञानासाठी चिनीलोक भारतात येते तेव्हापासून शिक्षण क्षेत्रात जागतिकीकरण प्रक्रीया सुरु झाल्याचे दिसते.

पुढे आधुनिक युगात इंग्रज भरतात आले आणि त्यांनी या देशात आपल्या सोयीसाठी सुधारणा घडवून आणल्या आणि त्याचा फायदा दलितांना झाला. पूर्वीचा दलित हा गुलामगिरीत व दास्यात होता. तो इंग्रजांच्या फलटणीत मोठ्या हुद्यावर काम करु लागला. हा जागतिकीकरणाचा फायदा झाल्याचे डॉ. आंबेडकर यांनी आपल्या 19/03/1927 च्या भाषणात सांगितल्याचा उल्लेख आढळतो. पुढे आंबेडकरांनी 'शिका' हा मुलमंत्र दिला आणि दलितांमध्ये क्रांती झाली.

जागतिकीरणामुळे जग जवळ आले. जगात कोठे काय चालू आहे ते पुस्तक, इंटरनेट, सॉटवेअरच्याद्वारे कळू लागले. या आधी पुस्तकांद्वारे कळायचे म्हणूनच महात्मा जोतिबा फुले यांनी आपला 'गुलामगिरी' हो ग्रंथ अमेरिकेतील गुलामगिरीविरुध्द लढणाऱ्या लोकांना अर्पण केला. अशा पध्दतीने शिक्षण व वैचारिक क्षेत्रात जागतिकीकरणामुळे आपल्याला जगभराच्या लोकांशी जोडून घेता येते त्यामुळे साहित्य आणि सांस्कृतिक क्षेत्र उजळून निघाले.

2. जागतिकीकरण आणि दलित साहित्य:

मराठी साहित्यात दलित साहित्याचे मापदंड उभा करण्याचे काम दलित पँथर चळवळीच्या कार्यकर्ते, लेखक, कवीने केले. दलित पँथरची संकल्पना ही जागतिकीकरणामुळे अस्तित्वात आली. वाङ्मयीन लघुनियतकालिकाच्या चळवळीत कार्यरत असणारे राजा ढाले व नामदेव ढसाळ यांनी दलित पँथरची स्थापना केली. जोपर्यंत लघुनियतकालिक चळवळीत असेपर्यंत नामदेव ढसाळ, राजा ढाले यांच्यावर 'दलित' हा शिक्का बसला नव्हता. दलित साहित्य ही संकल्पना तोवर प्रसिध्द झालेली नव्हती. त्या काळात म. ना. वानखेडे, जनार्दन वाघमारे यांनी ब्लॅक लिटरेचर (Black Literature) कडे नव्या पिढीचे अर्थात राजा ढाले, ढसाळ प्रभुतीचे लक्ष वेधले आणि यातून राजा ढाले, नादमेव ढसाळ, ज. वी. पवार यांना ब्लॅक पँथर समजली. पुढे यांनी दलित पँथरची स्थापना केली. अर्थात जागतिकीकरणामुळे शिक्षणाच्या वैचारिकतेच्या आदान प्रदानामुळे ही लढाऊ संघटना झाली आणि प्रचंड ताकदीचे दलित वाङ्मय मराठी साहित्य विश्वात वेगाने आकार घेऊ लागले. मात्र दलित साहित्यिकांनी जागतिकरणाची व डॉ. आनंद तेलतुबंडे यांनी थोडेफार लेखन केले असले तरी ललित साहित्यात त्याचे फारसे प्रतिबिंब उमटले नाही.

दलित साहित्य हे आंबेडकरी प्रेरणेचे साहित्य आहे, ते मनुष्यकेंद्री आहे असे असले तरी या काळातील दलित लेखकाने जागतिकीकरणाकडे दशकात 'जात' नावाचा घटक अधिकच घट्ट होत गेला. त्यामुळे आर्थिक शोषणापेक्षा जात, वर्णाच्या शोषणातून दलितांची पिळवणूक झाली. त्यावर बहुतेक दलित साहित्यिकांनी लेखन केले. जागतिकीकरणाचा मुख्य उद्देश आर्थिक शोषण किंवा जे प्रबळ असेल, ज्याच्या जवळ क्रयशक्ती असेल तोच या व्यवस्थेत टिकेल. या प्रमुख मुद्याच्या आधारे दलिताचा विचार करता, दलिताकडे शोषण् करण्यासारखे आर्थिक कोणतेही साधन नाही. ही मनोवृत्ती लेखकाची झाली असल्यामुळे दलित कथा, कादंबऱ्यामध्ये जागतिकीकरण हा विषय विसाव्या शतकाच्या शेवटपर्यंत अपवादानेच आला.

3. जागतिकीकरण आणि दलित कविता:

मराठी दलित साहित्यातील कथा, कादंबरी, नाटक, कवितांची ललित वाङ्मय प्रकारातून जागतिकीकरणाचे संदर्भ येतात किंवा हा विषय या साहित्यिकांनी हाताळला किंवा नाही या विषयी शोध घेताना असे लक्षात येते की, त्यात दलित कथा, कादंबरी आणि नाटक या वाङ्मय प्रकारात जागतिकीकरणाला फारसा कुणी स्पर्श केला नाही. मात्र कविता हाच एक प्रांत असा आहे की, त्यात दलित कवींनी जागतिकीकरणाची दखल घेतली आहे. ती सन 2005 च्या नंतरच्या काळापासून जागतिकीकरणावर कवितासंग्रह येण्यासाठी 2005 साल उजाडले. डॉ. महेंद्र भवरे यांनी दलित कविंच्या चोविस कवितांचा संग्रह एकत्रित करुन 'महासत्तेचे पिडादान' हा कविता संग्रह प्रसिद्ध केला. यानंतर उत्तम कांबळे यांचा कविता संग्रह 2006 साली 'सुगावा' प्रकाशनाने प्रकाशित केला. 'जागतिकीकरणात माझी कविता' या कवितासंग्रहात 'ती आणि तिची पिलं' अशी का वागताहेत झाड, सहा डिसेंबर 1992 पासून कोणत्या गावात जावे मुक्कामाला, या कविताबरोबर सर्वात दीर्घ असणारी 'हे नारायणा' ही कविता अन्वयार्थाच्या दृष्टीने अत्यंत महत्त्वाची आहे. शिवाय आधुनिकता साकार करणारी कविता आहे. जागतिकीकरणाने प्रत्यक्ष आणि अप्रत्यक्षपणे मुलभूत मानवी अधिकारांना सामाजिक न्यायाच्या तत्त्वांना आणि मैत्री करण्याच्या सहजीवनाच्या सुंदर मुल्यांना कसे निकालात काढते आणि 'बळी तो कानपिळी' या जंगलाच्या अमानुष नियमाला इथे अभयदान मिळाले आहे याची अत्यंत काव्यमय नोंद या कवितेत आहे.

शेताच्या भेगावर काळजीने अश्रू ढाळत, बांधावरुन फिरणारी ही कविता कर्जाच्या ओझ्यामुळे जीव देणाऱ्या बळीराजाची संख्या मोजते. राजकारण करणाऱ्या विरोधकांनी मात्र त्यांच्या डेडबॉडीवर कफना ऐवजी राजकारण पांघरलय.

ही कविता सारे शिवार बघते. कोरड्या पडलेल्या विहीरी, कोरडे पडलेले शेतकऱ्यांचे डोळे बघते. कर्जबाजारी शेतकरी म्हणतो 'बाटलीभर पाण्यात एवढं पैकं असतील तर हे तर आम्हा कधी समजलच नाही.' तर शिक्षणातील डोनेशन राक्षस टी. व्ही. वर अर्धनग्न होऊन नाचणाऱ्या स्त्रिया बघून तरुण पिढीच्या तोंडातून लाळ गळते. खेडी रिकामी होऊन, माणसं शहराकडं आली. शहरांनी सुद्धा जुनी ओळख पुसून टाकून नवं रुप धारण केलं. मुजोरीचा बाजार मांडला नैतिकतेचा अनाचार झाला. शहरात संगणक, क्रेडीट कार्ड, पासपोर्ट, फॉरेन करन्सी, एक्सपोर्ट, ए. टी. एम. ऑनलाईन सर्व्हिस असे खूप काही आले. परंतु माणसं माणसापासून दूर गेली म्हणून कवी म्हणतो,

''माणसं माणसापासून दूर धावताहेत,
रोबोटच्या गळ्यात गळा घालून,
माणसाऐवजी, यंत्रावर विश्वास टाकतात,
दूधाच्या पिश्व्यांप्रमाणे अश्रूच्या पिशव्या फ्रिजमध्ये ठेवताहेत लोक''

असे सर्व उलटे पालटे व्हायला लागले. शहरामधील लोक आपले काळीज फ्लॅट मध्ये ठेवून फिरताहेत. या सार्‍या गदारोळात आधुनिक मुल्यांचे वाटोळे झाले. स्वतंत्रपणे आणि संयुक्तपणे शेवटचा गरीब मारला जातो आहे. खाजगीकरणाने समतेच्या न्यायाला हारताळ फासला जात आहे. त्यामुळे जगातील समाजवाद हतबल झाला आहे.

उत्तम कांबळेच्या जागतिकीकरणाचा चक्रव्यूहात शिरलेल्या आणि त्यातून बाहेर आलेल्या कवितेने अशा सर्वांना स्वत:ची ओळख दिली आहे. लोक सिक्युलिरजमकडे निघाले आहेत. कवी वाटेतील काटेकुटे शोधत आला आहे. नवा सूर्य शोधतो आहे. कुठल्यातरी एका उदास क्षणी विश्रांतीसाठी एकही 'बोधी वृक्ष' उगवत नाही. अशी कवीची खंत आहे. तर सध्याच्या सामाजिक वास्तवात जागतिकीरणाने एका असहाय्य गरीब स्त्रीचे कौमार्य कुस्करुन, तिच्यापासून होणाऱ्या लेकराबाळाला कुणी धनी ना वाली? तिने असे अनेक निनावी गर्भ रिते केले. आपल्या मुलाचा बाप ही तिला सांगता येत नाही. हे भयंकर सत्य व या आधुनिक 'युगाचा शाप' या स्त्रिला लाभला आहे याचे वास्तव चित्रण 'ती आणि तिची पिलं' या कवितेत दिसते.

कवी म्हण्तो,

''शेळया मेंढ्यांनी लेंढ्या सांडाव्यात,
त्याप्रमाणे पावला पावलावरती,
गर्भ सांडत निघाली,
चौकातल्या कुटुंब नियोजनाच्या पोस्टर,
शेजारी थांबून तिनं माग वळून पाहिलं तेव्हा,
माणसाची पिलं उगवली होती.
ती सर्व पिलं भोवती गोळा झाली होती.
अन् विचार करु लागली हे माय
आमचा बाप कुठाय? सांग!
माय क्षणभर गोंधळली.
लगेच सावरली.
चौकातून येणाऱ्या जाणाऱ्याकड,
बोट करत म्हणाली. त्यांच्यापैकी एकजण,
त्यांनी मानलं तर!
तुमचा बाप नाही तर,
तुमच्यासाठी युगा युगाचा एक शाप.
तिची खंडीभर पिलं निघाली.
दाही दिशांना.....
स्वत:साठी एक बाप शोधायला,
आणि माय निघाली स्वत:साठी ग्राहक शोधायला.''

ही उत्तम कांबळे यांची जागतिकीकरणावरची उत्कृष्ट कविता आहे. गरीब, दलित माणसाकडे जागतिकीकरणाच्या युगात काय विकण्यासारखे असणार? एक स्त्री आपले शरीरच क्रयशक्ती म्हणून वापरते आणि सामाजिक, नैतिक मूल्यांना हादरा बसतो. परंतु हे वास्तव आहे हे नाकारता येत नाही. तसे पाहिले तर उत्तम कांबळे हे दलित, पददलित या संकल्पनांच्या पुढच्या पिढीच्या अर्थात फक्त गरीब असहाय्य माणसाचे जगणे आपल्या कवितेत मांडतात. कारण दलित कवितेतील 'जागतिकीकरण' पाहताना वर्ण, जात जाऊन फक्त आर्थिक कारण पहावे लागते. त्यामुळे दलित संकल्पनेच्या साच्यात राहून आपणास जागतिकीकरणाचे संदर्भ तपासता येत नाहीत. याच पठडीतील कवी अरुण काळे यांच्या कवितेमध्ये नव्या पिढीची संवेदना टिपण्याचे विलक्षण सामार्थ्य आहे. त्यांच्या कवितेतून समकालीन समाजाची बोली, कवितेची भाषा बनून येते. ही बोली भाषा जागतिकीकरणाच्या प्रक्रीयेतून आकाराला आली आहे. समाजाच्या बदललेल्या गरजा, माहिती तंत्रज्ञानाचा झपाटयाने झालेला विस्तार यामुळे

समकालीन समाजाचे प्रखर वास्तव समोर येते. 'नंतर आलेले लोक' मधून अरुण काळेंनी सर्वसामान्य माणूस केंद्रीभूत ठेवून जागतिकीकरण व त्याचे दुष्परिणाम नोंदवलेले आहेत. सर्व प्रकारच्या शोषणाविरुद्ध त्याची कविता उभी राहते. 'खिडकी उर्फ विंडो २००२' या कवितेत तो लिहितो ही एक खडकी योजना. हे काय खरं, काय खोटं दारातून नाव गाव विचारलं जातं. खिडकीतून विचारतात पासवर्ड, दारं खिडक्याशी ज्यांचा संबंध नाही असे किती लोक झोपतात उघड्यावर कोण बघतो त्यांना ओझन मिळतो की नाही? कवीचे निरीक्षण अत्यंत सूक्ष्म आहे. रस्त्यावर झोपणाऱ्याना अन्न, पाणी मिळत नाही. या पेक्षाही त्यांना ओझन मिळतो की नाही हे पाहण्याची तसदी कोण घेईल. अशा अवस्थेत दलितांना भवितव्य ते काय असणार? त्याला प्रत्येक गोष्टीतून 'डीलीट' केले जाते. स्वत:च्या फायद्यासाठी एकत्र येऊ लागले. तत्त्व, विचार, निष्ठा या पेक्षा पैसा महत्त्वाचा वाटू लागला. 'सनातन मोडस ऑपारेडी' या कवितेत समाजाचे हे वास्तव कवीने समर्पकपणे मांडले आहे. अरुण काळे यांच्या 'नंतर आलेले लोक' मधील कवितेची सर्वच पातळीवर विपुल चर्चा झाली. आशय, अभिव्यक्ती भाषा, प्रतिमासृष्टी या सर्वच बाबतीत ही कविता वैशिष्ट्यपूर्ण आहे. शिवाय या कवितेला जागतिकीकरणासारख्या गुंतागुंतीच्या प्रक्रीयेचा व्यापक संदर्भ आहे. त्याचबरोबर समकालीन समाजवास्तव आणि भविष्याचा वेध घेण्याचे प्रकर्षाने भान आहे. जागतिकीकरणाच्या प्रक्रीयेतून आकाराला आलेल्या समाजवास्तवाचा मूलगामी वेध घेण्यामध्ये कवी कमालीचा यशस्वी झालेला आहे.

प्रज्ञा पवार यांच्या ''आरपार लयीत प्राणांतिक'' या प्रदीर्घ कवितेत तळागाळाच्या स्त्रियांच्या आणि विशेषत: गावकुसा बाहेरील बाईच्या जगण्या मरण्याचा लेखा-जोखा मांडण्याचा प्रयत्न केला आहे. एकविसाव्या शतकाच्या वेशीवर उभ्या असलेल्या कष्टकरी, दलित, बहुजन बाईला ज्या नव्या जटिल संस्कृतीला सामोरे जावे लागते आहे त्यातला संघर्ष या कवितेत आहे. ही कविता एका तमासगीर स्त्रीच्या विठाभाऊ मांगावर लिहिली आहे. एका कलावंत स्त्रिच्या जीवनात आलेली असंख्य वादळे झेलताना, नवभांडवलशाही बाजारपेठ तिलाच क्रयवस्तू म्हणून त्या गर्तेत कसे लोटते याचे वास्तव चित्रण कवयित्रीने केले आहे.

या भांडवलदारी जगात आपण कोण? याचा शोध कष्टकरी दलित महिला घेतात. दलित स्त्रीच्या आत्मभानाची महत्त्वाची पायरी आहे. आपल्या प्रखर झालेल्या नव्या नजरेने कवयित्री स्त्रीयांच्या व्यामिश्र दु:खाकडे पहाते आणि त्यावर भाष्य करते. दमन परंपरांना नाकारते आणि कष्टकरी दलित स्त्रीवादाच्या नव्या राजकीय जाणिवेतून शब्दकळेतून प्रतिकांच्या अर्थपूर्ण संरचनेतून एका नव्या मूल्य व्यवस्थेवर प्रकाश टाकते.

'विठा' हे या कवितेतील रुपक आहे. स्वत:च्या करमणुकीसाठी उच्चवर्णीय समाजाने वेदनेचे घुंगरु पायात बांधायला लावलेली, ही मांग जातीतील अतिशूद्र जातीमधून आलेली हाडामासाची बाई माणूस जागतिकीकरणाच्या आक्रमणासमोर ठामपणे उभे राहण्याचे प्रतिक बनते.

रोहण नागदिवे यांनी आपल्या कवितेतून कुपोषणाचा प्रश्न ऐरणीवर आणला आहे. 'हे शरीर रोवीन' कुजल्या खात घेईन, कोंभ फुटलेले कडधान्य, जाईन कुपोषिताच्या ताटात ही कविता श्रीमंताच्या विरुद्ध उद्रेक व शोषितांच्यासाठी करुणा निर्माण करते. 'भिजणार नाही त्यांच्या गटार गंगेत, घेणार नाही बांधून प्रतिष्ठेच्या फडक्यात' म्हणत कवी आपला विद्रोह प्रकट करतो. जागतिकीकरणात दलितांना वापरुन फेकून दिले जाते. त्यांचा युज ॲण्ड थ्रो सारखा वापर होतो असे कवीला वाटते. पुढे ते म्हणतात, विज्ञानाचा नवा अर्थ म्हणजे 'नफा' ज्यांना हा 'नफा' फायदा नको त्यांना अस्पृश्य असे नाव दिले गेले. जागतिकीकरणात नात्याची परवड झालेली आहे. उच्च विद्याविभूषितांना आज स्वत:च्या बापाला सांभाळायला वेळ नाही. याची खंत व्यक्त करताना कवी म्हणतो,

''परसाकडच्या गोट्यासारखे फेकून दिले. पित्याला वृद्धाश्रमात तेथे व्यावसायिक सेवेत गुदमरून मेला आहे वृद्ध''

तर अनिल धाकू कांबळी आपल्या एका कवितेत म्हणतात, आपल्या आजारी बापाला बघायला येणार, बॉम्बेवाला, नोकरी करणारा पोरगा म्हणतो,

''बॉम्बेवाला म्हणाला संपत आली लिव्ह, तरी संपत नाही म्हातारा, तुम्ही त्याला द्याल काय मर्सी डेथ''

मरणाला टेकलेल्या बापापेक्षा आपली रजा संपत आली तरी म्हातारा तग धरुन आहे. म्हणून तो डॉक्टरांना म्हाताऱ्याला मृत्यूचे इंजेक्शन द्यायला सांगतो. हे भयान वास्तव जागतिकीकीरणामुळे निर्माण झाले. या जगात माणूस फक्त फायद्याचे बघतो. रक्ताच्या नात्यापेक्षा त्याला फायदा नफा महत्त्वाचा वाटतो. कुटुंबातील लोक टी. व्ही. ला चिकटून बसतात त्याला सोबत करायला कोण तयार होत नाही. जागतिकीकरणामुळे वृद्धांच्या समस्या अधिक तीव्र झाल्या आहेत. तर मुले संगणकातील गेमची कशी ॲडिक्ट झालेली आहेत. हे कवी अविनाश गायकवाड आपल्या 'अजुनही अस्वस्थ रोहिणी' मधून निदर्शनास आणतात. ही मुल संगणकावरील गेम ॲडिक्ट होऊ नये म्हणून बापच रिप्लेक्स करण्याचा प्रयत्न करतात. हा सर्व परिणाम विज्ञान, जागतिकीकरणाचा असल्याचे कवी सांगतो. जागतिकीकरणाचा सर्वात मोठा दुष्परिणाम म्हणजे जगभर मंदीची लाट येते. त्यामुळे सर्व स्तरावर जागतिकीकरणाचा फेरविचार व्हावा. नाही तर अरुण काळे म्हणतात तसे माणूस भंगारात निघायला वेळ लागणार नाही. म्हणून माणसाने आर्थिक बळ दिले पाहिजे. दलितांना पाठबळ त्यांच्यातील शक्ती वाढवून त्यांना अर्थ देण्यासाठी लढाईला सज्ज झाले पाहिजे.

सारांश :

1. जगतिकीकरणाची संकल्पना ही प्राचीन काळातील शिक्षण, राजकीय व्यवस्थेतही होती हे लक्षात येते.
2. जगतिकीकरणामुळे जग जवळ आले परंतु माणूस दुरावला.
3. दलित साहित्यामुळे कविता या वाङ्मय प्रकारातून बऱ्याच प्रमाणात जागतिकीकरणाचा संदर्भ येतो.
4. काही मोजकेच कवी जागतिकीकरणावर कविता लिहितात. त्यामध्ये कवी अरुण काळे, महेंद्र भवरे, उत्तम कांबळे, प्रज्ञा पवार, अविनाश गायकवाड, रोहन नागदेवे इ. चा आवर्जून उल्लेख करावा लागेल.
5. दलित लेखकांनी लेखन करताना प्रथम जात-वर्ण या विषयांना प्राधान्य दिले. त्यामुळे जागतिकीकरण हा विषय मागे पडला.
6. दलितांची आर्थिक स्थिती नसल्यामुळे त्यांचे जीवन जागतिकीकरणापासून दूर राहिले.
7. जागतिकीकरणामुळे सध्याच्या श्रीमंत दलित लोकांची होणारी गळचेपी विषयी लेखन येते.

संदर्भ :

1. भवरे महेंद्र : महासत्तेचे पिंडदान, अभिधा-प्र.आ.2005
2. काळे अरुण : नंतर आलेले लोक, लोकवाङ्मय गृह-प्र.आ. 2008
3. कांबळे उत्तम : जागतिकीकरणात माझी कविता, सुगावा-प्र.आ.2006
4. पवार प्रज्ञा : आरपारलयीत प्राणांतिक, लोकवाङ्मयगृह,प्र.आ. 2009
5. नागदिवे रोहन : स्थितीचा ओला कोलाज,
6. गायकवाड शरद, शिंदे सुनिल : जागतिकीकरण आणि मराठी साहित्य
7. स्नेहवर्धन प्रकाशन, प्र.आ.2009
8. कटारे मोतीराम, फुले-आंबेडकरी साहित्य आकलन आणि आस्वाद कैलास प्रकाशन औरंगाबाद, प्र.आ.2006

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि दलित कवितेचे बदलते स्वरूप

प्रा. डॉ. शशिकला भीमराव रणदिवे
सहाय्यक प्राध्यापक, गिरीस्थान कला व वाणिज्य महाविद्यालय, महाबळेश्वर, जि. सातारा.

जागतिकीकरण:

1990च्या दशकातच सर्वत्र जागतिकीकरणाची चर्चा सुरु झाली होती.जगातल्या वेगवेगळ्या भाषांमध्ये या विषयावर प्रतिकूल आणि अनुकूल विचार व्यक्त करणारे अनेक ग्रंथ लिहिले गेलेले आहेत, इंटरनेटवर विविध वेबसाईटवर पुष्कळ मजकूर आलेला आहे, जगभरातल्या विविध विद्यापीठांमध्ये हा एक अभ्यास विषय म्हणून ठेवलेला आहे. थोडक्यात आजच्या जगातला हा एक अतिशय महत्त्वाचा असा विषय आहे. जागतिकीकरणाचा संस्कृतीवर भाषेवर साहित्यावर परिणाम झालेला आहे. गेल्या पंधरा वीस वर्षात आपल्या भोवतालच्या जगात काही भौतिक बदल झालेले आहेत, त्यावर एक नजरटाकणे ईस्ट आहे. मुंबईसारख्या महानगरीत गगनचुंबी इमारती प्रमाणे मोल म्हणून ओळखली जाणारी महाकाय वस्तू भंडारे उदयाला आलेली आहेत. एकाच ठिकाणी अनेक चित्रपट दाखविणारी मल्टिप्लेक्स थिएटर झाली आहेत. टीव्हीवर एकच नेशनल चैनल असायचे, तर आज तीनशेहून अधिक वाहिन्या आलेले आहेत. एसटीडी ची खोकी जागोजागी आली, त्यानंतर हातो हाती मोबाईल फोन आलेले आहे. संगणक आले त्यानंतर इंटरनेट आले. इंटरनेटवर कोणत्याही विषयावरची माहिती मिळवता येते, वस्तू विकत घेता येते, रेल्वे, विमानाची आरक्षणे करता येतात, जागतिकीकरणानंतर चे बदल आता दिसू लागले आहेत.आज जागतिकीकरणामुळे जगाचे चिरफाड झाली आहे.

भारतीय संस्कृतीत विश्व संस्कृती अस्तित्वात होती. बाराव्या शतकात ज्ञानेश्वरांनी 'हे विश्वची माझे घर' ची संकल्पना सांगून 'वसुधैव कुटुम्बकम' चा मंत्र दिला होता. यातून निष्पन्न होणारे जागतिक धरण हे धार्मिक- अध्यात्मिक असून त्याप्रमाणे मानव मुक्तीची प्रेरणा होती. पण आजच्या जागतिकीकरणाच्या,लाटेवर स्वार झालेली व 'वैश्विक संस्कृती'नफेखोरांची आहे आत्ताच्या जागतिकीकरणाच्यासूत्रधाराची प्रेरणा उर्वरित विश्वाला गुलाम करून त्याला त्या गुलामगिरीची जाणीव होऊ नये अशी अवस्था झालेली आहे. त्या मागची प्रेरणा मुख्यत्वे आर्थिक असून ज्ञान आणि माहिती या सारख्या पवित्र गोष्टींचा गोष्टींचा वापर करून घेण्यात येत आहे.

जागतिकीकरणामुळे साहित्याच्या क्षेत्रा ही विलक्षण बदल झाला. कथा,कादंबरी, कविता यामधूनही जागतिकीकरणाचे प्रतिबिंब दिसू लागले. जागतिकीकरणाच्या प्रक्रियेतून निर्माण झालेल्या जाणिवा, संवेदना घेऊन काव्यातून प्रकट होऊ लागल्या माणसातून माणसात चंगळवादी प्रवृत्ती वाढली. पण मानसिक समाधान ढासळले. अनेक ताण तणाव निर्माण झाले. भारतात 1991 मध्ये तत्कालीन पंतप्रधान पी व्ही नरसिंह राव व अर्थमंत्री मनमोहन सिंग सरकारने आर्थिक सुधारणेसाठी खाजगीकरण, उदारीकरण व जागतिकीकरण या त्रिसूत्रीचा अंमल सुरू केला. याचा परिणाम भारतीय समाज व्यवस्थेवर व दलित साहित्यावर झाला. म्हणूनच जागतिकीकरणाच्या संदर्भात असे म्हणता येते की,"वस्तू, तंत्रज्ञान आणि कल्पनांच्या विस्तारामुळे जगभरातील जीवन सारखे करणारी प्रक्रिया. एक अशी प्रक्रिया आहे की, जगभरातील लोक एका समाजात एकत्र येतात एकत्र काम करतात, राहतात. सर्व प्रकारच्या प्रवाहांचे एकत्रिकरण म्हणजे जागतिकीकरण होय."

जागतिकीकरणात काय काय होईल याची आभाळभर आश्वासने देण्यात आली आहेत हे जग सुंदर बनवायचे आहे, दारिद्र्य मुक्त बनवायचे आहे, संपर्काच्या क्रांती करून साऱ्यांना एकत्र आणायचे आहे, ज्याला जे जे हवे असेल ते ते त्याला त्याच्या ठिकाणी हव्या त्या वेळेला पुरवायचे आहे, अज्ञान संपवायचे आहे, भूक संपवायची आहे, अस्वच्छता संपवायचे आहे अशी किती तरी आश्वासने बाहेर आली होती आणि येत आहेत. हे जसं खरं आहे तसं जागतिकीकरणातून नवीन कलह ही निर्माण होतील, नवीन अरिष्ट येथील, नवीन विषमता येईल असंही सांगितलं जात आहे. त्यातही सर्वात महत्वाचे म्हणजे पृथ्वीच्या पाठीवर सांस्कृतिक संघर्षाची गर्दी होईल असंही भाकीत केले जात आहे. या सर्वांचेच काही दृश्य काही अदृश्य परिणाम आपल्याला दिसत आहेत. या जागतिकीकरणाचा साहित्यावर परिणाम झाल्याचे दिसून येते जागतिकीकरणामुळे समाज विश्व साहित्य विश्व तर बदललेच पण सांस्कृतिक विश्वा वरही त्याचा परिणाम झालेला दिसतो. सांस्कृतिक विश्वाच्या बदलाबाबत मिलिंद कसबे म्हणतात,"जागतिकी करण आतलं सांस्कृतिक विश्व कमालीचे नाजूक, कमालीचा संवेदनशील बनत आहे. आपल्या संस्कृतीची थोडी जरी चिकित्सा झाली, की भावना भडकतात, किंवा त्या भडकवण्याची व्यवस्था होते. एखादं चित्र एखादं चित्र वादग्रस्त ठरतं, सिनेमा वादग्रस्त होतो, पॅकिंग वरचा रंग वादग्रस्त होतो, नाटक वादग्रस्त होते, गाणं वादग्रस्त होतं, ग्रंथ वादग्रस्त होतो, बातमी वादग्रस्त होते, पुतळा वादग्रस्त होतो,. इतका नाजूकपणा इतकी संवेदनशिलता पूर्वी कधी नव्हती." विकासाच्या नावाखाली संपूर्ण मानवी जीवनच वादग्रस्त करून ठेवलेले आहे. विकास प्रत्येक मानवी जीवाला हवाच असतो. पण असा गुलामी स्वीकारायला लावणारा विकास जागतिकीकरणाने माणसाला दिला आहे.

दलित साहित्य:

दलित साहित्यहा शब्द मराठी साहित्यामध्ये 1945 नंतरच्या काळात वांग्मयीन प्रवाह म्हणून अवतीर्ण झाला. डॉक्टर बाबासाहेब आंबेडकर यांच्या विचार प्रेरणेतून निर्माण झालेले दलित साहित्य हे भारतीय साहित्य म्हणून ओळखले जाते. दलित साहित्याची व्याख्या करताना डॉक्टर केशव मेश्राम लिहितात,"ज्या साहित्यविश्वाला पूर्व पिढ्यांची व स्वानुभवाच्या काळाची झळाळी आहे. नेस्तनाबूत केलेल्या मानवी अस्मितेची उभारी आहे. विपरीत ते च्या गर्तेतून व उपलब्ध वांग्मय विश्वाच्या पोकळ कोलाहल आतून स्वतंत्रपणे आकारण्याची आकांशा आहे. ते म्हणजे दलित साहित्य होय".

दलित साहित्याच्या आगमनाने मराठी साहित्याची व्याप्ती वाढण्यास मदत झाली. दलित साहित्यातून त्यांनी युगा युगाच्या चीर वेदनेची मांडणी केली. मानवा असूनही मानवी अस्तित्वाचा अभाव, हा विरोध विलक्षण होता. डॉक्टर सदा कराडे म्हणतात,"प्राचीन काळातील दलितांच्या वेदना व्यथा मुकच झाली.महाभारतात एकलव्याला गुरुदक्षिणा म्हणून उजव्या हाताचा अंगठा कापून द्यावा लागला. त्याची वेदना कोणालाच कळले

नाही, अशा कोट्यावधी दलितांच्या व्यथा वेदना शतकानुशतके मूक राहिल्या.'' कारण गुलामगिरीने या समाजाला मुक बनवून ठेवले होते. त्यामुळे अशा दलितांचे मोठ्या प्रमाणात शोषण होत होते. शतकानुशतकांच्या मुक समाजाला गुलामगिरीत जीवन जगणाऱ्या समाजाला डॉक्टर बाबासाहेब आंबेडकर यांच्या रूपाने नायक लाभला. शिक्षणामुळे दलित समाजाला वाणीचे आणि लेखनाचे सामर्थ्य गवसले. आपल्या जाणिवा व संवेदना साहित्यातून अविष्कृत करू लागले. चातुर्वर्ण्यदीष्टीत समाजाने दलितांचा बहिष्कृत मानले आणि शिक्षणाच्या ज्ञानार्जना मुळे दलितांना आपल्या अस्तित्वाचा अर्थ कळू लागला. शतकानुशतके भोगाव्या लागलेल्या व्यथा,वेदना, दैन्य, दारिद्र्य, अत्याचार यांचे दर्शन घडवावे, त्याचबरोबर असे जीवन आपल्यावर लागणाऱ्या समाज व्यवस्थेवर कडाडून टीका करत सवर्ण हिंदू मानसिकतेचा दंभस्फोट करावा ही भूमिका दलित लेखकांनी घेतली. हा दंभस्फोट त्यांनी विद्रोही भूमिकेतून व्यक्त केला अशा सामाजिक विद्रोहाची भूमिका प्रथम कवितेच्या रुपाने आणि नंतर कथा आत्मकथा नाटक यांच्या रुपाने व्यक्त झाली.

दलित साहित्याची प्रेरणा:

दलित साहित्य संकल्पना मराठी साहित्यात स्थिर होऊन बराच काळ लोटला आहे. आंबेडकर वादाचे अपत्य असलेल्या या समाजाने आधुनिक मराठी साहित्य विश्वात जाणीवेचा एक नवा प्रवाह सोडला. डॉक्टर बाबासाहेब आंबेडकर यांनी उभारलेल्या मानवमुक्तीचा लढा आणि दलितांना दिलेली 'आयडेंटिटी' हा दलित साहित्याचा प्रेरणास्त्रोत आहे. त्यांच्या रूपाने दलित जाणिवेला स्वत्वाचे अधिष्ठान लाभले. त्यांच्यामुळे आज गुदमरलेली दलित मने मोकळ्या वातावरणात नाचू बागडू लागली, नवा प्राणवायू हृदयात भरून घेऊ लागली. ही घटना युगप्रवर्तक मानावे लागेल. कारण डॉक्टर बाबासाहेब आंबेडकर जन्माला आले नसते, तर क्रांतिकारी दलित माणूस जन्माला आला नसता, आणि नवयुग निर्माण करणारे दलित साहित्य जन्माला आले नसते, हे निर्विवाद सत्य आहे.

दलित साहित्याचे मूळ डॉक्टर बाबासाहेब आंबेडकरांच्या सामाजिक पुनर्रचनेच्या विचारात आहे. हिंदुत्ववाद हा पोथी निष्ठ, रूढी, परंपरा, पुनर्जन्म आणि आणि अंधश्रद्धा याचा वाहक आहे. त्यामुळे वर्णव्यवस्था व जातीविषमतेला शिरोधार्य मानणाऱ्या विषमतावादी तत्वज्ञानाला डॉक्टर बाबासाहेब आंबेडकर यांनी नाकारले असून त्यांच्या नकाराचे प्रतिबिंब 14 ऑक्टोबर,1956 रोजी बौद्ध धर्म स्वीकारताना सांगितलेल्या 22 प्रतिज्ञा मध्ये स्पष्ट दिसते. त्यांनी सर्व प्रकारच्या गुलामाला शोषणाला विरोध दर्शवला असून, स्वातंत्र्य, समता आणि न्याय या मूल्यांचा पुरस्कार केलेला आहे.'आत्मसन्मान हे त्यांच्या लढ्याचे एक मौलिक सूत्र होते. हा आत्मसन्मान सम्यक क्रांती झाल्याशिवाय प्राप्त होणार नाही, असे त्यांचे ठाम मत होते. म्हणूनच त्यांनी दलित उपेक्षितांना सन्मानाने जीवन जगण्याचा हक्क मिळवून देण्यासाठी संघर्ष केला. महाडच्या चवदार तळ्याच्या संघर्षापासून धम्मदीक्षेच्या चळवळी, भारतीय संविधानाच्या सारानाम्यात धर्म, जात, वर्ण विरहित मानवतावादाचे दिलेली ग्वाही, हे डॉक्टर बाबासाहेब आंबेडकरांचे ऐतिहासिक कार्य होय. या विचार कार्याच्या पार्श्वभूमीवर माणूस म्हणून जगण्याचा हक्क मागणारा'शिका, संघटित व्हा, संघर्ष करा' या जाणिवेने प्रेरित झालेला दलित लेखक साहित्यनिर्मिती करू लागला. त्यांच्या लेखनाचा केंद्रबिंदू माणूस हा अनसून आंबेडकरी विचार आणि तत्त्वज्ञान यांचे भक्कम आधिष्ठान दलित साहित्याला लाभलेले आहे.

जागतिकीकरण आणि दलित कविता:

काळानुसार दलित साहित्य कूस बदलत आहे जागतिकीकरणामुळे निर्माण झालेले प्रश्न घेऊन हे साहित्य उभे ठाकलेले दिसते. जागतिकीकरणामुळे तीव्र बनलेली सामाजिक, सांस्कृतिक आणि आर्थिक विषमता हा एकविसाव्या शतकातील दलित साहित्याचा विषय बनत आहे. कवी अरुण काळे यांचा यासंदर्भात विशेषत्वाने उल्लेख करता येईल त्यांच्या'नंतर आलेले लोक (२००६) या या काव्यसंग्रहाने जागतिकीकरणात अगतिक झालेल्या माणसाची जाणीवपूर्वक नोंद घेतलेली आहे. आधुनिक जीवनात सर्वहारा माणसाची होणारी कोंडी फोडणारा कवी असा दलित विश्वा बाहेर पडून मानव मुक्तीचा विचार करणाऱ्या अरुण काळे यांचा गौरव डॉक्टर किशोर सानप यांनी केला आहे. कवी ग्लोबल व्हीलेज मध्ये जगणाऱ्या मानवी समूहाचा एक घटक आहे. ग्लोबल व्हीलेज मधल्या आपत्ती ची जाणीव करून देत असताना कवी माणुसकीच्या बीजाची पेरणी ही करतो', जगाचा ग्लोबल गाव केलय ना/ प्रेमाचं होऊ द्या ना बाबा जागतीकीकरण असा उल्लेख करतो. अरुण काळे यांच्या कवितांमधून जागतिकीकरण आणि वर्तमान वास्तव यांच्यातील विविध ताण तणाव परिणामकारकपणे व्यक्त होताना दिसतात.

तू मदरबोर्ड माझ्या संगणकाचा
आणि मल्टिमीडिया कीबोर्ड
हा संगणक, ही मेमरी अन
अपडेट प्रोग्राम ही तूच दिलेला

अशाप्रकारे वास्तव अरुण काळे यांच्या कवितेतून व्यक्त होते. उत्तम कांबळे यांच्या 'जागतिकीकरणात माझ्या कविता', अशोक इंगळे यांचा 'युद्ध पक्षी' त्र्यंबक सपकाळे यांचा 'ब्रोकन मेन', महेंद्र भवरे यांचा 'महासत्तेचे पीडादान', गोविंद वाघमारे यांचा 'आपण उठाव केलाच पाहिजे' इत्यादी काव्यसंग्रह आजच्या जागतिकीकरणाच्या संदर्भात नवीन आयाम प्राप्त करून देणारे ठरले आहेत.

विसाव्या शतकाच्या शेवटच्या पर्वात आणि एकविसाव्या शतकाच्या आरंभी दलित साहित्य प्रवाहात मोठा बदल घडून आला, तो म्हणजे या प्रवाहाला असलेले चळवळीचे भान सुटायला लागले. दलित साहित्य चळवळ ही सांस्कृतिक चळवळ असून, परिवर्तनवादी संवेदनशीलतेशी जोडलेली आहे, ही जाणीव व्हायला लागली असे या घटनेचे अर्जुन डांगळे यांनी वर्णन केले आहे. विद्रोह नकार, आजच्या दलित साहित्यात दिसत असला, तरी त्याची मांडणी जेवढ्या तीव्रतेने व्हायला हवी तेवढी होत नाही. दलित लेखकांचे निर्माण झालेले कळप कायम असून साहित्याकडे व्यक्तीसापेक्ष भूमिकेतून पाहिले जात आहे. क्रांतिकारी जीवन निष्ठेचे सामूहिक भान हरपल्याचे हे लक्षण आहे साहित्य आणि चळवळ दोन्ही अंतर्गत कलमाने ग्रासले असून, मोठेपणा सिद्ध करण्याची चढाओढ लागली आहे.

जागतिकीकरणामुळे संपूर्ण समाज ढवळून निघाला. कवयत्री प्रतिभा राजानंद लिहिते,

मक्तेदारी चालणार नाही
ब्राह्मण शाही चालणार नाही
आम्ही नाहीत हिंदू
आम्ही आहोत काहीतरी
आमचा प्रकाश आम्ही होऊ

थोडक्यात जागतिकीकरणात व्यक्तीस्वातंत्र्य महत्त्वपूर्ण आहे याची जाणीव व्यक्त होते. सुनील अवचार यांनी आपल्या कवितेतून जागतिकीकरणाची पुढील बाजू मांडली आहे,

तुमच्या मधली किती माणसं जिवंत आहेत
तुम्ही जिवंत असाल तर तुम्हाला कशाने मारायचे
महासत्तेच्या विषारी गॅस चेंबरमध्ये डांबून
आणू युद्धात, जैविक युद्धात, गोध्रा हत्याकांडात....

अशाप्रकारे दलित कवितेतून जागतिकीकरणाचे विचार मांडतात. दलित कवितेतील जागतिकीकरण या विषयीची खालील कवियत्री यांनी त्यांच्या काव्यसंग्रहात वर्णन केले आहे. सुरेखा भगत (साक्ष) उषा अंभोरे (हुंकार वेदनेचा) मीना गजभिये (पिंपळवृक्ष) आशालता कांबळे (यशोधरेचा लेख) हिरा बनसोडे (पौर्णिमा) इत्यादी. वामन निंबाळकर यांनी आपल्या कवितेत म्हटलं आहे की,

मनूच्या वारसदारांनो अनंत वर्षापासून रचले तुम्ही
माती दगडाचे ढीग आमच्या मेंदूवर
ह्या च मेंदूतून बाहेर पडतील
असंख्य ठिणग्या आत्म बचावासाठी

थोडक्यात दलित साहित्याने ग्लोबल लोकल या कल्पना आपल्या कवितेत मांडले आहेत. या सर्वातून माणूसकीचे मूल्य टिकले पाहिजे. डॉक्टर आंबेडकरांनी जी समाज परिवर्तनाची किमया केली त्याबद्दल ना तू पोघे लिहितात-

झाडलीस तू ठिणगी पेटले हे रान सारे
मारलीस फुंकर सुटले उधाण वारे
फोडली डरकाळी आसमंत दणाणून गेले

अशा प्रकारे यशवंत मनोहर योगेश मेश्राम ज वि पवार नामदेव ढसाळ भीमसेन देठे रामनाथ चव्हाण वामन ओव्हाळ उर्मिला पवार सिद्धार्थ रामटेके इत्यादी कवींनी आपल्या कवितेतून सामाजिक प्रश्न बरोबर जागतिकीकरण, खाजगीकरण, उदारीकरण इत्यादी. बद्दल विचार मांडले आहेत या सर्व लेखकांनी मानवतावादी मूल्याने जगण्याचे विचार दलित साहित्यातून मांडण्याचा प्रयत्न केला. उत्तम कांबळे यांनी आपल्या कवितेतून जागतिकीकरणात सामान्य माणूस कसा उद्ध्वस्त होत आहे प्रसारमाध्यमे, टीव्ही, मोबाइल, लॅपटॉप या साधनांमुळे नैतिक मूल्यांचा ऱ्हास होत आहे हे सांगताना ते म्हणतात-

"माझ्या कविता या साऱ्यांची नोंद घेत पुढे चालली
टीव्हीवर भांडी घासण्यासाठी
टीव्हीवर कापड विकण्यासाठी
टीव्हीवर साबुन विकण्यासाठी
बेंबाट उघड सोडून
अर्ध्या चड्डीत येणाऱ्या बायका बघून
अख्या गावाच्या तोंडातून
लाळ गळत राहिली"

या जागतिकीकरणात स्त्रीचा वस्तू म्हणून वापर कसा केला जातो आहे व त्यामुळे नैतिक मूल्यांची घसरण मोठ्या प्रमाणात होत आहे. यावर कांबळे प्रकाश टाकतात, याशिवाय समाजात स्वातंत्र्य, समता, बंधुता,आणि न्याय या तत्वांची पायाभरणी ही कविला करायची आहे. म्हणूनच जग बदलण्यासाठी आलो आहे मी, या कवितेत ते म्हणतात-

"मी जन्मलो नाही
नुकताच जगण्यासाठी
जग बदलण्यासाठी आलो मी
संपवून टाकला मी
अंधार कित्तेक गृहातला
पेटवले दिवे मी
प्रज्ञेचे, करुणेचे
आता प्रकाश युग
होण्यासाठी आलो मी."

शोषितांच्या जीवनातील अंधकारमय अंधार दूर करण्यासाठी मी जन्माला आलो आहे, हे कवी आश्वासक रूपाने सांगतो.

"उदारीकरणाच्या साह्याने जागतिकीकरणाने या प्रक्रियेला अमर्याद क्षेत्र उपलब्ध करून दिले आहे. आणि खाजगी करणाने समतेच्या आणिसामाजिक न्यायाच्या तत्वाला अमानुष हरताळ फासला आहे. त्यामुळे जगातला समाजवाद हतबल झाला असला तरी मेला मात्र नाही."असे प्राध्यापक डॉक्टर यशवंत मनोहर आपली आशा व्यक्त करतात. अजून या शक्तीला तिसऱ्या दुनियेचे स्वप्न खरे होईल असे वाटत आहे. त्याचा निर्देश त्यांच्या कवितेत आहे.

"एक समूह असा चालतो आहे
परस्परांच्या
जखमा मोजतो आहे
परस्परांचे
हुंदके ऐकतो आहे
चालायचंच तर खूप आहे
पण कसं ते कळत नाही
रस्त्यावरील पाट्यांचा
सांकेतिक चित्रांचा
अर्थ काही कळत नाही."

उत्तम कांबळे यांच्या जागतिकीकरणाच्या चक्रव्यूहात शिरलेल्या आणि त्यातून बाहेर आलेल्या कवितेने अशा सर्वांना स्वतःचे बोट दिले आहे.जागतिकीकरणातील दलित कविता ही माणुसकी ची मुले पायदळी तुडवणारारी धर्मव्यवस्था, अर्थव्यवस्था यांना ती नाकारते. कारण शतकानुशतके इथल्या प्रस्थापीत व्यवस्थेने माणुसकी नाकारणारे दाहक अनुभव त्यांच्या वाट्याला येतात ही कविता माणसाचे मोठेपण हे मूल्य स्वीकारते जागतिकीकरणातून वैज्ञानिक शोध आणि त्यांचे तंत्रज्ञानात झालेले रुपांतर मानव समाजाला कोणाकडे खेचत आहे याची सामान्य माणसाला जाणीव असली पाहिजे. ही जाणीव निर्माण करण्याची जबाबदारी जागतिकीकरणातील कवींच्या कवितेतुन आलेली दिसून येते.

संदर्भग्रंथ:

1. डॉ. कऱ्हाडे सदा- दलित साहित्य चिकित्सा, स्वरूप प्रकाशन, औरंगाबाद २००७
2. डॉ. मेश्राम केशव- दलित साहित्याचे पहिले संमेलन, लोकराज्य, मुंबई,१९७६
3. डॉ. सानप किशोर- अस्मितादर्श,जाफेमा २००८
4. डांगळे अर्जुन- अस्मितादर्श, वार्षिक विशेषांक २००९
5. डॉ. जाधव जयद्रथ, डॉ. देशमुख भरत,१९८०नंतर चे मराठी साहित्य- स्वरूप आणि समीक्षा, अरुणा प्रकाशन, प्रथमावृत्ती ६ ऑगस्ट २०१२
6. कांबळे उत्तम- जागतिकीकरणात माझी कविता, सुगावा प्रकाशन, पुणे. द्वितीय आवृत्ती, ऑक्टोबर २०१६
7. वाले वासुदेव- जागतिकीकरणाचा मराठी भाषा व साहित्यावरील प्रभाव, प्रशांत पब्लिकेशन, जळगाव, प्रथमावृत्ती १३नोव्हेंबर२०१४
8. कसबे मिलिंद- उत्तम कांबळे यांच्या प्रस्तावना, सुगावा प्रकाशन, पुणे, प्रथमावृत्त

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि बदलेला गावगाडा

विनायक विलास सरदेसाई
मराठी अधिविभाग,शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापूर.
मेल: vinayaksardesai1993@gmail.com

- भूभागाचा विस्तीर्ण आवकाश-यंत्रसामुग्री, धंदे, व्यवसाय, कंपन्या यांनी व्यापल्याने पर्यावरणातील नैसर्गिक घटकांचे भवितव्य धोक्यात
- आधुनिकीकरण हे माणसाचे मनोविश्व संकुचित असंवेदनशील व नैतिकता ठासण्याचे यांत्रिक युग सुरु झाले.
- नाती गोती, भावना अस्मिता ही विद्युतवाहक तारेच्या उपकरणशील तांत्रिक बाबीवरच चलिली आहेत. या तंत्रज्ञान शैलीच्या जगामध्ये रक्ता, मासाचे गुज गोष्टी करून चालणारा माणूस आता तंत्रज्ञानात अडकलेला आहे.
- औपचारिक मानवी समाज याची जीवनशैली आळणी आणि भकास करून विचार विनिमय, प्रथा उत्सव हे तारेवर चालण्या सारखे जीवनाची कसरत करून ठेवणारे आजचे जागतिक युगात महत्त्वाचे स्थान आहे. भारतीय समूह जीवनामध्ये गावगाड्याला अगोदर महत्व होते. सृष्टीच्या ऱ्हासाची पाळेमुळे आणि कारण मीमांसा जागतिकीकरणाच्या मनोविश्वात दडली आहे.
- तंत्रज्ञान शैलीमुळे गाव खेड्यामध्ये जीवन जगण्याच्या चक्रव्युव्ह रचनाच बदलली आहे.
- व्यवसायिक व भांडवलशाहीची पर्यावरणावरील अक्रमणे- व्यापारशाही व भांडवलशाही नैसर्गिक पर्यावरण नि:संकोच खीळखिळी करण्यात मग्न.
- नैसर्गिक संर्जन शिललेवर अवलंबून असणाऱ्या प्राणी (मानव) समूहाचे भविष्य धोक्यात आणण्याचे सधन अनुभव विश्व.

विसाव्या शतकाच्या सुरुवातीला सुमारे ९०% लोक खेड्यात राहत असत आता ६४% ते ६९% लोक राहतात. असा हा आपला देश प्रामुख्याने खेड्याचा बनलेला आहे. तेव्हा ह्या देशाचा प्रमुख घटक खेडे आहे. त्यासंबधी जनून घेण्याचा हा आदमास.

गावगाडा म्हणजे गावच्या चलनवलनाची वहिवाट मानवी समूहाच्या परस्पर व्यवहारासाठी स्वीकारलेले श्रम विभाजन म्हणजे गावगाडा. गावगाड्यामध्ये एक भावना एक विचार एकजिनसीपणा, सामुहिकता आणि परस्पर सहकार्य चिवट बंध नात्याच्यामध्ये गुंफलेले असताना संपूर्ण गाव बारा-बलुतेदारांवर चालविले जाते. भावना-विचार अस्मिता सुतोवाच नाती यांना त्यात स्थान असते. कुणब्याने शेत पिकवायचे त्याला मदत म्हणून इतर अल्युत्या बलुत्यांनी त्याला खुरप, कुळव, वादी वस्त्रे अशा वस्तु स्वरुपात बलुते द्यावे ही गावची जुणी पद्धत. आता खेड्यात नेस्तानाबुत झाली. कारण अद्यावत तंत्रज्ञान अवजारे वापरून माणसाच्या हातांचे काम गेले. माणसे बेरोजगारी करून ठेवली. त्याची आर्थिक स्थिती कमकुवत केली. भरित, वतन वृत्ती गाव–मुकादानी वतन वेतन, आलुतेबलुते, किरवणे, दुकानदारी, कुणबी, फसगत सारासार वाट्याला, पुरवणीमहायात्रा. हा गावाचा हा गावगाडा इतिहास जमा झाला आहे 'हे लक्षात घ्यावे.' गाव रहाटीची पारंपारिक पद्धती नष्ट झाल्या. परंतु या जागतिकीकरणाने असुरक्षितता, असहिष्णूता, व्यक्ती, पारतंत्र्य ही नवी आव्हाने जागतिकीकरणाने निर्माण केली. व गावगाड्यातील घटकांना विशेषत: आलुतेबलुतेदारांना अरत्र-परत्र करून टाकले.

विस्तीर्ण भूभाग जसा जागतिकीकरणाने व्यापला तसा मानवाच्या भविष्याची अरिष्ट्ये ही या जागतिकीकरणाने व्यापलेली आहेत. बेसुमार वृक्ष तोड जंगलात घर बांधण्यात आली त्यामुळे जंगलातील प्राणी गावात, शहरात वावरताना दिसतात. कारण त्यांना तान, भूक शमविण्याच्या साधनावर माणसाने आक्रमण करून जंगले उध्वस्त केली. उद्योग व्यवहारी कंपन्या यांनी वृक्षतोड होऊन शेती नष्ठ होऊन संजीवाची अन्न साखळी कमकुवत करण्याचे धाडस जागतिकीकरण करू पाहत आहे. त्यामुळे संजीवानसमोर जागतिकीकरण हे नवे आव्हान उभे ठाकले आहे.

गावाचा म्हणून एक संवेदन स्वभाव कृषी संस्कृतीमधील विविध तऱ्हेचे संबंध, समूहमानस, नवे संकल्पना संबध, जातियतेची उतरंड, जीवनार्थता एक चिंतन गेल्या तीनेक दशकातील महाराष्ट्रातील गावगाड्याचा बदलता अवकाश शहरी केंद्रित मूल्यदृष्टीचे लोण ग्रामीण समाज जीवनात पसरले. बहलेल्या गावगाड्यातील स्त्रीयाविषयक मूल्यदृष्टी युक्त स्त्रीयांनी येथे भान विसरलेले आहे. व्यवसायाच्या दृष्टीने जनावरे पाळणे, त्यांचे संगोपन करणे ही मानवी नैसर्गिक हितसंबधाची गोष्ट आता नष्ट झाली आहे. पूर्वी शेतीच्या कामासाठी जनावरे पाळली जायची. आता नवता म्हणून कुत्री, घोडे, पक्षी पाळणे आणि जरबंद करून घरादारात किंवा पिंजऱ्यात ठेवले जाते. आधुनिकीकरण हे मानवाच्या प्रगतीसाठी आवश्यक ठरते परंतु इथे मात्र ते घातक ठरते.

नव्या सामाजिक पर्यावरणात मन्युष्य धर्म कमालीचा व्यवहारिक, पांढरपेशी, स्वार्थी झाल्याचे सुचन वर्तमान वास्तव करते. ग्रामीण समाज रचनाच बदलेली आहे. या बदलामुळे कृषी संस्कृती आणि मानवी नातेसंबधावर कसे गंडातर येते हे दिसून येते. संवेदनशील मानवाची फरफट नव्या माध्यमांच्या आक्रमणामुळे होते.

ग्राहक मूल्य झपाट्याने वृद्धींगत होत आहे. नव्या संक्रमणात इथली नैसर्गिक शेती उद्वस्त होते. आताच्या जमान्यात जमिनी विकुन गाडी घेणे, घरे बांधणे, शेतात व्यवसाय टाकणे त्यामुळे पर्यावरणीय सृजनशिलतेचा ही ऱ्हास अटळ दिसतो. राजकारण सामाजिक समस्या शहर आणि खेडे यातील द्वंव्द दिसते. खेड्याचे शोषण करून नगरे कशी सुसज्ज झाली या जाणिवांच्या नैसर्गिक विश्वाचे चिंतन करणे गरजेचे आहे.

या जागतिकीकरणाच्या काळामध्ये गावगाडा हा आपले अंग चोरून आता खेड्यामध्ये उभा आहे. अन्यत: नष्ट ही झालेला दिसेल. हे जागतिकीकरणाचे गावगाड्यावर चहुबाजुने आक्रमण होत आहे. कृषीजन व्यवस्थेचा शोध हा नंतरच्या काळातील चिंतनाचा आणि अभ्यासाचा विषय होऊ नये, एवढीच माफक अपेक्षा. भारतीय मानवी संस्कृतीला दु:ख व पराभवाचे चिंतन करत बसण्यात धन्यता वाटते.

जागतिकीकरणामुळे खेड्यातील ढासळलेली मुल्य व्यवस्था गावाचा म्हणून एक संवेदनशील स्वभाव येथे संपूर्ण नष्ट झाला आहे. गावांच्यावरती गावाचा कारभार, गावाचा व्यवहार येथे लयास गेलेला आहे. थोर मोठ्यांचे मानपान गमवले गेले. बिनधास्तपणे कमी वयात मुले व्यसनांना बळी पडत आहेत. अभासी माध्यमाच्या युगात नात्याचा बाजार मांडला जात आहे. माणसांच्यातील नैतिकता इथे पूर्णत: अस्ताला गेली आहे. संस्कृतीतील हीनता अशा अभासी माध्यमाच्या युगात लैंगिकतेला जास्त उत आले आहे.

कारण पोर्न, क्राईम यासारखे दृश्य शलाका दृष्टी पटला समोर सतत उभ्या राहू लागल्या. कौटुंबिक नात्यामध्ये लैंगिकता येऊ लागली, अन्याय वाढू लागले, शहरी जीवन जगणे येथे प्रतिष्ठेचे मानले जाऊ लागले. मजबुत गढ्या (वाडा) पांढरी मातीच्या भिंतीची घरे पाडून तेथे आर. सी.सी. घरे बांधण्यात आली त्या जागेवरील वनसंपत्तीजीवांचा ऱ्हास झाला. नद्या, ओढ्या कपारीतील जमीन उत्खनन करून मोठ्या दगडांपासून क्रेशर, चिरा, क्रिस्टॉन केले जाते. म्हणजे इथे खनिज संपत्ती नष्ट पावते. घरातील कर्ती स्त्री ही अभासी माध्यमाच्या वापरामुळे बाह्य संबध प्रस्थापित करणे. या बरोजगारी बकालीच्या युगात आर्थिक व्यवहार केले जातात.

ग्लोबल व्हिलेज : Global Village

Global Village ही संकल्पना माणसाचे मनोविश्व कमकुवत करण्याचे साधन म्हणावे लागले. या युगात उपकरणावर बसून काम करणे त्यामुळे फक्त मेंदूचा वापर होतो पण शारिरीक व अवयवाची हालचाल बंद झाली.

गावातील लोकांच्या विचार दृष्टी अद्यावत बुज गोष्टी बंद झाल्या. विचारांची देवाण घेवाण संपुष्टात आली. गावातील कौशल्यावर रोजगार बंद पडले. गावातील सगळा व्यवहार हा अभासी माध्यमावर होऊ लागला. कौटुंबिक सरकारी शिधा हाही online linking अभासी नोंद झाला. गावगाड्यातील जमीनी विकणे आणि व्यापरदाराने त्याच्यावर उद्योग उभा करणे, त्यांच्याच मुलांना कामगार म्हणून कामाला घेणे आणि राबवणे.

गावातील सर्व मुल इंजिनीअरिंग, आय.टी. तंत्रज्ञान क्षेत्राकडे वळाली. शेती संवर्धनातून पर्यावरणीय समतोल आणि जमिनीतील कस, पृथ्वीच्या संवर्धनातील अंश नष्ट झाले. जमीन कोरडवाहू झाली. पृथ्वीवरील पर्यावरणावर असमतोल निर्माण झाला. या सोशल नेटवर्किंगच्या जगामध्ये घरातील लागणाऱ्या खाण्यापिण्याच्या सर्व वस्तू 'अभासी' माध्यमातून घरपोच येऊ लागल्या. जेवणसुद्धा घरपोच माध्यमातून विकू लागले. पण स्थानिक दुकानदार, हातगाडीवाले यांच्या पोटावरती बेकारीची कुराड पडु लागली. जागतिकीकरणामुळे एकीकडे प्रगती तर दुसरीकडे अधोगत आणि ऱ्हास होत आहेत.

आता जनावरांना चारा (वैरण) अभासी माध्यमावरून (online shopping) विकायला आली नाही तरच नवल. खेडे गावातील मानव समूहाची मानसिकता बदलली. शहरी जीवन जगणे प्रतिष्ठेचे समजले जाऊ लागले. उद्योगधंदे व्यवसाय निघाल्यामुळे कारखानदारी, वाहने, तंत्रज्ञान, अभासी माध्यमे, उपकरणे याने माणूस बधीर झाला आहे. तासोतास् तो त्याच्यातच व्यस्त आहे. त्यामुळे एकटे राहणे, मिळून मिसळून न घेणे, चिडचिडेपणा, न्यूनगंड, संशय, अवस्वस्थता, भिती, आस्तमा, दमा श्वसनीक आजार, मानसिक विकार, मंत्र चळ (ocd) सिक्रीझोफ्रेनिया, स्मृतिभ्रंश यासारख्या विकारांना आयते आमंत्रण मिळाले. हा जागतिकीकरणाचा परिणाम बदलेल्या ग्रामीण व्यवस्थेमध्ये प्रामुख्याने दिसून येतो.

ग्लोबल व्हिलेज आणि Digital India

या युगात गावरहाटी बदलली, लग्नामध्ये शिंग फुंकणे, गावातील यात्रेच्यावेळी नारळ फोडतो, जेवणासाठी लागणाऱ्या पत्रावळ्या गुरवाने करने त्याबद्दल त्याला पूर्वी गावात शिधा दिली जायची. पूर्वी गावात माळी किंवा फुलारी, बलुतेदार असत ते आता किंचित आढळतात. वासुदेव भुत्ये, गोंधळी, हे देवाच्या नावाने भिक्षा मागणारे लोक आता तुरळक दिसतात. यांचे मीमांसा गावातील मध्यमवर्ती ठिकाणे ओस पडली. टी.व्ही. मोबाईल ॲप, online working यांनी माणसे आपली व्यापली. Digital Agriculture आधुनिक शेती व्यवसायात High bridge plan ने शेती करू लागले. कमी वेळेत जास्त उत्पन्न. पण त्या फळभाज्या, पिके कमी प्रतिची निर्माण होऊ लागली. नैसर्गिक परिपक्व सर्जनशीलरित्या न पिकवता रासायनिक औषधांचा वापर करून घेतली जावू लागली. उदा. वरन्याची शेंग नैसर्गिकरित्या ६ महिन्याने खाण्यास पूर्णत: योग्य होती. पण आता High bridge plan ने (रासायने) वापरून २ ते ३ महिन्यात काढतात. त्यामुळे त्यातील जीवनसत्वे द्रवपदार्थ वनस्पती तयार करू शकत नाहीत. या केमिकल वापरामुळे मानवाच्या (सजीव) शरीरामध्ये अकार्यक्षम द्रव्य पदार्थ तयार होवून पेशी कमकुवत होणे. असे गंभीर आजार निर्माण होतात. या केमिकल वापरामुळे गिधाडांची जात नष्ट झाली. मेलेली जनावरे गिधाडे खातात, गाई, म्हैस दूध देण्यासाठी (पानेव) लवकर घालण्यासाठी त्यांच्यावरती केमिकल, इंजक्शन, ड्रग्ज, गोळ्या वापरल्या जातात. त्या घातक रसायनांची जास्त मात्रा असल्यामुळे जनावरे मृत पडतात. ती जनावरे गिधाडे खातात. त्यामुळे गिधाडांची जात नष्ट झाली हे वास्तव नाकारता येत नाही. या परीक्षणानुसार सजीवांची साखळी नष्ट करण्याची ताकद जागतिकीकरणात आहे.

आपल्या मेंदूला लागणारी सर्व न्यूट्रान्स मीटर हे फळ किंवा पालेभाज्यातून मिळतात. सर्जनशीलरित्या परिपक्व न झाल्याने त्यातील जीवनसत्व, द्रवपदार्थ कमकुवत होणे त्यामुळे सजीवांच्या आरोग्याला धोका पोहचत आहे.

गृहीतके:

- जागतिकीकरणाने सामाजिक पर्यावरणावर हतबल करून सोडले. गाव रहाटीची पारंपारिक पद्धत मोडीत काडली. भारतीय समाज जीवनावर अधुनिकरणाचा आर्थिक परिणाम झाला.
- गावातील कौशल्यावरील रोजगार बंद पडले.
- गावाची व्यूहरचना बदली.
- शहरी जीवन जगणे प्रतिष्ठेचे मानले जाऊ लागले. विस्तीर्ण शेतीचा भूभाग हा उद्योग कारखानदारी कंपन्यानी व्यापला.
- माणसाला बंधिस्त करून उपकरणामध्ये व्यस्त केले. त्यामुळे नाते सबंधावर परिणाम झाला. ग्लोबल व्हिलेज ही संकल्पना सर्वसामान्यांचे कंबरडे मोडणारे आहे. हा चिंतनाचा विषय आहे.

- जागतिकीकरणाचा आशीर्वाद हा धनीकांना आहे त्यावरच त्याचा वरदहस्त आहे.
- या जागतिकीकरणामुळे माणसाचे, सामाजिक आणि आर्थिक विशेषतः पर्यावरणीय परिवर्तन किती झाले ही खरी चिंतनाची गरज.

संदर्भग्रंथ:

1. गावगाडा, अत्रे त्रि. ना. ३ वेस्ट मुद्रक दादर मुंबई १४ प्र. आ. १९१५
2. गावगाडा शतकानंतर पाटील अनिल, मनोविकास प्रकाशन प्र. आ. डिसेंबर २०१२
3. महाराष्ट्राची ग्रामीण समाज रचना, दांडेकर वी. म. संगम प्रेस पुणे, १९५७
4. ग्रामीण वाङ्मयाचा इतिहास, नलगे चंद्रकुमार अजब पब्लिकेशन कोल्हापूर प्र. आ.२००९
5. जागतिकीकरणातील संस्कृती संपूर्ण, कांबळे उत्तम, सुगावा प्र. आ. आक्टोबर २०१३
6. जागतिकीकरणाची अरिष्टे मे, कॉ. गोविंद पानसरे, अमृत मोहत्सव समिती, प्र. आ. २०१०
7. जागतिकीकरणात बदलेला गावगाडा, पाटील मोहन, लेख

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि मराठी कविता

डॉ. सिंधू जयवंत आवळे
सहयोगी प्राध्यापक,विषय मराठी,राजर्षी छत्रपती शाहू कॉलेज,कोल्हापूर.

प्रास्ताविक :

समाज आणि साहित्य यांचा अन्योन्य संबंध आहे जे जे समाजात घडते. त्याचे प्रतिबिंब साहित्यात उमटते साहित्याचे माध्यम भाषा आहे. त्यामुळे समाजात घडलेली सर्व स्थित्यंतरे सर्वभाषिक साहित्यात दिसून येतात. त्याला मराठी साहित्यही अपवाद नाही. मराठी साहित्यात प्राचीन साहित्य पासुन ते आजच्या शतकातील जागतिकीकरण साहित्य असा प्रचंड प्रदीर्घ प्रवास आहे. आजचे युग हे माहिती तंत्रज्ञान, खाजगीकरण, उदारीकरण आणि जागतिकीकरण म्हणजे खाऊजा संस्कृतीचे युग म्हणून सर्वज्ञात आहे. जागतिक खेडे म्हणजे ग्लोबल व्हीलेज म्हणून आज जगाकडे पाहिले जाते. या युगातील सर्व पडसाद मराठी कथा, कादंबरी, नाटक आणि कविता आधी वाङ्मय प्रकारात उमटलेले दिसतात.

1990 नंतर जागतिकीकरणाची चाहूल अवघ्या जगाला जाणवू लागली. हळू-हळू जागतिकीकरणाच्या रेट्या मध्ये सर्व समाज ढवळून निघाला. जागतिकीकरण हे भांडवलशाहीला अधिक बळ देऊ लागले. त्यामुळे सर्वसामान्य माणूस अधिक हतबल बनला. मजूर ,शेतकरी, कामगार, स्त्रिया एकूणच शोषित, दुर्बल घटकांची गळचेपी होऊ लागली. जागतिकीकरणाच्या युगातील पिढी मोबाईल, संगणक, स्मार्टफोन 4G, 5G चक्रव्युहा मध्ये अडकली आहे. त्यासोबतच मॉल संस्कृती फोफावली लागली. विंडो शॉपिंगचा जमाना सुरू झाला भाकरी ऐवजी बर्गर पिझ्झा खाण्यात धन्य मानू लागली. खेड्यातील ग्रामीण शेतकरी जीवन तर जागतिकीकरणाच्या प्रक्रियेत अधिक ढवळून निघाले. शेतकरी हा निसर्गाचा कोपाने हतबल झाला आहे. त्यापेक्षा मानवी कोपाने त्यात अधिक भर टाकली आहे. शेतकऱ्यांचे प्रश्न अधिक गंभीर होऊ लागली. त्यांच्या शेतमालाला योग्य दर मिळत नाही. तसेच खेड्यातील संस्कृती वरही या जागतिकीकरणाचा कॉकटेल प्रभाव पडला आहे. या सर्वाचे प्रतिबिंब मराठी साहित्यातील कवितेवर कशाप्रकारे दर्शित झाले आहे. याचा विचार करताना मराठीतील काही निवडक कवींच्या कवितांचा उहापोह करणे अपरिहार्य वाटते.

जागतिकीकरण आणि मराठी कविता :

कवी उत्तम कांबळे यांनी 'जागतिकीकरणात माझी कविता' या कवितासंग्रहात जागतिकीकरणाचा परिणाम मानवी मन, संस्कृती, जगणं यावर कसा झाला आहे. हे सांगताना निसर्गाची अवकृपा त्यामुळे दुष्काळ व कर्जबाजारीपणा मुळे सावकारी पाश या दोघांच्या कचाट्यात सापडलेला बळीराजा म्हणजे शेतकरी असमर्थ कसा ठरला आहे. परिणामी तो आत्महत्येसारखा मार्ग अवलंबतो या शेतकऱ्यांच्या आत्महत्येचे राजकारणी लोक, विविध संघटना भांडवल करीत स्वतःचे अस्तित्व किंवा खुर्ची वाचवण्यासाठी सत्तेचे राजकारण करतात. हे लोक स्वार्थलोलूप भावनेने स्वतःचा फायदा फक्त पाहतात म्हणून कवी संतापाने म्हणतो,

‘ विरोधकांनी मात्र
सत्य समजून न घेता
त्याच्या डेड बॉडी वर
कफना ऐवजी
राजकारणच पांघरली'

म्हणजे शेतकऱ्यांचे जीवन अधोरेखित करताना कवीने राजकारणी लोकांच्या अपप्रवृत्ती व स्वार्थी ढोंगीपणावर नेमकेपणाने बोट ठेवले आहे.

जागतिकीकरणाचा युगामध्ये समाजातील नैतिक मूल्यांची घसरण चालूच आहे. याला जबाबदार असणारी एक व्यवस्था म्हणजे प्रसार माध्यमे अर्थात टीव्ही व इतर चॅनेल स्त्रीच्या सौंदर्याचा, देहाचा उपयोग करून ताज्या चैनल चे महत्व किंवा आपल्या जाहिरातीचे महत्व वाढविणारे लोकही कमी नाहीत हे मांडताना उत्तम कांबळे म्हणतात,

‘टीव्हीवर कापडं विकण्यासाठी
टीव्हीवर साबुन विकण्यासाठी
बेंबाट उघड सोडून
येणाऱ्या बायका बघून…….'

म्हणजे प्रसार माध्यमांच्या मार्फत स्त्रीच्या देहाचे होणारे दर्शन, पाश्चिमात्य संस्कृतीचा समाज मनावर होणारा विपरीत परिणाम, नैतिक मूल्यांची होणारी पडझड याचे वास्तव चित्रण कवीने केले आहे.

‘माऊस आणि उंदीर' या कवितेत माणसाच्या संस्कृतीचे आणि विकृतीचे दर्शन घडविले आहे. संगणक चालविण्यासाठी माउस या उपकरणाची अत्यंत गरज असते. हा माऊस संगणकाच्या पडद्यावर माणसांच्या चांगल्या व वाईट वर्तनाचे दर्शन घडवीत असतानाच त्याला स्वतःची भूक भागवण्यासाठी उंदीर भाजून खाणारा माणूस आढळतो. तर दुसरा एक जण प्लेग होऊ नये म्हणून उंदीर मारत असतो. हे दृश्य पाहून माऊस संगणकाच्या मालकाला काय म्हणाला, हे सांगताना उत्तम कांबळे म्हणतात,

'काय रे माणसा
या दोघांनाही
माऊस बनवून

संगणकाच्या पडद्यावर आणले तर'

अर्थात या ठिकाणी उंदराच्या प्रतीकातून भांडवलशाहीच्या युगात डुबऱ्या माणसाचे जगणे कसे मुश्किलीचे आहे. हे दृग्गोचर होते. अशा या भांडवलदारांना माऊस बनवले तर? या समाजव्यवस्थेचे चित्रण पालटेल. परंतु ते सहज शक्य नाही याची ही खंत कवीने व्यक्त केली आहे.

जागतिकीकरणाचा सर्वात जास्त फटका शेतकरी वर्गाला सहन करावा लागला. जागतिकीकरणाचा हा फटका शिक्षण क्षेत्रावर ही आपली मक्तेदारी सिद्ध करताना दिसतो. खेड्यातील मुलं उच्च शिक्षणाने नोकरी मिळेल म्हणून जमिनीचा तुकडा गहाण किंवा विकू लागले. परंतु उच्च शिक्षण घेऊनही नोकरी मिळेलच याची हमी नाही. ग्रामीण तरुणाई नाही शिकावं तर आडानी आणि शिकलं तर बेकार अशा कात्रीत सापडली आहे. म्हणून इंद्रजीत भालेराव आपल्या जागतिकीकरण या कवितेत म्हणतात,

'उपाशी राहून शिकली पोरं
जगण्याची वाट हुकली पोर
फाटा ते गाव धावते रिक्षा
जगण्यासाठी नुरलं कारण
आपलं सोप्या होऊन सोप्प मरण
आयत्या बिळावर पायतं सरण '
गावाचं झालं जागतिकीकरण'

याचा अर्थ जागतिकीकरणाचे सर्व गंभीर परिणाम समाजातील सर्वच क्षेत्रावर व क्षेत्रातील माणसांवर झालेला दिसतो यातून शिक्षणक्षेत्र सारखे पवित्र क्षेत्रही त्याला अपवाद नाही.

तर कवी सुनील अवचार आपल्या ग्लोबल वर्तमान'या कवितेत माणूस यंत्रवत होऊ लागला आहे. तंत्रज्ञानाचा विकास झाला. पण माणसाच्या संवेदना बोथट व्हायला लागल्या आणि माणसाच्या संस्कृतीला धक्का बसू लागला हे सांगताना कवी म्हणतात,

'ग्लोबल वर्तमानात
भावना झाली आहे....
जाहिराती आणि मेंदूचे
झाले आहे काम्प्युटर
संस्कृती झाली आहे रखेल'

थोडक्यात या जागतिकीकरणाच्या युगात माणसाच्या भावना संवेदना बोथट होऊ पहात आहेत. याची जाणीव आपल्या कवितेतून कवी अवचार यांनी केलेली दिसते.

तर अजय कांडर हे कवी या धावपळीच्या व जागतिकीकरणाच्या काळात आपले अस्तित्व यंत्रवत झाले आहे. दिवसभर यंत्राप्रमाणे माणूस धावताना दिसतो आहे. परकाचवाटत राहतो मी मुलीला' या कवितेत बाप स्वतःला सतत जगाशी जोडत राहतो. आपल्या कुटुंबाला मुलीला वेळ देऊ शकत नाही. सतत ऑफिसमधील काम व घरी आल्यावरही मोबाईल पेपर सुट्टी दिवशी मित्रांशी गप्पा इतर कार्यक्रमांमध्ये गर्क असणारा बाप कळत बाळ असताना एक भीतीही व्यक्त करताना म्हणतो,

'बालवाडीत जाणारी मुलगी स्वतःचे नाव छान लिहिते परंतु'
फक्त फरक इतकाच असतो
स्वतःच्या नावापुढे नेमकं बापाचं नाव
लिहायला विसरते हल्ली'

जागतिकीकरणाच्या युगामध्ये माणूस रक्ताच्या नात्या पासूनही दुरावतो आहे हे कवी रेखाटताना वर्तमानातील भयावह चित्र स्पष्ट करतो.

कवयत्री गौरी भोगले यांनी आऊट साईडर या कवितेत नवी पिढीही नवीन तंत्रज्ञानाची भाषा शिकू लागली आहे. ही पिढी म्हणजे सायबर च्या जगतातील पिढी आहे. त्यांचं मोबाईल करण झालेली भाषा किंवा शब्द जुन्या पिढीला नउमगणारे धक्का देणारे वाटतात. नवीन पिढीचं जगणं एकदम फास्ट झाले आहे. म्हणून कवयत्री म्हणते,

'सगळं कसं एकदम फास्ट
त्यांच्या त्यांच्या राज्यात
टीन एज म्हणता-म्हणता
पोरं काढतात भराभर
कम्प्युटर इंटरनेट मोबाईल्स
लॅपटॉप, आयपॉड ,पेन ड्राईव्ह
सहज खेळतात मांडीवर'

म्हणजे आजच्या तरुणाईने जागतिकीकरणाला स्वीकारले आहे असे चित्र स्पष्ट होत.

जागतिकीकरणात माणसांच्या वसाहती ऐवजी साईटला महत्त्व आला आहे. साईटला शोधण्यासाठी पासवर्ड अपरिहार्य आहे. तो मिळाला की साईट मिळते साईट सापडली नाही. तर काही सापडत नाही संगणकावरील साईट म्हणजे माणसाच्या जगण्याचा श्वास झाला आहे. साईट वरूनच

सारे व्यवहार करायचे या सार्‌या संगणकीय महाजाला मध्ये गरिबांची स्थान का त्यांना काही मूल याच नाही. कारण ज्यांची साईट ते श्रीमंत साईट शोधणारे हुशार मग बिन साईट वाल्यांनी जायचे कुठे त्यांनी आयुष्याला नाकारून मरून जायचं का म्हणून अरुण काळे डब्ल्यू www. हे विश्वची माझा कटोरा.com' या कवितेत संगणकामुळे काल परवापर्यंत भीक मागणारे भिकारी ओ बाबू, ओ इंटरनेट वाले बाबू, अशी हाक देतील तर यथावकाश स्वतःची ही एक साईट असावी. म्हणून आपले बायोडाटे कलर फोटोसहीत तयार करतील आणि भाकरी ऐवजी भविष्यात साईटची भीक मागायला लागतील अशी एक कल्पना कवी अरुण काळे यांनी केली आहे ते म्हणतात,

'हरेक किस्म का पुण्य आहे बाबा
स्टोरी ची मांग हे बाबा
एक् वेबसाईट हमारा भी डालो बाबा
www. हे विश्वची माझा कटोरा.com'

म्हणजे संगणकीय युगात भिकाऱ्यांना ही जगण्यासाठी एखाद्या डॉट कॉम ची अत्यंत गरज भासणार आहे.

माणसाने संगणक बनवला आणि माणूस अपंग दुबळा बनला आणि तो सर्वस्वी संगणकावर अवलंबून राहू लागला. यामुळे जागतिकीकरणाच्या या युगात सर्व विश्वच आपल्या कवेत घेण्यासाठी माणसाने संगणक माणसाचा यंत्रवत मनुष्य म्हणजे रोबो करण्याचा प्रयत्न केला. म्हणून माणूस विरुद्ध संगणक या कवितेत अरुण काळे म्हणतात,

'माणसांना रोबो बनवण्याचा स्वप्न
होतय त्यांच्यात जागृत
पिंजर्‌यात कोंडणारायच तो माणसाला
त्याआधी होईल एक मोठे युद्ध
संगणका विरुद्ध माणूस,'

म्हणजे जागतिकीकरणाचा प्रभाव माणसाचे अस्तित्वच संपेल की काय अशी एक भीती व्यक्त होताना दिसते.

कवी मंगेश नारायण काळे यांनी मिनरल वॉटरच्या बाटलीत या कवितेत पाण्याचेही खाजगीकरण होऊ लागले आहे. शेतकऱ्यांच्या विहिरी कमी पैशात विकत घेऊन एक बाटली वीस रुपयाला पाण्याची विक्री करणारे आजच्या या जागतिकीकरणाच्या युगातील भांडवलदार तर मोठ्या मोठ्या शहरात मेगा मॉल शॉपिंग या कवितेत हेमंत दिवटे म्हणतात मेगा मॉल मध्ये शॉपिंग करणे एक प्रतिष्ठितांचे लक्षण ठरत आहे.

यामुळे छोटे छोटे व्यवसाय करणारे दुकानदार किंवा व्यावसायिक यांचे व्यवसाय बंद पडू लागले एकावर एक किंवा दोन तीन मोफत वस्तू देऊन लोकांना आकर्षित करून घेण्याचे डाव रचली जात आहेत या मेगा मॉल शॉपिंग संस्कृतीमध्ये माणसाचा नॅपकिन टीव्ही काटा चमचा चा झाला आहे म्हणजे मॉल मधील माणसांच्या गर्दीत माणूसही कसा वस्तू झाला आहे यावर हेमंत दिवटे कटाक्षाने प्रकाश टाकतात.

समारोप :

उपरोक्त काही समकालीन कवींच्या कवितांचा अभ्यास करताना असे लक्षात येते की, जागतिकीकरणाच्या या युगात माणूस यंत्रवत बनू लागला आहे. आपला इतिहास परंपरा संस्कृती लोप पावत जाऊं एक जागतिकीकरण संस्कृती किंवा कॉकटेल संस्कृती जोर धरू लागली आहे. जागतिकीकरणामुळे गरीब अधिक गरीब तर टंभांडवलदार अधिक बळकट होऊ लागला शोषक आणि शोषित यांच्या प्रवृत्तीला पुन्हा एकदा जोर आला कामगार, शेतकरी, सर्वसामान्य माणसांची गळचेपी होऊ लागली. जागतिकीकरणाच्या या युगात मोबाईल कम्प्युटर यांच्या आहारी गेलेला माणूस यंत्रवत होता -होता संवेदना विसरून गेला. असंवेदनशील माणसाच्या मनातील माणुसकी मानवतावाद नष्ट होईल की काय अशी भीती बळावू लागली आहे. एकूणच नव्वदोत्तरी म्हणजे जागतिकीकरणाच्या प्रारंभापासून आज अखेर मराठी साहित्यात एकूणच मराठी कवितेत त्याचे पडसाद किंवा प्रतिबिंब उमटले आहे हे निश्चित.

निष्कर्ष :

जागतिकीकरणाचा मराठी साहित्यावर प्रभाव पडला तो प्रामुख्याने प्रारंभी काव्य या वांग्मय प्रकारात दिसून आला.

- जागतिकीकरणाचा सर्वात जास्त फटका ग्रामीण भारताला बसला आहे
- जागतिकीकरणाच्या या रेट्यात गरीब कामगार शेतकरी मध्यमवर्ग आणि स्त्रीवर्ग अधिक भरडला जात आहे.
- जागतिकीकरणाच्या लाटांवर बरोबर येणारे हे भांडवलदार अधिक प्रबळ बनत आहे.
- या जागतिकीकरणाच्या युगात खाउजा संस्कृतीमुळे सर्वच क्षेत्रात बोकाळलेला भ्रष्टाचार अनिती चंगळवाद भोगवादी वृत्ती फोफावते आहे.
- जागतिकीकरणाच्या या युगात माणूस अधिक असंवेदनशील बनला आहे. आपल्या कुटुंबापासून नात्यापासून दुरावत चालला आहे.
- जागतिकीकरणाच्या या युगामध्ये माणूस मोबाईल, संगणक यामुळे अधिक यंत्रवत बनू लागला आहे.

अर्थात उपरोक्त कवींच्या काव्यातून कवींनी जागल्याची भूमिका घेऊन माणसाला सतर्कतेचा इशारा दिला आहे . गाफिल राहिलो तर जागतिकीकरणाचा हा राक्षस माणसाला गिळंकृत करेल.

संदर्भ :

1. कांबळे उत्तम-संपादक-'जागतिकीकरणात मराठी कविता' परचुरे प्रकाशन, मुंबई २००९

2. भालेराव इंद्रजित-कविता 'जागतिकीकरण', काव्यसंग्रह, टाहो' २००४
3. अवचार सुनील-कविता' ग्लोबल वर्तमान'
4. कांडर अजय-कविता'परकाच वाटत राहतो मी मुलीला' कवितासंग्रह- आवानओल',२००५
5. दिवटे हेमंत-काव्यसंग्रह-'थांबताच येत नाही'-कविता ' मेगा मॉल शॉपिंग' २००६
6. काळे अरुण-ग्लोबल चे गावकुस, प्रथमावृत्ती २००२

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि महानगरीय साहित्य प्रवाह: कादंबरी

भगवान बाळू लोखंडे
संशोधक विद्यार्थी, मराठी अधिविभाग, शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापूर

प्रस्तावना :

आपल्याला समकालीन असलेल्या जागतिकीकरण, देशीवाद व संस्कृती अभ्यास या नव्या संकल्पना आहेत असे म्हणत असलो तरी साहित्य व्यवहारात गेली खूप वर्षे चर्चेत आहेत.

'जागतिकीकरण' ही संज्ञा १९९४ नंतर भारतासह संपूर्ण जगभरात पोहोचली आहे. आपल्या भारत देशाने 'गॅट' कराराअंतर्गत जागतिकीकरण आर्थिक उदारीकरण, खाजगीकरण हे एल.पी.जी. चे नवे धोरण स्वीकारले याच काळात World Trade Organisation (जागतिक व्यापार संघटना) ची स्थापना झाली. यामुळे पुढील काळात जागतिकीकरणाची प्रक्रिया सुरु झाली. प्रगती, विकासाला चालना वेगाने मिळाली. स्थानिक व्यवसायाला मंदी आली. परिणामी लोक बेरोजगारी झाले.

'जागतिकीकरणाचा प्रभाव एकूणच मराठी साहित्यावर अलिकडच्या काळात मोठ्या प्रमाणावर पडलेला दिसून येतो. जागतिकीकरण हे साम्राज्यवादाने घेतलेले नवे वळण आहे. औद्योगिक क्रांती आणि वैज्ञानिक प्रगतीच्या झपाट्यात विसाव्या शतकाच्या सुरुवातीलाच जगभर महानगरी उभी राहिली. महानगर हे रोजगार संधीचे ठिकाण होय. पैसा मिळविण्यासाठी पारंपारिक व्यवसाय टाकून जीवन जगण्यासठी खेड्यातील, वेगवेगळ्या जाती धर्माचे लोक विविध भाषा बोलणारे लोक वेगळ्या संस्कृतीचे लोक महानगरात येतात. महानगरामध्ये जीवनाचे स्वत:चे वर्तन, चालीरिती परंपरा तयार होतात. महानगरीय लोकसमूह; अनेक रूप, अनेक स्थिरावलेले लोक या सर्वांचेच चित्रण ज्या साहित्यात येणे त्यास महानगरीय साहित्य असे म्हणतात. या महानगरीय साहित्याचा उगम १९६० नंतर इतर प्रवाहासोबत झालेला आढळतो. जागतिकीकरणामुळे स्थलांतराची प्रक्रिया अधिक व्यापक व गतीशील झाली. आर्थिक उदारीकरण हा या जागतिकीकरणाचा आत्मा आहे. जागतिकीकरणामुळे जे बदल घडवून आणले त्यामध्ये आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजकीय हे बदल आले. सर्वसामान्यपणे जागतिकीकरण म्हणजे जीवनाच्या विविध क्षेत्रामध्ये घडून आलेले बदल होय. जगाच्या अर्ध्याहून मोठ्या भागात आर्थिक अस्थैर्य, जातजमातीय तणाव, सामाजिक असुरक्षितता आणि सर्वांगीण दुरावस्था माजवणारे जागतिकीकरण दंगली, हिंसाचार, दहशतवाद, सामाजिक वागणूक, सांस्कृतिक अतिक्रमण इत्यादींना पोषक ठरले आहे. लोकशाही समाजव्यवस्थेत व्यक्तिस्वातंत्र्य हे महत्वाच मूल्य आहे. मानवी समूहाला जागतिकीकरणामुळे बाजाराधिष्ठित जी नवी समाजव्यवस्था उदयास येत आहे. आणि संगणकीय क्रांतीमुळे बेकारांच्या संख्येत वाढ होऊ लागली. यांत्रिकीकरणामुळे महानगराचा विस्तार मोठ्या प्रमाणात झाला.परिमाण प्रमाणापेक्षा अधिक गर्दी वाढल्यामुळे त्याचा नागरी सुविचारांवर विपरित परिणाम झाला. राहण्याच्या गैरसोयीमुळे झोपडपट्ट्यांची वाढ झपाट्याने झाली.

महानगरीय साहित्याचा विकास:

महानगरीय जीवनाची विदारकता, यंत्रयुगीन समाज मध्यम वर्गीय लोक व आपल्या संस्कृतीपासून दूर असलेले समुह होय. पारंपारिक रितीने जगले जाणारे जीवन व मानसिकता आणि आधुनिक जीवन पद्धती यांच्यामधील मोठे आंतर पहावयास मिळते. मराठी साहित्यामध्ये स्वातंत्र्यनंतर मोठा बदल पाहावयास मिळतो. मराठी साहित्यात अनेक प्रवास निर्माण झाले. त्यामध्ये ग्रामीण साहित्य, दलित साहित्य, स्त्रीवादी साहित्य, लोकसाहित्य असे अनेक साहित्याचे प्रकार मराठी साहित्यामध्ये विकसित झाले व जागतिकीकरणाच्या पाऊल खुणा आपल्या मराठी साहित्यात प्रकर्षाने उमठू लागल्या. १९६० नंतरची आसपासची पिढी सगळ्याच बाबतीमध्ये असमाधानी होती. शहर अमर्याद वाढत चालली होती व खेडी ओस पडत होती. व्यक्तीची मूल्य हरवलेली होती. वाद-विवाद संघर्ष वाढीस लागले. समाज रचनेतील बदल, बेकारी इत्यादी बदल मोठ्या प्रमाणात घडून येत होते.

जागतिकीकरणाच्या प्रक्रियेतून निर्माण झालेल्या जाणिवा संवेदना घेऊन काव्यातून, लेखातून, कादंबरीतून प्रकट होऊ लागल्या. जागतिकीकरणातील मराठी कविता, मराठी कादंबरी आपल्या समोर येऊ लागल्या. या करिता नामदेव ढसाळ, वसंत आबाजी डहाके, अरुण कोल्हटकर, दिलीप चित्रे, कवि लघुनियत तसेच भाऊ पाध्ये याचा उल्लेख महानगरीय साहित्याचे सम्राट म्हणून करावा लागेल. जागतिकीकरणाच्या संकल्पनेत 'ॲडम स्मिथ' याचा तौलनिक लाभाचा सिद्धांत महत्वाचा वाटतो. कथा, कादंबरी, कविता यामधूनही जागतिकीकरणाचे प्रतिबिंब दिसू लागले.

१९६० नंतरच्या महानगरीय कादंबरीचा प्रवाह:

जागतिकीकरणाचे पूर्वावलोकन करत असताना उत्तर आधुनिक (१९४५-१९०)हा कालखंड महत्वाचा असलेला दिसतो. व्यापाराचे उदारीकरण, व्यापाराचे जागतिकीकरण झाले. १९६० नंतर महानगरीय कादंबरीचा प्रवाह निर्माण झाला असेल तरी त्याच्या निर्मितीस कारणीभूत ठरलेल्या घटना स्वातंत्र्योत्तर काळातच घडल्या होत्या. महानगरीय कादंबरीची मुळे मुंबई महानगरात शोधावी लागतात. स्वातंत्र्य प्राप्तीनंतर शहरात औद्योगिक विकास वेगाने यांत्रिकीकरणामुळे महानगराचा विस्तार झाला. खेड्यातील लोक नोकरी, आर्थिक उत्पादनासाठी शहराकडे स्थलांतर झाले. गर्दी, राहणीमानाची गैरसोय यामुळे झोपडपट्टीत बेफाम वाढ झाली. ताणतणाव, संघर्ष, बेकारी, वेश्या व्यवसाय, व्यसनाच्या अधीन होणारी तरूण पिढी, अशिक्षित वर्ग, संस्कृती, मुल्यांचा ऱ्हास, उच्च मध्यम वर्ग, मध्यम वर्ग, निम्न मध्यम वर्ग, महानगरीय जीवन, सामाजिक वास्तव चित्रण करणाऱ्या कादंबऱ्या यामध्ये चक्र, मुंबई दिनांक, वासूनाका, माहीमची खाडी, झिपऱ्या, चरसी वस्ती वाढते आहे, तो आणि त्याचा मुलगा, निष्पर्ण वृक्षावर भर दुपारी इत्यादी. झोपडपट्टीचे वास्तव महानगरीय विश्व आणि बेकारी दर्शविणाऱ्या कादंबऱ्या आहेत. स्वातंत्र्य उत्तर काळात वाढत्या औद्योगिकरणामुळे महानगराची फार मोठ्या प्रमाणात वाढ झाली. त्यातच मध्यम वर्गाची व्याप्ती वाढली. विविध स्तर निर्माण झाले. उच्च वर्ग, मध्यमवर्ग, निन्ममध्यम वर्ग, माणसांच्या मुलभूत गरजा अन्न, वस्त्र, निवारा या पूर्ण करण्यासाठी जीवाची हालअपेष्टा निवाऱ्याच्या शोधासाठी एकूणच बेकारी, दारिद्य गुन्हेगारी

भांडण, वेश्याव्यवसाय चोरी, लैंगिकतेची ओढ, आर्थिक टंचाई या समस्या वाढत होत्या. साहित्य हे एक साधन आहे. म्हणजेच समाज रचना, समाज जागृती करणे होय. जनजीवनाच्या परिस्थितीचे त्या निर्माण होणाऱ्या प्रश्नांचे, समस्यांचे समाज जीवनाच्या सुख दुखा:चे, राजकीय बेकारी, व्यसनाधिनता आदि समस्या समाजात पाहायला मिळतात.

महानगरीय कादंबरी निर्माण होण्याची स्थिती:

महानगरीय लोकांची वाढती गर्दी, निवासाची गैरसोय, झोपडपट्टी वाढते, संक्रमण मुंबई महानगरातील प्रक्षुब्ध वातावरण कारणीभूत आहे. मध्यमवर्गाची व्याप्ती वाढली. भौतिक सुख सुविधा गर्दतील जगण्याचा आपलेपणा, नेमकेपणा लोक विसरतात. यामुळे संघर्ष, चोरी, हाणामारी, व्यसन, वाईट चालीरीतीत अडकलेली दिसतात. माणसाकडे पाहण्याचा दृष्टीकोन बदलतो. अनेक नव्या मार्गाने ते जीवन जगताना दिसतात. माणूसपण हारवून बसतात. गुंड प्रवृत्ती वाढीस लागलेली दिसते. हातभट्टी, आर्थिक प्रश्न सोडवण्यासाठी, रोजीरोटीकरिता करावी लागणारी खटाटोप पहावयास मिळते. वेश्याव्यवसायाचे चित्रण, लैंगिक विकृती, श्रम, मूल्यशून्यता, एकटेपणा, गर्दी, बेकारी, निवासाची गैरसोय यामुळे जी एक महानगरीय जीवन तयार होते. महानगरीय जीवनाचे स्वत:चे भावविश्व तयार होते. परंपरा, चालीरीती अशा महानगरात त्याचे समाजजीवन वेगळेच झालेले पहावयास मिळते. आर्थिक क्षमताची पोकळी भरून काढण्यासाठी वेगवेगळ्या मार्गाचा वापर केला जातो. हे सर्व वास्तव चित्रण मराठी कादंबरीकारांनी आपल्या भाषेत हे महानगरीय वास्तवाच दृश्य कादंबरीत उतरवण्याच्या प्रयत्न केलेला आहे. चक्र- मुंबई दिनांक, वासूनाका, कोंडी, वैतागवाडी, चरसी, जेलवर्ड्स वस्ती वाढते आहे. म्हणूनच सामाजिक वास्तवाचा सर्जनशील दस्तऐवज म्हणजे कादंबरी असे मानले जाते. सर्वच महानगरीय कादंबरीकारांनी मुंबई या महानगराचे चित्रण रेखाटले आहे. महाराष्ट्रीतील मुंबई हे आव्हानात्मक गर्दी, मानवी जीवन, गुतांगुतीचे, जनजीवन जगताना येथे सामान्य माणसांची आहेत. तसेच मध्यमवर्गीय लोक आहेत व पण त्यांना राहण्याची जागा झोपडपट्टीत राहणारे, रोगट निरक्षर लोक, बेकारीचा वर्ग फुटपाथवर आयुष्य काढणारे लोक मुंबईत आहेत. प्रत्येकाला आपला विकास आर्थिक संघर्ष याकरिता ओढाताण करावी लागते. जीवाची पर्वा न करता जीवघेणी लढाई असली तरी मिळविण्यासाठी हालचाल करतात.

जागतिकीकरणाचा प्रभाव एकूणच मराठी साहित्यावर मोठ्या प्रमाणात पडलेला दिसतो. जागतिकीकरणामुळे व्यापार, भांडवलदार, राजकारण, दहशतवाद या सारख्या वास्तव घटनांशी सर्वसामान्य माणसाचे जगणे, अवघड होऊन बसले आहे. कारण ते त्याचाशी जोडले गेले व त्या कालखंडाचा परिणाम जीवनावर झालेला जाणवतो. वेगवेगळ्या जातीचे, धर्माचे संस्कृतीचे लोक एकत्र राहण्यातून एक नवी संस्कृती विश्व येथे आकाराला येते. यातून अनेक समस्यांना तोंड द्यावे लागते याचे चित्रण मुंबई शहराचे महानगर झाले. हे सगळ माणसांच्या या गरजांमुळे घडत गेले.

त्यामुळे शहर किंवा महानगर म्हणजे पर्यायाने तेथील जनजीवन असते. याबाबत सदा कऱ्हाडे लिहितात, "शहरे माणसाने वसवली अन शहरे माणसानेच उध्वस्त केली. शहर ही माणसाच्याच बऱ्या वाईट कर्तृत्वाची साक्ष असते. म्हणून कादंबरीत एखादे शहर शोधणे म्हणजे शेवटी मानवी कर्तृत्वाच्या स्थिती गतीचा शोध घेण्यासारखे असते" माणसाचे विविधरंगी जगण्याचे पदर भविष्कृत झालेल्या महानगरीय कादंबरीचा अभ्यास करणे म्हणजे महानगरातील मानवी जीवनाच्या स्थितीगतीचा शोध घेण्यासारखे आहे. मुंबई महानगराचे जीवन आव्हानात्मक वाटते. म्हणूनच मराठीत महानगरीय कादंबरीचा एक महत्वाचा प्रवाह निर्माण झाला आहे. महानगरीय जीवनाची सरमिसळ संस्कृती, व्यामिश्रता महानगरीय कादंबरीतून व्यक्त झाली आहे.

जागतिकीकरण व साहित्यातील बदल:

भाषा, संस्कृती, साहित्य, कला यामध्ये बदल घडून आले आहेत. सामाजिक, तांत्रिक सांस्कृतिक आणि राजकीय बदल ही आहेत. जागतिकीकरणाचा मानवी जीवनावर झालेला परिणाम हा लोकांचे जीवन रोजगार, बेकारी, कुटुंबे, समाज यावर विपरित झालेला दिसून येतो. अनेकविध कारणांनी साठोत्तरी समाजात परिवर्तन घडत होते. समाजात लोक नोकरी, आर्थिक याकरिता महानगराचा आधार घेत होते. त्यामुळे महानगरात लोक स्थलांतरीत होत होते. महानगरात गर्दी वाढ होती. निवासाची समस्या झोपडपट्टीत मोठ्या प्रमाणात वाढ झालेली दिसून येते. त्यामुळे तेथील वातावरणाचा समाजावर समाजात घडणाऱ्या घटना, निर्माण झालेल्या समस्या याचे अनुभव घेऊन समाजातील वास्तव चित्रण आपल्या भोवतालच्या भयंकर समस्यांचे चित्रण इ.स. १९६० नंतरच्या कादंबरीतून आले आहे. मराठी कादंबरीचे अनुभव क्षेत्र या काळात खूपच विस्तारून त्यात गती आली होती. अनेक नवनवीन विषयांची भर पडत होती. एकूण मानवी जीवनातील बेकारी, राहणीमानाची गैरसोय, सूड, वासना, लैंगिकतेची ओढ, अशिक्षित व्यसनाधीनता संस्कृती, मुल्यांचा ऱ्हास, गुन्हेगारी चोरी आदिसह व्यामिश्र अनुभूतीचे चित्रण कादंबरीतून आले आहे. मराठी कादंबरीकारांनी महानगरीय समस्यांना वाचा फोडण्याचे कार्य महानगरीय कादंबरीच्या माध्यमातून समाजापर्यंत पोहचविण्याचे उत्तम काम केलं आहे. साऱ्या व्यक्तिजीवनाचे सूक्ष्म घटनांचे चित्रण महानगरीय कादंबरीतून आलेला आहे.

महानगरीय जीवनाचे मराठी कादंबरीतील चित्रण:

कादंबरी हे साहित्यातले सर्वात प्रभावी साधन आहे. साठोत्तर मराठी कादंबरी अनेक दिशांनी विकसित आणि विस्तारित झालेली आहे. मराठी साहित्यात महानगरीय म्हणजे मध्यमवर्गीय जीवन वास्तव असा एक चुकीचा समज रूढ झालेला दिसतो. याबाबत डॉ. चंद्रशेखर जहागीरदार यांचे मत विचारात घेणे गरजेचे वाटते. ते म्हणतात, "नागरी वास्तव हे बहुरंगी. महाकाय लोकसमूहाचे वास्तव आहे. पांढरपेशा मध्यमवर्ग हा समूहाचा भाग होय. महानगर हा शब्द आपण वापरतो त्याचा संदर्भ पाश्चात्य जगातील प्रबोधनामुळे वैज्ञानिक प्रगती, तंत्रज्ञान, तंत्रज्ञान व औद्योगिक क्रांती यांच्यात झपाट्याने झालेली वाढ होय. यामुळे मानवी वसाहती उभ्या राहिल्या. विभिन्न खेड्यातील लोक महानगरात येतात. गर्दी वाढते, झोपडपट्टीत वाढ होते. राहणीमानाचा प्रश्न निर्माण होतो. त्यातून ताणतणाव, मानसिकता, लैंगिक विकृती असतात. त्यातून महानगराचे वातावरण तयार होते. औद्योगिक संस्कृती, गुंडगिरी, राजकारण, चोरी चळवळी, वेश्याव्यवसाय, गर्दी, मारामारी इत्यादी व्यामिश्र समस्या महानगरात रोज नव्या समस्या निर्माण होत असतात. महानगरातील जीवन चित्रण मराठी लेखकांनी ज्या कादंबऱ्यातून केले आहे. जयवंत दळवी (चक्र), मधू मंगेश कर्णिक (माहिमची खाडी), अरुण साधू (मुंबई दिनांक), लता केरकर (तो आणि त्याचा मुलगा) चक्र - वस्तीचे जगण्याचे, दारिद्र्याचे चित्रण, झोपडीतील वेन्वा, अम्मा आणि त्यांचे

इतर वस्तीतील मिळेल तो कामधंदा करून माणुसकी जपत जगणारे आहेत. तपशिलातून चित्रण केलेले आहे. वासूनाका – मध्ये भाऊ पाध्ये यांनी व्यापक सहानुभव व मानवतावादी दृष्टीकोनातून या बकाल विश्वाचा वेध चित्रणास अधिक न्याय मिळवून दिला आहे. मुंबई दिनांक –महानगरात वर्तमान, पत्रकार कामगार, राजकीय चढाओढ याचे चित्रण केले आहे. वैतागवाडी – आर्थिक विवेचनांनी ग्रासलेल्या मध्यमवर्गीय समाजाची अगतिकता वैतागवाडीतून व्यक्त होते. जेलवर्ड्स – काळाबाजार खून खराबा करणाऱ्या गुन्हेगारांचे अंडरवर्ल्ड घेतले आहे. चरसी – मनोहर ओक- मुंबईतील गुन्हेगारांनी आणि व्यसनाधीन लोकांनी गजबलेले अधोविश्व आहे तसे रेखाटले जाते.

जागतिकीकरणाच्या काळातील वास्तववादी चित्रण:

जागतिकीकरणाचा प्रभाव एकूणच मराठी साहित्यावर अलिकडच्या काळात मोठ्या प्रमाणावर पडलेला दिसून येतो. वास्तववादी चित्रण करणाऱ्या काही प्रातिनिधिक कादंबरीचा उल्लेख प्रस्तुत शोधनिबंधात केलेला आहे. जागतिकीकरणामुळे समाजजीवन कमालीचे बदलून गेले आहे. विज्ञान तंत्र युगात विज्ञानाचा अति वापर, सत्ता, स्पर्धा माणसा-माणसामधील संवेदनहीनता यामुळे माणूस परका झाला आहे. यामध्ये कादंबरीकार डॉ. राजन गवस. त्याच्या चौडंक, भंडारभोग, कळप, तणकट, धिंगाणा, ब-बळीचा या गाजलेल्या उत्कृष्ट कादंबऱ्या आहेत. समाजकारणातील, राजकारणातील, दिशाहीनता, मूल्यभ्रष्टता, अंधश्रद्धा याचे वर्णन त्यांनी आपल्या कादंबरीतून केले आहे.

जीवन जगत असताना वेगवेगळ्या क्षेत्रात सर्वसामान्यांना कराव्या लागणाऱ्या रोजच्या संघर्षाबाबत माणसाच्या जगण्यावर आधुनिकीकरणामुळे होणारे चांगले वाईट परिणाम मराठी कादंबरीकार चांगल्या मानवतावादी दृष्टीकोनातून पाहत आहेत. रंगनाथ पठारे (रथ, चक्रव्यूह, ताम्रपट) विश्वास पाटील (झाडाझडती) नामदेव कांबळे (राघववेळ) पुरुषोत्तम बोरकर (मेड इन इंडिया) कृष्णा खोत (गावठाण, रौदाळा, झड-झिंबड) आनंद विंगकर (अवकाळी पावसाच्या दरम्यानची गोष्ट) या कादंबऱ्यातून शिक्षण व्यवस्था, सहकार, जातीसंस्था, प्रशासन इ. समाजव्यवस्थांशी शोषक घटकांच्या डावामुळे थकलेल्या सर्वसामान्य लोकांच रोजच जीवन जगताना चाललेल्या संघर्षाचे चित्रण दिसून येते. ग्रामीण जीवन बदल, बेकारी, भ्रष्टाचार, शिक्षणाची ओढ, राजकारण, दुष्काळ, शेतकरी जीवन, स्पर्धा आजच्या गुंतागुंतीच्या काळात तंत्रज्ञान, मोबाईल, प्रसारमाध्यमे, वैज्ञानिक तंत्रज्ञान, संगणक अशा अनेक गोष्टीमुळे जागतिकीकरणाच्या ओघात सर्वसामान्य माणूस हरवला आहे.

निष्कर्ष:

महानगर म्हणजे रोजगार मिळविण्याचे एकमेव ठिकाण होय. आता जागतिकीकरणामुळे सामाजिक स्थैर्य धोक्यात आले आहे. महानगरीय जनजीवनाचा विपरीत परिणाम, वास्तव चित्रण वेगवेगळ्या समस्याचे सांस्कृतिक, मुल्यांचा ऱ्हास यांचे लेखन लेखक कादंबरीकारांनी वास्तव चित्रणाचे अनुभव उत्तम प्रकारे रेखाटन केले आहेत. जागतिकीकरणामुळे दूरचा समाज जवळ येतो. हे ज्वलंत उदाहरण आहे. खरतर साहित्य आणि जागतिकीकरण त्या दोन परस्परविरोधी गोष्टी आहेत असे म्हणता येईल. जागतिकीकरणामुळे समाजात जसा बदल होत गेला तसे साहित्य ही त्याप्रमाणे बदल गेले. महानगरीय साहित्याचा उगम १९६० नंतर इतर प्रवाहसोबत झालेला आढळतो.

जागतिकीकरणाचा मराठी साहित्यावर प्रभाव पडलेला दिसून येतो. मराठी साहित्यावर जागतिकीकरणाचा प्रभाव नाटक, कविता, कादंबरी यावर झालेला दिसून येतो. जागतिकीकरणामुळे सर्व पृथ्वी व्यापून टाकली आहे. त्यामुळे मराठी साहित्यात अजून साहित्याची भर पडणार यांची भावना वाढीस लागली आहे. महानगरी झोपडपट्टीतील वातावरण सरमिसळ संस्कृती हे आजच्या मुंबई सूक्ष्म चिकित्सक लक्षण झाल आहे.

सारांश:

यांत्रिकीकरणामुळे महानगराचा विस्तार झाला. रोजगाराची संधी नक्की उपलब्ध होत असल्यामुळे खेड्यातील लोक शहरात स्थलांतर झाले. प्रमाणापेक्षा गर्दी झाल्यामुळे त्याचा नागरी सुविधांवर विपरित परिणाम झाला. राहण्याची गैरसोय, झोपडपट्टीची वाढ, बेकारी, व्यसनाधीनता, असुरक्षितता, द्वेष, भांडण, गुन्हेगारीत वाढ, गुंडप्रवृत्ती वाढीस, धावपळ, मुल्यांचा ऱ्हास, चोरी हे सर्व वास्तव समाजातील चित्रण मराठी कादंबरीकारांनी हे महानगरीय वास्तव आपल्या कादंबरीत महानगरीय माणसांच्या जगण्यातील विविधता अधोरेखित केली आहे.

संदर्भ:

१) सप्रे अविनाश, महानगरीय जाणिवा आणि मराठी साहित्य, साहित्य आणि समाज. (संपा. नागनाथ कोतापल्ले), प्रतिमा प्रकाशन, पुणे , प्र.अ.- २००७.

२) कांबळे उत्तम, जागतिकीकरणांची अरिष्टे, कॉ. गोविंद पानसरे अमृत महोत्सव समिती, प्र.आ. फेब्रुवारी २०१०.

३) नेमाडे भालचंद्र, साहित्य संस्कृती आणि जागतिकीकरण लोकवाङ्मय गृह, आठवी आवृत्ती, फेब्रुवारी २०१५.

४) गवस राजन: 'ब- बळीचा', पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, प्र.आ. २०१२.

५) पठारे रंगनाथ, सत्वाची भाषा, शब्दालय प्रकाशन, प्र. आवृत्ती, जानेवारी १९९७.

६) कांबळे उत्तम, जागतिकीकरणातील सांस्कृतिक संघर्ष, सुगावा प्रकाशन, प्र. आवृत्ती, ऑक्टोबर २०१३.

७) खोले विलास (संपा.) गेल्या अर्धशतकातील मराठी कादंबरी प्रकाश विश्वासराव लोकवाङ्मय गृह, तिसरी आवृत्ती, फेब्रुवारी २०११.

८) चौसाळकर अशोक, विचारवंत आणि समाज (गौरवग्रंथ) द युनिक ॲकॅडमी ऑगस्ट २०१५.

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि लोककला व लोककलावंत

डॉ प्रा.संतोष उध्दव पवार
पद्मश्री मणिबाई देसाई महाविद्यालय उरुळी कांचन

प्रास्ताविक :

जागतिकीकरण ही एक संपूर्ण जगाचे एका मोठ्या आणि मुक्त बाजारपेठेत रुपांतर करण्याची प्रक्रिया आहे. यात स्थानिक वस्तू, सेवा, भांडवल आणि श्रम यांच्यावरील त्या त्या देशाने घातलेली बंधने उठवून ते जागतिक पातळीवरील मुक्त व्यापारासाठी खुले करणे याचा समावेश होतो. जागतिकीकरणाची चर्चा अलिकडच्या काळात होत असली तरी जागतिकीकरण ही प्रक्रिया खूप पूर्वी म्हणजे इकडे वास्को द गामा आला तेव्हापासून सुरु झाली. जागतिकीकरण ही प्रक्रिया सुरु होण्यामागील जागतिक पातळवरील भांडवलशाही राष्ट्रांचा वाढलेला दबदबा, सागरी मार्गाने होणारे दळणवळण, माहिती तंत्रज्ञानाचा झालेला विकास, संगणक, मोबाईल दूरदर्शन यांचा वाढलेला प्रभाव बहुराष्ट्रीय कंपन्याच्या व्यापार आणि गुंतवणुकीवरील उठविलेले निर्बंध सेवा आणि श्रम या व्यापारासाठी मुक्त करणे यासारखे अनेक कारणे कारणीभूत आहेत.

भारतात साधारणतः 1990 नंतर खऱ्या अर्थाने जागतिकीकरणाला सुरुवात झाली. या सुमारास भारतावर विदेशी कर्जाचा डोंगर बेसुमार वाढला. त्यामुळे जागतिक बैंक, आंतरराष्ट्रीय नाणेनिधी यांनी भारताला कर्ज देणे नाकारले. काही बंधने घातली. भारताला आणखी कर्ज हवे असेल तर भारताने आपल्या अर्थव्यवस्थेत धोरणात्मक बदल करुन ती विदेशी कंपन्यांसाठी खुली केली पाहिजे अशी अटच घातली. या धोरणाला त्यांनी आर्थिक सुधारणा या गोंडस नावाने भारताच्याच नव्हे तर भारतासारख्या इतरही राष्ट्रांच्या गळी उतरविले. आजच्या घडीला तर जगाच्या पाठीवरील कोणतेही राष्ट्र या प्रक्रियेपासून अलिप्त राहणे शक्य नाही. एवढे या जागतिकीकरण नावाच्या महाराक्षसाने जग गिळंकृत केले आहे. याच्या जोडीनेच उदारीकरण, खाजगीकरण या प्रक्रियांनीही ही आपला जम बसविला आहे.

जागतिकीकरणामुळे बहुराष्ट्रीय कंपन्यांना विकसनशील आणि गरीब देशात गुंतवणुक करण्याची संधी मिळाल्यामुळे विकसनशील व गरीब राष्ट्राचा विकास घडून येत असल्याचे चित्र उभे केले जात असले तरी ते दिसते, तेवढे खरे नाही. कारण विकसित भांडवलशाही राष्ट्रे गरीब राष्ट्रांकडे कायम आपली हक्काची बाजारपेठ म्हणून पाहत आहेत. या बाजारपेठांचा आपल्या नफ्यात अधिकाधिक भर पाडण्याच्या हेतूने उपयोग करुन घेत आहेत. शिवाय जागतिकीकरण ही प्रक्रिया आता केवळ आर्थिक क्षेत्रांपुरतीच मर्यादित राहिली नसून तिने मानवी जीवनाच्या सर्व परिक्षेत्रांना आपल्या विळख्यात घेतले आहे. या प्रक्रियेमुळे त्या त्या देशांची भौगोलिकता आणि राष्ट्रीय ओळख नष्ट होत आहे. "सांस्कृतिक आक्रमण आणि मागास राष्ट्राचे आर्थिक सार्वभौमत्व पायदळी तुडवण्यामुळे जागतिकीकरणास नववसाहतवादाचे नवे रुप मानण्यात येते. जागतिकी करणाच्या प्रक्रियेमध्ये कोणतीही व्यक्ती स्वतंत्र अथवा विभक्त समुहाचा भाग न राहता संपूर्ण समाजच थेट जागतिक व्यवहाराशी जोडला गेला आहे.

कुटुंब व्यवस्था, विवाह, स्त्री-पुरुष संबंध, जाती, जनजाती, भाषा इ. सामाजिक घटकांवर मोठा प्रभाव पडत तर आहे. लहान मुले तरुण आणि वृध्दांचे जीवनमान प्रभावित झाले आहे. ग्राहकवादाच्या प्रभावातून नवसमाज आकार घेत आहे. माहिती तंत्रज्ञानाच्या क्रांतीमुळे लोकांच्या जीवनाचा सांस्कृतिक आकृतीबंध बदलला असून अमेरिकन कपडे, चायनीज अन्न, फ्रेंच व्हिस्की, इंग्लिश पॉपसंगीत या नित्य परिचयाच्या झालेल्या आहेत."१ यामुळे त्या देशातील त्यांचे म्हणून असलेले " सांस्कृतिक वैविध्य नष्ट होऊन एकछापी संस्कृती निर्माण होत आहे."२ या प्रक्रियेमुळे केवळ सांस्कृतिक जीवनच नव्हेतर साहित्य, लोकसाहित्य, लोककलाही प्रभावित झाल्या आहेत. त्यांना या प्रक्रियेचे खूप वाईट परिणाम भोगावे लागत आहेत.

जागतिकीकरण आणि लोककला :

भक्ती, भाव, मनोरंजन आणि संदेश उद्बोधन यांचा नाट्यमय अविष्कार म्हणजेच लोककला होय. या लोककलांच्या माध्यमातून लोककलावंतांनी अगदी प्राचीन काळापासून भारतीय समाजमनाला रिझविण्याचे खूप मोठे कार्य केले आहे. दिवसभर बसून दिलेल्या आर्त हाकेने जागा व्हायचा. बहुरुप्यांच्या नाट्यमय रुपांतराने त्यांचे मन आनंदी व्हायचे. नंदीबैलवाल्यांने बैलाच्या माध्यमातून वर्तविलेल्या भविष्यवाणीने हरकून जायचा. कधीतरी गावात आलेल्या डोंबाऱ्यांनी करून दाखविलेल्या तारेवरच्या कसरतीतून प्रेरणा घेऊन जीवनात येणाऱ्या संकटावर मात कशी करावी हे शिकायचा. साप गारुड्याच्या खेळातून त्याची जिज्ञासा. कुतुहल जागे होवून त्याचे मनोरंजन व्हायचे गोंधळयांच्या जागरातून भक्ती तर कथेतून मनोरंजनाबरोबरच त्याचे उद्बोधनही व्हायचे. पोतराज, वाघ्या-मुरळी, वासुदेव दशावतारी खेळ तमाशा शेतावरील भलरीची गाणी असे एक ना अनेक लोककलांच्या माध्यमातून लोककलावंत गावमनाला हसवून हसवून भक्तीच्या प्रेरणा जपत दैनंदिन चिंतापासून दूर ठेवायचे कार्य करायचा. या सर्व लोककलांनी आणि तिच्या उपासकांनी भारतीय संस्कृती समृध्द करण्याचे मोलाचे कार्य केले आहे. परंतु आता काळ बदलला आणि या कलांची आणि लोककलावंताची अवस्था मात्र अत्यंत हीन-दीन झाली आहे. काही लोककला तर लुप्त होत आहेत आणि त्यांच्या आधाराने आपली उपजीविका चालविणारे उपासक यांच्यावर उपासमारीची पाळी आली आहे. हा सर्व आजच्या खाऊजा धोरणाचाच परिणाम म्हणावा लागेल.

लोककला लुप्त होत जातायत आणि लोककलावंतावर उपासमारीची पाळी आली आहे. याला लोककलावंतांनी काळानुरूप जे बदल करायला हवे होते ते न केल्यामुळे लोककलांची आणि उपासकांची ही स्थिती झाल्याचे कारण सांगितल्या जाते. परंतु हे खरे असले तरी ते त्याच्या वाट्याला आलेल्या परिस्थितीच्या विरोधातील कारण आहे. जागतिकीकरणाच्या प्रक्रियेमुळे चंगळवादी, भपकावादी संस्कृतीसमोर आली. या परिस्थितीमुळे पारंपरिक लोककलेला आणि कलावंतांना कुठलाही राजकीय आश्रय नसल्यामुळे टिकाव धरणे शक्य नव्हते. शिवाय जागतिक पातळीवर वस्तू आणि सेवांचा व्यापार मुक्त झाला आणि माहितीचे तंत्रज्ञान, दूरदर्शन चॅनल यांचा वाढता प्रभाव यामुळे लोककला फिक्या पडत गेल्या. आधुनिक तंत्रज्ञानाच्या मदतीने पुढे आलेल्या मायावी मनोरंजनाने प्रेक्षकांना आपल्याकडे आकर्षित करुन घेतले. वरील परिपाकातून लोककलेवर विपरित परिणाम घडून आले. काही लोककला कालबाहा होत गेल्या तर काही कलांचे पारंपरिक लोककलावंतांकडून उच्चभ्रू कलावंतांकडे स्थानांतरण घडून आले.

ज्या तमाशासारख्या लोककलेने हजारो वर्षांपासून मराठी मनाची मनोरंजनाची भूक भागविली ती कला नागरिकीकरण, शहरीकरण, जागतिकीकरणाने प्रभावित झाल्या. तिच्यातील लावणीसारखा लोककला प्रकार स्थानांतरित होऊन पंचतारांकित झाला. या लावणीवर उच्चभ्रू कलावतांनी कब्जा मिळवून पारंपरिक प्रेक्षक वर्ग आपल्याकडे वळवला. हा प्रेक्षक वर्ग आधुनिक लावणीकडे केवळ आकर्षितच झाला नाही तर या पंचतारांकित कला प्रकाराच कायमचा ग्राहक बनला. हा जागतिकीकरणातून पुढे आलेल्या ग्राहकवादाचाच परिणाम म्हणावा लागेल. यासंदर्भात डॉ. प्रल्हाद लुलेकर यांनी जागतिकीकरण आणि मराठी भाषा या लेखात जे विचार मांडले आहेत ते इथे उद्धृत करता येतील. ते म्हणतात, "विचार आपली भावना आणि आपली आकांक्षा भांडवली विचारांना गहाण पडली. जगातील प्रत्येक वस्तू (अगदी माणसासह) क्रयवस्तू बनून बाजारात आली. संगीत, शिल्प, नृत्य, नाट्य आदी कलांना प्रायोजित करुन त्यांनाही क्रयवस्तू बनविले. आपले सांस्कृतिक जीवनच क्रयवस्तू बनले. तेथून मूल्यहीनतेचा प्रवास सुरु होतो. आणि तेथेच आपली 'सांस्कृतिक समाप्ती अटळ असते.''३ जागतिकीकरणाच्या मान्याने हे होते अटळ होते. या भपकेगिरीमध्ये चमकेल त्याचा माल आणि सेवा विकली जाणार अन्यथा नाही अशी चमकोगिरी लोककलावंतांना जमली नाही. त्यांना त्यांचा ग्राहक वर्ग निर्माण करता आला नाही.

''लोककलांच्या दृष्टीने विचार केला असता ज्या कलांनी आपल्यात अंगभूत बदल स्वीकारून नवीन रुप धारण केले त्या कला टिकल्या; परंतु केवळ टिकल्या त्यांचा आत्मा मात्र त्या गमावून बसल्या असे म्हणावयाची वेळ आली आहे. कारण मनोरंजन माध्यमांच्या अतिरेकी भपकेगिरीमुळे एकेकाळी माणसाचा जीवनधर्म असलेल्या लोककला आता दर्शनीय न राहता केवळ प्रदर्शनीय झाल्या आहेत. त्यांना ग्राहकांची एक वस्तू असे स्वरूप प्राप्त झाले आहे.''४

लोककला लुप्त होत असल्यामुळे शासकीय पातळीवर होणारे प्रयत्न लोककलांना दिलासा देणरे असले तरी त्यामुळे पारंपरिक लोककला उपासकांचा प्रश्न सुटणार नाही. ते आजही उपेक्षितच आहेत. बदलत्या काळाबरोबर त्यांना चालता आले नाही म्हणून त्याची ही अवस्था झाली असे म्हणून चालत नाही. कारण हजारो वर्षांपासून घर ना दार केवळ भटकती करुन कलेल्या आधारावर जगणाऱ्या या उपासकांना काळ कसा बदलतो आहे आणि आपण काय बदल करायला हवेत हे समजायच्या आतच हे परिवर्तन झाले आहे. तेव्हा त्यांचा प्रश्न सोडविण्याची जबाबदारीही शासन आणि पुढारलेल्या व्यवस्थेचीच आहे. शासन लोककला असतो. ते सांस्कृतिक वारसा म्हणून या कलांचे जतन होणे तर आवश्यकच आहे. परंतु त्याचबरोबर जागतिकीकरण प्रक्रियेमुळे लोककलावंतांचे जे प्रश्न निर्माण झाले आहेत ते सुटणेही तितकेच महत्त्वाचे आहे. टिकण्यासाठी प्रयत्न करणे असले तेव्हा ते केवळ सांस्कृतिक वारसा जतन करणे हा त्या पाठीमागील उद्देश आहे.

समारोप :

खऱ्या अर्थाने 1990 नंतर सुरु झालेल्या जागतिकीकरणाच्या प्रक्रियेने सर्व जगालाच कवेत घेतले आहे. भांडवलशाही राष्ट्रांना विकसनशिल आणि गरीब राष्ट्रे कायम आपली हक्काची बाजारपेठ असावी असे वाटत होते. त्यातून मग त्याला राष्ट्रांच्या अर्थव्यवस्थेत धोरणात्मक बदल करायला लाऊन त्यांनी प्रत्येक राष्ट्राला आपली अर्थव्यवस्था जागतिक पातळीवर व्यवहार करण्यासाठी खुली करावयास लावली. स्थानिक वस्तू, श्रम, सेवा आणि भांडवल यांचे जागतिकीकरण करून त्या मुक्त करण्यात आल्या. या व्यवहाराला ग्राहकवादाचे स्वरुप प्राप्त झाले. जागतिकीकरणाच्या या मुक्त धोरणामुळे साहित्य संस्कृती लोककला प्रभावित झाल्या. त्यांच्यावर त्याचे बरे म्हणण्यापेक्षा वाईटच परिणाम जास्त झाले. जागतिकीकरणात तंत्रज्ञान, मनोरंजन, प्रसार माध्यमांचा वाढत्या प्रभावापुढे त्यांच्या भपकेबाजी संस्कृतीपुढे लोककला टिकाव धरू शकल्या नाही. काही लोककला लुप्त झाल्या तर काही लोककलांना आपल्यात अंगभूत बदल स्वीकारून त्या पंचतारांकित झाल्या. पारंपरिक लोककलावंतापासून त्या उच्चभ्रू कलावंताकडे स्थानांतरित झाल्या. या उच्चभ्रू कलावंतांनी पारंपरिक प्रेक्षक वर्ग आपल्याकडे ग्राहक म्हणून आकर्षित करून घेतला. त्यावर अचाट वैभव आणि अफाट पैसा कमवायला सुरुवात केली. पण स्थानांतरित झालेल्या कलांना प्रदर्शनाचे स्वरुप आल्यामुळे त्या आत्मा हरवून बसल्या तर लोककलांच्या आधारावर हजारो वर्षे उपजीविका चालवतांना लोककलावंताच्या वाट्याला मात्र उपेक्षितांचे जगणे आले. शासकीय पातळीवरून लोककला सांस्कृतिक वारसा म्हणून जतन करण्यासाठी प्रयत्न होत आहेत हे खरे असले तरी लोककलावंतांचे प्रश्न त्यामुळे किती प्रमाणात सुटले आहेत वा सुटणार आहेत हा एक अभ्यासाचा विषय होईल.

संदर्भ :

1) 'जागतिकीकरणाची प्रक्रिया, www.loksatta.com दि. 16/01/2019
2) तत्रैव
3) लुलेकर प्रल्हाद, "जागतिकीकरण आणि मराठी भाषा (सपा.) डॉ. सौ. सूर्यकांता अजमेरा, प्रा. विनोद उपरवट, पृ24, www.bookganga.com दि. 19/01/2019
4) मांडे प्रभाकर, ''लोकरंगभूमी'', गोदावरी प्रकाशन, औरंगाबाद,१९९४.

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि श्रीकांत देशमुख यांची कविता

प्रा.हनुमंत गणपत निमसे,
मराठी विभाग प्रमुख,कला व वाणिज्य महाविद्यालय,पुसेगाव, जिल्हा सातारा.

प्रस्तावना:

जागतिकीकरण म्हणजे देशाच्या अर्थव्यवस्थेचे जगाच्या अर्थव्यवस्थेबरोबर एकत्रीकरण करणे होय.जागतिकीकरण ही विज्ञान,तंत्रज्ञान,व्यवसाय इत्यादींचा प्रचार, प्रसार,आणि व्यापाराच्या माध्यमातून जगभरात होणारी एक महत्वाची प्रक्रिया आहे.जागतिकीकरणाचे अनुकूल तसेच प्रतिकूल परिणाम जगभरातील जवळपास सर्वच देशांवर विविध अंगाने झालेलेआपल्याला पाहायला मिळतात.भारत देशात जागतिकीकरणाला गती देण्याचे प्रमुख कारण म्हणजे लोकांची मागणी, मुक्त व्यापार, उपक्रम, जागतिक बाजारपेठा स्वीकारणे,नवीन तंत्रज्ञान उद्योन्मुख होणे,विज्ञानातील नवीन संशोधन हे होय. जागतिकीकरणाच्या संदर्भात समाजव्यवस्थेवर जागतिकीकरणाचे होणारे परिणाम जास्तीत जास्त सकारात्मक व्हावेंत म्हणून सर्वोतपरी प्रयत्न केले गेले पाहिजेत तरच उद्याच्या सुंदर दिवसासाठी जागतिकीकरण फायदेशीर ठरेल यात शंका नाही. अन्यथा जागतिकीकरणाचे प्रतिकूल परिणाम भोगावे लागतील.

साहित्य हा समाजाचा आरसा असतो. समाजामध्ये ज्या घटना घडतात त्या साहित्यातून उमटत असतात मग ती कथा असो, कादंबरी असो अथवा कविता. त्यामुळेच जागतिकीकरणाचे समाज व्यवस्थेवर झालेले अनुकूल व प्रतिकूल परिणाम अनेक कवींच्या, लेखकांच्या साहित्यातून मुखर झालेले आपल्याला पहावयास मिळतात.श्रीकांत देशमुख हे कवी याला अपवाद नाहीत. त्यांच्या कवितेतून जागतिकिकरणाचे प्रतिबिंब उमटलेले दिसते.१९९० नंतरच्या ग्रामीण कवितेतील श्रीकांत देशमुख हे एक महत्त्वाचे आणि सशक्त ग्रामीण कवी आहेत.त्यांच्या साहित्याची दखल घेऊन त्यांना साहित्य अकादमी पुरस्काराने गौरवण्यात आलेले आहे.यावरून त्यांच्या साहित्याचे वेगळेपण लक्षात येते.' बळीवंत', 'आषाढमाती', 'बोलावे ते आम्ही' हे ग्रामजाणीवा प्रखट करणारे त्यांचे महत्वाचे दर्जेदार कवितासंग्रह प्रकाशित आहेत. त्यांच्या 'बळीवंत' या कवितासंग्रहाचा जागतिकीकरणाच्या संदर्भात या ठिकाणी विचार नोंदवलेला आहे. १९९० नंतरची परिस्थिती पाहता अर्थव्यवस्थेची कूस बदलली. जागतिकीकरणाचा समाज व्यवस्थेवरील विळखा अधिक घट्ट बनत चालला त्यामुळे अनेक समस्यांनी अक्राळविक्राळ रूप समाजव्यवस्थेत धारण केले.मानवी जीवनधारणा बदलल्या.माणसांचे जीवनमान बदलले पण त्यांची मने संकुचित झाली.राजकीय, सामाजिक, वैज्ञानिक क्षेत्रात फार मोठ्या प्रमाणात बदल झाले.शेतीसारखे क्षेत्र याला अपवाद नाही. शेती हा भारतीय अर्थव्यवस्थेचा प्रमुख घटक असल्याने कृषी क्रांतीची घोषणा झाली.खते, बी-बियाणे, कीटकनाशके ,जलसिंचन योजना यात मोठे बदल झाले.या सर्व गोष्टींचा परिणाम शेती व शेतकरी, शेतमजूर यांच्यावर झाले त्याचे परिणाम अर्थात जसे चांगले त्यापेक्षा ते अधिक घातक दिसून आले.विदर्भ,मराठवाड्यात हजारो शेतकऱ्यांच्या आत्महत्या हे याचे ठळक उदाहरण होय.

श्रीकांत देशमुख संवेदनशील मनाचे कवी हे दाहक वास्तव पाहात आणि अनुभवत होते त्यावर चिंतन करून त्यांनी हे समाजवास्तव आपल्या कवितेतून उभे केले.या बदलत्या समाज वास्तवाचा कवी श्रीकांत देशमुख यांची कविता अत्यंत वस्तुनिष्ठपणे वेध घेते. प्रसंगी त्यांची कविता उपाययोजनाही सुचवते. 'बळीवंत'या कवितासंग्रहामध्ये याचा वास्तवशील अविष्कार दिसून येतो. परिवर्तनाचे अनोखे दृश्य प्रतिकात्मकतेने मांडताना कवी लिहितात,

‘आपलं पिढीजात
कुणबीपण विसरून
बाप म्हणाला,
आता किराणा दुकान मांडू
तू माल आण मी गल्यावर बसलं’[१]

नव्या व्यवस्थेने शेतीसाठी काही योजना आणल्या.शेतकऱ्यांना नवनवीन तंत्रज्ञान विकत घेण्यासाठी सबसिडी देण्याचे नियोजन सरकारने केले. शेतकरी याचा फायदा घेऊन अधिकाधिक आधुनिक पद्धतीने शेती करतो आहे.पण बी-बियाणांचा वाढता खर्च, अवकाळी पडणारा पाऊस, हवामान बदल, पिकाला हमीभाव न मिळणे यामुळे शेतकऱ्याला शेती परवडेनाशी झाली आहे. उत्पन्नापेक्षा खर्चच अधिक अशी अवस्था त्याची निर्माण झाल्यामुळे पिढीजात शेती व्यवसाय सोडून दुकानाचा व्यवसाय शेतकरी बाप करू पाहतो आहे. याचे चित्रण उपरोक्त कवितेतून कवीने व्यक्त केले आहे. आयुष्यभर दारिद्र्य पचविण्यापेक्षा नवे काही करावे ही शेतकऱ्याची मानसिकता दिवसेंदिवस बनत चाललेली आहे. 'बळिवंत' या श्रीकांत देशमुख यांच्या कवितासंग्रहातून शिक्षण घेऊन बेकार झालेल्या व शेतावरच अवलंबून असलेल्या नवशिक्षित तरूणाईच्या मनातील तुटलेपणाची जाणीवही व्यक्त होते पांढरपेशीपणा,श्रमाची कमी झालेली प्रतिष्टा,शेतीकडे पाहण्याचा बदलता दृष्टिकोन इत्यादी घटकांना कवी चिंतनशीलतेच्या पातळीवरून चित्रीत करतो. 'अंधार वाचतो पोथी'या कवितेत याचे चित्रण करताना कवी वास्तव जीवनाचा संदर्भ देऊन लिहितात.

'वाळवंटातल्या वाळूसारखं
आपलं शरीर, रक्तमांसपेशी
हाडांचा भुंगा,खत कारखान्यांना
जैविक खत निर्मितीसाठी
शेती पिकत नाही म्हणून
विकावी वस्ती आसपासची'[२]

कवी श्रीकांत देशमुख यांची ही कविता वाचताना मनापासून काळ्या मातीची सेवा करणाऱ्या व काळया मातीविषयी, पीकपाण्याविषयी, अनुभव असलेल्या प्रत्येकाच्या अंगावर ही कविता वाचताना शहारे उभे राहिल्याशिवाय राहणार नाहीत. इतके भयान वास्तव आपल्या कवेत घेऊन त्यांची कविता अभिव्यक्त होते. आज जागतिकीकरणाच्या युगात शेतीची, शेती करणाऱ्या शेतकऱ्याची,शेतीवर अवलंबून असलेल्या सर्वच घटकांची खूप दयनीय अवस्था निर्माण झालेली आहे.शेतकरी शेतात मनापासून राब-राबतो. शेती कसण्यासाठी जवळ पैसे नसले तर तो दुसऱ्याकडून पैसे उसने घेतो आणि शेतात पिकाची लागवड करतो. शेतातील हिरव्यागार पिकाकडे पाहून तो भविष्याविषयी स्वप्न रंगवतो मग ते मुलीचे लग्न असो,विहीर खोदणे असो, मुलांचे शिक्षण असो, की उदरनिर्वाह असो.लहानाचे पिक मोठे करताना तो प्रचंड कष्ट करतो.शासनाच्या भारनियमनाला सामोरे जाऊन दिवसाची रात्र करून तो पिकांना पाणी देतो पण अचानक कोणतातरी रोग पिकावर येतो अथवा अचानक भयानक दुष्काळ पडल्यामुळे पिकाला पाणीच मिळत नाही. विहीर कोरडी पडते तेव्हा उभे पीक स्वतःच्या डोळ्याने जळताना शेतकरी पाहतो त्याचे हृदय पिळवटून जाते पण काय करणार काहीच उपयोग होत नाही. घेतलेले कर्ज फिटत नाही यातूनच अनेक शेतकरी आत्महत्या करतात तर काही शेतकरी नाइलाजास्तव जमीन विकतात. अशी जीवघेणी अवस्था निर्माण होते याचे मनस्पर्शी चित्रण उपरोक्त कवितेतून कवी करतात.

आज आपण भारत कृषिप्रधान देश आहे असे अभिमानाने म्हणतो.काही नोकरी,व्यवसाय करणारे लोक शेतकरी मनाचा मालक आहे असे म्हणतात. पण खरंच शेतकऱ्याची वस्तुस्थिती जर पाहिली तर जागतिकीकरणाच्या युगात खूप भयंकर आहे.जागतिकीकरणामुळे तंत्रज्ञान आले.शेतकऱ्यांची मेहनत कमी झाली.कमी कष्टात पिके येऊ लागली.हे जरी खरे असले तरी रासायनिक खतांचे वाढते दर, औद्योगिकरणामुळे दूषित झालेले हवामान,पिकांवर येणारे वेगवेगळे रोग, अवेळी पडणारा पाऊस, वाढते तापमान,महागाई कुशल मजुरांचा अभाव यासारखे अनेक नानाविध प्रश्न शेतकऱ्यांसमोर 'आ' वासून उभे आहेत. हे सारे भोग शेतकऱ्याला भोगावे लागतात आणि केवळ हेच त्याच्या नशिबी उरते 'बारमाही'या कवितेत याचे चित्रण करताना कवी लिहितात.

'बारमाही राबणाऱ्या जिवानं
पुसू नयेत दिवस हंगामाचे
बुडतो दिवस कोणत्या मावळतीला
घेऊ नये अंदाज याचा
बैल ओढतो मोट
ओढावं आयुष्य तसंच
हंबरून नये बैलानं
थारोळ्यातल्या पाण्याच्या नावानं'[३]

यातले वास्तव तपासताना हे लक्षात येते की प्राण्याचं राबणे आणि शेतकऱ्याचे राबणे यात काही फरक नाही म्हणून त्याने माळरानावरचा निसर्ग संहार बघत राहावा असे कवी म्हणतात कारण माळरानाच्या झालेल्या संहाराला माळरानही काहीच करू शकत नाही असे सारे काही विदारक असले तरी कवी आशावादी दिसतात. अशा बदलत्या परिस्थितीत कष्टातच शेतकऱ्याचे जन्मने व मरणे असले तरीही ते शेतकऱ्याला आधार देतात. ते म्हणतात,

'कधीतरी पावेल नवसाला पांडुरंग
तू दमु नकोस, भागू नकोस
लिंबोणीच्या झाडाआड मरू नकोस'[४]

कवीचा ईश्वरावर प्रचंड विश्वास आहे. म्हणून कवी राजकारणी लोक तुझे भले करतील असे म्हणत नाहीत तर बदलत्या युगात सर्व काही बदललेले असले तरी तू खचून जाऊ नकोस.गावात खेड्यात झालेले परिवर्तन, नात्यानात्यात झालेले बदल,स्वार्थी लोकांचे वागणे,सुलतानी अस्मानी संकटे या सर्वांना तू निर्भिडपणाने सामोरे जा .स्वताचे जीवन संपवणे हा कोणत्याच दु:ख मुक्तीचा मार्ग नाही[५] असा सल्ला शेतकऱ्यांविषयी कवीला जिव्हाळा असल्यामुळे ते देतात.आज सर्व काही प्रतिकूल असले तरी धीर खचून न जाता येणाऱ्या परिस्थितीला समर्थपणे सामोरे जावे. एक ना एक दिवस आशेचा किरण उगवेल ह्यात शंका नाही असा आत्मविश्वास ते व्यक्त करून शेतकऱ्यांना आधार देतात. अशाप्रकारे जागतिकीकरणाच्या झंजावतात कवी श्रीकांत देशमुख यांची कविता वेगळेपणाने उटून दिसते.

संदर्भ:

1. देशमुख श्रीकांत,बळीवंत,शब्दालय प्रकाशन,तिसरी आवृत्ती,२००६,पृ.३०.
2. तत्रैव,पृ.३२.
3. तत्रैव,पृ.२८.
4. तत्रैव,पृ.४८.
5. तत्रैव,पृ.५०

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि स्त्रीवादी साहित्य प्रवाह

प्रा. श्रीमती वंदना शामराव खोराटे.
सहाय्यक प्राध्यापक, डॉ. घाळी महाविद्यालय, गडहिंग्लज, जि. कोल्हापूर.
ई-मेल आयडी - dnathpatil@gmail.com

प्रास्ताविक :

जागतिकीकरण म्हणजे माणसाच्या बुद्धीची पैदास आहे. ती विनाश तर पावणार नाहीच परंतु; जसा माणुसकीचा ऱ्हास होईल आणि स्वार्थाचा पारा वर जाईल, तसे जागतिकीकरण निरनिराळी आणि भेसूररूप घेऊन मानवी संस्कृतीचे लचके तोडेल असे वाटते. साहित्य हे काळाचे अपत्य आहे आणि साहित्यनिर्मिती ही सर्जनशीलतेतून येते पण सर्जनशीलता ही स्त्री- पुरुष भेद मानत नाही.

जागतिकीकरणाच्या प्रवाहात स्त्री ही सामाजिक, राजकीय, धार्मिक व सांस्कृतिक बंधनातून मुक्त होताना दिसते पण; पुरुष सत्ताक पद्धतीची पकड मात्र अजूनही स्त्रीवर आहे, हे समाजवास्तव नाकारता येत नाही. म्हणूनच स्त्रीचे साहित्यातील योगदान अत्यल्प असल्याचे जाणवते. त्यामुळे जागतिकीकरणाचा स्त्रीवादी साहित्यावर काय आणि कसा परिणाम झाला हे पाहण्यासाठी शोधनिबंधाचा हा लेखन प्रपंच!

स्त्रीवादी साहित्याच्या उदयाची पार्श्वभूमी:

स्त्रीवादी साहित्य म्हणजे केवळ स्त्रीनिर्मित साहित्य नव्हे, तर पुरुषकेंद्री विचार व्यूहातून मुक्त अशा परिप्रेक्ष्यातून कोणीही - स्त्री वा पुरुषाने - निर्माण केलेले साहित्य म्हणजे स्त्रीवादी साहित्य असेही व्यापक अर्थाने म्हणता येईल. स्त्रीवादी साहित्य ही कल्पना भारतात आली ती ब्रिटिश आणि अमेरिकन स्त्रीवादी चळवळीतून आणि स्त्रीवादी साहित्यातून. साधारणतः १९६० च्या सुमारास पाश्चात्य जगात स्त्रीवाद ही जाणीव उदयाला आली तर भारतात स्त्रीवाद १९७५ नंतर रुजला .१९६३ सालचे बेटी फ्रिडनचे 'स्त्रीभावाचे गुढ' (Feminine Mystique) हे पुस्तक नव्या स्त्रीवादी चळवळीच्या दृष्टीने पायाभूत मानले जाते. युद्धोत्तर वैभव संपन्न समाजातील मध्यमवर्गीय, उपनगरी जीवन जगणाऱ्या स्त्रियांच्या बांडगुळी अवस्थेला वाचा फोडणारे हे पुस्तक अनेकींना स्फूर्तीदायक ठरले.

१९४८ मध्ये न्यूयॉर्क येथे 'द फर्स्ट वूमेन्स राइट्स कन्व्हेंशन' मध्ये स्त्रियांच्या गुलामगिरी विरुद्ध कडक शब्दात चीड व्यक्त करण्यात आलेली होती. फ्रेंच राज्यक्रांती, रशियन राज्यक्रांती, हिंदुस्थानातील 'चलेजाव'ची चळवळ यांचे नेतृत्व स्त्रियांनी घेतलं नसेल, पण त्यातील त्यांचा सहभाग त्यांची स्वातंत्र्याची भूक दाखविणाराच आहे.

'स्व' ची ओळख म्हणजे काय? मनुष्याने केलेले काम त्याची ओळख पटवते. शरीर जिवंत राहण्यासाठी केलेले काम म्हणजे स्वतःची ओळख नव्हे. जेव्हा मानवाच्या उत्क्रांतीत एक निर्माता घटक म्हणून व्यक्ती स्वतःला ओतून व स्वतःतून पलीकडे जाऊन जे काम करते ते त्याच्या व्यक्तिमत्वाची साक्ष देते. ज्याला 'स्व' समजतो तो स्वतःपलीकडे जाऊन मानवी हेतूंसाठी कृती करतो. ज्या क्षेत्रात व्यक्तीच्या सर्व क्षमतांची कसोटी लागते व त्याला स्वतःच्या सुप्त सामर्थ्याची ओळख पटते ते काम. अशा कामामधूनच मनुष्य जातीचा विकास होत असतो व अशा तऱ्हेचे काम आपल्या हातून केंव्हाच निसटलेले आहे याची जाणीव स्त्रीला झाली. म्हणूनच शिक्षण आणि सामाजिक कार्यातील क्रियाशील सहभाग या स्त्रियांच्या प्राथमिक गरजा आहेत, याची जाणीव स्त्रियांना १९६० नंतरच्या काळात होऊ लागली आणि स्त्री मनातील आंदोलने लेखणीच्या माध्यमातून कागदावर उमटू लागली.

भारतीय स्त्रीवाद :

स्त्रीवाद किंवा साहित्यातील स्त्रीवादी चळवळ समजून घ्यायची असेल तर समाजाच्या इतिहासातील स्त्रीचे स्थान आणि तिच्या भूमिकेबाबत असलेले संदेह हे प्रथम माहीत करून घ्यायला हवेत. 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता:|' असे म्हणून स्त्रीला जरी देवी समान मानले गेले तरी पुरुष-प्रधान संस्कृतीत स्त्रीला दुय्यम स्थान दिले आहे. भेदभाव, दुर्लक्ष, नियंत्रण, शोषण, दडपशाही, हिंसा या स्वरूपात स्त्रियांवर कुटुंबात, कामाच्या ठिकाणी व समाजात दुय्यमत्व लादले जाते.

आधुनिक स्त्रीवादी विचार प्रक्रियेमधील एक महत्त्वाची संकल्पना म्हणून पुरुषप्रधान संस्कृतीचा विचार होतो. भारतीय स्त्रीवाद हा पुरुषांना दोष देत नाही अथवा कमीही लेखत नाही तर पुरुषप्रधान संस्कृतीला दोष देतो. मराठी स्त्रीवादी साहित्य हे 'स्त्री'चा व्यक्ती म्हणून विचार करते. त्यातूनच पुरुषांनाही सन्मानाचे स्थान देते ही विशेष बाब आहे.

ताराबाई शिंदे यांचे 'स्त्री- पुरुष तुलना' हे पुस्तक म्हणजे १८८२ मध्ये प्रसिद्ध झालेले महाराष्ट्रातील पहिले स्त्रीवादी लेखन म्हणून गणले जाते. या पुस्तकात स्त्री-पुरुषांच्या मधील सारा असमतोल दूर करून स्त्री जातीला न्याय देण्यासाठी खटपट आहे. यामधील आधुनिक क्रांतीदर्शी विचार तर्कशुद्ध पद्धतीने एका स्त्रीने मांडलेले आहेत.

जागतिकीकरण आणि मराठी स्त्रीवादी साहित्य :

पृथ्वीवर जेव्हा जीवसृष्टी निर्माण झाली तेव्हापासून स्त्री आणि पुरुष या दोन प्रकृती अस्तित्वात आहेत. मानवजात सर्वश्रेष्ठ, सर्व गुणसंपन्न आणि ज्ञानी, प्रतिभा संपन्न अशी आहे. सृष्टीकर्त्याची ही सर्वोत्तम रचना आहे. ही सर्व जबाबदारी समर्थपणे सांभाळताना मानवाने स्त्री आणि पुरुष यांच्यातील शारीरिक क्षमता लक्षात घेऊन ' सांभाळणे आणि मिळवणे' अशी त्यांची विभागणी केली. अर्थातच सांभाळण्याची, सर्जनाची जबाबदारी स्त्रीकडे आली आणि ती जबाबदारीच्या जोखडात बंदिस्त झाली.

'पिता रक्षती कौमार्य, भर्ता रक्षती यौवने|
स्थविरे रक्षती पुत्र, न स्त्री स्वातंत्र्यम् अर्हती ||'

याप्रमाणे पूर्वीची स्त्री लहानपणी वडिलांवर अवलंबून होती, तारुण्यात पतीवर अवलंबून होती तर वार्धक्यात पुत्ररुपी आधाराची काठी तिला हाती धरावी लागे. आता मात्र काळ बदलला आहे. आजची स्त्री स्वतःचे अस्तित्व सिद्ध करू पाहत आहे. 'पुरुषांच्या खांद्याला खांदा लावून' किंवा 'पुरुषांच्या बरोबरीने' ही वाक्ये तिने केव्हाच मागे टाकली आहेत.

आजची स्त्री ही एक शक्ती आहे. तिच्या नसा-नसांतून समाजातील वाईट सवयींविरुद्धचे रक्त सळसळते आहे. सोळा विद्या आणि चौसष्ट कला यांचा मागोवा घेताना स्त्रिया आज प्रत्येक क्षेत्रात अग्रेसर आहेत. काळाची पुढची पावले ओळखण्याची क्षमता स्त्रियांमध्ये असते. त्यामुळेच स्त्रिया नेहमीच सतर्क असतात आणि 'पुढे काय करायचे?' याचा अचूक निर्णय घेतात. इतिहासाच्या पानापानांवर स्त्रियांच्या या सुप्त शक्तीचा प्रत्यय जाणवतो.

स्वातंत्र्यसंग्रामातला स्त्रियांचा सहभाग हा स्वातंत्र्य मिळवण्याच्या वाटेवरचा मैलाचा दगड आहे. अशक्य ते शक्य करून दाखवणे आणि पुरुषांची चेतनाशक्ती ही सतत जागृत ठेवणे हे स्त्रीत्वाच्या सुखद भावनेतून आलेले सहज सुंदर भान आहे. त्याचा योग्य ठिकाणी योग्य वापर करणे हे कोणत्याही स्त्रीला शिकावे लागत नाही. मग ती स्त्री अगदी निरक्षर वा अडाणी असली तरीही! उपजत मिळालेल्या या दानाने स्त्री मुळातच समृद्ध आणि सबला आहे परंतु पुरुषप्रधान संस्कृतीला या अज्ञानात आनंद मानता यावा म्हणून केवळ गप्प राहणारी ही अबला फक्त वेळेची वाट पाहत राहते आणि जेव्हा खरोखरच कठीण वेळ येते तेव्हा या अबलेतल्या बळाचे तेज पुरुष पाहू शकत नाहीत इतके प्रखर असते. हे प्रखर तेज संत जनाबाई, संत मुक्ताबाई यापासून ते दुर्गाबाई भागवतांचे साहित्य, बहिणाबाई चौधरी, शांता शेळके यांचे काव्य, विभावरी शिरूरकरांचे कथासंग्रह यामध्ये जाणवते.

आज जागतिकीकरणाच्या काळात स्त्रीचे अस्तित्व ठळक होताना दिसते. अनेक प्रकारचे अधिकार मिळाल्यामुळे आजची स्त्री कणखर झाली आहे. तिला स्वतःचे कर्तृत्व सिद्ध करण्यासाठी संधी मिळत आहे.

स्त्रीवादी मराठी साहित्य विषयी विचार मांडताना सौ. रेखा बैजल यांचा 'पक्षी जाय दिगंतरा' हा कथासंग्रह डोळ्यांसमोर येतो. या कथासंग्रहातील 'ऋण' ही कथा म्हणजे आजच्या धकाधकीच्या जीवनातील स्त्री मनाचा ठाव घेणारी आहे. कथानायिका 'स्वप्ना' ही प्राध्यापिका म्हणून सेवा बजावत असते. तिने आंतरजातीय प्रेमविवाह केला आहे आणि म्हणूनच भिन्न सांस्कृतिक पार्श्वभूमी लाभलेल्या कुटुंबाशी तिला पदोपदी तडजोड करावी लागते. स्त्रीमध्ये असणाऱ्या उच्च सहनशीलतेमुळेच ती सर्व काही निभावून घेते. अचानक तिच्या बाबांचं पत्र येतं आणि स्वप्नाला कळतं की आईची तब्येत खूपच बिघडली आहे. स्वप्नाला भाऊ नसल्याने सत्तरीतले तिचे वडील स्वतःच ब्रेड- बटर खाऊन जमेल तशी पत्नीची सेवा करत असतात. स्वप्नाला गहीवरून येतं आणि ती आई बाबांना आपल्या घरी आणण्याचा विचार नवरा संजीव व सासूरेसास- यांना बोलून दाखवते. ते तिघेही त्याला विरोध दर्शवतात तेव्हा स्वप्ना एक घर भाड्याने घेते आणि तिथेच आई-बाबांसोबत राहण्याचा निर्णय घेते. मुलगीचे घर हे तिच्या आई-वडिलांसाठी परके असते या रुढ, परंपरावादी आणि जाचक विचाराविरुद्ध स्वप्ना बंड करून उठते नि संजीवला म्हणते, " 'प्रेम प्रेम' म्हणत तू इथे मला आणलंस पण; ते प्रेम माझ्या समस्यांना स्वीकारू शकत नाही. इथे सध्या तरी माझी गरज आहे केवळ एक घरातलं काम करणारी म्हणून. एक कमवून आणणारी स्त्री म्हणून. पण माझ्या मानसिक गरजांना इथे काहीही किंमत नाही. वयाच्या या स्टेजला मला माझी आयडेंटिटी माझ्याच घरात नसणं हे भयावह आहे. म्हणून मी हा निर्णय घेतलाय."

आजच्या सुशिक्षित आणि सुसंस्कृत समजल्या जाणाऱ्या समाजातील अनेक स्त्रियांची प्रतिनिधी म्हणजे कथानायिका स्वप्ना! स्त्रीला कितीही सहनशील म्हटले तरी एका मर्यादेपलीकडे ती देखील कणखर भूमिका घेऊ शकते याचे हे उत्तम उदाहरण म्हणून या कथेचा उल्लेख करता येईल.

ताराबाई शिंदे यांनी आपल्या 'स्त्री-पुरुष तुलना' या पुस्तिकेत काळाच्या पुढचे व अतिशय परखड असे विचार व्यक्त केले आहेत. ताराबाई शिंदे यांनी स्त्रीचे विविध स्तरावर होणारे शोषण, पुरुषसंस्कृतीची वर्चस्व राखण्याची रानटी वृत्ती यावर त्यांनी आपल्या खास शैलीत प्रहार केले. 'नवरा कसाही दुर्गुणी असला तरी त्याला देवाप्रमाणे मानून कोण बरी वागेल?' असा सवाल ताराबाई शिंदे यांनी आपल्या लेखनातून केला आहे.

इ.स. १९५० पर्यंतच्या मराठी वाङ्मयात स्त्रीवादी विचारांची पात्रे परखडपणे चित्रित करण्याचे धाडस विभावरी शिरूरकर यांनी सर्वप्रथम केले. विभावरी शिरूरकर यांचा 'कळ्यांचे निःश्वास' हा कथासंग्रह प्रकाशित झाल्यावर स्त्रियांच्या लेखनाला स्त्रीचे खरे सत्व सापडलेले आढळून येते. 'कळ्यांचे निःश्वास' कथासंग्रहातील नायिका या व्यक्ती स्वातंत्र्याच्या प्रखर जाणिवांचा अविष्कार करतात. व्यक्ती स्वातंत्र्य आणि वास्तववाद याच्या जाणिवेने विभावरी शिरूरकर या स्त्री विश्वाचे खरेखुरे दर्शन घडवितात. प्रेमाची असफलता, वैवाहिक सुखाचा अभाव, आई-वडिलांशी संघर्ष झाल्याने दुःखी झालेल्या, आईच्या किंवा वडिलांच्या भ्रष्ट आचरणामुळे दुःख भोगावे लागणाऱ्या स्त्रियांचे कथा विषय आहेत. तरुण, यौवनाच्या उंबरठ्यावर असणाऱ्या मुलींच्या या कथांनी त्याकाळी खळबळ उडवून दिली. 'बाबांचा संसार माझा कसा होणार? ', 'त्याग', 'प्रेम की पशुवृत्ती? 'आई की दावेदारीण?' अशा कथांमधून तरुण मुलींनी जणू त्या काळच्या समाजालाच सवाल केले. या कथांतल्या निर्भीड, प्रांजळ, परिस्थितीने पिचलेल्या तरुणी त्या काळातल्या समाजव्यवस्थेवर भाष्य करतात. पदवीधर, महाविद्यालयात शिकणाऱ्या या सुसंस्कारित कुमारिका मुलींनी या कथांमध्ये आपल्या दुःखाचे अनेक पदर उघड केल्याने विभावरी शिरूरकर यांची एक 'बंडखोर लेखिका' म्हणून ओळख निर्माण झाली.

जागतिकीकरणाचा व्यापक संदर्भ लाभलेल्या आणखी एका कथासंग्रहाचा इथे उल्लेख करणे उचित ठरेल. तो म्हणजे' ब्रँड फॅक्टरी' ! मनोहर सोनवणे यांचा हा कथासंग्रह नुकताच प्रकाशित झाला आहे. या कथासंग्रहातील एक कथा म्हणजे 'वेलकम टू कस्टमर केअर'. जागतिकीकरणाच्या रेट्यात सापडलेल्या तरुण पिढीची प्रतिनिधी म्हणजे कथानायिका अर्चना! मुळची कोल्हापूरची असणारी अर्चना ही पुण्यातल्या एका कॉल सेंटर मध्ये काम करते. अमेरिकेतल्या ग्राहकांशी बोलताना ती स्टेला होते. स्टेला की अर्चना? अर्चना की स्टेला? घरचे संस्कार की पब संस्कृती? अर्चना अशाच प्रश्नांच्या चक्रव्यूहात रोजच सापडत असते. नोकरीची अट म्हणून अर्चना प्रोफेशनल विनयाने फाडफाड इंग्रजी बोलत असते. पण; कोल्हापुरी भाषेची रांगडी ढब विसरू शकत नाही. एक मन अधून मधून कोल्हापूरकडे धाव घेतं तर डोक्याला हेडफोन लावला की दुसरं मन अमेरिकेच्या दिशेने झेपावतं. कोल्हापूर, पुणे, अमेरिका... अर्चनाच्या मनात कायम गोंधळ सुरू असतो.

अर्चनाला अखेरीस स्वतःचा सूर सापडतो. ती पब संस्कृतीला ठाम नकार देते नि आपल्या मित्राला म्हणते, " ... मी काकूबाई नाही! हो. मी याच जगात राहते. याच काळाची आहे मी. व्हेरी मच इन धिस वर्ल्ड. व्हेरी मच मॉडर्न ! आय हॅव माय लाइक्स, डिसलाइक्स... माय चॉइसेस... मला माझं संवेदन आहे." कथा संपते आणि अर्चनाचा 'स्व' प्रवास सुरू होतो. आभासी दुनियेतील खेळामुळे या कथेला एक वेगळंच परिमाण लाभलं आहे. आज जागतिकीकरणामध्ये देखील भारतीय संस्कृती टिकून आहे ती अर्चना सारख्या तरुणींमुळे हे सत्य नाकारता येणार नाही.

सौ.रेखा बैजल यांच्या 'माझीच मला मी' या कथेची नायिका सौ. रोहिणी पंडित बँकेतील नोकरी करत कुटुंबाच्या जबाबदाऱ्या पेलत असते. पण कुटुंबातील सदस्यांच्या वागण्यातील कोरडेपणा तिला प्रकर्षाने जाणवत असतो. ती बँकेतून व्ही.आर.एस. घेते. ही गोष्ट मिलिंदला खटकते. मग घरी राहिल्यावर मिलिंदचे परस्त्रीशी असणाऱ्या प्रेम संबंधाची कुणकुण लागते. मुलंही आपल्या विश्वात रमल्याची जाणीव तिला होते. या सगळ्यांचा परिणाम म्हणजे ती घर सोडून जाते आणि बाल सुधारगृहातील मुलांचे संगोपन करण्यात धन्यता मानते. आपली जुनी ओळख पुसण्याच्या हेतूने ती आपलं नावही बदलते आणि 'राधा' असं नवं नाव धारण करते. एक दिवस बाल सुधारगृहातील समाज कल्याण अधिकारी असणारा चेतनही आपल्या बायको बद्दल तक्रार करत असतो. तेव्हा राधा त्याला समजावते, " तू पत्नी म्हणून तिला निवडताना एक संसारी स्त्री म्हणूनच निवडलंस ना! मग तिच्या मर्यादांचा स्वीकार कर. त्या मर्यादा ओलांडायला तिला तूच मदत कर. तिच्याशी गप्पा मार. नवरा- बायकोचा संवाद होण्यासाठी आवश्यक असतो एखादा तास. पण त्या तासापुरती गरज भागली नाही की तुम्ही पुरुष बायकोची तक्रार करून किती सहजपणे मोकळे होता रे! बायकोनं घर ही चांगलं ठेवावं, स्वयंपाकही मन लावून करावा, मुलांचं संगोपन ही करावं आणि तुमच्या वेव्हलेंथशी जुळवूनही घ्यावं. तिची कसरत पाहत शब्दांचे ढोल बडवत बसण्यापेक्षा थोडं तिच्या पातळीवर आपणही जावं की ...'तुझाच दोष आहे हे कळालं ना! हे कळणाऱ्या माणसानंच थोडं वाकायचं आणि जोडीदाराला वर उचलायचं. ताठ असणाऱ्या माणसाला हे जमणार नाही." सुखी संसाराचं एक साधं, सरळ सूत्र राधा चेतनला सांगते. स्त्रीत्वाच्या मनाची भावस्पर्शी स्पंदने जणू राधाच्या तोंडातून बाहेर पडतात. बालसुधारगृहातला लहानगा अनिल तापाने फणफणत असताना राधा त्याच्या अंगावरून हात फिरवते आणि तो डोळे उघडत राधाला बिलगतो. तेव्हा राधाला स्त्रीत्वाच्या शक्तीची वेगळी जाणीव होते. जागतिकीकरणाच्या युगातील स्त्री समस्यांचे चित्रण या कथेत केली आहे. कुटुंबाकडून स्त्रीबद्दल असणाऱ्या अमर्याद अपेक्षा, तिरस्कार, दुर्लक्षितपण या सगळ्यांतून 'स्व' ची ओळख अबाधित ठेवणारी स्त्री यांचे वास्तव दर्शन या कथेत केले आहे.

१९६० नंतरच्या कालखंडात अनेक कवयित्रींनी केलेले काव्य लेखन हे उत्कृष्ट स्त्रीवादी साहित्याची साक्षच आहे. त्यातल्या जेष्ठ कवयित्री म्हणजे शांता शेळके. शांता शेळके यांच्या काव्यातून लहानपणीच्या आठवणी आणि तारुण्यातील यातना यांचा विरोधाभास जाणवतो. स्त्रीच्या जीवनातील क्षणभंगुरता त्यांनी यथार्थपणे टिपली आहे. अनुराधा पाटील यांच्या 'कदाचित' या साहित्य अकादमी प्राप्त काव्यसंग्रहाचा स्त्रीवादी साहित्याच्या दृष्टिकोनातून विचार करणे क्रमप्राप्त ठरते. ग्रामीण भागातील स्त्रियांच्या समस्यांवर या काव्यसंग्रहाने प्रकाश टाकला आहे. नवऱ्याला सर्वस्व मानणाऱ्या स्त्रिया, तिचा पदोपदी होणारा अपमान, तिच्या चारित्र्यावर घेतला जाणारा संशय अशा गोष्टींचे प्रतिबिंब त्यांच्या काव्य लेखनात आढळते. अशाप्रकारे काव्यमधूनही स्त्रीवाद मांडल्याचा आपल्याला प्रत्यय येतो.

निष्कर्ष :

मराठी स्त्रीवादी साहित्यामुळे स्त्री प्रतिमेचे अनेक पैलू लक्षात येतात ते असे –

१. स्त्रियांमध्ये 'स्व' ची जाणीव - जागृती निर्माण झाली.
२. स्वतःच्या अस्तित्वाची लढाई ती स्वतः लढताना दिसते.
३. भारतीय संस्कृतीचा सन्मान करत अन्यायाविरुद्ध मते मांडताना दिसते.
४. अनेकविध क्षेत्रात स्त्रीने आपल्या कर्तृत्वाची झेप घेतलेली दिसते.
५. आजच्या स्त्रीमध्ये कणखरपणा व आत्मविश्वासाची जाणीव झालेली दिसून येते.

समारोप :

जागतिकीकरणाच्या या युगात स्त्रीकडे पाहण्याचा समाजाचा दृष्टिकोन बदलला. स्त्रियांचे सक्षमीकरण झाले. स्त्रीने घरापुरती आपली क्षमता खर्च केली ही 'स्व' ची आत्महत्या आहे. आपल्या दारावरून जग पुढे जात असताना घरात निष्क्रिय बसून त्याच्याकडे थंडपणे पाहत राहणे ही घोर आत्मवंचना आहे. याचा साक्षात्कार होणं व त्यामुळे स्वतःकडे व जगाकडे पाहण्याची दृष्टीच बदलणं ही स्त्रीवादाची बैठक आहे. म्हणूनच स्त्रीवादी साहित्यातील कथानायिका या रूढी -परंपरेने आलेले सर्व नियम झुडकारून क्रांती घडवून आणू पाहत आहेत.

संदर्भ :

1. 'स्त्रीवादी समीक्षा स्वरूप आणि उपयोजन' - डॉ. अश्विनी धोंगडे. दिलीपराज प्रकाशन प्रा.लि. पुणे १९९३.
2. 'स्त्रियांचे कथालेखन: नवी दृष्टी, नवी शैली - डॉ. मंगला वरखेडे. साकेत प्रकाशन प्रा.लि. औरंगाबाद, २००५
3. 'ब्रँड फॅक्टरी' - मनोहर सोनवणे , aksharnama.com
4. स्त्री- प्रश्नांची वाटचाल' - विद्युत भागवत

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरणाचा महानगरीय कवितेवरील प्रभाव

प्रा.अंकुश भारत घुले
सहाय्यक प्राध्यापक,राजर्षी छत्रपती शाहू कॉलेज,कोल्हापूर

प्रस्तावना :

वाङ्मयप्रकारातील एक सशक्त प्रकार म्हणून कवितेकडे पहिले जाते. मराठी कवितेची परंपरा प्रदीर्घ स्वरुपाची राहिलेली आहे. जवळजवळ सातशे वर्षांची परंपरा या मराठी कवितेला लाभलेली आहे. या सातशे वर्षाच्या वाटचालीत तिने आपले स्वतंत्र रूप सतत सिद्ध केले आहे. कधी समाजप्रबोधन तर कधी निखळ मनोरंजन असे या कवितेचे स्वरूप राहिलेले आहे. प्राचीन काळापासून ओवीबध्द असलेली गेय कविता अलीकडे मुक्तछंदाकडे वळालेली दिसते. आताच्या कवितेला कोणतीही बंधने नाहीत. त्याचे मुख्य कारण आधुनिक कालखंडात इंग्रजीच्या संपर्काने हे सर्व बदल मराठी कवितेत झालेले आपणास दिसून येतात. कविता म्हणून जे कवितेला एक पद्य स्वरूप होते त्यातून आता आधुनिक कविता बाहेर पडलेली आहे. म्हणजेच ती पद्याऐवजी गद्याकडे अधिक झुकलेली दिसते. मराठी कवितेच्या क्षेत्रातील नामवंत कवी केशवसुत, बालकवी, मर्ढेकर, कोल्हटकरांची कविता वेगळ्या धाटणीची ठरली. याच परंपरेला विरोध करीत तर कधी संवादी राहत आधुनिक कवींनी आपली स्वतंत्र कविता निर्माण करण्याचा प्रयत्न केलेला आहे. प्रामुख्याने कवितेचा अभ्यास करत असताना विशिष्ट कालखंड नजरेसमोर ठेऊन करावा लागतो. कारण त्या विशिष्ट कालखंडात घडलेल्या घटना घडामोडींचा त्या कवितेवर प्रभाव पडत असतो. अशाच प्रकारे नव्वदोत्तर कालखंड ही संज्ञा मराठीमध्ये रूढ झालेली आहे. नव्वदोत्तर म्हणजे १९९० नंतरचा जागतिकीकरणाचा कालखंड होय. या जागतिकीकरणाचा प्रभाव शहरापासून ते गावापर्यंत सर्वत्र झालेला आपणास दिसून येतो. गावे ओस पडू लागली तर महानगराच्या ठिकाणची लोकसंख्या झपाट्याने वाढू लागली. याच मुख्य कारण म्हणजे रोजगार होय. रोजगारासाठी लोकांचे स्थलांतर होऊ लागले. जागतिकीकरणाने शहरांच्या ठिकाणी रोजगार मिळू लागले. जरी शहरांच्या ठिकाणी रोजगार मिळत असले तरी त्यातून अनेक प्रश्न निर्माण होऊ लागले. म्हणजेच जागतिकीकरणाचा जसा चांगला परिणाम येथील जीवन व्यवस्थेवर झाला. तसाच वाईट परिणाम ही झाला. यासाठी जागतिकीकरणाची संकल्पना समजावून घेणे आवश्यक आहे.

जागतिकीकरणाची संकल्पना :

१९९० च्या सुमारास जागतिकीकरणाच्या प्रक्रियेला सुरुवात झाली. 'जागतिकीकरण म्हणजे संपूर्ण जगाचे एका मोठ्या बाजारपेठेत रूपांतरण होणे.' त्याचबरोबर विविध देशातील खुले आर्थिक व व्यापारी धोरणांचा स्वीकार करणे म्हणजेच जागतिकीकरणाच्या प्रक्रियेत सहभागी होणे. त्यामुळे या जागतिकीकरणाचा सामाजिक व सांस्कृतिक जीवनावर याचा फार मोठा परिणाम झाला आहे. 'ग्लोबल व्हिलेज' ही संकल्पना जागतिकीकरणातूनच उदयास आली आहे. जागतिकीकरणाच्या बरोबर खाजगीकरण व उदारीकरण असे प्रवाह सुरु झाले. यालाच 'खा.ऊ.जा' असे संबोधले जाऊ लागले. या 'खा.ऊ.जा' थेट परिणाम महानगरीय जीवनावर झपाट्याने झाला. त्याचे मुख्य कारण जागतिकीकरणाची मुख्य केंद्र हे सुरुवातीला महानगरे होती. त्यानंतर मात्र हळूहळू त्याचा परिणाम हा गाव-खेड्यांपर्यंत पोहचला. म्हणून जागतिकीकरणाचा पहिला प्रभाव हा महानगरावर पडलेला आपणास दिसून येतो. जागतिकीकरणाच्या अभ्यासकांनी केलेल्या व्याख्या पुढीलप्रमाणे;

1. एडवर्ड हार्मन :- "जागतिकीकरण ही सीमापार उत्पादने, भांडवल सेवा आणि आर्थिक क्रिया प्रक्रियांच्या वाढत्या प्रवाहाला लक्ष करणारी प्रक्रिया होय."
2. बायलिस आणि स्मिथ :- "जगाच्या विविध भौगोलिक क्षेत्रात राहणाऱ्या लोकांमध्ये वाढते सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक, व्यापारी, सांस्कृतिक संबंध दर्शविणारी व्यापक प्रक्रिया म्हणजे जागतिकीकरण होय."
3. जागतिक बँक :- "जागतिकीकरण म्हणजे जागतिक अर्थव्यवस्था निर्माण करणे होय."

जागतिकीकरणाबरोबरच खाजगीकरण आणि उदारीकरण ही आपणाला समजून घ्यावे लागेल.

खाजगीकरण :

१९९१ मध्ये भारताने नवीन आर्थिक धोरणाचा स्वीकार केल्यानंतर नवीन आर्थिक धोरणातील एक महत्त्वाची संकल्पना म्हणजे "खाजगीकरण" होय. सर्वसाधारणपणे खाजगीकरण म्हणजे सार्वजनिक क्षेत्रातील उद्योग खाजगी क्षेत्रातील व्यक्तीकडे हस्तांतरित करणे होय. खाजगीकरणाच्या अभ्यासकांनी केलेल्या व्याख्या पुढीलप्रमाणे;

1. डी.आर.पेंडसे : "खाजगीकरण म्हणजे राष्ट्रीय आर्थिक व्यवहारातील सरकारचा सहभाग कमी करणे होय."
2. डेव्हीड हेरॉल्ट :- "खाजगीकरण म्हणजे साधनसामग्रीच्या उपयोगासाठी बाजाराविरहीत पद्धतीऐवजी बाजारधिष्ठीत पद्धतीचा स्वीकार करण्याची प्रक्रिया."

वरील दोन अभ्यासकांच्या व्याख्यावरून आपणास असे म्हणता येईल की, सार्वजनिक क्षेत्रातील उद्योगांची मालकी खाजगी उद्योगाकडे हस्तांतरित करणे होय.

उदारीकरण :

१९९१च्या नव्या आर्थिक धोरणातील तरतुदीनुसार 'खा.ऊ.जा' मधील तिसरी महत्त्वाची संकल्पना होय. उदारीकरण म्हणजे अर्थव्यवस्थेवर असणारे सरकारचे निर्बंध व नियंत्रण कमी करणे होय. उदारीकरणाच्या अभ्यासकांनी केलेल्या व्याख्या पुढीलप्रमाणे;

1. डॉ.व्ही.एम.अत्री :- "आर्थिक उदारीकरण ही एक अशी प्रक्रिया आहे की जिच्यामुळे निर्यातीस आणि आयातीस प्रतिबंध करणाऱ्या घटकांची तीव्रता कमी करण्यासाठी बाजाराधिष्टीत किंमतयंत्रणेचा स्वीकार केला जातो."

2. आर्थिक उदारीकरण म्हणजे अर्थव्यवस्थेवरील सरकारी नियंत्रण शिथिल करणे, तसेच खुल्या आर्थिक धोरणांचा अवलंब करणे म्हणजेच उदारीकरण होय.

प्रस्तुत जागतिकीकरण, खाजगीकरण आणि उदारीकरण यामुळे सर्वसामान्य माणसाचे जीवन बदलून गेले. १९९० नंतर याचा प्रभाव येथील जीवन व्यवस्थेवर झाला. यामुळे गरीब आणि श्रीमंत अशी दरी निर्माण झाली. गरीब अधिक गरीब होऊ लागला. तर श्रीमंत हा अधिक श्रीमंत होऊ लागला. त्यामुळे गरीबांचा भारत आणि श्रीमंतांचा इंडिया असे लोक म्हणू लागले. जागतिकीकरणाचा पहिला प्रभाव हा येथील महानगरीय जीवनावर झालेला आपणास दिसून येतो. खुल्या अर्थ व्यवस्थेमुळे व्यापार, उद्योगांना चालना मिळाली. रोजगारांची निर्मिती मोठ्या प्रमाणावर झाली. परिणामी खेडी ओस पडू लागली. प्रत्येकजण नोकरीसाठी शहराकडे धाव घेऊ लागला. शहरांची लोकसंख्या वाढत गेली. झोपडपट्ट्यांचे प्रमाण भरमसाठ वाढले. या सर्वांचा परिणाम येथील लोकांच्या जीवनावर झाला. महानगरांच्या ठिकाणची वाढत चाललेली गुन्हेगारी, बेकारी यामुळे महानगरे बकाल होऊ लागली. या सर्वांचे प्रतिबिंब मराठी महानगरीय कवितेत आपणास पहावयास मिळते. १९९० नंतर अनेक महानगरीय कवी आपल्या कवितेच्या माध्यमातून जागतिकीकरणावर भाष्य केले आहे.

महानगरीय कवी:

जागतिकीकरणानंतर अनेक महानगरीय कवी काव्यलेखन करू लागले. या कवितेतून महानगरीय जीवन, तंत्रज्ञानाची प्रगती, माणसांचे यंत्रवत होत जाणे, वाढती लोकसंख्या व बेरोजगारी, मेट्रो पॉलिसिज, माहिती तंत्रज्ञानाच्या क्षेत्रात झालेला प्रचंड विस्फोट, लोकांना जगण्यासाठी करावा लागणारा संघर्ष, लोकांची हरवलेली संवेदनशीलता, भाषिक संक्रमण, जाहिरातबाजी इ. विषय घेऊन महानगरीय कविता येताना दिसते. यामध्ये महानगरीय कवी हेमंत दिवटे, श्रीधर तिळवे, सचिन केतकर, मन्या जोशी, वर्जेश सोलंकी, संजीव खांडेकर मंगेश काळे, अरुण काळे अशी नावे प्रातिनिधिक स्वरुपात सांगता येतील. याबरोबरच इतर अनेक महानगरीय कवींनी जागतिकीकरणाच्या प्रभावातून कविता लेखन केले आहे.

महानगरीय कविता :

१९९० नंतर जागतिकीकरणाचा फार मोठा प्रभाव येथील जीवन व्यवस्थेवर झाला. यामुळे येथील सामान्य लोकांचे जीवन ढवळून निघाले. सुरुवातीच्या काळात या जागतिकीकरणाचा केंद्रबिंदू ही महानगरे असल्याचे आपणास दिसून येते. कारण जागतिकीकरणाचा पहिला प्रभाव महानगरावर पडला. त्यामुळे जागतिकीकरणाचा फार मोठा प्रभाव हा १९९० नंतरच्या महानगरीय कवितेवर पडलेला आपणास पहावयास मिळतो. या विषयी दा.गो.काळे म्हणतात. "नव्वदोत्तरी कवितेचा विचार करताना 'खाऊजा' संस्कृतीच्या पहिल्या जाणिवेचा संवेदनांचा हुंकार महानगरीय कवितेतून पहावयास मिळतो. या जागतिकीकरणाच्या विचारव्युहाला, भावविश्वाला शब्दरूप देण्याचे कार्य महानगरीय कवितेने केले आहे. माणसांच्या बाजारशरण मानसिकतेला अभिव्यक्तीच्या पातळीवर आणून माणसांच वस्तूकरण होण्याचा काळ चित्रित झाला आहे. हे नाकारता येत नाही. आता तर संपूर्णपणे रुजलेल्या या संस्कृतीची सूक्ष्मतेच्या स्तरावर होणारी चिकित्सा कवितेतून येते आहे." ('नव्वदोत्तरी नागर कविता', 'सर्वधारा' मार्च – २०१७) यावरून आपणास असे म्हणता येईल की, जागतिकीकरणाचे जे बरे-वाईट परिणाम महानगरावर झाले याचे स्पष्ट प्रतिबिंब या कवितेवर उमटले आहे. कवी हेमंत दिवटे हे जागतिकीकरणातून आलेल्या विफलतेचे वर्णन करताना म्हणतात,

"सारं जग जवळ आलय म्हणतात
पण माणसं माणसांपासून दूर धावताहेत,
रोबोटच्या गळयात गळा घालताहेत,
माणसांऐवजी कुत्र्यांवर, कुत्र्यांऐवजी यंत्रांवर विश्वास टाकताहेत."

जागतिकीकरणामुळे सार जग जवळ आले आहे परंतु माणूस माणसापासून तुटत चालल्याची भावना याठिकाणी कवी हेमंत दिवटे व्यक्त करतात. जागतिकीकरणाच्या या युगात जीवंत माणसाऐवजी रोबोटच्या गळयात पडत आहेत. माणसं माणसांच्या ऐवजी कुत्र्यावर आणि कुत्र्याऐवजी यंत्रावर अधिक विश्वास ठेवत आहेत. असे कवी म्हणतात. या कवितेच्या माध्यामतून कवींनी आपली परखड भूमिका मांडली आहे. अशाच आशयाची संजीव खांडेकरांची कविता ही जागतिकीकरणाचे चित्रण करणारी आहे. संजीव खांडेकर आपल्या कवितेत लिहितात,

"आणि उद्याला जिथे जायचे
तिथेच आता आधी पोचलो
हिरवे बुंधे मुळे खोलही
आणि ओंडका वाट पाहतो
गतशतकांचे सगळे टिंबर
ढीग उशाला, मिटले डोळे
बेंबी मधून तरी उगवले
कमळ गुलाबी हेलिकॉप्टर"

प्रस्तुत ओळीतून खांडेकर यांनी जागतिकीकरणामुळे झालेला बदल अचूक शब्दात मांडला आहे. लोकांचे जीवन कसे यंत्रवत झाले आहे हे त्यांनी अचूकपणे मांडले आहे. कवी म्हणतात की, गतशतकाच्या वैभवशाली इतिहासाचे ढीग उशाला आहेत. परंतु जागतिकरणामुळे नवीन जगाची निर्मिती होत आहे. सगळे यंत्रवत होत आहे. त्यामुळे माणसांची किंमत कमी होत आहे. अशा प्रकारच्या भावना कवी संजीव खांडेकरांनी व्यक्त केल्या आहेत. नव्वदोत्तर कवितेत जागतिकीकरणातून आलेल्या जाणिवा प्रकट झालेल्या आहेत. यामध्ये भाषाविषयक जाणिवा, लैंगिक जाणिवा, अस्तित्त्ववादी जाणिवा अतिशय प्रखरपणे येताना दिसतात. यांत्रिकीकरणाच्या युगात माणूस स्वतःला हारवत चालला आहे. त्याला स्वतःचे भान

राहिलेले नाही. अशा अवस्थेत तो यंत्रासारखा वावरत आहे. त्याचे जीवन यंत्रासारखे साचेबध्द झालेले आहे. या सर्वांचे चित्रण १९९० नंतरच्या कवितेत येताना दिसते. माणूसपण हारवत चाललेल्या या कालखंडात आपले अस्तित्त्व टिकवून ठेवण्याचा प्रयत्न प्रत्येकजण करीत असतो.

कवी उत्तम अंभोरे हे 'थांबताच येत नाही : इदर टू फ्लीट ऑर फाईट' या लेखात नव्वदोत्तर महानगरीय कवितेविषयी लिहितात, "शहरीकरणातून येणारे आत्यंतिक यांत्रिकीकरण, यांत्रिकीकरणातून उभा राहणारा पैसा, भांडवली बाजारातून येणाऱ्या ब्रँण्डेडवस्तू या वस्तूला दिली गेलेली प्रतिष्ठा आणि या प्रतिष्ठेपायी हारवत चाललेली माणुसकी हे भारतीय महानगरांमधील वास्तव आहे. भांडवली बाजाराने विविध वस्तूला दिलेल्या ब्रँण्डनेममुळे यातून एक वेगळाच वर्ग उभा राहिला आहे. यात वस्तू आणि वर्ग फरक करणे दुरापास्त होऊन बसले."

जागतिकीकरणाने क्रांती झाली. तंत्रज्ञानाचा विकास झाला. आंतरराष्ट्रीय व्यापाराला चालना मिळाली. यातून छोटे व्यापारी, उद्योग भरडून निघाले. बहुराष्ट्रीय कंपन्या आणि भांडवलदार यांचा धंदा तेजीत होऊ लागला.चंगळवादी संस्कृतीचा उदय झाला. महानगराच्या ठिकाणी सतत होत असलेली आंदोलने, जाळपोळ, लुटालूट यामुळे सर्वसामान्य माणसाला एक प्रकारची असुरक्षितता वाटू लागली. महानगरांच्या ठिकाणची गर्दी देखील भीतीच सावट निर्माण करते. अशा प्रकारची भावना कवी वर्जेश सोळंकी त्यांच्या कवितेतून प्रकट होताना दिसते. ते म्हणतात,

"तुम्ही घाबरून बंद केलेला असेल घरचा दरवाजा
बाहेर फाटलेली असेल दहशतीने शहराची त्वचा
शहर लोंबकळत असेल विजेच्या
तारांवर कावळा होऊनं
तुमच्या दिशेने भरधाव येत असेल
एखाद जळक टायर"

आज महानगरच्या ठिकाणी कोणीही सुरक्षित नाही. येथील जनतेला दररोज नवनवीन संकटाना सामोरे जावे लागत आहे. याठिकाणी कधी काही अघटीत घडेल काही सांगता येत नाही. कवी वर्जेश सोळंकी यांनी या कवितेच्या माध्यमातून महानगरीय जीवनाचे वास्तव मांडलेले आहे.

समारोप :

जागतिकीकरणाच्या या प्रक्रियेने संपूर्ण जगाचे लक्ष वेधून घेतले आहे. त्यामुळे साहित्यातून त्यावर भाष्य येणे साहजिकच आहे. कारण समाजात घडणाऱ्या ठळक घटना-घडामोडीची दखल साहित्य घेत असते. त्या-त्या काळातील साहित्यावर त्या घटना-घडामोडीचा प्रभाव आपणास जाणवत असतो. जागतिकीकरणाचा देखील फार मोठा प्रभाव येथील जीवन व्यवस्थेवर झाला आहे. याची दखल साहित्याने घेतली आहे. मराठी साहित्यातील महानगरीय कवितेत देखील जागतिकीकरणाचे चित्रण आले आहे. यावरून आपणास असे म्हणता येईल की, १९९० नंतरच्या मराठी महानगरीय कवितेवर जागतिकीकरणाचा प्रभाव मोठ्या प्रमाणावर दिसून येतो.

संदर्भ :

1. शोभणे रवींद्र (संपा) : जागतिकीकरण समाज आणि मराठी साहित्य, स्नेहवर्धन प्रकाशन पुणे, २००९
2. डॉ. रमेश वरखेडे, जागतिकीकरण आणि मराठी
3. सर्वधारा (अंक) : 'नव्वदोत्तर नागर कविता' दा. गो. काळे मार्च २०१७
4. अतिरिक्त (अंक) : संपादक. दा. गो. काळे, दिनकर मनवर मार्च २०१३

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जगतिकीकरणाचा वेध घेणारी कादंबरी : बांडगुळ आख्यान

प्रा. सौ. व्हसमने सुरेखा बसाप्पा
संशोधक विद्यार्थिनी, शिक्षणमहर्षी डॉ. बापूजी सांळुखे महाविद्यालय, मिरज, शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापूर
Emai id.- herwadesurekha1010@gmail.com

प्रस्तावना:

आज जागतिकीकरण हा चर्चेचा विषय झाला आहे. संपूर्ण जग जागतिकीकरणाच्या विळख्यात जात आहे. खाजगीकरण, उदारीकरण हे जागतिकीकरणाचे एक भाग आहेत. जागतिकीकरणामुळे जग जवळ आले असले तरी माणसे मात्र माणसांपासून दूर गेली आहेत. जागतिकीकरणामुळे आलेल्या मुक्त अर्थव्यवस्थेला शेतकरी अनाहूतपणे सामोरा जात आहे. निर्यातीच्या असमतोलामुळे भारतीय शेतकऱ्यांच्या उत्पादित मालाला भाव मिळत नाही. त्यामुळे आर्थिक विवंचनेत अडकलेला शेतकरी आत्मसन्मान हरवून आत्महत्येस प्रवृत्त होत आहे. शेतकरी आर्थिक परिस्थितीने पुरता खचलेला आहे. परंतु काहीतरी करावे या उमेदीने शिक्षण घेऊन नोकरीसाठी वणवण भटकणारा ग्रामीण तरुण पूर्णपणे विफल झाला आहे. उध्वस्त झाला आहे. त्याची मानसिकता जळून खाक झाली आहे. विज्ञान-तंत्रज्ञान, रासायनिक खते, बी-बियाणे, जागतिकीकरण, मुक्त अर्थव्यवस्था, शिक्षणाचे बाजारीकरण यामुळे निर्माण होणारी बेरोजगारी आणि यात होरफळून निघणारी तरुण पिढी या सर्वांची जाणीव असणारे वास्तव जीवन ग्रामीण साहित्यांमधून दिसून येते.

ग्रामीण खेडेगावातील जीवन स्वातंत्र्यानंतर अनेक स्थित्यंतरातून बदलत चालले आहे. सरकारी सुधारणा, नव्या योजना, आधुनिकता खेड्यात येऊ लागली आहे. विशेषत: खेड्यामध्ये परिवर्तनाचे वारे जोरात वाहू लागले आहे. या परिवर्तनाला कारणीभूत अनेक घटक आहेत जसे लोकशाही, सत्ता केंद्राचे विकेंद्रिकरण, राजकारण, अर्थकारण, शेतीतील विकसित तंत्रज्ञान, विज्ञानाची प्रगती इत्यादी सारख्या घटकांचा ग्रामीण जीवनावर खोलवर ठसा उमटत आहे. ज्यातून खेड्यांचा चेहरामोहरा बदलत आहे. खेड्यापाड्यातून स्थित्यंतरे घडून येत आहेत.

मराठी साहित्यातील एक महत्त्वाचे लेखक म्हणून मोहन पाटील यांचे नाव घेतले जाते. मोहन पाटील यांनी आजपर्यंत लघुकादंबरी, कादंबरी, कविता, कथा, समीक्षा, असे चौफेर लेखन केले आहे. परंतु लघुकादंबरी आणि कादंबरी लेखक म्हणून त्यांचे मराठी साहित्यातील योगदान महत्त्वपूर्ण मानले जाते. मोहन पाटील यांनी आपल्या कादंबऱ्यांतून सातत्याने बदलत्या ग्रामीण जीवनाचा वेध घेतला आहे. त्यांच्या सुरुवातीच्या 'लिगाड', 'खांदेपालट', 'बस्तान' यासारख्या लघुकादंबऱ्यातील सहकार क्षेत्रामुळे गावात झालेल्या बदलाचे चित्रण असो किंवा 'साखरफेरा' सारखी ऊसशेती, साखर कारखाना, शेतकरी संघटनांचे आंदोलन या भोवती फिरणारी कादंबरी असो या सर्वच कादंबऱ्यात १९८०-९० नंतर ग्रामीण भागात राजकारण, अर्थकारण. यामुळे झालेले सर्व स्तरांवरील बदल अत्यंत साक्षेपी दृष्टीने टिपलेले दिसून येतात.

'साखरफेरा'(२००६) नंतर जवळजवळ नऊ- दहा वर्षांत त्यांची 'बांडगुळ आख्यान' (सप्टेंबर २०१५) ही कादंबरी प्रकाशित झाली. आपल्या देशातील जागतिकीकरणाची सुरुवात १९९० च्या दशकात झाली, पण त्याचे दृश्य स्वरूप विसाव्या शतकाच्या पहिल्या दशकात म्हणजे अवघ्या दहा वर्षाच्या काळात जाणवू लागली. महानगरे, शहरे बदलली. केवळ शहरात हे जागतिकीकरण आले नाही तर त्याचे लोन ग्रामीण भागातही पोहोचले. खेड्यांमध्ये अत्याधुनिक साधने पोहोचली. मोबाईल, इंटरनेट, दूरदर्शन, वरील सतराशेसाठ चॅनल, केवळ एवढेच नव्हे तर पिझ्झा, बर्गर, कोकाकोला यासारखे खाद्यपदार्थ, शीतपेये ही पोहोचली. या सर्व भौतिक बदला बरोबर सामाजिक, मानसिक, स्तरावरील बदल ही ग्रामीण भागात पोहोचले आणि नको त्या स्वरूपात खेड्याचा चेहरामोहराच बदलून टाकला. जीवनमूल्यांची मोठ्या प्रमाणात पडझड सुरू झाली. यातून संवेदनशील मनाची प्रचंड घालमेल सुरू झाली. हे कोठेतरी थोपवायला हवे, पण थोपवता तर येत नाही अशा परिस्थितीत येणारी आगतिकता जीवघेणी असते. आणि सहाजिकच भुतकाळाशी या काळाची तुलना करण्याचा मोह टाळता येत नाही. त्यामुळे ग्रामीण कादंबरीत कळत- नकळत भूतकाळ येतो. तसा तो या बांडगुळ आख्यान मध्येही आला आहे. ग्रामीण साहित्यात भूतकाळाचे आकर्षण मोठ्या प्रमाणावर दिसते. हे र. बा. मंचरकर यांचे मत खरे आहे. पण हा भूतकाळ काही अपरिहार्य कारणामुळे येताना भूतकाळाच्या पार्श्वभूमीवर वर्तमान खेड्याचा बदलणारा चेहरा कसा दिसतो हे पाहण्याचा प्रयत्न कादंबरीकार करत असावा. मोहन पाटील यांनी सुद्धा असा प्रयत्न समर्थपणे केला आहे. म्हणूनच या कादंबरीची पाठराखण करताना नागनाथ कोतापल्ले म्हणतात, 'बांडगुळ आख्यान' हे अख्यान आहे. आजच्या बदललेल्या खेड्याचे त्या खेड्यांमध्ये उगवलेल्या बांडगुळ राजकारणाचे आणि संस्कृतीचे, हे किडे बागायती पट्ट्यातले आणि शहराचे, शहराच्या जवळ असलेले त्यामुळे शहराशी असणारे खेड्याचे संबंध आणि खेड्याचे होणारे शोषण हे या अख्यानाचे एक परिणाम आहे.

स्वातंत्र्यपूर्व काळातील ध्येयवाद संपून विकासाच्या नावाखाली कंत्राटी राजकारण सुरू झाले. जागतिकीकरण खेड्यात येऊन पोहचले आणि हितसंबंधाच्या नव्या साखळ्या अस्तित्वात आल्या. उच्चशिक्षण खेड्यापाड्यात पोहचले. घराणे केंद्रित लोकशाही बरोबरच आक्रमक भांडवलशाही खेड्याच्या दारात येऊन उभी राहिली. परंतु सरंजामी पीळ मात्र ढिला पडला नाही. ग्रामीण भागात नवीन नैतिक पेच निर्माण झाले. या साऱ्याचा परिणाम म्हणून सामान्यांची वाचा हरवली. समाजसेवेचे भान कधीच हरपून गेले. या सगळ्या विपरीत वास्तवाचे चित्रण ग्रामपंचायतीला केंद्रस्थानी ठेवून मोहन पाटील यांनी अतिशय प्रभावीपणे केले आहे. ('बांडगुळ आख्यान' मलपृष्ठ, नागनाथ कोतापल्ले)

मोहन पाटील यांनी जवळपास शंभर वर्षाचा काळपट या कादंबरीत घेतला आहे. छत्रपती शाहू महाराजांच्या काळात असणाऱ्या वेशीचा गाव, ती वेस पाडून शहराला गावात घुसू देणारे वर्तमान गाव असा विस्तृत पट कादंबरीत येतो. त्यामुळे सहजिकच या कादंबरीसाठी लोकसाहित्यातील कथन पद्धतीचा वापर करून ही कादंबरी आकाराला येते. हा एक वेगळा प्रयोग या कादंबरीत मोहन पाटील यांनी केला आहे. 'चौकातला दिवा' हे या

कादंबरीचे पहिले प्रकरण. गावातील सरपंच संग्राम खैरमोडे याच्या कंत्राटी राजकारणावर प्रकाश टाकत कादंबरीची सुरुवात होते. आणि जागतिकीकरणाच्या रेट्यात मूल्यहीन होत चाललेल्या संस्कृतीला आपल्या कवेत घेऊ पाहणारी ही राक्षसी राजकीय शक्ती गावात कशा प्रकारे हैदोस घालते याचे प्रत्ययकारी चित्रण संपूर्ण कादंबरीत येत राहते. हे चित्रण भूतकाळाच्या पार्श्वभूमीवर येत राहते. देशाला स्वातंत्र्य मिळाले त्या दिवशी गावाच्या चौकात झालेली सभा, त्यानंतर गांधी हत्येनंतर गावात झालेली जाळपोळ या घटनांतून गेलेला गाव स्वातंत्र्यानंतरच्या तीस-पस्तीस वर्षात कसा बदलत गेला, गांधी विचाराने भारावलेले सामाजिक कार्य करणारी पिढी एका बाजूला आणि गांधी विचार, हा केवळ व्यासपीठ भाषणातून वापरावयाचा हे तत्त्व स्वीकारून आपले स्वार्थी, मूल्यहीन राजकारण पुढे रेटणारी एक पिढी यांच्या संघर्षातून गावाची होणारी वाटचाल हा या कादंबरीचा मुख्य गाभा आहे.

१९९० च्या दशकात दोन गोष्टी घडल्या एक म्हणजे गॅट करार करून भारताने स्वीकारलेले खाजगीकरण, आणि दुसरे मंडल आयोगाची अंमलबजावणी या परस्परविरोधी गोष्टी समाजाला कोणत्या दिशेला घेऊन चालले आहे त्याचे प्रत्ययकारी चित्रण कादंबरीत येते. स्वातंत्र्यपूर्व काळात असणारी सामाजिक मूल्ये बदलत चालली आहेत. श्रीमंत गरीब यांच्यातील दरी वाढत असतानाच मध्यमवर्गही वाढत चाललेला आहे. नवमध्यमवर्गाने आपण आधुनिक झालो आहोत. हे दाखविण्याच्या हव्यासापोटी स्वीकारलेले बाह्य भौतिकीकरण डोळ्यात भरत आहे. चंगळवादाची सगळी आयुधे या नवमध्यम वर्गाच्या हाती आले आहेत. केवळ हव्यासापोटी आपण मूल्यहीन बनत चाललो आहोत याचे भान या वर्गाला राहिले नाही. आणि नवमध्यम वर्गाचे आकर्षण असणारा गरीब वर्ग या नववर्गात जाण्यासाठी धडपडतो आहे. त्यासाठी नको त्या तडजोडी स्वीकारतो आहे. या सर्व घडामोडीत एक प्रचंड ताण वाढतो आहे. त्याचाच परिणाम म्हणून संपूर्ण समाजाचे बाजारीकरण होत आहे. हे या कादंबरीतील अनेक घटनांतून प्रतीत होते.

गावाच्या चौकात बसवलेला दिवा असो किंवा गावाच्या माळावर नव्याने बांधले गेलेले कारखाने असोत, की शाळा-कॉलेजच्या इमारती असोत. अप्पू मास्तरांच्या शाळेत मिळणारी मूल्यशिक्षण कुठे? आणि ड्रेसकोड नी भरलेली, डिजिटल होण्याचा हव्यास धरणाररी शाळा महाविद्यालये या पिढीला कोठे घेऊन चालली आहेत? याचा बाहेरून कायापालट झाला आहे. मात्र अंतरंग सोडून गेले आहे. याचाही प्रत्यय येतो. आरक्षणाने दलित वंचित समाजाला स्वतःच्या उन्नतीसाठी हातभार लावणे अपेक्षित असताना या आरक्षणाचा राजकारणात होणारा हिणकस वीचारहीन वापर खरोखरच बाबासाहेबांना अपेक्षित असणारा विकासाभिमुख बदल या दलित वंचितांच्या वाट्याला येतो आहे की ती गावातील तथाकथित उच्चवर्णीय लोक दलितांना मिळणाऱ्या आरक्षणाचा स्वतःच्या सत्तेच्या राजकारणासाठी वापर करून घेत आहेत. हे ही या दलित वंचित समाजाच्या लक्षात येईना अशी विचित्र परिस्थिती गावागावात तयार झाली आहे. नाही म्हणायला या –हासाला आपल्या परीने तो पळविण्याचा प्रयत्न एखादा शिवाजी रोटे सारखा कार्यकर्ता निसर्ग मानवहीत दक्षता समितीच्या माध्यमातून करू पाहतो. पण जागतिकीकरणाचा रेटाच एवढा प्रचंड आहे की शिवाजी रोटे या प्रयत्नाला थोपविण्यास अयशस्वी होतात. मात्र समाधानाची बाब आहे ही की, अपयश आले म्हणून थांबत नाही तर आपले कार्य चालू ठेवतो. म्हणूनच आपल्या मुलाचे स्वार्थी मूल्यहीन राजकारण मान्य नसलेले बाळाकाका आपले पूर्वजांचे घर या समितीच्या कार्यालयास भेट म्हणून देतात. आणि एक प्रकारे या –हासाला थोपविण्यासाठी प्रोत्साहन देताना दिसतात.

जागतिकीकरणाच्या स्वीकरानंतर कल्याणकारी राज्याची संकल्पनाच मोडीत निघाल्याची जाणीव ग्रामपंचायतीच्या निमित्ताने पहावयास मिळते. संग्राम खैरमोडे सरपंच पदावर बसलेला हुकूमशाही प्रवृत्तीचा माणूस आपल्या स्वार्थी मूल्यहीन राजकारणात गावाला कसे फरपटत नेतो आहे याचेही दर्शन प्रभावीपणे या कादंबरीत येत राहते. संपूर्ण कादंबरी सत्ता संपत्तीचा हव्यास आणि सकस मानव निसर्गहित याचा संघर्ष अविरतपणे कसा सुरु आहे याचे दर्शन घडते. खरेतर प्रत्येक काळात सुष्टदुष्ट शक्ती कार्य करत असतात. आणि सत्याच्या अखेर विजय होतो असे मानण्याच्या आपल्या परंपरागत विश्वासाला मात्र या कादंबरीत वारंवार तडे जातात आणि जे खोटे मूल्यहीन, हिनकस तेच कसे संपूर्ण समाजावर आता राज्य करीत आहे याचेही चित्रण येते. गावातील स्वातंत्र्य चळवळीत कार्य करणाऱ्या मंडळींनी स्थापन केलेली पतपेढी आता संग्राम त्यांच्याकडून कुटिल डाव खेळून काढून घेतो. आणि या पतपेढीच्या माध्यमातून प्रचंड पैसा स्वतःच्या स्वार्थासाठी कसा उभा करतो याचेही प्रत्ययकारी चित्रण कादंबरीत येत राहते. तर दुसऱ्या बाजूला स्वातंत्र्यपूर्व काळात सावकार गावाला नाडत असताना त्या सावकाराला छत्रपती शाहू महाराजांच्या फतव्यांचा धाक दाखवून शेतकरी कष्टकरी लोकांना या सावकाराच्या कचाट्यातून सोडवणारा गावाचा पाटील या परस्पर विरोधी घटनांचा वापर करून सामाजिक मूल्यांची जाणीव करून देताना मोठे सजग भान ठेवून पाटील यांनी दाखविले. एका बाजूला माणसाला माणूस म्हणून ओळख देणारी मूल्याधिष्ठित व्यवस्था आणि दुसऱ्या बाजूला माणसांचं होणारे वस्तूकरण, त्यांच्यावर बळजबरीने लादली जाणारी गुलामी हे विदारक वास्तव ही कादंबरी अधोरेखित करण्याचा प्रयत्न करताना दिसत आहे.

कादंबरीत गावच्या वेशीचे दार चोरीला जाण्याचे प्रसंग मोहन पाटील यांनी चित्रित केला आहे. गावाच्या वेशीचे दार चोरीला जाणे ही घटनाच पुढे येणाऱ्या संकटाची चाहूल आहे. कारण याच वेशीतून जागतिकीकरण गावात शिरते. आणि गावाचा चेहरा हळूहळू बदलत जातो. पण या बदलासाठी फार मोठा काळ लागत नाही. प्रचंड वेगाने गाव बदलत जातो. हा बदल झपाट्याने आत्मसात करणारी संग्राम खैरमोडे सारखी तरुण पिढी इथे आहे. तर या पिढीशी तडजोड करीत जीवन कंठणारी या पूर्वीची पिढी आहे. आणि हा बदल स्वीकारून शकणारी आपल्या पूर्वीच्या आदर्शांना कवटाळून बसणारी एक पिढी या कादंबरीत नांदत आहे. या तिन्ही पिढ्यात असणारा संघर्ष एका बाजूला आणि पुन्हा या प्रत्येक पिढी अंतर्गत असणारा सुष्टदुष्ट प्रवृत्तीचा परस्पर संघर्ष यातून या कादंबरीची उभारणी होते. रूढ अर्थाने त्याला अचानक म्हणता येईल असे कथानक या कादंबरीला नाही. कोणी एक नायक किंवा खलनायक या कादंबरीत नाही. संपूर्ण गावच या कादंबरीचे प्रमुख पात्र म्हणून समोर येतो. आणि या पात्रात कालौघात होणारे बदल हे या कादंबरीचे मुख्य सूत्र आहे. तीन पिढ्यांच्या संघर्षातून वाटचाल करणारा गाव कसा वाटचाल करतो आहे. आणि जागतिकीकरणाच्या उंबरठ्यावर उभा असणारा गाव संपूर्णपणे शहरात विसर्जित होतो की आपले स्वतःचे स्वतंत्र अस्तित्व या जागतिकीकरणाच्या रेट्यात टिकवतो. हा प्रश्न वाचकांसमोर उभा करून ही कादंबरी संपते. मात्र या कादंबरीने समकालीन वास्तवाचे चित्रण करत असताना अनेक प्रश्न उभे केले आहेत. दृष्टप्रवृत्ती, भ्रष्ट मूल्यहीन राजकारण, समाजकारण, जीवघेणे आर्थिक स्पर्धा या गोष्टी या युगाच्या एक अपरिहार्य भाग म्हणून समोर येत असतानाच आपली सांस्कृतिक

मूल्ये, सामाजिक राजकीय मूल्याधिष्ठित भान, कौटुंबिक स्तरावरील आणि सामूहिक स्तरावरील नातेसंबंध यातील मानवी विकासासाठी, त्याच्या उन्नतीसाठी काय योग्य आहे याचा विचार ही कादंबरी करायला लावते. प्रवाहपतित होणे अपरिहार्य होत असताना आपल्या परीने या प्रवाहाला थोपविण्याचा प्रयत्न करणारा एक समाजघटक प्रत्येक काळात कसा उभा राहतो हेही पाहण्यासारखे आहे. हा शंभर वर्षांचा काळपट मांडत असताना मोहन पाटील यांनी लोकेतिहासाचा समर्थ वापर करून घेतला आहे. त्याचबरोबर भाषेचे अनेक प्रयोग या कादंबरीत केले आहेत.

समारोप:

लोकसाहित्यातील कथानातील कथन पद्धतीचा स्वीकार केल्यामुळे कादंबरी पुढे मागे सरकत एक भव्य पट वाचकांसमोर एकाच वेळी उभी करण्यात यशस्वी होते. हेच या कादंबरीचे महत्त्वपूर्ण अंग आहे. दुसरे असेही समाजातील राजकारण समाजकारण शिक्षण व्यवस्था या सर्वच सामाजिक संस्थांचे बांडगुळ करत होता हे मूळ वृक्ष आहे तोच आहे पण बांडगुळांची होणारी वाढ भयचकित करणारी आहे हेच ही कादंबरी अधोरेखित करते आहे. म्हणून हे बांडगुळ आख्यान आहे असे जे कादंबरीकार म्हणतो ते सार्थ वाटते.

साधन ग्रंथ :

बांडगुळ आख्यान, मोहन पाटील, सायन पब्लिकेशन पुणे प्रथमावृत्ती सप्टेंबर 2015

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरणानंतरची दलित कविता

प्रा.डॉ. राजश्री बंडोपंत पोवार
सहयोगी प्राध्यापक, गोपाळ कृष्ण गोखले महाविद्यालय, कोल्हापूर
rajashreepowarofficial@gmail.com

प्रस्तावना:

विसावे शतक हे भारतीय समाजाच्या सामाजिक आणि सांस्कृतिक परिवर्तनाचे शतक म्हणून ओळखले जाते. या शतकात परिवर्तनाची एक लाटच निर्माण झाली. या परिवर्तनाची सुरुवात एकोणिसाव्या शतकातच समाजसुधारकांनी आणि विचारवंतांनी केली होती. त्याचा परिणाम म्हणून सामाजिक राजकीय सांस्कृतिक क्षेत्रात वैचारिक क्रांती सुरू झाली. अन्याय-अत्याचार, विषमता कर्मठ रूढी-परंपरा यावर प्रहार सुरू झाले दलित समाज कर्मकांड आणि रूढी-परंपरांच्या भोवऱ्यात फिरत अज्ञानाच्या गर्तेत खितपत पडला होता. लाचारीचे, गुलामगिरीचे पशूतूल्य जीवन तो जगत होता. अशा या दलित समाजाला डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांच्या रूपाने एक तेजोमय प्रकाश किरण मिळाला.' शिका संघटित व्हा आणि संघर्ष करा' या त्यांच्या संदेशाने दलित समाजात अस्मिता निर्माण झाली. डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर यांनी तळागाळातल्या लोकांमध्ये शिक्षणाचा प्रसार व्हावा म्हणून महाराष्ट्रात 'पीपल्स एज्युकेशन' सारख्या शिक्षण संस्था उभारल्या औरंगाबाद येथे मिलिंद महाविद्यालय सुरू झाले, मराठवाडा विद्यापीठाची स्थापना झाली. यातून दलितांची एक सुशिक्षित पिढी तयार झाली. त्यांना आत्मभान आले. नव जाणिवेतून ते विषमतेविरुद्ध बोलायला लिहायला लागले. अशा विद्रोही जाणिवेतून लिहिलेले साहित्य दलित साहित्य म्हणून रूढ झाले. दलित लेखकांना स्वतःला व्यक्त करण्यासाठी आत्मकथन हा वाङ्मय प्रकार जरी जवळचा वाटला तरी कथा, कादंबरी, नाटक, काव्य यासारख्या साहित्यप्रकारां मधूनही दलित जाणिवा व्यक्त होऊ लागल्या. इ.स. १९६७ नंतर दलित कविता जरी नावारूपाला आली असली तरी तिची पाळेमुळे आधीच्या कालखंडातील जलशांमध्ये सापडतात. किसन फागू बनसोडे, अण्णाभाऊ साठे,शाहीर अमर शेख, वामनदादा कर्डक इ. शाहीर आणि कवींच्या जलशा मधून डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांचे विचार व्यक्त होतच होते. सत्यशोधकी आणि आंबेडकरी जलशांनी लोक जागरण आणि लोकशिक्षण अखंडपणे सुरू ठेवले. या जलशांमधून मनोरंजनापेक्षाही समाज परिवर्तनाचा ध्यास मोठा होता. मराठी साहित्याच्या दृष्टीने इ.स.१९६०चे दशक अत्यंत महत्त्वाचे आहे. या काळात अनेक नवनवे कवी उदयास आले. यामध्ये प्रामुख्याने नारायण सुर्वे, बाबूराव बागूल, नामदेव ढसाळ, दया पवार, यशवंत मनोहर, वामन निंबाळकर, त्र्यंबक सपकाळे, प्रकाश जाधव, माधव कोंडविलकर, हिरा बनसोड, ज्योती लांजेवार, प्रल्हाद चेंदवणकर, प्रज्ञा लोखंडे, भिमसेना देठे अशा किती तरी कवींनी विषमतेविरुद्ध बंड पुकारून आपली कविता लिहिली भारतीय समाज व्यवस्थेचा बळी ठरलेल्या एका मोठ्या समाज गटाला जगण्याचे अस्तित्वच नाकारणाऱ्या या समाज व्यवस्थेविरुद्ध दलित कविता मोठ्या ताकदीने उभी राहिली. समाजातील दाहक वास्तवाची मांडणी करताना ती कमालीची आक्रमक बनते.दलित कविता मानवाला केंद्रबिंदू मानते. स्वातंत्र्य, समता, बंधुता ,न्याय, शील, प्रज्ञा, करुणा, प्रेम,अहिंसा,नीती, बुद्धिप्रामाण्यवाद, जातीनिर्मुलन, विवेकवाद,विज्ञाननिष्ठा, या मूल्यांच्या अधिष्ठानावर आधारित दलित कविता मानवतेची, माणुसकीची जाणीव व्यक्त करणारी आहे. या दलित कवितेने मराठी कवितेलाच नव्हे तर एकूणच मराठी साहित्य विश्वाला समृद्ध केले आहे. पहिल्या आणि दुसऱ्या पिढीतील कविता एकीकडे विद्रोहाचा अंगार घेऊन येते तर दुसरीकडे मानवतेचा, शांतीचा ,समानतेचा पुरस्कारही करताना दिसते.तिसऱ्या पिढीतील कवितेत विद्रोह थोडा शांत होऊन ती आत्मकेंद्री बनताना दिसते आहे.जागतिकीकरणाच्या पार्श्वभूमीवर दलित कवितेतील बदललेल्या जीवन जाणीवा या कालखंडातील काव्यामधून प्रकर्षाने जाणवतात.

संशोधन पद्धती :

प्रस्तुत शोधनिबंधासाठी वर्णनात्मक, मानसशास्त्रीय आणि समाजशास्त्रीय संशोधन पद्धतीचा अवलंब केला आहे.

अभ्यासाची उद्दिष्टे :

१. जागतिकीकरणानंतरच्या दलित कवितेचे वेगळेपण शोधणे.
२. जागतिकीकरणानंतरच्या दलित कवितेतून व्यक्त झालेले समाजवास्तवाचे स्वरुप समजून घेणे.
३. जागतिकीकरणानंतरच्या दलित कवितेतील मानवी मूल्यांचा शोध घेणे.
४. जागतिकीकरणानंतरच्या दलित कवितेतील वेदना, विद्रोहाचे स्वरुप तपासून पहाणे.
५. जागतिकीकरणानंतरच्या दलित कवितेचतील प्रतिमा, प्रतिके आणि भाषाशैली अभ्यासणे.
६. बदललेल्या स्त्री जीवन जाणीवा अभ्यासणे.

शोधनिबंधाचा आशय :

नव्वदोत्तर कालखंडात जागतिक आणि राष्ट्रीय पातळीवर ज्या काही घडामोडी घडून आल्या, त्याचा परिणाम अपरिहार्यपणे भारतीय समाजावर विशेषतः येथील दलित-अस्पृश्य, स्त्रियांच्या जीवनावर होउन त्यांच्या जीवन- जणीवांमध्ये अमुलाग्र बदल घडून आले. त्यामुळे १९९० नंतरची दलित कविता अनेक अंगांनी विस्तारत गेली आहे. जागतिकीकरणाच्या पार्श्वभूमीवर दलित समुहाजीवनावरील परिणामाची वेदना या कवितांच्या जाणीवांचा महत्वपूर्ण भाग आहे. खाजगीकरण, उदारीकरण, भांडवलशाही, चंगळवाद, असुरक्षित सामाजिक वास्तव, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण या सर्वांच्या पार्श्वभूमीवर झालेल्या बदलांची नोंद घेत त्यातले भयावह वास्तव कवितेमधून रेखाटण्याची क्षमता आजच्या दलित कवितेमध्ये आहे. या कालखंडात प्रामुख्याने अरुण काळे, राम दुतोंडे, शरणकुमार लिंबाळे, यशवंत मनोहर, लोकनाथ यशवंत, भुजंग मेश्राम, अरुण नाईक, महेंद्र भवरे, लहू कानडे, माधव सरकुंडे, उत्तम पवार, महेंद्र गायकवाड, ज्योती लांजेवार, प्रसेनजीत, बबन चहांदे, रोहिदास वाघमारे, उषाकिरण अत्राम, हिरा बनसोडे, संध्या रंगारी,

प्रतिभा अहिरे, उत्तम कांबळे, सुखदेव ढाणके, प्रकाश खरात, उत्तम अंभोरे, रमेश कांबळे इ. कवींची कविता आंबेडकरी चळवळींच्या अनुशंगाने निर्माण होताना दिसते आहे. ही कविता अनुभवसंपन्नतेतून बदलत गेली असली तरी अभिव्यक्तीच्या पातळीवर मोठ्या प्रमाणात विद्रोह प्रकट करु लागली आहे. या कवितेतून येणारा विद्रोह हा कुठल्याही एका व्यक्ती विरुद्ध किंवा विशिष्ट जाती-जमाती विरुद्ध नसून तो स्वत्व शोधासाठीचा आहे, तसाच तो प्रतिगामी विचारधारा आणि कालबाह्य जीवनदर्शन या विरुद्धचा असून नव्या मानवी मूल्यांचा पुरस्कार करणारा आहे. जागतिकीकरणाने सामाजिक सुधारणा घडून लोकांच्या पारंपारिक मनोवृत्तीत बदल होईल असे वाटले होते. भेदाभेद, अस्पृश्यता नाहीशी होउन समता नांदेल असे वाटले होते पण तसे काहीही घडून न येता मूलतत्त्ववाद, जातीवाद, धर्मवाद, शोषणव्यवस्था यांना अधिक बळकटी मिळाल्याचे चित्र आज समाजात सर्वत्र दिसते आहे.संपूर्ण जगाने स्वीकारलेली 'खाउजा' विचारसरणी जगभरातील कष्टकऱ्यांना, गरीबांना, शोषितांना उध्वस्त करु लागली आहे. यातून शोषितांची सर्व बाजूंनी कोंडी होते आहे. जागतिकीकरणाने डिजिटल क्रांती केली. त्यातून भांडवलशाहीला उत्तेजन मिळाले. धर्म आणि जातीच्या आधारावरील भांडवली अर्थव्यवस्थेत उपेक्षितांचे जगणे अधिकच कंगाल झाले असून शोषणाची धार तेज झाल्यामुळे उपेक्षित, बहिष्कृतांना 'डिलीट करणे' वगळणे यासाठी इथली घातक व्यवस्था ज्या घातक हत्याराचा वापर करीत आहे त्यासाठी अरुण काळे यांनी 'विषाणू" ही नवी प्रतिमा वापरली आहे. ते म्हणतात,

"आता या आयटी च्या युगात
दलितांना डिलीट करण्यासाठी
नवनवीन साँफ्टवेअर येताहेत
आणि प्रोग्रॅम खराब करण्यासाठी
सोडले जखताहेत विषाणू....
आपल्या कल्याणाचं राज्य
निघालेत ते मोडीत काढायला
अन हे माहिती तंत्रज्ञानाचं कोलित
सापडलय माकडांच्या हातात"[१]

जमीनदार आणि दलाल अधिकाधिक श्रीमंत होत आहेत. मत्र शोषित, श्रमिक हे गरीबच राहताहेत. त्यांचे वर्गांतर होताना दिसत नाही. अशा शोषित वर्गाच्या जीवाची होणारी परवड या विषयावर अविनाश गायकवाड यांची कविता अचूकपणे वेध घेताना दिसते.

"आता पेपरवाले त्यांचेच
रेडूवाले त्यांचेच
आन कचेरी फौजदारय त्यांचेच
मोठ मोठे कुले तिकडे जग भुले,
ह्ये दिवटे तिथं तुरुंगात
न तिथं बायका पोरं अंधारात"[२]

असे आभावग्रस्ताचे जीवन जगण्यासाठी भाग पाडणारी प्रस्थापित समाजव्यवस्था कशी खालपासून वरपर्यंत कार्यरत आहे, आणि त्यामुळे वंचित, उपेक्षित, दलित समुह अधिकच दरिद्री होत असल्याचे चित्र वरील कविता व्यक्त करते.

आभावग्रस्त जीवन जगणारे एक फार मोठे जग झोपडपट्टीमध्ये पहावयास मिळते. आपले श्रम रोज विकूनही अर्धपोटी, भुकेकंगाल माणसे कसेतरी खूरडत जीवन जगताना इथे दिसतात. एकीकडे प्रचंड सुबत्ता तर दुसरीकडे अन्नावाचून मरणारे लोक. अशा विरोधाभासाचे चित्रण अनेक कवितांमधून पहावयास मिळते. झोपडपट्टीची वेदना प्रकट करताना माधव सरकुंडे म्हणतात,

"शहरांच्या आडोशाला
झोपड्यांचा एक कळप
विझलेल्या डोळ्यांनी बघतो
दूरस्थ दिव्यांचा नाच"[३]

'झोपड्यांच्या कळपाचं एक जग आणि दिव्याच्या नाचाचं एक जग' या दोन्ही प्रतिमा एकीकडे भूकेकंगाल भणंगपण तर दुसरीकडे कमालीची सुबत्ता, एकीकडे अंधार तर दुसरीकडे लख्ख प्रकाश अशा विरोधाभासाचे चित्रण करते. अशाच प्रकारचा आशय कवी नवनाथ कलकले व्यक्त करताना लिहितात,

"रात्र कुडकुडत काढली
आर.सी.सी. बंगल्याकडे
बघत बघत
गळक्या झोपडीत
रात्र जागून काढली"[४]

ज्या हातांनी पक्की घरे बांधली त्यांना मात्र गळक्या छप्पराचा आश्रय घ्यावा लागतोय हा मोठा विरोधाभास ही कविता मांडताना दिसते आहे.

सामाजिक वास्तवाचे अत्यंत पारदर्शी चित्रण करणारा एक महत्वाचे कवी म्हणून राम दोतोंडे यांना ओळखले जाते. आंबेडकरी विचारधारेतून त्यांचे लेखन सुरु आहे. हा विचार व्यक्त करताना ते म्हणतात,

मागचा पाढा पुन्हा नाही गिरवायचा
बोळक्यात अंगार पुन्हा नाही भरायचा
थेट खोपटाखोपटापर्यंत जायचं
घुंगरकाठ्या,आ-या,राप्या,डफडं, केरसुण्यापासून
ते पार सुया,बाळ्या, बुगड्या, लाव्ह-या
तितर, झोळ्या, छन्नी, हातोड्यापर्यंत
सगळं सगळं ढवळून काढायचं
आणि सर्वांसमोर ठेवायचा
कोरा करकरीत नकाशा
हे ध्येय आपलं"[५]

विषमतेवर आधारलेली समाजरचना माणसाचे माणूसपण नाकारते, अशा व्यवस्थेला नकार देत राम दोतोंडे यांची कविता व्यवस्थेविरुद्ध विद्रोह करते. कवी शेषेराव धांडे आपल्या 'कुपोषण' कवितेत विषमतावादी समाजरचनेचे चित्रण करताना लिहितात,

"त्यांचा बंगला सजला
संगमरवरी दगडानं.
काँक्रीटच्या मजबूतीसाठी
पाण्याऐवजी आमचा घाम गळला.
त्यांना नास्त्यासाठी ड्रायफ्रूट
आम्ही चटणी-भाकरीला महाग
त्यांच्यातली समता गळून पडली
आणि लोकशाही ढसाढसा रडली."[६]

आजही इथला बहुतांश समाज चटणी-भाकरीला महाग असल्याचे चित्र वरील कवितेतून व्यक्त होते.

उपेक्षित आणि शोषित समाजातील स्त्रीच्या वाट्याला आलेले दुहेरीपणाचे शोषण या काळातील कवयित्रींनी अत्यंत प्रखरपणे मांडले आहे. त्यांनी सामाजिक वास्तवाचे कंगोरे उत्कटपणे चितारले आहेत. याबाबत डॉ. कांचन पाडगावकर म्हणतात, "शोषणमुक्तीचा ध्यास आणि स्त्रीत्वाची जाणीव नोंदवत या कवयित्रींनी भारतीय संस्कृतीला अनेक प्रश्न विचारात निरुत्तर केले"[७] याची साक्ष या कवयित्रींच्या कवितांमधून पटते. प्रज्ञा लोखंडे यांची कविता आंबेडकरी विचारांच्या अधिष्ठानावर ठामपणे उभी असणारी स्त्रीकेंद्रीत, सांस्कृतिक, सामाजिक आणि नैतिक मूल्यांची पुनर्मांडणी करणारी व्यापक आशय कवेत घेणारी अशी आहे.

"आता तिला घडवायचे होते
नवे शब्द
नवी भाषा
नवी मिथकं
नवी प्रतिकं
पण तिच्यासोबत होता
तद्दन जुनाच पुरुष
नवा इतिहास घडवायला
तरण्याताठ्या साक्षात्कारात ग्लोबल तिढ्यावर"[८]

'मी भिडवू पहातेय समग्राशी डोळा' मधील ही कविता आधुनिकतेच्या पार्श्वभूमीवर समतावादी स्त्रीची आकांक्षा आणि पुरूषप्रधान समाजाची जूनाट मानसिकता यातील विरोधाभास मांडते. स्त्रीच्या शोषणाला, दु:खाला जबाबदार असणाऱ्या पुरुपसत्ताक समाजाबद्दलची 'फिर्याद' कवयित्री हिरा बंनसोडे यांच्या कवितेमधूनही विस्तृतपणे आली आहे. स्त्रीमनाची घुसमट व्यक्त करताना संध्या रंगारी स्त्रीमुक्तीचा प्रश्न अग्रभागी ठेवतात. पुरुषांच्या स्वार्थांध मनोवृत्तीवर संध्या रंगारी यांनी 'संध्यारंग' मधून आसुड ओढले आहेत. १९९० नंतरच्या दलित कवयित्रींनी आपल्या कवितेतून विषमतेबरोबरच स्त्रीवर्गाच्या व्यथा वेदनाही मांडल्या आहेत.

जागतिकीकरणानंतरच्या दलित कवितेतून वेदना विद्रोह, विषमता यांचे चित्रण ज्या पद्धतीने आले आहे तसेच स्वजगतांर्गत अर्थात दलित समुहातंर्गत जोपासला जाणारा जातीयतेचा द्वैतभावाचेही चित्रण आले आहे.

"वेशीतून गावात आलास
गावातून शहरात गेलास
पंख फुटल्या पाखरा
वेदनेचा गाव विसरलास"[९]

या कवितेतून कवी राम दोतोंडे वास्तवाचे भान व्यक्त करताना दिसतात.

जागतिकीकरणानंतरची दलित कविता आधुनिक मानवतावादी मुल्यांचा प्रसार करणारी, वास्तववादी, सांस्कृतिक मुल्यमापनाबरोबर समानतेचा, मानवतेचा आग्रह धरणारी अशी आहे. या कवितेने मराठी साहित्यात मोलाची भर टाकत वैश्विक एकात्मतेचा आग्रह धरला आहे. त्यामुळे जागतिक पटलावर दलित कवितेला महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त झाले आहे.

निष्कर्ष :

१) नव्वदोत्तरी दलित कविता अनुभव संपंन्नतेतून बदलत गेली असल्याने अभिव्यक्तीच्या पातळीवर मोठ्या प्रमाणात विद्रोह प्रकट करू लागली आहे.

२) नव्या पिढीची ही कविता चिंतनशीलतेतून लिहिली गेली असल्याने मानवतेचा प्रचार आणि प्रसार करणारी आहे.

४) जागतिकिकरणातील अर्थव्यवस्थेने शोषित माणसाचे जगणे महाग करुन टाकले त्यांच्या दु:खाचे, दैन्याचे चित्रण कवितेतून आले आहे.

५) या काव्यामधील स्त्री ही जगण्याचा शोध घेत स्वतः वर झालेल्या अन्यायाविरोधात आवाज उठवताना दिसते.

६) जागतिकीकरणाच्या पार्श्वभूमीवर या कवितेची भाषा, प्रतिमा, प्रतिके बदललेली आहेत.

संदर्भ :

१. काळे,अरुण, नंतर आलेले लोक,लोकवाड्.मय ग्रह, मुंबई, प्र.आ., डिसें.२००६,प्रु.३७-३८
२. लोकनाथ, यशवंत, आणि शेवटी काय झाले, यमक प्रकाशन,चंद्रपूर, प्र.आ.,१९९५,प्रु. ५६
३. सरकुंडे, माधव,मनोगत, देवयानी प्रकाशन,मुंबई, प्र.आ.,१९९७, प्रु.३३
४. कलकले, नवनाथ, झोपडी प्रकाशक: पःरबोधन साहित्य परिषद, उदगीर, प्र.आ. १९९६,प्रु.१४
५. काळे,अरुण,उनि.,प्रु.३८
६. धांडे, शेषेराव पिराजी, रस्ता सोडून चालला कुठं, मुक्तछंद प्रकाशन, नागपूर, प्र.आ.,२००९, प्रु.३४
७. पाडगावकर, कांचन, मराठवाड्यातील कवयित्रींची कविता, रुपवेध प्रकाशन, औरंगाबाद, परभणी, प्र.आ.,२००७,प्रु.९८
८. लोखंडे प्रज्ञा, मी भिडवू पहातेय समग्राशी डोळा,ग्रंथाली पःरकाशन,मुंबई, प्र.आ.,२००७ प्रु.९
९. दोतोंडे, राम, गल्ली बदललेला मोर्चा, सुगावा प्रकाशन, पुणे, प्र.आ., प्रु,७६

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरणावर मराठी दलित कवितेचा प्रभाव

प्रा. श्रीरंग अरविंद तराळ
न्यू कॉलेज, कोल्हापूर.
Email ID- shrirangtaral1989@gmail.com

प्रस्तावना:

1990 नंतरच्या साहित्यात बदलत्या जीवनमानाचे बदलते प्रतिबिंब दिसून येते. 1991 साली गॅट करारा नंतर देशातील सर्वच बाजारपेठा मुक्त खुल्या करण्यात आल्या. जागतिकीकरणामुळे गरीब श्रीमंत यांच्या मधले अंतर वाढू लागले माहिती तंत्रज्ञानाच्या माध्यमातून जी माहिती प्रसारित होऊ लागली. त्यामुळे तेथील लोकांच्या परंपरा, श्रध्दा आणि संस्कृतीला हादरे बसू लागले. मराठी साहित्यावर जागतिकीकरणाचा प्रभाव शोधताना असे दिसते की, अलीकडील साहित्यिकांच्या लेखनामध्ये मोठ्या प्रमाणात इतर भाषेचा शिरकाव होताना दिसून येतो. यामध्ये नाटकांत संवादामध्ये इंग्रजी भाषेतील शब्दांचा फार मोठ्या प्रमाणात शिरकाव झाल्याचे दिसते.

जागतिकीकरणामुळे मराठी साहित्यात ग्रामीण आणि दलित या दोन्ही साहित्य प्रकारामध्ये प्रभाव पडल्याचे दिसून येते. नाटक प्रकारांबरोबर कादंबरी कविता या साहित्य प्रकारावर ही जागतिकीकरणाचा प्रभाव दिसून येतो. यामध्ये प्रामुख्याने दलित साहित्याचा विचार प्रामुख्याने पुढे येतो. शोषित दलित समाज आता या शतकात परिवर्तनवादी विचाराने भारावून गेल्याचे दिसते. दलित साहित्यातील तरुण आधुनिक विचाराने भारावून गेल्याचे दिसते. त्यामुळे शहराकडे वळला आहे. महिला आणि जागतिकीकरणाचा दलित साहित्यावर अधिक प्रमाणात प्रभाव पडल्याचे दिसून यामध्ये कथा, कादंबरी, नाटक, कविता कवितेच्या माध्यमातून दलिन साहित्यिकांनी आपल्या मनातील दुःख, वेदना इतरापर्यंत पोहचविल्या जावू लागल्या. निरागस वस्तीचे, बकाल वास्तवाचे वर्णन आपल्या काव्यातून मांडले जावू लागले.

संशोधनाची उद्दीष्टे:

1. जागतिकीकरणानंर मराठी दलित साहित्याचे बदलते स्वरुप अभ्यासणे
2. जागतिकीकरणानंतर 'खाऊजा' संस्कृतीचा प्रभाव दलित कवितेवर कसा झाला हे तपासणे.
3. जागतिकीकरणानंतर दलित कवितेचे बदलते स्वरुप व नवीन तंत्रे यांचा अभ्यास करणे.
4. जागतिकीकरणाचा दलित समाज जीवनावर जो परिणाम झाला त्याचे चित्र दलित साहित्यातून प्रभावीपणे कसे चित्रित झाले याचा अभ्यास करणे.
5. जागतिकीकरणामुळे मानवी मुल्यांचे बदलते स्वरुप दलित कवितेतून अभ्यासणे.

मराठी दलित साहित्य:

दलित वाड्.मयाचा उदय १९६० नंतर झाला चीड आणि बंड ही चळवळ दोन प्रमुख वैशिष्ट होती तर वेदना, विद्रोह नकार ही या साहित्यातील महत्वाची तत्वे आहेत.

स्वातंत्र्य, समता, बंधुता, विज्ञाननिष्ठ, न्याय ही लोकशाहीची मूलतत्वे दलित साहित्याचा मूलाधार आहेत.हिंदू समाज व्यवस्थेमध्ये जातीची उतरंड आहे त्यामुळे उच्चतम व कनिष्ठतम जात अशी विषमता असून 'दलितत्व' हे या विषमतेचे अपत्य आहे. दलितांवर या विषमतावादी समाजव्यवस्थेने पिढ्यानपिढ्या अन्याय केला. त्याला विरोध करण्यासाठी साहित्य कलेला दलितांनी त्याच्या विरुद्ध लढ्याचे एक हत्यार बनविले आहे.

भारतीय समाजव्यवस्थेमध्ये पिळले गेलेले, दबलेले, भरडलेले, वंचित असा 'दलित' शब्दाचा अर्थ घेतला जातो. भारतीय समाजव्यवस्थेत धार्मिक, शैक्षणिक, राजकीय व आर्थिक दृष्टीने जो मागे पडलेला आहे या अर्थाने दलित शब्द पुढे येताना दिसतो.

दलित साहित्याचे स्वरूप :

दलित साहित्य हे समाजातील सर्व प्रकारच्या अन्याय शोषण, विषमता या विरुद्ध बंड पुकारते. ते लोकशाही, स्वातंत्र्य, समता, बंधुता, मानवतावाद अशा मानवी मूल्यांचा आग्रह धरते. दलित साहित्य हे आक्रमक स्वरूपाचे असून माणसाचे माणुसपण नाकारणाऱ्या परंपरांना दलित साहित्य नाकारते. दलित साहित्य हे समाजाशी व श्रेष्ठ अशा मानवी मूल्याशी बांधिलकी मानणारे साहित्य आहे.

दलित माणूस हा दलित साहित्याचा केंद्रबिंदू:

दलित साहित्यात दलितपणाला विश्वात्मक प्रेरणा आहे. ते दलित संवेदनशीलतेतून जन्मले आहे. दलित माणूस हा डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांच्या मुक्तिलढ्याचा केंद्रबिंदू होता. दलित माणसाला माणुसकी, स्वातंत्र्य, समता व बंधुता देऊन मिळवून त्याच्यात जागृती करून त्याचा उद्धार व उन्नती करणे हा त्यांचा सामाजिक, राजकीय, धार्मिक, सांस्कृतिक व शैक्षणिक कार्याचा मुलभूत सिद्धात होता. माणसाला माणूस म्हणून जगता आले पाहिजे हा विचार येथे अभिप्रेत आहे.

जागतिककरणाचा दलित कवितेवरील प्रभाव:

जागतिककरणाचा साहित्यावरील प्रभाव पाहता विशेषतः दलित साहित्यातील कवितेचा विचार करताना चातुर्वर्ण्यव्यस्थेमधील विषमतावादी जीवनाचे वास्तव विदारक चित्रण अनेक कवींनी केल्याचे दिसते उदा. कवी मच्छिंद्र चोरमारे हे आपल्या "शीषर्क शोधणारी कविता" या कवितेत लिहितात की- खाजगीकरण झालं गरीबाचं गजकर्ण | जागतिकीकरणाने उघडेल, सामुहिक आत्महत्याचं महाद्वार |

मोबाईलने दळणवळण केलं मुठीत बंद |
किती ओरडावं गौतम बुद्धानं..!
माणसाला कसा जडला माणसं मारण्याचा क्रूर छंद..!

अशाच प्रकारे कवी- लोकनाथ यशवंत यांनी जागतिकीकरणाचा परिणाम बहुजन समाजावर कसा झाला याचे एक वास्तवचित्रण "कोंडमारा" या कवितेत मांडले आहे.

प्रगतीच्या भाकरीमागे.....
खेडयातून शहरात आलोत.!
अस्पृश्यता नाहीसी होण्याच्या मोबदल्यात !
आम्ही झोपडपट्ट्या पदरात घेतल्या.....
ही जागतिकीकरणाची कुठली गलिच्छ पध्दत.... !
माणसं उंदरासारखी एकमेकावरून धावताहेत.....!

असे वेगळे जागतिकीकरणाचे दर्शन दिसून येते. तसेच, माणसांच्या जीवघेण्या स्पर्धेचं चित्रण कवी संदीप गायकवाड यांनी आपल्या "ग्लोबल संस्कृती" या कवितेत पुढीलप्रमाणे केले आहे.-

"आंतरराष्ट्रीय ग्लोबल महासंस्कृतीत माणसाचं माणूसपण बदलून गेल आहे.
देशाचा नागरिकच देशात परका झाला आहे.

तसेच जागतिकीकरणामुळे इंग्रजी भाषेच्या प्रभावातून निर्माण झालेली त्र्यंबक सपकाळे यांची "सुरुंग" कविता- आम्ही गॉड मेकर,
देतो नोटीस तुझ्यावर (निग्लिजन्स ऑफ ड्युटीची....
युवर सर्व्हिस नॉट रिक्वायर्ड.....

अशाच प्रकारे जागतिकीकरणाच्या प्रभावाची कविता कवी यशवंत मनोहर यांच्या 'युगांतर' या कविता संग्रहातील "जागतिकीकरण आणि माझ्या जगाची कविता" या कवितेत लिहितात की-

जागतिकीकरणात गुलाम मने गुलामच असतात. आणि इतरांना गुलाम करणारे मने ही गुलामच असतात. या सर्वांनाच मुक्त करणारे विश्व कल्याणी मन पृथ्वीपाठीवर प्रथम रुजू झालेले 'बुध्द' या नावात. जगाला करुणेची आणि बौध्दीक निकषामधील पहिले जागतिकीकरण ही कविता तथागत गौतम बुद्ध यांच्या विचारांच जागतिकीकरणाच्या भूमिकेचे निःसंदेह पुरस्कार करते.

तसेच, कवी दीपककुमार खोब्रागडे यांच्या "दहशतवादाचा सांड घुसला जागतिकीकरणात" या कवितेत लिहितात की- आता तिसरे वर्ल्ड वॉर सुरू झाले आहे.

विचारांचे बॉम्बचे-खुनाचे हे युग अपडाऊन होत आहे.
आणि सनराईज लोकशाहीत दहशत वादाचा सांड घुसला आहे आरपार....

ही कविता बदलत्या शब्दसज्ज आवेगाचा उत्कृष्ट आविष्कार आहे. आंबेडकरवादी कवितेची दाहकता प्रभावित करणारी आहे. ही कविता समाज परिवर्तनाचा आरसा आहे अशाच प्रकारच्या जागतिकीकरणाच्या प्रभावातून निर्माण झालेल्या कवितेमध्ये युवा कवी- संदीप गायकवाड यांनी आपल्या "ग्लोबलायजेशन" या कवितेत लिहितात की-

ग्लोबलायजेशनच्या लखलखत्या हॅलोजनमध्ये |
मानवाचे अस्तित्व मॅन झाले आहे ||
फसव्या कारपोरेटच्या मायानगरीला |
आंतरिक डायनामाईटने उडवायचं आहे... ||

या कवितेतून आंबेडकरवादी विचारांची नवी ऊर्जा प्रस्फोटीत झालेली दिसून येते दलित कवी हजारो वर्षापासूनच्या गुलाम व्यवस्थेला ठोकरून तो आपले नवे विश्व तयार करत आहे. आपल्या व समाजावर होणाऱ्या अत्याचाराच्या वेदना- तो विद्रोह व नकार या प्रतिकातून मांडतो आहे. जागतिकीकरणाच्या व्यवस्थेत तो शब्दाला शस्त्रे मानून जग बदलविण्यासाठी धडपड करीत आहे.

कवी सुनील अवचार यांनी आपल्या "ग्लोबल वर्तमान" या कवितेत लिहितात की, त्या ग्लोबल वर्तमानात भावना झाली आहे जाहिरात आणि...

मेंदूचे झाले आहे कॉम्प्युटर
तत्वज्ञान झाले आहे (Use and throw) संस्कृती झाली आहे.
रखेल या ग्लोबल वर्तमानात

या कवितेतील बंडखोरी नवीन दिशा देणारी आहे.

आंबेडकरी दलित कवितेतील संविधानमूल्ये:

दलित साहित्यिक भारतीय सविधानाला आपला प्राण मानतात. संविधानाने त्यांचे व संपुर्ण भारतीय माणसांचे जीवन बदलविले आहे. या देशाला एकसंघ बलशाली बनवायचे असेल तर आपल्यातील सारे भेद नष्ट केले पाहिजेत. संविधानात्मक प्रतिमा सृष्टीचा वापर करून कवी नामदेव ढसाळ आपल्या कवितेत लिहितात की-

ही लोकशाही नाही हे |

ही विटंबना सतरा पिढ्यांची
मुक गिळून पोसलेली.
हा प्रकाश नाही रे।
हा पिंजरा पिळवणुकीचा.....

वरील क्रांती जाणीव अतिशय उपरोधात्मक वापरली आहे. लोकशाहीने मानवी जीवनाला एक वेगळी दिशा दिली आहे. जाग माहिती लिहि व्यवस्था जागतिकीकरणाने की चंगळवादी संस्कृती निर्माण झाली आहे तिला नष्ट करून मानवाचे सुंदर विहार निर्माण करण्याची भूमिका दलित साहित्यिक करताना दिसतात. यामध्ये, शोषित, वंचित, कामगार, शेतकरी स्त्री, बेरोजगार, उपेक्षित वर्ग या सर्वांच्या व्यथा वेदना दलित साहित्यात दिसतात. विशेषतः कवितेमध्ये मधील प्रभाव दिसून येतो उदा, कवी यशवंत मनोहर यांनी जागतिकीकरणाचा विषय आपल्या काव्यात वेगळ्या पध्दतीने हाताळल्याचे दिसते. यामध्ये त्यांच्या संदर्भासहीत आजची मरणझड" या कवितेत ते म्हणतात की, सुरू झाला आहे मोसम अग्निपरीक्षेचा.. नादळाचा लगाम येत नाही हातात माणसाच्या अजून धर्मनिरपेक्ष जागतिक विद्यापीठामधूनच उगवते सौहार्दाची सौंदर्य पोर्णिमा उगवते माणुसकी अभीम परस्परोपकारक व्यक्त करतो.

खेडी आता ग्लोबल व्हिलेज झाले आहेत खेड्याचे आता काय होणार हा प्रश्न कवीला पडलेला आहे. "जग बदलण्यासाठी आलो मी" या कवितेत- कवी उत्तम कांबळे म्हणतात....

मी जन्मलो नाही नुसताच जगण्यासाठी |
जग बदलण्यासाठी आलो मी प्रकाशयुग होण्यासाठी ||

उत्तम कांबळे यांनी आपल्या "जागतिकीकरणात माझी कविता" या कविता संग्रहातील कवितेत लिहितात की-

माणसं माणसापासून दूर धावताहेत.....
रोबोटच्या गळ्यात गळा घालताहेत.....
माणसाऐवजी कुत्र्यांवर कुत्र्यांऐवजी यंत्रावर विश्वास टाकताहेत.....

ही कविता जागतिकीकरणातील माणसांचे होणारे यांत्रिकीकरण विशद करताना दिसते. तशाच स्वरूपाच्या जागतिकीकरणाच्या प्रभावातून निर्माण झालेल्या कवितेमध्ये कवी अरुण काळे यांच्या कवितांचा परामर्श येता येईल. अरुण काळे यांच्या हे विश्वची माझा कटोरा या कवितेत जागतिकीकरणाचे संगणकीय परामर्श व्यक्त करताना लिहितात की, संगणक नष्ट करत चाललाय कामगारांना, समतेला, बंधुभावाला, आणि माणूसपणाला व नव्या निर्मितीला मारून विकृती वाढवित आहे. जागतिकीकरणाने जग एक खेडे झाले आहे. तसेच मोचाईलच्या नव्या तंत्रज्ञानाने माणसे वेगवान झाली असली तरी नाती विस्कळीत झाली आहेत. मेंदूची विचार करण्याची क्षमता उच्च पातळीची असली तरी आर्थिक नावाच्या अर्थकारणाने इतर देशाला गुलाम करण्याची महती दिसून येत आहे. जागतिकीकरणाचा दूरगामी परिणाम सर्वच क्षेत्रात दिसून येतो.

दलित कवींची नांवे:

यामध्ये प्रामुख्याने नाघो. महानोर, नामदेव ढसाळ, हिरा, बनसोडे, बाबुराव बागुल, अरुण काळे, प्रज्ञा पवार, महेंद्र भवरे श्रीधर तिळवे, इंद्रजीत भालेराव मेरो मंगेश काळे, सचिन केतकर, उत्तम कांबळे, दिपक खोब्रागडे, त्र्यंबक सपकाळे, यशवंत मनोहर यांच्या कवींचा यामध्ये समावेश दिसून येतो.

दलित साहित्यामध्ये डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांच्या विचार, तत्वज्ञानातून, कवी अरुण काळे यांनी "नंतर आलेले लोक" या कवितासंग्रहात –

तु मदरबोर्ड माझ्या संगणकाचा आणि मल्टीमिडीया की बोर्ड,
हा संगणक, ही मेमरी हा अन
अपडेट प्रोग्रॅम ही तूच दिलेला.

माणसांमध्ये चंगळवादी प्रवृती वाढली. पण, मानसिक समाधान कमी झाले. अनेक ताण-तणाव निर्माण झाले. तसेच स्वास्थ्य लाभलेले दिसत नाही. अरुण काळे यांच्या कवितांमधून जागतिकीकरण आणि वर्तमान वास्तव यांच्यातील विविध ताण-तणाव परिणाम कारकपणे व्यक्त होताना दिसतात.

अरुण काळे यांच्या "रॉकगार्डन" आणि "सायरनचे शहर" या कविता संग्रहातील अनेक कवितामधुन डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांच्याविषयी कृतज्ञता दिसून येते उदा.

"शहरात तुम्ही असता निर्वासित,
या शहराने आपल्याला काय दिले?
तुम्हाला आणि मला जे काय दिले.
ते क्रांतीबाने आणि क्रांतीसुर्यानेच ना!"

ही महापुरुषांची कृतज्ञता कवीतेत सांगतात.

तसेच कवी उत्तम कांबळे यांच्या "जागतिकीकरणात मराठी कविता" या काव्य संग्रहातील सर्वच कविता खऱ्या अर्थाने आहेत. जागतिकीकरणाचा वेध घेणाऱ्या आहेत.

जागतिकीकरणाने लादलेले जवे जगणे स्वीकारताना सर्वसामान्य माणसांची समाज, संस्कृती, विचारधारा भूमिका बदलताना दिसून येते. संगणक आणि इंटरनेट यांच्या माध्यमातून हजारों कि. मी. वरील व्यक्तींशी आपण क्षणात संपर्क साधू शकतो. आज जग हे एक खेडे बनले आहे.

जागतिक स्तरावरील विविध माहिती घरबसल्या मिळवू शकतो. हा संगणकाचा फायदा कवी- अविनाश ओगळे यांनी "मित्र आमुचा नवा" या बाल कवितेत केले आहे.

संगणक हा मित्र आमुचा नवा | जेथे तेथे ज्याला त्याला सदोदित तो हवा |
हिशोब मोठे, आकडेमोड करतो चुटकी सरशी |
अन वेगाच्या स्पर्धेत याची सरशी |
की-बोर्डवर टाइप करावे, माऊस वरती क्लिक |
म्हणे संगणक- विश्वातील तुला हवे ते शिक ||

दलित साहित्याचे स्वरूप :

दलित साहित्य प्रामुख्याने वेदना, विद्रोह, नकार मानवतावाद, व विज्ञाननिष्ठा या पंचसुत्रीवर दलित साहित्याची उभारणी झाली आहे. स्वातंत्र्य, समता, बंधूता, धर्मनिरपेक्षता दलित, साहित्यातून दिसते. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांनी केलेले लेखन, सत्याग्रह, शिक्षण व भारतीय राज्यघटना या माध्यमातून आपल्या दलित बांधवांना प्रेरणा दिली. म्हणून दलित साहित्याच्या मुळाशी डॉ बाबासाहेब आंबेडकर मुख्य विचारधारा आहे.

समारोप:

जागतिकीकरणात दलित साहित्याचे मूल्यमापन करताना सर्व लेखकांनी, कवीनी वास्तव दर्शन मांडले आहे. दलित साहित्याची निर्मिती ही दलितांच्या जीवनातील परिवर्तनाची नांदी आहे. आजच्या काळातील विज्ञानातील घौडदोड यांत्रिकीकरण व त्या व्यवस्थेतून होणारे शोषण, बदलती सामाजिकता वास्तवता दलित साहित्यात दिसते. दलित साहित्याने मराठी साहित्याला नवीन मानवतेची व समता, बंधुता व न्याय आणि विज्ञाननिष्ठा अशा संविधानिक मुल्यांची देणगी दिली आहे.

अशाप्रकारे दलित कवितेतून जागतिकीकरणाचा प्रभाव दिसून येतो.

निष्कर्ष:

1) जागतिकीकरणामुळे भौतिक संस्कृतीत बदल होवून चंगळवादी संस्कृती वाढीस लागल्याचे दिसते.
2) जागतिकीकरणानंतर विशेषत: 1990 नंतरच्या दलित कवितेतून गौतम बुध्द, संत कबीर, महात्मा फुले, शाहू महाराज, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांच्या विचाराच्या समतावादी समाज निर्माण होत असलेचे दिसते.
3) जागतिकीकरणाच्या प्रभावातून- दूरदर्शन, मोबाईल, संगणक या प्रसारमाध्यमामुळे समाजजीवनात अधिक गतीने बदल झालेला दिसून येतो.
4) जागतिकीकरणाचा मानवी मूल्यावर प्रभाव दिसून येतो.
5) जागतिकीकरणामुळे मानवी मुल्यांचा झपाट्याने ऱ्हास होताना दिसतो.

संदर्भ:

1) लिंबाळे शरणकुमार- 'दलित साहित्य आणि सौंदर्य' दिलीपराज प्रकाशन, पुणे.
2) मनोहर यशवंत- 'आंबेडकरवादी मराठी साहित्य' भीमरत्न प्रकाशन, नागपूर, प्रथम आवृत्ती 1999.
3) डोळस वसंत- 'दलित साहित्य प्रेरणा आणि स्वरुप'- दिलीपराज प्रकाशन पुणे.
4) पारसे बिरा- दलित कवितेतील अस्मिता- 'स्वरुप प्रकाशन, प्र.आ. 2014.
5) काळे अरुण – सायरनचे शहर (कवितासंग्रह)- सत्यजित प्रकाशन, नाशिक. प्र.आ.1997.
6) कांबळे उत्तम- जागतिकीकरणात माझी कविता- सुगावा प्रकाशन पुणे.

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि मराठी कादंबरी

प्रा. मोहन बाबूराव चव्हाण
लक्ष्मीबाई भाऊराव पाटील, महिला महाविद्यालय, सोलापूर.
ईमेल: chavanmohanb@gmail.com

प्रास्ताविक:

जागतिकीकरण ही साऱ्या जगाला व्यापून टाकणारी मोठी सामाजिक, सांस्कृतिक आणि आर्थिक घटना १९९० च्या सुमारास घडली. जागतिकीकरणाने सर्वसामान्यांचे जगणेच बदलून टाकले. मानवी जीवनासह संपूर्ण जगाच्या राहणीमानाला, विचारविनिमयाच्या व्यवहाराला नवा आयामच दिला. प्रत्येक व्यक्ती ही केवळ व्यक्ती नाही, तर ती ग्राहक आहे, असा समज दृढ करण्यामध्ये जागतिकीकरणाचा मोठा वाटा राहिला. व्यक्तीला ग्राहकाचे भूमिका अपरिहार्यपणे प्राप्त झाली. जास्तीतजास्त पैसे असल्याशिवाय आपण सुखी होऊ शकत नाही, असा विचार प्रत्येक व्यक्ती करू लागला. त्यातून सुखाची साधने मिळवणे हे जणू जीवनध्येय बनले. ज्यामुळे पारंपारिक विचारांना, नितीकल्पनांना हादरे बसू लागले. जागतिकीकरण, खाजगीकरण आणि उदारीकरण या मुळे सर्वसामान्य माणसांच्या जगण्याचा कायापालट होइल , सगळ्यांचा विकास होईल असे वाटत होते. प्रत्यक्षात मात्र तसे काहीच झाले नाही. हजारो वर्षे मातीत राबणाऱ्या भूमीपुत्रांच्या शेतजमिनी बहुराष्ट्रीय कंपन्यांनी काबीज केल्या. पाण्याचे स्रोत, जमीनी, जंगल यांवर त्यांनी ताबा मिळवायला. आणि आजपर्यंत या सगळ्याची राखण करणारे, या स्रोतांशी नैसर्गिकपणे जोडलेले लोक यापासून बाजूला फेकले गेले. मुक्त बाजारपेठ, ग्लोबल व्हिलेज, स्मार्ट सिटी या सारख्या दिखाऊपणा करणाऱ्या संकल्पनांनी सर्वसामान्यांना अचंबित केले. हे सर्व भौतिक बदल घडत असताना दुसऱ्या बाजूने मानवी जीवनात मूलभूत प्रश्न निर्माण होत होते.

उद्दिष्ट्ये:

१. जागतिकीकरणाचे स्वरूप समजून घेणे.
२. मराठी कादंबरीचे १९९० नंतरचे आशयसूत्र तपासणे.
३. आधुनिकीकरणामुळे मराठी समूहाच्या बदलत्या जीवनाचे कादंबरीत कशा प्रकारे चित्रण झाले आहे, याबद्दल थोडक्यात विमर्श करणे.
४. १९९० नंतर 'खाउजा' अर्थात खाजकीकरण, उदारीकरण आणि जागतिकीकरण या संकल्पनामुळे मराठी भाषिक समूहाच्या जीवनातील बदलांचा वेध घेणे.
५. मराठीतील ग्रामीण जीवनावर जागतिकीकरणाचा नेमका काय परिणाम झाला याचा शोध घेणे.
६. महानगरीय जीवनजाणिवा कादंबरीमधून कशा तऱ्हेने आविष्कृत झाल्या, याचा वेध घेणे.
७. जागतिकीकरणाच्या दाबामुळे कादंबरीचा आकृतिबंध बदलला का? हे तपासणे.

जागतिकीकरण आणि नवे प्रश्न:

1990 साली भारताने गॅट करारावर सही केली. तेव्हापासून भारताच्या बाबतीत जागतिकीरणाची प्रक्रिया अधिक गतिमान झाली. या जागतिकीकरणामुळे येत्या काही वर्षात भारत सुखी आणि समृद्ध होईल, शेतकऱ्यांनी पिकवलेला शेतीमाल, कारखान्यात निर्माण केली जाणारी उत्पादने जगभर पोहचतील. आणि बघता बघता आपल्या जगण्याचा कायापालट होईल. आपण सगळे सुखी होऊ, असे वातावरण निर्माण झाले. बहुतेक लोक स्वप्नमय चित्रे रंगविण्यात मशगुल झाले. उदारीकरण, खासगीकरण आणि जागतिकीरणाच्या नावाखाली जगभरातील भांडवलदार देशांनी भारताच्या बाजारपेठांत हातपाय पसरायला सुरुवात केली. भांडवलदाराच्या माध्यमातून अमेरिका, जपान, चीन, रशिया या सारखी राष्ट्रे सर्व जगावर सत्ता गाजवण्यासाठी धडपडू लागली. यातून एक बाजारीकरणातील शितयुद्ध धुमसू लागले. याचा परिणाम म्हणून सर्वसामान्य व्यक्तीच्या बाबतीतील अर्थकारण, संस्कृती, राजकारण या गोष्टी बदलू लागला. मानवी जीवनात दहशतवाद नावाच्या नव्या संकल्पनेने प्रवेश केला. सर्वसामान्य माणसाचे रोजचे जगणे, मरणे, विचार करणे, प्रतिक्रिया देणे हे सर्व जागतिकीकरणाने अवगुंठित केले.

गावखेड्यात ही मोठे बदल होऊ लागले. कृषि अर्थव्यवस्था कोलमडून पडली. परिणामी कुणब्याच्या आत्महत्येचे सत्र सुरू झाले. नव्या तंत्रज्ञानातील क्रांतीमुळे मजूर बेकार झाले. रोजगाराच्या संधी शेती उद्योगातून सेवा माहिती क्षेत्राकडे वळल्या. बहुराष्ट्रीय कंपन्यांनी उद्योगाऐवजी बँकिंग, इन्शुरन्स, मोबाइल, वीज, शेअर बाजार अशा क्षेत्रात आपली गुंतवणूक केली. सेवा या शब्दाचा अर्थच बदलला. काही वर्षात विमा, बँकिंग, सिनेमा, हॉटेल, रेस्टारंट, बांधकाम, व्यवस्थापन आदी क्षेत्रांना चांगले दिवस आले. समांतरपणे तंत्रज्ञान क्षेत्रात संगणक क्रांती होत होती. माणसाशिवाय काही कामे यंत्राच्या आधारे करता येतात याचा आत्मविश्वास भांडवलदारांना आला. मजूर कामगारांच्या नव्या प्रश्नांनी तोंड वर काढले. सामाजिक क्षेत्रावरही याचा प्रभाव होऊ लागला. दरम्यानच्या काळात मोठा विस्फोट होऊन टीव्ही वाहिन्या गावागावात पोहचल्या. रेडीओ, टिव्हीवरून सुरू असलेले प्रबोधन, मनोरंजन मागे पडून भडकपणाला महत्त्व येत गेले. प्रसारमाध्यमांवरील जाहिराती हा मानवी जीवनचा अविभाज्य भाग बनला. टिव्हीवर बघितलेले सगळे काही आपल्याकडेही असायला हवे, ही इच्छा सर्वसामान्य माणसाच्या मनात बळावू लागली. यातून मग इच्छापूर्तीसाठी तो नैतिक दृष्ट्या कोणत्याही स्तरावर जाण्यास तयार झाला. कर्जबाजारी होऊन आपली स्वप्ने पूर्ण करणे त्याला खजिलपणाचे वाटेनासे झाले. दुसरीकडे खासगी उद्योगधंद्यांनी मोठमोठे कर्ज घेऊन बँका बुडवित निघू लागल्या. राजकीय व्यक्तींच्या घोटाळ्याचे आकडे वाढले. कर चुकविण्याचे प्रमाण वाढले. शेतीशी निगडीत सर्वच क्षेत्रातील अनुदान, शासकीय मदत संपुष्टात आल्यामुळे सर्वसामान्य शेतकरी एकाकी झाला. नगदी पिकांचेही भाव आंतरराष्ट्रीय बाजारामुळे पडू लागले. या सगळ्या बदलांचे आणि त्याच्या वेगाचे ज्ञान आकलनाच्या कक्षेत येईनासे झाले. त्यामुळे सगळीकडेच संभ्रमाचे वातावरण निर्माण झाली. अशा या जीवनाचे समग्र चित्रण कादंबरीत कसे प्रतिबिंब झाले हे पाहणे, प्रस्तुत शोधनिबंधाचा उद्देश असेल.

जागतिकरण आणि मराठी ग्रामीण कादंबरीतील भावविश्व:

जागतिकीकरणानंतर समाचाचे वास्तवदर्शी चित्रण करणाऱ्या काही प्रातिनिधिक कादंबरीचा आधार घेऊन प्रस्तुत शोधनिबंधाची चर्चा करण्यात येणार आहे. मराठी कादंबरीत १९९० पूवीर्ही काही कादंबऱ्यातून आधुनिकिरणाच्या आणि औद्योगिकीकरणारच्या बऱ्या वाईट परिणामांच्या अंगाने चित्रणे आली होती. उदाहरणादाखल मराठीतील काही प्रातिनिधिक कादंबऱ्यांचा विचार करता येईल.

मराठवाड्यातील एका छोट्याशा गावामध्ये गंगाराम अणि त्याची पत्नी पारबती राहात असतात. ते दोघेही शिंपी काम करून आपल्या कुटुंबाचा उदरनिर्वाह करत असतात. या शिंपी कुटुंबाची शोकात कहाणी असेच या कादंबरीचे एका व्याख्यात आशयसूत्र सांगता येईल. गावातील गरड नावाचा व्यक्ती आपली फॅशनेबल कपडे लातूरच्या शिंप्याकडून शिवून आणत असतो. तो एका पोराकरवी आपले जुने धोतर गंगारामकडे दंड घालायला पाठवितो. गंगाराम मात्र हे काम नाकारतो आणि कथानकात संघर्षाची ठिणगी पडते. गरड इर्षेने पेटतो. आपण गावत दुसरी मशीन आणू तेव्हाच त्या मशीनवर दंड घालून धोतर नेसू, असा निग्रह गरड करतो. मग आधीच डबघाईला आलेला गंगारामचा व्यवसाय पूर्ण उद्धवस्थ होतो.

आधुनिकरणामुळे गावगाड्यातील एका शेतशिवारावर श्रद्धा असणाऱ्या कष्टकरी व्यक्तीचे भावविश्व कसे उद्वस्थ होते, याचे प्रत्ययकारी चित्रण आनंद यादव यांच्या 'गोतावळा' कादंबरीत आले आहे. ट्रक्टर आल्यामुळे नाऱ्या नावाच्या शेतमजुराची झालेली जीवन व्यथा आनंद यादव यांनी 'गोतावळा'तून मांडलेली आहे. कोल्हापूरचा कुणीतीर पाव्हणा येतो आणि म्हशी, बैल, पाडस, बकरी सारखे सर्व पाळीव प्राणी बाळगण्यापेक्षा एक ट्रॅक्टर घेतला तर कसा खर्च वाचू शकतो, याची हकिगत सांगतो. मग ज्या दिवशी मालकाच्या शेतात ट्रक्टर येतो, त्या दिवसापासून मालकाच्या शेतीतील नारबाचे अस्तित्व पुसट होऊ लागते. ज्या दिवशी ट्रॅक्टरच्या रूपाने यंत्र आणि नारबा यातील द्वंद्व यादवांनी सूचकपणे सांगितले आहे. ट्रॅक्टर आल्यामुळे कृषिसंस्कृतीचा ऱ्हास कसा झाला, हे यादव यांनी अत्यंत नेमकेपणाने आणि तितक्याच सूक्ष्मपणाने सांगितले आहे.

राजन गवस हे देखील अलिकडचे मराठी साहित्यातील अत्यंत संवेदनशील लेखक होत. वर्तमान समाजवास्तव वास्तवदर्शीपण आपल्या कादंबऱ्यामध्ये चित्रित करणारे महत्त्वाचे कादंबरीकार म्हणून ते सुप्रसिद्ध आहेत. जागतिकीकरणामुळे समाजजीवन कमालीचे बदलून गेले. चळवळीद्वारा भौतिक साधनसुविधाची निर्मिती, विज्ञानाचा अविवेकी वापर, सत्तेसाठी कोणत्याही स्तराला जाणारी स्पर्धा, माणसामाणसामधील बोथट होत जाणारी संवेदनशीलता यामुळे सर्वसामान्य माणूस नैतिकदृष्ट्या पूर्णत: रसातळाला गेला. समाजाचीही स्थिती काहीशी तशीच झाली. समाज अधिकाधिक परात्म बनू लागला. भोवंडून टाकणाऱ्या काळाला कवेत कसे घ्यावे, हा लेखकांपुढे प्रश्न निर्माण होऊ लागले. अशा अत्यंत अस्थिर आणि असुरक्षित वास्तवाचे नेमके चित्रण आपल्या कथात्मक साहित्यातून करण्याचा प्रयत्न राजन गवस यांनी केला. त्यानी आपल्या 'चौंडक', 'भंडारभोग', 'कळप', 'तणकट', 'धिंगाणा', 'ब - बळीचा' या कादंबऱ्यातून गेल्या दोन दशकात बदलत गेलेल्या समाजजीवनाचे चित्रण केले आहे. राजकारणामुळे, अंधश्रद्धेमुळे गेल्या दोन दशकात समाज कसा पोखरून गेला आहे, याचे अत्यंत वास्तवदर्शी चित्र गवस यांनी रेखाटले आहे.

राजन गवस यांनी 'ब- बळीचा' या कादंबरीतून बदलते गाव चित्रित केले आहे. जागतिकीकरणानंतर नवा मध्यमवर्ग उदयाला आला. तो गावखेड्यापर्यंत पोहोचला. शिक्षण, नोकरी, गावागावपर्यंत पोहोचले. शहरी जीवनशैलीचे अनुकरण राजरोसपणे गावातील नव्याने शिक्षित झालेल्या मंडळीकडून होऊ लागले. हा नवा पांढरपेशा शिकलेला वर्ग आपल्या गावापासून, गावच्या माणसांपासून, कुटुंबापासून दूरावला. त्याचे शेतीशी असलेले नाते तुटले. एकंदर भौतिक सुखाच्या मागे लागत असताना त्याला नेमके आपल्याला काय साध्य करायचे आहे, याचा विसर पडला. शिक्षणे म्हणजे श्रम नाकारणे असे नवे सूत्र त्यांच्या डोक्यात पक्के झाले. श्रमाची आणि शिक्षणाची फारकत झाली. ज्यामुळे खोट्या सुखाच्या कल्पनांना तो बळी पडला. तर दुसरीकडे जागतिकीकरणामुळे सामान्य शेतकऱ्याचे जगणे भेसूर झाले. गरीब शेतकऱ्याच जगणे असाहाय झाले. जागतिकीकरणामुळे भांडवलशाही व्यवस्थेने माणसाचे अवघे जगणेच कसे बदलून टाकले याचे तुकड्यातुकड्याच्या रूपाने चित्रण 'ब-बळीचा'क कादंबरीत आले आहे. राजन गवस यांनी 'ब-बळीचा' या कादंबरीत निरनिराळ्या पात्रांच्या, घटनाप्रसंगांच्या माध्यमातून वर्तमान ग्रामजीवन तपशीलवार आणि परिणामकारपणे व्यक्त केले आहे.

जागतिकीकरणासंदार्भतील इतर काही प्रश्न मांडणाऱ्या कादंबऱ्या:

मराठीत इतरही काही महत्त्वाच्या कादंबरीकारांनी जागतिकीकरणाचे परिणाम दर्शवणाऱ्या कादंबऱ्यांचे लेखन केले आहे. सर्वसामान्य माणसांना आपल्या रोजच्या जगण्याविषयी कराव्या लागणाऱ्या संघर्षाबरोबर जागतिकीकरणाच्या आरिष्ट्यांबरोबर संघर्ष करावा लागला. या सगळ्याचे एक व्यापक चित्र मराठी कादंबरीकारांनी आपल्या साहित्यकृतीत रेखाटले. सामान्य माणसाच्या जगण्यावर आधुनिकीकरणामुळे होणाऱ्या बऱ्यावाईट परिणाकडे त्यांनी लक्ष वेधले. रंगनाथ पठारे यांनी 'रथ', 'चकव्यूह', 'ताम्रपट', 'भर चौकात अरुण्यरुदन'; सदानंद देशमुख यांनी 'तहान', 'बारोमास'; दिनानाथ मनोहर यांनी 'रोबो', 'मन्वंतर'; विश्वास पाटील यांनी 'झाडाझडती' 'पांगिरा', शेषराव मोहिते यांनी 'धूळपेरणी'; कृष्णात खोत 'गावठाण', 'रौंदाळा', 'झड-झिंबड', 'रिंगाण'; जी. के ऐनापूरे यांनी 'अभिसरण', 'रिबोट', रमेश इंगळे उत्रादकर 'निशाणी डावा अंगठा', 'सर्व प्रश्न अनिवार्य'; आनंद विंगकर 'अवकाळी पावसाच्या दरम्यानची गोष्ट' या कादंबऱ्यामधून जागतिकीकरणाच्या बऱ्या वाईट परिणामांची चर्चा केली आहे. शिक्षण, अर्थकारण, समाजकारण या सगळ्या अंगांनी कशाप्रकारे मराठी समूह बदलत गेला, याचे चित्र त्यांनी रेखाटले. जागतिकीकरणानंतर शेती व्यवसायाच्या समस्या आधिक गुंतागुंतीच्या झाल्या 'अवकाळी पावसाच्या दरम्यानची गोष्ट' या कादंबरीत आनंद विंगकर यांनी दुष्काळग्रस्त प्रदेशातील शेतकऱ्यांच्या दुरवस्थेची गोष्ट सांगितली. तर सदानंद देशमुख यांच्या 'तहान', रवींद्र शोभणे यांच्या 'पांढर' या कादंबरीत पाणी प्रश्न आणि त्यामुळे निर्माण झालेले प्रश्न रेखाटले. सदानंद देशमुखाच्या 'बारोमास' या कादंबरीत शेतीव्यवसायातील अर्थकारण प्रकट करत जागतिकीकरणाचे परिणाम दिसतात. तसेच कर्जबाजारीपणा, बेरोजगारी, तरुणांची दिशाहीनता यांचा वेध या कादंबरीत घेतला गेला आहे. अशोक कौतिक कोळी याच्या 'कुंदा' मध्येही शेतीव्यवसावर जागतिकीकरणाचे झालेले परिणाम चित्रित होतात. नामदेव माळी यांच्या 'छावणी' कादंबरीत दुष्काळामुळे सुरू असणाऱ्या चाराछावणीतील शेतकऱ्याच्या दु:खाचे चित्रण येते. याशिवाय अलीकडच्या काळात शासन यंत्रणनेकडून विकासाच्या नावाखाली नवनवे प्रकल्प लोकांच्या माथी मारण्याचे सत्र सुरू झाले. या सगळ्याच्या फायद्यापेक्षा नुकसानालाच सर्वसामन्य माणसांना शेतकऱ्यांना जावे लागले. या

बाबतचे चित्रही काही कादंबऱ्यांतून प्रकटपणे व्यक्त झाले आहे. विश्वास पाटील यांच्या'झाडाझडती' कादंबरीत धरणग्रस्तांचा गावपासून तुटण्याचा प्रवास येतो.

भारत हा कृषिप्रधान देश आहे, असे म्हणत असताना दुसरीकडे जागतिकीरणामुळे शेतीची मोठी आबाळ झाली आहे. जागतिकीकरणाने शेतीव्यवसायाला एकप्रकारे किड लागली आहे. निरनिराळी यंत्रे, विषारी औषधे शेतीत अपरिहार्य होऊ लागली आहेत. बक्कळ पैसा कमविण्याच्या नादात शेतकरीही अत्यंत हापापल्याप्रमाणे शेतीस ओरबडू लागला आहे. या प्रकारे शेतीसह मानवी जीवनातील होत असलेल्या मूल्यऱ्हासाचे नेमके चित्र १९९० नंतरची कादंबरी नेमकेपणाने चितारते. कृष्णात खोत यांच्या 'रौंदाळा' कादंबरीत सामान्य व्यक्ती आणि राजकारण यांची सांगड घातल जागतिकीकरणाने शेतीची कशी वाताहत केली, हे सांगितले आहे. तर 'निशाणी डावा अंगठा' या रमेश इंगळे उत्रादकर यांच्या कादंबरीत शिक्षणची स्थिथी चित्रित झाली आहे. जागतिकीकरणाच्या परिणामांविषयक नेमके लेखन करणारे आणखी एक नाव म्हणजे कादंबरीकार राजन खान होय. हे या काळातील महत्वाचे कादंबरीकार होय. नव्या विषयांचा शोध घेणारे कादंबरीलेखन करणे त्यांचा हातखंडा. निम्न स्तरावरील जीवन जागतिकीकरणाच्या प्रभावाने कसे संक्रमित झाले, याबद्दल ते तपशीलवार लिहितात.

एखादा बदल समाजजीवनावर नेमका काय परिणाम करतो, याचे चित्रण विविध साहित्यकृतीतून होत असतो. कादंबरी अशा घटनांना समग्र रूपात नेमकेपणाने दाखवत असते. भारतीय समाजातील असा कोणताही घटक नाही, जो जागतिकीकरणामुळे बाधित झाला. 'भर चौकातील अरण्यरुदन' सारख्या कादंबरीत रंगनाथ पठारे अशाच काही विषयाची चर्चा करतात. शहरातील सामान्य मजूराच्या आणि पत्रकाराभोवती फिरणाऱ्या कादंबरीच्या कथानकात अनेक ताणेबाणे आले आहेत. प्रस्तुत कादंबरी ही तुकड्या तुकड्याच्या रूपात साकार झाली आहे. एका कादंबरीत दुसरी कादंबरी असे या कादंबरीचे रूप आहे. यामागचे कारण म्हणजे आलीकडच्या काळात, कोणताच काळ हाताशी येत नाही. कशाबद्दलच आपण नेमकेपणाने विधान करू शकत नाही. हे सगळे जागतिकीकरणाचाच एक परिपाप होय. तेव्हा समोर असणाऱ्या तुकड्यातुकड्यात विभागलेल्या जगण्याला बांधण्याचा प्रयत्न अशा प्रकारे करू लागला आहे. 'ब-बळीचा' ही कादंबरी सुद्धा अशाच आकृतिबंधातून साकार होताना दिसते. अलीकडच्या काळात समाजमाध्यमांनी मोठ्या प्रमाणात मानवी जगणे व्याप्त केले आहे. या दोन्ही कादंबऱ्यात टिव्हीवरील बातम्या, वर्तमानपत्र यासारख्या माध्यमांची रेलचेल दिसते.

जागतिकिकरण आणि कादंबरीची आशयसूत्रे:

जगतिकीकरणाच्या संदर्भात मराठीतील काही प्रातिनिधिक कादंबऱ्याचां विचार करताना आपणास मानव जीवनमूल्यांचा ऱ्हास होत असल्याचे निदर्शनास येते. ग्रामीण भागातील दुःख आणि दारिद्र्यांत पिचलेल्या तळागाळातल्या माणसांचे दुखणे कादंबरी चित्रित करू पाहते. जागतिकीकरणाचा सहकार क्षेत्रातील उच्चपदस्थ, शासकीय यंत्रणा व अधिकारी यांच्यासह राजकीय नेत्यांच्या जगण्यावर काय परिणाम झाला याकडे मराठी कादंबरी लक्ष वेधते. तसेच गावाबाहेरच्या भटक्या जमाती आणि ग्रामीण जीवनाची सूत्रे हाती बाळगणारे सत्ताधारी अशा दोन्ही टोकांकडे यांत्रिकीकरणामुळे कोणते पेच निर्माण झाले याकडेही कादंबरी कटाक्ष टाकते. दुष्काळ, शेतकऱ्यांची आंदोलने, शेतीसमोरील प्रश्न, हमीभाव, शेतकऱ्यांच्या आत्महत्या, राजकारणाचे बदलते रंग, गावातील स्वार्थी राजकारण, महानगरातील बकाल जीवन, शिक्षणाची वाताहत, बेकारी, भ्रष्टाचार या सगळ्याचा जागतिकीकरणाशी अत्यंत जवळचा संबंध असल्याचे निदर्शनास येते. शहरांमध्ये भांडवलदारांकडून होत असलेले भूमिहीन मजुरांचे शोषण, टोलेजंग मॉल, टॉवर उभे राहत असताना गरिबांची होणारी ससेहोलपट देखील कादंबरी रेखाटते. फास्टफूडच्या वाढत्या गर्दीत बर्गर, पिझ्झाचा विकास आणि भाकरीचा विनाश बदलेले ग्रामीण जीवन, अर्थव्यवहारातील महत्त्वाचे घटक असलेल्या कार्पोरेट कंपन्या, त्यांच्यातील आपापसातील जीवघेण्या स्पर्धा, अनैतिक व्यवहार, आजच्या गुंतागुंतीच्या काळात जगणाच्या माणसाच्या दुभंगलेपणाचे प्रामाणिकपणे मांडचा प्रयत्न कादंबरी करते.

निष्कर्ष:

१. जागतिकीकरणामुळे मानवी जगण्यात आमूलाग्र बदल झाले.
२. जागतिकीकरणामुळे मानवी जगण्यात यंत्रे व भौतिक साधनांनी प्रवेश केला. परिणामी मानवी जीवन अधिक यांत्रिक व असंवेदनशील झाले.
३. प्रस्तुत बदलांचे प्रतिबिंब १९९० नंतरच्या कादंबरीच्या आशयसूत्रांवर पडलेले दिसते.
४. आधुनिकीकरणामुळे मराठी समूहाच्या बदलत्या मानसिकतेला कादंबरीने नेमकेपणाने पकडले आहे.
५. जागतिकीकरणामुळे महानगरीय जीवनजाणिवांमध्ये मोठे बदल झाले. मॉल, टॉवर यासारख्या नव्या संस्कृतीत सामान्य, चाळीतील व झोपडपट्टीतील गरीब सामान्य माणूस भरडला गेला. त्याचे कंबरडे मोडले.
६. जागतिकीकरणाच्या दाबामुळे कवेत न येणारे जगणे कादंबरीत तुकड्या तुकड्याच्या रूपाने येऊ लागले.
७. कादंबरीच्या आकृतिबंधावर जागतिकीकरणाचा फार मोठा परिणाम झाला नसला तरी, काही प्रयोगशील लेखकांनी तसा प्रयत्न केला.

संदर्भ:

१. ठाकूर रवींद्र : **मराठी कादंबरी समाजशास्त्रीय समीक्षा**, दिलिपराज प्रकाशन, पुणे, प्र. आ. 2007.
२. ठाकूर रवींद्र : **मराठी ग्रामीण कांदबरी**, मेहता पब्लिशिंग हाऊस.,पुणे, प्र. आ., 1993.
३. कोत्तापले नागनाथ : **साहित्याचा अन्वयार्थ,** मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे, प्र. आ., 1996.
४. कोत्तापल्ले नागनाथ (संपा.) : **साहित्य आणि समाज** (गो. मा. पवार गौरवग्रंथ), प्रतिमा प्रकाशन, पुणे, प्र. आ. 2007.
५. राजाध्यक्ष विजया : **आस्वादयात्रा**, पॉप्युलय प्रकाशन, मुंबई, प्र. आ. 2007.
६. बांदेकर प्रविण : **1980 नंतरची मराठी कादंबरी,** समाज प्रबोधन पत्रिका, ऑक्टोबर-डिसेंबर 2013.
७. खोले विलास (संपा.) : **गेल्या अर्धशतकातील मराठी कादंबरी,** लोकवाड्मय गृह, मुंबई, प्र. आ 2002.

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

जागतिकीकरण आणि मराठी नाटक

अमर शामराव सकटे
शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापूर.
इमेल : amarmarathi55@gmail.com

प्रस्तावना :

नव्वदोत्तर कालखंडात जागतिकीकरण ही संकल्पना भारतासह संपूर्ण जगात पोहचली. प्रामुख्याने भांडवली अर्थव्यवस्थेशी संबंधित असणारी ही संज्ञा बाजारक्षेत्राच्या जगाला कवेत घेणाऱ्या अनिर्बंध विस्तारवादी प्रवृत्तीची आहे. सन १९९० नंतर भारतीय अर्थव्यवस्थेने कात टाकली. नवे आर्थिक धोरण स्वीकारल्याने भारताचे चित्र बदलले. भारतात जागो-जागी मॉल, जाहिरातक्षेत्र, गगनचुंबी आणि उतुंग अशा इमारती, फाईव्ह स्टार, सेव्हेन स्टार हॉटेल्स, मल्टीप्लेक्स थिएटर, चैनीच्या वस्तूंची मोठी बाजार पेठ, टि.व्ही. चॅनेल्स यांची भरमसाठ वाढ, माहिती, तंत्रज्ञानाची क्रांती, मोबाईलचे आगमन, बदलते व्हर्च्युअल विश्व इत्यादी नव-नवीन बदल समाजात होऊ लागले. मोबाईल, इंटरनेट आणि अलीकडच्या काळात स्मार्ट फोन मधील अनेक फंक्शन यांनी संपूर्ण भारत आणि भारतातील तरूणाई व्यापून टाकलेली दिसते. हे सगळे खाजगीकरण, उदारीकरण, जागतिकीकरण यांचे प्रातिनिधीक स्वरूप दिसते.

१९९० नंतर जागतिकीकरणाचे पडसाद मराठी साहित्यात पडू लागले. विज्ञान साहित्य क्षेत्र व्यापक बनले. कथा, कादंबरी, कविता याचबरोबर नाटक आणि चित्रपट या माध्यमातून ही जागतिकीकरणाचे प्रतिबिंब पडू लागले. जागतिकीकरणाच्या जाणिवा, संवेदना कवितेप्रमाणेच या प्रयोगशील साहित्य प्रकारातूनही प्रकट होऊ लागलेल्या जागतिकीकरणाचा मूलस्त्रोत असणारी भांडवली व्यवस्था, बिल्डर माफिया यांचे मध्यमवर्गीय माणसाच्या आयुष्यातील अतिक्रमण, जाहिरातक्षेत्र यांना सर्वसामान्यांवर घातलेली भुरळ जागतिकीकरण आणि विस्तारीकरणामुळे विस्थापित, झोपडपट्टीतील लोकांची दयनीय अवस्था या सगळ्या परिणामांचा वेध मराठी नाटकातून नाटकाकार घेऊ लागले. अशा नाटकांची आणि जागतिकीकरणाची चर्चा प्रस्तुत शोधनिबंधात करण्यात आली आहे.

जागतिकीकरणाचे स्वरूप आणि मराठी नाटक :

आजचा कालखंड हा जागतिकीकरणाचा कालखंड आहे. जगातल्या विविध जाती, जमाती, प्रजाती विविध भाषा संकृती, रूढी परंपरा या सगळ्या गोष्टींवर एक निश्चित असा परिणाम झाला आहे. हा परिणाम केवळ संस्कृतीपुरताच मर्यादित राहिलेला नसून त्याचे सामाजिक आर्थिक परिणामही मोठ्या प्रमाणावर दिसू लागेल आहेत. नव-वसाहतवाद, बहुसंस्कृतीवाद, स्त्रियांचे प्रश्न, जातीधर्माच्या उतरंडी, भारत व इंडिया अशी दोन भागात झालेली देशाची विभागणी रिॲलिटी आणि व्हर्च्युअल रिॲलिटी, शैक्षणिक धोरण, असमानता, विषमता, माध्यमांचे प्राबल्य, नैतिकता, अनैतिकता राजकारणातील गुन्हेगारी, दहशतवाद, भाषा, प्रांतवाद असे कितीतरी प्रश्न पुन्हा नव्याने समोर येत आहे. विशेषत: जेव्हा जेव्हा संक्रमणाचा काळ येतो तेव्हा अशा चर्चा अधिक महत्वाच्या आणि गरजेच्या असतात. या सगळ्या वर्तमानाचे वाचन करावे लागते. काल आणि आज, इतिहास आणि वर्तमान यांचा वेध घेणे महत्वाचे ठरते. नव्वदोत्तर कालखंड हा नव्या वळणाचा आणि संक्रमणाचा कालखंड म्हणून समोर येतो. विसाव्या शतकातील शेवटचे दशक हे क्रांतीचे दशक म्हणावे लागेल. मराठी साहित्याची चर्चा करत असताना हा कालखंड निश्चितच जास्त महत्वाचा ठरतो. खऱ्या अर्थाने जागतिकीकरणाचे दृष्य परिणाम या कालखंडात दिसू लागले. त्याचे बरे वाईट परिणामही समोर आले. माध्यमक्रांतीमुळे झालेला अमुलाग्र बदल, इंग्रजीचा वाढलेला प्रभाव देश-प्रदेशाच्या सिमा ओलांडून नव्यानेच समोर आलेल्या चॅनेल संस्कृतीमुळे विविध संस्कृती, भाषा समूह, बोलीभाषा यांची सरमिसळ या कालखंडात मोठ्या प्रमाणात झाली. कधीकाळी परकीयांची असलेली इंग्रजी भाषा जगाची भाषा होऊ लागले. संगणक क्रांतीमुळे तर तिची अपरिहार्यता वाढतच गेली. दुसरीकडे जगातील निम्म्या भाषा मृत्युपंथाला लागल्या आहेत. ६००० पैकी ३००० भाषा आजारी आहेत. त्या लवकरात लवकर मृत होतील. सध्या जगात ८० भाषा अशा आहेत की ज्यांचा प्रत्येकी एक भाषक जिवंत आहेत. मानवी संस्कृतीचा इतिहास तपासून पाहिला तर असे लक्षात येईल की माणसाला संज्ञापन माध्यमे सहजासहजी मिळालेली नाहीत. हजारो वर्षापूर्वी माणसाला पहिले संज्ञापन माध्यम मिळाले. वाणी, तेव्हापासून तो बोलयला शिकला. त्यानंतर तो लिहायला शिकला. आता तिसरे संज्ञापन माध्यम १९९१ मध्ये समोर आले आहे ते म्हणजे वर्ड, वाइल्ड, वेब (www) हा शोध लागला त्याची एकच भाषा आहे इंग्रजी. हे आपल्या भाषासमोरील सर्वात मोठे आव्हान आहे. याच पार्श्वभूमीवर आपापल्या नववसाहतवादाकडे पाहिले पाहिजे. इतिहास व वर्तमानाचे पुर्न:वाचन करताना हे सगळे आपल्यासमोर असणार आहे. जागतिकीकरणाच्या 'ग्लोबल गावाच्या' पार्श्वभूमीवर तर ते अपरिहार्य झाले आहे. त्यामुळे साहित्याची समकालीन छाननी होणे या टप्प्यावर जास्त गरजेची आहे. अशी छाननी मराठी साहित्याने मराठी नाटकाच्या माध्यमातून केलेली आहे. त्याचबरोबर या वाड्मयीन छाननीतून उभा आडवा छेद मराठी साहित्यिक आणि नाटककार घेऊ लागले. प्रसिद्ध लेखक भालचंद्र नेमाडे यांच्या साहित्याने 'टीका स्वयंवर' या कादंबरीला साहित्य अकादमीच परितोषिक लाभलं आणि त्यांचीच कादंबरी 'हिंदू–एक जगण्याची समृद्ध अडगळ' या कादंबरीस ज्ञानपीठ पुरस्कार लाभला. १९९१ ते २०१५ या दोन साहित्यिक टोकातच मराठी समाजाचे वर्तमान साहित्यात चित्रित झालेलं आढळत. कथेच्या क्षेत्रात जयंत पवारांच्या 'फिनिक्सच्या राखेतून उठला मोर' वर्तमान कथेच सामर्थ्य सिद्ध करतो. अलीकडच्या काळातील प्रज्ञा दया पवार, निरजा, इंद्रजीत भालेराव, प्रकाश होळकर यांच्या कविता स्त्री व शेतकरी यांच्यावर जागतिकीकरणाचा होत असलेला प्रभाव स्पष्ट करताना दिसते. मराठी कवितेच्या बाबतीत विचार करत असताना जागतिकीकरणाचे बरेवाईट परिणाम सर्व प्रथम महानगरात जाणवू लागले. अशा स्वरुपाची कविता आधी महानगरीय कवीने लिहिण्यास सुरुवात केली. त्यानंतर जागतिकीकरणाचे वारे जस-जसे खेड्या-पाड्यापर्यंत जस-जसे घुसत गेले. तस-तसे ग्रामीण भागातील कवींनीजागतिकीकरणाचे विदारक रूप कवितेत मांडायला सुरुवात केली. त्यामध्ये श्रीकांत देशमुख, इंद्रजीत भालेराव, संतोष पद्माकर यासारख्या कवींनी कृषी जीवनातील सांस्कृतिक व

सामाजिक वेध घेऊन जागतिकीकरणाची चिरफाड केलेली दिसून येते. कथा, कादंबरी, कवितेप्रमाणेच मराठी नाटकातून जागतिकीकरणाचे चित्रण येऊ लागले. नव्वद नंतरच्या कालखंडात बाजारकेंद्री अर्थव्यवस्थेने सर्वसामान्य माणसाला ग्राहक बनवण्याच्या उद्देशाने काबीज केलेली सर्व साधने/माध्यमे (जाहिराती, प्रसार माध्यमे, भडक रिॲलिटी शो, भडक अवॉर्ड शो) यामुळे निर्माण झालेला सांस्कृतिक दहशतवाद हिंसाचार, असुरक्षितता, सामाजिक पडझड, सत्ता संघर्ष यांचे चित्रण नव्वदोत्तर मराठी नाटकामधून होऊ लागले. बाजारकेंद्री व्यवस्थेमुळे सर्वसामन्यांचे जगणे जागतिकीकरणामुळे विखंडीत झालेल्या वास्तवाच्या जाणिवा, संवेदना तशाच विखंडीत शैलीत मराठी नाटक वर्तमानाचा वेध होऊ लागले. त्यासाठी रंगभूमीवर नव-नवे प्रयोग होऊ लागले. नाट्यलेखनशैलीत आणि सादरीकरण तंत्रात विलक्षण बदल होऊन संहिता आणि प्रयोगाचे प्रयोजन केले जाऊ लागले. विषय, आशय, अभिव्यक्तीच्या नव्या शैली नाटकाच्या माध्यमातून निर्माण होऊ लागल्या. त्यापैकी श्याम मनोहर, मकरंद साठे, प्रशांत दळवी, शफाउत खान आदि काही नाटकरांनी नाटक व एकांकिकामधून जागतिकीकरणाचे परिणाम टिपण्याचा प्रयत्न केला आहे.

'नव्वदोत्तरी कालखंडाचे थेट परिणाम कविता आणि नाटकांमधून अधिक दिसतात. कथा-कादंबरीत तुलनेने कमी उमटले आहेत.' असे मत एका मुलाखतीत जयंत पवार यांनी व्यक्त केले आहे. जयंत पवार यांचे 'अधांतर' 'माझ घर' व 'टेंगशेच्या स्वप्नात ट्रेन' ही नाटकं नव्वदोत्तर कालखंडातच लिहली गेली. अर्थात नव्वदोत्तर कालखंडात हा आत्ताच्या काळापर्यंत ताणता येतो किंवा त्याचा आताच्या काळापर्यंत विचार करता येतो. पण १९९० ते २००० पर्यंतचा किंवा २०२० पर्यंतचा कालखंड हा वेगळा आहे यात कालखंडीय भेद आहे. पवार यांनी 'टेंगशेच्या स्वप्नात ट्रेन' आणि 'डेंजर वारा' ही नाटक एकविसाव्या शतकाच्या पहिल्या दशकात लिहली आहेत. नव्वदीच्या कालखंडातलं देशातलं जे अराजक आहे. ते म्हणजे रथयात्रा निघणं, बाबरी मशिद तोडणं, त्यानंतरचं उदारीकरण, गॅट करार, आद्योगिकीकरणाचे बदलेले आयाम माध्यमांचा लोंढा इंटरनेट, मोबाईल असं एकेक करत माणसाच्या जीवनाचे डिजिटलीकरण झाले. हे सगळे बदल सामाजिक, राजकीय, आर्थिक असे आहेत. हे सगळे बदल बघता बघता सर्वसामान्य माणसाच्या उंबरठ्याजवळ आले आणि ते थेट मानगुटीवरच बसले. पंरतु या बदलाला सामोर जाण्यावाचून माणसाला गत्यंतर राहिलेलं नाही.

जागतिकीकरणाचे थेट परिणाम जरी प्रथम महानगरावर झाले असले तरी नतंरच्या काळात शेतकऱ्यांच्या आत्महत्येपर्यंत पोहचलेल आपणास दिसते. जागतिकीकरणाच्या प्रक्रियेमुळे किंवा अतिरेकामुळे या कालखंडातील माणूस विकल, परात्म, असहाय झाला. तरीही तो एका भ्रमिष्ट, भ्रामक वास्तवात गुंतून पडला. आणि आता ते त्याच्यावर लादलं गेलं आहे. माणसांनी त्यातच अडकून पडावं अशी सक्तीची परिस्थिती निर्माण करण्यात भांडवली व्यवस्था यशस्वी झालेली आपणास दिसून येते. हे नव्वदोत्तरी समाजाचं, संस्कृतीचं वास्तव आहे. माणसाचे जगणं बदलल्यामुळे माणसाचे संवेदनासुद्धा बदलत गेल्या. बदलत्या परिस्थितीनुसार माणसाला 'मोल्ड' व्हावं लागतं त्याला तोंड देण्यासाठी नवी 'स्किल्स' वापरावी लागतात. या सगळ्यांच्या परिणामातून त्याचे हर्षविमर्श नव्या परिणामांनी निर्माण झाले आणि हतबलताही नवीच आली. या कालखंडाचा आणखी एक विशेष म्हणजे संपर्क माध्यम माणसांच्या आयुष्याचा महत्वपूर्ण भाग बनली. ती एकमेकांशी जोडली गेली. एकमेकांशी कनेक्ट असणं ही काळाची अतिरेकी गरज बनली. यात माणसाची व्यावहारीक सोय होती. कारण **'अर्थकारण'** जगण्याच्या केंद्रस्थानी आलं पण एकमेकांशी कनेक्ट असणं ही जशी काळाची गरज बनली. तशी ती प्रत्येकाला सक्तीची करून त्यांच्या माथ्यावर मारण्यात आली. या 'कनेक्ट' होण्याच्या प्रक्रियेत कृत्रिमता आली. माणसांची नाती **'आर्टिफिशियल'** बनली. माणसाला जशी जगाशी कनेक्ट होण्याची गरज असते तशीच त्याला डिस्कनेक्ट होण्याचीही गरज असते. या मानसिक गदारोळातून जगापासून वेगळ होऊन स्वत:शीच संवाद साधण्याची गरज माणसाला वाटू लागली. अशा या माणसाच्या अवकाशाचा या काळाने मोठा संकोच केला. असे प्रस्तुत कालखंडातील नाट्याभिव्यक्तीतून दिसते.

जागतिकीकरणाच्या प्रक्रियेच्या कालखंडातील म्हणजे १९९० नंतरच मराठी नाटक हे आधीच्या कालखंडात रंगभूमीवर आलेल्या नाटकांपेक्षा वेगळ आहे. जयंत पवार म्हणतात, **"ऐंशीच्या दशकातल नाटक खुरटलं होतं. या संपूर्ण दशकात एलकुंचवाराच" वाडा चिरेबंदी श्याम मनोहरांची 'यकृत' आणि 'हृदय आणि शफाअत खान यांचे 'भूमितीचा फार्स' एवढीच नाटक काय ती वेगळी.** परंतु १९९० च्या उदयाला दोन महत्वाच्या घटना या देशात घडल्या एक म्हणजे रथयात्रा आणि मंडल आयोगाची अंमलबजावणी या ऐतिहासिक घटनांचा जागतिकीकरणाशी संबंध जोडता येत नसला तरी या दोन घटनांनी धार्मिक आणि जातीय ध्रुवीकरणाला वेग आला. त्याचे प्रदीर्घ असे पडसाद आगामी काळावर पडले. १९९२ साली जागतिकीकरणाचा अंमल सुरु झाला. या अंमलबजावणीनंतर आधीचे आर्थिक तणाव आणि वर्गीय संघर्ष ही सुरु झाला. जस-जशी जग जवळ येण्याची प्रक्रिया सुरु झाली तस-तशी आपापली प्रादेशिक अस्मिता मिरवण्याची फाजील स्पर्धा सुरु झाली. यातून धार्मिक, वर्गीय आणि प्रादेशिक अस्मिता अत्यंतिक टोकदार झाल्या. या सगळ्या सामाजिक, सांस्कृतिक, राजकीय घुसळणीची वेगवेगळी रूप दाखवणारी नाटक मराठी रंगभूमीवर आली. या काळातील उलथा-पालथ जसे की जात-वर्ग संघर्ष, आर्थिक पडझड, धार्मिक आणि प्रांतिक अस्मितेचे नवे आयाम, लिंगभाव विषमतेला केलेले सवाल तंत्र आणि माध्यमाच आक्रमण या सगळ्याच्या परिणामातून हिंसा जन्माला आलेली दिसून येते. नवनैतिकतेने किंवा नैतिकतेने उभे केलेले प्रश्न यातून बदलले मानवी नाते संबंध याचे दर्शन घडवणारी **'किरवंत', 'कोण म्हणत टक्का दिला', 'चार चौघी' 'सावल्या' 'डॉक्टर तुम्ही सुद्धा राहिले दूर माझे घर', 'अधांतर', 'गांधी-आंबेडकर', 'चाहूल', 'शोभायात्रा', 'ज्याचा त्याचा प्रश्न', 'येळकोट', 'ठोंब्या', 'दर्शन', 'माझं घर' ,'ढोलताशे', 'साठेच काय करायचं', 'बुद्धिबळ आणि झब्बू' 'सूर्य पाहिलेला माणूस', 'रणांगण'** ही महत्वाची गंभीर नाटक निर्माण झाली वरील प्रत्येक नाटकातून एक राजकीय आणि सामाजिक स्टेटमेंट होत. इतकी आशयघन नाटक त्या काळाच प्रतिबिंब घेऊन प्रकट झाली. जागतिकीकरणाने बाजारकेंद्री धोरणांचा उदघोष करत व्यक्ती या एककाला स्वायत्तता द्यायला सुरुवात केली आणि समूहाने वापरणाऱ्या गटांची नख काढून घेतली, खच्चीकरणाची प्रक्रिया सुरु झाली. या समूहाला रंगमंचावर आणत नाटकाने जागतिकीकरणाच्या आक्रमणाला थेट प्रतिक्रिया दिली. या दृष्टीकोणातून जागतिकीकरणोत्तर मराठी नाटकांचा आढावा घेत असताना जयंत पवार यांच्या गाजलेल्या काय डेंजर वारा सुटलाय या नाटकाचा निर्देश करण मौलिक ठरते. या नाटकात जागतिकीकरणोत्तर कालखंडात निर्माण झालेल्या व्यक्तीगत स्पर्धेतून अतिक्रमण, स्थलांतर आणि विस्थापन या त्रिसूत्रीत फसलेल्या माणसांचे चित्रण येते. अनिर्बंध शोषणाच्या आड येण्याची कोणाची हिमंत होऊ नये म्हणून सुपारीनिष्ठ

दहशतवाद, अतिरेकी कारवाया आणि दहशतवादाच्या शोषक अशा मार्गाने आपल्या उन्मादाचा ठसा कशाप्रकारे उमटवतो. सामान्य माणसाच आयुष्य भितीपोटी कसं संकोचून टाकतो आणि शेवटी त्यान जीवापलिकडे जपलेल्या अस्तित्वाच स्वत्वही कसे शोषून घेतो याच नाट्यत्म दर्शन जयंत पावर करतात. काळाच्या उदरातून वाहत असणाऱ्या या शोषणाच्या स्त्रोताच सूचन या नाटकाचे आशयसूत्र करताना आपणास दिसते. प्रस्तुत नाटकामध्ये स्क्रिनचा केलेला वापर परिणामकारक आहे. निवेदकाचं अंतर्मुख-बहिर्मुख होऊन केलेलं स्वगत, दृश्यातंर्गत दृश्यांचा वापर आदि नाट्यात्म तंत्राच्या रंगचिन्ह निर्मितीसाठी केलेला उपयोग लक्षणीय आहे. त्यातून जागतिकीकरणाची प्रखरता दिसून येते.

जागतिकीकरणोत्तर लेखकाचं /वाचकाचं सांस्कृतिक संवेदन गुंतागुंतीचे झाले आहे. माध्यमांनी तो गुंता अधिक व्यापक केलेला आहे. प्रचंड गतीनं बदलणार वास्तव त्याच्यावर मर्यादा घालत आहे. मल्टीमिडीयाचा वापरही आहे. एकीकडे जागतिकीकरणाने निर्माण केलेलं हायटेक विश्व, सुबत्तेची व्हर्च्युअल रिॲलिटी आणि दुसरीकडे सामाजिक स्तरातील शेवटच्या पायरीवर राहणाऱ्यांच्या संख्येत होणारी वाढ, त्यामुळे वाढत जाणारी हिंसा, दहशत, हायफायवाल्यांचे मुखवटे आणि विघटीत व्यक्तीमत्व यामुळे सामान्य माणसाचा झालेला निसरडा जीवनाशय हे नाटक प्रस्तुत करते. या नाटकाचे आणखी एक वैशिष्ट्य म्हणजे जयंत पवार यांनी वसंत आबाजी डहाके, नामदेव ढसाळ, अरुण कोलटकर यांच्या कवितांच्या चपखलपणे वापर केलेला आहे. ते जागतिकीकरणाच्या परिमाणातून नाट्यगत संदर्भ कवितांच्या अंशाना रंगचिन्हांचा आयाम प्राप्त करून देतात. नाटकाची दृश्यात्मकता वाढवतात आणि यातील कवितांच्या आशयाची घनता वाढवतात. अशा प्रकारे जागतिकीकरणोत्तर मराठी नाटकांतून जागतिकीकरणाचे विदारक रूप, सामाजिक वास्तवाचं विरूपीकरण, सामाजिक संदर्भाची व समूहांच्या प्रश्नांची मांडणी नाट्यतंत्राच्या विविध आविष्कारातून जयंत पवार यांनी केलेली दिसून येते.

समारोप :

नाटकासह संपूर्ण साहित्याचे प्रयोजन हे चिरंतन सत्याचा शोध घेणे. सामाजिक, राजकीय आणि सांस्कृतिक घटनांचा समकालीन वेध घेण्याचा प्रयत्न मराठी नाटकाने केलेला आहे. जागतिकीकरणाच्या प्रक्रियेमध्ये मानवी जीवनाला त्याच्या अस्तित्वाला नवी परिमाणे लाभली. या परिमांणाचे सूक्ष्म निरीक्षण करून विचार व्यासंगातून नव्वदोत्तर कालखंडातील नाटककारांनी आपल्या नाट्यकृतींच्या आधारे समकालीन घटनांचा वेध घेऊन जागतिकीकरणाचे मानवी जीवनावर आणि मानवी संस्कृतीवर झालेले दूरगामी परिणाम लक्षात घेऊन त्यांचा अन्वयार्थ शोधणारे दर्जेदार नाट्यलेखन जागतिकीकरणोत्तर कालखंडात केलेले दिसून येते.

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोधनिंबधाच्या चर्चेवरून असे लक्षात येते की,

१. १९९० नंतरच मराठी नाटक साठोत्तरी मराठी नाटकापेक्षा आणि ऐंशीच्या दशकातल्या नाटकापेक्षा वेगळे परिमाण घेऊन जन्माला आलेले आहे.
२. जागतिकीकरणाचे पडसाद कथा, कविता, कादंबरी या साहित्यबरोबरच मराठी नाटकांमधूनही ठळकपणे जाणवतात.
३. या कालखंडात शफाअत खान, मकरंद साठे, संजय पवार, प्रेमानंद गज्वी आणि जयंत पवार यासारख्या प्रतिभावान नाटकाकरांनी आपल्या नाट्यकृतीमधून जागतिकीकरणोत्तर कालखंडाची चिकित्सा केलेली दिसून येते.
४. विज्ञान साहित्यक्षेत्र व्यापक बनले.
५. जागतिकीकरणाच्या प्रक्रियेमुळे, त्यांच्या अतिरेकामुळे मराठी साहित्य क्षेत्रामध्ये जागतिकीकरणाचे युग सुरु झाले.

संदर्भ :

१. समकालीन साहित्यर्चा - संपा. मनोहर जाधव, श्रीकांत देशमुख.
२. समीक्षा मीमांसा - गंगाधर पाटील
३. काय डेंजर वारा सुटलाय (लेख) - प्रभाकर बागले, (खेळ) जून २०१३
४. नव्वदोत्तरी रंगभूमीचं नवं नाटक - जयंत पवार अतिरिक्त में २०१२
५. काय डेंजर वारा सुटलाय। -
६. समकालीन वास्तवाचे प्रभावी नाट्यदर्शन - रमेश साळुंखे (समाज प्रबोधनी प्रत्रिका,जाने-फेब्रु.-मार्च २०२०)

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly
ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.2 Issue.7 Mar - Apr 2022

समकालीन पर्यावरण आणि १९९० नंतरचे मराठी नाटक

प्रा.स्मिता कोंडिबा कालभूषण
सहाय्यक प्राध्यापक, मराठी विभाग, आर्टस् अँण्ड कॉमर्स कॉलेज, नागठाणे
ई.मेल :smitakalbhushan@gmail.com

आपल्या मराठी वाङ्मयाचा इतिहास पाहिला तर प्रारंभी पौराणिक आणि ऐतिहासिक नाटके तुलनेने जास्त होती. पण १९२० नंतर अशा नाटकांचे प्रमाण कमी झाले. सामाजिक स्थितीगतीची अभिव्यक्ती नाटकातून व्यक्त होऊ लागली. भोवतालची सामाजिक, सांस्कृतिक, राजकीय आणि आर्थिक परिस्थिती किंवा त्यातील स्थित्यंतराचे पडसाद मराठी रंगभूमीवर उमटलेले दिसतात. मराठी नाटक अधिक समाजाभिमुख झालेले दिसते. या काळाच्या केंद्रस्थानी समाजकारण, सामाजिक जाणिवा दिसतात. सामाजिक प्रश्नांचा 'नाटक' माध्यमातून विचार वाढीस लागलेला दिसतो. आज जागतिकीकरणाची चर्चा संपूर्ण जगभर मोठ्या प्रमाणावर चालू आहे. कारण याचा परिणाम समाजातील सर्वच क्षेत्रावर जाणवू लागला आहे. त्यामुळे साहित्य ही त्याला अपवाद असू शकत नाही. कोणतेही साहित्य हे काळाचे अपत्य असते. सर्वच वाङ्मय प्रकारांमध्ये जीवनानुभव आणि समाजजीवन व्यक्त करण्याचे सामर्थ्य असते. पण नाटक या साहित्य प्रकारात समाजमनाला थेट भिडण्याचे सामर्थ्य अधिक असते.

१९९० नंतर जागतिकीकरण आले आणि जग एक खेडे बनले. जागतिकीकरणाचा परिणाम सर्वच क्षेत्रावर झाला. सामाजिक,सांस्कृतिक,आर्थिक, राजकीय, धार्मिक बदल घडून आले. यांचे पडसाद मराठी रंगभूमीवर उमटणे स्वाभाविकच होते. जागतिकीकरणाचे पडसाद मराठी रंगभूमीवर उमटले.नव्वदच्या दशकातील नाटकांची नावे जरी बघितली तरी आपणास कल्पना येते. सभोवतालचे गुंतागुंतीचे वातावरण, समाजजीवन, विविध सामाजिक समस्या त्यामुळे निर्माण होणारी अस्वस्थता लेखकांना अस्वस्थ करू लागली. समकालीन प्रश्नांची नोंद घेण्याचे नवे भान लेखकात निर्माण झाले, आणि व्यक्तिगत संघर्षाच्या पातळीवर विकसित होत चाललेल्या मराठी नाटकाने बदलते वळण घेतले. मराठी पारंपरिक नाटकाचा स्वभाव मराठी रंगभूमीची परंपरा यातून नवतेचा विचार करताना कौटुंबिक, भावनिक, संघर्षात अडकलेले नाटक सामाजिक जाणिवा घेऊन पुढे आले.त्यामुळे १९९० नंतरच्या मराठी नाट्यकृतीतून आविष्कृत झालेल्या सामाजिक पर्यावरणाचा विचार आपणप्रस्तुत शोधनिबंधात करणार आहोत.

साहित्य आणि समाज यांचा परस्पर संबंध :

साहित्य आणि समाज यांचे अतूट नाते आहे.तत्कालीन समाज जसा असतो त्याप्रमाणे त्या काळातील साहित्य आणि साहित्य व्यवहार हा त्यानुरूप आकार धारण करीत असते. साहित्य निर्मितीमध्ये 'समाज' हा अत्यंत महत्त्वाचा घटक असतो. त्यामुळे समाजाचाविचार केल्याशिवाय साहित्याचा अर्थ कळत नाही. कोणत्याही साहित्यकृतीचा निर्मितीसंदर्भ लेखकाचा वर्तमान हा असतो. त्याच्या सभोवतालची सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थिती त्याला निर्मितीसाठी उद्युक्त करते. कोणताही लेखक विशिष्ट स्थळी, विशिष्ट काली, विशिष्ट समाजात जन्माला येतो व जगत, वाढत, विकसित होतो. त्याच्या विचारांवर व भावविश्वावर सभोवतालच्या सामाजिक परिस्थितीचे अनुकूल-प्रतिकूल संस्कार होत असतात. या संस्कारांपासून त्याची सुटका होत नाही. याच संस्काराचे पडसाद त्याने लिहिलेल्या साहित्यातून देखील उमटत असतात. म्हणूनच म्हटले जाते साहित्य आणि समाज यांचं अतूट नातं आहे.

समकालीन पर्यावरण संकल्पना व स्वरूप :

मराठी शब्दबांधातील पर्यावरण या शब्दाच्या व्याख्येनुसार सजीवांच्या नैसर्गिक परिसरात पर्यावरण असे म्हणतात. वैज्ञानिक परिभाषिककोशानुसार पर्यावरण या संज्ञेत वनस्पती अथवा प्राणी ज्या नैसर्गिक परिसरात जगतात, वाढतात, तेथील हवा, पाणी, जमीन, पाणी, इतर सजीव, पर्जन्यमान, उंची, तापमान इत्यादी सर्वांचा समावेश होतो. तसेच समकालीन सामाजिक पर्यावरण म्हणजे मानवासभोवतीचे सर्व मानवनिर्मित भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आणि राजकीय घटक यातील परस्परसंबंध आणि आंतरक्रिया यातून तयार होणाऱ्या सर्वंकष आवरणास समकालीन पर्यावरण असे संबोधण्यात येते.

मानव नैसर्गिक व सामाजिक अशा दोन प्रकारच्या पर्यावरणात वावरत असतो. अर्थात सामाजिक पर्यावरण ही परिपूर्ण स्वतंत्र संकल्पना नसून ती नैसर्गिक पर्यावरणावर आधारित आहे. त्यामुळे स्थळकालपरत्वे तीत फरक आढळतो. नैसर्गिक पर्यावरण जसे गतिशील आहे. तसेच सामाजिक पर्यावरणही गतिशील आहे. त्यात सातत्याने बदल होत असतात समकालीन सामाजिक पर्यावरणाचे भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आणि राजकीय असे प्रमुख चार घटक मानले जातात. या चारही घटकांचे पडसाद साहित्यात उमटत असतात मराठी नाटक रंगभूमी देखील त्याला अपवाद नाही.

१९९० नंतरच्या नाटकातील समकालीन पर्यावरण:

१९९० नंतर जागतिकीकरण आले आणि भारताचे चित्र बदलायला सुरुवात झाली. आर्थिक खाजगीकरण, उदारीकरण, जागतिकीकरण समस्या घेऊन आपल्यापुढे उभे राहिले आहे. आंतरराष्ट्रीय स्तरावर भारताचे चित्र बदललेले, ग्रामीण भारताचे प्रश्न, धर्मवाद्यांनी मांडलेला उच्छाद, पाण्याचा प्रश्न, जातीय दंगली, भ्रष्टाचार, वाढती बेकारी, वाढते औद्योगीकरण, वाढते शहरीकरण, शेतकऱ्यांचे प्रश्न, वाढते बाजारीकरण, शिक्षणाचे वाढते बाजारीकरण, राजकीय स्थित्यंतरे, दळणवळणाची साधने, वाहतुकीची साधने, करमणुकीची साधने,कुटुंबसंस्था, जातीव्यवस्था, सामाजिक संस्था, शिक्षण संस्था, धार्मिक विचार, धार्मिक रीतिरिवाज, राज्यव्यवस्था, राज्यघटना, प्रशासकीय यंत्रणा, संरक्षण व्यवस्था, परराष्ट्रीय धोरण, परराष्ट्रीय संबंध या सर्वच गोष्टींमध्ये परस्पर आंतर - संबंध असून त्यांच्यात आंतरक्रिया होत असतात. यातूनच समाज घडत असतो. यासर्वांचे परिणाम लेखकाच्या लेखणीवर होत असतो. त्यामुळे १९९० नंतरच्या नाटककारांच्या लेखणीवर जागतिकीकरणाचा परिणाम होउन नाच्यलेखनातून त्याचे

पडसाद उमचलेले दिसतात. इतर वाङ्मयप्रकारांच्या तुलनेत नाट्यलेखनातून १०९० नंतरच्या समकालीन पर्यावरणाचे पडसाद कमी उमटलेले आहे. पण जे काही नाट्यलेखन या काळात झाले आहे त्याची नोंद महत्वाची आहे.

नव्वदोत्तरी नाट्यलेखन :

जागतिकीकरणामुळे देशात नवे विचार व रुजू लागले. समाजात आणि कुटुंबात पूर्वीपेक्षा भिन्न असे चित्र दिसू लागले. सामाजिक विषमतेतून जीवनात येणारे संघर्ष जीवनातील दांभिकता, भ्रमनिरासहोउन जगण्यात आलेली निर्थकता, समुहाचे विघटन, चंगळवाद या आशयाचे चित्रिकरण नाटकातून होऊ लागले.'वाडा चिरेबंदी' सारख्या नाटकातून भारतीय समाजात कुटुंबव्यवस्थेला परंपरा आहे. कुटुंब व्यवस्थेची अवस्था वाड्या सारखी झाली आहे. बाहेरून जरी चिरेबंदी दिसत असली तरी ती आतून विरविरीत झाली आहे. एकत्र कुटुंब व्यवस्था ढासळत चालली आहे. परंतु आपण ती सावरण्याचा प्रयत्न करीत असतो. यातून समस्या कशा निर्माण होतात हा आशय या नाटकातून आला आहे.'बामनवाडा' सारख्या नाटकामधून आंतरजातीय विवाहास स्थान प्राप्त झाले आहे. जातिव्यवस्थेचे निर्मूलन झाल्याशिवाय या देशाची प्रगती होणार नाही आणि भारतीय एकात्मतेला व राज्यघटनेतील तत्वाला खऱ्या अर्थाने परिपूर्णता येणार नाही. समता, न्याय आणि माणुसकी या मूल्यांच्या आचरणामुळे सामाजिक ऐक्य होऊ शकेल. असा आशावाद या नाटकातून आलेला दिसतो.जागतिकीकरणातले मराठी नाट्य लेखन जागतिक विषयावर अल्प झालेले दिसून येते. जागतिकीकरणावर बेतलेले चं. प्र. देशपांडे यांचे 'इराक' हे नाटक आहे. यात जागतिक दहशतवाद, अमेरिकेचे वर्चस्ववादी धोरण आले आहे. तसेच प्रेमानंद गज्वी यांच्या 'व्याकरण' नाटकातून जागतिकीकरणामुळे अमेरिका की एकमेव महासत्ता उरली आहे या नाटकातील आशया मध्ये भारताला धरण बांधण्यासाठी अमेरिका मदत करत आहे. पण भविष्यात या धरणावर अमेरिकेची सत्ता कशी प्रस्थापित होईल. तिसरे महायुद्ध पाण्यावरून होईल. भारताला कदाचित अमेरिकेकडून पाणी विकत घ्यावे लागेल. "पाणी निसर्गाची देन, पण तेही विकत देण्याची नि घेण्याची सवय लावली या दुष्टांनी. धरणे बांधली जातील , कालवे काढले जातील, नद्या जोडल्या जातील. अमेरिकाच सर्व जोडून देईल, पण सारा खर्च वसूल होईपर्यंत पाण्याचा थेंबन् थेंब वेछीस धरला जाईल." या संवादातून श्रीमंत राष्ट्राकडून गरीब राष्ट्रांची होणारी गळचेपी दर्शविलीआहे. असं होता कामा नये म्हणून चाललेला संघर्ष 'व्याकरण' नाटकातून आला आहे.

जागतिकीकरण,खाजगिकरण आणि आर्थिक उदारीकरण याच्यामुळे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक क्षेत्रात तसेच भाषा, मानवी नाते संबंध, नैतिक मूल्ये यात झालेला प्रचंड बदल मराठी नाटकांचा विषय झालेला आहे. मकरंद साठे, अतूल पेठे या लेखक, दिग्दर्शकांनी जागतिकीकरण आणि खुली अर्थव्यवस्थेमुळे भारतीय जनातील बहुसांस्कृतिकता कशी नष्ट झाली हे सलग तीन नाटकातून सादर केले.'ठोब्या', 'गोळायुग डॉट कॉम' आणि 'चौक' या पैकी ठोब्यामध्ये संगणक युग, विज्ञान, तंत्रज्ञान यांच्याशी जुळवून न घेता आल्यामुळे सामान्य माणसाची होणारी कुंचबना आणि त्यांची जगण्याची शोकांतिका चित्रित झाली आहे. त्यांच्याच 'गोळायुग डॉट कॉम' नाटकात आणखी एका नव्या युगाची कल्पना मांडली आहे. या आधुनिक काळाने केलेली गोची, तुटलेपण, नाकारलेपण यामुळे आलेलं सैरभैरपण 'गोळायुग' मध्ये घेतले आहे. १९९० नंतर खउजाच् वार वाहू लागले आणि त्यामंतर प्रत्येकाच्या अस्मिततेचा, अस्तित्वाचा, ओळखीचा प्रश्न निर्माण झाला. एकूणच Identity Crisisवर सर्वत्र मोठ्याप्रमाणात चर्चा सूरु झाली. हाच प्रश्न मांडणारेमकरंद साठे लिखीत 'चौक'या नाटकात व्यक्ति, संस्था आणि समाजाचा झालेला ऱ्हास चित्रित केला आहे. आपल्यालाआपला शत्रू ओळखता येत नाही. त्यामुळे लढायचे कोणाशी असा प्रश्न माणसांना पडू लागला आहे.डॉ.सतिश पावडे लिखित'ढिगारा'या नाटकात जागतिकीकरणाने मानवी मूल्य, मानवी समवेदना आणि मानवी संबंधांचा कसा कचरा झाला आहे याचे चित्रण आले आहे. जागतिकीकरणाच्या काळात आपले स्वार्थ, इच्छा, आकांक्षा कशा प्रबळझाल्या, आपणच आपले सत्व, स्वत्व हरवून बसलो याचे मार्मिक चित्रण नाटकात केले आहे.

संदेश कुलकर्णी 'पुनःश्च हनिमून' मध्ये आजच्या अराजक स्थितीत गोंधळलेल्या, खचलेल्या एका जोडप्याचा आपल्यातील नात्याचा पुर्नशोध घेत आहेत. शहाफत खान यांच्या 'शोधयात्रा' आणि 'पोपटपंची' या नाटकाद्वारे सद्याच्या विचित्र विसंगत परिस्थितीवर परखड भाष्य केले आहे. आशुतोष पोतदाराचं 'आनंदभोग मॉल' हेही असंच आजच्या माणसाच्या हाफाफलेपणा वर सडेतोड भाष्य करते. मकरंद साठेंचे'ते पुढे गेले' हे नाटक जागतिकीकरणाने निर्माण केलेल्या विविध समस्यांवर टिका करणारे नाटक आहे. यामध्ये जागतिकीकरणामुळे निर्माण झालेल्या जीवघेण्या स्पर्धेमुळे टिकाव न धरु शकणाऱ्यांची शोकांतिका आहे. एकमेकांच्या पुढे जाण्याची स्पर्धा, त्यासाठी कोणत्याही पातळीला जाण्याची तयारी, भ्रष्टाचाराने पोखरलेला समाज, नवनिर्मिती, व्यक्तिगणिक असलेली ईर्षा, त्यामुळे होणारे क्लेश, वेदना आणि व्यक्तिगत जीवनात उमटणारे त्याचे पडसाद याचे विच्छेदन मकरंद साठेंनी या नाटकात मार्मिकपणे केले आहे.

जागतिकीकरणाने आणि आर्थिक उदारीकरणाने निर्माण झालेल्या चांगल्या वाईट गोष्टी या नाटकातून रेखाटण्याचे काम या नाटककरांनी केलेले दिसते. आपल्या संस्कृतीला डावलून पाश्चात्य, चंगळवादी आणि व्यक्तिवादाला महत्व देणाऱ्या गोष्टीकडे आताच्या माणसाचा कल वाढला आहे. चंगळवादामुळे माणूस कुठल्या थराला चाललाय याच उत्तम उदा. म्हणजे प्रशांत दळवी यांचे 'चाहूल' हे नाटक "एकेकाळी चैनीच्या मानल्या जाणाऱ्या अनेक गोष्टी आज गरजेच्या बनल्या. त्यासाठी पैसा, मग तो कुठल्या का मार्गाने तो जमा करणे हे महत्त्वाचे झाले आहे. त्यामुळे नैतिक मूल्याच्या ऱ्हास होतोय. आणि यालाच आपण आधुनिक म्हणतोय. जयंत पवार लिखित 'काय डेंजर वारा सुटलाय' मध्ये दहशतवादामुळेसर्वसामान्य जनता त्याला कशी बळी जाते याचे रेखाटन आहे.या नाटकात सामाजिक, राजकीय आशयाबरोबरच एकूणच अस्तित्वाविषयी प्रश्न नाटकात आला आहे. १९९० नंतर भारतातच नव्हे तर जगभरमोठ्या वेगाने पसरत असणाऱ्या या डेंजर वार्यात सर्वसामान्य, गरीब माणसे पालापाचोळ्याप्रमाणे कुठल्या कुठे उडत जातात. हाच आशय या नाटकातून आला आहे.तर मधुगंधा कुलकर्णी यांचे 'लग्नबंबाळ' हे नाटक आजच्या आधुनिक म्हणवणाऱ्या कालखंडात लग्नसंस्था आणि पुरुषप्रधान व्यवस्था यावर प्रकाश टाकतात.

समारोप:

मराठी नाटयसृष्टीत जागतिकीकरण आणि उदारीकरणामुळे आपल्या व्यक्तिगत व समाजजीवनात कोणते बदल झाले, परंपरेला व्यवस्थेला कसे हादरे बसले,समाजात आणि कुटुंबात पूर्वीपेक्षा भिन्न असे चित्र दिसू लागले, दंगली, शहरांची वाढ, बेकारी, व्यसनाधीनता, आत्महत्या, भ्रष्टाचार,

शिक्षणाची परवड, जातीय आणि धार्मिक हिंसाचाराला प्राबल्य, बॉम्बस्फोट, निसर्गाचा ऱ्हास, चंगळवाद वाढला, माणसाचे विस्थापन, संवादहिनता वाढू लागली, माणसाच्या एकाकिपणात वाढ, असुरक्षितता, विज्ञानतंत्रज्ञानामुळे माणसाचे शारीरिक कष्टाला लाजणे यासारख्या आशयसूत्र मधून येणाऱ्या समकालीन पर्यावरण १९९० नंतरच्या मराठी नाटकातून आपल्याला दिसते. यांचा वेध घेण्याचा प्रयत्न सदर शोध निबंधात करण्यात आला आहे

निष्कर्ष :

१. १९९० नंतर खाजगीकरण, उदारीकरण आणि जागतिकीकरणाने तर व्यक्तिस्वातंत्याचा दीपच विझवून टाकला.
२. मानवकेंद्री व्यवस्थेऐवजी अर्थकेंद्री व्यवस्था अस्तित्वात आली.
३. मराठी कविता, कथा, कादंबरी या वाङ्मय प्रकारांच्या तुलनेत नाटक वाङ्मयप्रकारामध्ये १९९०
४. नंतरच्या समकालाचे चित्रण कमी आलेले आहे.
५. माणूस विशेषत: सामान्य माणूस अस्तित्वहीन झाला.
६. १९९० नंतरच्या काळातील बदलत्या समाजाचे सामाजिक दर्शन नाटकातून घडविले आहे.
७. बदलत्या जीवन जाणिवांचा वेध प्रस्तुत नाटकातून घेतला आहे.
८. समकालीन नाटकातून एकाकीपण, तुटलेपण, असुरक्षितता, पराभव,अस्मिततेचा, अस्तित्वाचा, ओळखीचा प्रश्न इ. वगैरे या समकालीन प्रश्नांचे प्रभावी चित्रण आले आहे.

संदर्भ :-

१. बागले माणिक माधव, १९७५ नंतरचे मराठी नाटक : आशय आणि रचना, प्रशांत पब्लिकेशन्स, जळगाव, २०१७
२. शिंदे विश्वनाथ, स्मार्त हिमांशू (संपा.), मराठी नाटक आणि रंगभूमी, प्रतिमा प्रकाशन,पुणे, २००८
३. भावे पु. भा., रंग नाटकाचे ,राजहंस प्रकाशन, पुणे,
४. नेमाडे भालचंद्र, जागतिकिकरण आणि साहित्य संस्कृती, लोकवाङ्मय गृह प्रकाशन, मुंबई, २००५
५. गायकवाड शरद, प्रा.शिंदे सुनिल (संपा.),जागतिकिकरण आणि मराठी साहित्य, स्नेहवर्धन प्रकाशन, पुणे, २००९

Chief Editor
P. R. Talekar
Secretary
Young Researcher Association, Kolhapur (M.S), India

Editor
Prof. Dr. V. V. Killedar
Rajarshi Chhatrapati Shahu College, Kolhapur

Co- Editors		
डॉ. एस. पी. पवार	लैफ्ट.डॉ. आर.सी. पाटील	डॉ. एस. जे. आवळे
प्रा. एन.पी. साठे	प्रा. ए. बी. घुले	प्रा. डॉ.एम. टी. रणदिवे
डॉ. एन. ए. देसाई		